दैवत-संहिता

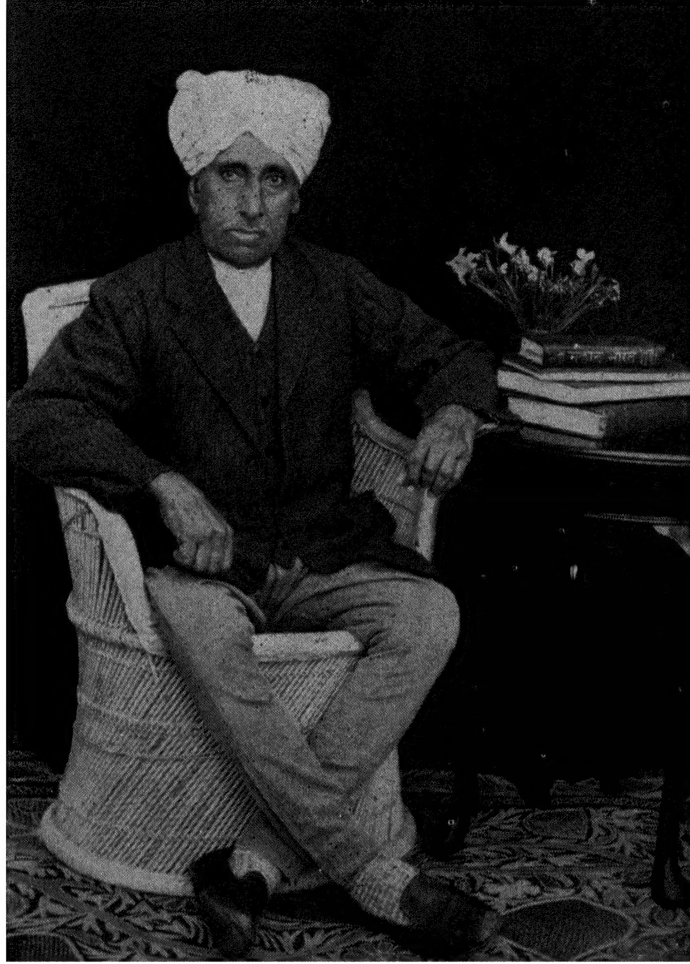
प्रथम भाग ।

१ अग्निदेवता ।

२ इंद्रदेवता ।

३ सोमदेवता ।

४ मरुद्देवता ।



पं० नाथूलालजी शर्मा जोशी, पेन्शनर, आदर्शनगर-अजमेर

एकसहस्रोत्तरनवशताधिकाष्टादशे विक्रमाब्दे ज्येष्ठस्य शुक्लपक्षस्य षष्ठ्यां तिथौ सिंहलग्ने लब्धजन्मना, राजस्थानान्तर्गत-कृष्णगढाधीशस्य ['हिज हाईनेस' उपाधिविभूषितस्य] राष्ट्रकूटा-(राठोडा) न्वयमुक्तामणेर्पुरन्दरपुगातिथेर्महाराजाधिराज-श्री-शार्दूलसिंहस्य सूनोः मदनसिंहदेववर्मणो राजपरिषदि सेवां विधाय सम्मानितेन श्रीनगरवासिनः गुर्जरगौडविप्रांतर्गत-मुद्गलगोत्रोत्पन्नस्य जोशी इत्युपाह्वस्य श्री-पंडित-बदरीनाथस्यात्मजेन नाथूलालशर्मणा, भूतपूर्वेण कृष्णगढराज्यस्य न्यायाधीशेन सम्प्रति सेवानिवृत्तेन अजमेरांतर्गतमादर्शनगरमधिवसता दैवतसंहितामुद्रणार्थं द्विसहस्रमिता मुद्राः प्रदत्तास्तेन धनेन मुद्रितोऽयं दैवतसंहिताग्रन्थः।

राष्ट्रकूट (राठोड) नामसे विख्यात क्षत्रिय कुलके विभूषण, कृष्णगढ (राजस्थान) रियासतके नरेश, हिज हाईनेस स्वर्गीय महाराजाधिराज श्री शार्दूल सिंहके सुपुत्र स्व० श्री० महाराजाधिराज हिज हाईनेस वीरश्रेष्ठ श्री महाराजा मदनसिंहजी देववर्माकी सेवाद्वारा सम्मानित हुए और श्रीनगर (अजमेर) के निवासी गुर्जर गौड ब्राह्मणजातिके अंतर्गत मुद्गल गोत्रमे उत्पन्न श्री पंडित बदरीनाथके सुपुत्र नाथूलालजी जोशी, जो अब कृष्णगढरियासत के सेवानिवृत्त न्यायाधीश है और आदर्शनगरमें निवास करते है। जन्म विक्रम सवत् १९१८ ज्येष्ठ शुक्ला ६ सिंहलग्न। आपने दैवतसंहिताके मुद्रण के लिये २०००) दो सहस्र रु० का दान किया, जिससे दैवतसंहिता मुद्रित हुई है।



दैवत-संहिता

(१)

अग्निदेवता



संपादक

भट्टाचार्य श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)



संवत् १९९८, शक १८६३, सन १९४१



मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवळेकर, B A.
स्वाध्याय-मण्डल, भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा)

दैवत-संहिता का परिचय ।

दैवत-संहिताका प्रथम भाग पाठकोंके सामने रखा जाता है, इसका अध्ययन पाठक करें ।

अग्निदेवता के करीब ढाई हजार मंत्र सग्रहित हुए हैं और **इन्द्रदेवता** के करीब साढे तीन हजार मंत्र संग्रहित हुए हैं । अर्थात् दोनों देवताओं के मिलकर करीब छः हजार अर्थात् आधे ऋग्वेद के जितने मन्त्र हुए हैं । इससे वेदमे इन दोनों देवताओं का महत्त्व कितना है, यह स्पष्ट होता है । वेदों में इन दो देवताओं के जितने मन्त्र हैं, करीब उतने ही अन्य सब देवताओं के मिलकर हैं । वेदों का आधा भाग इन दो देवताओं के लिये समर्पित हुआ है, इससे स्पष्ट हो जाता है कि, इन देवताओं का महत्त्व वेद में अधिकसे अधिक है ।

प्रत्येक देवता के मन्त्र छापनेके बाद (१) **पुनरुक्त मंत्र** तथा **पुनरुक्त मन्त्रभागों** की सूची छापी है । इस सूची से कौनसा मन्त्र कहां दुबारा आया है, यह स्पष्ट हो जाता है, जो स्वाध्याय के लिये और नित्य पाठसे अर्थज्ञान होने के लिये अत्यन्त ही आवश्यक है । इस के पश्चात् मन्त्रों की (२) **वर्णानुक्रमसूची** छापी है, जिससे कौनसा मंत्र कहां है, इसका पता लगता है । केवल मन्त्र छापे जांय और सूची न हो, तो कौनसा मन्त्र कहां है, इसका पता नहीं लग सकता। इस कारण से यह सूची आवश्यक है। इसके पश्चात् (३) '**विशेषणसूची**' छापी है । अग्निदेवता के स्वरूप का निर्णय उस देवता के विशेषणों से हो सकता है । ये सब विशेषण इस सूची में वर्णानुक्रम से दिये हैं और उनके पते भी दिये हैं । चतुर्थ सूची (४) '**उपमाओं की सूची**' है । अग्नि को कितनी उपमाएं वेद में दी हैं यह इससे पता लग सकता है । उपमाओं से देवता के स्वरूप की पहचान होती है ।

इस तरह सूचियां प्रत्येक देवता के साथ रहेंगीं । पाठक विचार करके देखेंगे, तो उन को पता लग जायगा कि, इन सूचियों के विना दैवतों का मंत्रसंग्रह विशेष लाभदायक नहीं होगा ।

आजतक किसीने इन सूचियोंका संग्रह नही किया था । कोई पाठक अब इन सूचियों के विचार से अर्थात् अग्नि आदि देवताओं के **विशेषण, उपमा, पुनरुक्त मन्त्रभाग** आदि का मनन करके अग्निदेवता का ठीकठीक स्वरूप जान सकता है । यह सुविधा इस से पूर्व नहीं थी । यह सुविधा **दैवत-संहिताद्वारा** हो रही है । जैसी अग्निदेवता की ये सूचिया छापी है वैसी ही इन्द्र की भी छपेंगीं और अन्यान्य देवताओंकी भी छपेंगीं ।

जो पाठक इन के बनानेके कष्टों को जानेंगे और इनका महत्त्व स्वाध्यायमें कितना है, यह समझेंगे, वे इनका उपयोग करके देवताका स्वरूप ठीकठीक जानेंगे ।

आर्षेय-संहिता ।

सब वेदोंमें जो मन्त्र हैं, वे विभिन्न विभागोंमें बांटे है, जैसा (१) ऋग्वेद के प्रथम सात मण्डलों के सब मन्त्र ऋषिवार ग्रथित हैं, केवल नवम मण्डल दैवत-संहिता के रूप में है, अर्थात् इस में 'सोम' देवताके ही मन्त्र है । प्रथम के छः मण्डल ऋषिवार हैं—

२.	द्वितीय	मण्डल	गृत्समद ऋषि	सूक्त	४३	मंत्र	४२९
३.	तृतीय	"	विश्वामित्र	"	६२	"	६१७
४	चतुर्थ	"	वामदेव	"	५८	"	५८९
५.	पञ्चम	"	अत्रि	"	८७	"	७२७
६.	षष्ठ	"	भरद्वाज	"	७५	"	७६५
७.	सप्तम	"	वसिष्ठ	"	१०४	"	८४१

यदि चतुर्थ और तृतीय आगेपीछे किये जांय, तो ये मण्डल '**बढती हुई मन्त्रसंख्या**' के दीखते है ।

प्रथम मण्डलके सूक्त १९१ हैं, वैसे ही दशम मण्डलके भी १९१ ही सूक्त हैं । पर प्रथम मण्डल की मंत्रसंख्या २००६ है और दशम मण्डलकी १७५४ है । अष्टम मण्डल बहुतांश 'कण्व' ऋषिवाला दीखता है और प्रथम मण्डल मधुच्छंदा से शुरू है । पर इन दोनों में अन्यान्य ऋषियों के भी मंत्र दीखते हैं, इस का कारण भी है ।

इस ऋग्वेद में केवल नवम मण्डल **'दैवत-संहिता'** है, शेष मण्डल प्रायः **' आर्षेय-संहिता '** के रूप में हैं। इस नवम मण्डल के सोमदेवता के मन्त्र देखने से हमें दैवत-संहिताकी कल्पना प्रथम आ गयी। और वह हमने पाठकोंके सामने रख दी, जो प्राय. सब पाठकोंको पसंद आ गयी।

हार्दिक धन्यवाद।

इस संहिता की कल्पना पसंद आते ही अजमेरनिवासी श्री० पं० **नथूलाल शर्माजी** पेन्शनर ने इस के निर्माण और मुद्रण के लिये दो सहस्र रु० का दान किया, जिससे इस का कार्य शुरू हुआ है। इनके सब स्वाध्यायशील सज्जनोंपर उक्त दानके कारण अनन्त उपकार हुए हैं। अत वे धन्यवाद के लिये पात्र है।

दैवत-संहिता के निर्माण करने में प्रथम हमारी इतनी हि इच्छा थी कि, केवल एक एक देवता के मंत्र छाटकर एक स्थानपर छापना और इसमे जैसे ऋषिवार मंत्र है वैसे ही रखना। अर्थात् एक देवताके मंत्र एक स्थानपर छापना और उस एक देवताके मन्त्रों में एक एक ऋषि के मन्त्र इकट्टे छापना। इससे नित्य पाठ करनेवालोंके लिये आसानी होगी, और अर्थ का विचार करनेवालों के लिये भी अर्थ का मनन करना सहज हो जायगा।

इस समय एक देवता के मंत्र किसी वेदमें एक स्थान-पर नही है। इसलिये किस देवता के विषय में कहां क्या लिखा है, इसका किसी को पता नही रहता, अनुसन्धान करना कठिन होता है। **'दैवत-संहिता'** बननेसे प्रत्येक देवताके मन्त्र इकट्टे होंगे और स्वाध्याय करना सुगम हो जायगा।

उक्त प्रकार सहायता आते ही हमने **अग्निमन्त्रों** का मुद्रण करना शुरू किया। इस समय विचार यही था कि, साल दो साल में देवतावार चारों वेदों के मन्त्र छाटकर छाप देना। इससे अधिक विचार इस समय नहीं था। इस कारण इस समय हमने जो विज्ञापन छापे, उसमें इस दैवत-संहिता का मुद्रण दो वर्षोंमें होगा, ऐसा छाप दिया था।

सूचियाँ।

अग्नि-मन्त्रों का मुद्रण होते होते, यह विचार मन में आया कि यदि इन देवता-मंत्रों के साथ साथ—

(१) अकारादि मन्त्रसूची।
(२) पुनरुक्त मन्त्र-भागोंकी सूची।
(३) विशेषण-सूची।
(४) उपमा-सूची।

ऐसी सूचियाँ दी जायंगीं, तो देवता-निर्णय करना सुगम हो जायगा और स्वाध्याय करनेवालों की बहुत ही सहा-यता हो जायगी।

ऐसा करनेसे पृष्ठसंख्या डेढ गुनी हो जायगी, यह भी ख्याल आया और डेड गुना व्यय भी बढेगा, इसका भी विचार हुआ। पर स्वाध्याय करनेवाला जो कोई होगा उसकी सहायता होनी चाहिये। एक स्वाध्याय करनेवाले को भी सहायता मिली, तो हमारे श्रम और सब व्यय सफल हुए, ऐसा विचार करके हमने उक्त सूचियाँ छापी हैं।

स्वाध्याय की सहायता निर्माण करना, व्यय का भी विचार करना नहीं, पर जो आवश्यक वेद का भाग है, वह छापना। यह हमारा विचार हुआ है और इस दिशा से कार्य चलाया जा रहा है।

दैवत-संहिताकी प्राचीनता।

ऋग्वेद में ही नवम मण्डल **दैवत-संहिता** ही है, वेदमें इतनाही दैवतसंहिता का नमूना है, ऐसा हमारा पहिले ख्याल था। पर सामवेद का विचार करते करते यह बात स्पष्ट हुई है कि, **सामवेद-पूर्वार्ध** निःसंदेह **दैवत-संहिता** है, देखिये—

पूर्वार्ध में- १. **आग्नेय काण्ड** ११४ मंत्र
२. **ऐन्द्र काण्ड** ३५२ मंत्र
३. **पावमान काण्ड** ११९ मंत्र

इस तरह तीन देवताओंके मंत्र पूर्वार्धमें क्रमपूर्वक हैं। यह **दैवत-संहिता** ही है। अर्थात् जैसी ऋग्वेद के नवम मण्डल में सोम की **दैवत-संहिता** है, वैसीहि सामवेद-पूर्वार्ध में तीन देवताओंकी **' दैवत-संहिता '** ही है। अत. हम अब कह सकते हैं कि, **' दैवत-संहिता '** की कल्पना, यद्यपि हमारी कल्पना में उत्पन्न हुई ऐसा हमें प्रथम प्रतीत हुआ, तथापि वह 'कल्पना निःसंदेह वैदिक है और इस का स्वरूप ऋग्वेद के नवम मण्डल में तथा सामवेद के पूर्वार्ध में आज भी दीख पडता है।

छांदस-संहिता।

सामवेद-पूर्वार्ध देखने से एक और बात भी स्पष्ट हो गयी कि, यहां गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, बृहती ऐसे छंदवार मंत्र संग्रहित हुए है। वेद के अध्ययन की जो पाठविधि हमने निर्धारित की है, उस में भी हमने अपने अनुभव से छन्द के क्रम से ही पाठविधि निर्धारित की है। यही प्रणाली सामवेद में हमें दीख रही है। अर्थात् यह 'छांदस-संहिता' भी वैदिक ही है।

इस पद्धति को अनुसरते हुए हमें इस दैवत-संहिता में छन्दों के क्रम से हि मन्त्र रखने चाहिये थे। पर हमने ऋषियों के क्रम से ही रखे है, जैसे ऋग्वेद में है। छन्द के क्रम से रखने से अध्ययन की सुगमता होती है, यह सत्य है, पर ऋषिक्रम मे भी बडा लाभ है। दोनों लाभ एक ही ग्रन्थ में शामील नहीं किये जा सकते। इसलिये हमने ऋग्वेद-क्रम को प्राधान्य देकर देवता के मन्त्र ऋषिक्रमानुसार रखे हैं और उसकी उक्त सूचियां भी दी है।

इस ग्रन्थमें अग्निके मन्त्र सूचियोंसमेत तथा इन्द्रके मंत्र भी सूचियोंसमेत हैं।

इन दो देवताओं के मन्त्र चारों वेदों के मन्त्र-संग्रह के तीसरे भाग के बराबर हैं। अर्थात् इन दो देवताओं की हि मन्त्र-संख्या अधिक है। इसके आगे के देवता बहुत मन्त्रवाले नहीं हैं। एक तिहाई मन्त्रसंख्या मे ये दो देवता है और दो-तिहाई मंत्रसंख्या में संपूर्ण अन्य देवतागण हैं।

मंत्रोंके तीन संग्रह।

सब मंत्रोंके तीन प्रकारके संग्रह हो सकते हैं (१) एक आर्षेय मंत्रसंग्रह, इसी को 'आर्षेय-संहिता' कह सकते हैं। ऋग्वेदका मुख्य भाग इस तरहके संग्रहका है। (२) दूसरी 'दैवत-संहिता'। ऋग्वेदका नवम मंडल तथा सामवेद पूर्वार्धमें इस तरह का संग्रह है। यह दैवत संहिता भी उसी का अनुसरण करके बनायी है। (३) तीसरी 'छांदस-संहिता' जो छन्दानुसार मंत्रसंग्रहसे बनती है। सामवेद पूर्वार्ध में ऐसी ही रचना है। इससे एक छंद के मंत्र इकट्ठे रहते हैं।

ये तीन ही मंत्रसंग्रह बडे कामके हैं। वास्तवमें देखा जाय, तो सब वेदमंत्र इस तरहकी तीनों प्रकार की संहिताओं में छापने चाहिये। प्रत्येक के अध्ययन का विभिन्न फल है। इस तरह के मंत्रसंग्रह बननेके पूर्व साधारण मनुष्य नहीं जान सकता कि, इनसे क्या लाभ होगा। पर इस अनुभवसे कह सकते हैं कि, वेदमन्त्रों का उत्तम अध्ययन करना है, तो इन तीनों मंत्रसंग्रहों की अत्यंत आवश्यकता है।

आर्षेय-संहिता से ऋषिपरंपरा का इन मंत्रोंके साथ जो संबंध है, वह जाना जा सकता है। ऋषिज्ञान के विना मंत्रज्ञान नहीं होगा। यह प्राचीन परंपरा से सिद्ध हुई बात है। दैवत-संहितासे देवताओं का ज्ञान उत्तम हो सकता है। और छांदस-संहिता से शीघ्र अध्ययन हो सकता है। ये तीन लाभ इन तीन संहिताओं से स्पष्ट रूपसे होते हैं। अतः जो धन इन संहिताओंपर खर्च होगा, वह वेदसेवामें लगेगा, इसमे बिलकुल संदेह नहीं।

एक व्यर्थ भय।

जब हमने 'दैवत-संहिता' की कल्पना प्रगट की, तब कई लोगोंने हमें लिखा कि, यदि यह दैवतसंहिता बन गयी, तो मूल चार वेदोंकी संहिताएं कोई देखेगा नहीं। पर यह भय व्यर्थ है। ऊपर हमने तीनों प्रकारकी संहिताओंका वर्णन किया है, इसमें से एक दूसरे की मारक नहीं है, परंतु ये सब परस्पर उपकारक ही हैं।

इसलिये ऐसा भय करनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं है। अध्ययनोंके मार्ग सुगम करने ही चाहियें। यही हमारा कार्य है, जो इस दैवत-संहिता द्वारा किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि, इससे वेदपाठकों का अत्यंत लाभ होगा और वेद का तत्त्वज्ञान समझने में तथा उसके प्रचार में बडी सहायता होगी।

इस ग्रंथमें उपमा और विशेषणसूचियां श्री० पं० अनंत दिनकर रास्ते पूनानिवासीने बनायीं, इसलिये वे धन्यवाद के लिये योग्य हैं।

इस तरह यह दैवत-संहिता का प्रथम भाग पाठकोंके सामने रखा है। हमें पूर्ण आशा है कि सब वेदानुयायी इसका हार्दिक स्वागत करेंगे।

मार्गशीर्ष शुक्ल १ शके १८६३ संवत १९९८	संपादक श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, अध्यक्ष-स्वाध्याय-मंडल, औंध

अग्निदेवता का परिचय ।



(१) विषयप्रवेश ।

वेदकी " अग्नि-विद्या " ठीक प्रकार समझमें आनेके लिये सबसे प्रथम " अग्निदेवताका परिचय " होनेकी आवश्यकता है। देवताका परिचय हुए बिना मंत्रका आशय समझना अशक्य है । इस कारण हरएक देवताके विषयमें निश्चित ज्ञान होनेके लिये उस उस देवता के संपूर्ण मंत्रोंका उत्तम अध्ययन करके, प्रत्येक देवताका मंत्रोक्त स्वरूप निश्चित करनेके यत्न की आवश्यकता है । इस लिये अध्ययन करनेवालोंको उचित है कि, वे वेदमंत्रोंके अध्ययनसे वैदिक देवताका वैदिक स्वरूपही जाननेका यत्न करें। तथा जो विद्वान् इन देवताओंका रूपान्तर पुराणोंमें देखना चाहते है, वे वेद और पुराणोंका तुलनात्मक अभ्यास करें और दोनों कल्पनाओंमें समानता कहां है और विषमता कहां है, इस का निश्चय करें। ऐसा जिन्होंने किया नहीं है, उनके कथनमें बडी अशुद्धियां हुई है; इसलिये इस विषयमें पूर्वोक्त प्रकार सावधानता रखनेकी अत्यंत आवश्यकता है ।

यहां इस निबंधमें अग्निदेवताका वैदिक स्वरूप निश्चित करनेका यत्न करना हैं ।

(२) भाषामें अग्नि शब्दका भाव ।

अग्निदेवताके स्वरूपका निश्चय इस लेखमें करना है । पाठक यहां कहेंगे कि, "अग्नि" के स्वरूपके निश्चय का तात्पर्य क्या है? अग्नि शब्द "आग" का पर्याय है और उसका उपयोग पकानेके समय हर एक दिन हम करते हैं। उसका स्वरूप सभी मनुष्य जानते हैं, इसलिये उसके स्वरूपका तो और क्या निश्चय करना है? इस शंकाके उत्तर में निवेदन है कि, यद्यपि "अग्नि" शब्द "आग"का वाचक है, तथापि वेदके अग्नि देवताके सब मंत्र "आग" का ही वर्णन कर रहे हैं, ऐसा मानना बडी भारी भूल है । लौकिक संस्कृत भाषामें भी "अग्नि" शब्दके आगके अतिरिक्त बहुतसे अन्य अर्थ हैं । जैसा—"अग्निजार वृक्ष, केशर, स्वर्ण, निंबू, भिलावा, चित्रक, रक्तचित्रक, कपित्थाष्टक, जठराग्नि, पित्त" आदि अनेक अर्थ लौकिक संस्कृत भाषामें भी अग्नि शब्दके हैं । इसलिये "अग्नि" शब्द केवल "आग" का ही वाचक मानना गलती है । इसके अतिरिक्त अग्निवाचक कई ऐसे शब्द हैं कि, जो "आग" में कदापि सार्थ नहीं हो सकते, इनमेंसे कुछ यहां देखिये—

(३) अग्निके पर्याय शब्द ।

(१) वैश्वानरः=विश्वमें (नर) पुरुषशक्ति, विश्वका चालक, (विश्व) सब (नर) मनुष्योंके संबंधसे होनेवाला, इत्यादि ।

(२) धनंजयः= धनको जीतनेवाला, धन प्राप्त करनेवाला ।

(३) जातवेदाः= जिससे वेद उत्पन्न हुए हैं, जिससे धन उत्पन्न होता है, जिससे ज्ञान होता है ।

(४) तनूनपात्=(तनू) शरीरोंको (न-पात्) न गिरानेवाला, जिसके कारण शरीरोंका पतन नहीं होता ।

(५) रोहिताश्वः- लाल रंगके घोडोंसे युक्त ।

(६) हिरण्यरेताः- सुवर्णका वीर्य ।

(७) सप्तार्चिः-सात ज्वालाओंसे युक्त ।

(८) सप्तजिह्वः-सात जिह्वाओंसे युक्त ।

(९) सर्वदेवमुखः- सब देवोंमें प्रमुख, किंवा सब देवोंका मुख ।

इत्यादि शब्द ' अग्नि ' के पर्याय हैं, परंतु ये ' आग ' में सार्थ नहीं हो सकते । उक्त शब्दोंका भाव ' आग ' में नहीं दिखाई देता है, कमसे कम उक्त अर्थ आगमें चरितार्थ होनेका अनुभव नहीं है । इस लिये ' अग्नि ' शब्दका आशय आगसे भिन्न मानना आवश्यक ही है। वेदमंत्रोंको देखकर भी यही निश्चय होता है । देखिये—

(४) पहला मानव " अग्नि "।

पहला जो मानव प्राणी हुआ था, उसका नाम ' अग्नि ' है, ऐसा वेदमें ही कहा है, देखिये—

त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्पतिं । इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत् पुत्रो ममकस्य जायते ॥ (ऋ. १।३१।११)

"हे अग्ने! (नहुषस्य विश्पतिं) मनुष्योंके नरपतिरूप (त्वां प्रथमं आयुं) तुम प्रथम मनुष्य को (देवाः) देवोंने (आयवे अकृण्वन्) मानवजातिके लिये बनाया है।(इळां) वाणी को (नहुषस्य शासनीं) मानवजातिकी शासनकर्त्री (अकृण्वन्) बनाई है। (यत् ममकस्य पितु.) जो ममत्वरूप पिताका पुत्र होता है।" उसके आगे वैसी ही संतति होती जाती है और वंशानुरूप वाणी आदिका प्रचार होता है। इस मंत्रका यह भाव देखनेसे निम्न बातोंका पता निःसंदेह लग जाता है—

(१) देवोंने जो पहला मानवप्राणी बनाया, उसीका नाम "अग्नि" था। मनुष्यजातिकी उत्पत्ति करनेकी इच्छासे देवोंने इस प्रथम मानवप्राणी को बनाया था।

(२) यही पहला मानव मनुष्यों का पिता होनेसे इसी को (विश-पति) नरपति अथवा नरेश कहते है।

(३) जिस प्रकार इस मानवप्राणी को प्रारंभ में देवोने बनाया था, उसी प्रकार उसके साथ वाणी की भी उत्पत्ति की गई थी। इसे उसकी धर्मपत्नी भी मान सकते है।

(४) इस मानवमें ममता रखी गई है। इस ममत्व के कारण स्त्रीपुरुष इकट्ठे होते है और आगे सतति बढाते है, इसलिये सब संतति इस "ममत्व" की ही है और पिता की वाणी इसी कारण संतान बोलते है।

निघंटु २।३में मनुष्य नामोंमें 'आयवः (आयुः),नहुषः विशः' ये शब्द पठित होनेसे, इनका अर्थ मनुष्यही है। तथा निघंटु १।११ में 'इळा' शब्द वाङ्नामों मे पठित होनेसे इसका अर्थ वाणी है। देवोंके द्वारा इस प्रकार जो 'पहला मनुष्य' बनाया गया, उसका नाम अग्नि है और उसकी पत्नी वाणी है। तात्पर्य, मनुष्योंमें भी अग्नि है, अर्थात् मानवप्राणी अग्नि शब्द से वेदमें लिया जाता है। वेदमंत्रों में अग्नि के अनेक अर्थ होंगे, परंतु उसमें एक अर्थ 'मानव प्राणी' है, इसमें कोई शंका नहीं है। क्योंकि जो मानव-प्राणी सबसे प्रारंभ में देवोंने बनाया, उसके वंशजों में भी वही भाव और वही वाणी होने के कारण उसमें उसका 'अग्निपन' भी उतरा ही है। पिताके गुणधर्म आनुवंशिक होकर पुत्रमें उतरते हैं, इसी रीतिसे पिताका अग्निपन पुत्रों में उतरा है। 'अग्नि' का 'वाणी' के साथ संबंध इस प्रकार माना गया है। मनुष्य उत्पन्न होनेके पूर्व पशुपक्षियों की अनेक योनियोंमें अनेक प्राणी उत्पन्न हो गये थे, परन्तु जैसी वाणी की पूर्णता इस मनुष्यमें हुई है, वैसी किसी अन्य प्राणीमें नहीं हुई। इसलिये उक्त मन्त्रमें कहा है कि, (१) **जिस प्रकार मनुष्यरूप अग्निको मानवजातिके पितृस्थानमें देवोंने उत्पन्न किया, (२) उसी प्रकार वाणीको मानवजातिकी शासनकर्त्री देवोंने बनाई।** और मानवका इस वाणीके साथ सम्बन्ध भी कर दिया है। इसलिए वाणी मनुष्य की ही अर्धांगी है। अन्य प्राणियोंमें और मनुष्योंमें यदि किसी विशेष गुण के कारण भेद है, तो इस वाणीके कारण ही है। मनुष्यने इस वाणीके कारण ही इतनी उन्नति की है। अनादि कालसे जो ज्ञानका संग्रह हो रहा है, वह वाणी के कारण ही है और यह ज्ञानही, जो वाणीद्वारा प्राप्त हो रहा है, वही मानवजातिका शासन कर रहा है। इस प्रकार देखनेसे पता लग सकता है, कि वेदका कथन कितना ठीक है। तात्पर्य **(१) पहला मानवप्राणी अग्नि है, (२) और उसकी 'अग्नायी' वाणी ही है।**

अग्नि	अग्नायी
प्रथम मनुष्य	इळा (वाणी)
यम	यमी
शासक	शासनी
विश्पती	विश्पत्नी
पिता	माता
आत्मा	अवा (रक्षणशक्ति)
आदम	हव्वा

'इळा' शब्दका दूसरा अर्थ 'भूमि' है। भूमि बीज बोनेके लिये होती है। मनुष्य अपना ज्ञानरूप बीज इस वाणी में बोता है और इस प्रकार जो ज्ञानवृक्ष फैलता है, उसके फलही हम आज खा रहे है। इसके अतिरिक्त भूमि का अर्थ क्षेत्र है और स्त्रीको भी क्षेत्र कहते हैं। इस अर्थ के लेनेसे यह तात्पर्य होगा कि, देवोंने एक पुरुष और एक स्त्री सबसे प्रथम निर्माण की। इसलिए कि यह पुरुष अपने वीर्यसे इस स्त्रीमें पुत्र और पुत्रियां उत्पन्न करें। और इस प्रकार ममत्वसे संतति उत्पन्न हो। इसी रीतिसे यह संतति उत्पन्न हो गई है।

(५) वृषभ और धेनु।

'इळा' शब्द का तीसरा अर्थ 'गाय' है और गायवाचक 'गो' शब्दके संस्कृतमें 'वाणी, भूमि और गाय' ऐसे अर्थ

हैं। तात्पर्य ये शब्द परस्पुरों के वाचक हैं। इस भाव को लेकर निम्न मंत्र देखिये—

असच्च सच्च परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे। अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ॥ (१५१९, ऋ० १०।५।७)

'(दक्षस्य जन्मन्) दक्ष के जन्म के समय (अदितेः उपस्थे) अदितिके पास (परमे व्योमन्) परम आकाश मे असत् और सत् ये दो पदार्थ थे। अग्निही हमारा (ऋतस्य प्रथमजाः) ऋत का पहला प्रवर्तक है और पूर्व आयु में वृषभ और धेनु है।' पूर्व आयु में अग्नि वृषभ था और उसकी धर्मपत्नी धेनु थी। वृषभ शब्द का अर्थ वीर्यवान् और धेनु शब्द का अर्थ वीर्य का धारण करनेवाली है। पूर्व कोष्टकमें निम्न शब्द और मिलाइये—

अग्नि	अग्नायी
वृषभ	धेनु
पुरुषशक्ति	स्त्रीशक्ति
क्षेत्रपति	इळा (क्षेत्र)
वाक्पति, गोपति	गौः (वाक)

उक्त मन्त्रमें भी कहा है कि "अग्नि पहला प्रवर्तक" अर्थात् शासक है। अग्नि मनुष्यरूपमें अवतीर्ण होनेके पूर्व आयुमें "वृषभ" रूपमें था। अर्थात् पशुरूपमें था, तत्पश्चात् वही मनुष्यरूपमें प्रकट हुआ है। यह कथन 'उत्क्रांतिवाद' का सूचक है। वैदिक उत्क्रांतिवादका तत्त्व बतानेके लिये इस निबंधमें स्थान नहीं है, तथापि उक्त बातमें वैदिक उत्क्रांतिवाद की ध्वनि है, इतनाही यहां बताना है। इस प्रकार अग्नि न केवल मनुष्योंमें है, प्रत्युत पशुपक्षियोंमें भी है, यह बात उक्त कथनसे सिद्ध होती है। पशुपक्षियोंमें जो अग्नि होगा, उसका विचार हम किसी अन्य स्थानमें करेंगे, यहां मनुष्योंमें जो पहला मानव अग्नि हुआ, उसीका अधिक विचार करना है। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

(६) पहला अंगिरा ऋषि।

त्वमग्ने प्रथमो अंगिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा। तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ (५०; ऋ. १।३१।१)

'हे अग्ने! (त्वं प्रथमः अंगिरा ऋषिः) तू पहिला अंगिरा ऋषि है। तू स्वयं (देवः) दिव्य शक्तिसे युक्त है और (देवानां शिवः सखा अभवः) देवोंका शुभ मित्र हुआ है। (तव व्रते) तेरे नियम में (विद्मनाऽपसः) ज्ञानयुक्त होकर पुरुषार्थ करनेवाले (मरुतः कवयः) मर्त्य कवि (भ्राजदृष्टयः) तेजस्वी दृष्टिसे युक्त होते है।' इस मन्त्रमें कहा है कि, पहला 'अंगिरा ऋषि' अग्नि ही है, इसेही पहला मानव समझना उचित है। पहला मानव जो अंगिरा ऋषि था, वही अग्नि नामसे प्रसिद्ध है। तथा और देखिये—

त्वमग्ने प्रथमो अंगिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतं। विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे॥ (५१; ऋ. १।३१।२)

'हे अग्ने! तू (प्रथम अंगिरस्तमः कविः) अंगिरसोंमें पहला कवि है और (देवानां व्रत) देवोंका व्रत सुभूषित करता है। तू (विभूः) विशेष प्रकार होनेवाला (विश्वस्मै भुवनाय) सब भुवनों अर्थात बने हुए प्राणी आदिकोंके लिये (मेधि-रः) बुद्धिसे प्रकाशित करनेवाला, (द्विमाता) दोनों पुरुषार्थोंका निर्माता तथा (आयवे) मनुष्यमात्रके लिये (कतिधा चित्) कई प्रकारसे (शयुः) आराम देनेवाला है।'

इस मन्त्रमें कहा है कि, अंगिरसोंमें सबसे पहला कवि अग्नि ही है। यही मनुष्योंमें पहला मानव अग्नि है। वाणी इसके साथ उत्पन्न हुई थी, अतः यह कवि है। यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि, यदि पहला मानवप्राणी ही अग्नि है, तो उसीकी संतति भी अग्निरूप ही होनी चाहिये, अर्थात् जैसा एक मानवप्राणी अग्नि है, उसी प्रकार मानव-जाति भी अग्नि ही होनी चाहिये। जैसी एक व्यक्ति होती है, वैसाही उसका समाज होता है, इस सार्वमानुष अग्नि का वर्णन निम्न मंत्रमें हुआ है। देखिये—

(७) वैश्वानर अग्नि।

वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा। शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥ (१७२९; ऋ० १।५९।७)

'वैश्वानर अग्नि अपने महत्त्वसे (विश्व-कृष्टिः) सर्व मनुष्य ही है। (भरत्-वाजेषु) पोषक अन्नों के यज्ञों में (यजतः)

पूजनीय और (विभावा) विशेष प्रभावयुक्त है। (सूनृतावान्) सत्य वाणी से युक्त होने के कारण यह (अग्नि) सर्व मनुष्यरूप अग्नि (शत-वनेये) सैकडो द्वारा जहां सेवन होता है, ऐसे (पुरु-नीथे) बहुतोंके नेतृत्वसे चलनेवाले कार्यों में (शतिनीभि) सैकडो की संख्याओं से (जरते) प्रशंसित होता है।'

'विश्व+कृष्टिः' अर्थात् 'सर्व-मनुष्य' रूप ही यह अग्नि है। मनुष्यों का समाजरूप ही यह अग्नि है। इसी का नाम 'वैश्वा-नर' अग्नि है। 'विश्व-नर' शब्द का अर्थ भी 'सर्व मनुष्य' ही है। सब मनुष्यों का जो एक संघ होता है, उस के अन्दर एक प्रकार का तेज रहता है, यही वैश्वानर अग्नि है। इस को 'राष्ट्रीय जीवनाग्नि' अथवा 'सामाजिक जीवनाग्नि' समझिये। इस के छोटे नाम 'राष्ट्राग्नि, सामाजिक अग्नि' हैं। इस की पूजा उन यज्ञों में होती है, कि जिन में (भरत्-वाज) अन्न और बल का संवर्धन करना होता है। संघ के कारण बल संवर्धन होना प्रत्यक्ष ही है। इसलिये जिस जाति में अपना बल बढाने की सदिच्छा होती है, उसी में 'वैश्वानर अग्निकी उपासना' की जाति है। मानवसंघरूप अग्नि की उपासना वे ही करेंगे कि, जो संघशक्ति बढाना चाहते हैं। वैश्वानर में (विश्व-नर) सब मनुष्यों की अभेद्य संघशक्ति की निश्चित कल्पना है। वही भाव 'विश्व-कृष्टि' में है। इस शब्द का भाव श्रीसायणाचार्य निम्न प्रकार देते हैं—

विश्वकृष्टिः। कृष्टिरिति मनुष्य नाम। विश्वे सर्वे मनुष्याः यस्य स्वभूताः स तथोक्तः।
(ऋ. सायणभाष्य १-५९.७)

वैश्वानरः सर्वनेता। विश्वकृष्टिः विश्वा सर्वाः कृष्टीर्मनुष्यादिका प्रजाः॥
(ऋ. दयानंदभाष्य १-५९.७)

सायणभाष्य– कृष्टि मनुष्यवाचक शब्द है। सब मनुष्य जिस के लिये अपने ही निज होते हैं, वह विश्वकृष्टि है। **दयानन्दभाष्य**– वैश्वानर सब का नेता है। विश्वकृष्टि सब प्रजाओं का संघ है।

दोनों भाष्यकारों के उक्त अर्थ देखनेयोग्य हैं। सब प्रजाओं का जो एक अभेद्य संघ होता है, उस का नाम 'विश्व-कृष्टि अग्नि' है। इसी का वर्णन निम्न लिखित मंत्र में देखिये—

स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता॥
विप्रेभिरस्तु सनिता॥ (४६; ऋ. १-२७-९)

'वह (विश्व-चर्षणि) सर्व-मनुष्यरूप अग्नि (अर्वद्भि) फुर्तिवालों के साथ (वाज) युद्ध के (तरुता) पार होनेवाला और (विप्रेभि.) ज्ञातियों के साथ (सनिता) पूज्य (अस्तु) होवे।'

यह अग्नि ही मानवों का संघ बनाता है, यही इस का तात्पर्य है।

(८) ब्राह्मण और क्षत्रिय।

मानवजातिरूप जो समाज है, वह पुरुषार्थियों के प्रयत्नोंद्वारा आपत्ति से पार होता है और ज्ञानियों के उद्योग से पूज्य होता है। 'अर्वन्' शब्द 'गमन करनेवाला, हलचल करनेवाला, प्रयत्नशील, पुरुषार्थी, घोडा जिस के पास है, घुडसवार' इन अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। इसलिये यह क्षत्रियों का सूचक है, तथा 'विप्र' शब्द विशेषतः ज्ञानी का भाव बताता है, इसलिये ब्राह्मणों का बोधक है। यह अर्थ लेने से उक्त मंत्र का भाव निम्न प्रकार बनता है– 'सर्व-मनुष्यसंघरूपी जो अग्नि है, वह क्षत्रियों के प्रयत्नों से युद्धों में यशस्वी होता है, और ब्राह्मणों के प्रयत्न से वंदनीय होता है।' इस प्रकार क्षत्रियों और ब्राह्मणों के द्वारा इस मानवसंघ की उन्नति होती रहती है। ब्राह्मण-क्षत्रियों के संघ का महत्त्व वेद में अन्यत्र बहुत स्थानों पर वर्णन किया है, देखिये—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यंचौ चरतः सह॥
तं देशं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥ य. २० २५

'जहां (ब्रह्म क्षत्र च) ब्राह्मण और क्षत्रिय (सम्यचौ सह चरतः) मिल कर हलचल करते हैं, वही पुण्यदेश है, और (प्रज्ञा-इष) बुद्धिसे इच्छा करनेयोग्य है, तथा वहांही देव अग्निके साथ रहते हैं।'

ब्राह्मण-क्षत्रियोंकी मिलजुलकर जो हलचल होती है, वही राष्ट्रीय हलचल होती है। क्योंकि येही राष्ट्र के प्रधान अवयव हैं। वास्तव में यह ब्राह्मण-क्षत्रियोंकी हलचल नहीं है, परन्तु (ब्रह्म क्षत्र) ज्ञान और पुरुषार्थकी संगठित हलचलही है। जहां ज्ञान और कर्मका संगठित कार्य

होता है, वहांही सिद्धि मिलती है। सब मनुष्य जिस अग्निसे संवर्धित हुए हैं, वह **विश्वकृष्टि, वैश्वानर** या **विश्वचर्षणि** अग्नि है। इस प्रकार जो अभेद्य संघ होता है, उसीका नाम " **विश्व कृष्टि** " अग्नि है। इस विषय में निम्न लिखित मन्त्र देखिए—

मंद्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम्॥ रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे॥ (१७४१, ऋ० ३।२।१५)

'(मंद्रं) आनंदकारक (होतारं) दाता (शुचिं) पवित्र (अद्वयाविन) द्वैत अर्थात् झगडा जिसमें नहीं है, (दमूनसं) संयमी, (उक्थ्यं) प्रशंसनीय, (मनुः-हितं) मनुष्यमात्रका हित करनेमें तत्पर ऐसे (विश्व-चर्षणिं) सर्व-मनुष्यसंघरूप अग्निकी (सद इत्) सदा (राये) श्रेष्ठ ऐश्वर्यके लिए (ईमहे) हम प्राप्ति करते हैं, जिस प्रकार सुन्दर दर्शनीय आकृतिसे युक्त रथकी प्राप्ति की जाती है।'

इस मंत्र में '**सार्व-मानुष अग्नि**' के कई गुण वर्णन किये हैं। उनका विचार करनेसे '**राष्ट्राग्नि**' का स्वरूप ठीक ध्यान में आ सकता है। '**अ-द्वयाविन्**' यह **शब्द जाति जाति के आपस के झगडों का निषेध कर रहा है**। जिन में आपस के झगडे नहीं हैं, परस्पर कपट और ईर्ष्याद्वेष के भाव नहीं हैं और जो मानवसंघ एकता से अपनी शक्ति बढा रहा है, परस्पर अभेद्य एकता प्रस्थापित कर जो उन्नति प्राप्त कर रहा है और जो निष्कपट भाव के आचरण करने के कारण उन्नत हो रहा है, उस प्रकार का अभेद्य मानवसंघ इस शब्द से बोधित हो रहा है। '**मनुः+हितं**' मनुष्यमात्र का हित करनेवाला, यह भाव इस शब्द में है। मानवसंघ निष्कपट भाव से जो कार्य करेगा, उस से संपूर्ण मनुष्यों का ही हित होगा, इस में संदेह ही नहीं हो सकता। '**दमू-नस् =** जिस का मन स्वाधीन है, अर्थात् जो संयमी है। तात्पर्य, जो नियमों से बधा है और नियमानुकूल चल रहा है। नियम छोडकर स्वेच्छासे जो स्वैर वर्तन नहीं करता, इस प्रकारका जो मनुष्य तथा मानवसंघ होता है, वही उन्नति प्राप्त कर सकता है। इन शब्दों के विचार से वैदिक राष्ट्रीय अग्नि का पता लग सकता है। इस के संवर्धन का उपाय देखिये।

(९) अग्निसंवर्धन।

अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम्॥ स्वाधीभिर्वचस्युभिः॥ (८६५; ऋ० ५-१४-६)

'(विश्व-चर्षणिं अग्निं) सार्व-मानुष अग्निको (घृतेन) तेजस्वितासे (स्तोमेभिः) संघभावसे (स्वा-धीभिः) आत्म-बुद्धिसे तथा (वचस्युभिः) वाणीके योगसे (वावृधुः) बढाते हैं।' यह मंत्र विशेष अर्थसे प्रयुक्त हुआ है। '**घृत**' शब्दके दो अर्थ हैं, **घी और तेजस्विता**। '**स्तोम**' शब्द के भी दो अर्थ हैं- **यज्ञ और संघभाव** (group, assemblage)। '**स्वा-धी**' शब्द के दो अर्थ हैं- **अध्ययन और आत्मबुद्धि**'। '**वचस्+यु**' के दो अर्थ हैं, प्रशंसाकी इच्छा और मंत्रणा, सुविचार इ०। ये सब अर्थ लेकर सार्वजनिक भावदर्शक उक्त मन्त्र का तात्पर्य निम्न प्रकार है। '**सर्व-मानव-संघरूप जो अग्नि है, वह तेजस्विता, संघ-भाव, आत्म-बुद्धि तथा सुविचारसे बढाया जाता है**।' मनुष्यसंघ का हित इन गुणों से होता है। इसलिये जिस राष्ट्र को अपना उद्धार करना है, उस को चाहिये कि, वह अपने अन्दर तेजस्विता, संघभाव, एकता, आत्मबुद्धि, तथा सुविचार आदि गुण बढावे। यही राष्ट्रीय उन्नति का मूल मंत्र है। अस्तु। उक्त मंत्र में सार्वमानुष अग्निकी उन्नति का मार्ग बताया है। यह सार्वजनिक अग्नि क्या देता है, इसका वर्णन निम्न लिखित मंत्र में देखनेयोग्य है—

अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः॥ अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आभर॥ (८०३; ऋ० ५-६-३)

'यह (विश्व-चर्षणि अग्निः) सार्वमानुष अग्नि (विशे) प्रजाओं के लिये (वाजिनं) अन्नयुक्त बल देता है। यह अग्नि संतुष्ट (प्रीतः) होकर (राये) ऐश्वर्य के लिये (सु+आभुवं वार्यं इषं) उत्तम प्रभावयुक्त वरणीय अन्न (याति) प्राप्त करता है। यह सब याजको को भर दो।'

मानवसंघरूप यह अग्नि यदि संतुष्ट हुआ, तो सब प्रजाओं को अन्न, बल, संतति, यश, प्रभाव, ऐश्वर्य तथा हरएक प्रकार का इष्ट सुख देता है। इसलिये इस की संतुष्टि सिद्ध करनी चाहिये। संघ, समाज और राष्ट्र की संतुष्टि उस के स्वातन्त्र्य के संरक्षण से होती है। व्यक्ति-

स्वातंत्र्य और संघ का नियमन योग्य रीति से होने से इस की संतुष्टता होती है। व्यक्तिस्वातन्त्र्य संघभाव का घातक न हो और संघभाव व्यक्ति को परतंत्र न बनावे, यह उपदेश निम्न मंत्रों में कहा है—

(१०) व्यक्तिभाव और संघभाव।

(१) अंधं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्यां रता ॥९॥
(२) अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१०॥
(३) सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते॥११॥
(वा० य० ४०; ईश० उ० १२-१४)

'(१) जो (अ-सं-भूति) केवल अ-संघभाव अर्थात् व्यक्तिभावकी उपासना करते हैं, वे अंधकार में गिरते हैं, तथा उससे घने अंधकार में वे पहुचते हैं, कि जो केवल (सं-भूत्यां) संघभाव में ही रमते है। (२) संघभाव का फल भिन्न है और व्यक्तिभाव का फल भिन्न है, ऐसा धीर लोग कहते आये हैं। (३) संघभाव और असंघभाव किंवा व्यक्तिभाव को जो साथ साथ उपयोगी समझते हैं, वे व्यक्तिभाव से अपमृत्यु आदि के कष्ट दूर करके संघभाव से अमर होते है।'

संघभाव की उपासना करने की वैदिक रीति इसमें दी है। केवल सङ्घभाव बढाया गया, तो व्यक्ति की सत्ता दब जाती है और व्यक्तिस्वातन्त्र्य नष्ट होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति में परतन्त्रता बढने से सब समाज कालांतर से परतन्त्र हो जाता है, यह दोष संघभाव का अतिरेक करने से होता है। तथा जो व्यक्तिस्वातन्त्र्य को हद से अधिक बढाते हैं, उनमें संघशक्ति बढ नहीं सकती, क्योंकि हरएक व्यक्ति किसी एक नियन्त्रणा में बद्ध नहीं होती। इसलिये उक्त गुण केवल अकेला अकेलाही रहने से लाभदायक नहीं होता। परन्तु संघभाव से बल बढता है और व्यक्तिःस्वातन्त्र्य से हरएक की शक्ति विकसित होती है, यह देख कर बुद्धिमान् पुरुष युक्तिसे संघभाव को भी बढाते हैं और सीमित व्यक्तिस्वातन्त्र्यको भी सीमित रखते हैं। इस प्रकार करने से वैयक्तिक शक्तियों की वृद्धि होती है और संघभाव से समाज में बल भी बढ जाता है। यही समविकास का वैदिक सिद्धांत है और मानवसंघ की सच्ची उन्नति करने का यही उपाय है। इस रीति से जो जनता अपना समविकास करती है, उनका समाज अथवा राष्ट्र प्रसन्न होता है और उन प्रजाजनों में पूर्वमंत्रोक्त आनन्द पाया जाता है। इस सघरूप अग्नि से और एक लाभ होता है, उसे भी यहां देखिये—

(११) संघशक्ति का अद्भुत बल।

स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्
पावक दीदिहि ॥ (९०६. ऋ० ५।२३।४)

'वह (विश्व-चर्षणिः) सार्व-मानुष अग्नि (अभि-माति) शत्रु का नाश करने का (सहः) बल (दधे) धारण करता है। हे (शुक्र अग्ने) शुद्ध अग्ने ! हमारे (क्षयेषु) स्थानों में (रेवत्) धनयुक्त (दीदिहि) प्रकाश रखो। हे (द्युमत् पावक) तेजस्वी शुद्धिकर्ता ! प्रकाश करो।'

सर्व मनुष्यों के संघ का जो एक राष्ट्राग्नि है, वह शत्रु का नाश करने का बल अपने राष्ट्र में रखता है। इसका तात्पर्य स्पष्ट ही है। संघशक्ति से समाज में जो एकता पाई जाती है, उससे उस समाज में इतना बल बढ जाता है कि, उस के सामने कोई शत्रु ठहर नहीं सकता। जो अपनी राष्ट्रीयता का विकास करना चाहते है, उन को इस मंत्र से बहुत ही बोध मिल सकता है। जो राष्ट्र अपनी संघशक्ति बढावेगा, उस की शक्ति भी वैसी प्रचंड हो जायगी।

विश्वचर्षणिः= विश्वे चर्षणयो मनुष्या रक्षणीया यस्य।
(ऋ० सायणभाष्य ५ ६-२)

'सब मनुष्य जिस के रक्षणीय हैं, उस का नाम विश्वचर्षणि है।' यह सार्वमानुष अग्नि है। सब मनुष्योंका संघ ही यह अग्नि है। इसी प्रकार सर्व मनुष्यों के संघ के दर्शक शब्द वेद में बहुत है, देखिये—

विश्व+कृष्टि = सर्व मनुष्य, सब कृषि करनेवाले।
विश्व+चर्षणिः= ,, ,, ,, ,, ,,
विश्वायुः (विश्व+आयुः)= सब मनुष्य (पूर्णायुषी मानव)।
विश्व+जन्यः= सब जनों के संबंध से उत्पन्न।

पांच+जन्यः= पंच जनों के संबन्ध से उत्पन्न। ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य,शूद्र और निषादोंके संघ से बननेवाला एक राष्ट्र।
विश्व+मानुषः= सब मनुष्यों से बना हुआ संघ।
विश्वा+नरः / वैश्वा+नरः = संपूर्ण मनुष्यों का संघ, अथवा सब का नेता।
सर्व+पुरुषः= सब पुरुषों से युक्त।

इन सब वैदिक शब्दों का भाव अत्यन्त स्पष्ट है। इसलिये इन का अधिक स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता नहीं। तथा अग्निदेवता से भिन्न अन्य देवों के मंत्रों में जो इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है, उन का यहां अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। जो शब्द अग्निसूक्तों में आ गये है, उन का विचार इस के पूर्व किया ही है। उसमें दिये मन्त्रों से '**सर्व-जन-सङ्घ**' की वैदिक कल्पना पाठकों के मन में आ चुकी होगी। यही संघात्मक अग्नि है, अथवा इस को राष्ट्रीय अग्नि भी कह सकते है। अस्तु। इस प्रकार हमने देखा कि, (१) एक मनुष्य भी अग्नि है और (२) मानवसंघ भी एक प्रकार का अग्नि है। यह स्पष्ट ही है कि, यदि एक मनुष्य अग्निरूप है, तो उस का संघ भी अग्निरूप ही होना चाहिये, तथा जो संघ अग्निरूप होगा, उस का एक अवयव भी अग्निरूप ही होना चाहिये। तात्पर्य, मनुष्य और मानवसंघ ये दोनों अग्निरूप हैं। यही '**वैश्वानर अग्नि**' है। देखिये इस का वर्णन—

वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिः॥ (ऋ० १-५९-७)

'वैश्वानर अग्नि अपने महत्व से सब-मनुष्य ही है।'

इस से वैश्वानर अग्नि की उत्तम कल्पना हो सकती है। सब मनुष्यों का जो एक संघ है, वही वैश्वानर है। 'विश्वनर' शब्द का अर्थ 'सब-मनुष्य' ऐसा ही है, वही भाव वैश्वानर शब्दसे व्यक्त होता है। इसका और वर्णन देखिये-

(१२) जनता का केंद्र।

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते॥ वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययन्थ॥ (१७१७; ऋ० १-५९-१)

'हे अग्ने! (ते अन्ये अग्नयः) वे दूसरे अग्नि (त्वे) तेरे अन्दर (वया इद्) शाखाओं के समानही हैं। वे सब अमृत अग्नि तेरेसे ही (मादयंते) हर्षित होते हैं। हे वैश्वानर अग्ने! तू (क्षितीनां नाभिः) सब मनुष्यों का केंद्र है। तू (स्थूणा इव) स्तंभ के समान (जनान्) सब जनता का तू आधार है।'

अग्नि का अर्थ एक मनुष्य और वैश्वानर का अर्थ मनुष्य-संघ। ये अर्थ पहले बताये ही हैं। ये अर्थ लेकर इस मंत्र का भाव निम्न प्रकार होता है। 'हे मानवसंघ! ये सब मनुष्य तेरी शाखायें ही हैं। तेरे आधार से ही ये सब मनुष्य अमर बने हैं। तू सब जनताका केंद्र है। जिस प्रकार स्तंभ आधार देता है, उस प्रकार तू ही इन सब का आधार है।'

(१३) समाज का अमरत्व।

संघ, समाज अथवा राष्ट्र सब मनुष्यों का आधार है, सब का केंद्र है, सब का उपास्य और सब का आधार है। सब मनुष्य संघभाव से ही अमर होते हैं। यद्यपि एक एक व्यक्ति मरती है, तथापि जाति अमर होती है।

सम्भूत्याऽमृतमश्नुते॥ (वा० य० ४०।११)

'(सं+भूत्या, एकीभूय संस्थित्या) संघभाव से अमरत्व प्राप्त होता है।' यही भाव पूर्वोक्त मंत्र में स्पष्ट शब्दों से कहा है, देखिये- (१) सब अन्य मनुष्य राष्ट्र-पुरुष की शाखायें है, राष्ट्रपुरुष वृक्ष है और जनता उसकी फैली हुई शाखायें हैं। (२) राष्ट्र के आधार से सब जनता अमर है, यद्यपि एक एक व्यक्ति मरती है, तथापि राष्ट्र अमर है। (३) राष्ट्रही सब जनता का केंद्र हैं, (४) राष्ट्रही सब जनता का आधारस्तंभ है। वैश्वानर का अर्थ ठीक समझने से वेदमन्त्रों के अर्थ इस प्रकार सुगम हो जाते हैं। वैश्वानर की उत्पत्ति के विषय में निम्न मंत्र देखिये—

तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय॥ (१७१८; ऋ० १।५९।२)

'हे वैश्वानर! तुझे देवों ने देव बनाया है, क्योंकि तू आर्यों के लिये ज्योति है।' मानवसंघरूपी यह देव देवों के द्वारा इसलिये निर्माण हुआ कि, यह आर्यों के लिये उन्नति का मार्ग बतानेवाला दीप बने। अर्थात् इसके तेज से अपनी उन्नति का मार्ग आर्य देख सकते हैं, और चल कर अभ्युदय प्राप्त कर सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि, सब आर्यों को अपने पञ्चजनरूपी राष्ट्र को ही

देव मानना चाहिये और उसके साथ अपनी उन्नति प्राप्त करनी चाहिये। तथा–

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि। या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा॥ (१७१९; ऋ० १।५९।३)

'जिस प्रकार सूर्य में किरणे स्थिर हैं उसी प्रकार इस वैश्वानर अग्नि में धन स्थिर हैं। जो धन पर्वतों औषधियों और मनुष्यों में हैं, उन सब का तू राजा है।''

(१४) सब धन संघका ही है।

सब धन मानवसंघ का ही है। उस पर किसी व्यक्ति का अधिकार नहीं है। जो धन पर्वतों में, वृक्षों और वनस्पतियों में, तथा मनुष्यों में अथवा भूमि आदि में है, वह सब मानवसंघ का ही है। व्यक्ति के पास जो धन है, वह भी उस व्यक्ति को, प्रसग आने पर, संघ के चरणोंपर न्योछावर करना आवश्यक है। मनुष्यों के पास तन, मन, धन जो कुछ है, वह सब जाति का ही है, इसलिये योग्य समय आते ही श्रेष्ठ पुरुष अपने सर्वस्वकी आहुति राष्ट्र-पुरुष की पूजा करने के लिये अर्पण कर देते है। क्योंकि वही सर्वस्व का सच्चा राजा है। देखिये—

स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः॥ (१७२०; ऋ० १।५९।४)

'(सु+अर्वते) उत्तम हलचल करनेवाले, (सत्य+शुष्माय) सच्चे बलवान् (नृ+तमाय) अत्यंत मनुष्यों से युक्त (वैश्वा+नराय) सब मानवसंघ के लिये (पूर्वीः) सनातन (यह्वीः) बडी प्रशसा होती है।' अर्थात् जो पंचजन मानवसघ किंवा राष्ट्र उत्तम हलचल करता है, सच्चा बल रखता है और सख्या में अत्यंत अधिक मनुष्यों से युक्त है, वही प्रशंसनीय है। इसलिये राष्ट्रीय उन्नति चाहनेवालों को चाहिये कि, वे (सु+अर्वत्) अच्छी हलचल करें, (सत्य+शुष्म) सच्चा बल प्राप्त करें, (नृ+तमः) अपने मनुष्यों की संख्या अधिक से अधिक बढावे, ऐसा करने से ही उनकी सर्वत्र प्रशंसा होगी। तथा और देखिये—

दिवश्चित्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्ररिरिचे महित्वम्॥ राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ॥ (१७२१; ऋ० १।५९।५)

'हे जातवेद वैश्वानर! तेरी महिमा बडे द्युलोक से भी अधिक फैली है। तू (मानुषीणां कृष्टीनां) मानवी प्रजाओं का राजा है। युद्ध से तूही देवों के लिये धन देता है।'

मानवी संघ की महिमा सब से बडी है। वही संघ मानवों का राजा अर्थात् सच्चा राजा है। युद्ध में विजय इसी के कारण होता है। राष्ट्रीय भावना से, जातीय महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित हो कर जो युद्ध करते हैं, उनका ही विजय होता है। देश के हित के लिये लडने का उपदेश इस मन्त्र से सूचित होता है। इस प्रकार इस सूक्त में मानव-सघ का स्वरूप बताया है। यही वैश्वानर अग्नि है। इसका और वर्णन देखिये।

(१५) संघ के विजयमें व्यक्ति का जय।

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यं। वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः। (१७८५; ऋ० ६।८।६)

'हे वैश्वानर अग्ने! हमारे (मघ+वत्सु) धनिकों में उत्तम वीर्ययुक्त क्षात्र तेज धारण कर। तेरे संरक्षणों से हम सब सौ अथवा हजारों सैनिकों के साथ हमला करनेवाले शत्रु को भी पराजित करेंगे।'

मानवसंघ के प्रेमसे लडनेवालोंको इस प्रकार बल प्राप्त होना स्वाभाविक ही है। जो अपने राष्ट्रहितके लिये जागते हैं,उनसे ही राष्ट्रकी उन्नति होती है, इस विषयमें कहा है–

वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः॥ (१७९४, ऋ० ७।५।१)

'मानवसंघरूप अग्नि जागनेवालोंके द्वाराही बढता है।' जो लोग अपनी जातीय उन्नतिके लिये जागते हैं, वेही अपनी जातीय अथवा राष्ट्रीय उन्नति सिद्ध करते हैं। अस्तु। इस प्रकार सर्व मनुष्यों के संघरूप अग्नि का वर्णन वेद में है। इतने स्पष्टीकरण से पाठकों को पता लगा ही होगा कि, जिस प्रकार एक मनुष्य-विशेषतः पहिला मनुष्य-अग्नि है, उसी प्रकार मानवसमाज भी अग्नि है। इसीलिये धर्म-कर्मों में एक मनुष्य के साथ अग्नि उपासना का सम्बन्ध आता है; अग्निकार्य, हवन, आदि धार्मिक विधियों में वैय-क्तिक अग्नि की उपासना है। तथा सामाजिक, जातीय, राष्ट्रीय अथवा सामुदायिक अग्निपूजा भी सामाजिक अग्नि की द्योतक है इस। सामुदायिक पूजा का रूप अग्निष्टोम

ज्योतिष्टोम, अश्वमेध, वाजपेय आदि महान् यज्ञों में दिखाई देता है। व्यक्तिगत अग्नि तथा सामुदायिक अग्नि जो कुडों में जलाया जाता है, वह सब के मनों का केंद्रीकरण करने के लिये ही है। वास्तविक उस का स्वरूप वैयक्तिक और सामुदायिक दृष्टि से जो वेदमन्त्रों में है, वह ऊपर बताया ही है। अब वैयक्तिक अग्नि की और आधिक खोज करने की आवश्यकता है, इसलिये निम्न मन्त्र देखिये—

(१६) बुद्धि में पहिला अग्नि।

अग्निं वो देवयज्ययाग्निं प्रयत्यध्वरे॥ अग्निं धीषु प्रथममग्निमर्वत्यग्निं क्षैत्राय साधसे। (१४२०;ऋ.८-७१-१२)

'(१) (देव-यज्यया) देवों के यज्ञ से आप के पास एक अग्नि है। (२) (अध्वरे प्रयति) यज्ञ की प्रगति में एक अग्नि है। (३) (धीषु प्रथम अग्नि) बुद्धियों में पहला एक अग्नि है। (४) (अर्वति अग्नि) हलचल करनेवालेमें एक अग्नि है। (५) (क्षैत्राय साधसे अग्नि) भूमिकी प्राप्ति करानेवाला एक अग्नि है। इन सबकी पूजा मैं करता हूं। ' इस मंत्र में पांच प्रकार की अग्नियों का वर्णन है। इन में एक अग्नि है, जो यज्ञकुंड में प्रदीप्त होता है। दूसरा अग्नि बडे बडे अध्वरों में जलता रहता है। तीसरा अग्नि मनुष्यों की बुद्धि में है, जिस की चेतना से मनुष्य धारणाशक्ति के कार्य करता है। चौथा अग्नि सामुदायिक हलचल करनेवालों में होता है। इसलिये इनकी हलचल से जनता में एक प्रकार की आग जलती हुई दिखाई देती है। पांचवां अग्नि क्षत्रियों में जलता है और उस के कारण वे अपने राज्य का विस्तार करते रहते हैं। इन पांच अग्नियों में पहले तीन अग्नि ब्राह्मण्य के साथ विशेषतः सम्बन्ध रखते हैं और आगे के दो अग्नि क्षत्रियों के साथ विशेष कर सम्बन्ध रखते हैं। जो पाठक इस मंत्र का विचार करेंगे, उन को ' अग्नि ' शब्द के व्यापक भाव का पता लग सकता है। हवनों और यागों में जलनेवाला अग्नि और है, और मानवी बुद्धियों में जलनेवाला ' **ज्ञानाग्नि** ' उससे भिन्न है। इस ज्ञानाग्नि को प्रदीप्त करने की और उस में ज्ञान के हवन की विधि भी भिन्न ही है। हलचल कर के सामुदायिक जीवन पैदा करनेवालों में तथा राज्य-विस्तार करनेवाले क्षत्रियों के जोश में जो अग्नि होता है, वह और ही है। विचारकी दृष्टिसे इन अग्नियोंकी निश्चित कल्पना करनी चाहिये। हवनों और यज्ञों में प्रयुक्त होनेवाले अग्नि को सब जानते ही हैं। इसलिये उसका अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। बुद्धि में जो अग्नि किंवा ज्ञानाग्नि बसता है, उस का विचार करना चाहिये। इस अग्नि स्वरूप ' चित् ' है। सत्, चित्, आनन्द में यही चित् है, यही आत्मा नाम से प्रसिद्ध है। इस के स्वरूप का वर्णन निम्न प्रकार है—

(१) ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव॥ (बृ १-५-३)

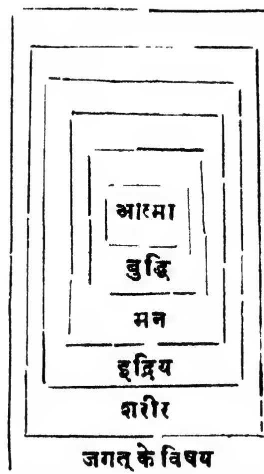
(२) धियो यो नः प्रचोदयात्।

(बृ. ६-३-६) (ऋ. ३-६२-१०)

(३) **इंद्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥** (कठ० ३-१०)

(४) **इन्द्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥** भ.गी. ३-४२)

'(१) (ह्री) नम्रता, (धीः) बुद्धि, (भी) भीति जो अधर्म से उत्पन्न होती है, यह सब मन ही है। (२) जो हमारी बुद्धियों को प्रेरणा करता है। (३) इंद्रियोंसे परे अर्थ हैं, अर्थोंसे मन परे है, मन से बुद्धि परे है और बुद्धि से महान् आत्मा परे है। (४) विषयों से परे इंद्रिय, इंद्रियों से परे मन, मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे वह है। ' बुद्धि के अन्दर, परन्तु बुद्धि से परे, जो अग्नि है, वह आत्माग्नि ही है। इस की स्थिति साथ-वाले चित्र में बताई है।



यह आत्माग्नि बुद्धि की वेदीमें प्रज्वलित होता है। मन आदि इंद्रियां इसी में विविध ज्ञान-संस्कारों का हवन कर रही हैं और इस प्रकार यह ' **ज्ञानयज्ञ** ' चल रहा है। बुद्धि के अंदर जो चिद्रूप पहिला अग्नि है, वह यही आत्माग्नि है। मनुष्यको इसी आत्माग्नि का प्रज्वलन करना चाहिये। यही आत्मशक्तिका विकास

कहलाता है।

सामुदायिक हलचल करनेवालों में तथा राज्य बढाने- वालों में जो उत्साही क्षात्राग्नि होता है, वह क्षत्रियों के इतिहास में सुप्रसिद्ध है। यह भी क्षात्रबुद्धि मे वसता है और क्षत्रियों को सुस्त रहने नहीं देता। अस्तु। ये सब अग्नि केवल 'आग' के स्वरूप के ही नहीं हैं, प्रत्युत मानवी बुद्धि के ये शक्ति-विशेष हैं। आत्मा बुद्धि के अन्दर बैठा हुआ, बुद्धि मन तथा इंद्रियादिकों में विशेष शक्ति की प्रेरणा करता है। ब्राह्म प्रवृत्ति, क्षात्र- प्रवृत्ति तथा अन्य प्रवृत्तियां इसी से निष्पन्न होती है। इस लिये यही आत्माग्नि मुख्य है और अन्य गौण अग्नि बहुत से हैं। इन सब का मूल बुद्धि में जो पहला प्रवर्तक आत्मा है, उसी में है। इस आत्माग्नि का और वर्णन देखिये—

(१७) पहिला मननकर्ता अग्नि।

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोताऽस्या धियो अभवो दस्म होता। त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै॥ (९३९, ऋ० ६।१।१)

'हे अग्ने! (त्वं प्रथम. मनोता) तू पहिला मनन- कर्ता है। हे (दस्म) दर्शनीय! (अस्या. धियः होता अभव.) इस बुद्धि का हवनकर्ता तूही है। हे (वृषन्) बलवान्! तू (सीं) सब प्रकार से (दुस्+तरीतु) पार होने के लिये कठिन (सहः) बल (विश्वस्मै सहसे) सब बलवान् शत्रु को (सहध्यै) पराजित करने के लिये धारण (अकृणोः) करता है।'

इस मंत्र में 'अग्नि' का विशेषण 'मनोता' है। श्री सायणाचार्य इस शब्द का अर्थ- **देवानां मनः यत्र ऊतं संबद्धं भवति तादृशः** ' अर्थात् देवों का मन जिसमें संबंधित होता है,' ऐसा करते हैं। देव शब्द का एक अर्थ इंद्रियगण है। इंद्रियों का मन आत्मा में संबंधित होता है, इसका सचित्र वर्णन इस से पूर्व किया ही है। इससे स्पष्ट होता है, '**मनोता अग्नि**' वही आत्मा है कि, जिस से मन आदि सब इंद्रियां संबंधित होतीं हैं। इस विषय में ऐतरेय ब्राह्मण में निम्न प्रकार कहा है—

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतेति।...तिस्रो वै देवानां मनोतास्तासु हि तेषां मनांस्योतानि। वाग्वै देवानां मनोता, तस्यां हि तेषां मनांस्योतानि। गौर्वै देवानां मनोता, तस्यां हि तेषां मनांस्योतानि। अग्निर्वै देवानां मनोता, तस्मिन् हि तेषां मनांस्योतान्यग्निः सर्वा मनोता, अग्नौ मनोताः संगच्छन्ते॥ (ऐ० ब्रा० २।१०)

'देवों के तीन मनोता है। वाणी देवों की मनोता है, क्योंकि उसमें देवों का मन संबधित होता है। गौ देवों की मनोता है, क्योंकि उसमें उनके मन संबंधित होते हैं। अग्नि देवों की मनोता है, क्योंकि उसमें सब देवों के मन संबंधित होते है। अग्नि ही सब मनोता है, क्योंकि अग्नि में ही सब मनोता संगत होते हैं।' अग्नि, सूर्य आदि देवों का सम्बन्ध जैसा परमात्मा से है, उसी प्रकार वाणी, नेत्र, कर्ण आदि इंद्रियों का सम्बन्ध शरीर में जीवात्मा के साथ है। दोनों का तात्पर्य यही है कि, देवों का आत्माग्नि से नित्य सम्बन्ध है। यही आत्माग्नि अत्यंत बलवान् है और सब शत्रुओं को दूर करने की अनिवार्य शक्ति अपने अन्दर धारण करता है। सब बलवानों से यह अधिक बलवान् है और इसके समान किसी अन्य का बल नहीं है। अपनी आत्मा का यह सामर्थ्य है। यह विश्वास हरएक वैदिकधर्मी मनुष्य के अन्दर स्थिर होना चाहिये, क्योंकि प्रत्येक प्राणी के अन्दर यह शक्ति विद्यमान है।

(१८) मनुष्यमें अग्नि।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः॥ यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशे विशे॥ (६९३, ऋ० ४।७।१)

'यह (प्रथमः) पहला (होता) हवनकर्ता यज्ञ में अत्यन्त पूज्य धाताओं द्वारा यहां रखा है। जिस को (अप्नवानो भृगवः) कर्मकुशल भृगु (विशे विशे विभ्वं) प्रत्येक मनुष्य के लिये विशेष प्रभावसंपन्न और (वनेषु चित्रं) वंदनीय पदार्थों में विलक्षण देखकर (विरुरुचुः) विशेष तेजस्वी करते रहे।' अर्थात् यह अग्नि प्रत्येक मनुष्य में है और विशेष प्रभाव से युक्त है। यद्यपि प्रत्येक मनुष्य छोटासा है, तथापि उस की आकृति के अनुसार यह आत्मा तुच्छ नहीं है। छोटेसे छोटे प्राणीमें भी यह विशेष प्रभाव- युक्त है और सबसे पहला पूजनीय है। मनुष्य के जीवन में इस आत्मशक्ति का विकास करने का ही मुख्य कर्तव्य है। प्रत्येक मनुष्य में जो आत्माग्नि है, उस का उत्तम और स्पष्ट

वर्णन इस मंत्र में हुआ है। मर्त्य मनुष्यों में जो अमर तत्त्व है, वह यही है, यह बात निम्न मंत्र में देखिये—

(१९) मर्त्यों में अमृत अग्नि।

अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु। अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा वर्धमानः॥ (१७९०, ऋ. ६-९-४)

'(अयं प्रथमः होता) यह पहिला हवनकर्ता है। (इमं पश्यत) इस को देखिये। (मर्त्येषु इदं अमृतं ज्योति) मर्त्यों में यह अमर ज्योति है। (स. अयं ध्रुवः जज्ञे) यह स्थिर प्रकट हुआ है। (तन्वा सह वर्धमान अमर्त्यः) शरीर के साथ बढनेवाला अमर (आनिषत्त.) प्रकट हुआ है।' इस में स्पष्ट शब्दों से कहा है कि, यह (मर्त्येषु अमृतं ज्योति = He is light immortal in the mortal men) मर्त्यों में अमर तेज है। मरणधर्मवाले देहों में यह एक न मरनेवाला तेज है, इस का वर्णन गीता में देखिये—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः॥
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥ १८॥
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो।
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥२०॥
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय। नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि॥ तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥२२॥
देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत॥३०॥
(भ. गी. २)

'कहा है, कि जो शरीर का स्वामी (आत्मा) नित्य अविनाशी और अचिंत्य है, उसे प्राप्त होनेवाले ये शरीर नाशवान् हैं। अत एव हे भारत! तू युद्ध कर॥१८॥ यह आत्मा अज, नित्य, शाश्वत और पुरातन है, एवं शरीर का वध हो जाय, तो वह मारा नहीं जाता॥२०॥ जिस प्रकार कोई मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोडकर नये ग्रहण करता है, उसी प्रकार देही अर्थात् शरीर का स्वामी आत्मा पुराने शरीर त्याग कर दूसरे नये शरीर धारण करता है॥२२॥ सब के शरीर में यह शरीर का स्वामी सर्वदा अवध्य अर्थात् कभी वध न किया जानेवाला है'॥३०॥

यह गीता का कथन पूर्वोक्त मंत्र के कथन का ही विस्तार है। '**मर्त्यों में यह अमर ज्योति है।**' इस बात की सचाई हरएक मनुष्य के अनुभव में भी है। अनेक शास्त्र यही बात कह रहे है। वेद कहता है कि, (**इमं** पश्यत) इस को देखिये। इस आत्मा की ज्योति का साक्षात्कार करना मनुष्य का कर्तव्य है। मनुष्य अपने आप को शरीररूप समझकर मरनेवाला न समझे, परन्तु आत्मरूप से अपने आप को अमर समझे। वेद का यह उपदेश विशेष रीति से देखनेयोग्य है। वेद कहता है कि, यह 'ध्रुव' है। इसी का वर्णन वेद में अन्यत्र '**स्थाणु, स्कम्भ, स्थूण**' आदि नामों से किया है। इस मंत्र में '**अमर्त्य· तन्वा वर्धमानः।**' अर्थात् '**यह अमर शरीर के साथ बढता है,** ऐसा कहा है,' इसका तात्पर्य यह है कि, '**यह अमर होता हुआ भी मर्त्य शरीर के साथ बढता है।**' यह बताता है कि, यह आत्मा ही है। अजर, अमर और अजन्मा आत्मा जीर्ण होनेवाले, मरनेवाले और जन्म को प्राप्त होनेवाले शरीर के साथ बढता है, अथवा ऐसा दिखाई देता है कि, यह शरीर के साथ बढ रहा है। वास्तविक तत्त्वज्ञान की दृष्टि से देखा जाय, तो न यह शरीर के साथ जन्मता है, न जीर्ण होता है और न मरता है। परन्तु सामान्य दृष्टि से ऐसा भासमान हो रहा है। इस परका सायणभाष्य देखिये—

(२०) जाठराग्नि।

मर्त्येषु मरणस्वभावेषु शरीरेषु अमृतं मरणरहितं इदं वैश्वानराख्यं ज्योतिः जाठररूपेण वर्तते। अपि च सोऽयमग्निः ध्रुवो निश्चल आ समंतान्निषण्णः सर्वव्यापि अतएवामर्त्यो मरणरहितोऽपि तन्वा शरीरेण सम्बन्धाज्जज्ञे॥ (ऋ. सायणभाष्य ६-९-४)

'मरनेवाले शरीरोमें मरणधर्मरहित वैश्वानर नामक तेज जठराग्नि रूप से रहता है। यह ध्रुव सर्वव्यापक अमर होता हुआ भी शरीर के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है।' अस्तु। यह मंत्र मर्त्यों में जो अमर अग्नि का स्वरूप है, उस का स्पष्टीकरण कर रहा है। यही वेदप्रतिपाद्य मुख्य अग्नि है। श्री सायणाचार्य पूर्व मंत्रोक्त अग्नि को जाठराग्नि कहते हैं, तथा निम्न मंत्र में भी उन के मत से जाठराग्नि का ही वर्णन है—

मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम्। नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावं ॥ (३४८, ऋ. १-१४८-१)

सायणभाष्य-देवाः मनुष्यासु मनोरपत्यभूतासु विक्षु प्रजासु प्राणिषु वपुषे स्वरूपाय शरीरधारणाय जाठराग्निरूपेण निदधुः स्थापितवत. ॥

'(होतारं) हवनकर्ता (विश्व-अप्सुं) विश्वरूपी, नाना रूप धारण करनेवाले (विश्व-देव्य) सब देवों से युक्त (ईं-एनं) इस आत्माग्नि को (विष्ट मातरिश्वा) व्यापक प्राण (मथीत्) मंथन से उत्पन्न करता है। (य) जिस को देव (मनुष्यासु विक्षु) मानवी प्रजाओं में (वपुषे) शारीरिक स्वरूप के लिये (निदधुः) धारण करते हैं। (न) जिस प्रकार (चित्रं विभावं स्व.) विचित्र प्रभावशाली दीप घर मे रखते है। '

शरीररूपी घरमें यह आत्माका दीप देवोने जगाया है। देखिये इस दीपको और इसका प्रकाश फैलाइये। यद्यपि श्री सायणाचार्यजी के मत से ये दोनों मंत्र जाठराग्निका वर्णन कर रहे हैं, तथापि इस विषयमें मतभेद होना सभव है। ऋ० ६।९।४ यह मंत्र पहिले दिया ही है। इस का अर्थ श्री० स्वा० दयानंद सरस्वतिजीने आत्मा परमात्मापरक लगाया है। मंत्रका स्पष्टार्थ निःसंदेह आत्माकाही भाव बता रहा है। यहां श्री सायणाचार्यजी का मत देनेका उद्देश्य इतनाही है कि, ये भी इसका अर्थ आग नहीं करते, परन्तु '**मनुष्यकी पाचक शक्ति**' कर रहे है। पहलेसेही हमारा कथन रहा है कि, अग्निका मुख्य भाव मानवी शरीरमें दिखा देनेका वेद का मतव्य है और वह वेदमंत्रों में विविध प्रकारके वर्णनोंसे बताया गया है।

मान लीजिये कि, उक्त मंत्रों में पाचक जाठराग्निका वर्णन है, परन्तु विचार करनेपर उसके पीछे आत्माका अस्तित्व माननाही पडेगा, क्योंकि वह आत्माही इस शरीर में सब कार्य कर रहा है, वही कान से सुनता और आंखसे देखता है, इसी प्रकार वही पेटमें अन्नका पचन कर रहा है। वही वाणी के मूलमें है और शब्द बोल रहा है, देखिये—

(२१) वाणी के स्थानमें अग्नि ।

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेळस्पदे मनुषा यत्समिद्धः। श्रियं वसानो, अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी॥ (४०९,ऋ०२।१०।१)

'(जोहूत्रः) उपास्य अग्नि (प्रथमः पिता इव) पहला पिता जैसा जो है, वह (इळः पदे) वाणीके पदोंमें (मनुषा समिद्धः) मनुष्यने प्रदीप्त किया है। यह (श्रियं वसानः) शोभा देनेवाला अमर (विचेता) विशेष चेतन (मर्मृजेन्यः) शुद्धता करनेवाला (श्रवस्यः) प्रसिद्ध है और वही (वाजी) बलवान् है।'

वाणी के पदोंमें, वाचा के मूलस्थान में यह अमर चेतन अग्नि है। यही सबसे बलवान् प्रेरक है। विशेष चेतन, विशेष चित्तसे युक्त अथवा चित्स्वरूप यह अग्नि है। चित्स्वरूप होनेसे यही आत्मा है, यह बात सिद्ध होती है। आत्मा चित्स्वरूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप है और वही वाणी के पदों के मूल में विराजमान होता है। क्योंकि यहां '**आत्मा बुद्धिके साथ मिलकर मनके द्वारा प्राण को संचारित करके नाना प्रकारके शब्द उत्पन्न करता है।**' (पाणिनी-शिक्षा)। यह वर्णन यहां देखनेसे मंत्र का भाव स्पष्ट हो जाता है। और देखिये—

(२२) दिव्य जन्मकर्ता अग्नि ।

दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ॥ होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥ (११५; ऋ० १।५८।६)

'हे अग्ने' भृगु (दिव्याय जन्मने) दिव्य जन्मके लिये (चारुं रयिं न) उत्तम धनके समान (मानुषेषु आ दधुः) मनुष्योंमें धारण करते रहे है। ऐसा तू (मित्रं शेवं न) सेवनीय मित्र के समान, (होतारं) दाता, (अ-तिथि) जिसकी आनेजानेकी तिथि निश्चित नहीं है, ऐसा (वरेण्य) श्रेष्ठ है।'

दिव्य जन्मकी प्राप्तिकी इच्छासे श्रेष्ठ लोग मनुष्योंमें इस अग्निकी धारणा करते हैं। इसकी धारणा करनेसे वह संतुष्ट होता है और उनका जन्म दिव्य करता है। यह अग्नि वैसा धारण किया जाता है कि, जैसा अत्यत श्रेष्ठ धन धारण करते हैं। मनुष्यमें सबसे श्रेष्ठ धन किंवा (रयि) श्रेष्ठ शोभा 'आत्मा' ही है। यदि इस मानवी शरीरमें आत्मा न रहा, तो अन्य धन और अन्य शोभाएं कुछ भी कार्य नही कर सकतीं। जिस से धनका धनपन रहा है और जिसकी शोभासे शोभा सुशोभित हो रही है, वही सच्चा धन और सच्ची शोभा है। यही धनका धन आत्माही है। सब जानते ही हैं कि, यह आत्मा '**अ+तिथि**' है, क्योंकि

इसकी शरीरमें आनेकी और शरीर छोडकर चले जानेकी तिथि निश्चित नहीं है। यही सेवा करनेयोग्य सखा मित्र है, क्योंकि यही सबका मान्य कर रहा है। इसलिये इसकी शक्तिकी धारणा सबको करनी चाहिये। क्योंकि इसकी शक्तिका चिंतन करनेसे ही अपनी शक्तिका विकास हो सकता है। कोई अन्य मार्ग नहीं। इसकी धारणा करनेसे शक्तिकी वृद्धि होती है। इसका कारण यह है कि, यह उपासकको विलक्षण शक्तियां देता है, देखिये—

(२३) शक्ति प्रदाता अग्नि।

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभि पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः॥ रथो न विक्ष्वृंजसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति॥ (११२, ऋ०१।५८।३)

'(वसुभिः रुद्रेभिः पुरोहितः) वसुओं और रुद्रोंने जिसको अग्रभागमें रखा है, इस प्रकारका यह (क्राणा) कर्ता, (होता) दाता, आह्वाता, (निषत्तः) व्यास, (रयि+षाट्) धनके साथ रहनेवाला, (अ-मर्त्यः) अमर देव, (रथो न) रथके समान, (विक्षु आयुषु) प्रजाजनोंमें, (ऋंजसानः) आगे बढनेवाला प्रेरक (वार्याणि) विविध शक्तियाँ (आनुषक् वि ऋण्वति) प्राप्त कराता है।'

इस मन्त्रमें शक्तिप्रदान करनेका गुण स्पष्टतापूर्वक कहा है। जो शक्ति इससे मिलती है, वह साधारण शक्ति नहीं है, परन्तु ऐसी विलक्षण शक्ति होती है कि, जो सब (वार्य) शत्रुओंका निवारण कर सकती है। जो शक्ति शरीरमें उत्पन्न होनेसे मनुष्य अपने सब प्रकारके शत्रुओंको दूर भगा देता है। सब अन्य शक्तियोंसे '**आत्मशक्ति**' ही सबसे विशेष प्रभावशाली होती है। आत्मशक्ति के द्वारा अन्य शक्तियोंका उपयोग किया जाता है, तथा आत्माकी दुर्बलता होनेसे अन्य शक्तियाँ कुछ भी कार्य नहीं कर सकतीं, इतनी इस शक्तिकी योग्यता है और यही शक्ति आत्माग्निसे प्राप्त होती है।

(२४) पुरोहित अग्नि। गणराज।

इस मन्त्रमें '**पुरोहित**' शब्दके अर्थका निश्चय हुआ है। '**पुर +हित**' शब्दका अर्थ 'अग्रभागमें रखा हुआ, अग्रेसर, प्रमुख, मुखिया' है। इस अर्थका स्वीकार करनेसे प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि, यह किनका अग्रेसर है, किन्होंने इसको अग्रभागमें अथवा मुख्य स्थानमें रखा है, किनका यह मुखिया है? इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर इस मंत्रमें दिया गया है= (वसुभिः रुद्रेभिः पुरोहितः) वसु तथा रुद्र देवोंने इसको अपना अग्रेसर अथवा मुखिया बनाया है। वसु रुद्र और आदित्य ये '**गणदेव**' हैं। गणदेव वे होते हैं कि, जो अपने संघमें रहते हैं और संघसे ही कार्य करते हैं। संघशक्ति का महत्त्व इन '**गणदेवों**' के द्वारा बताया जाता है। गणदेवों के प्रत्येक संघका एक मुखिया होता ही है, और उस मुखिया को '**पुरो-हित**' कहते हैं, क्योंकि गणोंके सब घटकों द्वारा वह स्वीकृत होता है। यह एक प्रकारकी '**गण-राज-संस्था**' है जो वैदिक मन्त्रोंमें वर्णन की है। इसका व्यापक स्वरूप बतानेके लिये यहां स्थान नहीं है, तथापि इतना कहना आवश्यक है कि, इसके मुखिया को जैसा '**पुरो-हित**' कहते हैं, उसी प्रकार '**गण-राज, गणपति, गणेश**' आदि नाम होते हैं और इसकी अनुमतिके विना कोई गण कोई कार्य कर नहीं सकता। प्रत्येक कार्यमें इसको बुलाया जाता है, इसका सत्कार किया जाता है और इसकी अनुमतिसे ही सब कार्य किये जाते हैं। यद्यपि गणके प्रत्येक व्यक्तिको अपना मुखिया चुननेका अधिकार होता है, तथापि मुखिया चुननेके पश्चात् मुखियाका अधिकार सर्वतोपरि होता है।

इस मंत्रमें वसुगण और रुद्रगण का नाम आया है। अध्यात्मदृष्टिसे 'रुद्र' नाम प्राणोंका है। पंच प्राण और पंच उपप्राण मिलकर दस प्राण मानवी शरीरमें कार्य करते हैं। यही प्राणगण किंवा रुद्रगण हैं। स्थूल शक्तियों के अर्थात् पृथिवी आप तेज आदिकों के गणों का नाम '**वसुगण**' है। इन दोनों गणोंका अग्रेसर मुखिया आत्मा ही है। इन दोनों गणों के सब देवताओंने इस आत्माको ही अपना मुखिया बनाया है। सब कार्य करनेके समय ये सब देवगण इसको अपने अग्रभागमें रखते हैं और इसीसे शक्ति लेकर कार्य करते हैं। यह पुरोहितका भाव पाठकों को यहां ठीक ध्यान में धरना चाहिये।

यह अमर आत्मदेव सब अन्य देवताओं का अग्रेसर है और सब प्रजाओं में बैठा हुआ उन सबको विलक्षण शक्ति देता है। इस दृष्टिसे इस मंत्रका विचार करनेपर आत्माग्नि की ठीक ठीक कल्पना आ सकती है। इसी का और वर्णन देखिये—

(२५) हस्तपादहीन गुह्य अग्नि।

स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ। अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे॥११॥ प्र शर्ध आर्त प्रथमं विपन्यं ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे। स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे॥१२॥ (६३७-३८, ऋ० ४।१)

'(स प्रथमः) वह पहला (पस्त्यासु जायत) प्रजाओंमें हुआ है। तथा वह (अस्य महः रजसः बुध्ने योनौ) इस महान् अंतरिक्षके मूल स्थानमें होता है। यह (अपाद-शीर्षा) पांव सिर आदि अवयवोंसे रहित (अंतः-गुहमानः) अंदर गुप्त है। (वृषभस्य नीडे) वीर्ययुक्त पुरुषके स्थानमें (आ योयुवानः) संघटनाका कार्य करता है, संमेलन का कार्य करता है।' इस मन्त्रका का तात्पर्य यह है कि, सब देवोंमें अत्यंत प्राचीन तथा सबसे पहिला यह देव है, इस महान् अवकाशमें इसका स्थान है। न इसको हाथ हैं और न पांव, न सिर आदि अवयव है। अर्थात् यह अशरीरी निराकार है और सबके अंदर गुप्त अथवा व्याप्त है। शरीररहित होनेके कारण ही यह निरवयव होनेसे सबमें व्याप्त और अव्यक्त है। बलवान् मनुष्यके अंदर यह संमिश्रणका कार्य करता है, अर्थात् निर्बलके अंदर यह भेदन का कार्य करता है। **'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'** (मुंडक० ३।२।४) यह आत्मा बलहीनको प्राप्त नहीं होता, यह तत्त्वज्ञान का सिद्धांत ही है। निश्चयपूर्वक दृढ अनुष्ठानसे ही इसकी प्राप्ति होती है और जिस समय इसकी प्राप्ति होती है, उस समय उस मनुष्यकी शक्ति, शोभा और योग्यता बढ जाती है।

'(ऋतस्य योनौ) ऋतके मूल कारणमें (वृषभस्य नीळे) बलवान् के स्थानमें (प्रथमं विपन्यं) पहले ज्ञानी को (शर्धः प्र आर्त) तेज और बल प्राप्त होता है। यह (स्पार्हः) स्पृहणीय, प्राप्त करने की इच्छा करनेयोग्य, युवा (वपुष्यः) देहधारी, (विभावा) प्रभावयुक्त है। (वृष्णे) इस बलवान् के लिये (सप्त प्रियासः) सात प्रिय देव (अजनयंत) उत्पन्न करते हैं।'

इस मन्त्रके अन्य शब्द पूर्व लेखके अनुसार सुगमतासे ध्यानमें आ सकते हैं, इसलिये उनका विशेष वर्णन करनेकी यहां आवश्यकता नहीं है। पूर्व मन्त्रमें 'अ-पाद-शीर्ष' हस्तपाद आदि अवयवहीन है, ऐसा वर्णन है, परन्तु यहां इस मन्त्रमें 'वपुष्यः' शरीरधारी है, ऐसा है। यद्यपि इसमें परस्पर विरोध दिखाई देता है, तथापि विचारकी दृष्टिसे इसमें कोई विरोध नहीं है। क्योंकि यह आत्माग्नि यद्यपि वस्तुतः शरीररहित है, तथापि इस शरीरको धारण करनेवाला यही है। इसलिये दोनों शब्द इस आत्मामें सुसंगत होते हैं। इस आत्मासेही इस शरीरमें तेज, बल, वीर्य आदि होता है, इसीलिये इसके विषयमें सब ही प्राणी हार्दिक प्रेमभाव रखते हैं, सबको ही यह प्रिय है। इस मन्त्र में 'सात प्रिय देव इसको प्रकट करते हैं,' ऐसा जो कहा है, इसका स्पष्टीकरण इस लेखके अंतिम भागमें होगा। वहांही इसको पाठक देख सकते हैं। (सप्त) सात संख्या का महत्त्व क्या है, इसका पता वहांही पाठकोंको लग सकता है। अस्तु। इस प्रकार इस गुह्य अग्निका वर्णन वेदमन्त्रोंमें है। इससे स्पष्ट होता है कि, यह आत्माग्नि हृदयाकाशमें सब प्रजाओंके अंदर गुह्य रीतिसे विराजमान है। तात्पर्य, 'अग्नि' शब्दसे केवल 'आग' का ही भाव नहीं लिया जाता, परन्तु प्रकरणानुसार अन्य अर्थ भी इस शब्दसे व्यक्त होते हैं। इसका अब और एक विलक्षण रूपक देखिये-

(२६) वृद्ध नागरिक।

अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः॥

(९५८, ऋ० ६।२।७)

'(अधा हि) और तू (नः प्रियः अतिथिः) हमारा प्रिय अतिथि तथा (विक्षु ईड्यः असि) प्रजाओंमें पूजनीय है। जैसा (पुरि जूर्यः रण्वः इव) नगरीमें वृद्ध पुरुष रमणीय होता है, अथवा (सूनु न त्रययाय्य) जैसा पुत्र संरक्षणीय होता है।'

नगरीमें जो सबसे वृद्ध बुजुर्ग होता है, वह सबको वंदनीय होता है। इसी प्रकार यह इस शरीररूपी नवद्वार पुरीमें बहुत समय से रहनेवाला सबसे प्राचीन पूर्वज होनेसे सबको पूज्य है। तथा घरमें जैसा बालक सबको संरक्षणीय होता है, वैसा यहां इस शरीररूपी घरमें यह बालकवत् ही है और इसलिये इसका संगोपन करना और इसकी सब शक्तियोंका विकास करना सबको उचित है।

दोनों उपमाओंमें एक विशेष बात बताई है कि, यह स्वयं अशक्त है और इसलिये दूसरोंकी सहायताकी अपेक्षा करता है। यद्यपि वृद्ध मनुष्य पूज्य होता है, तथापि तरुणोंके साथ उसकी शक्तिका मुकाबला नहीं हो सकता। तथा यद्यपि बालक सुकुमार होनेसे सबको प्यारा होता है, तथापि तरुणोंकी अपेक्षा वह अशक्त ही होता है। यद्यपि वृद्ध और बालक अशक्त होते हैं, तथापि वृद्धमें अनुभवकी शक्ति होनेसे वह सबको वंदनीय होता है और बालक सुकुमार होनेसे तथा सब शक्तियोंको बीजवत् अपने अंदर धारण करता है, इसलिये सबको प्यारा होता है। आत्मा इस शरीरके जन्मसे पहिले विद्यमान था, इसलिये शरीरसे वृद्ध है और उसकी संपूर्ण शक्तियोंका विकास होनेवाला है, इस कारण वह बालकवत् ही है। तथा यह आत्मा जो कार्य करता है, यद्यपि अपनी शक्तिसे करता है, तथापि इंद्रियोंद्वारा कराता है, इसलिये इंद्रियोंकी सहायताकी अपेक्षा रहनेके कारण वह वृद्धवत् अथवा बालकवत् दूसरेकी सहायता चाहता है। ये सब रूपकके भाव यहां देखनेयोग्य हैं। अग्निके रूपसे यह आत्माका भाव यहां बताया है। अग्निकी चिनगारी छोटी होनेके कारण जैसी उसकी रक्षा करनी आवश्यक है, परंतु अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होनेके पश्चात् वही चिनगारी बडे दावानल का रुद्ररूप धारण करती है और बडे धुरंधर शत्रुओंको भी डराती है, उसी प्रकार यह आत्मा प्रारंभमें अपने अंदर सब शक्तियां बीजरूपसे धारण करता है, उस समय बडा अशक्तसा प्रतीत होता है, परंतु अनुकूल माता-पिता, गुरु, मित्र आदिकी परिस्थिति प्राप्त होनेके पश्चात् जिस समय यह आत्माका "महात्मा" बनता है, तब यही सबको पूज्य होता है, और इसके तेजसे इसके शत्रुभी डरने लग जाते हैं। इस प्रकार अग्निके साथ इस आत्माकी समानता देखनेयोग्य है। इसका ग्रहण कैसे किया जाता है, इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

(२७) प्रजामें देवताका अनुभव।

अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम्।
अधा हि त्वा जगृभिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम्॥
(६९४; ऋ. ४।७।२)

'हे अग्ने! जब तुझ देवताकी चेतनता हुई, तब ही तुझे सब मर्त्योंने (विक्षु ईड्यं) सब प्रजाओंमें पूजनीयको (जगृभिरे) धारण किया।' अर्थात् जब तेरे चैतन्यका पता लगा, तब मनुष्योंने तेरा ग्रहण किया। आत्माका ग्रहण उस समय होता है कि, जब आत्माकी चेतनशक्ति का पता लग जाता है। विचारशील मनुष्य पहले शरीरमें अनुभव करता है कि, इसमें एक चेतन चालक शक्ति है, तत्पश्चात् उसकी खोज की जाती है और उसका ग्रहण करनेके लिये अनुष्ठानपूर्वक साधन होता है। इसके पश्चात् उसका ग्रहण हो जाता है। यह उसकी अंतिम उन्नतिकी सीमा है। इसका वर्णन देखिये—

(२८) न दबनेवाला।

स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः।
दूतो विश्वेषां भुवत्॥ (७१३; ऋ० ४।९।२)

'वह (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाओंमें (दूळभः दुर्दमः) न दबनेवाला (अमर्त्यः) अमर (प्रावीः) प्रकट हुआ है, वह सबका दूत हो गया है।' इस के पूर्व एक मंत्रमें कहा है कि, यह वृद्धके समान अथवा बालकके समान है। यह प्रारंभिक अवस्था थी। इस प्रारंभिक अवस्थामें इसका बचाव करना आवश्यक होता है। परंतु जिस समय यह अपनी शक्तियोंके उत्कर्षके साथ प्रकट हो जाता है, उस समय यही (दूळभः- दुर्दमः) न दबनेवाला हो जाता है। कितनी भी शक्ति शत्रुकी हो, उसके दबावसे यह दबाया नहीं जायगा, इतनी प्रचंड शक्ति यह प्राप्त करता है। इस मंत्रमें एक विशेष बात कही है। वह यह है कि, यह आत्मा (मानुषीषु विक्षु दूळभः) मानवी प्रजाओंमें ही यह न दबनेवाला बन जाता है, यह अवस्था उसको मानवयोनीमें ही प्राप्त होती है। पशुपक्षियोंकी योनिमें इस प्रकार उन्नति यह प्राप्त नहीं कर सकता। इस विधानसे इस अग्निका आत्मा ही स्वरूप है। यह बात निश्चित होती है, क्योंकि आत्माके विकासकी कर्मभूमि या कुरुक्षेत्र यह मानवयोनि ही है। अन्यत्र ऐसा पुरुषार्थ नहीं हो सकता। यह सबका 'दूत' है। जिस समय श्रद्धाभक्तिसे इसको कहा जाता है कि, यह कार्य ऐसा करो, तो यह वैसा बना देता है। '**मानस-चिकित्सा**' से जो आरोग्य प्राप्त होता है, वह इसी आत्माकी निज शक्तिसे होता है। 'हे आत्मदेव! तुम मुझे आरोग्य दो, इस अवयवमें नीरोगता करो,' ऐसा विश्वासपूर्वक कहनेसे इसकी

शक्ति वहां इष्ट कार्य कर देती है। इसको कहनेसे यह वैसाही कर देता है, इसलिये इसको आज्ञाधारक 'दूत' कहते हैं। अग्निमंत्रोंमें दूत के विषयमें बहुत वर्णन है। प्रसंगविशेषसे भिन्न भिन्न प्रकारका भाव उस वर्णन में है, तथापि उनमें एक भाव यह है, जो यहां बताया है। अन्य भाव स्थान स्थान में बताये जायगे। इस विषय में निम्न मंत्र देखिये—

अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन्।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत॥
(९१४; ऋ ५।२५।४)

'(१) अग्नि देवोंमें प्रकाशता है, (२) अग्नि मर्त्योंमें आवेश करता है, (३) अग्नि हमारा अन्नवाहक है, (४) इसलिये अग्नि की बुद्धियों और कर्मोंसे पूजा कीजिये।'

इस मंत्रमें चार विधान है। अग्नि देवोंमें प्रकाशता है, यह पहिला कथन है। देव शब्द इंद्रियवाचक सुप्रसिद्ध है। इंद्रियोंमें आत्माकी शक्ति प्रकाशित होती है। सब मनुष्यों को इसका अनुभव अपने ही शरीरमें हो सकता है। आंख, नाक, कानोंमें आत्माकी ही शक्ति वहांका कार्य कर रही है। यही आत्माका आवेश मर्त्योंमें है। शरीर स्वयं चेतन नहीं है, आत्माकी शक्तिसे ही इसकी चेतनता है। आत्म-शक्तिका आवेश जब इस शरीरमें होता है, तभी यह मूक शरीर वक्तृत्व करने लग जाता है, जड शरीर दौडने लग जाता है, मुर्दा शरीर सचेतन प्रतीत होता है। यही इस महा-भूत का संचार है, इसीको आवेश कहते हैं। यही आत्माग्नि इस शरीर में अन्न का भोग लेता है और सब इंद्रियोंको पहुंचाता है। प्रत्येक इंद्रियमें एक एक देव बैठा है, वहां उसके पास योग्य अन्नरसको पहुंचानेका कार्य यह करता है, यही उसका 'दूत' भाव है। जिस प्रकार दूत, उसको दिये हुए पदार्थ बांट देता है, ठीक इसी प्रकार यह दूत शरीरस्थानीय देवताओंको अन्नरसका विभाग यथायोग्य रीतिसे बांटता रहता है। इस दूतकर्मसे ही अन्य देव अर्थात् इंद्रियगण पुष्ट होते हैं और अपना अपना कार्य यथायोग्य रीतिसे करते रहते हैं। यह आत्मा इतना कार्य कर रहा है, इसलिये बुद्धियोंद्वारा इसकी उपासना करनी अत्यावश्यक है। यह इस मंत्रका तात्पर्य है। यह जैसा अचेतन देहको सचेतन करता हैं, वैसेही मूकसे वक्तृत्व कराता है, इस विषयमे निम्न लिखित मंत्र देखिये—

(२९) मूकमें वाचाल।

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो निधायि। स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम॥ (११३७, ऋ० ७।४।४)

'(अयं प्रचेताः अग्निः) यह ज्ञानी अग्नि (अ-कविषु कविः) शब्द न करनेवालों में शब्दका प्रवर्तक, (मर्तेषु अमृतः) मरनेवालोंमें अमर (निधायि) रहा है। हे (सहस्-वः) बलवान्! तेरे विषयमें सदा हम (सु-मनसः) मन का उत्तम भाव धारण करेंगे, इसलिये वह तू हमारी (मा जुहुरः) हिंसा न कर।'

इस मंत्रके प्रथमार्धमें आत्माग्निके गुण वर्णन किये हैं। (१) यह आत्माग्नि (अ-कविषु) जो शब्दका उच्चार नहीं कर सकते, जो स्वयं ज्ञानी नहीं है, उनमें (कविः) शब्द का प्रवर्तक और ज्ञानी है। (२) तथा (मर्तेषु) मरनेवालों में यह अमर तत्व है। इस विधानकी सत्यता हमने इससे पूर्व देखी है। मुख जड है, स्वयं मुखसे शब्द नहीं निकल सकता, परन्तु यह जड मुखसे बडा ओजस्वी वक्तृत्व करा सकता है। सब हस्तपादादि अवयव और इंद्रिय मरनेवाले और क्षीण होनेवाले है, उन सबमें यह अविनाशी और अमर है। जो ज्ञानी लोग इसके विषयमें मनमें (सु-मनसः) उत्तम भावना धारण करेंगे, उनकी उन्नति होगी, क्योंकि यह आत्माग्नि अपनी शक्ति उनमें विकसित करता है और उनको तेजस्वी करता है। इसीलिये आत्मनिष्ठ मनुष्योंका तेज सर्वत्र फैलता है। यह आत्माग्नि सच्चा मित्र है और इसीलिये उपासकोंकी सहायता करता है—

(३०) पुराना मित्र।

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्व-रस्य जारं। बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनयंत विक्षु होतारं न्यसादयन्त॥ (१५३१, ऋ० १०।७।५)

'(द्युभिः हितं) तेजस्वियोंके साथ रहनेवाला, (प्रत्नं मित्रं इव प्रयोगं) पुराने मित्रके समान योग्य सहायता देनेवाला, (ऋतु+इजं) ऋतुके अनुकूल कर्म करनेवाला, (अ-ध्वरस्य जारं) सत्कर्म की समाप्ति करनेवाला, अग्नि है। इसको (आयवः) मनुष्य अपने पुरुषार्थसूचक बाहुओंसे प्रकट करते रहे और उस (होतारं) दाताको (विक्षु) प्रजाओंमें रखते रहे।'

यह आत्माग्नि (प्रत्नं मित्रं) पुराने मित्रके समान योग्य समयमें योग्य सहायता करनेवाला है। जो इस आत्माग्नि की यह मित्रता जानते हैं, वेही उसका सच्चा मूल्य अनुभव करते हैं और वेही अपने आपको धन्य धन्य बना सकते हैं। बाहुबलों अर्थात् पुरुषार्थोंसेही उसकी प्रसिद्धि होती है। यह महात्मा ऐसे शुभ कर्म करनेसे जगत् में वंदनीय बना है। योग्य सर्वजन हितकारी पुरुषार्थों से ही प्रशंसा होती है। तात्पर्य यह है कि, निष्ठापूर्वक ज्ञानसे आत्माग्निका अनुभव होता है और सर्वजन हितकारी पुरुषार्थोंसे उसकी प्रसिद्धि होती है। इस प्रकार पुराने मित्रकी उदारता है, इसलिये सबको इसके विषयमें आदर रखना उचित है। अब और इसका अमरत्व देखिये—

(२१) विनाशियोंमें अविनाशी।

अपश्यमस्य महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु॥
(१६३७; ऋ० १०।७९।१)

'(मर्त्यासु विक्षु) मर्त्य प्रजाओंमें (अस्य महतः अमर्त्यस्य) इस महान् अमरका महत्त्व देखा है।' यह अनुभव की बात इस मंत्रमें कही है। सब देह मरनेपर भी यह अमर रहता है। मरणधर्मा शरीरोंमें यह अमर और अविनाशी आत्मशक्ति रहती है। इसीका नाम आत्माग्नि है। तथा—

अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम्।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मंद्रतमो विशि॥
(१४१९, ऋ० ८।७१।११)

'(सहसः सूनुं) सहनशक्तिको बढानेवाले, (जातवेदसं) जिससे ज्ञान और धन की उत्पत्ति हुई है, ऐसे अग्निकी (वार्याणां दानाय) शत्रुनिवारक शक्तियोंके दानके लिये प्रशंसा करता हूं। जो (मर्त्येषु अमृतः) मरणधर्मवालोंमें अमर, (विशि मंद्रतमः) प्रजामें अत्यंत तृप्ति करनेवाला (होता) दाता (द्वि-ता भूत्) दो प्रकारसे होता है।'

(१) यह आत्माग्नि सहनशक्ति अर्थात् शत्रुको दूर भगानेकी शक्ति बढाता है, आत्मिक बलसेही संपूर्ण शत्रु दूर भाग जाते हैं। (२) यह चित्स्वरूप होनेसे इससे ही ज्ञान का प्रवाह चलता है (३) शत्रुता-निवारक धन और शक्ति का प्रदान यही करता है। (४) **'सब मर्त्योंमें यही अमर है,'** और (५) सबको अत्यंत हर्ष देनेवाला भी यही है। (६) इसकी शक्ति स्थूल और सूक्ष्ममें संचारित हो रही है। यह इसका वर्णन स्पष्टतासे इसका आत्मिक स्वरूप व्यक्त कर रहा है। तथा और देखिये—

स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वंदारु वेद्यश्चनो धात्। विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः॥(९७२, ऋ० ६।४।२)

'(वस्तो चक्षणिः न) दिनमें सूर्य जैसा (विभावा) प्रकाशक (वेद्यः) और जाननेयोग्य, वह अग्नि (वंदारु चनः) वंदनीय अन्न (नः धात्) हम सबको देवे। (विश्व+आयु अमृतः) पूर्ण आयु देनेवाला यह अमर (मर्त्येषु उषर्भुत्) मर्त्योंमें ब्राह्ममुहूर्तके समय जागनेवाला (जातवेदाः) ज्ञान का प्रकाशक (अ-तिथिः) जिसकी आनेजानेकी तिथि निश्चित नहीं है ऐसा है।'

सूर्य जैसा सब को प्रकाश देता है, उसी प्रकार यह आत्माग्नि सबको ज्ञानका प्रकाश देता है। इसलिये यह (वेद्य) जाननेयोग्य है। इसकी खोज करनी चाहिये, ऐसा जो कहते है, उसका यही कारण है। (विश्व-आयुः) सब आयु का धारण यही करता है, जबतक यह अमर देव मर्त्य शरीर में रहता है, तब तकही इसकी आयु होती है। जब यह चला जाता है, तब कहते है कि, इसकी आयु पूरी हो गई। इसका तात्पर्य ही यह है कि, सबकी आयु इसके साथही सम्बन्धित होती है। इस प्रकारका यह आत्माग्नि मर्त्योंमें अमर रूपसे रहता है। तथा और देखिये—

स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा विभाति॥ (९८३; ऋ० ६।५।५)

'हे अमृत! वह मर्त्योंमें (प्र-चेता) विशेष ज्ञानसंपन्न (राया) धन और (द्युम्नेन श्रवसा) तेजस्वी यशसे (विभाति) विशेष चमकता है।' अमर आत्माग्निके कारण ही यह यश और यह धनयुक्त तेज इसको प्राप्त होता है, इसलिये यह धन, शोभा, तेज और यश उसीका है और उसीसे सबको प्राप्त होता है। इसलिये इसीकी उपासना प्रातःकाल करनी चाहिये। देखिये—

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति॥
(८८१; ऋ० ५।१८।१)

'(अ-तिथिः) जिसकी आनेजानेकी तिथि निश्चित नहीं है, वह (विशः) सबका निवासक (पुरु+प्रियः) सबको प्रिय अग्नि (प्रातः स्तवेत) प्रातःकाल में प्रशंसित होवे। वह मर्त्योंमें अमर (विश्वानि हव्या) सब अन्नों को (रण्यति) चाहता है।'

यह पूर्वोक्त आत्माग्नि सबको प्रिय है, इससे अधिक प्रिय वस्तु दुनियाभरमें और कोई भी नहीं है। इसलिये इसको 'पुरु-प्रिय' कहते हैं, इस विषयमें उपनिषदों में निम्न प्रकार वर्णन है—

आत्मानमेव प्रियमुपासीत ॥ (बृ० उ० १।४।८)
न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति ॥ ....
न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवंत्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवंति ॥ .....
न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः॥
(बृ० उ० २।४।५)

'आत्माको ही प्रिय मानकर उपासना करनी चाहिये। अरे वित्त के लिये वित्त प्रिय नहीं होता है, परन्तु आत्माके लिये ही वित्त प्रिय होता है। ... देवोंके लिये देवतायें प्रिय नहीं होती हैं, परन्तु आत्माके लिये ही देव प्रिय होते हैं। ... सबके लिये ही सब प्रिय नहीं होता है, परन्तु आत्माके लिये ही सब कुछ प्रिय होता है। इसलिये आत्मा की खोज करनी चाहिये और उसीका श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना चाहिये।' पूर्वोक्त वेदमंत्रमें जो 'पुरु+प्रिय' शब्द है, उसीका यह स्पष्टीकरण है। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें इसीका चिंतन करना चाहिये—

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिंतयेदात्मनो हितं ॥

'ब्राह्म मुहूर्त में उठकर आत्मा का हित करनेका उपाय सोचना चाहिये।' यह आर्योंकी सनातन रीति है। अस्तु।

पूर्वोक्त मंत्रमें कहा है कि, यह आत्मा सब अन्न, (विश्वानि हव्या) सब प्रकारका भक्ष्य चाहता है। इसकी सत्यता देखनेके लिये हरएक योनिके प्राणियोंका निरीक्षण कीजिये। हरएक योनिके प्राणीका भक्ष्य अलग अलग रहता है। प्रायः सब योनियों के प्राणी सब कुछ पदार्थ खाते हैं। इसलिये कहा है कि—

स यद्यदेवाऽसृजत तत्तदत्तुमध्रियत सर्वं वा अत्तीति तददितेरदितित्वं सर्वस्यैतस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवमदितेरदितित्वं वेद ॥ (बृ० उ० १।२।५)
सर्वस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति।
(बृ० उ० २।२।४)

व्रात्यस्त्वं प्राणैक ऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ॥
(प्रश्न उ० २।११)

'उसने जो उत्पन्न किया, वह सब खाने के लिये धर दिया, क्योंकि यह सबका भक्षक है। इसीलिये इसको अदिति कहते है, यह सबका भक्षक है और सब इसका अन्न है। हे प्राण ! तू व्रात्य, एक, ऋषि, सत्पति और सब विश्वका भक्षक है।' यह उपनिषदों का वर्णन पूर्वोक्त मंत्र के साथ देखनेयोग्य है। इस विधानों की तुलना करने से मंत्र का आशय अधिक स्पष्ट होता है और वैदिक कल्पना विशेष स्पष्ट होनेमें सहायता हो जाती है। अस्तु। तात्पर्य यह कि, यह आत्माग्नी ही (अत्ता) भक्षक किंवा सर्वभक्षक है। यह न केवल मर्त्योंका अपितु देवोंका भी हित करता है, इस विषय में निम्न मंत्र देखिये—

(३२) अनेक देवोंका प्रेरक एक देव।

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥ (२३४; ऋ० १।७७।१)

'यह मर्त्योंमें अमर, (ऋता-वान्) सत्य नियमों का पालक, दाता, (यजिष्ठः) पूज्य है, और यह देवोंका हित करता है।' यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि, यह मर्त्य शरीरमें रहता हुआ देवोंका हित कैसा करता है? इस प्रश्नका उत्तर इतनाही है कि, इस शरीरमें ही स्थानस्थानमें अनेक देवताएं अंशरूपसे आकर बैठीं हैं, उनका हित यही करता है। आंखमें सूर्यनारायण है, नाकमें अश्विनी देव हैं, छातीमें मरुत् हैं, इसी प्रकार अन्यान्य स्थानोंमें अन्यान्य देव हैं। इन सब देवगणोका हित यही आत्माग्नि कर रहा है। देवोंका अपने अपने स्थानमें निवास कराना, उनको अन्नरस पहुंचाना, उनसे योग्य कार्य लेना, अपने साथ उनको लाना और ले जाना, उनको हृष्टपुष्ट करना, इत्यादि सब कार्य इसी आत्माग्निके हैं। अग्निसूक्तोंमें स्थानस्थानमें

इस विषय के वर्णन अनेक हैं, उनका विशेष विचार किसी समय हो जायगा। यहां केवल सूचनाके लिये लिखा है। तथापि कुछ थोडे वाक्य देखिये—

[१] स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः॥ य. ३४।५१
[२] स देवषु वनते वार्याणि॥ ऋ. ५।४।३
[३] देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ऋ २।१२।१
[४] देवो देवान् परिभूर्ऋतेन॥ ऋ. १०।१२।२
[५] देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन्॥ ऋ. २।३।१
[६] देवो देवान् यजसि जातवेदः॥ ऋ १०।११०।१
[७] देवो देवान् स्वेन रसेन पृंचन्॥ ऋ ९।९७।१२

'(१) वह देवोंमें दीर्घ आयु करता है। (२) वह देवोंमें शक्तियां देता है। (३) वह देव अपने कर्मसे देवोंको सुभूषित करता है। (४) सत्यसे वह देव देवोंको व्यापता है। (५) अग्नि देव योग्य होनेसे देवोंका यजन करता है, (६) जातवेद अग्नि देव देवोंका यज्ञ करता है। (७) देव अपने रससे देवोंको पुष्ट करता है।'

इस प्रकारके सैकडो वचन हैं कि, जो आत्मा और इन्द्रियोंका ही संबंध वर्णन कर रहे हैं। आत्मा अग्नि है और इन्द्रिय-स्थानमें सब देवतागण है। इनका ही वर्णन यहां अग्निसूक्तों में मुख्यतया है और इसी प्रकार अन्य देवता के सूक्तोंमें भी है। परंतु यहां अग्निविषयक ही वर्णन का विचार करना है, इसलिये अन्य देवताके मंत्र देखनेकी आवश्यकता नहीं है। अब निम्न लिखित मंत्रमें इसका संबंध अन्य देवोंके साथ देखिये—

त्वां ह्यग्ने सदमित् समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिरे इति क्रत्वा न्येरिरे। अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेवं जनत प्रचेतसं विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम्॥ (६३१; ऋ. ४।१।१)

' हे अग्ने! (स-मन्यवः) अत्यंत उत्साही देव (अरतिं त्वां देवं) गतियुक्त तुझ देवको (सदं इत्) सदा (न्येरिरे) प्रेरित करते हैं। हे (यजत) पूज्य! (मर्त्येषु अमर्त्यं) मर्त्योंमें अमर (आदेवं देवं) देवताको (आजनत) प्रकट करते हैं, तथा (प्र-चेतसं) चित्स्वरूप देवको प्रकट करते हैं।'

यह आत्माग्नि मरणधर्मवालोंमें अमर है और इसको अन्य देव प्रकट कर रहे हैं। अर्थात् अन्य देवताओंके कारण इसका अनुभव हो रहा है। बाह्य जगत् में देखिये कि, सूर्यादि देवताओंके अस्तित्व से ही परमात्माका अस्तित्व है, यह कल्पना उत्पन्न होती है। इसी प्रकार अध्यात्मपक्षमें अपने देहमे आंख, नाक, कानोंके व्यापार देखकर इनके अंदर एक आत्मतत्त्व है, ऐसा अनुभव होता है। दोनों दृष्टियोंसे देवताएं आत्माको प्रकट करती है, यह कथन सत्य है। इस प्रकार मर्त्योंमे अमर आत्माग्निका वर्णन वेदमें अग्निके मिषसे होता है। इस विषयमें और एक ही मंत्र देखिये—

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै॥
(६४७; ऋ. ४।२।१)

' (यः अमृतः) जो अमर (ऋतावा) सत्य धर्मसे युक्त, (अरतिः) गतिमान् अग्निदेव है, वह (मर्त्येषु) मर्त्योंमे (निधायि) रखा है। यह (होता) दाता (यजिष्ठः) पूज्य (मह्ना) अपने महत्त्वसे (शुचध्यै) प्रकाश करनेके लिये रखा है। तथा (हव्यैः) अन्नोंसे (मनुषः) मनुष्यको (ईरध्यै) प्रेरणा अर्थात् उन्नति करने के लिये रखा है।'

इस मंत्रमें यह आत्माग्नि किस प्रयोजन के लिये यहां इस शरीरमें रखा है, उसका वर्णन है। श्री सायणाचार्य इस मंत्रपर निम्न प्रकार भाष्य करते हैं।

मर्त्येषु मनुष्यसम्बंधिषु वागादींद्रियेषु निहितः। अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत् इति श्रुतेः।
(सा० भाष्य०, ऋ० ४।२।१)

' मर्त्यों में अर्थात् मनुष्यसंबंधी वाग् आदि इन्द्रियोंमें रखा है। क्योंकि अग्नि वाक् बनकर मुखमें प्रविष्ट हुआ, ऐसा श्रुतिवचन है। (तै. ब्रा. ३।९।१७)'। यह आत्माग्नि मनुष्योंमें रहकर (शुचध्यै) उनमें तेज उत्पन्न करता है, तथा (ईरध्यै) उन्नतिकी ओर प्रेरणा करता है। ये दो कार्य इसके इस शरीरमें हैं। मर्त्य प्राणियोंमें अमर आत्माग्निका यह कार्य हरएक को देखनेयोग्य है। अपने अंदर इस प्रकार की दिव्य और अमर आत्मशक्ति है और वह हमको उन्नतिकी ओर प्रेरणा कर रही है, यह विश्वास उत्पन्न होना चाहिये। वैदिक धर्मका यही उद्देश्य है। अपने नित्य जपके गायत्री मंत्रमें (धियो यो नः प्रचोदयात्। ऋ. ३।६२।१०) 'जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरणा

करता है, " उसका हम ध्यान करते हैं; ऐसा जो कहा है, उसका भी यहां विचार करना चाहिये। क्योंकि दोनों में उन्नतिकी प्रेरणा समानही है। अस्तु। इस प्रकार प्रेरक आत्माग्नि मर्त्योंमें है और वह अमर है, यह बात उक्त मंत्रोंद्वारा सिद्ध हुई। अब अन्य बातका विचार करेंगे। वेदमें देवों के साथ अग्नि आता है, अथवा जाता है, इस आशयके वर्णन अनेक स्थानोंमें हैं। इनमेसे कुछ मंत्र इससे पूर्व दिये गये हैं और कुछ आगे दिये जायगे। यहां उक्त आशय के ही परतु वही आशय अन्य शब्दोंद्वारा जिनमे बताया है, ऐसे मंत्र पहिले दिये जाते हैं। उनका विचार होनेके पश्चात् देवोंका संबंध अग्निके साथ देखेंगे—

(३३) अनेक अग्नियोंके साथ एक अग्नि।

जिस समय अग्निका स्वरूप निश्चय करना होता है, उस समय ' अनेक अग्नियोंके साथ एक अग्नि है, ' यह वेदका वर्णन सब से पहले देखना चाहिये। क्योंकि कि ऐसे मंत्रोंमें " अग्नि " शब्द विशेष भावसे प्रयुक्त होता है। देखिये—

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः।
चनो धाः सहसो यहो ॥ (३७; ऋ० १।२६।१०)

' हे (सहसः यहो) बल के सरक्षक ! हे अग्ने ! तू (विश्वेभिः अग्निभिः) सब अग्नियोंके साथ इस यज्ञमें आ और इस वचन को सुनो। तथा हमको (चनः) अन्न दो।" इस मन्त्रका कथन स्पष्ट है कि, यह अग्नि एक यज्ञमें अपने साथ सब अग्नियोंको लाता है। अब पता लगाना चाहिए कि, यह एक अग्नि कौन है और उसके साथ आनेवाले अनेक अग्नि कौन हैं। इसका पता लगानेके लिए निम्न लिखित मन्त्र देखिए-

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः।
यज्ञेषु य उ चायवः ॥ (५३०; ऋ० ३।२४।४)

'हे अग्ने! (विश्वेभिः अग्निभिः देवेभिः) सब अग्निदेवों के साथ तू (गिरः महय) वाणीको सुपूजित करो, तथा जो (चायव.) यज्ञमें पूजक होते हैं, उनको भी उन्नत करो।'

इस मन्त्रमें (अग्निभिः देवेभिः) अग्नि और देव ये शब्द एकही पदार्थके द्योतक है। तात्पर्य, किसी स्थानपर ' देव ' शब्द प्रयुक्त हुआ अथवा किसी स्थानपर ' अग्नि ' शब्द का उपयोग हुआ, तोभी उन दोनोंसे एकही वक्तव्य सिद्ध होता है। अर्थात् " हे अग्ने ! तू देवोंके साथ आ " तथा " हे अग्ने ! तू अग्नियोंके साथ आ " इसका भाव एकही है। " देव " शब्दका भाव अध्यात्ममें " इंद्रिय " है, यह बात पहिले निश्चित की गई है, वही भाव ' अग्नि " शब्दमें है, यह यहां निश्चित हो रहा है। इस विषयमें भगवद्गीताका प्रमाण देखिए-

शब्दादीन्विषयानन्य इंद्रियाग्निषु जुह्वति ॥
(भ० गी० ४।२६)

' शब्दादि विषयोंका इंद्रियाग्नियों में हवन करते हैं।'

इस श्लोकमें इंद्रियरूप अग्नि अनेक हैं, यह स्पष्ट है। प्रत्येक इंद्रियमें एक एक अग्निकुंड है और वहा उस उस विषयका हवन हो रहा है। आंखके स्थानीय अग्निमें रूप का हवन होता है, कर्णस्थानीय अग्निमें शब्द का हवन, इसी प्रकार अन्यान्य इंद्रियाग्नियोंमें अन्यान्य विषयों का हवन हो रहा है। और जिसका हवन होता है, उसको वह अग्नि महान् आत्माग्नि तक पहुंचाता है। यह केवल आलंकारिक वर्णन नहीं है, परन्तु इसका अनुभव भी पाठक कर सकते है। इंद्रियस्थानीय सपूर्ण अग्नि यदि नियत रीतिसे योग्य आहुतियां डालकर सुपूजित किये गये, तो वे इस शरीरके अधिष्ठाता मुख्य आत्माको इष्ट उन्नतितक पहुंचाते हैं, परन्तु यदि कोई एक इंद्रियाग्नि हदसे अधिक बढ गया, तो सबको जलाकर सबका नाश करता है। फिर सब इंद्रियाग्नि भडकने लगे, तो क्या अवस्था होगी, इसका विचार कल्पनासेही पाठक कर सकते हैं !!! इस अवस्थाको देखनेसे प्रत्येक इंद्रियमें अग्नि है, यह बात सिद्ध होती है, अर्थात् यहां जितनी इंद्रियां हैं, उतनेही अग्नि हैं। इसलिए " हे अग्ने ! तू सब अग्निदेवोंके साथ सुपूजित हो।" इस वाक्यका तात्पर्य, " हे आत्मन् ! तू सब इंद्रिय शक्तियोंके साथ पूज्य बनो " यही है। जहॉं 'आत्माग्नि' जाता है, वहॉं सब इतर 'इंद्रियाग्नि' जाते हैं, यह सब स्वाभाविक ही है। शरीरस्थानीय इंद्रियाग्नियोंके विषयमें यह विचार हुआ। इनके अतिरिक्त भी और बहुतसे अग्नि यहां रहते हैं, उनका विचार निम्न लिखित उपनिषद्वाक्य में देखिए-

शरीरमिति कस्मात्। अग्नयो ह्यत्र श्रियन्ते, ज्ञानाग्निर्दर्शनाग्निः कोष्ठाग्निरिति। तत्र कोष्ठा-

ग्निर्नामाशितपीतलेह्यचोष्यं पचति। दर्शनाग्नी रूपाणां दर्शनं करोति। ज्ञानाग्निः शुभाशुभं च कर्म विन्दति। त्रीणि स्थानानि भवंति, मुखे आहवनीय, उदरे गार्हपत्यो, हृदि दक्षिणाग्निः। आत्मा यजमानो, मनो ब्रह्मा, लोभादयः पशवो, धृतिर्दीक्षा संतोषश्च, बुद्धीन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि, हवींषि कर्मेन्द्रियाणि, शिरः कपालं, केशा दर्भाः, मुखमंतर्वेदिः॥ (गर्भोपनिषद् ५)

'इस को शरीर क्यों कहते हैं? क्योंकि यहां अग्नि आश्रय लेते हैं, ज्ञानाग्नि, दर्शनाग्नि और कोष्ठाग्नि। उस में कोष्ठाग्नि अन्न का पचन करता है। दर्शनाग्नि रूपों को देखता है। ज्ञानाग्नि शुभाशुभ कर्मोंको प्राप्त करता है। अग्नियों के तीन स्थान होते हैं, मुख में आहवनीयाग्नि, उदर में गार्हपत्याग्नि और हृदय में दक्षिणाग्नि है। इस यज्ञ में आत्मा यजमान है, मन ब्रह्मा, लोभादि पशु, धृति दीक्षा, ज्ञानेन्द्रियां यज्ञपात्र है, कर्मेंद्रियां हविर्द्रव्य हैं, सिर कपाल है, केश दर्भ है और मुख अन्तर्वेदि है।' इस प्रकार यह यज्ञ चल रहा है। यही शतसांवत्सरिक महासत्र है। यहां यज्ञपुरुष प्रत्यक्ष आत्मा है। जो इस यज्ञ को अपने अन्दर देखेगा, उस को ही एक अग्निकी तथा उस के साथवाले अनेक अग्नियों की कल्पना ठीक प्रकार हो सकती है और उसी को संदेहरहित ज्ञान होना सम्भव है। इस प्रकार ये अनेक अग्नि यहां इस देहरूपी यज्ञशाला में प्रत्यक्ष हैं और इसी का नकशा बाहिर की यज्ञशाला में किया जाता है। बाह्य यज्ञ जो हवनकुंडों में किया जाता है, वह इसलिये ही है कि, उस नकशे को देख कर इस असली यज्ञ का पता लगे। परन्तु शोक की बात इतनी ही है कि, यह 'नकशा' ही अधिक प्रिय हो गया है और वास्तविक यज्ञ की ओर कोई देखता ही नहीं है!! वेद का अर्थ जानने की इच्छा करनेवालों को तो यह आध्यात्मिक यज्ञ अवश्यमेव ध्यानपूर्वक समझना चाहिये। अन्यथा वेदमंत्र का अर्थ समझना ही अशक्य है। **'अनेक अग्नियों के साथ एक अग्नि आता है'** यह वेदमंत्र का कथन पूर्वोक्त रूपक का सूचक है, इस विषय में अब संदेह नहीं हो सकता। अब निम्न लिखित मंत्र देखिये—

तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः। स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतय पवंते॥ (९९४; ऋ. ६-१०-२)

'हे (द्युमः) तेजस्वी (पुरु+अनीक) बहुसेनायुक्त, बहुबलयुक्त अग्ने! (अग्निभि) अग्नियों के साथ प्रज्वलित होनेवाला तू (मनुषः) मनुष्य के उस स्तुति का श्रवण कर। (यं स्तोमं) जिस स्तोत्र को, (शुचि शूषं घृतं न) शुद्ध सुखकर घी के समान, (मतयः) बुद्धियां पुनीत करती है।'

इस मंत्र में एक अग्नि अनेक अग्नियों के साथ प्रदीप्त हो रहा है, यही वर्णन है। इस का भाव पूर्वोक्त स्पष्टीकरण के साथ विशेष खुल सकता है। एक आत्माग्नि अनेक इंद्रियों के साथ यहां इस देह में प्रदीप्त हो रहा है। यह मुख्य आत्माग्नि (पुरु अनीक) अनेक बलों से युक्त है, अनेक शक्तियां इस में हैं, तथा अनेक सेनासमूह भी इस के साथ रहते है। प्रत्येक इंद्रियस्थान में सैनिकों का एक एक गण है और सब गणों का यही एक अध्यक्ष **'गणपति'** है। गणेश को सैनिकों के गणों का स्वामी कहते ही हैं। शरीरके प्रत्येक इंद्रिय में सूक्ष्म कीटाणुओं का एक एक गण रहता है, वहां प्रत्येक गण का एक अधिष्ठाता रहता है। और सपूर्ण गणों का यह मुख्याधिष्ठाता होता है। इसलिये इस को (पुर्वणीक=पुरु-अनीक) बहु सेना से युक्त कहते हैं। प्रत्येक गण का अधिष्ठाता एक अग्नि और सब गणों के अधिष्ठातारूप अनेक अग्नियों का मुख्याधिष्ठाता यह महान् अग्नि है। यही गणराज होता है। इस गणराज-संस्था को अपने शरीर में ही देखना चाहिये। यहां इस का अनुभव होने के पश्चात् राष्ट्र में **'गणराज-संस्था'** किस प्रकार होती है, इस का ज्ञान होना सम्भव है। इस लिये पाठक इस संस्थाको अपने अन्दर देखें और अनुभव करें। तथा अपने समाज में इसी गणराज-संस्था को जीवित कर के अपना राज्ययन्त्र उत्तम सजीव करने का यत्न करें। अस्तु। अब इन अग्नियों के विषय में एक वर्णन देखिये—

(३४) अग्नियोंमें अग्नि।

प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यंति वार्यं।

ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यंत्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आभर ॥ (८०६ ऋ. ५-६-६)

'(अग्नयः) ये अग्नि (अग्निषु) अग्नियों में (विश्वं वार्यं) सब शक्ति का (प्रो पुष्यंति) पोषण करते हैं। (ते हिन्विरे) वे संतुष्टता करते हैं, (ते इन्विरे) वे व्यापते हैं, (ते इषण्यंति) वे अन्न की इच्छा करते हैं। इसलिये स्तोताओं का क्रमशः पोषण करो।'

इस मंत्रमें चार विधान हैं, जो अग्निका वास्तविक स्वरूप बता रहे हैं- (१) (विश्वं वार्यं पुष्यति) सब निवारक शक्तिको बढाते हैं। शरीर में एक निवारक शक्ति है, जो रोगादिकों का प्रतिबन्ध करती है, अपमृत्यु का निवारण करती है। उस का पोषण यह अग्नि कर रहा है। (२) (हिन्विरे) संतोष करते हैं। संतोष, खुशी, आनन्द दे रहे हैं। पूर्वोक्त अग्नि अपने अन्दर विविध प्रकार के हवन स्वीकार कर के देवताओं की संतुष्टता कर रहे हैं। यह भाव अपने अन्दर पूर्वोक्त स्पष्टीकरण से विशद हो सकता है। (३) (इन्विरे) व्यापते है। अपनी इन्द्रियशक्तियों से व्यापक होते हैं। देखिये, अपना ही दर्शनाग्नि जो आंख में है, वह जगत् में सूर्यचंद्रादि कों तक फैलता है, इसी प्रकार कर्णस्थानीय श्रवणाग्नि दश दिशाओं में फैल रहा है। इसी प्रकार अपनी शक्तियां फैल रहीं है। (४) (इषण्यति) अन्न की इच्छा करते हैं। ये इन्द्रियाग्नि अपने अपने भोग्य अन्न को प्रतिदिन चाहते है। अपना अपना अन्न मिल जाने से ही वे शक्तियों को पुष्ट करते हैं, संतोष देते हैं, तथा व्यापते हैं और अन्न न मिलने पर वे शक्तिहीन होते हैं, संतोष नहीं देते और अपनी शक्ति को फैला भी नहीं सकते।

सूक्ष्म दृष्टि से यदि पाठक इस मंत्र का विचार करेंगे, तो उन के ध्यान में स्पष्ट रीति से आ सकता है कि, इस मंत्र में कहे हुए अग्नि ' इंद्रियाग्नि ' ही मुख्यतया हैं। क्योंकि इन में ही मंत्रोक्त बातों का अनुभव हो सकता है। अन्यत्र लक्षणा से भी अनुभव आना अशक्य है। इसलिये ये अग्नि मुख्यतः अपने शरीर की शक्तियां ही हैं और उनका सम्बन्ध व्यक्त करने के लिये ही बाहर के यज्ञ में विविध अग्नियों की योजना की गई है। यही बात निम्न लिखित मंत्र में और स्पष्ट हुई है। देखिये-

(३५) देवोंद्वारा प्रदीप्त अग्नि ।

मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेद्धेष्वग्निषु प्रवोचः। मा ते अस्मान् दुर्मतयो भृमाच्चिद्देवस्य सूनो सहसो नशन्त (११२१; ऋ. ७-१-२२)

'हे अग्ने ! (न सचा) हमारा सहायक तू है, इसलिये इन (देवेद्धेषु) देवोंद्वारा प्रदीप्त किये हुए अग्नियों में (दुर्भृतये) कृशता के लिये (मा प्रवोचः) न कहो। तथा हे (सहसः सूनो) बलपुत्र ! (ते देवस्य दुर्मतयः) तुझ देव की दुर्बुद्धियां (भृमात् चित्) भ्रम से भी हमारा नाश न करे।'

इस में मुख्य अग्नि की प्रार्थना की गई है कि, वह मुख्याग्नि गौण अग्नियों में कृशता के शब्द न बोले और भ्रम से भी दुष्ट भाव न धारण करे। मुख्याग्नि आत्माग्नि है और गौणाग्नि इन्द्रियाग्नि ही हैं। आत्माग्नि की प्रेरणा इन्द्रियाग्नियों में होती है और यहां का सब कार्य चलता है। यह आत्माग्नि गुप्त शब्दोंद्वारा इन्द्रियाग्नियों में प्रेरणा करता है। इस की यह प्रेरणा (दुर्भृतये) कृशता के लिये न हो, परन्तु (सुभृति) पुष्टि के लिये होवे। जिस भाव की धारणा होती है, वैसी ही यहां की अवस्था बन जाती है। ' मैं प्रतिदिन उन्नत, पुष्ट और नीरोग हो रहा हूं। ' ऐसी भावना धरने से उन्नति, पुष्टि और नीरोगता सिद्ध होती है। तथा इस के विपरीत भाव धारण करने से विपरीत परिणाम होता है। इसलिये भ्रम में भी दुष्ट भावना मन में धारण नहीं करनी चाहिये। क्योंकि यदि दुष्ट भावना का धारण हुआ, तो निःसंदेह नाश होगा। इतनी प्रबल शक्ति भावना में है। यह मंत्र मानसशास्त्र के एक बडे भारी सिद्धांत का प्रकाश कर रहा है। आशा है कि, पाठक इस का विचार कर के अपना लाभ करने का यत्न करेंगे। नित्य शुद्ध भावना की स्थिरता करने से नित्य लाभ होगा, यह अटल सिद्धांत है।

इस मंत्र में (देवेद्धः अग्निः) देवोंद्वारा प्रदीप्त किये अग्नियों का उल्लेख है। यहां कौनसे अग्नि, देवों के प्रयत्न से प्रदीप्त हुए हैं ? इस का पता लगाना आवश्यक है। उपनिषदों में कहा है कि- (१) सूर्य भगवान् नेत्रस्थान में आकर रहे हैं और दर्शनाग्नि को प्रदीप्त कर रहे हैं। (२) अश्विनी देव नासिकास्थान में प्राणाग्नि

को प्रदीप्त कर रहे हैं। (३) अग्नि वाक् स्थान में बैठ कर शब्दाग्निको जला रहा है। (४) शिश्नस्थान में जल-देवताएं बैठी हैं और वीर्याग्नि का प्रदीपन कर रही हैं। (५) नाभिस्थान में मृत्युदेव आकर अपानाग्नि को उद्दीपित कर रहा है, इसी प्रकार अन्यान्य देवताएं अन्यान्य इंद्रिय-स्थानों में बैठ कर अपने अपने हवनकुंड में अपने अपने अग्नि प्रदीप्त कर रही हैं। ये सब अग्नि (देव+इद्ध) देवोंद्वारा प्रदीप्त किये हैं। पाठक इतना अनुभव अपने देह में कर सकते हैं।

दैवी शक्तियोंद्वारा इंद्रियाग्नियों का प्रज्वलन सर्वत्र उपनिषदादि ग्रंथों में वर्णन किया है। इसलिये वही यहां लेना उचित है और वह लेने से ही मंत्रका गर्भिताशय स्पष्ट हो जाता है। यही भाव निम्न लिखित मंत्र में देखिये-

दशस्या नः पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभि रिधानः। रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः॥ (१००५; ऋ ६-११-६)

'हे (पुरु-अनीक) बहुबलयुक्त (होतः) दाता अग्ने! (देवेभिः अग्निभिः) अग्निदेवों के साथ (इधानः) प्रदीप्त होता हुआ, (नः) हम को (रायः) धन (दशस्य) दो। हे (सहसः सूनो) बल-पुत्र! (वावसानाः) वसने की इच्छा करनेवाले हम सब (वृजनं न) शत्रु के समान (अंहः) पाप का भी (अतिस्रसेम) अतिक्रमण कर के परे चले जायंगे।'

इसमें भी अनेक अग्निदेवों के साथ प्रदीप्त होनेवाले एक मुख्य अग्निका वर्णन है और इस में प्रायः वे ही शब्द हैं, कि जो पहिले आ चुके है,इसलिये इनका अधिक स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार निम्न लिखित मंत्र में भी यही वर्णन है-

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्नेभि-रिधानः। वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमा सुवीराः॥ (१०११; ऋ ६-१२-६)

'हे (अर्वन्) गतिशील अग्ने! तू (विश्वेभिः अग्निभिः) सब अग्नियोंके साथ प्रदीप्त होता हुआ (निदायाः) निंदा से (पाहि) हमारा रक्षण कर, (रायः वेषि) धन दो, (दुच्छुना वियासि) दुःखकारकोंको विविध प्रकारसे भगाओ, जिससे हम (शत-हिमाः) सौ वर्ष (सु-वीराः) उत्तम वीरोंसे युक्त होकर (मदेम) आनंदित हों।'

सब इंद्रियाग्नियोंसे युक्त होता हुआ आत्माग्नि ऐसी प्रेरणा करे कि, हम सब निंदासे बचें, धन प्राप्त करें, विपरीत भावनाओंको दूर भगा दे। ऐसा करनेसे हम सौ वर्ष आनंद से व्यतीत करेंगे। इस का तात्पर्य यह है कि, यदि हम घृणित कर्म करेंगे, धन नहीं प्राप्त करेंगे, विपरीत भावना-रूपी शत्रुओंको दूर न भगायेंगे, तो घृणित कर्मों के कारण हमारा अंतःकरण मलिन होगा, धनहीनताके कारण संसार-यात्रा कष्टप्रद होगी, विरुद्ध भावनाओंके कारण क्लेश होंगे और इन सबका यही परिणाम होगा कि, हमारी आयु क्षीण हो जायगी। इसलिए मंत्रोक्त उपदेशके अनुसार आचरण करके दीर्घायु बनना हरएक वैदिक धर्मीको उचित है। अस्तु। अब उक्त विषयकाही और एक मन्त्र देखिए—

(३६) दूत अग्नि।

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूत-मध्वरे कृणुध्वं॥ यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः॥ (११२४; ऋ० ७।३।१)

'(अग्निभिः) अग्नियोंके साथ रहनेवाले (यजिष्ठं देव) पूज्य अग्निदेव को (अध्वरे) यज्ञमें दूत कीजिए। जो अग्नि (मर्त्येषु) मर्त्योंमें (नि-ध्रुविः) ध्रुव, (ऋतावा) सत्यवान्, (तपुर्मूर्धा) तपस्वी, (घृत+अन्नः) घीयुक्त अन्न खानेवाला और (पावकः) शुद्धिकर्ता है।'

इंद्रियोंके साथ रहनेवाला आत्माग्नि पूज्य, अमर, स्थिर, दृढ, सत्य, तपस्वी और शुद्ध है। इसीको यज्ञ में दूत करना चाहिए। दूत वह होता है कि जो नियत कार्यको करता है, जिस प्रकार कहा जाय, वैसा ही कर लेता है। क्या यह आत्माग्नि हमारा दूत है? आध्यात्मिक दृष्टिसे विचार करनेपर पता लग जायगा कि, विशेष अवस्थामें यह दूत भी बनता ही है। योगसाधन से जिनका मन शांत और स्थिर हुआ है, वे योगी जो भाव मनमें लाते हैं, वैसा ही बन जाता है। यह कौन करता है? विचार करनेपर मानना पडता है कि, यह आत्माही करता है। मनमें जो इच्छा होगी, वह बन जायगी। अर्थात् मनकी इच्छाके अनुसार यह दूत बनकर कार्य करता है। इस अर्थमें यह दूत है। पौराणिक मतसे श्रीकृष्ण भगवान् परमात्माका पूर्णावतार होता हुआ भी साधक जीव अर्जुन के रथपर

सारथी अर्थात् दूत ही बना था, उसके घोडे साफ किया करता था, महायज्ञमें भोजनके बाद उच्छिष्ट निकालनेका काम करता था और पांडवोंकी इच्छाके अनुसार सब कार्य करता था। इस कथामें परमात्मा, जीवात्माका दौत्य करता है। वास्तविक यह अलंकार है। और वही अलंकार अग्नि के मिषसे यहां इस इस मन्त्रमें बताया है। योगबलसे साधक जीवको इतना अधिकार प्राप्त हो सकता है कि, वह जिसकी इच्छा करेगा, वह उसको परमात्मा देगा। इच्छा करनेवाला योगी और सिद्ध करनेवाला आत्मा यहां होता है। इसीलिए इसको दूत कहा है। इस दूतकर्म के विषयमें वेदमें सैंकडो प्रकारके आलंकारिक वर्णन हैं, उनका स्पष्टीकरण स्थानस्थानमें किया जायगा। उनमेंसे एक भाव यहां बताया है। इसी विषयमें दूसरा अलंकार देखिये-

(३७) होता अग्नि।

अग्न आयाह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
आ त्वामनक्तु हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे॥
(१३८९, ऋ. ८-६०-१)

'हे अग्ने ! तूं अग्नियों के साथ आ। तुझे हम हवनकर्ता ऋत्विज् स्वीकार करते हैं। (हविष्मती बर्हिः) अन्नयुक्त वेदी तुझ पूज्य को प्राप्त करके सुपूजित करे।'

पूर्वमन्त्र में इस आत्माग्नि को दूत स्वीकार किया था, अब इस मंत्र में ऋत्विज् हवनकर्ता स्वीकार करते हैं। 'होता' शब्द का अर्थ दाता, आदाता, आह्वानकर्ता और हवनकर्ता है। यह आत्माग्नि इंद्रियाग्नियों, प्राणाग्नियों तथा जाठरादि अग्नियों में विविध प्रकार के हवन कर रहा है। इस प्रत्यक्ष बात का ही यह वर्णन है, इसलिये अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। अब और एक अलंकार देखिये—

(३८) अग्निरूप होना।

स्वग्नयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जां पते॥ सुवीरस्त्वमस्मयुः। (१२३०; ऋ. ८।१९।७)

'हे (सहस सूनो) बल पुत्र ! हे (ऊर्जां पते) अन्नपते ! आप के अग्नियों के साथ (अग्नयः) हम अग्नि (स्याम) बनेंगे। तूं (सुवीरः) उत्तम वीर और (अस्मयुः) हम सब को चाहनेवाला हो।'

इस मंत्र में कहा है कि, हम सब अग्निरूप बनेंगे। आत्मा मुख्याग्नि है और हम उस के साथी अन्य अग्नि बनेंगे। अर्थात् उन के समान उन के गुणधर्मों से युक्त और उन के मित्र बनकर रहेंगे। तथा वह भी हम को चाहनेवाला होवे, अर्थात् हमारे द्वारा कोई ऐसा आचरण न हो कि, जिस से वह आत्मशक्ति हम से विमुख हो। हम आत्मशक्ति से विमुख न हों और वह आत्मा हम से विमुख न हो।

माहं ब्रह्म निराकुर्यां
मा मा ब्रह्म निराकरोत्॥ (उप. शांति. केन. उ.)

'मैं ब्रह्म का निराकरण न करूं, ब्रह्म मेरा निराकरण न करे।' यह केनोपनिषद् की शांति का वाक्य यही भाव बता रहा है, तथा—

(वयं) अग्नयः स्याम।
(अग्निः) अस्मयुः (भवतु)॥ (ऋ. ८-१९-७)

'हम अग्नि बनें, अग्नि हमारा भला चाहनेवाला बने।' यह भाव शांतिमन्त्र के समान ही है। यहां शंका हो सकती है कि, एक अग्नि का दूसरे अनेक अग्नियों के साथ कौनसा सम्बन्ध है ? इस का विचार करने के लिये (१) एक परमात्मा का अनेक जीवात्माओं के साथ सम्बन्ध, (२) एक महात्मा का दूसरे अल्प आत्माओं के साथ सम्बन्ध, (३) एक जीवका अन्य जीवों के साथ संबन्ध, (४) एक आत्मा का अन्य इंद्रियों से सम्बन्ध, (५) एक अवयव का अन्य अवयवों के साथ सम्बन्ध देखना चाहिये। विचार करने पर पता लगेगा कि, यह एक विलक्षण सम्बन्ध है और उस सम्बन्ध के कारण ही यह विश्व चल रहा है। एक के द्वारा दूसरे के जीवन में परिणाम होता है। इस का भाव निम्न लिखित मंत्र में है—

(३९) एक अग्नि से दूसरे अग्नि का जलना।

अग्निनाऽग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा।
हव्यवाड् जुह्वास्यः॥ (१५; ऋ. १-१२-६)

'(अग्निना अग्निः) एक अग्नि से दूसरा अग्नि (सं इध्यते) प्रदीप्त किया जाता है। यह अग्नि कवि, गृह-पति (युवा) जवान्, (हव्य-वाट्) अन्नवाहक और (जुहु+आस्यः) चमस से घी मुख में डालनेवाला है।'

इस मंत्र में कवि, गृहपति, युवा ये शब्द हैं। ये शब्द

मानवी अग्नि के ही वाचक हैं। जो गृहस्थी युवा कवि हैं, वह भी समाज में अग्निवत् ही है। वह अन्न से पुष्ट होता है और चमस से घी पीता है, इसलिये हृष्टपुष्ट रहता है। पहला मनुष्य अग्नि था, यह बात मानवी अग्नि के विषय में इस लेख के प्रारम्भ में ही कही है। उस बात की स्पष्टता पुनः यह मंत्र कर रहा है। अध्यात्म-दृष्टि से जीवात्मा का घर यह शरीर है। इस कारण आत्मा गृहपति है, इस की गृहपत्नी बुद्धि है। यह युवा इसलिये है कि, यह न शरीर के साथ जन्मता और न मरता है, शरीर के बाल्य और वार्धक्य ये गुण इस को बाधित नहीं करते, इसलिये यह सदा युवा ही कहलाता है। यही बुद्धि, मन और प्राणद्वारा शब्द की प्रेरणा करता है, इस कारण यह कवि है। यह अन्नभक्षक और घी पीनेवाला है। शरीर के साथ रहने से इस को खानपान करना पडता है। यद्यपि शरीर ही खानपान करता है, तथापि इस के होने तक शरीर खातापीता है, इसलिये ही इस को (अत्ता) भक्षक कहते हैं। तात्पर्य व्यक्ति में आत्मा और समाज में गृहस्थी कवि अग्निरूप है।

एक अग्नि दूसरे अग्नि को प्रदीप्त करता है, यह इस मंत्र का कथन है। इस की सत्यता देखिये— राष्ट्र में अध्यापक शिष्यों को ज्ञान देते हैं। विद्वान् अध्यापक युवा शिष्यों को ज्ञान देते हैं। इसमें ज्ञानाग्नि का प्रज्वलन है। अध्यापक अपने ज्ञानाग्नि से शिष्य के अन्दर ज्ञानाग्नि प्रदीप्त कर रहा है। सब अध्ययन का क्रम इसी प्रकार चलता है। एक कवि अपने काव्य से दूसरों में काव्यस्फूर्ति उत्पन्न करता है। प्राचीन ज्ञानी अपने ग्रंथों और उपदेशों-द्वारा नवीनों में स्फूर्ति दे रहे हैं। यही भाव निम्न लिखित मंत्र में है—

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन् सता।
सखा सख्या समिध्यसे॥ (१२३३; ऋ. ८-४३-१४)

'हे अग्ने! तूं (अग्निः अग्निना) अग्नि अग्नि से (विप्रः विप्रेण) ज्ञानी ज्ञानी से, (सन् सता) साधु साधु से, (सखा सख्या) मित्र मित्र से प्रदीप्त होता है।'

इस मंत्र के निम्न शब्द देखनेयोग्य हैं—

अग्निः	अग्निना (समिध्यते)।	ऋ० १।१२।६
हे अग्ने ! त्वं	अग्निना (समिध्यसे)।	ऋ० ८।४३।१४
विप्रः	विप्रेण (समिध्यते)।	ऋ० १।१२।६
सन्	सता ,,	,,
सखा	सख्या ,,	,,
(शिष्यः	अध्यापकेन) ,,	,,

पहला कथन अग्निविषयक होनेसे देवताविषयक है। दूसरा ज्ञानीके विषयमें है, तीसरा सज्जनों के संबंध में है और चौथा साधारण मित्रताके सबंधमें है। इसके साथ हम "शिष्य अध्यापकके द्वारा उत्तेजित होता है" यह वाक्य जोड सकते हैं। मित्रता करनेसे ही मैत्री बढती है, साधुके साथ रहनेसे साधुता प्राप्त होती है, विद्वान् की संगतिसे ज्ञान बढता है, तेजस्वीके साथ रहनेसे तेजस्विता बढती है, गुरुके साथ रहनेसे शिष्यको विद्या प्राप्त होती है, यही तात्पर्य है कि, अग्निके द्वारा दूसरे अग्निका प्रज्वलन होता है। अग्निसंकेतसे कितनी बातें लेनी होती हैं, इसका यहां स्पष्टीकरण हुआ है। यही वैदिक "अग्निविद्या" है। इस रीतिसे मंत्रोंका भाव अन्य वेदमंत्रों के साथ देखने से वैदिक आशयका ठीक ठीक रीतिसे पता लग जाता है और मंत्रके भावार्थके विषयमें किसी प्रकारका संदेह नहीं रहता। अस्तु।

इस प्रकार यहां एक अग्नि अनेक अग्नियोंके साथ किस रूपमें रहता है, यह बात देखी है। आत्माग्नि इंद्रियाग्नियों के साथ रहता है, परमात्माग्नि सूर्यादि तेजोंके साथ रहता है, ज्ञानी ज्ञानियोंके साथ प्रकाशता है, कवि कवियोंके साथ रहता है, तेजस्वी तेजस्वियोंके साथ शोभता है, साधु साधुओंके साथ रहता है, विप्र विप्रोंके साथ रहता है, मित्र मित्रोंके साथ रहते हैं, गुरु शिष्योंके साथ प्रकाशते हैं, तात्पर्य एक अग्नि दूसरे अनेक अग्नियोंके साथ ही रहता है, वह कदापि अपने विरोधियोंके साथ नहीं रह सकता। समानधर्मियोंके साथ रहनेसे शोभा बढती है और विरोधियोंके साथ रहनेसे शक्ति क्षीण होती है। इत्यादि सहस्रों उपदेश यहां विचारी पाठकों को प्राप्त हो सकते हैं। अस्तु। यहां इस विषयको समाप्त करके अब अनेक देवों द्वारा स्थापित एक अग्निका मनोरंजन विषय देखेंगे—

(४०) देवोंद्वारा स्थापित अग्नि।

इस समयतक देवोंके साथ रहनेवाला, अग्नियोंके साथ आनेजानेवाला, देवोंको बुलानेवाला अग्नि किस भावका

द्योतक है, यह देख लिया। अब देवोंद्वारा स्थापित अग्निकी कल्पना देखनी है। इस विषयमें निम्न लिखित मन्त्र देखिए-

अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रं। स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥ (४१८; ऋ० २।४।३)

' (क्षेष्यन्तः देवासः) गतिमान देवोंने (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाओंमें प्रिय (अग्निं) अग्निको (मित्रं न) मित्रके समान (धुः) स्थापना की अथवा धारणा की है। वह (दक्षाय्यः) दक्ष अग्नि अपने दमनमें तथा (उशतीः ऊर्म्याः) स्पृहणीय रात्रियोंमें (दास्वते) दाताके लिए (आ दीदयत्) प्रकाश देता है। '

' देव ' शब्द का अर्थ बाह्य जगत् में सूर्य, चंद्र आदि देवता है और शरीरमें चक्षुरादि इंद्रियगण है। इस मंत्र में मनुष्य में आत्माग्नि की स्थापना करनेवाली जो देवताए हैं, वही शरीरस्थानीय चक्षुरादि इंद्रिय ही हैं। इन इंद्रियों के द्वारा आत्मा शरीर में रखा गया है, किंवा ये इंद्रिय-शक्तियां शरीर के अन्दर आत्मा का धारण कर रही हैं। जिस प्रकार सब ओहदेदार राष्ट्र में राजा का धारण करते हैं, उसी प्रकार ये आत्मा के ओहदेदार चक्षुरादि इंद्रियगण शरीर में आत्मा की धारणा कर रहे हैं। यह आत्माग्नि ही सब के लिये प्रिय और हितकारी है और सब का सच्चा मित्र भी है। आत्मा से अधिक प्रिय और अधिक हितकारक मित्र दूसरा कोई भी नहीं है, यह बात पूर्व स्थल में बता दी है। इस की दक्षता इतनी है कि, यह रात्रि के अन्धकार में प्रकाश देकर सब का मार्गदर्शक होता है। धर्मके लक्षणों में ' आत्मा की तुष्टि ' एक लक्षण इसी हेतु से कहा है, देखिये—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं ज्ञेयं साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥१२॥

तथा—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥६॥
(मनु. २)

यहां धर्म के लक्षणों में (१) श्रुति, (२) स्मृति, (३) सदाचार, (४) आत्माकी तुष्टि ये चार लक्षण कहे हैं। धर्म का अंतिम निश्चय अपनी आत्मा की तुष्टि से होता है, इतना आत्मा का अधिकार है, क्योंकि अन्धकार-पूर्ण रात्रि के अत्यन्त विकट प्रसंग में यही आत्मा शुद्ध प्रकाश देकर ठीक मार्ग बताता है। सच्चा मित्र कौन है? इस प्रश्न के उत्तर में कहना पडेगा कि, वही सच्चा मित्र है, जो कि कठीण प्रसंग में सहायक होता है। यह लक्षण आत्मा के मित्रत्व की सिद्धि करता है, क्योंकि जहां अन्य बल काम नहीं देते, वहाँ ' आत्मिक बल ' ही सहायता देता है। यह आत्मिक बल संयम में है, यह भाव उक्त मंत्र में ' दम ' शब्दद्वारा व्यक्त किया है। इस प्रकार देवों द्वारा स्थापित आत्माग्नि की कल्पना है। इसी विषय का निम्न लिखित मन्त्र देखिये-

(४१) मानवी प्रजा में अग्नि।

आधय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्वपां गर्भो मित्र ऋतेन साधन्। आ हर्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥ (४७२; ऋ· ३·५·३)

' (ऋतेन साधन्) सीधे मार्ग से जाने पर सिद्धि देने-वाला सच्चा मित्र और (अपां गर्भः) कर्मों का केंद्र अग्नि (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाओं में (देवैः) देवों द्वारा (अधायि) रखा गया है। यह (हर्यत) स्पृहणीय और (यजतः) पूज्य होता हुआ (सानु) उच्च स्थान में (आ स्थात्) रहता है। यह (वि-प्रः) विशेष ज्ञानी (मतीनां हव्य.) बुद्धियों का हवन करनेवाला (अभूत्) है। '

आत्माग्नि मानवी देह में उच्च स्थान में निवास करता है, इस बात को यह मंत्र कहता है। मानवी देह में हृदय से लेकर मस्तक तक जो स्थान है, वही उच्च स्थान है। इसमें आत्माग्नि का निवास है। यह सच्चा मित्र है और यही सीधे मार्गसे चलाता है, यही सब कर्मों और संपूर्ण हलचलोंका प्रेरक है। जिस प्रकार किरणोंका केंद्र सूर्य है, उसी प्रकार कर्मों का केंद्र यही आत्माग्नि है। यह इस शरीरमें सौ वर्ष निवास करके सैंकडो कर्म करता है, इसीलिए इसको " शत-क्रतु " कहते हैं। इसका स्वभाव-धर्म ही कर्म है, इसलिए इसको " क्रतु " भी कहते हैं। यह आत्मा चित्स्वरूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप होने से ही इसको " वि-प्र " कहते हैं, तथा यही बुद्धिका प्रेरक है। इस प्रकार इस मन्त्रका वर्णन आत्माका परिचय करा रहा

है, इसका अधिक विचार पाठक करें। इसीके विषयमें अब निम्न लिखित मन्त्र देखिए-

(४२) जीवन-रसरूप अग्नि।

अच्छा नो अंगिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः।
होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः॥

(१२७९; ऋ० ८।२३।१०)

'(नः संयतः यज्ञास.) हमारे नियत यज्ञ (अंगि-रस्-तमं) अंगोंके रसोंमें मुख्य अग्निके प्रति (यंतु) पहुंचें। जो (विक्षु) प्रजाओं में (होता) हवनकर्ता और (यशस्-तमः) अत्यंत यशस्वी है।'

यह मन्त्र अग्निका निश्चित रूप बता रहा है। यह अग्नि "**अंगि-रस्-तम**" है। प्रत्येक अगमें जो जीवनरस है, उस प्रकारके जीवनरसों में अत्यंत मुख्य जीवन-रस यही है। सब हमारे कर्म इस मुख्य जीवनरस के संवर्धनके लिए ही होने चाहिये। मनुष्यों से ऐसा कोई कर्म नहीं होना चाहिए कि, जिससे इस मुख्य जीवनरस में कुछ क्षति हो सके। इसीका नाम " आत्मघातक कर्म " है। वास्तव में आत्माका घात नहीं हो सकता, परन्तु आत्माके विकास में प्रतिबन्ध जिससे होता है, उस को आत्मघातक कर्म कहते हैं। इसी प्रकार आत्माग्निमें किसी प्रकारकी क्षति भी नहीं होती, तथापि उसके आत्मिक बलके विस्तार में जिनसे न्यूनता हो सकती है, वैसे कर्म नहीं करने चाहिए और ऐसे करने चाहिए कि, जिनसे अंगोंमें मुख्य जीवनरस की समृद्धि हो। मनुष्योंमें यही आत्मा यशका प्रदाता है। इसीलिए जो मनुष्य शांतिसे आत्मिक बलके कार्य करता है, उसीका यश होता है। इस मन्त्रका '**अंगि-रस्तम**' शब्द इस अग्निकी मुख्य विभूति आत्माही है, यह भाव स्पष्ट कर रहा है। यह "**जीवनरस**" होनेके कारण इसीसे सबकी पुष्टि होती है, इस विषय में निम्न लिखित मंत्र देखिए-

(४३) देवोंका निवासक अग्नि।

अग्निर्देवेषु संवसुः स विक्षु यज्ञियास्वा॥
स मुदा काव्या पुरु विश्वं भूमेव पुष्यति।
देवो देवेषु यज्ञियो नभन्तामन्यके समे॥

(१३०६; ऋ० ८।३९।७)

'अग्नि देवों में तथा (यज्ञियासु विक्षु) पूज्य प्रजा-ओंमें (संवसुः) उत्तम निवासक है। वह (भूमा इव) भूमिके समान (पुरु विश्वं) सब कुछ पुष्ट करता है, तथा (मुदा) आनंदसे (काव्या) काव्योंको करता है। वही देवों में पूजनीय है। (समे) सब (अन्यके) शत्रु (नभन्ताम्) नष्ट हो जावें।'

यह मन्त्र अग्निका स्वरूप-विज्ञान होनेके लिए अनेक दृष्टियोंसे उपयोगी है। देवोंके अन्दर रहता हुआ यह अग्नि देवोंका उत्तम प्रकार से निवासक होता है। पाठक विचार करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि, यह बात आत्मा-ग्निमें ही विशेष कर घट सकती है, क्योंकि देवों अर्थात् इंद्रियों में रहता हुआ ही आत्मा उन इंद्रियों का निवास उत्तम प्रकार कर रहा है। जिस प्रकार भूमि सब का पोषण कर रही है, उसी प्रकार आत्मा सबका पोषण कर रहा है। कई पाठक यहां शका करेंगे कि, पौष्टिक अन्न से पोषण होता है, आत्माग्नि का किस प्रकार पोषक हो सकता है? इसका उत्तर इतनाही है कि मुर्देमें कितना भी पौष्टिक अन्न रखा जाय, उस अन्नसे मुर्दा पुष्ट नहीं होगा; क्योंकि '**सच्चा पोषक**' वहां नहीं है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि, आत्मा ही पोषक है और अन्य पौष्टिक अन्नादि सहा-यक हैं। यह आत्माग्नि सबसे प्रमुख है, इसलिए (**देवेषु यज्ञियो देवः**) देवोंमें पूज्य देव अर्थात् सब इंद्रियोंमें पूज्य आत्माही है, यह मन्त्रका वर्णन सार्थ हो जाता है, इस प्रकार यह वर्णन देवों के निवासक अग्नि का है। पाठक इस मन्त्रमें यह वर्णन देखें और देवोंद्वारा स्थापित अग्नि का वर्णन पूर्व मंत्रोंमें पढें। इन दोनों वर्णनोंका विचार करने से उनको स्पष्ट पता लग जायगा कि यद्यपि ये दोनों वर्णन दो भिन्न दृष्टिकोनोंसे हुए हैं, तथापि एकही पदार्थ के है। इंद्रियोंमें रहनेवाला, इंद्रियोंको पुष्टि देनेवाला, इंद्रियोंद्वारा प्रकट होनेवाला एकही आत्मा है। यही भाव विश्वव्यापक परमात्माके विषयमें सत्य है, क्योंकि वह परमात्मा सूर्यादि देवोंमें रहता है, इन देवताओंको पुष्ट करता है और इन देवताओंसे ही प्रकट हो रहा है। व्यापकता का वर्तुल छोटा लिया, तो वही वर्णन आत्मा के विषयमें हुआ और व्यापकता का वर्तुल अमर्याद बढा लिया, तो वही वर्णन परमात्माका हुआ। यह बात यहां स्पष्ट हो जाती है। वेद

की वर्णनशैली की यही अद्भुतता है। पाठक यहां इसका अनुभव करे। अस्तु। इस प्रकारका यह आत्माग्नि मनुष्यों में ही प्रज्वलित होता है, अर्थात् अन्य प्राणिमात्रमें यह वैसा तेजस्वी नहीं होता, जैसा कि मानवी देहमें होता है। इसका कारण स्पष्टही है कि, मानवी योनि ' कर्मयोनि ' है, यहां ही पुरुषार्थ होना संभव है; उस प्रकार अन्य योनियोंमें संभव ही नहीं है। पुरुषार्थके विना उन्नति होनी अशक्य है। इसलिए मन्त्र में कहा होता है कि, ' मानवी प्रजामें यह आत्माग्नि प्रदीप्त होता है ' और देखिए-

न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरा पितरा नूचिदिष्टौ ।। अधा मित्रो न सुधितः पावकोऽग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ।। (६८८; ऋ० ४,६,७)

' जिस (जनितोः) उत्पादक के (सातुः) तेजको मातापितादि कोई भी (न अवारि) प्रतिबन्ध कर नहीं सकते, इस प्रकारका (मित्रः न) मित्रके समान हितकारी (सुधितः पावकः अग्निः) सुरक्षित शुद्ध अग्नि (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाओंमें (दीदाय) प्रदीप्त होता है। '

जिस समय यह आत्माग्नि मानवी प्रजाओं में प्रदीप्त होता है, उस समय उस महान् आत्माका तेज फैलता जाता है, कोई उसको प्रतिबन्ध कर नहीं सकते। इतनाही नहीं, परन्तु जो प्रतिबन्ध करनेका यत्न करते है, वेही नष्टभ्रष्ट होते हैं, अथवा उनके प्रतिबन्ध के कारण उस महान् आत्माका तेज अधिक विस्तृत होने लगता है। इस बातकी साक्षी इतिहास में सर्वत्र मिलती है। आत्मिक बलकी उग्रता सर्वत्र प्रसिद्ध हो है। यह आत्मा सबका मित्र होने से जिसमें इसका तेज प्रदीप्त होता है, वह बडा यशस्वी हो जाता है। इस मन्त्रमें (मानुषीषु विक्षु दीदाय) मानवी प्रजाओंमें यह आत्माग्नि प्रदीप्त होता है, यह बात स्पष्ट कही है। इसका अर्थ यह है कि, अन्य प्राणियोंमें यह निवास करता है, परन्तु वहां यह विकसित नहीं हो सकता, क्योंकि उन्नतिसाधक योनि मनुष्ययोनि ही है। इसका वर्णन ऐतरेय उपनिषद् में देखिए-

ता एता देवता सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतन्...॥ ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ॥ १ ॥ ताभ्यो गामानयत्, ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ॥ ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ॥ २ ॥ ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति ॥ पुरुषो वाव सुकृतम् ॥ ता अब्रवीद्यथाऽऽयतनं प्रविशतेति ॥३॥ (ऐ० उ० २)

' वे सब देवताएं इस बडे समुद्रमें आ पडीं। सब देवताए उससे कहने लगीं कि, हमें स्थान दो कि जहां बैठकर हम अन्न खायेंगे। वह देवताओंके सम्मुख गौ लाया। देवताओंने कहा कि यह ठीक नहीं है, पश्चात् घोडा लाया, उसको देखकर देवताओंने कहा कि यह भी ठीक नहीं है। इसके अनन्तर मनुष्य लाया गया, उसे देखकर देवताएं कहने लगीं कि यह ठीक है, मनुष्य ही ठीक है। ऐसा कह कर सब देवताए अपने अपने स्थानपर इस मानवी देहमें बैठ गईं। '

यह विकास-वादका वर्णन स्पष्टतासे कह रहा है कि, मानवी योनि ही उत्कर्षकी योनि है और इसके अंगप्रत्यंगोंमें संपूर्ण देवताएं निवास कर रही हैं, और अपना अपना भोग्य भोग ले रही है। इन सब देवताओंका अधिष्ठाता आत्मा है, जिसके साथ देवताए आती हैं और वह जिस समय इस देहको छोडकर चला जाता है, उस समय चली जाती है। यह वर्णन ही वेदमन्त्रों में अनेक प्रकार के रूपरूपांतरोंसे आया है। अस्तु। तात्पर्य यह है कि यह आत्मा इस मानवी योनिमें ही उत्कर्षको प्राप्त हो सकता है और जिस समय इसका तेज फैलने लगता है, उस समय उसको कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती। यही वर्णन उक्त मन्त्रमे हैं। अब और एक दृष्टिकोन से देखिए। पूर्वस्थल में एक मन्त्र दिया ही है, जिसमें कहा है कि, यह आत्माग्नि देवों द्वारा प्रकट होता है। यही भाव निम्न लिखित मन्त्र मे भिन्न रूपक से वर्णन किया है--

(४४) दस बहिनें इसको प्रकट करती हैं।

द्विर्यं पंच जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु ॥ (६८९, ऋ० ४,६,८)

' इस अग्नि को (द्विः पंच स्वसारः) दो गुणा पांच बहिनें मानवी प्रजाओं में (संवसानाः) रहती हुईं, (जीजनन्) प्रकट करती हैं। '

दो गुणा पांच बहिनें अर्थात् दस बहिनें मानवी शरीर में हैं और ये दस बहिनें आत्माग्नि को प्रकट करती हैं।

पच ज्ञानेन्द्रियां और पंच कर्मेन्द्रियां इस देह में हैं और उन के द्वारा यह आत्मा प्रकट हो रहा है। अरणियों के घर्षण से जो अग्नि सिद्ध होता है, वह भी दस अंगुलियों से ही घर्षण होता है। इसलिये ये बहिनें कहलाती हैं। ये भाव इस मंत्र में स्पष्ट हैं।

अन्दर आत्मा का अस्तित्व है। यह बात इंद्रियों के द्वारा ही प्रकट हो रही है, यदि इंद्रियां न होतीं, तो अन्दर के मुख्य देव को जानना ही अशक्य होता। विचार कर के पाठक देखेंगे, तो उन को इस बात का पता लग जायगा कि, इंद्रियों के कार्य से ही आत्मा के अस्तित्व का अनुमान होता है। तात्पर्य, इंद्रियों से आत्मा प्रकट होता है। यही भाव देवोंद्वारा प्रकट होनेवाले अग्नि में है। पाठक यहां देखें कि, विभिन्न दृष्टिकोनों के वर्णनोंसे एक ही बात किस प्रकार व्यक्त हो जाती है। और इस मुख्य बात को ही सर्वत्र देखने का यत्न करें। इंद्रिय-शक्तियां आत्मा की बहिनें हैं, इस में अलकार की दृष्टिसे कोई अत्युक्ति ही नहीं है। परन्तु इस में एक विशेष विचार करनेयोग्य श्लेषार्थ भी है। '**स्व-सृ**' शब्द का अर्थ 'बहिन' है, परन्तु इस का यौगिक अर्थ (**स्वं सरति**) अपने निज के प्रति जो जाती है, अथवा (**स्वस्मात् सरति**) अपने निज से जो चलती है, वह '**स्व-सृ**' है। अर्थात् जागृति की अवस्थामें जो इंद्रियां आत्मा से शक्ति लेकर बाहर जाती हैं और सुषुप्ति अवस्था में इंद्रियां बाहर से आकर आत्मा के अन्दर लीन हो जाती हैं, वह सब इन्द्रिय-शक्तियां आत्मा की बहिनें ही हैं। यह श्लेषार्थ पूर्णतया आत्मा और इंद्रिय-शक्तियों में संगत हो रहा है। इस रीतिसे अनेक दृष्टिकोनों द्वारा ही सद्वस्तु के भिन्न भिन्न आशय प्रकट हो रहे हैं। वेद के वर्णन में यह श्लेषार्थ की अपूर्वता पाठक देख सकते हैं। यह अग्नि मनुष्यों के अन्दर ही है, इस विषय में निम्न मन्त्र देखिये—

त्वं होता मंद्रतमो नो अध्रुगंतर्देवो विदथा मर्त्येषु। (१००१; ऋ० ६।११।२)

'हे अग्ने' तू ((मर्त्येषु अन्त) मनुष्यों के अन्दर है और (विदथा) इस यज्ञ में हवनकर्ता तू ही है। तथा (मंद्रतमः) सुखदायक और (अ-ध्रुक्) द्रोह न करने-वाला देव तू ही एक है।'

अग्नि मनुष्य के अन्दर है, मानवी आयुष्य में जो शत-सांवत्सरिक यज्ञ चलता है, उसका होता अर्थात् याजक यही आत्माग्नि है। यह बात अब अधिक स्पष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वेद ही स्वयं कह रहा है कि, यह आत्माग्नि मनुष्य के अन्दर रहता है और द्रोह न करता हुआ सबको सुख देता है। यही सबको पूज्य और प्राप्तव्य है, क्योंकि यही सबसे मुख्य है। कितनी स्पष्टता से वेद यह कह रहा है, यहां देखनेयोग्य है। इतना स्पष्ट कथन होनेपर किसीको शंका नहीं होनी चाहिये। परन्तु वैदिक दृष्टिकोन ठीक प्रकार ध्यान में न आनेके कारण यह सब गडबड हो रही है। एक वार वेदका दृष्टिकोन समझमें आ गया, तो कोई शंका ही नहीं रहेगी। अस्तु।

इस आत्माग्नि के पूज्य होने के विषय में निम्न लिखित मन्त्र देखिये—

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः॥ (१२१४, ऋ० ८ ११-१)

'हे अग्ने ! हे देव ! तू मर्त्यों में व्रतपालक है और तू ही यज्ञोंमें पूज्य है।' मर्त्य शरीरमें अमर आत्मा है, इसलिए अमर की ही पूजा करनीयोग्य है। अमरको छोडकर मरने-वालेकी पूजा कौन करेगा ? सब प्रकार के यज्ञों में जिसकी पूजा होती है, वह यही आत्माग्नि है। यही व्रतपालक अर्थात् नियमपालक है। उन्नति के सब नियमों का पालन करके विकसित होना इसका ही स्वभाव-धर्म है। इस प्रकार आत्माकी उपासना वेदमंत्रोंद्वारा सूचित होती है। यही आत्मा सबका रक्षक है, इस विषय में निम्न मन्त्र देखिए—

(४५) प्रजाका रक्षक।

अग्निं द्वेषो योतवै नो मृणीमस्यग्निं शंयोश्च दातवे॥ विश्वासु विक्ष्ववितेव हव्यो भवद्वस्तु-र्ऋषूणाम्॥ (१४२३; ऋ० ८,७१,१५)

'(नः द्वेषः) हम शत्रुओंको (योतवै) दूर करनेके लिए अग्निकी (मृणीमसि) स्तुति करते हैं। तथा (शं योः च) सुखप्राप्ति और दुःखदूरीकरण के लिये अग्नि की उपासना करते हैं। क्योंकि यही अग्नि (विश्वासु विक्षु) सब प्रजाओंमें (अविता) रक्षण करता है और इसलिए (ऋषूणां) ऋषियोंका (वस्तु) निवासक (हव्यः)

और प्राप्तव्य हुआ है ।'

आत्माग्निकी उपासना करनेसे कौनसे लाभ होते हैं, यह इस मन्त्रमें उत्तम प्रकार वर्णन किया है- (१) शत्रु के साथ युद्ध करके उनको दूर भगानेका सामर्थ्य प्राप्त होता है, (२) शांति प्राप्त होती है और दुःख दूर होते हैं। क्योंकि यही आत्मिक बलसे युक्त होनेके कारण सब प्रजाओंमें सच्चा रक्षक है और इसीलिए ऋषि इसकी प्राप्तिके लिए यत्न करते हैं।

इस मन्त्रमें अग्नि शब्दसे आत्माका वर्णन स्पष्ट ही हुआ है। यह वर्णन आत्मामें ही सार्थ होता है, इस विषय में अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि इस समय तक यही एक विषय वारंवार आ गया है। यह आत्माग्नि मुख्य है, और इससे ही सब इंद्रियादिकों को सुख होता है, इस विषयमें स्पष्ट मन्त्र यह है-

महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते । आ विश्वेभिः स-रथं याहि देवै-र्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ॥ (१११६, ऋ० ७।११।१)

'हे अग्ने ! तू (अध्वरस्य) इस यज्ञका (महान् प्रकेत.) बडा ध्वज है। (त्वत् ऋतं) तेरे विना (अमृता.) देव (न मादयन्ते) सुखी नहीं होते। (विश्वेभिः देवैः) सब देवोंके साथ (स-रथं) अपने रथपर से आओ और (प्रथमः होता) मुख्य याजक बनकर (इह) यहां (नि सद) बैठो। ' देखिए, कैसा इस वर्णन का प्रत्येक वाक्य अपने अन्दर अनुभव होता है- (१) इस शत-सांवत्सरिक महायज्ञका यही आत्माग्नि मुख्य चिह्न है। (२) इस आत्माग्निके विना कोई इंद्रिय सुख का अनुभव कर ही नहीं सकती। (३) सब इन्द्रियशक्तियोंके साथ यह आत्मा यहां इस देहमें आता है और जानेके समय भी सबको साथ ले जाता हैं, मानो सब देव इसके रथ परसे यहां आते हैं, किंचित् काल रहते है और इसीके रथपर बैठकर इसके साथ ही चले जाते हैं। (४) यहां इस देहमें- इस कर्म भूमिमें-जो यह शतसांवत्सरिक यज्ञ चल रहा है, उसका मुख्य याजक यही आत्माग्नि है। इत्यादि प्रकार विचार करनेसे उक्त मन्त्रके कथनका साक्षात् अनुभव अपने शरीरमें ही होता है। और जिस समय अपनेमें यह दृष्टि खुल जाती है, उस समय वेदमन्त्रोंकी सत्यता अधिकाधिक अनुभवमें आ जाती है। सब अनुभव अपने अन्दर ही होना है, किसी बातका अनुभव बाहर नहीं हो सकता। अपने अन्दर जो अनुभव बीजरूपसे होता है, विस्तृत रूपसे वही अवस्था बाह्य जगत् में है, परन्तु यह तर्क से जानी जाती है, अर्थात् अनुभव की बात अपने अन्दर ही होती है। पाठक इस दृष्टि से मंत्रों का विचार करें और सत्य बातका साक्षात् अनुभव लेने और देखने का पुरुषार्थ करें। अब एक अनुभव की बात देखिये। देवों के साथ यह आत्माग्नि इस शरीर में आता है, रहता है और चला जाता है, यह वर्णन पूर्वस्थल में आया है। इस के आने का मार्ग देखिये—

(४६) देवोंके साथ अग्निका बैठनेका स्थान।

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावंतं प्रथमः सीद योनिं । कुलायिनं घृतवंतं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ (१०३८, ऋ ६-१५-१६)

'हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम सेनापते अग्ने ! तू प्रथम देवों के साथ आकर (ऊर्णा-वंतं योनिं) ऊनसे युक्त योनिके स्थान में (सीद) बैठ जाओ। और (सवित्रे) प्रसव करनेवाले यजमान के लिये (साधु) उत्तम प्रकार से (कुलायिन) घर बढानेवाले तेजस्वी यज्ञ को (नय) चलाओ।'

'सब देवों के साथ ऊनवाली योनि के स्थान में आकर बैठ जाओ।' यह मंत्र का पहिला कथन है। स्त्री का योनिस्थान देहका जन्मस्थान है, इसलिये स्पष्ट है कि, यदि किसी रीति से आत्माग्नि का अन्य देवो के साथ आगमन इस देह में होना है, तो योनिमार्ग से ही होना चाहिये, दूसरा कोई मार्ग नहीं। मंत्र के **'ऊर्णावंतं योनिं'** ऊनवाली योनि ये शब्द स्पष्टतया बता रहे हैं कि, गर्भधारणयोग्य तरुण युवती के ही सूचक ये शब्द हैं, क्योंकि तारुण्य में ही उस स्थान पर बालों की उत्पत्ति होती है। गर्भधारणा के समय सब दैवी शक्तियों के समेत जीवात्मा यहां आवे और प्रवेश करे, यह इच्छा यहां स्पष्ट रीति से व्यक्त हो रही है।

शरीर में देवों का अंशावतार होने का वर्णन ऐतरेयोपनिषद् के प्रारम्भ में ही है। अग्नि, वायु, रवि आदि देव क्रमशः वाक्, प्राण, चक्षु आदि के रूप धारण करके इस

शरीर में आ बसे हैं और यहां का कार्य कर रहे हैं। यह उपनिषद का कथन सत्य होने के लिये आत्माको अन्य देवों के साथ इस शरीर में आना आवश्यक ही है। इस का आगमन जिस मार्ग से होता है, उस मार्ग का वर्णन उक्त मन्त्र में किया है। रजवीर्य का संयोग होकर जिस समय गर्भ बनने लगता है, उस समय आत्मा के समेत सब देवताएं आती है और अपने अपने स्थान में रहती हैं, (गं उ २) आत्माग्नि (स्वनीक=सु+अनीक) उत्तम सैन्ययुक्त है, अन्य देवताओं के अंश ही उस का सैन्य है। जहां यह सेनापति जाता है, वहां उस के सैनिक जाते है। (विश्वेभि देवेभिः) सब देवों के अंशों के साथ यह आत्माग्नि ऊनवाली योनि में आता है।

इस कथनसे एक बात सिद्ध होती है कि, जगत्में जितने देव है, अर्थात् दैवी तत्त्व हैं, उन सबके अंश इस देहमें है। पंच महाभूत पांच बडे देव हैं। इन महाभूतोंके अंश इस देहमें है। इसी प्रकार अन्य देवोंके अंश इस देहमें रहते है। देवताका जो अंश इस शरीरमें आता है, वह इस शरीरका निज बनकर रहता है। पृथ्वीका अंश मिट्टीके रूप से शरीरमें नहीं है, परन्तु उसका शरीर बन कर वह अंश रहता है। इसी प्रकार अन्यान्य देवों के विषय में समझना चाहिए। ये सब देव यहां आकर इस शतसांवत्सरिक सत्र को चलाते है। यह बात (**यज्ञं नय**) 'यज्ञ को चलाओ' इन शब्दों द्वारा सूचित की है। यह यज्ञ (**कुलायिनं घृतवंतं**) कुल अथवा घर बढानेवाला और तेज वृद्धिंगत करनेवाला है। आत्मा इस शरीरमें जब सपूर्ण देवोंके साथ आता है, तब घर बढता है, इसका अनुभव संतान उत्पत्ति की खुशीसे पाठकोंको हुआ ही है। इसलिए इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। पाठक देखें कि, वैदिक तत्त्वज्ञान कैसा प्रत्यक्ष होता है, देखिए निम्न मन्त्र-

(४७) यज्ञका झंडा।

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे। इंद्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः॥ (८४३; ऋ० ५,११,२)

' (नरः) मनुष्य (प्रथमं पुरोहितं) पहिले पूर्ण हितकारी (इंद्रेण देवैः) इंद्रके तथा अन्य देवोंके साथ (सरथं) एक रथमें आनेवाले अग्निकी प्रदीप्ति (त्रि-सधस्थे) तीन स्थानोंमें करते हैं। यह अग्नि यज्ञका ध्वज है। वह उत्तम यज्ञ करनेवाला (बर्हिषि) अन्तःकरणमें बैठकर हवन करता है। '

इन्द्र और अन्य देवोंके साथ एक रथमें आनेवाला यह अग्निदेव है। इंद्र देवोंका अधिपति है। तैतीस कोटि देवोंके साथ इंद्रको भी अपने रथपर से लानेवाले अग्निका रथ कितना बडा होगा? क्या इसका अंदाजा हो सकता है? यदि सूर्यचंद्रादि सबही देव अग्निके रथ में बैठने हैं, तो उस अग्निका रथ इस विश्वके बराबर विशाल होना चाहिए। तात्पर्य, व्यापक दृष्टिसे देखा जाय, तो संपूर्ण जगत् ही इस अग्निका रथ है; इस रथपर सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु आदि सब देव बैठे हैं। यहां विश्वव्यापक परमात्मा रथी है और अन्य देव उसके रथपर बैठनेवाले उसके सहायक हैं। इस का प्रतिरूप दूसरा छोटा रथ है, जिसको देह कहते हैं, इसमें आत्माग्नि रथी है और संपूर्ण देवताओंके अंश अर्थात् इंद्रिय उसके सहायक है। यह जीवात्माका रथ छोटा है और परमात्मा बडा है। तथापि दोनोंमें, छोटे और बडेपन को छोड दिया जाय, तो तत्त्वोंकी एकता ही है। देह में अंशरूप ३३ देव है और विश्वमें विस्तृत ३३ देवता विराजमान हुए हैं। इस प्रकार विचार करके मन्त्रका तत्त्व जानना चाहिए। इस मन्त्रका तत्त्व इस शरीर में ही प्रत्यक्ष होता है, इसलिए अध्यात्मदृष्टिसे मन्त्रका अर्थ मुख्य और अन्य रीतिसे गौण है।

' यज्ञ का झंडा ' यही आत्माग्नि है। शरीर में जो शतसांवत्सरिक सत्र चल रहा है, उस का सब से प्रमुख अधिकारी यही है, यही पूर्ण हितकर्ता है। इस की पूजा तीन (त्रि-सधस्थे) तीन स्थानों में होती है- (१) मस्तिष्क, (२) हृदय और (३) पेट में इस की पूजा हो रही है। जो **केवल पेट की पूजा करते है, वे गिरते हैं; परन्तु जो साथ साथ मस्तिष्क के ज्ञान से और हृदय की भक्ति से भी इस की पूजा करते हैं, वे दुःख के पार हो जाते हैं।** तीन स्थानों में, तीन धामों में इस प्रकार इस की उपासना करना आवश्यक है। यही तीन धामों की यात्रा है, जो करने से पुण्य मिलता है और न करने से पाप लगता है। यही आत्माग्नि मस्तिष्क में ज्ञानरूप कार्य करता है, हृदय में शांति का अनुभव

करता है और पेट में भक्षक बनकर अन्नरसों को अपनाता है। ये इस के कार्य देखनेयोग्य हैं। वेद में इन तीन धामों और स्थानों का वर्णन अनेक स्थानोंमें है, इसलिये इस बात का ठीक ज्ञान होने पर उन मंत्रों की संगति लग सकती है। यह आत्मा (बर्हिषि) अन्तःकरण में बैठता है, यहीं इस का मुख्य स्थान है। यही सब का केंद्र है, यहीं से यह राजा सर्वत्र प्रेरणा भेजता है, यहींसे यह यजमान सर्व यज्ञमण्डप का यज्ञप्रबन्ध करता है, यहीं से यह रथी अपने रथके घोडे चलाता है और विरोध करनेवाले शत्रुओं से लडकर अपना जय प्राप्त करता है। इसीलिए इसको (सु+क्रतु) उत्तम कर्म करनेवाला कहा है। इस प्रकार जो उत्तम कर्म करता है, उसकी शक्ति विकसित होती है और जो नहीं करता, उसका विकास वैसा नहीं होता। इसलिये ही कर्मका महत्त्व बडा भारी है। इसका यह यज्ञ किस स्थानमें दिखाई देता है? ऐसा प्रश्न यहां पूछा जा सकता है, उसका उत्तर निम्न लिखित मंत्रमें देखिये—

(४८) देवोंमें यज्ञ।

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ॥
[६१८; ऋ० ३।२१।१]

' इस हमारे यज्ञ को (अ-मृतेषु) अमर देवोंमें (धेहि) पहुंचाओ और हे (जात-वेदः) वेदजनक अग्ने ! इन हवनीय पदार्थोंको स्वीकार करो। '

इस मंत्रमें कहा है कि, यह अग्नि यज्ञके हव्य पदार्थोंको लेता है और देवों में पहुंचाता है। जो अग्नि हवनकुंड में रहता है, उसमें डाली हुई आहुतियां सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि देवोंतक पहुंचती हैं, या नहीं इस विषयमें कोई प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है। यह बात तर्कसे नहीं विदित हो सकती। किसी ग्रंथ के वचनपर कोई विश्वास करे, वह बात दूसरी है, परंतु प्रत्यक्ष अनुभव इस विषयमें कोई भी नहीं है। परंतु इसका अनुभव अध्यात्ममें अर्थात् अपने शरीरमें प्रत्यक्ष हो सकता है। जो अन्न पेटमें डाला जाता है, उसके अंश संपूर्ण इंद्रियों और अवयवों में यथाभाग पहुंचते हैं। इस जठराग्निमें डाली हुई आहुतिएं सूर्यके प्रतिनिधिरूप नेत्रमें जाती हैं और वहांकी पुष्टि करती हैं, इसी प्रकार अन्य देवताओंके प्रतिनिधिभूत जो अन्य इंद्रियगण हैं, उनकी भी इसी प्रकार पुष्टि होती है। यह प्रतिदिनके अनुभवका ज्ञान है। यद्यपि यह आत्माग्नि अन्नके विभाग किस प्रकार करता है और इंद्रियों में रहनेवाले देवोंतक किस रीति से पहुंचाता है, इसका भी हमें प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है; तथापि अनुभव से पता है कि, वह पहुंचाता है और वहांके देवताकी पुष्टि करता है। वैद्यलोग इसका ज्ञान अधिक विस्तार से बता सकते हैं, उस प्रकार सामान्य मनुष्यको बताना असंभव है। परंतु अन्न खानेके बाद शरीरकी पुष्टिका अनुभव बताता है कि, यह आत्माग्निका ही कार्य है, क्योंकि आत्माग्नि चला गया, तो शरीरकी पुष्टि नहीं होती। इस बातका विचार करनेसे-इसका नाम ' (हव्य-वाह्)हव्य पदार्थोंको देवताओंतक पहुंचानेवाला ' किस उद्देश्यसे रखा है, इस बातका पता लग सकता है।

(४९) यही दूत है।

दूत नाम सेवक का होता है। आज्ञाकारी सेवक आज्ञाके अनुसार कार्य सत्वर करता है। पेटमें रखा हुआ अन्न संपूर्ण इंद्रियोंतक पहुंचानेका दूतका कार्य यह करता है। इसीलिये इस आत्माग्निको अनेक सूक्तों में ' दूत ' कहा है—

विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत ॥
श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ।(१२८७;ऋ.८।२३।१८)

' (स-जोषसः) एक विचारसे कार्य करनेवाले सब देवोंने तुमको दूत (अक्रत) बनाया है। हे देव ! तू पहला (यज्ञियः) पूज्य देव है। '

इस मंत्रके प्रथम अर्धमें कहा है कि, " **देवोंने इसको दूत बनाया है।** " और दूसरे अर्ध भागमें कहा है कि, "**यह पहला पूज्य देव है।**" जो सबसे प्रथम पूजनीय देव है, वह सबसे श्रेष्ठ देव होना स्वाभाविक है, इसलिये यहां शंका हो सकती है कि, जो सबसे श्रेष्ठ देव है, वह सब गौण देवों का दूत कैसा हो सकता है? इस शंकाका समाधान होनेके लिये एक उदाहरण लेता हूं। राजा, महाराजा अथवा सम्राट् अपने राज्यमें सबसे श्रेष्ठ होता है, उसके नीचे अनेक ओहदेदार होते हैं, और इनके आधीन सब प्रजाजन रहते हैं। तथापि सब ओहदेदारोंको प्रजाके नौकर (Public servant) ही कहा जाता है। प्रजाके नौकरोंमें जो ' **सबसे बडा नौकर** ' होता है, वही ' **राजा, महाराजा और सम्राट्** ' कहलाता है। तात्पर्य यह है कि, यद्यपि राजाके और राजपुरुषों के आधीन प्रजाजन

होते हैं, तथापि वे सबही अधिकारी प्रजाजनोंके नौकर ही होते हैं, और राजा नौकरोंका भी बडा नौकर होता है। इसलिये वही राजा इतिहास में सुपूजित होता है कि, जो अपनी नौकरी सबसे उत्तम करता है। जिस प्रकार अधिभूत मे अर्थात् राष्ट्रमें यह बात सत्य है, उसी प्रकार अध्यात्ममे भी सत्य है। यहां आत्मा राजा महाराजा और सम्राट् है और इसी लिये उक्त प्रकार वह सबका सबसे बडा दूत, नौकर अथवा सेवक है। इसी कारण जो अन्न उसके पास दिया जाता है, वह सब देवोंके पास पहुंचाता है, तथा हरएक प्रकारसे (देवों) इंद्रियोंकी सेवा करता है। वह अपने लिये कुछ भी चाहता नहीं। जो कुछ चाहता है, सब इंद्रियोंके लिये ही चाहता है। यह इस आत्माग्निका दूतकर्म विचार की दृष्टिसे देखनेयोग्य है। परमात्माका यही दूतकर्म त्रिभुवनमें हो रहा है।

पाठक यहां एक नया दृष्टिकोणका अनुभव कर सकते है। पूर्व समयमें इस आत्माग्निका वर्णन अधिकारीके भावसे किया, अब उसी का वर्णन दूतभावसे किया जाता है। वेदमें इस प्रकार अनेक दृष्टिकोण है। हरएक दृष्टिकोणसे वस्तु देखी जाती है और उसीके अनेक विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया जाता है। यह प्रयास इसलिये है कि, उस सद्वस्तुका सब पहलुओं से यथार्थ ज्ञान सबको हो जावे। जो पाठक इन सब दृष्टिकोणों को यथावत् जान सकते हैं, वेही वेदकी गंभीरता जान सकते हैं। अस्तु। अब इसके अनंतर अग्निके गुहानिवासित्वका विचार करेंगे। इसके विचारसे अग्निके शुद्ध स्वरूपका पता लग सकता है।

(५०) गुहासंचारी अग्नि।

गुहासंचारी अग्निका स्वरूप अब देखना है। इसका मूल स्वरूप देखनेके लिये " गुहा " शब्दका वैदिक अर्थ देखना चाहिये। इस लिये निम्नलिखित वचन देखिये—

आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्॥ (कठ उ २।२०)
विद्धि त्वमेनं निहितं गुहायाम्॥ (कठ. उ. १।१४)
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्॥ (कठ. उ. २।१२)
आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः॥ (श्वे. उ ३।२०; महा. ना. उ. ८।३)
एष पंन्त्रधात्मानं विभज्य निहितो गुहायाम्॥ (मैत्री उ २।६)
एतद्यो वेद निहितं गुहायाम्॥ (मुंड. उ. २।१।१०)
अंतश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वतो मुखः॥ (महा. ना. उ. १५।६)
आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदम्॥ (मुंड. उ. २।२।१)

इस प्रकार " गुहा " शब्दका प्रयोग उपनिषदोंमें अनेक स्थानपर आया है। इन सब वचनोंका यही तात्पर्य है कि **' आत्मा इस प्राणीकी (गुहा) अर्थात् हृदयमें रहता है।'** गुहा शब्दका अर्थ इस दृष्टिसे ' हृदय, अंतःकरण,' आदि है। कोशोंमें भी ' गुहा ' शब्दका अर्थ ' हृदय, बुद्धि, अंतःकरण, गुफा, गुप्त रहनेका स्थान ' इस प्रकार दिया है। आत्मा हृदय की गुहामें छिपा है, वहांही उसको देखना चाहिये, यह भाव वेद और वेदांतशास्त्रमें सर्वत्र है इस प्रकार गुहा शब्दका अर्थ 'हृदय' निश्चित हुआ। जो गुहामें होता है, उसको ' गुह्य ' कहते हैं। हृदयके अंदर अपने मनमें ही जो रखनेकी बात होती है, उसको गुह्य कहते है। आत्माका भी नाम गुह्य इसलिये है कि, वह हृदयमें गुप्त होता है। इस दृष्टिसेभी गुहाका अर्थ अंतःकरणही होता है। इस अर्थको लेकर निम्नलिखित मंत्र देखिये—

पश्वा न तायुं गुहाचरन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम्॥ सजोषा धीराः पदैरनुग्मन्नुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः॥(१२४-१२५; ऋ १।६५।१)

इस मंत्रके दो अर्थ हैं। एक अर्थ चोरके विषयका है और दूसरा आत्माके विषयका है। इस मंत्रका ऋषि पराशर है और देवता अग्नि है। देखिये इसके दोनों अर्थ—

(१) चोरविषयक अर्थ— (न) जैसा पशुकी चोरी करके (तायु) चोर उस (पश्वा) पशुके साथ (गुहा-चरन्तं) पर्वतों की गुहाओंमें जा कर छिप जाता है, वहां वह चोर अपने साथ (नमः वहन्तं) अन्न भी रखता है और (नमः युजानं) शस्त्र की भी योजना करता है। इस प्रकारके बडे डाकू को पकडनेके लिये (स-जोषाः यजत्राः विश्वे धीराः) एक विचारसे प्रयत्न करनेवाले सब धैर्यशाली वीर [पदैः अनुग्मन्] पशुके और चोरके पांवोंके चिह्न जो भूमिपर लगे होते हैं, उनको देख देखकर पास पहुंचते हैं और [उप सीदन्] बिलकुल समीप जाकर इसको पकडते हैं। इसी प्रकार धैर्यसे चोरको पकडना चाहिये।

जो डाकू, चोर, लुटेरे आदि होते है, वे शहरों में चोरी करके पशु, धन, अन्न आदि पदार्थ अपने साथ लेकर भागते हैं और पर्वतों के दुर्गम स्थानों में जाकर छिपते हैं । वहां वे रहते है, अपने साथ का अन्न खाते हैं और पकडनेका प्रयत्न करनेवाले नागरिकोंके ऊपर अपने पासके शस्त्रप्रयोग करते हैं और पास आने नहीं देते ! इस प्रकारके चोरोंको पकडकर दंड देना चाहिये । पकडने की यह युक्ति है कि सबको एक विचारसे मिलकर, संघ बनाकर, आगे बढना चाहिये और उसके पदचिह्नों को देखदेखकर उसका पता लगाना चाहिये और युक्तिसे उसको पकडना चाहिये । यह चोरको दंड देने और उससे जनताका बचाव करनेके विषय में वेदका उपदेश है । इसका यहां अधिक विचार करने की आवश्यकता नही । जैसी गुहामें चोरकी खोज की जाती है, उसी प्रकार हृदयकंदरामें आत्माकी खोज होती है । इस विषय का अर्थ देखिये—

(२) **आत्मा के विषयमें अर्थ-** (न) जिस प्रकार (तायुः) चोर पशुके साथ गुहामें रहता है, उस प्रकार (पश्वा) इंद्रियादि शक्तियों को लेकर (गुहा चरन्तं) जो हृदयमें रहता है और वहां (नमः वहन्तं) नमस्कारों को स्वीकार करता है और (नमः युजानं) नमन का योग करता है, इसको देखनेके लिये (स-जोषाः धीराः) समान ज्ञानवाले बुद्धिमान् लोग (पदैः) मन्त्रों के पदों के साथ, अथवा आत्माके जो पद इंद्रियादि स्थानोंमें दिखाई देते हैं, उनको देखदेखकर (अनु-ग्मन्) पीछेसे जाते है और वे (विश्वे-यजत्राः) सब याजक (उप सीदन्) पास बैठते हैं, अर्थात् उपासना करते हैं ।

एकही मंत्रमें ये दोनों भाव देखनेयोग्य हे । चोरकी उपमा आत्माको देनेसे कोई हानि नहीं है । '**छिपकर रहने का भाव**' ही दोनों स्थानपर विशेषतया देखना है। सब इंद्रियोंकी शक्तियोंका आकर्षण करनेवाला यह '**कृष्ण**' किंवा '**संकर्षण,**' गौवों (इंद्रियों) का पालन करनेवाला यह '**गोपाल,**' गौवोंके साथ पर्वतकी गुहामें छिपकर रहनेवाला यह मायाविहारी '**गोपनाथ,**' पशुओंकी पालना करनेवाला यह '**पशुपति**' एकही है। इन सब विविध रूपकों और अलंकारों में एकही आत्मतत्वका वर्णन होता है । इसीको '**चोर-जार-कपटनाटकी**' भी कहा जाता है !!

यद्यपि ये शब्द बाह्य अर्थमें निंदाव्यंजक हैं, तथापि इसका गुप्त अर्थ बुरा नहीं है । रुद्रके वर्णन में '**तस्कर, स्तेन, स्तेनानां पतिः**' ये 'चोर' वाचक शब्द रुद्रदेवताके लिये आये है। रुद्र पशुपति है अर्थात् पशुपतिही तस्कर है । इसका तात्पर्य इतनाहि है कि, ये शब्द किसी एक आशयके साथ मंत्रमें देखने होते हैं। अर्थात् 'चोरके समान छिपकर रहनेवाला आत्मदेव है । इसमें '**गुप्त रहना**' ही देखना है, चोर का दूसरा भाव देखना नहीं है । अब इस आत्माकी खोज कैसी करनी है, देखिये । एकविचारसे, एकनिष्ठा से अनुष्ठान करने का निश्चय करना चाहिये । उसके जो पद अर्थात् चिह्न इंद्रियों और अवयवों में दिखाई देते है, उन को देखते हुए उसका मार्ग ढूंढना चाहिये । इन पदोंपर अपना कदम रखकर जायेंगे, तो संभवतः उसके मूल स्थान-गुहामें-पहुच सकते है और वहां उसका पता लगा सकते है । वह जिस गुहामें छिपकर बैठा है, उसके पता लगानेका यही एक उपाय है । इसके गुहानिवासी होनेके विषयमें और एक मन्त्र देखिये—

हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद्गुहा-निषीदन् ॥ विदन्तीमत्र नरो धियं धा हृदा यत्तष्टान्मंत्राँ अशंसन् ॥ [१४६, ऋ० १।६७।३]

'(विश्वानि नृम्णानि) सब सुखों को (हस्ते दधानः) अपने हाथमें धारण करनेवाला, (गुहा निषीदन्) अपनी अंतःकरण की गुहामें बैठनेवाला, (देवान् अमे धात्) सब देवों को अर्थात् इंद्रियों को जीवनमें धारण करता है । (धियं-धाः नरः) बुद्धि को धारण करनेवाले नर (अत्र) इस गुहामें ही (ईं विदंति) इसको जानते हैं, (यत्) जिस समय (हृदा तष्टान् मंत्रान्) हृदयसे निकले हुए सुविचारों को (अशंसन्) कहते हैं ।'

जिस समय हृदयमें भक्ति के भाव चलने लगते हैं और दिलमें सच्ची भक्ति होती है, उसी समय ज्ञानी मनुष्य इस को हृदयकंदरामेंही प्राप्त करते हैं । यह यहां हृदयमें बैठा हुआ, सब सुखों को अपने पास रखकर, सब इंद्रियों में जीवन का प्रवाह चलाता है । पाठक इस वर्णन से जान सकते हैं कि, इस मंत्रमें जिस अग्निका वर्णन है, वह अग्नि कौन है? निःसंदेह चूल्हेमें जलनेवाली आग इस मंत्रमें अभिप्रेत नहीं है । मनुष्यके हृदयमें जो आत्माग्नि है, वही

यहां वर्णित है। यहां (१) सब सुखों को अपने में धारण करता है, (२) इद्रियोंमें जीवनका प्रवाह चलाता है और (३) भक्तिकी भावनासे आनंदित होकर यही ज्ञानियोंको प्राप्त होता है। और देखिये—

य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ॥
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्रववाचास्मै ॥
[१५०-१५१, ऋ० १।६७।४]

'(यः) जो ज्ञानी (गुहा भवन्तं) हृदयकंदरामें रहनेवाले (ईं) इसको (चिकेत) जानता है, (यः) वह मानो (ऋतस्य धारां) सत्यके स्रोतको (आससाद) प्राप्त करता है। (ये च ऋतानि सपन्तः) जो सत्यका आश्रय करनेवाले पुरुष हैं, जो सत्याग्रही है, वे (आत् इत्) निश्चयसे (अस्मै) इसके लिये ही (वसूनि प्रववाच) धन है, ऐसा कहते हैं। अर्थात् सब धन इसी का है, ऐसा कहकर इसीको अपना सर्वस्व अर्पण करते है।'

हृदयमें जहां यह आत्माग्नि रहता है, वहांसे ही सत्यका स्रोत चलता है और इसीलिये जो सत्यके ऊपर स्थिर रहनेवाले होते हैं, वे ही इसको प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार नदीके प्रवाहके साथ उलटा जानेसे नदीके उगम-स्थानतक पहुच सकते हैं, उसी प्रकार सत्यकी नदी इससे शुरू होती है, इसलिये जो सत्यका आश्रय करते है, वे इसके पास पहुंचते हैं, क्योंकि इसके पास सत्य है और इससे दूर असत्य है। इसके पास जितना जितना जाय, उतना उतना सत्य अधिक होता है और जितना इससे विमुख होता है, उतना असत्य पास आने लगता है। इसी कारणही कहते हैं कि असत्य छोडकर सत्य को पास करने से देवत्व प्राप्त होता है। अस्तु। इस रीतिसे इन मन्त्रों का विचार करनेपर निश्चय होता है कि यह गुहानिवासी अग्नि आत्मा ही है। और देखिये—

गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिः॥ (४५५;ऋ० ३।१।९)

'शुभ मित्रोंके साथ गुहामें संचार करनेवाला' यह अग्नि है। यह भी आत्माग्निकाही रूपक है। आत्माग्नि के शुभ मित्र संपूर्ण इंद्रियशक्तियांही हैं। क्योंकि ये शक्तियां इसके साथ आती हैं, इसके साथ रहती हैं और इसके जानेके समय इसके साथ चली जाती हैं। अर्थात् मित्रवत् इनका बर्ताव होता है। कई समझते हैं कि, इसका ज्ञान प्राप्त होना कठिन है, परन्तु वेद कहता है कि यह बात सुगम है, देखिये—

चित्रं सन्तं गुहाहितं सुवेदं ॥ (६९८;ऋ० ५।७।६)

'यह गुहानिवासी बडा विलक्षण है, परन्तु यह (सु-वेदं) उत्तम प्रकारसे अथवा सुगमतासे जाननेयोग्य है।' इन मन्त्रोंके विचारसे अग्निका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। यह विचार यहांही समाप्त करके और एक रीतिसे विचार करेंगे। सहचारी देवोंके विचारसे इसका विचार अब करना है।

(५१) अग्निके साथी अनेक देव।

अग्निके साथी जो अनेक देव हैं, उनकी संख्याका उल्लेख निम्न मन्त्रमें किया है। इसलिये वह मंत्र देखिये-

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ॥ (५०८; ऋ० ३।९।९)

'तीन सहस्र, तीन सौ, तीस और नौ देव इस अग्निकी (सपर्यन्) सेवा करते हैं।' इस मन्त्रमें अग्निदेवकी पूजा अथवा सेवा करनेवाले देवोंकी संख्या कही है। जहां अग्निदेव जाता है, वहां उसके साथ ये भी देव जाते हैं। ये देव उसके रथपरसे जाते हैं और अग्निके साथ उसके रथपर बैठकर ही आते हैं। देखिये इसका वर्णन-

एभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ॥ पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ (४८८, ऋ० ३।६।९)

'हे अग्ने! आपके अश्व (वि-भवः) प्रभावशाली हैं, इसलिये (एभिः) इन सब देवोंके साथ (स-रथं) एक ही रथ परसे अथवा (नाना-रथ) अनेक रथोंके ऊपर (आ याहि) आओ। पत्नियोंके साथ तीस और तीन देवोको बल के लिये यहां ले आओ और आनंदित रखो।'

इस मंत्रमें ३३ देवोंका संबंध अग्निके साथ बतलाया है। पूर्व मंत्रमें ३३३९ देवोका संबंध वर्णन किया है।

९
३
३३
३३३
३३३९

यह देवोंकी संख्या विशेष महत्त्व रखती है। उक्त संख्या बढनेका क्रम ३३ करोड तक है। स्थानस्थानमें इस संख्या

का वर्णन ब्राह्मणोंमें आता है। एक मुख्य देव है, जिसको आत्मदेव कहते हैं। उसके साथ अनेक देवताएं हैं। अन्य देवताएं प्राकृतिक शक्तियां हैं और एक देव आत्मा है। आत्मा और प्रकृति, पुरुष और प्रकृति, आदि शब्द इस भेदका वर्णन कर रहे हैं। आत्माकी शक्तियां प्रकृतिमें जाकर सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, अग्नि, वायु, जल आदि अनेक देव बने हैं। इसका क्रम निम्न लिखित प्रकार है-

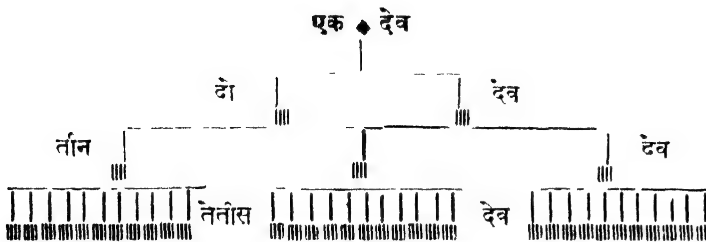
१ एक देव--आत्मा।

२ दो देव-आत्मा और प्रकृति, पुरुष और प्रकृति, इत्यादि।

३ तीन देव—पृथ्वीस्थानपर अग्नि, अंतरिक्ष स्थानपर विद्युत् और द्युस्थानमें सूर्य। त्रिमूर्ति।

३३ तेतीस देव— ११ पृथ्वीपर, ११ अंतरिक्षमें, ११ द्युलोकमें।

इन्हीं के विभाग ३३३९ और इसी क्रम से इससे भी अधिक हुए हैं। इसका चित्र निम्न प्रकार बन सकता है—



इस प्रकार प्रत्येकके और भेद होनेसे अनेक देव हो जाते हैं। ये सब '**अनेक विभिन्न देव**' हैं। ये विभिन्न देव '**एक अभिन्न देव**' के साथी हैं।

(१) **एक अभिन्न देव (आत्मा)** = आत्मा।

(२) **अनेक विभिन्न देव (अनात्मा)** = देवताएं।

यह कल्पना ठीक प्रकार ध्यानमें आ गई, तो वेदके बहुतसे मन्त्रोंके वर्णन सुगमतया ध्यानमें आ सकते हैं। इसलिये पाठकोंसे प्रार्थना है कि, वे इस कल्पनाको ध्यानमें लानेका यत्न करें।

अनेक विभिन्न देवोंमें एक अभिन्न देवकी शक्ति कार्य करती है, इसलिये एक अभिन्न देव श्रेष्ठ और अनेक विभिन्न देव गौण हैं। पूर्वोक्त मंत्रमें एक अग्निदेवके साथी ३३३९ अथवा ३३ होनेका वर्णन है। इसका भाव इसी प्रकार समझना चाहिये। इस समयतक के वर्णन से पाठकों के मनमें यह बात आ गई होगी, कि इन मन्त्रोंमें जो अग्नि शब्दसे वर्णन हो रहा है, वह मुख्यतया '**आत्माग्नि**' का ही वर्णन है। इस आत्माग्निके साथ तीन, तेतीस अथवा इसी प्रमाणसे अधिक देवताएं आतीं हैं, रहतीं हैं और जातीं हैं। इन सबका आना और रहना इस शरीरमें होता है, इस विषयमें पूर्व स्थलमें बहुत बार कह दिया है। अस्तु, इस प्रकार अग्निदेवके वर्णनसे मुख्यतया आत्माका वर्णन होता है। और इसकी सूचनाएं पूर्वोक्त प्रकार स्थानस्थान के सूक्तोंमें वर्णन की गई हैं। अब अग्निदेवके वर्णनमें 'सप्त' अर्थात् 'सात' संख्याका विशेष महत्त्व है, इसका विचार करके निश्चय करना है कि यह किस बातका वर्णन है-

(५२) "सात" संख्या का महत्त्व।

वैदिक तथा लौकिक सारस्वतमें अग्निके वर्णनमें '**सप्त-हस्त**' '**सप्त-जिह्व**' आदि शब्द आते हैं। [१] सात हाथोंसे युक्त। [२] सात जिह्वाओंसे युक्त यह उन शब्दोंका भाव है। देखिये—

सप्तहस्तश्चतुःशृंगः सप्तजिह्वो द्विशीर्षकः॥ त्रिपात्प्रसन्नवदनः सुखासीनः शुचिस्मितः॥ स्वाहां तु दक्षिणे पार्श्वे देवीं वामे स्वधां तथा॥ बिभ्रद्दक्षिणहस्तैस्तु शक्तिमन्नं स्रुचं स्रुवम्॥ तोमरं व्यजनं वामैर्घृतपात्रं च धारयन्॥ आत्माभिमुखमासीन एवं रूपो हुताशनः॥

हुताशन अग्निका यह वर्णन सुप्रसिद्ध है। इसमें 'सप्त-हस्त, सप्त-जिह्व' शब्द हैं। यह पौराणिक वर्णन जिस वेदमंत्रके आधार पर रचा गया है, वह मंत्रभी यहां देखिये—

(५३) सात हाथ।

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश॥ (१८९७, ऋ. ४।५८।३)

इस अग्नि देवताके मंत्रका आशय भगवान् पतंजलि

मुनिने शब्दविषयक लिया है और बताया है कि, यहांके ' सप्त हस्त ' शब्दका भाव सात विभक्तियां है । इस मन्त्रका शब्दविषयक यह एक अर्थ है। परंतु इसके अनेक अर्थ हैं, क्यों कि यह ' **कूट मंत्र** ' है, इसका विशेष स्पष्टीकरण ' **तर्कसे वेदका अर्थ** ' इस पुस्तकके अंदर ' **भाष्यकारोंका मतभेद** ' इस शीर्षक के लेखमें विशेष रूपसे दिया है। पाठक वह लेख इस प्रकरणमें अवश्य अवलोकन करें । इस कूट मन्त्रके अनेक अर्थ होनेका कारण वहां ही स्पष्ट कर दिया है। इसके अध्यात्मपरक अर्थ केवल आत्माके विषयमेंही होते हैं, प्रायः सब भाष्यकार इसको मानते हैं । आरण्यकादिकोंमें यह प्रणव अर्थात् ओंकार पर मन्त्र घटाया है । इससे स्पष्ट है कि, आत्मा पर इसका अर्थ होनेके प्रसंगमें इस मन्त्रका ' **सप्त-हस्त** ' शब्द आत्माकी सात शक्तियोंका ही वाचक होगा । यही बात ' **सप्त-जिह्व** ' शब्दके विषयमें समझनी चाहिये । यहां सूचना मिलती है कि, आत्माकी सात शक्तियां हैं, जो ' **सात हाथ** ' अथवा ' **सात जिह्वाएं** ' शब्दोंद्वारा वर्णन की गई हैं, यही बात निम्न लिखित मंत्रमें देखिये —

(५४) सात जिह्वाएं ।

दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या ।
वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥
(४८१, ऋ. ३।६।२)

' हे अग्ने ! [महिना] अपनी महिमासे पृथ्वीमें और द्युलोकमे वह्निरूप तेरी सात जिह्वाएं [वच्यन्तां] घोषणा करें । ' इसमें अग्निकी सात जिह्वाओंका वर्णन है । इन सात जिह्वाओंसे अग्नि तीनों लोकोंमें घोषणा कर रहा है । प्रत्येक जिह्वाकी अलग अलग घोषणा हो रही है । एक जिह्वाकी घोषणा दूसरी जिह्वाकी घोषणासे भिन्न है, यह बात यहां ध्यानमें धरने योग्य है । इस मंत्रमें सात जिह्वाओंका स्वरूप [वह्नयः सप्तजिह्वाः] वह्निरूप है, ऐसा स्पष्ट कहा है । वह्नि शब्द जैसा अग्निवाचक है, उसी प्रकार ' वाहक ' अर्थमेंभी प्रसिद्ध है । अर्थात् ये सात जिह्वाएं वाहक हैं। वाहक होनेके कारण यहां प्रश्न हो सकता है कि ये किस पदार्थको लाती हैं? इसका उत्तर निम्न लिखित मन्त्रमें देखिये—

(५५) सात नदियां ।

अवर्धयत्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा । शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥ (४५०; ऋ. ३।१।४)

' जिस प्रकार [अश्वाः शिशुं जातं अभ्यारुः न] घोडियां नूतन उत्पन्न बच्चेके चारों ओर रहती हैं, उसी प्रकार यह (सप्त यह्वीः) सात नदियां उस (सुभगं) उत्तम भाग्यशालीको (अवर्धयत्) बढातीं हैं कि, जो (जज्ञानं श्वेतं) उत्पत्तिके समय श्वेत था, परंतु पश्चात् (महित्वा) अपने महत्त्वसे (अरुषं) लाल बन गया। इस प्रकारके अग्निके जन्म की देव पुष्टि करते हैं। '

इस मंत्रमें निम्न लिखित बातें हैं कि, जो अग्निका स्वरूप तथा सप्त नदियोंकी कल्पनाका तत्त्व विशद कर रही है—

[१] बछडेको बीचमें रखकर जिस प्रकार घोडियां अथवा माताएं चारों और बैठतीं हैं ।
[२] उस प्रकार इस अग्निको बीचमें रख कर उसके चारों ओर ये सात नदियां प्रवाहित होती हैं ।
[३] अपने प्रवाहके साथ ये सातों नदियां भाग्यशाली इस अग्निको बढातीं हैं,
[४] यह अग्नि आरंभ में श्वेत था, परंतु पश्चात् लाल हो गया है ।
[५] इस अग्निकी पुष्टि देवोंने भी की है।

अग्निको बीचमें रख कर उस मध्यस्थानसे चारों ओर अथवा सातों ओर सात नदियां बह रही हैं, अर्थात् सात नदियोंके उगमस्थानमें यह अग्नि है। कौनसे एक स्थानसे सात नदियां बह रही हैं? और कौनसी नदीके उगमस्थानमें प्रतापी अग्नि रहता है? बहुतसे विद्वान् कहते हैं कि,वेदमें वर्णित सात नदियां पंजाब में हैं, कई कहते हैं कि, मध्य एशियामें हैं, कई कहते हैं कि उत्तर ध्रुवके पास हैं। परंतु स्थानस्थानमें प्रयत्नपूर्वक देखनेपर एक स्थानपर उगम होनेवाली सात नदियां कहीं भी दिखाई नहीं देतीं और जो थोडीं हैं, उनके उगमस्थानोंमें ऐसा कोई अग्नि नहीं है। चूंकि यह वर्णन पृथ्वीपर का नहीं है। इसलिये जो विद्वान् इसको इस भूमिपर देखनेका यत्न करते हैं, वे फलीभूत नहीं होते !! इसका स्वरूप देखना है तो निम्न लिखित मंत्र देखिये—

(५६) सप्त ऋषि और सप्त नद्।

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥

[वा० य० ३४।५५]

'प्रत्येक (शरिरे) शरीरमें (सप्त ऋषयः) सात ऋषि (हिताः) रहते हैं। ये सात इस (सदं) घरका रक्षण करते हैं। ये (सप्त आप.) जल के सात प्रवाह (स्वपत) सोनेवाले आत्माके (लोकं ईयुः) स्थान को पहुंचते हैं। इस (सत्र-सदौ) यज्ञमें जागनेवाले और (अ-स्वप्न-जौ) कभी न सोनेवाले (देवौ) दो देव है।'

इस मंत्रमें कई गूढ तत्त्वोंका स्पष्टीकरण किया है, उसका आशय निम्न प्रकार है—

(१) प्रत्येक शरीरमें सात ऋषि रहते है।

(२) इस शरीरका संरक्षण ये सात ऋषि कर रहे हैं।

(३) सात जलप्रवाह (सात नदियां) भी इसी शरीरमें हैं, जो सुषुप्तिकी अवस्थामें आत्माके स्थानको वापस जाते हैं। अर्थात् जागृति की अवस्था में ये सात नदियां आत्मा से चलकर बाहर जगत् में फैलती है।

(४) मनुष्य-जीवन एक सत्र अर्थात शतसांवत्सरिक महायज्ञ है। इसीमें ये सप्त ऋषि यज्ञ कर रहे हैं। सप्त नदियों के किनारे पर इनका यज्ञ चल रहा है। ये सात ऋषि कुछ काल सोते है और कुछ काल जागते हैं।

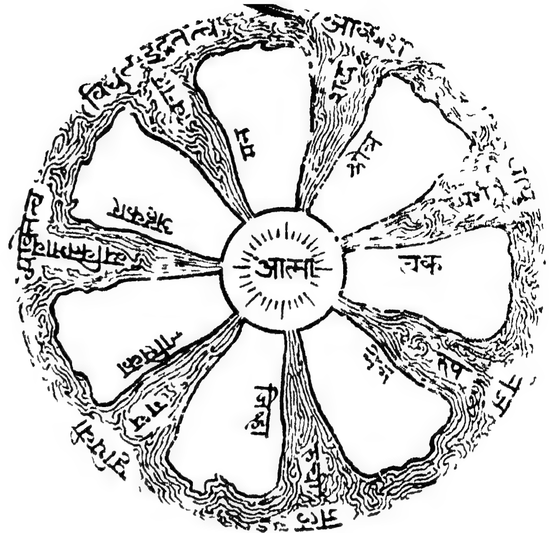
(५) सोने के समय इन सप्त नदियोंका प्रवाह उलटा होता है और इस समय ये नदियां अंतर्मुख होतीं हैं। तथा जागने के समय इनका प्रवाह बहिर्मुख होता है।

(६) इस सत्र में दो देव खडे पहरा दे रहे हैं, जो कभी सोते नहीं। सदैव इसके संरक्षण करने में ये दक्ष रहते हैं।

इस वर्णनसे स्पष्ट पता लग जाता है कि, यह रूप नदियोंका वर्णन आत्माग्निपरही विशेष रूपसे घट सकता है।

सप्त नद्।

आत्माग्नि मध्यमें है और इस उगमस्थानसे अहंकार, मन, श्रोत्र, स्पर्श, नेत्र, रसना और नासिका ये सात प्रवाह चलते हैं। (१) अहकार की नदी घमंडके क्षेत्रमें बह रही है। (२) मनका नद मननके प्रदेश को भिगो रहा है। (३) श्रोत्रकी नदी कानोंके द्वारा प्रवाहित होकर शब्दकी भूमिमे बह रही है। (४) स्पर्श की नदी चर्ममार्गसे स्पर्शके प्रदेश में फैल रही है। (५) नेत्रकी नदी दृष्टिके मार्गसे दर्शनक्षेत्र में प्रवाहित हो रही है। (६) रसना नदी रुचिके क्षेत्रमें जिह्वाके स्थानसे व्याप्त हो रही है, इसी प्रकार (७) नासिका द्वारा सुवासके क्षेत्रमें नासा नदी बह रही हे। प्रत्येक नदी का क्षेत्र भिन्न है, प्रत्येक नदीका जल भी भिन्न है और प्रत्येक नदीका स्वभाव भी भिन्न है। ये सप्त नदियां हैं, जो कि आत्माके स्थानसे बह रहीं हे। सुषुप्तिकी अवस्थामें ये सातों नदियां अंतर्मुख होकर उलटी बहने लग जाती है और आत्मामें मग्न होती हैं; परन्तु जागृतिमे आत्मासे बहिर्मुख होकर फिर बाहर प्रवाहित होकर जगत् में कार्य करने लग जातीं है।



सप्त नद्।

प्रतिदिन इन सातों नदियोंका यह प्रवाह हरएकके अनुभवमें आता है। इनका प्रवाह उलटा चलनेवाली नाम सुषुप्ति और इनका प्रवाह बाहरकी ओर बहनेकाही नाम जागृति है।

प्रत्येक नदीके तटपर एक एक अधिष्ठाता ऋषि है, जो वहां तप कर रहा है। ये सात ऋषि इस जीवनरूपी महा-

यज्ञ में यजन कर रहे हैं। जिस समय ये सातों अधिष्ठाता ऋषिगण थक कर सो जाते हैं, उस समय तथा अन्य समय में भी इस देहरूपी सत्रमें दो देव जागते है !! इन देवोंका नाम प्राण अर्थात् श्वास और उच्छ्वास है। जन्मसे मरनेतक ये श्वासोच्छ्वासरूपी दो देव जागते हैं और खडे पहरा करते है। इनके कारणही इस सत्र अर्थात् देहरूपी यज्ञभूमिका संरक्षण हो रहा है।

पाठक विचार करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि, यह वर्णन हमारे देहका ही है और इसीमें (१) सात ऋषि, (२) सात नदियां और (३) जलके सात प्रवाह अपना अपना कार्य कर रहे है।

अब पूर्वोक्त मंत्र का अनुसंधान कीजिये, तो पता लग जायगा कि आत्माग्निको मध्यमें रख कर सात नदियां चारों ओर फैल रही हैं, इसका तात्पर्य क्या है ? नदियोंके उगमस्थानमें कौनसा अग्नि है? उससे कौनसे प्रवाह किस भूमिमें फैलते हैं? और समयपर वापस भी किस रीतिसे होते है ?

यह आत्माग्नि प्रारंभमें श्वेत और पश्चात् रक्तवर्ण होता है। यह भी स्पष्ट है। श्वेतवर्ण सत्वगुण और रक्तवर्ण रजोगुण का द्योतक है। प्रथमतः आत्मबुद्धिमें सात्त्विक भाव होते है, परन्तु जब वे भाव भोगोंके साथ परिणत होते है, तब रजोगुणमय होते हैं। इत्यादि विषय अब पूर्णतासे स्पष्ट हो सकता है।

(१) ये ही आत्माग्निके सात हाथ हैं, जिनसे वह कार्य करता है।

(२) ये ही आत्माग्निकी सात जिह्वाएं हैं, जिनसे वह आत्माकी घोषणा करता है, अथवा जगत की रुचि लेता है।

(३) ये ही सात नदियां हैं, जो अपने अपने क्षेत्रमें बहतीं है।

(४) ये ही सात जलप्रवाह हैं, जिनपर सात ऋषि तपस्या कर रहे हैं।

(५) ये ही सप्त ऋषि हैं, जो सात प्रकारका ज्ञान दे रहे है और शरीरका अर्थात् ऋषि आश्रमका संरक्षण कर रहे है।

(६) ये ही ऋषि-आश्रम हैं, जिनपर रोगरूपी राक्षस वारंवार हमला करते हैं और इस शतसांवत्सरिक सत्रका विध्वंस करते है। जिनका कि दो देव रक्षण कर रहे है।

(७) ये ही सप्तरश्मि हैं, जो आत्मारूपी सूर्यके सात किरण हैं, इस विषयमें निम्न लिखित मंत्र देखिये-

(५७) सात किरण।

आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि।
मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥
(४२६, ऋ० २।५।२)

'(यस्मिन् यज्ञस्य नेतरि) जिस यज्ञ के नेताके अंदर सप्त रश्मयः) सात किरण अथवा सात लगाम (तताः) तने हुए है। वह यज्ञका नेता (पोता) पवित्र कर्ता आत्मा (मनुष्-वत्) मनुष्ययुक्त (दैव्यं विश्वं) देवतामय विश्वको अष्टम होकर (इन्वति) प्राप्त करता है।'

"यज्ञका नेता" आत्माही है, जो इस शरीररूपी यज्ञमंडपमें इस शतसांवत्सरिक महायज्ञ को चलाता है। इसी आत्माके पूर्वोक्त सात किरण इस देहरूपी यज्ञमंडपमें प्रकाशित हो रहे हैं। यह सूर्यचंद्रादि देवतामय विश्व जो मनुष्यप्राणियोंके कारण विशेष रूपसे प्रसिद्ध है, उसको अष्टम अर्थात् आठवां मान कर यही प्राप्त करता है। सात इंद्रियशक्तियां, आठवां देवतामय विश्व और इसको प्राप्त करनेवाला स्वयं यजमान आत्मा है। यह मंत्र भी आत्माग्निकाही वर्णन कर रहा है।

इस मंत्रका मनन करनेसे पत्ता लग सकता है कि, वेदमें जो सप्त रश्मि, सप्त किरण, आदि वर्णन है, वह केवल सूर्यप्रकाश के ही सात किरणोंका वर्णन नहीं है, प्रत्युत आत्माकी सात शक्तियों का वह मुख्य वर्णन है और गौणवृत्तिसे अन्य भाव को भी व्यक्त करता है। वेदमें केवल सप्त रश्मियोंकाही वर्णन नहीं है, प्रत्युत यह सप्त संख्या अनेक वार विविध प्रकारके वर्णनमें आई है, देखिये—

(५८) सप्त रत्न।

दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥
(७५९; ऋ० ५।१।५)

'घरघरमें सात प्रकारके रत्नोंको धारण करनेवाला अग्नि यज्ञ करता हुआ बैठा है ।' इस मंत्रमें सात रत्नोंको धारण करनेवाला अग्नि यही आत्माग्नि है और उनके सात रत्न पूर्वोक्त सात शक्तियांही है । " दमे दमे " का अर्थ प्रत्येक घरमें अर्थात् प्रत्येक शरीरमें है, क्योंकि शरीर-ही आत्माका घर है । रत्न शब्दका अर्थ रमणीय है । उक्त सात इंद्रियां ज्ञान देनेके कारण आत्माको रममाण करती है, इसलिये रत्न शब्दका मूल धात्वर्थ भी यहां सगत होता है । जो सप्त रत्न है, वे ही " सप्त धातु " हैं । इनका वर्णन निम्न लिखित मंत्रमे देखिये—

(५९) सप्त धातु ।

बृहद्धाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्त धातु ॥

(१७६३; ऋ० ४।५।७)

'(धृषता प्रयसा) वीर्ययुक्त प्रयत्नके साथ रहनेवाला गभीर (पृष्ठं) प्रशंसनीय महान् (सप्तधातु) सप्तधातु-रूप धन दो ।'

आत्माकी उक्त सात शक्तियां ही शरीरमें मुख्य धन है । इनमें एकाध शक्ति न होनेसे अन्य धन उतने उपयोगी नहीं हो सकते । इसीलिये वेदमें इन सात शक्तियोंको ही मुख्य धन कहा है । इस विषयका और एक अलंकार देखिये-

(६०) सात घोडे ।

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं
हविष्मंत ईळते सप्तवाजिनम् ॥

(६७८, ऋ १०।१२२।४)

'यज्ञका केतु, पहला पुरोहित (सप्त-वाजिनं) सात घोडोंसे युक्त है, उसीकी प्रशंसा करते हैं ।' इस मंत्रमें '**सप्तवाजी**' शब्द है । 'वाज' शब्दका अर्थ बल है और 'वाजी' शब्दका अर्थ घोडा है । 'सप्तवाजी' शब्दका अर्थ सात प्रकारके बलोंसे युक्त, अथवा सात घोडोंसे युक्त है । पूर्व वर्णन के साथ विचार करनेपर पता लग जायगा कि, ये 'सात घोडे' कौनसे हैं । इस अग्निके रथको येही सात घोडे जोते हैं । सूर्यके रथको जो सात घोडे जोते हैं, वेभी येही हैं । सात ऋषि, सात किरण, सात घोडे, सात नदियां, सात प्रवाह, सात रत्न, सात धातु, ये सर्व भिन्न नाम पूर्वोक्त सात शक्तियोंके ही वाचक है । ये ही अग्निकी सात बहिने हैं—

(६१) सात बहिनें ।

सप्त स्वसृररुषीर्वावशानो विद्वान् मध्व
उज्जभारा दृशे कम् । अंतर्येमे अंतरिक्षे
पुराजा इच्छन् वव्रिमविदत् पूषणस्य ॥

(१५१७, ऋ. १०।५।५)

'[वावशानः] इच्छा करनेवाला विद्वान् [अरुषीः] गमनशील [सप्त स्वसॄः] सात बहिनों को [मध्वः] मीठेपनका [कं दृशे] सुख देखनेके लिये [उत् जभार] ऊपर उठाता है । यह [पुरा जाः] पुराणपुरुष [पूषणस्य वव्रि] पूषाके रूपकी इच्छा करता हुआ अंतरिक्ष में [अंतःयेमे] अंदरसे नियमन करता है और [अविदत्] प्राप्त करता है।'

इस मंत्रमें 'सात बहिनों' का वर्णन है । एक मूल-स्थानसे जो सात शक्तियां उत्पन्न होती हैं, उनको सात बहिने कहा है । एक मातासे भाईबहिनोंकी उत्पत्ति होती है । यहां भी परमात्मा, परम पिता और प्रकृति परम माता है । वहांसे ही पूर्वोक्त सातो शक्तियोंकी उत्पत्ति है, इस-लिये परमात्माका अमृत पुत्र आत्मा है और पूर्वोक्त सातों शक्तियां उसकी बहिने हैं । अलंकार इसी रीतिसे स्पष्ट हो जाता है । ये ही सात हवन करनेवाले ऋत्विज हैं, इनका वर्णन देखिये—

(६२) सात ऋत्विज् ।

सप्त होतारस्तमिदीळते त्वाऽग्ने ।

[१४०४, ऋ. ८।६०।१६]

'हे अग्ने! [सप्त होतारः] सात ऋत्विज् तेरी ही स्तुति करते है ।' 'होता' उसको कहते हैं कि जो हवन करता है । यहां आत्माग्निमें पूर्वोक्त सात इंद्रियां हवन कर रहीं है । नेत्र रूपका हवन करता है, कान शब्दोंका हवन करता है । इसी प्रकार अन्यान्य ज्ञानेंद्रियां अन्यान्य ज्ञानोंकी आहुतियां आत्मातक पहुंचाती हैं, मानो, आत्माके हवनकुंडसे ये सात इंद्रियगणरूपी ऋत्विज् अपने अपने विषयकी आहुतियां ही डाल रहे हैं और इस प्रकारका यह हवन इस यज्ञमंडपमें सौ वर्षतक चलता है । शतसांवत्सरिक यज्ञ यही है । इसके ये होता गण है । ये ही ऋत्विज्-सप्त ऋषि नामसे अन्य स्थानमें कहे गये है । सप्त ऋषि, सप्त होता, सप्त ऋत्विजः, सप्त मानुषः, आदि शब्द यही भाव बता रहे हैं । इसके साथ अब निम्न लिखित मंत्र देखिये-

(६३) पांच और दो दोहनकर्ता।

दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पंच सृजतः।
तीर्थे सिंधोरधि स्वरे॥ (१४३०; ऋ. ८।७२।७)

'[एकां] एक गौ माताका [सप्त दुहन्ति] सात दोहन कर रहे हैं। उनमें [द्वौ] दो [पंच] अन्य पांचोंको [उप सृजतः] प्रेरित करते हैं। [अधि स्वरे] स्वरयुक्त सिंधुके तीर्थ पर यह हो रहा है।'

एक गौका सात ग्वालियों द्वारा दोहन निःसंदेह आलंकारिक है। इसमें भी दो गवालिये अन्य पांचको प्रेरणा करनेवाले हैं। यह सब बात अपना पूर्वोक्त अलंकार स्वीकार करनेपर ठीक प्रकारसे ध्यानमें आ सकती है। पूर्वोक्त सातोंमें [१] मन तथा [२] अहंकार ये दो अन्य इंद्रियशक्तियोंके प्रेरक हैं; [१] श्रोत्र, [२] त्वक्, [३] चक्षु, [४] रसना और [५] घ्राण ये पांच इन दोनों द्वारा प्रेरित होकर अपना अपना दोहन का कार्य कर रहे हैं। आत्मारूपी एक गौ से ये सात ग्वालिये अपने लिये अलग अलग प्रकारका दूध निचोड रहे हैं, और एक ही वह गाय इनमेंसे प्रत्येक को भिन्न प्रकारका दूध दे रही है!!!

अब विचार कीजिये, वेदमें एक ही बात कितने भिन्न अलंकारोंसे वर्णन की है। 'सात' संख्याका अलंकार अग्नि के विषयमें इतना ही नहीं है प्रत्युत बहुत ही प्रकारका है; यहां केवल नमूनेके लिये थोडेसे ही उदाहरण दिये हैं। पाठक विचार करके इन उदाहरणोंके मननसे अन्य अलंकारोंको भी जान सकते हैं।

तात्पर्य, इन सब विभिन्न अलंकारोंके वर्णनसे वेदको एक आत्मा का ही वर्णन करना है। उसके जितने पहलू हो सकते हैं, उन सब पहलुओंके द्वारा विभिन्न अलंकारोंमें वेद वर्णन करता है। इसलिये पाठकोंको उचित है कि, वे सबसे प्रथम वैदिक शैलीको देखकर वेदमंत्रोंका मनन करें और वेदके गंभीर आशयको समझनेका यत्न करें। एक समय वेदकी मूलभूत कल्पना ठीक प्रकार ध्यानमें आगई तो पश्चात् वेदका कोई भी वर्णन समझनेमें कठिनता नहीं रहेगी।

(६४) तनूनपात् अग्नि।

अब 'तनूनपात्' शब्दका विचार करेंगे। यह शब्द अग्निका वाचक है। इसका अर्थ (तनू+न+पात्) शरीरोंको न गिरानेवाला होता है। जिसके रहनेसे शरीरोंका पतन नहीं होता और जिसके न होनेसे शरीरोंका पतन होता है। पाठकोंके ध्यानमें यह बात आ गई होगी कि, यहां स्थूल सूक्ष्म कारण नामक शरीरोंको धारण करनेवाला और उन शरीरोंपर कार्य करनेवाला आत्माही है। इसलिये '**तनू-न-पात्**' अग्नि निःसंदेह 'आत्माऽग्नि' है। इस समयतक अग्निवाचक मंत्रोंका जो विचार किया गया है, उसके साथ यह अर्थ कितना ठीक सजता है, इसकी सत्यता पाठक यहां अवश्य देखें और वेदमें अग्नि शब्दसे आत्माग्निका भाव ही मुख्यतः लेना है, यह बात यहां ठीक समझनेका यत्न करें। क्यों कि यह शब्द मुख्यतः इसी अर्थमें प्रयुक्त होता है। गौण वृत्तिसे इसके तथा अन्य शब्दोंके भाव विविध होनेपर भी मुख्य अर्थको भूलना कदापि उचित नहीं है। यह '**तनू-न-पात्**' शब्द निम्न मंत्रमें देखिये—

मधुमंतं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे॥
अद्या कृणुहि वीतये॥ [१९०७; ऋ. १।१३।२]

'हे [तनू-न-पात्] शरीरोंको न गिरानेवाले [कवे] शब्दके प्रेरक अग्ने! तू मधुयुक्त यज्ञ आज ही देवोंके अंदर [वीतये] रक्षण के लिये [कृणुहि] कर।'

देवोंके अंदर '**शरीरोंको न गिरानेवाले आत्माग्नि**' द्वारा होनेवाले इस शतसांवत्सरिक महायज्ञका वर्णन ही विभिन्न रूपसे स्थानस्थानपर है। यह बात इस समयतक अनेक मंत्रोंके उदाहरणोंसे पूर्व स्थलमें बताई गई है। वही बात इस मंत्रमें 'तनू-न-पात्' देवताके मिषसे वर्णन की गई है।

यह तनूनपात् शब्द अग्निदेवका वास्तविक स्वरूप व्यक्त कर रहा है। जितने दिन यह 'तनू+न+पात्' आत्माग्नि इस शरीरमें निवास करता है, उतने दिन ही यह शरीर सचेतन रहता है और जीवित रहता है। इसके चले जानेके पश्चात् इस शरीरका ऐसा पतन होता है कि, कोई इसको पास रखना नहीं चाहते। इस से स्पष्ट होता है कि यही आत्माग्नि तनूको न गिरानेवाला '**तनू-न-पात्**' अग्नि है। इस तनूनपात् आत्माग्निका शरीरमें अवस्थान निम्न लिखित प्रकार है—

अपनी शरीर की रचनाका संबन्ध यज्ञशालासे कैसा है, यह बात विचार करनेसे ज्ञात हो सकती है। यज्ञशाला के विविध अग्निकुंडोंके स्थान अपने शरीरके आधारपर रचे गए हैं। इसका स्पष्टीकरण सहजहीसे हो सकता है। अपने शरीरमें आत्मा, हृदय, मतिष्क, प्रजनन आदिके स्थान हैं। वही स्थान हवनकुंडोंके आकारमें यज्ञशालामें बताये जाते हैं। अपने शरीरमें आत्माको आधार रखकर जो घटनाएं होतीं हैं, उनकोही यज्ञशालामें विविध अग्नियोंके नामसे बताया है। मानो यज्ञशाला एक अपने देहका ही नकशा है। जिस प्रकार पाठशालाओंमें देशोंके नकशे होते हैं और उनमें ग्राम, प्रांत, नदी, पर्वत, आदि बताये जाते हैं उसी प्रकार शरीरका नकशा यज्ञशालाके रूपसे बताया गया है। जो बाते अव्यक्त रूप से शरीर में हो रही है, वही बातें यज्ञशाला में हवनरूप से की जाती है।

(१) मुखमें अन्न डालनेसे वह पेटमें जाता है और वहां उसका जठराग्निद्वारा पचन होता है। आहवनीय अग्नि के हवनकुंड में भी उसी अन्न का हवन किया जाता है। अग्नि प्रदीप्त हुआ, तो हवन अच्छा होता है, प्रदीप्त न होनेकी अवस्था में किया हुआ हवन धूंवे को बढाता है। उसी प्रकार जठराग्नि प्रदीप्त न होनेकी अवस्था में खाये हुए अन्न से पेट में वायु कुपित होता है और अग्निमांद्य, डकार, अपान वायु आदि होता है।

(२) गार्हपत्याग्नि वास्तविक स्त्रीके योनिस्थानमें है। इसके विशेष वर्णन की यहाँ आवश्यकता नहीं है। पाठक अपनी विचारशक्तिसेही इसको जान सकते है।

(३) उत्तर वेदीमें ज्ञानाग्नि है, जो मस्तिष्क नामसे प्रसिद्ध है। इसमें दुष्ट मनोविकारोंका हवन होता है। पाशवीय भावनाओंका हवन यहां होता है।

इस प्रकार सारांशरूपसे यज्ञशालाका संबन्ध अपने शरीर के व्यापारों से है। पाठक विशेष विचार करके यह जान सकते हैं। यहां विशेष विचार करनेके लिये स्थान नहीं है, परन्तु प्रसंग प्राप्त होनेके कारण संक्षेपसे लिखना पडा है।

यज्ञशालाकी रचना शरीरकी घटनापर हुई है, यह ज्ञान हो जानेके पश्चात् '**आत्माग्नि ही तनूनपात् अग्नि है**' यह बात स्पष्ट हो जाती है और पूर्वोक्त सब वर्णन ठीक प्रकार ध्यानमें आ सकता है। इसका ठीक ठीक ज्ञान होनेके पश्चात् ही वैदिक यज्ञोंका तत्वज्ञान ठीक प्रकार समझ में आ सकता है, इसलिए पाठकोंसे प्रार्थना है, कि वे इस बात को विशेष रूपसे समझनेका यत्न करें।

उपनिषदोंमें भी इस शारीरयज्ञका वर्णन इसी प्रकार है, देखिए-

> तस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः श्रद्धा पत्नी० ॥ (नारायणोपनिषद् ८०)
>
> पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तत्प्रातःसवनम् ॥ (छां. उ. ३,१६,१)

'इस यज्ञका यजमान आत्मा है और यजमानपत्नी श्रद्धा है। पुरुषही यज्ञ है, उसकी चौबीस वर्षकी आयु प्रातःसवन है।' इत्यादि वचनोंसे स्पष्ट हो जाता है कि, इस शरीरमें जो शतसांवत्सरिक यज्ञ चल रहा है, वही सत्य यज्ञ है और उसीका यजमान आत्मा और यजमानपत्नी श्रद्धाबुद्धि है और इसी यज्ञका प्रातःसवन प्रारंभ की २४ वर्षोंकी आयु है। इस यज्ञकी दृष्टिसेही वेदके मंत्रोंको हमें देखना चाहिए।

इस से पूर्व जो विचार किया है, वह इसी दृष्टि से किया है, इस से पाठकों के मन में बात आ गई होगी कि, यही उपनिषदों की दृष्टि होने से सत्यदृष्टि है। और इसी सत्य दृष्टि से वेद का अर्थ देखना चाहिये।

(६५) अन्य बातों का उपदेश।

इस से कोई यह न समझे कि, वेद में अध्यात्म से भिन्न कोई अन्य बात ही नहीं है। अन्य बाते बहुत ही हैं, उन का प्रसंगवशात् विचार अवश्य होगा। परन्तु पूर्वोक्त विवरण से यही बताया है कि, ये देवतावाचक शब्द मुख्य अर्थ में किस प्रकार आत्मा का भाव बताते है। स्थान स्थान के सूक्तों में परमात्मा ब्रह्म, राजा, विद्वान् शूर आदि प्रकरणों के अनुसार अग्निशब्द ही उक्त पदार्थों का वाचक है। इस बात के उदाहरण भी यहां विशेष रूप से देने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

'चत्वारि शृंगाः' यह ऋग्वेद का अग्निदेवता का मंत्र भगवान् पतंजलि महामुनिने 'शब्द' पर लगाया है। इस से 'अग्नि' देवता का एक अर्थ 'शब्द' है, यह बात स्पष्ट होती है। यह मंत्र (ऋ. ४·५८ ३) में

है और इस का अध्यात्मविषयक अर्थ इसी लेख में दिया ही है। यहां इतना ही बताना है कि, जिस प्रकार इस का अध्यात्मविषयक अर्थ होने पर 'शब्द' विषयक अर्थ हटा नहीं है, उसी प्रकार अन्यान्य मन्त्रों के विषय में पाठकों को समझना चाहिये। 'अग्नि' शब्द परमात्म-वाचक भी है, देखिये—

(६६) परम आत्माग्नि।

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥ (२७; ऋ १-२४-२)

'हम (अमृतानां प्रथमस्य) अमर देवों में पहले (देवस्य अग्नेः) अग्निदेव का अर्थात् तेजस्वी परमात्मा का (चारु नाम) सुन्दर नाम (मनामहे) मन में लाते हैं। वही हम सब को (अदितये) प्रकृति में पुनः डालता है और जिस से हम माता-पिता को देखते हैं।'

इस मंत्र में 'सब से पहले अग्निदेव' अर्थात् तेजस्वी परमात्मा का वर्णन स्पष्ट है। इसी प्रकार अन्यान्य पदार्थों के वाचक स्पष्ट मन्त्र अनेक है। उन का यहां भूमिका में विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उन का स्पष्ट विचार सूक्तों के विचार करने के समय ठीक प्रकार किया जायगा। यहां इस भूमिका में अग्निमन्त्रों का आध्यात्मिक विचार करने की रीति इसलिये विशेष रूप से बताई है कि साधारण पाठक 'अग्नि' शब्द से 'आग' का ही ग्रहण करते हैं और वेदमन्त्रों के अर्थ का अनर्थ करते हैं, इसलिये अग्नि-देवता का मुख्य अध्यात्म स्वरूप जानने की इस स्थानपर विशेष आवश्यकता है। उपनिषदोंमें यही बात स्थान स्थानपर कही है, देखिए—

अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषे येनेदमन्नं पच्यते, यदिदमद्यते॥ (बृ उ ५।९)

'यही वैश्वानर अग्नि है, जो इस मनुष्यशरीर के अन्दर है, जो खाये हुए अन्नका पचन करता है।' यहां वैश्वानर अग्निका आध्यात्मिक रूप बताया है, वैश्वानर अग्निका आधिभौतिक रूप इसी लेखके प्रारंभमें बताया है। वहीं उसको पाठक देख सकते हैं। इसी प्रकार अग्निके भिन्न-भिन्न स्वरूप का विचार वेदमें स्थानस्थानके मंत्रों में है और उसको उसी प्रकार उस उस स्थानपर समझना चाहिए।

(६७) सारांश।

सारांश यह है कि, इस भूमिकामें जो विचार किया है, वह बिलकुल नया नहीं है! ब्राह्मणग्रंथोंमें, उपनिषदोंमें तथा संपूर्ण आर्ष वाङ्मयमें यही विचार स्थानस्थानपर है। उसको स्पष्ट शब्दों में यहां एकत्रित किया है। इसका अधिक विचार पाठक भी अपनी स्वतन्त्र बुद्धिसे करें और वेदके अर्थकी अधिक खोज करें।

अग्निदेवताके विचार करनेकी दिशा।

ऋग्वेद का प्रथम सूक्त '**वैश्वामित्र मधुच्छंदा**' ऋषिका देखा हुआ है। इसी प्रकार का गाथी '**विश्वामित्र**' ऋषिका देखा हुआ एक सूक्त तृतीय मंडलमें है। दोनों सूक्त '**अग्नि**' देवता के हैं और दोनों में ९ मन्त्र हैं, तथा शब्दों और वाक्यों की समानता भी बहुत है। सबसे प्रथम यह समानता देखने योग्य है--

वैश्वामित्रो मधुच्छंदाः (ऋ० १।१)	**गाथिनो विश्वामित्रः (ऋ० ३।१०)**
(१) **अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं ॥ १ ॥**	**त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीळते ॥ २ ॥**
(२) **गोपामृतस्य दीदिविं ॥ वर्धमानं स्वे दमे ॥८॥**	**गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥ २ ॥**
(३) **राजन्तमध्वराणां ॥ ८ ॥**	**स केतुरध्वराणाम् ॥ ४ ॥**
(४) **देवो देवेभिरागमत् ॥ ८ ॥**	**अग्निर्देवेभिरागमत् ॥ ४ ॥**

इस प्रकार देवताकी स्तुतिमें अनेक स्थानोंमें समानता है। शब्द, वाक्य और मन्त्रभाग तथा पूर्ण मन्त्र एक देवता के वर्णनमें तथा भिन्न देवताओं के वर्णन में भी पुनःपुनः वैसेके वैसेही आ गये हैं। यह समानता यहां प्रथमतः

देखने का उद्देश्य इतनाही है कि, मन्त्रोंका अर्थ निश्चित करने के लिए इस समानताके देखनेसे बहुत सहायता होती है ।

अग्निका विचार करनेके पूर्व 'अग्नि' के विशेषणरूप जो शब्द इस सूक्तमें आ गये हैं, वे किस पदार्थके विशेषतया बोधक हो सकते हैं, इसका प्रथम विचार करना आवश्यक है । 'अग्नि' शब्दसे लोकभाषामें 'आग' का बोध होता है, परन्तु इस सूक्तमें केवल 'आग' का भावही है, ऐसा नहीं माना जा सकता; क्योंकि कई शब्दोंकी सार्थकता 'आग' अर्थ लेनेसे नहीं होती है । देखिये-

(१) **रत्न-धा-तमः** = रत्नोंका धारण करनेवाला '**रत्न+धा**' होता है, और अनेक प्रकारके रत्नोंका धारण करनेवाला '**रत्न+धा+तम**' कहलाता है । प्रत्यक्ष देखा जाय, तो यह 'आग' स्वयं अपने शरीरपर अनेक रत्नोंका धारण करती हुई दिखाई नहीं देती, इसलिए यह शब्द विशेष कर किसी अन्य पदार्थ की सूचना दे रहा है, ऐसा प्रतीत होना स्वाभाविक है ।

(२) **कविक्रतुः** = 'कवि' शब्द केवल 'आग' का गुण बतानेके लिए प्रयुक्त हुआ है, ऐसा मानना असंभव है । क्योंकि आग में कवित्वकी प्रत्यक्षता नहीं है । कवि वह होता है कि, जो अतींद्रिय बातोंको शब्दोंके द्वारा प्रकट करता है । यह बात 'आग' में नहीं है । 'क्रतु' शब्द 'प्रज्ञा' वाचक मानते हैं, यह भाव भी 'आग' में नहीं है । इसलिए मुख्य दृष्टिसे 'कवि+क्रतु' शब्द आगका सूचक यहां नहीं हो सकता । कवि मानव ही होगा । क्रतु भी मानव ही करता है ।

(३) **सत्यः** = यह शब्द भी त्रिकालाबाधित तत्त्वका बोधक है । इसलिए 'आग' का बोधक नहीं है, क्योंकि आग बुझ जाती है और तीनों कालोंमें एक जैसी नहीं रहती ।

(४) **पुरोहित, ऋत्विज्, होता** = ये शब्द भी मुख्य वृत्तिसे आगके बोधक नहीं हो सकते । ये मानवोंके बोधक हैं ।

इस प्रकार ये विशेषणरूप शब्द 'आग' का बोध नहीं कराते, परन्तु किसी अन्य पदार्थमें ये अन्वर्थक होते हैं । जिस पदार्थ में सूक्तके सब शब्द सुसंगत हो सकते हैं, वही पदार्थ सूक्त का 'मुख्य देवता' है । अन्य भाव गौण वृत्ति से मानना न मानना योजक की योजना पर ही अवलंबित है । यहां हमें देखना है कि, इस सूक्तमें मुख्य दृष्टिसे किस का वर्णन हो रहा है और किस रीतिसे गौण दृष्टिमें अन्य पदार्थोंका बोध हो सकता है । इसका निश्चय करनेके लिए इस सूक्तमें निम्न दो शब्द विशेष महत्त्व रखते हैं-

(५) **अंग** = 'अंग' शब्द का अर्थ 'अवयव' है । 'शरीर, अवयव, शरीरके अंग अथवा भाग' इस अर्थमें मुख्यतः यह शब्द प्रयुक्त होता है । हरएक प्राणिमात्रको अपना शरीर अथवा अपने शरीर के अंग अत्यंत प्रिय होते हैं, इसलिए अवयववाचक 'अंग' शब्दका 'प्रिय' ऐसा अर्थ पीछेसे होने लगा । यदि इस सूक्तका 'अंग' शब्द अपने ही निज 'अवयव' का बोधक माना जायगा, तो मानना पडेगा कि, इस सूक्तमें वर्णित 'अग्नि' अपने ही शरीरमें निज अवयवरूप अथवा अपना अंगभूत ही कोई पदार्थ है, जहां यह 'अंग' शब्द पूर्ण रीतिसे सार्थक हो सकता है । इस विषय में निम्नलिखित शब्द विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेयोग्य है-

(६) **अंगिराः** = (अंगि+रस) = अपने शरीरके अंगोंमें जो एक जीवनरूप रस होता है, उसको 'अंगीय-रस' कहते है । यही जीवनरूप अंग-रस 'अंगि+रस्' शब्दसे बताया जाता है । इस विषय में ब्राह्मण ग्रंथों का कथन देखनेयोग्य है-

(१) **तद्देवा रेतः प्राजनयन्, ततोऽङ्गाराः समभवन्, अंगारेभ्योऽङ्गिरसः ।** (श० ब्रा० ४।५।१।८)

(२) **तं वा एतं अंगरसं संतं अंगिरा इत्याचक्षते ।** (गो० ब्रा० पू० १।७)

(३) **येऽङ्गिरसः स रसः ये अथर्वाणः...तद्भेषजं तदमृतं ... तद् ब्रह्म ।** (गो० ब्रा० पू० ३।४)

"(१) देवोंने रेत उत्पन्न किया, उससे अंगार (जलते हुए कोयले) उत्पन्न हुए, उनसे अंगिरस हुए है । (२) जो अंग+रस है, वही अंगिर (अंगि-रस्) है । (३) जो अंगिरस् है, वह रस है, यही अथर्वा है और यही औषधी ... अमृत ... और ब्रह्म है ।"

इस कथन से स्पष्ट हो रहा है कि "अंगि-रस्" मुख्यतया शरीर का जीवनरस है । क्योंकि जो यह जीवनरस शरीरके अंगों और अवयवों में है, वही अमृत रस है, उसे

में प्राण की शक्ति रहती है। इसलिये जबतक यह जीवन-रस शरीर में ठीक अवस्था में रहता है, तबतक ही आरोग्य रहता है। इसीलिये इस रस को गोपथ-ब्राह्मण में 'भेषज' अर्थात् दोषनिवारक औषधि कहा है। अंगिरस का यह मूल स्वरूप है। और यह अपने शरीर के अंगो में ही व्यापक है, इतनाही नही, परन्तु अपना अंगरूप ही सत्व है। इस प्रकार जो जीवन का तत्व 'अंगिरस् और अंग' शब्दों से बताया जाता है, वही इस सूक्तका प्रतिपाद्य विषय मुख्य रूप से है। इस अर्थ को ध्यान में धरनेसे सूक्त का मुख्यार्थ ध्यान मे आ सकता है।

मुख्य दृष्टि और गौण दृष्टि, ऐसी दो दृष्टियोंसे वेदका अर्थ देखना होता है। मुख्य प्रतिपाद्य विषय में मन्त्र के संपूर्ण शब्द पूर्णतया संगत होते हैं और गौण विषय में लक्षणा करके, अर्थ का संकोच करके, केवल भाव ही देखा जाता है। इन दो प्रकार के अर्थों का अन्य वर्गीकरण, जो वैदिक सारस्वत में सुप्रसिद्ध है, यहां अवश्य देखना चाहिये। वेद-मन्त्रोंका अर्थ- (१) **आध्यात्मिक**, (२) **आधिभौतक**, और (३) **आधिदैविक** ज्ञानक्षेत्रसे भिन्न भिन्न होता है। आध्यात्मिक क्षेत्र वह है कि, जो आत्मासे लेकर स्थूल देह-तक फैला है, आधिभौतिक क्षेत्र वह है कि, जो प्राणिमात्रके संघात मे फैला है, तथा आधिदैविक क्षेत्र वह है कि जो संपूर्ण जगत की स्थिर चर समष्टिमें व्यापक है। उक्त तीनों क्षेत्रोंका भाव बतानेवाले संक्षिप्त और बालबोध शब्द '(१) व्यक्ति, (२) **समाज** और (३) **जगत्**' येही है। यद्यपि इनसे संपूर्ण पूर्वोक्त क्षेत्रों का बोध नहीं होता, तथापि उनका साधारण तात्पर्य इन शब्दोंसे जाना जा सकता है।

'**अंग, अंगरस्**' आदि शब्दोंसे बोधित होनेवाला जो अग्नि है, वह 'आग' नहीं है, प्रत्युत हमारे शरीर के अंगो में कार्य करनेवाला जीवनरूप अंगरस ही है, इस बातकी सूचना इससे पूर्व दी गई है। शरीरका '**अंगरस**' व्यक्तिगत होनेसे आध्यात्मिक पदार्थ है। इसीका आधि-भौतिक अर्थात् सामाजिक किंवा राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रतिनिधि '**राष्ट्रीय जीवन**' उत्पन्न करनेवाला संघ होना स्वाभाविक है। यही '**पंचजन, वैश्वानर या विश्वमानुष**' है। तथा आधिदैविक क्षेत्र में इसीका रूप अग्नि अथवा आगमें देखा जा सकता है। इस से स्पष्ट हुआ है कि, यहां का 'अग्नि' शब्द किस क्षेत्र में किस पदार्थ का बोधक है। यद्यपि सूक्त का मुख्य प्रतिपाद्य विषय '**जीवनाग्नि**' है, तथापि '**राष्ट्रीय जीवनाग्नि**' और '**पांचभौतिक अग्नि**' भी उक्त प्रकार बोधित होते हैं।

प्रत्येक प्राणिमात्र के शरीर में जो जीवनरस है, वही उस व्यक्ति का सच्चा कल्याण करता है। इसलिये यह जीवनशक्ति संपूर्ण अन्य शक्तियों की अपेक्षा सब से अधिक कल्याण करनेवाली है। इसी प्रकार जगत् के व्यवहार में अग्नि का महत्त्व है। इस आग्नेय शक्ति का यह कार्य विचार की दृष्टि से सर्वत्र देखनेयोग्य है। इसलिये वेद में अन्यत्र कहा है—

(१) **अग्निमीळिष्व यंतुरम्** ॥ (ऋ. ८ १९-२)
(२) **अग्निमीळिष्वावसे** ॥ (ऋ ८-७१-१४)
(३) **अग्निमीळीत मर्त्यः** ॥ (ऋ. ५ २१-४)
(४) **अग्निमीळीताध्वरे हविष्मान्** ॥ऋ. ६-१६-४६
(५) **अग्निमीळे कविक्रतुम्** ॥ (ऋ. ३-२७-१२)
(६) **अग्निमीळेन्यं कविम्** ॥ (ऋ ५ १४-५)
(७) **अग्निमीळे पूर्वचित्तिं नमोभिः** ॥
(वा य. १३-४३)
(८) **अग्निमीळे भुजां यविष्ठम्** ॥ (ऋ. १०-२०-२)
(९) **अग्निमीळे व्युष्टिषु** ॥ (ऋ १-४४-४)

'(१) नियामक अग्नि की प्रशंसा कर, (२) अपने संरक्षण के लिये अग्नि का वर्णन कर, (३) मर्त्य अग्नि की स्तुति करे, (४) यज्ञ में हविर्द्रव्य लेनेवाला अग्नि का महत्त्व कहे, (५) कवि और क्रतुरूप अग्नि का वर्णन करता हूं, (६) कवि अग्नि वर्णनीय है, (७) पहिले प्रदीप्त अग्नि को नमस्कारों या अन्नोंद्वारा बढाता हू, (८) (भुजां) भोग करनेवालों में (यविष्ठ) युवा अग्नि का वर्णन करता हूं, (९) (व्युष्टिषु) उदय के समयों में अग्नि का वर्णन करता हूं।'

ये मन्त्रभाग बता रहे है कि आग्नेय शक्ति का महत्त्व कितना है। इन मंत्रों का महत्त्व उस समय ध्यान में आ सकता है कि, जिस समय तीनों क्षेत्रों में अग्निस्वरूप का ठीक ठीक पता लग जाय। उक्त मंत्रभागों में स्पष्ट बताया है कि, यह अग्नि (यंतुर) नियामक, व्यवस्थापक

अथवा प्रवचकर्ता है, (कवि) शब्दशास्त्र में प्रवीण है, (भुजां यविष्ठं) भोग करनेवालों में युवा है, तथा (व्युष्टिषु) उदय के समय में इस का चिंतन किया जाता है। ये शब्द अग्नि का स्वरूप व्यक्त कर सकते हैं। अग्नि की जो प्रशंसा की जाती है, वह अपने (अवसे) संरक्षण के लिये ही है, क्योंकि यही अपना सच्चा संरक्षण करता है। इतने वर्णन से अग्नि के स्वरूप का थोडासा निश्चय हुआ है और उस का पुरोहित होने का भाव भी ध्यान में आ गया है। अब देखना है कि, ' ईडे ' शब्द का वास्तविक तात्पर्य क्या है। क्योंकि अग्नि के साथ ' ईडे ' शब्द का प्रयोग कई मंत्र में हुआ है और यह शब्द विशेष हेतु से ही प्रयुक्त होता है। प्रायः इस का अर्थ ' प्रशंसा, स्तुति, वर्णन ' आदि करते हैं और हमने भी ये ही अर्थ ऊपर रखे हैं, परन्तु इस का विशेष भाव यहां है। यह भाव निम्न लिखित मंत्रों से व्यक्त हो सकता है-

(१) ईळामहा ईड्यॉं आज्येन ॥ (ऋ. १०-५३ २)
(२) तं हि शश्वंत ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥ (ऋ ५-१४-३)
(३) देवॉं ईळाना हविषा घृताची॥ (ऋ ५ २८ १)
(४) को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन॥ (ऋ १-८४ १८)

'(१) (आज्येन) घी के साथ पूजनीयों की पूजा करेंगे, (२) (घृतश्चुता स्रुचा) घीवाले चमस से अग्निदेव की पूजा करते हैं, (३) घी से देवों की पूजा होती है, (४) घृतयुक्त हवि से कौन अग्नि की पूजा करता है ? '

इन मंत्रभागों में ' ईड् ' के साथ ' आज्य ' का संबंध है। अर्थात् इस के विचार से पता लगेगा कि, ' ईडे ' शब्द का अर्थ केवल स्तुति नहीं है, परन्तु घी, (हवि) अन्न आदि के साथ अर्पण का संबंध है। यह भाव ध्यान में धरकर निम्न लिखित मंत्र देखिये—

(१) अग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः। (वा य. १३-४१)
(२) अग्निमीडे भुजां यविष्ठम् ॥ (ऋ १०-२०-२)
(३) घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ॥ (ऋ ५ २७-४)

'(१) (नमोभिः) अन्नोंद्वारा अग्नि की पूजा करता हूं, (२) भोग करनेवालोंमें युवा अग्निकी अर्थात् जवान होने के कारण अधिक खानेवाले अग्नि की मैं पूजा करता हूं. (३) घी और (नमसा) अन्न से अग्नि की पूजा होती है।'

इन मंत्रों में ' नम ' शब्द है, पूर्वमंत्रों के साथ इनका विचार करने से यहां 'नमः' का अर्थ 'अन्न' प्रतीत होता है। अन्न, वज्र और नमन ये तीन अर्थ ' नम ' के हैं। प्रसंगानुकूल यहां अन्न इष्ट है, क्योंकि उसके साथ घी भी है। अन्न और घीसे अग्नि की स्तुति, प्रशंसा आदि नहीं हो सकती, परन्तु उसका संवर्धन हो सकता है। इसलिये 'अग्निमीडे पुरोहितं' इन पदोंका अर्थ मैं प्रत्यक्ष हितकर्ता (अग्नि) जीवनाग्नि का संवर्धन करता हूं। ' ऐसा हो सकता है। घी और उत्तम अन्नों से जीवनशक्ति का संवर्धन होना संभवनीय भी है, इसलिये यह अर्थ प्रत्यक्ष अनुभव में भी आ सकता है।

वेद में अन्न वाचक 'इष्, इट' ये शब्द है। निरुक्त दृष्टिसे इनका संबंध 'इष, इर, इरा, इडा,ईरा, इड्,ईडा,इळा, इला' शब्दों के साथ है और इसीलिये इन सब शब्दों के अनेक अर्थों में ' अन्न ' भी एक अर्थ है। यही कारण है कि, अन्न और घी के साथ ही अग्नि की (ईडा) वधाई होती है, जो पूर्वोक्त मन्त्रोंसे सूचित हो गई है। सब प्राणी अन्न चाहते है, इसलिये ' इष् (इच्छ) ' का अर्थ अन्न होता है और वही भाव ' ईड्, ईळ् ' आदि शब्दों में है। इससे ' ईडे ' का सम्बन्ध अन्नसे है, यह बात सिद्ध है।

इस सूक्त में अग्नि शब्द का मुख्य स्वरूप जीवनाग्नि है, यह बात पूर्व ही बताई गई है। यह जीवनाग्नि घी और अन्न के योग्य सेवन से बढ सकता है, यह दीर्घायुप्राप्ति का बोध यहां इस मन्त्र में बताया गया है। यही जीवनाग्नि किंवा आत्माग्नि, अगिरस, अगरस, अमृत रस अथवा ब्राह्म रस है, जिसका योग्य अन्न और उत्तम घीद्वारा पोषण होता है, यही सूचना इस मंत्र में ' ईड ' धातु कर रहा है। यह आध्यात्मिक जीवनाग्नि के पक्ष में अर्थ है। आधिभौतिक पक्ष में राष्ट्रीय जीवनाग्नि गुरु और उपाध्यायों के रूपमें समाजमें होता है, इनका सत्कार अन्नादिद्वारा करना योग्य है। आधिदैविक पक्ष में हवनीय अग्नि घी आदि हवनीय पदार्थों द्वारा बढाया जाता है, इत्यादि भाव प्रत्येक समयमें पाठक विचार की दृष्टिसे देखते जाय। वैयक्तिक और सामाजिक अर्थ मानवी उन्नति के साधक है और पांचभौतिक अग्निपरक अर्थ सामान्य दृष्टि से स्थूल उपासनाका साधक है। अब और दो पादोंका विचार करेंगे—

'यज्ञस्य देवमृत्विजम् ॥
होतारं रत्नधातमम् ॥'

इन दोनों पादों में अग्नि का स्वरूप-वर्णन है। सब से प्रथम '**यज्ञस्य देवं**' ये शब्द विशेष महत्व रखने के कारण यहां देखनेयोग्य हैं। यह अग्नि यज्ञ का देवता है। जिस यज्ञ का देवता अग्नि है, वह यज्ञ कौनसा है ? और कहां चल रहा है ? इस बात का पता लगाना आवश्यक है। इसका विचार करने के लिये निम्न वाक्य देखिये-

हृदयमें यज्ञ।

अविंदन्ते अतिहितं यदासीत्
यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत् ॥ (ऋ० १०।१८१।२)

'जो (यज्ञस्य परमं धाम) यज्ञ का परम स्थान (गुहा) बुद्धि में, हृदय में है, वह (अति-हितं) अत्यंत गुप्त है, परन्तु ज्ञानी सत्पुरुष उस को (अविन्दन्ते) प्राप्त करते हैं।' इस मंत्र में यज्ञ का स्थान हृदय है, ऐसा स्पष्ट कहा है। हृदयस्थान में अत्यन्त गुप्त रूप से अर्थात् अदृश्य रीति से यह यज्ञ चल रहा है। जो विशेष ज्ञानी हैं, वे ही इस को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से जानते हैं। अन्य साधारण मनुष्य जो स्थूल दृष्टि के हैं, वे इस यज्ञ को देख नहीं सकते, इस का कारण उन का अज्ञान ही है। ऐसे अज्ञानी मनुष्यों को व्यक्त रूप में बताने के लिये ही बाह्य यज्ञ रचा गया है, जो अग्नि में आहुतियां डाल कर किया जाता है। तात्पर्य यह कि, मनुष्य की हृदयरूप गुहा में सच्चा यज्ञ गुप्त रीति से चल रहा है, उस का नकशा ही यह बाह्य यज्ञ है। इस बात का विशेष वर्णन क्रमशः आगे आ जायगा। अब यहां इस का और भाव देखना है, इसलिये निम्न लिखित वचन देखिये-

(१) पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तत्प्रातःसवनं... ॥ १ ॥...यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यंदिनं सवनं... ॥ ३ ॥ . यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनं...॥५॥ (छां.३-१६)

(२) यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत् ॥ (छां. ८-५-१)

(३) अहं ब्रह्माहं यज्ञः ॥ (बृ. १-५-१७)

(४) तस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः, श्रद्धा पत्नी, शरीरमिध्मं, उरो वेदिः, लोमानि बर्हिः, वेदः शिखा, हृदयं यूपः, काम आज्यं, मन्युः पशुः, तपोऽग्निः, दमः शमयिता, वाग्घोता, प्राण उद्गाता, चक्षुरध्वर्युः, मनो ब्रह्मा, श्रोत्रमग्नीत्, यावद् ध्रियते सा दीक्षा, यदश्नाति तद्धविः, यत्पिबति तदस्य सोमपानं......... यन्मुखं तदाहवनीयः......॥

(५) स्वे शरीरे यज्ञं परिवर्तयामि ॥ (प्राणाग्नि उ.२)

(६) अहं क्रतुरहं यज्ञः ॥ (भ. गी. ९-१६)

(७) बुद्धीन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि ॥ (गर्भ उ. ४; प्राणाग्नि उ. ४)

(८) वाग्वै यज्ञस्य होता, चक्षुर्वै यज्ञस्याध्वर्युः, ... प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता, मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा (बृ० ३-१-१)

'(१) मनुष्य का जीवन-संपूर्ण आयु-ही एक यज्ञ है, पहिले २४ वर्ष का प्रातःसवन है, मध्य के ४४ वर्ष माध्यंदिन सवन है, अंत के ४८ वर्ष तृतीय सवन है। (२) जो यह यज्ञ है, वही ब्रह्मचर्य है। (३) मैं ब्रह्मा और मैं यज्ञ हूं। (४) इस ज्ञानी के यज्ञ में आत्मा यजमान, श्रद्धा यजमान पत्नी, शरीर इध्म, छाती वेदी, बाल बर्हि, वेद शिखा, हृदय यूप, वासना घी, क्रोध पशु, तप अग्नि, दम शमिता, वाणी होता, प्राण उद्गाता, चक्षु अध्वर्यु, मन ब्रह्मा, कान आग्नीध्र, व्रतपालन दीक्षा, भोजन हवि, जल सोमपान, मुख आहवनीय अग्नि है। (५) अपने शरीर में यज्ञ का परिवर्तन करता हूं। (६) मैं क्रतु और मैं ही यज्ञ हूं। (७) बुद्धि और इतर इंद्रिय यज्ञपात्र हैं। (८) यज्ञ का होता वाक् है, ... अध्वर्यु चक्षु है, ... उद्गाता प्राण है, ... और ब्रह्मा मन है।'

यह यज्ञ का वर्णन विस्पष्ट रूप से बता रहा है कि, यह यज्ञ मनुष्य के अंदर ही हो रहा है। '**यज्ञ का स्थान हृदय में गुप्त है**' (ऋ० १०।१८१।२) इस ऋग्वेद के कथन का आशय ही उपनिषत्कारों ने उक्त प्रकार स्पष्ट किया है। यही यज्ञ यहां इस ऋग्वेद के प्रथम सूक्त में है और इसी यज्ञ का देव (यज्ञस्य देवं) जो अग्नि है, वह हृदयस्थान में ही विराजमान है। अब पाठकों को पता लग सकता है कि, 'अंग, अंगिरस्' आदि पदोंद्वारा किस

रहस्य का कथन हुआ है। हृदय में जो आत्मशक्ति है, वही यह अग्नि है। यहां हृदय में बैठकर यही आत्मा आयुष्य की समाप्ति तक यज्ञ कर रहा है। यही क्रतु है। प्रत्येक वर्ष एक एक क्रतु करता है और इस प्रकार १०० वर्षों में १०० क्रतु होनेके कारण इसीका नाम '**शतक्रतु**' होता है। यह शतक्रतु आत्मा ही '**इंद्र**' नाम से प्रसिद्ध है और इसी आत्मा शतक्रतु इंद्र की शक्ति '**इंद्रियों**' में कार्य कर रही है। इस प्रकार यहां इन्द्र और अग्नि एक ही हैं। इसीलिये कहा है कि—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदंत्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ (ऋ १।१६४।४६)

'एकही सद्वस्तुका ज्ञानी लोग इंद्र, अग्नि, मित्र, वरुण, सुपर्ण, यम, मातरिश्वा आदि विविध नामोंसे वर्णन करते हैं।' जिस एक आत्माका विविध नामोंसे उक्त प्रकार वर्णन होता है, वही आत्माग्नि इस ऋग्वेद के प्रथम सूक्तमें वर्णन किया गया है। और यही '**यज्ञका देव**' है। क्योंकि जबतक यह इस शरीर के हृदयमंडप में रहकर यज्ञ करता है, तबतक ही यह यज्ञ चलता रहता है। जब यह चला जाता है, तब यज्ञ समाप्त हो जाता है। पूर्ण शतायु (अर्थात् १०८ अथवा १२० वर्ष की आयु) का उपभोग लेकर स्वेच्छा से यज्ञ समाप्त करके यह चला गया, तो कहा जाता है कि, '**इसका यज्ञ समाप्त हुआ,**' परन्तु जब विविध व्याधियां इस पर आक्रमण करती हैं और इसका अकालमृत्यु होता है, तब कहा जाता है कि राक्षसोंने इस यज्ञ का विध्वंस किया। इस प्रकार बीच में अकाल में ही यज्ञ का विध्वंस न हो, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये। क्या ऐसा प्रबन्ध करना मनुष्य के अधीन है? वेदादि शास्त्रों के परिशीलन से पता लग सकता है कि, योगादि साधन प्रारम्भ से ही यदि किये जांय, तो उक्त सिद्धि प्राप्त हो सकती है। इस हेतु से ही इस प्रथम मंत्र में कहा है कि, यही 'यज्ञ का देव' है। यदि इसका यथायोग्य सत्कार हुआ, तो यह यज्ञ की समाप्ति ठीक प्रकार कर सकेगा, अन्यथा चला जायगा। प्रत्येक मनुष्य को यह सूचना यहां मिल रही है कि, '**यज्ञका देव**' अपने हृदय में है, उसको देखना चाहिये और इसका महत्व जानना चाहिये। इस आध्यात्मिक दृष्टि से वेदमंत्रों का मनन करने से उक्त ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

यह '**यज्ञ का देव**' है और यही '**ऋत्विज्**' है। पाठकों को यहां ध्यानपूर्वक देखना चाहिये कि, यहां यज्ञ का देव और ऋत्विज् एक ही हुए हैं (१) **यज्ञ का देव**, (२) **पुरोहित**, (३) **ऋत्विज्**, (४) **होता** आदि सब बाह्य यज्ञ में अलग अलग होते हैं, परन्तु इस प्रथम मंत्र में वर्णित यज्ञ में ये सब एकही वस्तु में मिल गये हैं। जो यज्ञ का देव है, वही पुरोहित, ऋत्विज् और वही होता है। इतना ही नहीं प्रत्युत अन्य याजक भी वही एक है। इसीलिये इस मंत्र में वर्णन किया हुआ यज्ञ अध्यात्मयज्ञ है और बाह्य यज्ञ नहीं है। क्योंकि अध्यात्मयज्ञ में आत्मा ही सब कुछ बनता है, वैसा इस बाह्य यज्ञ में नहीं हो सकता। इस बाह्य यज्ञ में यज्ञ का देव अन्य होता है तथा ऋत्विज्, यजमान आदि उससे भिन्न होते हैं। जहां अग्निष्टोमादि यज्ञ होते हैं, वहां देखने से पता लग सकता है कि, उक्त भिन्नता कितनी स्पष्ट होती है। परन्तु इस मंत्र में स्पष्ट रीति से कहा है कि, यज्ञ का देव और ऋत्विज् एक ही है। अध्यात्म में यह एकता कैसी होती है देखिये।

'**वाणी, प्राण, चक्षु, मन, ये क्रमशः होता, उद्गाता, अध्वर्यु, ब्रह्मा हैं।**' (बृ० उ० ३।१।१-६)' जिन्होंने आत्मविचार किया है, उनको पता है कि, आत्मा की शक्ति ही वाणी, प्राण, चक्षु और मन में कार्य कर रही है, इसलिये आत्मा ही सब यज्ञ कर रहा है। वही यज्ञ का देव है, जिसकी उपासना यज्ञ में की जाती है, वही यजमान है, जो यज्ञ करता है, वही होता, उद्गाता, अध्वर्यु, ब्रह्मा आदि ऋत्विज् है, जिन के द्वारा यज्ञ कराया जाता है। इस अवस्था में उपास्य और उपासक एक ही हो जाते हैं। यह भाव प्रथम मंत्र में वेदने दिया है। जो कहते हैं कि, अध्यात्मविद्या उपनिषदों में ही है और वेद में नहीं है, उनको इस मंत्र का विचार उक्त प्रकार अवश्य करना चाहिये। तब पता लगेगा कि वेदमंत्रों की गुप्त विद्या अब तक ही गूढ रही है और उसमें से थोडीसी उपनिषदों में प्रकट हो गई है। अस्तु। अब ऋत्विज आदि शब्दों का तात्पर्य देखना चाहिये।

ऋत्विज् = (ऋतु + यज्) = जो ऋतु के अनुसार यज्ञ करता है। अध्यात्मदृष्टि से व्यक्ति में छः ऋतु हैं। (१) उत्पत्ति, (२) अस्तित्व, (३) वर्धन, (४) विपरिणाम, (५) क्षीणता और (६) नाश। जगत् के संपूर्ण पदार्थों में ये छः ऋतु हैं। कोई पदार्थ ऐसा नहीं है कि, जिसमें ये न हों। वनस्पति, पशु, पक्षी, तथा मनुष्य इनमे ये प्रत्यक्ष हैं। प्राणिमात्र में जो आत्माग्नि है, वह इन छ ऋतुओं में प्राप्त ऋतु के अनुकूल व्यापार करता है। आत्मा की प्रेरणा से बालक पैदा होता है, वह अपने अस्तित्व के लिये प्रयत्न करता है, शरीरादि को बढाता है, बढते बढते परिपक्व हो जाता है, पश्चात् क्षीणता का ऋतु प्रारम्भ होता है और अन्त में नाश होता है। इस प्रकार इस यज्ञ का प्रारम्भ और अंत आत्मा ही करता है। इन व्यापारों में आत्मा की शक्ति का कार्य देखना इष्ट है। वैदिक धर्म की यदि कोई विशेषता है, तो यही है कि, यह वैदिक धर्म हरएक स्थान पर आत्मा की शक्ति की जागृति कराता है। अस्तु।

इस रीतिसे व्यक्तिके शरीरमें आत्मा का ऋतुओंके अनुकूल कार्य देखा जाता है, यही अध्यात्मज्ञान है। आत्माके संबंधसे जिसकी उत्पत्ति है, वह अध्यात्म (अधि+आत्मा) है। हरएक मनुष्य को ऋतुओं के अनुकूल कार्य करना चाहिए, यह उपदेश यहां मिलता है। बाल्य, तारुण्य और वार्धक्य इन तीन कालोंमें प्रत्येकमें दो ऋतु होनेसे आयुभर में छः ऋतु होते हैं। प्रत्येक ऋतुमें जो करनेयोग्य कर्तव्य होते हैं, उनको उत्तम प्रकार करना अत्यावश्यक है। कर्तव्य स्वयं अपने विषयमें जैसे होते हैं, वैसे ही दूसरोंके संबंधके कारण भी उत्पन्न होते हैं। ये सब ऋतुके अनुकूल ही करने चाहिए। मनुष्यके संपूर्ण आयुमें छः ऋतु है, उसी प्रकार सालमें छ ऋतु हैं। इन ऋतुओंके अनुसार अपनी ऋतुचर्या रखनेसे आयु, आरोग्य और बल प्राप्त होता है। इसी प्रकार मासमें और प्रतिदिन ऋतु होते है। इसका कोष्ठक यह है-

आयुमें ऋतु	वर्षमें ऋतु	मासमें ऋतु	दिनमें ऋतु
१०० वर्ष	१२ मास	३० दिन	२४ घण्टे
जन्म, बालपन	वसंत	प्रतिपदा	प्रात.काल
कुमारावस्था	ग्रीष्म	अष्टमी	मध्याह्न
तारुण्य	वर्षा	पूर्णिमा	सायंकाल
वृद्धता	शरद्	षष्ठी	रात्रिका प्रारंभ
क्षीणावस्था	हेमंत	द्वादशी	मध्यरात्र
अंतसमय	शिशिर	अमावास्या	रात्रि का अंतिम प्रहर।

इस प्रकार समय के छोटे या बडे विभाग में ऋतुओंकी कल्पना की जाती है और प्रत्येक प्राप्त ऋतुकाल में व्यक्तिविषयक, समाजविषयक और जगद्विषयक कर्तव्य अवश्य पालन होना चाहिए। यज्ञका देव आत्माग्नि है, वह ऋतुके अनुसार अपने कर्तव्य करता है, इसलिए हरएकको वैसा करना अत्यावश्यक है, जो ऋतुके अनुसार अपना कर्तव्य योग्य रीतिसे करेगा, वही उन्नत होगा और जो न करेगा वह अवनत होगा। यज्ञका देव हमारा आदर्श है। उसके गुण, धर्म और कर्म वेदमंत्रों में इसलिए कहे हैं, कि उसके अनुसार मनुष्य कार्य करें और अपनी उन्नतिका साधन करें।

आधिभौतिक दृष्टिसे सामाजिक और राष्ट्रीय कार्यक्षेत्र में भी राष्ट्रीय जीवनमें जो ऋतु होते हैं, उनके अनुसार हर-एक को अपने कर्तव्य अवश्य करने चाहिए। राष्ट्रीय ऋतु-परिवर्तन राजकीय क्रांतिरूपसे इतिहासमें प्रसिद्ध है। इसी प्रकार अन्यान्य अवस्थामें राष्ट्रके और समाज, संघ अथवा जातिके ऋतु होते हैं। इन ऋतुओंके अनुकूल अपना कर्तव्य पालन करनेसे राष्ट्रीय उन्नति और कर्तव्यपालन न करनेसे राष्ट्रीय अवनति होती है। सब अन्य व्यवहारोंके विषयमें भी यही बात सनातन है। योग्य विचार करके इस विषय का अनुभव पाठक ले लें। जगत् के अन्दर जो सांवत्सरिक ऋतु परिवर्तन होता है अथवा राष्ट्रके तथा समाजके जीवन में ऋतुपरिवर्तन होता है, उसके अनुकूल मनुष्यमात्र को अपना आचरण करना आवश्यक ही है। जो ऋतुके अनुसार अपना कर्तव्यपालन न करेगा, उसका नाश होगा। सामान्यतः बहुत से यज्ञयाग ऋतुसंधि में जो बीमारियां होतीं हैं, उनके निवारण के लिए किए जाते हैं, इसलिए कहा है—

भैषज्ययज्ञा वा एते। तस्मादृतुसंधिषु प्रयुज्यन्ते। ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते (गो. उ. प्र. १-१९)

' औषधियोंके ही ये यज्ञ हैं, इसलिए ऋतुके संधिसमय में ये किए जाते हैं, क्योंकि ऋतुसंधिमें व्याधियां होतीं है। ' इस प्रकार यह आधिदैविक दृष्टिसे विचार हुआ है।

पाठक विचार करके इससे अधिक बोध ले ले।

होता = इस शब्दका अर्थ दाता, आदाता और आह्वान-कर्ता है। देनेवाला, लेनेवाला और बुलानेवाला ये तीन भाव इस शब्दमें हैं। पहिला दान लेना है, पश्चात् दूसरों को बुलाना और तदनंतर उनको दान देना होता है। विद्या प्राप्त करनी, विद्यार्थियोंको अपने पास बुलाना और उनको विद्यादान करना, यह '**ज्ञानयज्ञ**' का हवन है। धन प्राप्त करना, जिनको धनकी आवश्यकता है, उनको निमंत्रण देना और उनको धनका अर्पण करना, यह '**द्रव्ययज्ञ**' है। इसी प्रकार अन्यान्य यज्ञोंमें '**होता**' का काम निश्चित है। अध्यात्मदृष्टिसे व्यक्ति के शरीरमें आत्माग्नि प्राकृतिक पदार्थों को अपने पास कर रहा है, वायु, सूर्य, जल आदि देवता-ओंके अंशोंको बुलाकर उनको शरीरके भिन्नभिन्न स्थानोंमें रखता है और अपनी शक्ति उनको देकर उनके द्वारा यह शतसांवत्सरिक यज्ञ कराता है। इसी प्रकार अपनी उन्नतिके लिए हरएकको अपने अपने कार्यक्षेत्र मे करना चाहिये।

रत्नधातमः = (रत्न+धा+तमः) = रत्नोंका धारण करनेवाला है। यहां शका हो सकती है कि यह आत्मा रत्नोंका धारक कैसा है, इसके रत्न कौनसे हैं और उनका धारण यह कैसा करता है? इन प्रश्नोंके उत्तर के लिए निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

दमे दमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता निषसादा यजीयान्॥ (७५९, ऋ० ५।१-५)

'(दमे) घर घर में सात रत्नोंको धारण करनेवाला अग्नि यज्ञ करनेके लिये होता बनकर बैठा है।' आत्माग्नि शरीरमें बैठा है, आत्माका घर यही शरीर है, इत्यादि बातो का निश्चय पहिले हो चुका है। इस शरीरमें यह आत्माग्नि सात रत्नोंका धारण करता है। ये सात रत्न- (१) मुख, (२) नेत्र, (३) कर्ण, (४) नासिका, (५) त्वचा ये पंच ज्ञानेंद्रियाँ और (६) मन तथा (७) बुद्धि (किंवा कईयों के मतसे अहंकार) मिलकर होते हैं। जिस प्रकार विविध रत्नोंके अलंकारोंसे शरीरकी शोभा बढती है, उसी प्रकार उक्त इंद्रिय-शक्तियोंके विकास से मनुष्यकी शोभा वृद्धिंगत होती है। परन्तु इसमें विशेष बात यह है कि, यदि ये आत्माके सात रत्न उत्तम अवस्थामे रहे, तो बाह्य रत्नोंके विना भी शोभा और यश बढता है और ये आत्मा के सप्त रत्न ठीक न रहे, तो बाह्य रत्नोंसे शरीरके अलंकार बढानेपर भी उसका कोई उपयोग नहीं होता। तात्पर्य ये आत्माके रत्न मुख्य हैं और बाह्य रत्न गौण है।

व्यक्तिमें और जगत्में भी सप्त रत्न हैं। समाज और राष्ट्रमें प्रकाश, शांति, उग्रता, ज्ञान, गुरुत्व, वीर्य और स्थैर्य इन सप्त गुणोंके कर्म करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष रत्नरूप होते हैं और वेही राष्ट्रकी शोभा बढाते है। इस प्रकार सर्वत्र सप्त रत्नोंका रूप देखकर उनका धारण, पोषण करना आवश्यक है।

प्रत्येक रत्नका वर्ण भिन्न होता है और '**वर्णचिकित्सा**' के नियमानुसार अपने अनुरूप वर्णका रत्न शरीरपर धारण करनेसे शरीरका आरोग्य, आयुष्य और बल बढनेमें सहा-यता होती है। इस विषयका विचार सुविचारी वैद्योंको करना उचित है।

यहां प्रथम मंत्रके सपूर्ण शब्दोंका विचार हुआ। इस मन्त्र में कहे सब शब्द अग्निका स्वरूप निश्चित करनेके लिए सहायता दे रहे है। इन शब्दोंके आशयका विचार करनेसे जो स्वरूप निश्चित होता है, वह ऊपर बताया ही है। इस स्वरूपको ध्यानमें धरकर इस प्रकार का यह अग्नि '**यज्ञ का देव**' है और यह यज्ञ मुख्यतया अपने शरीरमेंही चल रहा है, इसके नियम देखकर मानवसंघका व्यवहार होना चाहिए, इत्यादि बोध अशरूपसे हमने देखा है।

अब और देखिये—

"स देवाँ एह वक्षति॥ २॥ (२)

'वह देवों को यहां लाता है।' यह क्रिया वर्तमान-काल की और प्रत्यक्ष अनुभव की है। इस कथन से प्रश्न होता है कि (१) यह देवों को कहां लाता है? किस रीति से लाता है? किस समय लाता है? और कहां से लाता है? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर देने के पूर्व यह देखना चाहिये कि, इस मंत्रभाग की वेदमें कहां द्विरुक्ति हुई है। देखिये—

(१) मधुच्छंदा वैश्वामित्रः॥ अग्निः॥

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षति॥ (२, ऋ० १-१-२)

(२) वामदेवो गौतमः॥ अग्नि.॥

स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः।
स देवाँ एह वक्षति॥ (७०५; ऋ० ४-८-२)

दो भिन्न ऋषियों के देखे हुए मंत्रों में इस तृतीय चरण की द्विरुक्ति हुई है । जो मंत्र वेद में वारंवार आता है, उस में विशेष महत्त्व का उपदेश होता है, इसलिये उस बात को वारंवार कहकर पाठकों के मन में वह बात स्थिर की जाती है । पुनरुक्त मंत्रों का इस प्रकार महत्त्व है । अब पता लगाना चाहिये कि, कौनसी महत्त्व की बात इस मंत्रभाग में कही है ? इसका विचार करने के लिये निम्न लिखित मंत्र देखिये--

(१) स देवान् विश्वान् बिभर्ति ॥ ऋ० ३-५९-८
(२) स देवान् सर्वानुरस्युपदद्य सपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥ (अ० १०-८-१८)

'(१) वह एक देव सब अन्य देवों का धारण, पोषण करता है । (२) वह एक देव सब अन्य देवों को अपनी छाती में धारण करके सब भुवनों को देखता हुआ चलता है । ' यह उस एक आत्मा का वर्णन है कि, जिस के आधार से अन्य देवगण रहते हैं । यही सब अन्य देवों का धारण, पोषण करनेवाला और सब से उचित कार्य करानेवाला देव है । इसलिये कहा है--

(१) यज्ञो बभूव, स आबभूव, स प्रजज्ञे, स उ वावृधे पुन । स देवानामधिपतिर्बभूव० । (अ० ७५१)
(२) स योनिमैति, स उ जायते पुनः, स देवानामधिपतिर्बभूव ॥ (अ० १३-२ २५)

'(१) एक यज्ञ था, वह प्रकट हुवा, वह बन गया और पुन. बढने लगा । वह देवों का अधिपति हो गया । (२) वह योनि को प्राप्त हुआ, वह नि संदेह पुनः पुनः जन्म लेता है, वह देवों का अधिपति हुआ है ।'

यज्ञ प्रकट होता है, पुनः पुन. बनता है, बनने के पश्चात् बढता है, यह वर्णन 'जीवनरूप यज्ञ' का है । क्योंकि अगले मंत्रमें ही कहा है कि वह देवों का अधिपति बननेवाला है, वह योनि में प्रविष्ट होकर पुनः पुन. जन्म लेता है ।

इस प्रकार वारंवार जन्म लेता हुआ, अनेक वार यज्ञ करने का यत्न करता है । इसके यज्ञ पर राक्षस हमला करते हैं, और बीच में विघ्न करते हैं । इस प्रकार यज्ञों में विघ्न होने पर वह फिर योनि में प्रविष्ट होकर पुनः जन्म लेता है और पुनः यज्ञ करता है । यह उसका प्रयत्न यज्ञ की पूर्णता होने तक चलता है । यह मंत्र पुनर्जन्म का स्वरूप बता रहा है, परन्तु उसका अधिक विचार करने का यह स्थान नहीं है । पुराणों में ऋषियों के यज्ञों का नाश राक्षसों के द्वारा होने की अनेक कथाएं हैं, उनका मूल यहां इन मंत्रों में है । विचारशील पाठकों को पता लग सकता है कि, यह आत्मा का शतसांवत्सरिक जीवन-यज्ञ ही है । जिस समय यज्ञ करने की इच्छा से यह योनिक्षेत्र में उतरता है, उस समय यह देवों को अपने साथ लाता है और इसका आह्वान सुन कर सब ३३ कोटी देव अपने अंशरूप से इस गर्भ में अवतार लेते है और उन सब देवों का अधिराजा यह स्वयं हृदयस्थान में रहने लगता है । इसका प्रभाव देखिये—

(१) स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः॥ (य. ३४ ५१)
(२) स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः॥ (अ. १-३५-२)
(३) स देवेषु वनते वार्याणि ॥ (ऋ. ५ ४-३)
(४) स देवो देवान्प्रति पप्रथे पृथु ॥ (ऋ.२-२४-११)

' (१) वह देवों में दीर्घ आयु करता है. (२) वह जीवों में दीर्घ आयु करता है, (३) वह देवों में से वरने-योग्य सत्वों को स्वीकार करता है, (४) वही एक देव है, जो अन्य सब देवों के प्रति फैला है । ' इस एक आत्म-देव का इतना प्रभाव होने के कारण इसका शब्द सुनते ही इसके साथ सब अन्य देव जाते है । अब और देखिये–

(१) देवो देवानां गुह्यानि नामाविष्कृणोति ॥ (ऋ. ९-९५-२)
(२) देवो देवानां जनिमा विवक्ति ॥ (ऋ. ९-९७-७)
(३) आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षुरपराजितमस्तृतमषाळ्हम् ॥ (ऋ. १०-४८-११)
(४) त्वमग्ने प्रथमो अंगिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ॥
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः (५०; ऋ० १।३१।१)

(५) त्वमग्ने प्रथमो अंगिरस्तमः कविर्देवानां परिभूषसि व्रतम् ॥ (५१; ऋ० १।३१।२)
(६) देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे। शर्मन्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ (२६८; ऋ० १।९४।१३)
(७) देवो देवान् ऋतुना पर्यभूषत् ॥ (ऋ० २।१२।१)
(८) देवो देवान् परिभूर्ऋतेन (ऋ० १०।१२।२)
(९) होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन् ॥ (ऋ० २।३।१)
(१०) समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ॥ (ऋ० १०।११०।१)
(११) देवो देवान् स्वेन रसेन पृञ्चन् ॥ (ऋ० ९।९७।१२)

'(१) यह एक देव अन्य देवोंके (नामानि) नामों को प्रकट करता है, (२) यह एक देव अन्य सब देवोंके जन्म कहता है, (३) वसु, रुद्र और आदित्यादि देवोंके धामका भी नाश नहीं करता। क्योंकि मैं अपराजित, अजेय और असह्य हूं और वेही कल्याण और बल के लिये मुझे व्यक्त करते हैं, (४) हे अग्ने! वही पहिला अंगिरा ऋषि है, और तू एक देव अन्य सब देवोंका सच्चा शुभ मित्र है। तेरे नियममें ही ज्ञानसे पुरुषार्थ करनेवाले कवि तेजस्वी होते है, (५) हे अग्ने! तू पहिला अत्यंत अंगरस है, और अन्य देवोंके नियमको सुभूषित करता है, (६) तू सब देवोंका एक देव अद्भुत मित्र है, और यज्ञमें वसुओंकाभी वसु तूही है। हे अग्ने! तेरे सख्यमें हम (मा रिषाम) नष्ट नहीं होंगे और (शर्मन्) सुख ही प्राप्त करेंगे, (७) तू एक देव अन्य देवोंको कर्मसे भूषित करता है, (८) सत्य नियमसे तू एक देव अन्य देवोंको व्यापता है, (९) होता, (पावकः) पवित्रकर्ता, उत्तम मेधावान् योग्य अग्निदेव देवोंका यजन करे, (१०) हे जातवेद अग्ने! तू (मनुषः दुरोणे) मनुष्यके घरमें प्रदीप्त होकर देवोंके लिये यज्ञ करता है, (११) एक देव अपने रससे अन्य देवोंको तृप्त करता है।'

यह एक देवका महत्त्व है। यह एक देव सब अन्य देवोंको अपने यज्ञ में बुलाता है, वे देव उसके यज्ञमें आते है, उसके साथ रहते है और वह चला गया, तो उसके साथ चले जाते हैं। यह सब वेदका आलंकारिक वर्णन एक ही बातको बता रहा है। वह बात यह है कि, '(१) आत्मा जन्म लेने के समय योनि में प्रवेश करना चाहता है, उस समय वह अन्य देवोंके अर्थात पृथिवी, आप, तेज, वायु सूर्य, चंद्र, विद्युत्, आदि सब देवताओंको अपने साथ बुलाता है, (२) उसका शब्द सुनकर सब ३३ कोटी देव अपने अपने अंशको उसके साथ भेजते हैं, (३) सब देवोंका यह देह बनता है और उसका अधिष्ठाता आत्मदेव होता है और इस प्रकार बनकर वह जन्म लेता है और शतसांवत्सरिक यज्ञ प्रारंभ करता है। ये देव आकर कहां रहते है, इसका वर्णन भी देखिये—

[१] सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥१२॥
[२] गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥१३॥
[३] रेतः कृत्वा आज्यं देवा पुरुषमाविशन् ॥२९॥
[४] सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य विभेजिरे ॥३१॥
[५] तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते। सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥३२॥
(अ. ११।८)

[६] अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्,
वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्,
आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत्,
चंद्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्,
आपो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ॥ (ए. उ. २।४)

'(१) सब मर्त्य शरीरका सिंचन करके देव पुरुषमें घुसे है, (२) मर्त्य घर करके देव पुरुषमें प्रविष्ट हुए हैं, (३) रेत का घी बनाकर देव पुरुष में वसने लगे है, (४) सूर्य चक्षु बना है, वायु प्राण हुआ है, (५) इसलिये ज्ञानी इस पुरुषको ब्रह्म मानता है, क्योंकि सब देवताएं इसीके अंदर रहतीं है, जैसी गौवें गोशालामें रहतीं है। (६) अग्नि वाचा बनकर मुखमें घुसा है, वायु प्राण बनकर नासिकामें रहने लगा, सूर्य चक्षु बनकर आंखमें वसने लगा, चंद्र मन बनकर हृदयमें रहने लगा, जलदेव वीर्य बनकर शिश्नमें रहा।' इस प्रकार अन्यान्य देवताएं इस एक देवके साथ आ गईं और यहां इस शरीरमें अपने अपने

स्थानमें रहने लगीं। यह सब वेदों और उपनिषदोंका वर्णन देखनेसे पता लग सकता है कि, इस शरीरमें आत्माके साथ देव आकर बसे हैं। इस हेतुसे ही कहा है कि '**स देवान् एह वक्षति**' अर्थात् '**वह सब देवोंको यहां लाता है**।' उक्त मंत्रोंके विचारसे पाठकोंको पता लगाही होगा कि कहां और किस प्रकार लाता है, इसलिये इसका अधिक विचार अब करनेकी आवश्यकता नहीं है। परमात्मा सपूर्ण जगत् में व्यापक होकर सूर्यादि सब देवताओंका धारण-पोषण करता है, उसी प्रकार उसका अमृतपुत्र जीवात्मा इस देहमें रहकर सूर्यादि देवतांशोका धारण-पोषण करता है, यह दोनोंमें समानता होनेके कारण मंत्रोंमें दोनोंका वर्णन एकही रीतिसे होता है, यह बात पाठक पूर्वोक्त मंत्रोंमें स्पष्ट रूपसे देख सकते है। अस्तु। इस रीतिसे यह आत्माग्नि अन्य देवोंको यहां- इस देहमें-इस कर्मभूमिमें- लाता है और शतसांवत्सरिक यज्ञ करनेकी तैयारी करता है।

अध्यात्मदृष्टिसे शरीरमें देखिये कि यह आत्मा, प्राण अथवा जीवनका सत्वरस शरीर में प्राणघातक व्याधि-कीटकोंके साथ सदैव युद्ध करता है, युद्धमें उनका पराभव करता है और आरोग्य का रक्षण करता है। व्याधिकीटक आसुरी स्वभावके कारण शरीरकी हिंसा करना चाहते है, उस हिंसासे इस शरीरका बचाव करनेके कारण आत्माके इस सत्कर्म को "अ-ध्वर यज्ञ" अर्थात् हिंसारहित यज्ञ कहते है। शरीरका सर्वतोपरि संरक्षण करनेका कार्य पूर्णतया यही जीवनका केंद्र कर रहा है, इसलिये मंत्रमें कहा है कि (विश्वतः परि-भूः) सब प्रकारसे सबका नियामक और शासक यही है। सब जानते ही है कि, आत्माकी श्रेष्ठता है और अन्य इंद्रिय-शक्तियोंकी गौणता है, क्योंकि आत्माकी जीवनरूप प्राणशक्ति ही अन्य इंद्रियों, अंगों और अवयवोंमें पहुच कर कार्य करती है। यही भाव (स, इत् देवेषु गच्छति) "वह यज्ञ देवोंमें पहुंचता है" इस वाक्यसे व्यक्त किया है। आत्माग्नि यज्ञ करता है, उसका मुख्य प्रबंधकर्ता स्वय आत्माही है और वह यज्ञ (देवों द्वारा) इंद्रियोंद्वारा होता है, इंद्रियोंमें उसका प्रभाव पहुंचता है। यह सब हरएक के अनुभव में है।

आधिभौतिक दृष्टिसे संघ में, समाज में अथवा राष्ट्रमें भी यही भाव दिखाई देता है।

तीनों स्थानोंमें इस बातकी सार्वत्रिकता देखनेयोग्य है। **(१) अपना संरक्षण, (२) शत्रुशक्तिका पराभव, आत्मशक्तिका विजय, (३) अपनी उन्नति और स्वकीय शक्तिका विकास, (४) सहाय्यकर्ताओंका संघीकरण और उनका पोषण**, यही मुख्य बाते हैं, जो इस यज्ञसे ध्वनित होती हैं। जिस व्यक्तिमें और जिस राष्ट्रमें ये होती रहेगी, उसका संरक्षण होगा और जहां न होगी वहां नाश होगा। इसलिये सबको उचित है कि, इस प्रकार अपनी उन्नतिके लिए हरएक प्रयत्न करे। अब द्विरुक्तिका विचार करना है—

[१] मधुच्छंदा वैश्वामित्रः। अग्निः।
विश्वतः परिभूरसि ॥ (४; ऋ० १।१।४)

[२] कुत्सः आंगिरसः। अग्नि शुचिः।
त्वं हि विश्वतो मुखो '**विश्वतः परिभूरसि**।'
अप नः शोशुचदघम् ॥ (१८९२, ऋ० १।९७।६)

दो विभिन्न ऋषियोंके मंत्रोंमें '**विश्वतः परिभूः असि**' (सब प्रकारसे सर्वोपरि है) यह वाक्य द्विरुक्त हुआ है। अग्निका सर्वतोपरि शासक होना इस द्विरुक्तिसे व्यक्त होता है। सबका नियामक आत्मा होनेसे यहां विशेषतया आत्माग्नि ही वक्तव्य है, इसकी सिद्धता पहिले हो चुकी है। आत्माका वर्णन भी इन्ही शब्दोंसे ईशोपनिषद् में हुआ है—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धं। कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥
(वाय० ४०।८; ईश. ८)

'वह आत्मा (पर्यगात्) व्यापक है और (शुक्रं) वीर्यरूप, देहरहित, व्रणहीन, स्नायुहीन, शुद्ध, निष्पाप, कवि, बुद्धिमान्, (परिभू) सबका नियंता, तथा (स्वयंभूः) स्वयंसिद्ध है। वह शाश्वत कालसे यथायोग्य रीतिसे सब अर्थों को करता आया है।' वही आत्माग्निका यज्ञ जो शाश्वत कालसे चल रहा है, वही ऋग्वेदके प्रथम सूक्तमें वर्णन किया है। '**परिभू, कवि,**' आदि शब्द इस सूक्तमें आ गये हैं, अग्निका नाम '**पावकः, शुचिः**' प्रसिद्ध हैं, इस नाममें 'शुद्ध' शब्दका भाव आ गया है। वह स्वयं 'अ-पाप-विद्ध' अर्थात् निष्पाप है, इतनाही नहीं, परंतु

वह (नः अघं अप शोशुचत् । (ऋ. १।९७।६) वह हमारे पापको दूर करके हमको भी पवित्र करता है, अर्थात् वह स्वयं शुद्ध है और दूसरोंको भी पवित्र करता है। वह एकदेशी नहीं है, परंतु वह (पर्यगात्) सर्वत्र है, यही भाव (त्वं हि विश्वतो मुख) 'तू सर्वत्र मुखवाला है' इस कथनमें व्यक्त हुआ है। एक देवता का वर्णन वेदमें निम्न प्रकार आया है—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो
विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैः
द्यावाभूमी जनजन् देव एकः ॥ (ऋ १०।८१।३)

'जिस एक देवके (विश्वतः चक्षुः) सर्वत्र आंख, (विश्वतः मुखः) सर्वत्र मुख, सर्वत्र बाहु और सर्वत्र पांव है, जो बाहुओंसे और पंखोंसे सबका धारण और नियमन करता है, वही द्युलोक और पृथिवीको उत्पन्न करता है।' इस मन्त्रका '**विश्वतो मुखः**' शब्द इस आत्माग्निके वर्णनमें इस मन्त्रमें है। आत्माकी सर्वव्यापकता इस मंत्रसे बताई है। अग्नि भी सब जगत्के सब पदार्थोंमें विद्यमान है, देखिये—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ (कठ. उ. ५।९)

'जिस प्रकार एकही अग्नि सब भुवनमें प्रविष्ट हो कर प्रत्येक रूपमें प्रतिरूप हुआ है, वैसाही एक सब भूतोंका अंतरात्मा प्रत्येक रूपमें प्रतिरूप हुआ है और बाहिर भी है।' यहां प्रसंगतः अग्निके विषयका उपनिषदोंका मंतव्य देखनेयोग्य है—

(१) **एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यदग्निर्ज्वलति ।** (कौ.उ १२)
(२) **यः पुरुषः सोऽग्निर्वैश्वानरः ।** (मैत्री. उ.२।६)
(३) **प्राणोऽग्निः परमात्मा ।** (मैत्री.६।९,प्राणाग्नि २)
(४) **प्राणोऽग्निरुदयते ।** (मुंड. २।१।७; प्रश्न १।७)
(५) **अग्निर्हि वै प्राणः ।** (जाबा ४)
(६) **अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।**
मंत्रोऽहमहमेवाऽयमहमग्निरहं हुतम् ॥
(भ. गी. ९।१६)

'(१) यह ब्रह्मही प्रकाशता है जो अग्नि जलता है, (२) जो पुरुष है वही वैश्वानर अग्नि है, (३) प्राण अग्नि परमात्मा है, (४) यह प्राण अग्निही उदय पाता है, (५) प्राण ही निःसंदेह अग्नि है, (६) (अहं) मैं आत्माही क्रतु, यज्ञ, स्वधा, औषध, मंत्र, आज्य, अग्नि और हवन हूं।' इन उपनिषदोंके कथनेके साथ निम्न उपनिषद्वाक्य देखिये—

(१) **पुरुषो वाव गौतमाग्निः तस्य वागेव समित्, प्राणो धूमो, जिह्वा अर्चिः, चक्षुरंगाराः, श्रोत्रं विस्फुलिंगाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति, तस्या आहुते रेतः संभवति ॥ २ ॥ ७॥**

(२) **योषा वाव गौतमाग्निः, तस्या उपस्थ एव समित्, यदुपमंत्रयते स धूमो, योनिरर्चिः, यदन्तः करोति ते अंगाराः, अभिनंदा विस्फुलिंगाः ॥ १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः संभवति ॥ २ ॥ ८ ॥** (छां उ ५।३)

यही कथन थोडेसे भिन्नताके साथ बृहदारण्यकमें आया है, वह भी यहां देखिये—

अंशावतार

पुरुषो वाऽग्निर्गौतम, व्यात्तमेव समित्, प्राणा धूमो, वागर्चिः, चक्षुरंगाराः, श्रोत्रं विस्फुलिंगाः, तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति, तस्या आहुत्यै रेतः संभवति ॥ १२ ॥

(२) **योषा वा अग्निर्गौतम, तस्या उपस्थ एव समित्, लोमानि धूमो, योनिरर्चिः, यदन्तः करोति ते अंगाराः, अभिनंदा विस्फुलिंगाः, तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति, तस्या आहुत्यै पुरुषः संभवति, स जीवति यावज्जीवति ॥ १३ ॥**

(बृ. आ. ६।२)

'(१) पुरुष अग्नि है, इसमें अन्नका हवन होता है, इस हवन से रेतकी उत्पत्ति होती है, (२) स्त्री अग्नि है, इसमें रेतका हवन होता है, इस हवनसे बालक उत्पन्न होता है।' इस वर्णनसे पता लग सकता है कि किस अपूर्व अलंकार से अग्निकी विभूति स्थानस्थानमें देखनी होती है और वहां का भाव समझना होता है। स्त्रीरूप अग्निमें जिस समय आत्मा आता है, उस समय वह त्रैलोक्यके संपूर्ण

देवोंको अपने साथ बुलाता है और उनके साथ '**अंशावतार**' लेता है। यही बालक है। बालक का जन्म होते ही उसके शरीरमें यह शतसांवत्सरिक क्रतु करने लगता है, जो भोग इसको दिये जाते हैं, वे उस उस देवता तक पहुंचाता है। रूपके भोग आंखमें रहनेवाले सूर्यके अंशको देता है, सुगंधके भोग नासिकानिवासी अश्विनी देवोंको देता है, रुचिके भोग जिह्वानिवासी जलदेव वरुणको देता है, स्पर्शके भोग वायुको पहुंचाता है, इसी प्रकार अन्यान्य भोग अन्यान्य देवताओंके अंशोंके द्वारा उस उस देवतातक पहुचाता है। यही इस आत्माग्निका दूत्य है। अग्नि दूत होनेका वर्णन आगे अनेक सूक्तोंमें आनेवाला है, इसलिये पाठक इस विषयको ठीक प्रकार समझनेका यत्न करें। यदि यह बात ठीक रीतिसे ध्यानमें आ गई, तो आत्माग्नि यज्ञ (देवेषु गच्छति) देवोंतक कैसा पहुचाता है, इसका ठीक विज्ञान हो सकता है। अपने शरीरमें ही यह यज्ञ पाठक देख सकते हैं। वेदको अभीष्ट है कि पाठक इस यज्ञको अपने अंदर अनुभव करें। यही आत्माग्नि सब देवोंका केंद्र है, देखिये—

(१) अग्ने नेमिरराँ इव देवांस्त्वं परिभूरसि॥
(८५९; ऋ ५।१३।६)

(२) स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं॥(३८९;ऋ. २।२।५)

'(१) हे अग्ने! जैसे चक्रकी नाभिमें आरे होते हैं, वैसे देव तेरे में हैं, और देवोंका तू नियामक है। (२) वही अग्नि हवनकर्ता है और सब (अ-ध्वरं) यज्ञका प्रबंधकर्ता है।' इन मंत्रोंसे अग्नि शब्द आत्माग्निका ही मुख्यतया वाचक है, यह बात ध्यानमें ठीक प्रकार आ सकती है। पूर्वोक्त भगवद्गीताके श्लोकमें '**मैं (आत्माग्नि) यज्ञ हूं, और मैं ही अग्नि, घी, मंत्र, तथा हवन भी मैं ही हूं**' (गी ९।१६) यह बात ध्यानमें धर कर इस सूक्तका कथन देखिये— '**अग्नि यज्ञका देव, पुरोहित, होता और ऋत्विज् आदि है।**' दोनोंका एकही तात्पर्य है। दोनोंको आत्माकाही वर्णन भिन्न रीतिसे करना है। यह आत्माग्नि यहां इस देहमें सब देवोंको लाता है और सौ वर्ष तक यज्ञ करनेका यत्न करता है। यह आत्माग्नि जो यह यज्ञ करता है, वह यज्ञ निःसंदेह देवोंतक पहुचता है। पूर्वोक्त स्पष्टीकरणसे यह कथन अब पाठकोंको प्रत्यक्ष हुआही होगा।

यहां आत्माग्नि मुख्य केंद्र है और अन्य देव उसके साथी है। ये साथी उसको यथाशक्ति सहायता करते हैं। यद्यपि आत्माकी शक्तिके बिना आंख, नाक, कुछ भी कार्य नहीं कर सकते, तथापि आंखके विना देखना तथा अन्य इंद्रियोंके विना अन्य अनुभव लेना आत्माके लिये अशक्य है। इसलिये (१) आत्मा सम्राट् है और ये अन्य देव उसके मांडलिक राजे हैं। ये मांडलिक राजे अपने देशके उत्पन्नका करभार सम्राट्को देते है, और सम्राट्ही उनको यथायोग्य प्रसाद देता है। अथवा (२) अन्य देव इसके सेवक हैं, अपना कार्य करनेद्वारा उसकी सेवा करते हैं और वह भी उनको यथायोग्य वेतन देता है। अथवा (३) ये देव उसके मित्र है, वे इसकी सहायता करते है और वह भी अपना धन उनको बांटता है। किंवा (४) वह यज्ञ करनेवाला है और ये ऋत्विज है, ये उसका यज्ञ यथायोग्य रीतिसे करते है और वह भी इसको योग्य दक्षिणा देता है। कोई अलंकार लीजिये, ये तथा बहुतसे अन्य अलंकार वेदमें स्थान स्थानमें आ गये है। सब अलंकारोंका तात्पर्य एकसा ही है। (**स इत् देवेषु गच्छति**) वह यज्ञ देवोंमें पहुचता है, इसका तात्पर्य उक्त प्रकार है। यदि किसीने किसीसे सेवा ली, तो उसको उचित है कि, वह सहायकर्ताका ऋण प्रत्युपकार द्वारा वापस करे, यह बोध यहां मिलता है।

'**स देवानेह वक्षति।**' इस प्रथम मंत्रके कथनसे पता लगा है, कि 'आत्माग्नि देवोंको यहां लाता है।' इसका शब्द सुनकर सब देव अंशरूपसे आते है, अथवा अपने अपने सूक्ष्म अंशोंको भेजते है। सब देव आनेके पश्चात् इसका यज्ञ शुरू होता है और यज्ञमें यह आत्माग्नि '(**स इत् देवेषु गच्छति**)' सब देवोंको यथायोग्य यज्ञभाग देता है। परस्पर सहायता करनेका यह बोध हरएक मनुष्यको देखना चाहिये और इस प्रकार परस्पर सहायता करके संघशक्तिद्वारा अपनी उन्नति करनी चाहिये। यहां यह विशेष रूपसे कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, यह शरीर देवोंके '**संघका ही कार्य**' है। इस प्रकार जो अभेद्य संघ बनायेंगे, वे भी विलक्षण शक्तिसे युक्त होकर उन्नत हो जायंगे।

यह आत्मा (होता) हवनकर्ता है। यह अपने श्रोत्रादिक सब इंद्रियोंको '**संयमाग्नि**' में हवन करता है

और संयमी बनकर अभ्युदयको प्राप्त करता है । शब्दादि सब विषयोंको यही ' इंद्रियाग्नि ' में हवन करता है और उपभोग लेकर सुखी होता है। तथा सब इंद्रियकर्मोंको और प्राणकर्मों को ' योगाग्नि ' में हवन करके योगी बनता है और स्वाधीनता प्राप्त करता है। हवन किसी प्रकारका हो, यही हवनकर्ता है, इसमें कोई सदेह ही नहीं है।

साधारण सुबोध भाषामें बोलना हो, तो इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह आत्मा इद्रियोंको विषयभोग देता है, यही उसका इद्रियाग्निमें हवन है और इसीलिये इसको ' होता ' कहते हैं। हवन किये पदार्थ वह देवों तक पहुंचाता है, इसका यही तात्पर्य है। ' देव ' शब्दका अध्यात्मदृष्टिसे अर्थ 'इद्रिय' ही है। जो आत्माका इद्रियों से संबध है, वही ब्रह्माग्निका अन्य देवोंसे है। ब्रह्माग्नि, आत्माग्नि और अग्नि सांकेतिक दृष्टिसे एकही पदार्थ है।

(कवि-क्रतुः) ज्ञानी और पुरुषार्थी ' अग्नि ' अर्थात् आत्माग्नि है। आत्माका चित् स्वरूप सुप्रसिद्ध है तथा चेतन आत्मा सबका प्रेरक होनेसे सब पुरुषार्थोंका प्रवर्तक निःसंदेह है। ' कवि ' शब्दका अर्थ ज्ञानी, बुद्धिमान् और शब्दप्रेरक है। इसलिये कहा है कि—

अग्ने कविः काव्येनासि विश्ववित् ॥
(१६५३, ऋ १०।९१।३)

अग्ने कविर्वेधा असि ॥ (१३९;१ ऋ० ८।६०।३)

' हे अग्ने! तू कवि है और अपने काव्यसे (विश्व-वित्) सर्व-ज्ञ है। हे अग्ने! तू कवि और (वेधाः) ज्ञानी है। '

यह अग्निका वर्णन उसके 'आत्माग्नि' होनेकी सिद्धता कर रहा है। क्योंकि (विश्व-वित्) सर्वज्ञत्व एक आत्मा में ही संभवनीय है। कवि काव्य करता है और सर्वज्ञ कविका काव्य भी सर्वज्ञानसे परिपूर्ण होना संभवनीय है। इसीलिये परमात्माका 'शब्द' प्रमाण माना जाता है। आत्माभी शब्दका प्रेरक ही है—

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युंक्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहंति स प्रेरयति मारुतम् ॥६॥
मारुतस्तूरसि चरन् मंद्रं जनयति स्वरम् ॥७॥
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः।
वर्णान् जनयते तेषां विभागः पंचधा स्मृतः ॥९॥
(पाणिनीय शिक्षा)

'आत्मा बुद्धिके साथ मिलकर अर्थकी प्रेरणा मनमें करता है। मन शरीरकी उष्णता पर आघात करके वायुको प्रेरित करता है। वह वायु छातिसे ऊपर चलने लगता है, उस समय सूक्ष्म स्वर उत्पन्न करता है। यही स्वर मुखमें विविध स्थानोंमें आकर विविध वर्णोंमें परिणत होता है।'

इस प्रकार आत्मा शब्द का प्रेरक है, इसलिये ' कवि ' है। आत्माग्नि का कवि होना इस प्रकार शास्त्रसिद्ध है। उपनिषदोंमें भी कहा है—

[१] केनेषितां वाचमिमां वदन्ति ?
[२] वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः ॥
[३] यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ॥
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि० ॥ (केन उ० १।१-४)

'(१) किससे प्रेरित हुई वाणी बोलते है? (२) (वह प्रेरक) वाणीकी वाणी और प्राण का प्राण है। (३) जो वाणीसे प्रकाशित नहीं होता, परन्तु जिससे वाणी प्रेरित होती है, वह ब्रह्म है, ऐसा तू जान।' इससे स्पष्ट है कि आत्माग्नि ही वाणीका प्रेरक है। इसीलिये इसको कवि कहते है। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

[१] युवा कविरध्वरस्य प्रणेता ॥
(६२७, ऋ० ३।२३।१)

[२] अहं कविरुशना पश्यता मा ॥
(ऋ० ४।२६।१)

[३] युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥ (७६०; ऋ० ५।१।६)

[४] अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो निधायि ॥ (११३७, ऋ० ७।४।४)

[५] अमूरः कविरदितिर्विवस्वान् त्सु सं सन्मित्रो अतिथिः शिवो न ॥ (११५७; ऋ० ७।९।३)

[६] सत्यो यज्वा कवितमः स वेधा ॥
(५८१; ऋ० ३।१४।१)

[७] होता मंद्रः कवितमः पावकः ॥
(११५५; ऋ० ७।९।१)

'(१) यह जवान कवि यज्ञका चालक है, (२) मैं ही इच्छा करनेवाला कवि हूं, मुझे देखिये, (३) जवान कवि (पुरु+निः-ष्ठः) सब पदार्थोंमें स्थित, सत्यवान्, (कृष्टीनां धर्ता) प्रजाओं का धारण करनेवाला और मध्यमें प्रदीप्त है, (४) यह (अ-कविषु कविः) शब्द न करनेवालोंमें

शब्दकर्ता है, (प्र-चेता) चेतन और यही मर्त्योंमें अमृत है, (५) यह (अ-मूरः) मूढ नहीं है, कवि, (अ-दितिः) अमर्याद, (विवस्वान्) सबका निवासक, उत्तम मित्र, (अ-तिथि) जिसकी आनेकी तिथि निश्चित नहीं होती, ऐसा और (शिव) कल्याणकारी है, (६) सत्य, याजक श्रेष्ठ कवि और (वेधा) ज्ञानी है, (७) यह हवनकर्ता, हर्षकारक, श्रेष्ठ कवि और (पावकः) पवित्रकर्ता अग्नि है।'

इन मन्त्रोंमें 'कवि' शब्द है और उसका शब्दकी उत्पत्तिके साथ ही संबंध है। (अहं कविः) 'मैं कवि हूं' ऐसा अध्यात्म वचन है। इसका स्पष्ट भाव है कि, मैं इन्द्र कवि हूं, जिसका दूसरा नाम अग्नि भी है। क्योंकि एकही सद्वस्तुको अग्नि, इंद्र, आदि अनेक नाम ज्ञानी देते है। यह कवि अग्नि (युवा) जवान है। जो अज और अनंत होता है, उसको ही 'युवा' कहते है। आत्माही अजन्मा और अविनाशी है, इसलिये युवा भी है। यह 'पुरु+निष्ठ' सबमें व्याप्त है। (कृष्टीनां धर्ता) प्रजाओंका धारणपोषणकर्ता यही है। (अ-कविषु कविः) शब्द न करनेवालोंमें यह शब्द उत्पन्न करनेवाला है, जडोंमें यह वक्ता है, शरीरके मूक जड अवयवोंमें यही एक शब्द बोलनेवाला है और यही (मर्त्येषु अमृतः) मरनेवालोंमें अमर है। सब शरीर मरता है और उसमें यही एक आत्मा अमर है। यह ऐसा है कि (अ-तिथिः) जिसकी तिथि निश्चित नहीं है, जिसके आनेकी और जानेकी तिथि निश्चित नहीं है, जन्म और मरणकी तिथि इस आत्माकीहि निश्चित नहीं है। इस प्रकारका यह अग्नि निःसंदेह 'आत्माग्नि' ही है। उक्त शब्द यदि किसीका सत्य वर्णन कर रहे है, तो वह निःसंदेह आत्माग्नि ही है, क्योंकि उक्त शब्दोंकी सार्थकता आत्माग्निमेंही होती है। अस्तु। इस प्रकार यह आत्माग्नि कवि है।

यह 'क्रतु' अर्थात् 'यज्ञ' भी है। क्योंकि 'पुरुषार्थ' ही इसका स्वरूप है। सतत पुरुषार्थ इसका निज धर्म है। 'पुरुषो वाव यज्ञः' (छां० उ० ३।१६) पुरुष अर्थात् आत्मा यज्ञस्वरूपही है। इसलिये उसको 'क्रतु' तथा 'शत-क्रतु' कहते है। 'क्रतु' शब्दका दूसरा अर्थ 'प्रज्ञा' है। ज्ञानरूप चित्स्वरूप, होने से इसके भावमें यह अर्थ भी योग्य हो सकता है।

'कवि-क्रतु' का दूसरा अर्थ 'क्रांत-प्रज्ञ' अर्थात् 'विशेष ज्ञानी' है। यह अर्थ भी पूर्व अर्थोंके साथ सुसंगतहि है।

'सत्यः' यह इस मन्त्रका शब्द विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसका भाव 'तीनों कालोंमें विद्यमान' ऐसा होता है। यह आग भूतकालमें नहीं होती, बीचमें जलती है और फिर बुझ जाती है, तीनों कालोंमें एक रूपमें नहीं रहती, परन्तु यह आत्मा तीनों कालोंमें समरस रहता है। यद्यपि गुप्त, व्यापक अग्नि सर्वदा विद्यमान होता है, तथापि इस अग्निका अग्निपन भी उस आत्मापर तो अवलंबित है, क्योंकि इस अग्निका अग्निही यह 'आत्माग्नि' है। 'सत, सत्य' ये शब्द एक सत्यस्वरूप आत्माकेही मुख्यतया वाचक हैं।

"चित्र+श्रवः+तमः" विलक्षण यशसे युक्त। यह शब्द मुख्य वृत्तिसे आत्माग्निकाही वर्णन कर रहा है। देखिये इसका वर्णन—

> आश्चर्यवत्पश्यतित् कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति
> तथैव चान्यः। आश्चर्यवच्चैवमन्यः शृणोति
> श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥ (भ०गी०२।२९)

'कोई तो आश्चर्य समझकर इसकी और देखते हैं, कोई आश्चर्य सरीखा इसका वर्णन करता है, कोई आश्चर्यसे सुनता है, परतु सुन कर भी कोई इसे जानता नहीं है।"

इस प्रकार आत्माग्निके अपूर्व यशका गुणगान सब शास्त्र कर रहे है। इस प्रकारकी यह अद्भुत वस्तु है। अस्तु। इतना विवेचन चतुर्थ मंत्रके प्रथम दो पादोंका हुआ और इससे निश्चय हुआ है कि, यह मुख्यतया आत्माग्निका ही वर्णन है और गौण वृत्तिसे अन्य पदार्थोंका वर्णन है।

आधिभौतिक दृष्टिसे समाज और राष्ट्रमें मनुष्य कोभी इसी प्रकार बर्ताव करना चाहिये। सूज्ञ मनुष्य (अग्निः) अग्निके समान तेजस्वी, (होता) दाता, यज्ञ करनेवाला, (सत्यः) सच्चा, सत्याग्रही, सत्यनिष्ठ, (चित्र-श्रवः-तमः) विलक्षण यशस्वी बने और अनुकरणीय बनकर सबका चालक बने। इस रीतिसे येही शब्द मनुष्यके सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्योंके बोधक हैं। इस प्रकार दो पादोंका स्पष्टीकरण करनेके पश्चात् अब विशेष महत्त्वका तृतीय पाद देखना है—

देवो देवेभिरागमत् ॥ (ऋ० १।१।५)

'यह एक देव अन्य सब देवोंके साथ आ जावे।' इस विषयमें जो वक्तव्य है, वह **स इद्देवेषु गच्छति** " (ऋ०१।१४) तथा "**स देवान् एह वक्षति।**" (ऋ०१।१।२) इनकी व्याख्या करते हुए कहा ही है।

[१] **स देवान् इह आवक्षति** = वह देवोंको यहां लाता है।
[२] **स देवेषु इत् गच्छति** = वह देवोंमें पहुंचता है।
[३] **देवो देवेभि आगमत्** = देव देवोंके साथ आ जाय।

इन तीनों कथनोंमें एकही विशेष भाव है। एक आत्मा का अन्य देवोंके साथ जो संबध है, वही यहां बताया है। इसका स्वरूप ठीक ठीक ध्यानमें आनेके लिये निम्न मंत्रोंका विचार करना आवश्यक है—

[१] **अग्निर्देवेभिरागमत्** ॥ (५१२ ऋ० ३।१०।८)
[२] **विश्वेभिः देवेभिर्याहि यक्षि च** ॥ (ऋ०१।१४।१)
[३] **देवेभिरग्न आगहि** ॥ (ऋ०१।१४।२)
[४] **क्षयं बृहन्त परिभूषति द्युभिर्देवेभिरग्निः**॥ (ऋ०३।३।२)
[५] **अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जंतुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया** ॥ (ऋ०३।३।६)
[६] **गमद्देवेभिरा स नो यजिष्ठः** ॥ (ऋ०३।१३।१)
[७] **देवेभिर्देव सुरुचा रुचानः** ॥ (ऋ०३।१५।६)
[८] **अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः** ॥ (ऋ०३।२४।४)
[९] **अग्ने विश्वेभिरागहि देवेभिर्हव्यदातये** ॥
[१०] **देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः** ॥ (ऋ०६।११।६)
[११] **त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देभिर्मानुषे जने** ॥ (ऋ०६।१६।१)
[१२] **आ नो देवेभिरुप देवहूतिमग्ने याहि** ॥ (ऋ०७।१४।३)
[१३] **यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः।** (ऋ० १०।६।२)

'(१) देवोंके साथ अग्नि आया है, (२) सब देवोंके साथ आओ और यजन करो, (३) हे अग्ने ! तू देवोंके साथ आ, (४) अग्नि सब तेजस्वी देवोंके साथ बडे (क्षयं) निवासस्थानको भूषित करता है, (५) देवोंके साथ और मनुष्यके संतानों के साथ बुद्धिसे विविध रूपवाला यज्ञ अग्नि फैलाता है, (६) पूज्य अग्नि देवोंके साथ हमारे पास आता है, (७) हे देव ! अनेक देवोंके साथ तू तेजसे तेजस्वी है, (८) हे अग्ने ! सब अग्निरूप देवोंके साथ वाणीको बढाओ, (९) हे अग्ने ! सब देवोंके साथ अन्नदानके लिये आओ, (१०) हे अग्ने ! तू सब अग्निरूप देवोंसे प्रदीप्त होता है, (११) हे अग्ने तू मानवी जनोंमें सब यज्ञोंका हितकारक और सब देवोंके साथ हवन करनेवाला है, (१२) हे अग्ने ! सब देवोंके साथ हमारे यज्ञमें आओ, (१३) जो तेजस्वी अग्नि तेजस्वियोंके साथ चमकता है।'

इत्यादि मत्रोमें भी अनेक देवोंके साथ अग्निका रहना वर्णन किया है। "अनेक अग्नियोंके साथ अग्नि (**अग्निभिः अग्निः**) आता है।" यह इन मत्रोंका वर्णन स्पष्टतासे सिद्ध कर रहा है कि, यहां अग्नि शब्द विशेष अर्थसे प्रयुक्त हुआ है, और केवल आगका ही वाचक नहीं है। इसी प्रकार देवतावाचक अन्य शब्दोंका भी उपयोग किया है। देखिये—

देवता इंद्र—

(१) **स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन् मितज्ञुभि पुरुकृत्वा जिगाय। पुरः पुरोहा सखिभीः सखीयान् दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन्** ॥ (ऋ०६।३२।३)
(२) **इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञ विश्वेभिः देवेभि। तिरस्तवान विश्वते** ॥ (ऋ०३।४०।३)
(३) **प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः** ॥ (ऋ०३।४६।३)

देवता अश्विनौ—

(१) **आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना** ॥ (ऋ०१।३४।११)
(२) **आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसा नासत्या रथेन** ॥ (ऋ०७।७२।२)
(३) **आ...गतं ॥ देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा** ॥ (ऋ०८।२६।८)

इंद्र देवता के मंत्र-(१) (पुरु-कृत्वा) विविध कर्म करनेवाला वह इंद्र (शश्वत्) सर्वदा (मित- ज्ञुभि वह्निभिः ऋक्वभिः) घुटनोंके बल बैठनेवाले अग्निके समान तेजस्वी उपासकोंके साथ (गोषु) गौवों, इंद्रियों और भूमि आदिकोंके संबंधमें (जिगाय) विजय प्राप्त करता है। (पुरो-हा) शत्रुके नगरोंका नाश करनेवाला (सखिभिः कविभिः) मित्ररूप कवियोंके साथ (सखीयन् कविः) मित्रता करनेवाला कवि (दृढा पुरः) बलयुक्त नगरोंका (रुरोज) भेदन करता है ॥ (२) हे (विश्+पते इंद्र) प्रजापालक प्रभो! (नः भिता+वान यज्ञ) हमारे उत्तम उपकारी यज्ञको (विश्वेभिः देवेभिः) सब देवोंके साथ (प्र तिरः) पूर्ण करो ॥ (३) यह इंद्र (रोचमानः) तेजस्वी होता हुआ (मात्राभिः) सब प्रमाणोंसे (प्र रिरिचे) विशेष तेजस्वी हुआ है और (देवेभिः) देवोंके साथ (विश्वतः) सब प्रकारसे (अ-प्रतीतः) पीछे हटनेवाला नहीं है।

अश्विनी देवताके मंत्र = (१) (त्रिभिः एकादशैः देवेभिः) तीन गुणा ग्यारह देवोंके साथ, हे अश्विदेवो! यहां मधुपान के लिये आइये। (२) हे (नासत्या) अश्विदेवो! देवोंके साथ रथमें बैठकर वेगसे हमारे पास आइये। (३) हे (सचनस्तमौ देवौ) पूज्य देवो! अन्य देवोंके साथ यहां आइये।

अग्नि, इंद्र और अश्विनी देवताओंके मंत्र ऊपर दिये हैं। उनको देखनेसे पता लग सकता है कि, वाक्य कैसे समान भावके ही हैं। देखिये—

अग्निदेवता—

देवो देवेभिः आगमत् ॥ (ऋ १।१।५)
अग्निः देवेभिः आगमत् ॥ (ऋ. ३।१०।४)
अग्ने, अग्निभिः देवेभिः महय ॥ (ऋ. ३।२४।४)
भानुभिः देवेभिः अग्निः विभाति ॥
(ऋ. १०।६।२)

इंद्र देवता—

वह्निभिः सः गोषु जिगाय ॥ (ऋ. ६।३२।३)
पुरोहा सखिभिः सखीयान् रुरोज ॥
(ऋ.६।३२।३)
कविभिः कविः पुरः रुरोज ॥ (ऋ. ६।३२।३)

अश्विनी देवता—

त्रिभिरेकादशैः देवैः आयातं ॥ (ऋ १।३४।११)
नासत्यौ देवेभिः आयातं ॥ (ऋ. ७।७२।२)

देखिये, भिन्न शब्दोंसे किस प्रकार एकही भाव व्यक्त किया गया है। 'इंद्र' शब्द 'आत्मा' अर्थ में सुप्रसिद्ध है, क्यों कि 'इंद्रिय' शब्द इंद्रशक्तिका वाचक आजकलकी भाषामें भी अवयवोंके अर्थमें प्रयुक्त है, अर्थात् 'अनेक देवोंके साथ देवोंका राजा इंद्र शत्रुके किले तोडता है' इस वर्णनमें 'आत्मा इंद्रियशक्तियोंके साथ विरोधकोंका नाश करता है' यही भाव है। तात्पर्य, इंद्रवर्णनसे आत्मवर्णन होनेमें कोई शंका नहीं हो सकती। अश्विनीदेवोंके विषयमें किसीको शंका होना स्वाभाविक है। परंतु '**नास+त्य**' शब्द '**नासिका में रहनेवाला**' प्राण इस अर्थमें प्रयुक्त होता है। '**नास+त्य**' यह विशेषण अश्विनी देवोंका है, इससे इनका स्थान नासिका है। इसलिये प्राणापान, श्वास-उच्छ्वास आदिकोंका वाचक यह शब्द है, इसमें शंका नहीं। यह प्राण अन्य देवोंके साथ शरीरमें आता है और यहां यज्ञ करता है, यह वर्णन पूर्वोक्त अग्निके वर्णन के साथ मिलानेसे पता लग सकता है कि, दोनों वर्णनोंसे एक ही यज्ञका भाव बताया गया है। (**देवो देवेभि आगमत्**) 'एक देव अनेक देवोंके साथ यहां आता है, यहां यज्ञ करता है। देवोंसे यज्ञ कराता है, देवोंको हविर्भाग देता है, यज्ञसमाप्तिके पश्चात् देवोंके साथ चला जाता है।' यह सब वर्णन यहांही इस शरीरमें देखनेका है। आत्मा इंद्रियशक्तियोंके साथ यहां आता है, इंद्रियोंसे कार्य कराता है, खाये हुए अन्नसे अंशरूप भोग प्रत्येक इंद्रियतक पहुंचाता है, इस अंशभोगसे इंद्रियस्थानीय देवतागण संतुष्ट होता है और वह इस आत्माको भी सुखी करता है। यह भाव निम्न गीतावचनमें देखिये—

देवान् भावयताऽनेन ते देवा भावयंतु वः।
परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥
(भ. गी. ३।११)

'तुम इस यज्ञसे देवताओंको संतुष्ट करते रहो और वे देवता तुम्हें संतुष्ट करते रहे। इस प्रकार परस्पर एक दूसरेको संतुष्ट करते हुए दोनों परम श्रेय अर्थात् कल्याण प्राप्त कर लो।'

आत्मा और अन्य ३३ देव इतनेही पदार्थ इस जगत् में हैं। आत्मा स्वयंप्रकाशी सम्राट् है और ३३ देव आत्माके तेजसे प्रकाशित होनेवाले और आत्माके आदेशानुसार अपना नियत कार्य करनेवाले हैं। जहां आत्मा जाता है, वहां ये जाते हैं, जिस प्रकार सम्राट् के साथ ओहदेदारोंको जाना पडता है। अकेला आत्मा कुछ कर नहीं सकता और न सब देव आत्मशक्तिके विना कुछ कर सकते है। इस प्रकार अन्योन्य सहाय्यताकी आवश्यकता है। अन्योन्य संगतिका ही नाम यज्ञ है। परस्पर सहकारितासे बडे बडे कार्य हो सकते है। आत्मा और ३३ देवोंकी सहकारितासे ही यह शरीरका कार्य चल रहा है। इसका इतना महत्त्व है कि, इससे और आश्चर्यकारक घटना जगत्में दूसरी हैही नहीं। परस्पर सहकारितासे इतने आश्चर्यकारक कार्य होना संभव है। यदि एक देव यहां बिगड बैठा, तो सब बिगाड हो जाता है, तात्पर्य सबसे सहकार्यसेही आनंद होना संभव है।

तुलना।

मधुच्छंदा वैश्वामित्रः। अग्निः।

[१] राजन्तमध्वराणां॥ (८; ऋ० १।१।८)

प्रस्कण्वः काण्वः। अग्निः।

[२] राजन्तमध्वराणां॥ (१०३, ऋ० १।४५।४)

[३] पतिर्ह्यध्वराणामग्ने॥ (९४, ऋ० १।४४।९)

देवरातः, शुनःशेप अजीगर्तिः। अग्निः।

[४] सम्राजन्तमध्वराणां॥ (३८, ऋ० १।२७।१)

विश्वामित्रः। अग्निः।

[५] स केतुरध्वराणां॥ (५१२, ऋ० ३।१०।४)

सध्वंसः काण्वः। अश्विनौ।

[६] राजन्तौ अध्वराणां॥ (ऋ० ८।८।१८)

वत्सप्रि। अग्निः।

[७] नेतारमध्वराणाम्॥ (१६०४; ऋ० १०।४६।४)

भिन्न ऋषि-दृष्ट मन्त्रोंमें वर्णन की समानता इस प्रकार है। अश्विनी देवोंका भी वर्णन इन्हीं शब्दोंसे हुआ है। इसका तात्पर्य यह कि द्रष्टा ऋषिकी भिन्नता और वर्णनीय देवताकी भिन्नता होनेपर भी 'प्रतिपाद्य विषयकी एकता' है, अर्थात् जो 'यज्ञ' अग्निदेवताके मिषसे वेदमें बताया है, वही यज्ञ 'अश्विनौ' देवताके नामसे वर्णन किया है और इसी प्रकार अन्यान्य देवताओंके वर्णनोंसे उसी बातका दर्शन होता है। 'अग्नि यज्ञोंका राजा किंवा प्रकाशक अथवा नेता है,' यही आशय ऊपरके मन्त्रोंका है। यहां इसके द्वारा जो यज्ञ किया जाता है, उसका सविस्तर वर्णन इसी स्पष्टीकरण में इसीसे पूर्व बताया जाता है। उसको देखनेसे पाठकोंको स्वयं अनुभव हो सकता है कि, यह यज्ञोंका राजा कैसा है और किस रीतिसे यज्ञ कर रहा है।

'**ऋतस्य गोपा**' अर्थात् 'अनादि सत्य नियमोंका पालनकर्ता' यही है। 'ऋत और सत्य' ये दो अनादि-सिद्ध त्रिकालाबाधित सत्य नियम इस जगत् में सनातन हैं। इनका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। इनका संरक्षक यही आत्माग्नि है। इस विषयमें निम्न मन्त्र देखिये—

[१] ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत॥ (ऋ० १०।१९०।१)

[२] ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत्॥ (ऋ० १।१५२।२)

[३] ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्ध्यृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः॥ (ऋ० ५।१२।२)

[४] ऋतं ऋताय पवते सुमेधाः॥ (ऋ० ९।९७।२३)

[५] ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते॥ (ऋ० ५।६८।४)

'(१) प्रदीप्त तपसे ऋत और सत्य उत्पन्न हुए हैं, (२) ऋतका पालन करता है और अनृतको हटाता है, (३) ऋतके जाननेवाले ऋतके नियमको जानो, सनातन ऋतके प्रवाह फैलाओ, (४) उत्तम बुद्धिमान् ऋतके लिये ही ऋतको पवित्र करता है, (५) ऋत नियमसे ऋतका पोषण करनेवाले बहुत सामर्थ्य प्राप्त करते हैं।'

जिन दो अटल सत्य और सनातन नियमोंसे यह जगत् चल रहा है, वे 'ऋत और सत्य' ये दो नियम है। ऋतके विषयमें और देखिये—

[१] हंसः शुचिषद्वसुरंतरिक्षसद्धोता वेदिषद्- तिथिर्दुरोणसत् ॥ नृषद् वरसदृतसद्व्योमस- दब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥
(ऋ. ४।४०।५; कठ० ५।२)

[२] प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥ (महा.ना.उ.२।७)

[३] अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य ॥ (तै उ. ३।१०।६)

[४] ऋतं तपः सत्यं तपः ॥ (महा. ना. उ. ८।१)

[५] ऋतं सत्यं परं ब्रह्म ॥ (महा. ना. उ. १२।१)

'(१) (हं+सः) जिस प्राणका बाहिर आनेके समय 'ह' ध्वनि होता है और अंदर जानेके समय 'स' ध्वनि होता है, वह प्राण (शुचि+षद्) शुद्धमें रहनेवाला, (वसुः) निवासक, (अंतरिक्ष+सद्) हृदयके मध्यमें रहनेवाला, (होता) हवन करनेवाला, (वेदि-षद्) हृदय की वेदिमें रहनेवाला, (अ-तिथिः) जिसकी आनेजानेकी तिथि निश्चित नहीं है, (दुरोण-सत्) स्वस्थानमें रहनेवाला, (नृ+षद्) मनुष्यके अंदर-हृदयमें-रहनेवाला, (वर-सद्) श्रेष्ठ स्थान मे रहनेवाला, (ऋत-सद्) सत्यमें रहनेवाला, (व्योम-सद्) आकाशमें रहनेवाला, (अप्-जा) कर्मके साथ होने-वाला, जीवनके साथ रहनेवाला, (गो-जा) इंद्रियोंके साथ रहनेवाला, (ऋत-जा) ऋतका प्रवर्तक, (अ-द्रि-जा) जडमें रहनेवाला, जो है, वही 'बृहत् ऋत' है। (२) ऋतका प्रथम प्रवर्तक प्रजापति है। (३) मै (अहं) आत्मा ऋतका पहिला प्रवर्तक हूं। (४) ऋत और सत्य तपही है। (५) ऋत और सत्य परब्रह्म है।'

यह ऋत की महिमा है। ऋत स्वयं आत्माका रूपही है. पूर्व मंत्रमें प्राण और आत्माही ऋत है, ऐसा स्पष्ट कहा है, इस लिये आत्माके निज धर्म ही ऋत और सत्य नामसे प्रसिद्ध है। 'ऋत' नाम यज्ञकाभी है इसलिये (ऋतस्य गोपा) 'ऋतका रक्षक' का अर्थ 'यज्ञका रक्षक' भी है। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

यज्ञस्य देवः।	(ऋ. १।१।१)
ऋतस्य गोपा।	(ऋ.१।१।८; ३।१०।२)
अध्वराणां राजन्।	(ऋ १।१।८)
अध्वराणां नेता।	(ऋ. १०।४६।४)
यज्ञस्य नेता।	(ऋ. २।५।२)
यज्ञस्य प्राविता।	(ऋ. ३।२१।३)
यज्ञस्य साधनः।	(ऋ. १।२७।८)

अग्निदेवता का यह वर्णन एकही भावका द्योतक होना स्वाभाविक है। यज्ञका स्वरूप पहले निश्चित किया ही है। पुरुषका जीवन यज्ञ ही है। इस जीवनरूप यज्ञका नेता, चालक, रक्षक यही आत्माग्नि है, इसमें कोई शंका नहीं है। यही बात पूर्वोक्त उपनिषद्वचनोंसे सिद्ध हो रही है। वहां भी ऋतका स्वरूप 'आत्मा' ही बताया है। इस प्रकार अनेक रीतिसे विचार करनेपर तात्पर्य एकही सिद्ध होता है, यही सत्य अर्थका लक्षण है।

'दीदिवि' शब्द इसके पश्चात् आता है। इसका अर्थ 'प्रकाशमान' है। इसके समान जो अन्यत्र मंत्रभाग है, उसमें 'दीदिहि' पाठ है, देखिये—

मधुच्छंदा वैश्वामित्रः। अग्निः।
गोपामृतस्य दीदिविम्। (ऋ. १।१।८)
विश्वामित्रो गाथिनः। अग्निः।
गोपा ऋतस्य दीदिहि। (ऋ. ३।१०।२)
उरुक्षय आमहीयवः। अग्नी रक्षोहा।
गोपा ऋतस्य दीदिहि। (ऋ. १०।११८।७)

थोडासा पाठभेद होनेपर भी अर्थकी एकता ही है, 'दीदिवि' शब्दका अर्थ 'प्रकाशमान' है और 'दीदिहि' का अर्थ 'प्रकाशित हो,' ऐसा है, इसलिये अर्थकी दृष्टिसे कोई भेद नहीं है।

'वर्धमानं स्वे दमे' अपने दमनमें बढनेवाला, अपने घरमें वृद्धिको प्राप्त होनेवाला, यह इसका भाव है। 'दम' शब्दका अर्थ 'संयम, दमन, आत्मसंयम, मनोविकार और इंद्रिय वृत्तियोंका संयम मनकी स्थिरता; घर, परिवार' इतना है। संयमसे अपनी शक्ति बढती है। मनोनिग्रहसे आत्मशक्तिका विकास होता है। यही उन्नतिका नियम है।

(१) सत्कर्मोंका फैलाव करना, (२) सत्यनिष्ठा बढानी, (३) अज्ञानांधकार दूर करके ज्ञानका प्रकाश करना, और (४) संयमसे अपनी शक्तिका विकास करना चाहिये। इस मंत्रसे सब मनुष्योंके लिये यही उपदेश है और जो आत्मोन्नति चाहते हैं, उनके लिये ये बोध अमूल्य हैं। इनका पालन करनेसे मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी हो सकता है।

इस तरह तुलनात्मक अध्ययन वेदके मंत्रोंका करना उचित है । इस तरहके अध्ययनसे ही वेद मंत्रोंका रहस्य ध्यानमें आ सकता है । इस दैवत-संहितासे इस तरहके अध्ययनकी अतीव सहायता होनेवाली है । आशा है, इस तरह का अध्ययन करके पाठक लाभ उठावेंगे ।

सूचियोंका उपयोग ।

अग्निदेवताकी 'पुनरुक्त-मन्त्र-सूची' पृ० १८७से२१६ तक है । इस सूचीसे किस मन्त्रका कौनसा भाग कहां पुनरुक्त हुआ है, इसका पता लग सकता है । अग्निके विवरणमें तथा भूमिकामें जो पुनरुक्त मन्त्र दिये हैं और जो विवरण किया है, उससे इस सूची की सहायता वेद-मन्त्रोंका अर्थ करनेमें कितनी है, इसका पता लग सकता है । भूमिका पृ० ४८से ६६ तक पाठक देख सकते है कि पुनरुक्त मन्त्रसूचीसे कैसा लाभ हो सकता है । यदि पाठक इस सूचीका उत्तम उपयोग कर सकेंगे, तो मन्त्रका अर्थ अन्तर्गत प्रमाणोंसे निश्चित होनेमें बडी सहायता हो सकती है ।

दूसरी उपमा-सूची है । इससे पता लग सकता है कि अग्निको कितनी उपमाएं किस अर्थमें दी हैं ।

तीसरी सूची मन्त्रोंकी अकारादि वर्णानुक्रम-सूची है । इससे कौनसा मन्त्र कहां है, इसका पता लग सकता है । अन्तिम सूची विशेषणोंकी है, इससे अग्निके गुण जाने जा सकते हैं । गुणोंका बोध होनेसे स्वरूप का निश्चय होता है । इस तरह ये सब सूचियां बडी उपयोगी हैं ।

अन्तिम निवेदन ।

यहां अन्तिम निवेदन यह है कि यहां अग्निके विषयमें जो लिखा है, वही परिपूर्ण है, ऐसा नहीं समझना चाहिये । पाठक विचार करते रहेंगे, तो उनके सामने कई अन्य बातें स्वयं उपस्थित होंगीं और प्रकाशित होती रहेंगीं । इसलिये हरएक पाठक अपनी स्वतंत्र विचार-शक्तिसे इन मंत्रोंका विचार करें और जो विचार होगा, वह जनताके सामने रखते जांय । इसी तरह करनेसेही वेद-विद्याका प्रकाश होगा ।

—संपादक



अग्निदेवता का परिचय।

भूमिका की विषय-सूची।

अग्निदेवताकी सूचियाँ।

अग्निमन्त्राणां ऋषिसूची ।

(१) अग्निः ।

(२) वैश्वानरोऽग्निः ।

(३) रक्षोहाऽग्निः ।

(४) जातवेदा अग्निः ।

(५) घर्मोऽग्निः ।

(६) औषसोऽग्निः ।

(७) द्रविणोदा अग्निः ।

(८) शुचिरग्निः ।

(९) अग्निरापो गावश्च ।

(१०) आप्री सूक्तानि ।

विवस्वानृषिः	२१२९-४१	१५७
अथर्वा	२१४२-२११६	१५९
भृगुः	२२१७-७४	१६५
भृग्वङ्गिराः	२२७५-७८	१६९
अङ्गिरा	२२७९-८३	१७०
चातनः	२२८४-२३१८	,,
शौनकः	२३१९-२९	१७२
मृगार.	२३३०-३६	१७३
गार्ग्यः	२३३७-३८	१७४
पतिवेदनः	२३३९-४०	,,
गृत्समदो मेधातिथिर्वा	२३४१	,,
शुक्रः	२३४२	,,
ब्रह्मा	२३४३-५४	,,
वसिष्ठः	२३५५-६४	१७५
बादरायणिः	२३६५-७१	१७६
अङ्गिराः प्रचेताः	२३७२	१७७
मरीचिः काश्यप.	२३७३	,,
जातवेदाः	२३७४	,,
कौशिकः	२३७५-८९	,,
कबन्धः	२३९०-९६	१७८

अग्निसहचारी देवगणः ।

(१) वैश्वानरोऽग्निः सूर्यश्च ।

मूर्धन्वाङ्गिरसो, वामदेव्यो वा	२३९७-२४१५	१७९

(२) रक्षोहाऽग्निः ।

रक्षोहा ब्रह्मः	२४१६-२१	१८१

(३) अपां-न-पादग्निः ।

गृत्समदः शौनकः	२४२२-३६	,,

(४) अग्नीन्द्रादयः ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	२४३७	१८२

(५) अग्निर्मरुतश्च ।

मेधातिथिः काण्वः	२४३८ ४६	१८३
सोभरिः काण्वः	२४४७	,,

(६) अग्निमित्रवरुणादयः ।

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस.	२४४८	,,

(७) अग्निर्वरुणश्च ।

वामदेवो गौतमः	२४४९-५२	,,

(८) अग्नाविष्णू ।

मेधातिथिः	२४५३-५४	१८४

(९) अग्निसूर्यौ ।

पृषध्रः काण्वः	२४५५	,,

(१०) अग्निः सूर्यो वायुश्च ।

दीर्घतमा औचथ्यः	२४५६	,,

(११) अग्निसूर्यानिलाः ।

हरिम्बिठिः काण्वः	२४५७	,,

(१२) [केशिनः=] अग्निसूर्यवायवः ।

वातरशना मुनयः= (१-७ क्रमेण जूतिः, वातजूतिः, विप्रजूतिः, वृषाणकः, करिक्रतः, एतशः, ऋष्यशृङ्ग)	२४५८-६४	१८५

(१३) अग्नीषोमौ ।

गोतमो राहूगणः	२४६५-७६	,,
ब्रह्मा	२४७७-७९	१८६
अथर्वा (यशस्कामः)	२४८०	,,
शन्तातिः	२४८१	,,
भार्गवः	२४८२-८३	,,





दैवत-संहिता

(ऋग्यजुःसामाथर्वणां संहितानां सर्वान् मंत्रान् दैवतानुसारेण सगृह्य निर्मिता)

१ अग्निदेवता ।

॥ १ ॥ (ऋग्वेदस्य मण्डलं १, सूक्तं १, मंत्राः १-९) [१ - ९] मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री (८×३) ।

॥ॐ॥ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् १
अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिर् ईड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एह वक्षति २
अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ३
अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद् देवेषु गच्छति ४
अग्निर्होता कविक्रतुस् सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरा गमत् ५
यदङ्ग दाशुषे त्वम् अग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत् तत् सत्यमङ्गिरः ६
उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ७
राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ८
स नः पितेव सूनवे ऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ९

॥ २ ॥ (ऋ० १ । १२ । १-१२) [१० - २६] मेधातिथिः काण्वः ।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् १०
अग्निमग्निं हवीमभिस् सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ११
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः १२
ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम् । देवैरा सत्सि बर्हिषि १३

घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः १४
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः १५
कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् १६
यस्त्वामग्ने हविष्पतिर् दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव १७
यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृळय १८
स नः पावक दीदिवो ऽग्ने देवाँ इहा वह । उप यज्ञं हविश्च नः १९
स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा । रयिं वीरवतीमिषम् २०
अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः । इमं स्तोमं जुषस्व नः २१

॥ ३ ॥ (ऋ० १ । १५ । ४, १२)

अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना २२
गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयते यज २३

॥ ४ ॥ (ऋ० १ । २२ । ९-१०)

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारं सोमपीतये २४
आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम् । वरूत्रीं धिषणां वह २५

॥ ५ ॥ (ऋ० १ । २३ । २४) अनुष्टुप् (८×४)।

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः २६

॥ ६ ॥ (ऋ० १ । २४ । २)

[२७-४९] शुनःशेप आजीगर्तिः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । त्रिष्टुप् (११×४)।

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च २७

॥ ७ ॥ (ऋ० १ । २६ । १-१०) गायत्री (८×३)।

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते । सेमं नो अध्वरं यज २८
नि नो होता वरेण्यस् सदा यविष्ठ मन्मभिः । अग्ने दिवित्मता वचः २९
आ हि ष्मा सूनवे पिता ऽऽपिर्यजत्यापये । सखा सख्ये वरेण्यः ३०

आ नो बर्हि रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा। सीदन्तु मनुषो यथा ३१
पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च। इमा उ षु श्रुधी गिरः ३२
यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे। त्वे इद्धूयते हविः ३३
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर् होता मन्द्रो वरेण्यः। प्रियाः स्वग्नयो वयम् ३४
स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः। स्वग्नयो मनामहे ३५
अथा न उभयेषाम् अमृत मर्त्यानाम्। मिथः सन्तु प्रशस्तयः ३६
विश्वेभिरग्ने अग्निभिर् इमं यज्ञमिदं वचः। चनो धाः सहसो यहो ३७

॥ ८ ॥ (ऋ० १ । २७ । १-१२)।

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः। सम्राजन्तमध्वराणाम् ३८
स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः। मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ३९
स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः। पाहि सदमिद् विश्वायुः ४०
इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्। अग्ने देवेषु प्र वोचः ४१
आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु। शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ४२
विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ। सद्यो दाशुषे क्षरसि ४३
यमग्ने पृत्सु मर्त्यम् अवा वाजेषु यं जुनाः। स यन्ता शश्वतीरिषः ४४
नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्। वाजो अस्ति श्रवाय्यः ४५
स वाजं विश्वचर्षणिर् अर्वद्भिरस्तु तरुता। विप्रेभिरस्तु सनिता ४६
जराबोध तद् विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय। स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ४७
स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः। धिये वाजाय हिन्वतु ४८
स रेवाँ इव विश्पतिर् दैव्यः केतुः शृणोतु नः। उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ४९

॥ ९ ॥ (ऋ० १ । ३१ । १-१८) [५० - ६७] हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः।
जगती (१२×४), ५७, ६५, ६७ त्रिष्टुप् (११×४)।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर् देवो देवानामभवः शिवः सखा।
तव व्रते कवयो विद्मनापसो ऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ५०

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम्।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ५१

❀

त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते ।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्ये ऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो ५२
त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः ।
श्वात्रेण यत् पित्रोर्मुच्यसे पर्या ऽऽ त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः ५३
त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः ।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिम् एकायुरग्रे विश आविवाससि ५४
त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन् पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित् समृता हंसि भूयसः ५५
त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे ।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये ५६
त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ५७
त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद् बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ५८
त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस् त्वं वयस्कृत् तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ५९
त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पतिम् ।
इळामकृण्वन् मनुषस्य शासनीं पितुर्यत् पुत्रो ममकस्य जायते ६०
त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर् मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामसि अनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ६१
त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरो ऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।
यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन् मन्त्रं मनसा वनोषि तम् ६२
त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद् रेक्णः परमं वनोषि तत् ।
आध्रस्य चित् प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः ६३
त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज् जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ६४

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न　इममध्वानं यमगाम दूरात्।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां　भृमिरस्यृषिकृन् मर्त्यानाम्　६५

मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो　ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनम्　आ सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम्　६६

एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व　शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्　सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या　६७

॥ १० ॥ (ऋ० १।३६।१-१२, १५-२०)

[६८-८५] कण्वो घौरः। प्रगाथः = बृहती (८।८।१२।८) + सतो बृहती (१२।८।१२।८)।

प्र वो यह्वं पुरूणां　विशां देवयतीनाम्।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे　यं सीमिदन्य ईळते　६८

जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं　हविष्मन्तो विधेम ते।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता　भवा वाजेषु सन्त्य　६९

प्र त्वा दूतं वृणीमहे　होतारं विश्ववेदसं।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो　दिवि स्पृशन्ति भानवः　७०

देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा　सं दूतं प्रत्नमिन्धते।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया　धनं यस्ते ददाश मर्त्यः　७१

मन्द्रो होता गृहपतिर्　अग्ने दूतो विशामसि।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता　ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत　७२

त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य　विश्वमा हूयते हविः।
स त्वं नो अद्य सुमना उताऽपरं　यक्षि देवान्त्सुवीर्या　७३

तं घेमित्था नमस्विन　उप स्वराजमासते।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते　तितिर्वांसो अति स्रिधः　७४

घ्नन्तो वृत्रमतरन् रोदसी अप　उरु क्षयाय चक्रिरे।
भुवत् कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः　क्रन्ददश्वो गविष्टिषु　७५

सं सीदस्व महाँ असि　शोचस्व देववीतमः।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य　सृज प्रशस्त दर्शतम्　७६

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ७७

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस् तमग्निं वर्धयामसि ७८

रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि ते ऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ७९

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ८०

घनेव विष्वग् वि जह्यराव्णस् तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर् मा नः स रिपुरीशत ८१

अग्निर्वव्ने सुवीर्यम् अग्निः कण्वाय सौभगम् ।
अग्निः प्रावन् मित्रोत मेध्यातिथिम् अग्निः साता उपस्तुतम् ८२

अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।
अग्निर्नयन् नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ८३

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ८४

त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।
रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ८५

॥ ११ ॥ (ऋ० १ । ४४ । १-१४)

[८६ - १०९] प्रस्कण्वः काण्वः । प्रगाथः = बृहती (८।८।१२।८) + सतो बृहती (१२।८।१२।८) ।

अग्ने विवस्वदुषसश् चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वम् अद्या देवाँ उषर्बुधः ८६

जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनो ऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यम् अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ८७

अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ८८

श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसम् अग्निमीळे व्युष्टिषु ८९

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ९०
सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ९१

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसो ऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ९२
सवितारमुषसमश्विना भगम् अग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ९३

पतिर्ह्यध्वराणाम् अग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ९४
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्वविता पुरोहितो ऽसि यज्ञेषु मानुषः ९५

नि त्वा यज्ञस्य साधनम् अग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ९६
यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितो ऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयो ऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ९७

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर् देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ९८
शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतो ऽश्विभ्यामुषसा सजूः ९९

॥ १२ ॥ (ऋ० १ । ४५ । १-१०) अनुष्टुप् (८×४) ।

त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत । यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् १००
श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः। तान् रोहिदश्व गिर्वणस् त्रयस्त्रिंशतमा वह १०१
प्रियमेधवदत्रिवज् जातवेदो विरूपवत् । अङ्गिरस्वन् महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् १०२

महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत । राजन्तमध्वराणाम् अग्निं शुक्रेण शोचिषा १०३
घृताहवन सन्त्य इमा उ षु श्रुधी गिरः । याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा १०४
त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रिय अग्ने हव्याय वोळ्हवे १०५
नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् । श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु १०६
आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः। बृहद् भा बिभ्रतो हविर् अग्ने मर्ताय दाशुषे १०७
प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य । इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो १०८
अर्वाञ्चं दैव्यं जनम् अग्ने यक्ष्व सहूतिभिः । अयं सोमः सुदानवस् तं पात तिरोअह्न्यम् १०९

॥१२॥ (ऋ० १।५८।१-९) [११०-१२३] नोधा गौतमः । जगती, (१२×४) ११५-१२३ त्रिष्टुप् (११×४) ।

नू चित् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दूतो अभवद् विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ११०

आ स्वमद्म युवमानो अजरस् तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् १११

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग् वार्या देव ऋण्वति ११२

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ११३

तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ११४

दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ११५

होतारं सप्त जुह्वो३ यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ११६

अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्य ऊर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः ११७

भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ११८

॥ १४ ॥ (ऋ० १ । ६० । १-५)
[११९—१२३] नोधा गौतमः । त्रिष्टुप् ।

वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम् ।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद् भृगवे मातरिश्वा ११९

अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः ।
दिवश्चित् पूर्वो न्यसादि होता ऽऽपृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः १२०

तं नव्यसी हृद आ जायमानम् अस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त १२१

उशिक् पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ. अग्निर्भुवद् रयिपती रयीणाम् १२२

तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।
आशुं न वाजंभरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १२३

॥ १५ ॥ (ऋ० १ । ६५ । १-१०)
[१२४-२१४] पराशरः शाक्त्यः । द्विपदा विराट् ।

पश्वा न तायुं, गुहा चतन्तं नमो युजानं, नमो वहन्तम् १२४
सजोषा धीराः, पदैरनु ग्मन्न् उप त्वा सीदन्, विश्वे यजत्राः १२५
ऋतस्य देवा, अनु व्रता गुर् भुवत् परिष्टिर्, द्यौर्न भूम १२६
वर्धन्तीमापः, पन्वा सुशिश्विम् ऋतस्य योना, गर्भे सुजातम् १२७
पुष्टिर्न रण्वा, क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म, क्षोदो न शंभु १२८
अत्यो नाज्मन्,त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः, क ईं वराते १२९
जामिः सिन्धूनां, भ्रातेव स्वस्राम् इभ्यान् न राजा, वनान्यत्ति १३०
यद्वातजूतो, वना व्यस्थाद् अग्निर्ह दाति, रोमा पृथिव्याः १३१
श्वसित्यप्सु, हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो, विशामुषर्भुत् १३२
सोमो न वेधा, ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा, विभुर्दूरेभाः १३३

॥ १६ ॥ (ऋ० १।६६।१-१०)

रयिर्न चित्रा, सूरो न संदृग् आयुर्न प्राणो, नित्यो न सूनुः १३४
तक्वा न भूर्णिर्,वना सिषक्ति पयो न धेनुः, शुचिर्विभावा १३५

दाधार क्षेमम्, ओको न रण्वो यवो न पक्वो, जेता जनानाम् १३६
ऋषिर्न स्तुभ्वा, विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो, वयो दधाति १३७
दुरोकशोचिः, क्रतुर्न नित्यो जायेव योनाव्, अरं विश्वस्मै १३८
चित्रो यदभ्राट्, छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी, त्वेषः समत्सु १३९
सेनेव सृष्टा,ऽमं दधाति अस्तुर्न दिद्युत्, त्वेषप्रतीका १४०
यमो ह जातो, यमो जनित्वं जारः कनीनां, पतिर्जनीनाम् १४१
तं वश्चराथा, वयं वसत्यास् तं न गावो, नक्षन्त इद्धम् १४२
सिन्धुर्न क्षोदः, प्र नीचीरैनोन् नवन्त गावः, स्व१र्दृशीके १४३

॥ १७ ॥ (ऋ० १ । ६७ । १-१०)

वनेषु जायुर्, मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं, राजेवाजुर्यम् १४४
क्षेमो न साधुः, क्रतुर्न भद्रो भुवत् स्वाधीर्, होता हव्यवाट् १४५
हस्ते दधानो, नृम्णा विश्वानि अमे देवान् धाद्, गुहा निषीदन् १४६
विदन्तीमत्र, नरो धियंधा हृदा यत् तष्टान्, मन्त्राँ अशंसन् १४७
अजो न क्षां, दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां, मन्त्रेभिः सत्यैः १४८
प्रिया पदानि, पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने, गुहा गुहं गाः १४९
य ईं चिकेत, गुहा भवन्तम् आ यः ससाद, धारामृतस्य १५०
वि ये चृतन्ति, ऋता सपन्त आदिद् वसूनि, प्र ववाचास्मै १५१
वि यो वीरुत्सु, रोधन् महित्वा उत प्रजा, उत प्रसूष्वन्तः १५२
चित्तिरपां, दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः, संमाय चक्रुः १५३

॥ १८ ॥ (ऋ० १ । ६८ । १—१०)

श्रीणन्नुप स्थाद्, दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथम्, अक्तून् व्यूर्णोत् १५४
परि यदेषाम्, एको विश्वेषां भुवद् देवो, देवानां महित्वा १५५
आदित् ते विश्वे, क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद् देव, जीवो जनिष्ठाः १५६
भजन्त विश्वे, देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो, अमृतमेवैः १५७
ऋतस्य प्रेषा, ऋतस्य धीतिर् विश्वायुर्विश्वे, अपांसि चक्रुः १५८
यस्तुभ्यं दाशाद्, यो वा ते शिक्षात् तस्मै चिकित्वान्, रयिं दयस्व १५९
होता निषत्तो, मनोरपत्ये स चिन् न्वासां, पती रयीणाम् १६०

इच्छन्त रेतो, मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्, दक्षैरमूराः १६१
पितुर्न पुत्राः, क्रतुं जुषन्त श्रोषन् ये अस्य, शासं तुरासः १६२
वि राय और्णोद्, दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं, स्तृभिर्दमूनाः १६३

॥ १९ ॥ (ऋ० १। ६९। १-१०)

शुक्रः शुशुक्वाँ, उषो न जारः पप्रा समीची, दिवो न ज्योतिः १६४
परि प्रजातः, क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां, पिता पुत्रः सन् १६५
वेधा अदृप्तो, अग्निर्विजानन्न् ऊधर्न गोनां, स्वाद्मा पितूनाम् १६६
जने न शेव, आहूर्यः सन् मध्ये निषत्तो, रण्वो दुरोणे १६७
पुत्रो न जातो, रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो, विशो वि तारीत् १६८
विशो यदह्वे, नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा, विश्वान्यश्याः १६९
नकिष्ट एता, व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः, श्रुष्टिं चकर्थ १७०
तत् तु ते दंसो, यदहन्त्समानैर् नृभिर्यद् युक्तो, विवे रपांसि १७१
उषो न जारो, विभावोस्रः संज्ञातरूपश्, चिकेतदस्मै १७२
त्मना वहन्तो, दुरो व्यृण्वन् नवन्त विश्वे, स्व१र्दृशीके १७३

॥ २० ॥ (ऋ० १। ७०। १-११)

वनेम पूर्वीर्, अर्यो मनीषा अग्निः सुशोको, विश्वान्यश्याः १७४
आ दैव्यानि, व्रता चिकित्वान् आ मानुषस्य, जनस्य जन्म १७५
गर्भो यो अपां, गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां, गर्भश्चरथाम् १७६
अद्रौ चिदस्मा, अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो, अमृतः स्वाधीः १७७
स हि क्षपावाँ, अग्नी रयीणां दाशद् यो अस्मा, अरं सूक्तैः १७८
एता चिकित्वो, भूमा नि पाहि देवानां जन्म, मर्तांश्च विद्वान् १७९
वर्धान्यं पूर्वीः, क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथम्, ऋतप्रवीतम् १८०
अराधि होता, स्व१र्निषत्तः कृण्वन् विश्वानि, अपांसि सत्या १८१
गोषु प्रशस्तिं, वनेषु धिषे भरन्त विश्वे, बलिं स्वर्णः १८२
वि त्वा नरः, पुरुत्रा सपर्यन् पितुर्न जिव्रेर्, वि वेदो भरन्त १८३
साधुर्न गृध्नुर्, अस्तेव शूरो यातेव भीमस्, त्वेषः समत्सु १८४

❀

॥ २१ (ऋ० १ । ७१ । १—१०) । त्रिष्टुप् ।

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रन् चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः १८५

वीळु चिद् दृळ्हा पितरो न उक्थैर् अद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः १८६

दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिम् आदिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः ।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ् जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः १८७

मथीद् यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय १८८

महे यत् पित्र ईं रसं दिवे कर् अव त्सरत् पृशन्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् १८९

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून् ।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद् राया सरथं यं जुनासि १९०

अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् १९१

आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत् सूदयच्च १९२

मनो न योऽध्वनः सद्य एति एकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा १९३

मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि १९४

॥ २२ ॥ (ऋ० १ । ७२ । १-१०)

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर् हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद् रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा १९५

अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्न् इच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधास् तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः १९६

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच् छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान्।
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि असूदयन्त तन्वः सुजाताः १९७

आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः।
विदन् मर्तो नेमधिता चिकित्वान् अग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् १९८

संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः १९९

त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन् निहिता यज्ञियासः।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि २००

विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुरुधो जीवसे धाः।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानान् अतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् २०१

स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन्।
विदद् गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् २०२

आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः २०३

अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन् दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन्।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् २०४

॥२३॥ (ऋ० १।७३।१-१०)

रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् २०५

देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् २०६

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी २०७

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धम् अग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् २०८

वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर् वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः । २०९

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् २१०

त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः २११

यान् राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्षि आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् २१२

अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः २१३

एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं ते ऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः २१४

॥ २४ ॥ (ऋ० १ । ७४ । १-९) [२१५-२५५] गोतमो राहूगणः । गायत्री ।

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते २१५
यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद् दाशुषे गयम् २१६
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनंजयो रणेरणे २१७
यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये । दस्मत् कृणोष्यध्वरम् २१८
तमित् सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो । जना आहुः सुबर्हिषम् २१९
आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये । हव्या सुश्चन्द्र वीतये २२०
न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन । यदग्ने यासि दूत्यम् २२१
त्वोतो वाज्यह्रयो ऽभि पूर्वस्मादपरः । प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् २२२
उत द्युमत् सुवीर्यं बृहदग्ने विवासासि । देवेभ्यो देव दाशुषे २२३

॥ २५ ॥ (ऋ० १ । ७५ । १-५)

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि २२४
अथा ते अङ्गिरस्तम अग्ने वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ब्रह्म सानसि २२५
कस्ते जामिर्जनानाम् अग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः २२६

त्वं जामिर्जनानाम्　　अग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः　२२७
यजा नो मित्रावरुणा　यजा देवाँ ऋतं बृहत्। अग्ने यक्षि स्वं दमम्　२२८

॥ २६ ॥ (ऋ० १। ७६। १-५) त्रिष्टुप्।

का त उपेतिर्मनसो वराय　भुवदग्ने शंतमा का मनीषा।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप　केन वा ते मनसा दाशेम　२२९

एह्यग्न इह होता नि षीद　अदब्धः सु पुरएता भवा नः।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे　यजा महे सौमनसाय देवान्　२३०

प्र सु विश्वान् रक्षसो धक्ष्यग्ने　भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्याम्　आतिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने　२३१

प्रजावता वचसा वह्निरासा　च हुवे नि च सत्सीह देवैः।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र　बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम्　२३२

यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्　देवाँ अयजः कविभिः कविः सन्।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्य　अग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व　२३३

॥ २७ ॥ (ऋ० १। ७७। १-५)

कथा दाशेमाग्नये कास्मै　देवजुष्टोच्यते भामिने गीः।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा　होता यजिष्ठ इत् कृणोति देवान्　२३४

यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा　होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम्।
अग्निर्यद् वेर्मर्ताय देवान्　त्स चा बोधाति मनसा यजाति　२३५

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्　मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्　विश उप ब्रुवते दस्ममारीः　२३६

स नो नृणां नृतमो रिशादा　अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम्।
तना च ये मघवानः शविष्ठा　वाजप्रसूता इषयन्त मन्म　२३७

एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा　विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः।
स एषु द्युम्नं पीपयत् स वाजं　स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान्　२३८

॥ २८ ॥ (ऋ०१। ७८। १-५) गायत्री

अभि त्वा गोतमा गिरा　जातवेदो विचर्षणे। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः　२३९

तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः २४०
तमु त्वा वाजसातमम् अङ्गिरस्वद् हवामहे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः २४१
तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूँरवधूनुषे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः २४२
अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद् वचः । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः २४३

॥ २९ ॥ (ऋ० १ । ७९ । १-१२)
२४४-४६ त्रिष्टुप्; २४७-४९ उष्णिक्, २५०-२५५ गायत्री ।

हिरण्यकेशो रजसो विसारे ऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान् ।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः २४४

आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा २४५

यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ २४६

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः २४७
स इधानो वसुष्कविर् अग्निरीळेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि २४८
क्षपो राजन्नुत त्मना ऽग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति २४९
अवा नो अग्न ऊतिभिर् गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य २५०
आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् २५१
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे २५२
प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये । भरस्व सुम्नयुर्गिरः २५३
यो नो अग्नेऽभिदासति अन्ति दूरे पदीष्ट सः । अस्माकमिद् वृधे भव २५४
सहस्राक्षो विचर्षणिर् अग्नी रक्षांसि सेधति । होता गृणीत उक्थ्यः २५५

॥ ३० ॥ (ऋ० १ । ९४ । १-१६)
[२५६-२७१] कुत्स आङ्गिरसः । जगती; २७०-७१ त्रिष्टुप् ।

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसदि अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २५६

यस्मै त्वमायजसे स साधति अनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिर् अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २५७

शकेम त्वा समिधं साधया धियस् त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान् ह्युश्मसि अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २५८

भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियो ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २५९

विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ असि अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६०

त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यसि अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६१

यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित् सन्तळिदिवाति रोचसे ।
रात्र्याश् चिदन्धो अति देव पश्यसि अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६२

पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथो ऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचो ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६३

वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृधि अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६४

यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुना ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६५

अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत् ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत् ते तावकेभ्यो रथेभ्यो ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६६

अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसे ऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनर् अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६७

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन् त्स्याम तव सप्रथस्तमे ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६८

तत् ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषे ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव २६९

यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशो ऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम २७०

स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वान् अस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन् नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः २७१

॥ ३१ ॥ (ऋ० १ । १२७ । १—११)

[२७२—२९१] परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः, २७७ अतिधृतिः ।

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषा ऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः २७२

यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर् विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः २७३

स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहंतरः परशुर्न द्रुहंतरः ।
वीळु चिद् यस्य समृतौ श्रुवद् वनेव यत् स्थिरम् ।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते २७४

दृह्ळा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसे ऽग्नये दाष्ट्यवसे ।
प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद् वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा २७५

तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातराद् अप्रायुषे दिवातरात् ।
आदस्यायुर्ग्रभणवद् वीळु शर्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः २७६

स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिर् अप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिर् आर्तनास्विष्टनिः ।
आदद्धव्यान्याददिर् यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् २७७

द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तो दाशा भृगवः ।
अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधीँर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः २७८

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दंपतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे ।
अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः २७९

त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये ।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर २८०

प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुधे पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये ।
प्रति यदीं हविष्मान् विश्वासु क्षासु जोगुवे ।
अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् २८१

स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भर ऽग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना ।
महि शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै ।
महि स्तोतृभ्यो मघवन् त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा २८२

॥ १२ ॥ (ऋ० १ । १२८ । १-८)

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रतम् अग्निः स्वमनु व्रतम् ।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।
अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे २८३

तं यज्ञसाधमपि वातयामसि ऋतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।
स न ऊर्जामुपाभृति अया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः २८४

एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद् दधद् रेतः कनिक्रदत् ।
शतं चक्षाणो अक्षभिर् देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुषु अग्निः परेषु सानुषु २८५

स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमे ऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति ।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत २८६

क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्या इषिराय न भोज्या।
स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना।
स नस् त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः २८७

विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच् छ्रवस्यया न शिश्रथत्।
विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे।
विश्वस्मा इत् सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति २८८

स मानुषे वृजने शंतमो हितोऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः।
स हव्या मानुषाणाम् इळा कृतानि पत्यते।
स नस् त्रासते वरुणस्य धूर्तेर् महो देवस्य धूर्तेः २८९

अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम्।
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः २९०

॥ ३३ ॥ (ऋ० १।१३९।७)

ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः।
यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन।
वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा २९१

॥ ३४ ॥ (ऋ० १।१४०।१-१३)

[२९२-३६०] दीर्घतमा औचथ्यः। जगती, ३०१ त्रिष्टुब्वा, ३०३-४ त्रिष्टुप्।

वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् २९२

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्यन्येन वनिनो मृष्ट वारणः २९३

कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम्।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतम् आ साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः २९४

मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः २९५

आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः।
यत् सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशद् अभिश्वसन् त्स्तनयन्नेति नानदत् २९६
भूषन् न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत्।
ओजायमानस् तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः २९७
स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यम् अन्यद् वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा २९८
तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास् तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानदद् असुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् २९९
अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः।
वयो दधत् पद्वते रेरिहत् सदा अनु श्येनी सचते वर्तनीरह ३००
अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिहि अध श्वसीवान् वृषभो दमूनाः।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर् वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ३०१
इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन् मन्मनः प्रेयो अस्तु ते।
यत् ते शुक्रं तन्वो३ रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ३०२
रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने।
अस्माकं-वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ३०३
अभी नो अग्न उक्थमिज् जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहा इषं वरमरुण्यो वरन्त ३०४

॥ ३५ ॥ (ऋ० १ । १४१ । १-१३) जगती, ३१६-१७ त्रिष्टुप्।

बळित्था तद् वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर् ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ३०५
पृक्षो वपुः पितुमान् नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ३०६
निर्यदीं बुध्नान् महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ३०७

प्र यत् पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद् यविष्ठो अभवद् घृणा शुचिः ३०८
आदिन्मातॄराविशद् यास्वा शुचिर् अहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे ।
अनु यत् पूर्वा अरुहत् सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ३०९
आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते ।
देवान् यत् क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ३१०
वि यदस्थाद् यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः ।
तस्य पत्मन् दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ३११
रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्याम् अङ्गेभिररुषेभिरीयते ।
आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ३१२
त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः ।
यत् सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुर् अरान् न नेमिः परिभूरजायथाः ३१३
त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन् वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ३१४
अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम् ।
रश्मींरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः ३१५
उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच् चन्द्ररथः ।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरो ऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ३१६
अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ३१७

॥ ३६ ॥ (ऋ० १ । १४३ । १-८) जगती, ३२५ त्रिष्टुप् ।

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।
अपां नपाद् यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ३१८
स जायमानः परमे व्योमनि आविरग्निरभवन् मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ३१९

अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवो ऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ३२०
यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ३२१
न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस् तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून् त्स वना न्यृञ्जते ३२२
कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद् वसुष्कुविद् वसुभिः काममावरत् ।
चोदः कुवित् तुतुज्यात् सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ३२३
घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदम् अग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच् छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ३२४
अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टे ऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ३२५

॥ ३७ ॥ (ऋ० १ । १४४ । १-७) जगती ।

एति प्र होता व्रतमस्य मायया ऊर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ३२६
अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसद् अध स्वधा अधयद् याभिरीयते ३२७
युयूषतः सवयसा तदिद् वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन् त्समयंस्त सारथिः ३२८
यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ३२९
तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वति अभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ३३०
त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्करी बर्हिराशाते ३३१

अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद् वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ३३२

॥ ३८ ॥ (ऋ० १ । १४५ । १-५) जगती, ३३७ त्रिष्टुप् ।

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।
तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ३३३

तमित् पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचो ऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ३३४

तमिद् गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर् विश्वान्येकः शृणवद् वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस् ततुरिर्यज्ञसाधनो ऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ३३५

उपस्थायं चरति यत् समारत सद्यो जातस् तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ३३६

स ईं मृगो अप्यो वनर्गुर् उप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यब्रवीद् वयुना मर्त्येभ्यो ऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ३३७

॥ ३९ ॥ (ऋ० १ । १४६ । १-५) त्रिष्टुप् ।

त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषे ऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ३३८

उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस् तस्थावितऊतिर्ऋष्वः ।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ३३९

समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वग् धेनू वि चरतः सुमेके ।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान् केताँ अधि महो दधाने ३४०

धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुम् आविरेभ्यो अभवत् सूर्यो नॄन् ३४१

दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे ।
पुरुत्रा यदभवत् सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ३४२

॥ ४० ॥ (ऋ० १ । १४७ । १-५)

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर् ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत् तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन् रणयन्त देवाः ३४३

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस् ते तन्वं वन्दे अग्ने ३४४

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान् सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद् रिपवो नाह देभुः ३४५

यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुर् अरातीवा मर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ३४६

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान् मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तम् अग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ३४७

॥ ४१ ॥ (ऋ० १ । १४८ । १-५)

मथीद् यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्व१र्ण चित्रं वपुषे विभावम् ३४८

ददानमिन्न ददभन्त मन्म अग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्म उपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ३४९

नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टौ अश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ३५०

पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैर् आद् रोचते वन आ विभावा ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिर् अस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ३५१

न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ३५२

॥ ४२ ॥ (ऋ० १ । १४९ । १-५) विराट्

महः स राय एषते पतिर्दन्न् इन इनस्य वसुनः पद आ ।
उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ३५३

स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ३५४

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेद् अत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ३५५

अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ३५६
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ३५७

॥ ४३ ॥ (ऋ० १ । १५० । १-३) उष्णिक् ।

पुरु त्वा दाश्वान् वोचे अरिरग्ने तव स्विदा । तोदस्येव शरण आ महस्य ३५८
व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः । कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ३५९
स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि । प्रप्रेत् ते अग्ने वनुषः स्याम ३६०

॥ ४४ ॥ (ऋ० १ । १८९ । १-८)
(३६१-३६८) अगस्त्यो मैत्रावरुणः । त्रिष्टुप् ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्य१स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ३६१
अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान् त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ३६२
अग्ने त्वमस्मद् युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुवितायं देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ३६३
पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैर् उत प्रिये सदन आ शुशुक्वान् ।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन् मापरं सहस्वः ३६४
मा नो अग्नेऽव सृजो अघाय अविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन् परा दाः ३६५
वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद् गृणानो अग्ने तन्वे३ वरूथम् ।
विश्वाद् रिरिक्षोरुत वा निनित्सोर् अभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ३६६
त्वं ताँ अग्न उभयान् वि विद्वान् वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर् मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ३६७
अवोचाम निवचनान्यस्मिन् मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ३६८

॥ ४५ ॥ (ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलं २, सूक्तं १, मन्त्राः १-१६)
जगती। (३६९—४१५) गृत्समदः शौनकः (आङ्गिरसः शौनहोत्रो भार्गवः)।

त्वमग्ने द्युभिस् त्वमाशुशुक्षणिस् त्वमद्भ्यस् त्वमश्मनस् परि।
त्वं वनेभ्यस् त्वमोषधीभ्यस् त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ३६९

तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश् च नो दमे ३७०

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरंध्या। ३७१

त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस् त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ३७२

त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम्।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः ३७३

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस् त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे।
त्वं वातैररुणैर्यासि शंगयस् त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ३७४

त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि।
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस् तेऽविधत् ३७५

त्वामग्ने दम आ विश्पतिं विशस् त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते।
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ३७६

त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस् त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम्।
त्वं पुत्रो भवसि यस् तेऽविधत् त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ३७७

त्वमग्न ऋभुराके नमस्य१स् त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे।
त्वं वि भास्यनु दक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः ३७८

त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा।
त्वमिळा शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ३७९

त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस् तव स्पार्हे वर्ण आ संदृशि श्रियः।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः ३८०

❀

त्वामग्न आदित्यास आस्यं त्वां जिह्वां शुचयश् चक्रिरे कवे ।
त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् । ३८१
त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम्
त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः ३८२
त्वं तान् त्सं च प्रति चासि मज्मना अग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे ।
पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवद् अनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ३८३
ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसम् अग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ३८४

॥ ४६ ॥ (ऋ० २ । २ । १-१३)

यज्ञेन वर्धत जातवेदसम् अग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ३८५
अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरे अग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा आक्षपो भासि पुरुवार संयतः ३८६
तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे ।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषम् अग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ३८७
तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः ।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ३८८
स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद् द्यौर्न स्तृभिश् चितयद् रोदसी अनु ३८९
स नो रेवत् समिधानः स्वस्तये संददस्वान् रयिमस्मासु दीदिहि ।
आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये ३९०
दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।
प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतः ३९१
स इधान उषसो राम्या अनु स्वर्ण दीदेदरुषेण भानुना ।
होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश् चारुरायवे ३९२

एवा नो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष् पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि ३९३
वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषु उच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम् ३९४
स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन् त्सुजाता इषयन्त सूरयः।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ३९५
उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश् च शर्मणि।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ३९६
ये स्तोतृभ्यो० (३८४)

॥ ४७ ॥ (ऋ० २। ८। १-६) गायत्री, ४०२ अनुष्टुप्।

वाजयन्निव नू रथान् योगाँ अग्नेरुप स्तुहि । यशस्तमस्य मीळ्हुषः ३९७
यः सुनीथो ददाशुषे अजुर्यो जरयन्नरिं । चारुप्रतीक आहुतः ३९८
य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीयते ३९९
आ यः स्वर्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा । अञ्जानो अजरैरभि ४००
अत्रिमनु स्वराज्यम् अग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अधि श्रियो दधे ४०१
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम्। अरिष्यन्तः सचेमहि अभि ष्याम पृतन्यतः ४०२

॥ ४८ ॥ (ऋ० २। ९। १-६)। त्रिष्टुप्।

नि होता होतृषदने विदानस् त्वेषो दीदिवाँ असदत् सुदक्षः।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः ४०३
त्वं दूतस् त्वमु नः परस्पास् त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता।
अग्ने तोकस्य नस् तने तनूनाम् अप्रयुच्छन् दीद्यद् बोधि गोपाः ४०४
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे।
यस्माद् योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ४०५
अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ् छ्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ४०६

उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ४०७
सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद् दिदीहि ४०८

॥ ४९ ॥ (ऋ० २।१०।१-६)

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेव इळस्पदे मनुषा यत् समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ४०९
श्रूया अग्निश् चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वा उतारुषाह चक्रे विभृत्रः ४१०
उत्तानायामजनयन् त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिर् अपरीवृतो वसति प्रचेताः ४११
जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानं ४१२
आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्मि अरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद् वर्णो अग्निर् नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ४१३
ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद् वदेम ।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ४१४

॥ ५० ॥ (ऋ० २।४१।१९ तृतीयः पादः) गायत्री ।

अग्निं च हव्यवाहनम् ४१५

॥ ५१ ॥ (ऋ० २।४।१-९) (४१६-४४६) सोमाहुतिर्भार्गवः । त्रिष्टुप् ।

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्र इव यो दिधिषाय्यो भूद् देव आदेवे जने जातवेदाः ४१६
इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वायोः ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ४१७
अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ४१८

अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वाम् अत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ४१९
आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्त उशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम्।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वाँ यो मुहुरा युवा भूत् ४२०
आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत्।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश् चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ४२१
स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वी पशुर्नैति स्वयुरगोपाः।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन् कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ४२२
नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ४२३
त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत् सूरिभ्यो गृणते तद् वयो धाः ४२४

॥ ५२ ॥ (ऋ० २।५।१-८)। अनुष्टुप्।

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ४२५
आ यस्मिन् त्सप्त रश्मयस् तता यज्ञस्य नेतरि।
मनुष्वद् दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ४२६
दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्माणि वेरु तत्।
परि विश्वानि काव्या नेमिश् चक्रमिवाभवत् ४२७
साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वया इवानु रोहते ४२८
ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः।
कुवित् तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ४२९
यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित।
तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ४३०
स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम्।
स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ४३१

यथा विद्वाँ अरं करद् विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ४३२

॥ ५३ ॥ (ऋ० २ । ६ । १-८) गायत्री ।

इमां मे अग्ने समिधम् इमामुपसदं वनेः । इमा उ षु श्रुधी गिरः ४३३
अया ते अग्ने विधेम ऊर्जो नपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ४३४
तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्येम सपर्यवः ४३५
स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्य१स्मद् द्वेषांसि ४३६
स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् । स नः सहस्रिणीरिषः ४३७
ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरा गहि ४३८
अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वान् जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ४३९
स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक् । आ चास्मिन् त्सत्सि बर्हिषि ४४०

॥ ५४ ॥ (ऋ० २ । ७ । १-६)

श्रेष्ठं यविष्ठ भारत अग्ने द्युमन्तमा भर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ४४१
मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षि तस्या उत द्विषः ४४२
विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव । अति गाहेमहि द्विषः ४४३
शुचिः पावक वन्द्यो अग्ने बृहद् वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ४४४
त्वं नो असि भारत अग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ४४५
द्र्वन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ४४६

॥ ५५ ॥ (ऋग्वेदस्य तृतीयं मण्डलं ३, सूक्तं १, मन्त्राः १ – २३)
(४४७—५७३) विश्वामित्रो गाथिनः । त्रिष्टुप् ।

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवाँ अच्छा दीद्यद् युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ४४७
प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित् तवसे गातुमीषुः ४४८
मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्व१न्तर् देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ४४९

अवर्धयन् त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन् वपुष्यन् ४५०
शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ४५१
वव्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः।
सना अत्र युवतयः सयोनीर् एकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः ४५२
स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम्।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ४५३
बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद् दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ४५४
पितुश् चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद् वि धेनाः।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर् दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ४५५
पितुश् च गर्भं जनितुश् च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत् पीप्यानाः।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये३ नि पाहि ४५६
उरौ महाँ अनिबाधे ववर्ध आपो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः।
ऋतस्य योनावशयद् दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ४५७
अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः।
उदुस्रिया जनिता यो जजान अपां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ४५८
अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम्।
देवासश् चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ४५९
बृहन्त इद् भानवो भाऋजीकम् अग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तर् अपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ४६०
ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिर् ईळे सखित्वं सुमतिं निकामः।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ४६१
उपक्षेतारस् तव सुप्रणीते अग्ने विश्वानि धन्या दधानाः।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ४६२

आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान् रथिरो यासि साधन् ४६३

नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौद् अग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ४६४

आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर् महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलं संतरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ४६५

एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदाः ४६६

जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्य अपि भद्रे सौमनसे स्याम ४६७

इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नो अग्ने महि द्रविणमा यजस्व ४६८

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस् तनयो विजावा अग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ४६९

॥५६॥ (ऋ० ३।५।१-११)

प्रत्यग्निरुषसश् चेकितानो ऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धो ऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ४७०

प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर् गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीर्ऋतस्य संदृशश् चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ४७१

अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्षु अपां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।
आ हर्यतो यजतः सान्वस्थाद् अभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ४७२

मित्रो अग्निर्भवति यत् समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।
मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ४७३

पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश् चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ४७४

ऋभुश् चक्र ईड्यं चारु नाम　विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
ससस्य चर्म घृतवत् पदं वेस्　तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ४७५

आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात्　पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः　पुनःपुनर्मातरा नव्यसी कः ४७६

सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे　यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।
आप इव प्रवता शुम्भमाना　उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ४७७

उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्　वर्ष्मन् दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा　दूतो वक्षद् यजथाय देवान् ४७८

उदस्तम्भीत् समिधा नाकमृष्वोऽ३ग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा　गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ४७९

इळामग्ने० (४६९)

॥ ५७ ॥ (ऋ० ३ । ६ । १-११)

प्र कारवो मनना वच्यमाना　देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति　हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ४८०

आ रोदसी अपृणा जायमान　उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश् चिदग्ने महिना पृथिव्या　वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ४८१

द्यौश् च त्वा पृथिवी यज्ञियासो　नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः　प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ४८२

महान् त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तो　अन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते　सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ४८३

व्रता ते अग्ने महतो महानि　तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्　त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ४८४

ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्　घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान् देव विश्वान्　त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ४८५

दिवश् चिदा ते रुचयन्त रोका　उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग् वनेषु　होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ४८६

उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ४८७

ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस् त्रिंशतं त्रींश् च देवान् अनुष्वधमा वह मादयस्व ४८८*

स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ४८९
इळामग्ने० (४६९)

॥ ५८ ॥ (ऋ० ३ । ७ । १-११)

प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेर् आ मातरा विविशुः सप्त वाणीः ।
परिक्षिता पितरा सं चरेते प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ४९०

दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद् वहन्तीः ।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ४९१

आ सीमरोहत् सुयमा भवन्तीः पतिश् चिकित्वान् रयिविद् रयीणाम् ।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस् ता अवासयत् पुरुधप्रतीकः ४९२

महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति ।
व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ४९३

जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवम् उत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।
दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः ४९४

उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोर् अनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ४९५

अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ४९६

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित् त आहुर् अनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ४९७

वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर् वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।
देव होतर्मन्द्रतरश् चिकित्वान् महो देवान् रोदसी एह वक्षि ४९८

---

* ४८८ अथर्व० २० । १३ । ४

पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ४९९
इळामग्ने० (४६९)

॥ ५९ ॥ (ऋ० ३।९।१—९) बृहती, ५०८ त्रिष्टुप्।

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ५००
कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत् ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभवः ५०१
अति तृष्टं ववक्षिथ अथैव सुमना असि ।
प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ५०२
ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः ।
अन्वीमविन्दन् निचिरासो अद्रुहो अप्सु सिंहमिव श्रितम् ५०३
ससृवांसमिव त्मना अग्निमित्था तिरोहितम् ।
ऐनं नयन् मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ५०४
तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।
विश्वान् यद् यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ५०५
तद् भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ५०६
आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम् ।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ५०७
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ५०८

॥ ६० ॥ (ऋ० ३।१०।१-९)। उष्णिक्।

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् । देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ५०९
त्वां यज्ञेष्वृत्विजम् अग्ने होतारमीळते । गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ५१०
स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे । सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ५११

स केतुरध्वराणाम् अग्निर्देवेभिरा गमत् । अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ५१२
प्र होत्रे पूर्व्यं वचो अग्नये भरता बृहत् । विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ५१३
अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः । महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ५१४
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज । होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ५१५
स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् । भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ५१६
तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ५१७

॥ ६१ ॥ (ऋ० ३ । ११ । १—९) गायत्री ।

अग्निर्होता पुरोहितो अध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ५१८
स हव्यवाळमर्त्य उशिग् दूतश् चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ५१९
अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ५२०
अग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ५२१
अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ५२२
साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस् तुविश्रवस्तमः ५२३
अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ५२४
परि विश्वानि सुधिता अग्नेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः ५२५
अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ५२६

॥ ६२ ॥ (ऋ० ३ । २४ । १-५) ५२७ अनुष्टुप्; ५२८-५३१ गायत्री ।

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्टरस् तरन्नरातीर् वर्चो धा यज्ञवाहसे ५२७
अग्ने इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः । जुषस्व सू नो अध्वरम् ५२८
अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ५२९
अग्ने विश्वेभिरग्निभिर् देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ५३०
अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सूनुमतः ५३१

॥ ६३ ॥ (ऋ० ३ । २५ । १-५) विराट् ।

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास् तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।
ऋधग् देवाँ इह यजा चिकित्वः ५३२
अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान् त्सनोति वाजममृताय भूषन् ।
स नो देवाँ एह वहा पुरुक्षो ५३३

अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये   आ भाति देवी अमृते अमूरः ।
क्षयन् वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः   ५३४
अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे   सुतावतो यज्ञमिहोप यातम् ।
अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा   ५३५
अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे   नित्यः सूनो सहसो जातवेदः ।
सधस्थानि महयमान ऊती   ५३६

॥ ६४ ॥ (ऋ० ३ । २७ । १-१५) गायत्री ।

प्र वो वाजा अभिद्यवो   हविष्मन्तो घृताच्या   । देवाञ्जिगाति सुम्नयुः   ५३७
ईळे अग्निं विपश्चितं   गिरा यज्ञस्य साधनम्   । श्रुष्टीवानं धितावानम्   ५३८
अग्ने शकेम ते वयं   यमं देवस्य वाजिनः   । अति द्वेषांसि तरेम   ५३९
समिध्यमानो अध्वरे३   अग्निः पावक ईड्यः   । शोचिष्केशस् तमीमहे   ५४०
पृथुपाजा अमर्त्यो   घृतनिर्णिक् स्वाहुतः   । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट्   ५४१
तं सबाधो यतस्रुच   इत्था धिया यज्ञवन्तः   । आ चक्रुरग्निमूतये   ५४२
होता देवो अमर्त्यः   पुरस्तादेति मायया   । विदथानि प्रचोदयन्   ५४३
वाजी वाजेषु धीयते   अध्वरेषु प्र णीयते   । विप्रो यज्ञस्य साधनः   ५४४
धिया चक्रे वरेण्यो   भूतानां गर्भमा दधे   । दक्षस्य पितरं तना   ५४५
नि त्वा दधे वरेण्यं   दक्षस्येळा सहस्कृत   । अग्ने सुदीतिमुशिजम्   ५४६
अग्निं यन्तुरमप्तुरम्   ऋतस्य योगे वनुषः   । विप्रा वाजैः समिन्धते   ५४७
ऊर्जो नपातमध्वरे   दीदिवांसमुप द्यवि   । अग्निमीळे कविक्रतुम्   ५४८
ईळेन्यो नमस्यस्   तिरस् तमांसि दर्शतः   । समग्निरिध्यते वृषा   ५४९ *
वृषो अग्निः समिध्यते   अश्वो न देववाहनः   । तं हविष्मन्त ईळते   ५५० *
वृषणं त्वा वयं वृषन्   वृषणः समिधीमहि   । अग्ने दीद्यतं बृहत्   ५५१ *

॥ ६५ ॥ (ऋ० ३ । २८ । १-६)

५५२-५५३, ५५७ गायत्री, ५५४ उष्णिक्, ५५५ त्रिष्टुप्, ५५६ जगती ।

अग्ने जुषस्व नो हविः   पुरोळाशं जातवेदः   । प्रातःसावे धियावसो   ५५२
पुरोळा अग्ने पचतस्   तुभ्यं वा घा परिष्कृतः । तं जुषस्व यविष्ठ्य   ५५३
अग्ने वीहि पुरोळाशम्   आहुतं तिरोअह्न्यम्   । सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः   ५५४

* ५४९-५५१ अथर्व. २० । १०२ । १-३

माध्यंदिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ५५५

अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम् ।
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ५५६

अग्ने वृधान आहुतिं पुरोळाशं जातवेदः । जुषस्व तिरोअह्न्यम् ५५७

॥ ६६ ॥ (ऋ० ३ । २९ । १-१६) त्रिष्टुप्;
५५८, ५६१, ५६७, ५६९ अनुष्टुप्; ५६३, ५६८, ५७१, ५७२ जगती ।

अस्तीदमधिमन्थनम् अस्ति प्रजननं कृतम् ।
एतां विश्पत्नीमा भर अग्निं मन्थाम पूर्वथा ५५८

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर् हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ५५९

उत्तानायामव भरा चिकित्वान् त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास् पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ५६०

इळायास् त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
जातवेदो नि धीमहि अग्ने हव्याय वोळ्हवे ५६१

मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्ताद् अग्निं नरो जनयता सुशेवम् ५६२

यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचते अश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस् तृणा दहन् ५६३

जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ५६४

सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान् त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद् यजमाने वयो धाः ५६५

कृणोत धूमं वृषणं सखायो अस्रेधन्त इतन वाजमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ५६६

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ सीद अथा नो वर्धया गिरः ५६७

तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद् विजायते ।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत् सरीमणि ५६८

सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान् देवयते यज ५६९

अजीजनन्नमृतं मर्त्यासो अस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम् ।
दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ५७०

प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ५७१

अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद् विदुः ।
द्युम्नवद् ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे ५७२

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश् चिकित्वोऽवृणीमहीह ।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ५७३

॥ ६७ ॥ (ऋ० ३ । १३ । १-७) [५७४-५८७] ऋषभो वैश्वामित्रः । अनुष्टुप् ।

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै ।
गमद् देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ५७४

ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः ।
हविष्मन्तस् तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ५७५

स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ५७६

स नः शर्माणि वीतये अग्निर्यच्छतु शंतमा ।
यतो नः प्रुष्णवद् वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ५७७

दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ५७८

उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधो अग्ने सहस्रसातमः ५७९

नू नो रास्व सहस्रवत् तोकवत् पुष्टिमद् वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ५८०

॥ ६८ ॥ (ऋ० ३ । १४ । १-७) त्रिष्टुप् ।

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात् सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ५८१

अयामि ते नमउक्तिं जुषस्व ऋतावस् तुभ्यं चेतते सहस्वः ।
विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ५८२

द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।
यत् सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिर् आ वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ५८३

मित्रश् च तुभ्यं वरुणः सहस्वो अग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन् त्सूर्यो नॄन् ५८४

वयं ते अद्य ररिमा हि कामम् उत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवान् अस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ५८५

त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर् देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नो अद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ५८६

तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ५८७

॥ ६९ ॥ (ऋ० ३ । १५ । १-७) (५८८-५९४) उत्कीलः कात्यः । त्रिष्टुप् ।

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्याम् अग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ५८८

त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ५८९

त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ५९०

अषाह्लो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा संजिगीवान्।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर् जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ५९१

अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाजम् अग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके ५९२

प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजान् अग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात् ५९३
इळामग्ने० (४६९)

॥ ७० ॥ (ऋ० ३ । १६ । १-६) प्रगाथः (= बृहती + सतोबृहती ।)

अयमग्निः सुवीर्यस्य ईशे महः सौभगस्य।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ५९४

इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन् रायः शेवृधासः।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ५९५

स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य।
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतो अनमीवस्य शुष्मिणः ५९६

चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश् चक्रिर्देवेष्वा दुवः।
आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम् ५९७

मा नो अग्नेऽमतये मावीरतायै रीरधः।
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदे अप द्वेषांस्या कृधि ५९८

शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतो अग्ने बृहतो अध्वरे।
सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ५९९

॥ ७१ ॥ (ऋ० ३ । १७ । १-५) ६००—६०९ कतो वैश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ६००

यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश् चिकित्वान्।
एवानेन हविषा यक्षि देवान् मनुष्वद् यज्ञं प्र तिरेममद्य ६०१

त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस् तिस्र आजानीरुषसस् ते अग्ने ।
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वान् अथा भव यजमानाय शं योः ६०२

अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस् त्वेड्यं जातवेदः ।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ६०३

यस् त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान् द्विता च सत्ता स्वधया च शंभुः ।
तस्यानु धर्म प्र यजा चिकित्वो अथा नो धा अध्वरं देववीतौ ६०४

॥ ७२ ॥ (ऋ० ३ । १८ । १-५)

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ६०५

तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररुषः परस्य ।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान् वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ६०६

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ६०७

उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद् वयः शशमानेषु धेहि ।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर् मर्मृज्मा ते तन्वं भूरि कृत्वः ६०८

कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत् समिद्धः ।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत् सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ६०९

॥ ७३ ॥ (ऋ० ३ । १९ । १-५) [६१०—६२६] गाथी कौशिकः ।

अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।
स नो यक्षद् देवताता यजीयान् राये वाजाय वनते मघानि ६१०

प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम् ।
प्रदक्षिणिद् देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ६११

स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश् च वस्वः ६१२

भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीका अग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ६१३

यत् त्वा होतारमनजन् मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोधि अधि श्रवांसि धेहि नस् तनूषु ६१४

॥ ७४ ॥ (ऋ० ३।२०।२—४)

अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस् ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास् ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ६१५
अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम।
याश् च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदधुः पृष्टबन्धो ६१६
अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद् विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ६१७

॥ ७५ ॥ (ऋ० ३।२१।१-५)

६१८, ६२१ त्रिष्टुप्, ६१९-२० अनुष्टुप्, ६२२ विराड्रूपा सतोबृहती।

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहि इमा हव्या जातवेदो जुषस्व।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ६१८
घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः।
स्वधर्मन् देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ६१९
तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतो अग्ने विप्राय सन्त्य।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ६२०
तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ६२१
ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान् देवशो विहि ६२२

॥ ७६ ॥ (ऋ० ३।२२।१-५) ६२६ पुरीष्याग्नयः। त्रिष्टुप्, ६२६ अनुष्टुप्।

अयं सो अग्निर्यस्मिन् त्सोमम् इन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान् त्सन् त्स्तूयसे जातवेदः ६२३
अग्ने यत् ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ६२४

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये ।
या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ६२५
पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहो अनमीवा इषो महीः ६२६
इळामग्ने० (४६९)

॥ ७७ ॥ (ऋ० ३ । २३ । १-५)

६२७-६३० देवश्रवा देववातश्च भारतौ । त्रिष्टुप्, ६२९ सतोबृहती ।

निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता ।
जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ६२७
अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।
अग्ने वि पश्य बृहताभि राया इषां नो नेता भवतादनु द्यून् ६२८
दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन् त्सुजातं मातृषु प्रियम् ।
अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद् वशी ६२९
नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् ।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ६३०
इळामग्ने० (४६९)

॥ ७८ ॥ (ऋग्वेदस्य चतुर्थं मण्डलं, सूक्तं १, मंत्राः १, ६-२०)

[६३१—७५५] वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप्, ६३१ अष्टिः ।

त्वां ह्यग्ने सदमित् समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिर इति क्रत्वा न्येरिरे ।
अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेवं जनत प्रचेतसं विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम् ६३१
अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य संदृग् देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ६३२
त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ६३३
स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ६३४

स चैतयन् मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन् देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ६३५

स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन् अच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद् विश्वे अमृता अकृण्वन् द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ६३६

स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्ता आयोयुवानो वृषभस्य नीळे ६३७

प्र शर्ध आर्त प्रथमं विपन्याँ ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ६३८

अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः ।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तर् उदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ६३९

ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन् ।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन् विदन्त ज्योतिश् चकृपन्त धीभिः ६४०

ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम् ।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ६४१

ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस् त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन् ।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुवदरुणीर्यशसा गोः ६४२

नेशत् तमो दुधितं रोचत द्यौर् उद् देव्या उषसो भानुरर्त ।
आ सूर्यो बृहतस् तिष्ठदज्राँ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ६४३

आदित् पश्चा बुबुधाना व्यख्यन् आदिद् रत्नं धारयन्त द्युभक्तम् ।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ६४४

अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम् ।
शुच्यूधो अतृणन्न गवाम् अन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ६४५

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ६४६

॥ ७९ ॥ (ऋ० ४ । २ । १-२०) त्रिष्टुप् ।

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ६४७

इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने ।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान् वृषणः शुक्रांश्च ६४८

अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा ।
अन्तरीयसे अरुषा युजानो युष्मांश् च देवान् विश आ च मर्तान् ६४९

अर्यमणं वरुणं मित्रमेषाम् इन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत ।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सुहविषे जनाय ६५०

गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इळावाँ एषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ६५१

यस् त इध्मं जभरत् सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया ।
भुवस् तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्मात् सीमघायत उरुष्य ६५२

यस् ते भरादन्नियते चिदन्नं निशिषन् मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।
आ देवयुरिनधते दुरोणे तस्मिन् रयिर्ध्रुवो अस्तु दास्वान् ६५३

यस् त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात् प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान् तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ६५४

यस् तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद् दुवस् त्वे कृणवते यतस्रुक् ।
न स राया शशमानो वि योषत् नैनमंहः परि वरदघायोः ६५५

यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः ।
प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठ असाम यस्य विधतो वृधासः ६५६

चित्तिमचित्तिं चिनवद् वि विद्वान् पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान्
राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ६५७

कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः ।
अतस् त्वं दृश्याँ अग्न एतान् पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः ६५८

त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथु *श्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ६५९

अधा ह यद् वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश् चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर् ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ६६०

---

* पृथु चन्द्रम् अवसे (पदानि)

अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन्
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेम अद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ६६१

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन् दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ६६२

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रम् ऊर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ६६३

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ६६४

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश् चारु चक्षुः ६६५

एता ते अग्न उचथानि वेधो अवोचाम कवये ता जुषस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ६६६

॥ ८० ॥ (ऋ० ४।३।२-१६)

अयं योनिश् चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीद इमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ६६७

आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः ।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद् यमीळे ६६८

त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित् स्वाधीः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ६६९

कथा ह तद् वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद् भगाय ६७०

कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद् वाताय प्रतवसे शुभंये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ६७१

कथा महे पुष्टिंभराय पूष्णे कद् रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
कद् विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ६७२

कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश् चिकित्वान् ६७३

ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोर् आमा सचा मधुमत् पक्वमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ६७४

ऋतेन हि ष्मा वृषभश् चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद् वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ६७५

ऋतेनाद्रिं व्यसन् भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परि षदन्नुषासम् आविः स्वरभवज् जाते अग्नौ ६७६

ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने ।
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित् स्रवितवे दधन्युः ६७७

मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर् मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ६७८

रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।
प्रति ष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद् वावृधानम् ६७९

एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैर् इमान् त्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ६८०

एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यानि अशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ६८१

॥ ८१ ॥ (ऋ० ४ । ६ । १-११)

ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतर् अग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् ।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश् चित् तिरसि मनीषाम् ६८२

अमूरो होता न्यसादि विक्षु अग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन् मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ६८३

यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद् देवतातिमुराणः ।
उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ६८४

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात् ।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ६८५

परि त्मना मितद्रुरेति होता अग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् ६८६

भद्रा ते अग्ने स्वनीक संदृग् घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत् ते शोचिस् तमसा वरन्त न ध्वस्मानस् तन्वी३ रेप आ धुः ६८७

न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधितः पावको अग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ६८८

द्विर्यं पञ्च जीजनन् त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु ।
उषर्बुधमथर्यो३ न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ६८९

तव त्ये अग्ने हरितो घृतस्ना रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।
अरुषासो वृषण ऋजुमुष्का आ देवतातिमह्वन्त दस्माः ६९०

ये ह त्ये ते सहमाना अयासस् त्वेषासो अग्ने अर्चयश् चरन्ति ।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः ६९१

अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर् नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः । ६९२

॥ ८२ ॥ (ऋ० ४ । ७ । १-११) त्रिष्टुप्, ६९३ जगती, ६९४-९८ अनुष्टुप् ।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर् होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर् वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ६९३

अग्ने कदा त आनुषग् भुवद् देवस्य चेतनम् ।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम् ६९४

ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ६९५

आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश् चर्षणीरभि ।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ६९६

तमीं होतारमानुषक् चिकित्वांसं नि षेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः ६९७

तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम् ।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ६९८

ससस्य यद् वियुता सस्मिन्नूधन्न् ऋतस्य धामन् रणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ६९९

वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वान् उभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ७००

कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश् चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश् चिज् जातो भवसीदु दूतः ७०१

सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः ७०२

तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः ।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्न् आशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ७०३

॥ ८३ ॥ (ऋ० ४ । ८ । १-८) गायत्री ।

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ७०४
स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः । स देवाँ एह वक्षति ७०५
स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे । दाति प्रियाणि चिद् वसु ७०६
स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते । विद्वाँ आरोधनं दिवः ७०७
ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ईं पुष्यन्त इन्धते ७०८
ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे । ये अग्ना दधिरे दुवः ७०९
अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः । अस्मे वाजास ईरताम् ७१०
स विप्रश् चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् । अति क्षिप्रेव विध्यति ७११

॥ ८४ ॥ (ऋ० ४ । ९ । १-८)

अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ७१२
स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः । दूतो विश्वेषां भुवत् ७१३

स सद्म परि णीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु । उत पोता नि षीदति ७१४
उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मा नि षीदति ७१५
वेषि ह्यध्वरीयताम् उपवक्ता जनानाम् । हव्या च मानुषाणाम् ७१६
वेषीद् वस्य दूत्यं१ यस्य जुजोषो अध्वरम् । हव्यं मर्तस्य वोळ्हवे ७१७
अस्माकं जोष्यध्वरम् अस्माकं यज्ञमङ्गिरः । अस्माकं शृणुधी हवम् ७१८
परि ते दूळभो रथो अस्माँ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ७१९

॥ ८५ ॥ (ऋ० ४ । १० । १-८)
पदपंक्तिः, (७२३, ७२५, ७२६ उष्णिग्वा,) ७२४ महापदपंक्तिः, ७२७ उष्णिक् ।

अग्ने तमद्य अश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ७२०
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ७२१
एभिर्नो अर्कैर् भवा नो अर्वाङ् स्व१र्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ७२२
आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तो अग्ने दाशेम । प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ७२३
तव स्वादिष्ठ अग्ने संदृष्टिर् इदा चिदह्न इदा चिदक्तोः । श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ७२४
घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् । तत् ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ७२५
कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि, द्वेषो अग्न इनोषि मर्तात् । इत्था यजमानादृतावः ७२६
शिवा नः सख्या सन्तु, भ्रात्रा अग्ने देवेषु युष्मे । सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ७२७

॥ ८६ ॥ (ऋ० ४ । ११ । १-६) त्रिष्टुप् ।

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकम् उपाक आ रोचते सूर्यस्य ।
रुशद् दृशे ददृशे नक्तया चिद् अरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ७२८
वि षाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।
विश्वेभिर्यद् वावनः शुक्र देवैस् तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ७२९
त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास् त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ७३०
त्वद् वाजी वाजंभरो विहाया अभिष्टिकृज् जायते सत्यशुष्मः ।
त्वद् रयिर्देवजूतो मयोभुस् त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ७३१
त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर् दमूनसं गृहपतिममूरम् ७३२

आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित् सचसे स्वस्ति ७३३

॥ ८७ ॥ (ऋ० ४ । १२ । १-६)

यस् त्वामग्न इनधते यतस्रुक् त्रिस् ते अन्नं कृणवत् सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत् तव क्रत्वा जातवेदश् चिकित्वान् ७३४

इध्मं यस् ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमा सपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन् रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ७३५

अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्य अग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुषङ् मर्त्याय स्वधावान् ७३६

यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठ अचित्तिभिश् चकृमा कच्चिदागः ।
कृधी ष्व१स्माँ अदितेरनागान् व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ७३७

महश् चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद् देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद् रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ७३८

यथा ह त्यद् वसवो गौर्यं चित् पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ७३९

॥ ८८ ॥ (ऋ० ४ । १३ । १-५)

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद् विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोणम् उत् सूर्यो ज्योतिषा देव एति ७४०

ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् द्रप्सं दविध्वद् गविषो न सत्वा ।
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत् सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ७४१

यं सीमकृण्वन् तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ७४२

वहिष्ठेभिर्विहरन् यासि तन्तुम् अवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस् तमो अप्स्व१न्तः ७४३

अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ७४४

॥ ८९ ॥ (ऋ० ४ । १४ । १—५)

प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद् देवो रोचमाना महोभिः ।
आ नासत्योरुगाया रथेन इमं यज्ञमुप नो यातमच्छ ७४५
ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज् ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश् चेकितानः ७४६
आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान् मही चित्रा रश्मिभिश् चेकिताना ।
प्रबोधयन्ती सुवितायं देवी उषा ईयते सुयुजा रथेन ७४७
आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ७४८
अनायतो० (७४४)

॥ ९० ॥ (ऋ० ४ । १५ । १-६) गायत्री ।

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन् परि णीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ७४९
परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ७५०
परि वाजपतिः कविर् अग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद् रत्नानि दाशुषे ७५१
अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमाँ अमित्रदम्भनः ७५२
अस्य घा वीर ईवतो अग्नेरीशीत मर्त्यः । तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ७५३
तमर्वन्तं न सानसिम् अरुषं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ७५४

॥ ९१ ॥ (ऋग्वेदस्य पञ्चमं मण्डलं, सूक्तं १, मन्त्राः १-१२)
(७५५-७६६) बुधगविष्ठिरावात्रेयौ । त्रिष्टुप् ।

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ७५५
अबोधि होता यजथाय देवान् ऊर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशदर्शि पाजो महान् देवस् तमसो निरमोचि ७५६
यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद् दक्षिणा युज्यते वाजयन्ती उत्तानामूर्ध्वो अधयज् जुहूभिः ७५७

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ७५८
जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानो अग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ७५९
अग्निर्होता न्यसीदद् यजीयान् उपस्थे मातुः सुरभा उं लोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ७६०
प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुम् अग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस् ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ७६१
मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस् तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ७६२
प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यान् आविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ७६३
तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत् ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ७६४
आद्य रथं भानुमो भानुमन्तम् अग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान् पथीनामुर्वन्तरिक्षम् एह देवान् हविरद्याय वक्षि ७६५
अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ७६६

॥ ९२ ॥ (ऋ० ५ । २ । १-१२)

(७६७-७७८) कुमार आत्रेयः, वृशो वा जानः, उभौ वा; २, ९ वृशो जानः । त्रिष्टुप् , १२ शक्वरी।

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे ।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ७६७
कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान ।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्ध अपश्यं जातं यदसूत माता ७६८
हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात् क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत् किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ७६९

क्षेत्रा॑दपश्यं सनु॒तश्च॒रन्तं॑ सु॒मद्यू॒थं न पु॒रु शोभ॑मानम् ।
न ता अ॑गृभ्र॒न्नज॑निष्ट॒ हि षः पलि॑क्नी॒रिद्यु॑व॒तयो॑ भवन्ति ७७०

के मे॑ मर्य॒कं वि य॑वन्त॒ गोभि॒र्न येषां॑ गो॒पा अर॑णश्चि॒दास॑ ।
य ईं॑ जगृ॒भुरव॒ ते सृ॒जन्त्वाजा॑ति प॒श्व उप॑ नश्चिकि॒त्वान् ७७१

व॒सां राजा॑नं व॒सतिं॒ जना॑ना॒मरा॑तयो॒ नि द॑धु॒र्मर्त्ये॑षु ।
ब्रह्मा॒ण्यत्रे॒रव॒ तं सृ॑जन्तु निन्दि॒तारो॒ निन्द्या॑सो भवन्तु ७७२

शुन॑श्चि॒च्छेपं॒ निदि॑तं स॒हस्रा॒द्यूपा॑दमुञ्चो॒ अश॑मिष्ट॒ हि षः ।
ए॒वास्मद॑ग्ने॒ वि मु॑मुग्धि॒ पाशा॒न्होत॑श्चिकित्व इ॒ह तू नि॒षद्य॑ ७७३

हृ॒णी॒यमा॑नो॒ अप॒ हि मदै॒येः प्र मे॑ दे॒वानां॑ व्रत॒पा उ॑वाच ।
इन्द्रो॑ वि॒द्वाँ अनु॒ हि त्वा॑ च॒चक्ष॒ तेना॒हम॑ग्ने॒ अनु॑शिष्ट॒ आगा॑म् ७७४

वि ज्योति॑षा बृह॒ता भा॑त्य॒ग्निरा॒विर्विश्वा॑नि कृणुते महि॒त्वा ।
प्रादे॑वीर्मा॒याः स॑हते दु॒रेवाः॒ शिशी॑ते॒ शृङ्गे॒ रक्ष॑से वि॒निक्षे॑ ७७५

उ॒त स्वा॒नासो॑ दि॒वि ष॑न्त्व॒ग्नेस्ति॒ग्माय्॑धा॒ रक्ष॑से॒ हन्त॒वा उ॑ ।
मदे॑ चिदस्य॒ प्र रु॑जन्ति॒ भामा॒ न व॑रन्ते परि॒बाधो॒ अदे॑वीः ७७६

ए॒तं ते॒ स्तोमं॑ तुविजात॒ विप्रो॒ रथं॒ न धीरः॒ स्वपा॑ अतक्षम् ।
यदीद॑ग्ने॒ प्रति॒ त्वं दे॑व॒ हर्याः॒ स्व॑र्वतीर॒प एना॑ जयेम ७७७

तु॒वि॒ग्रीवो॑ वृष॒भो वा॑वृधा॒नो॑ऽश॒त्र्व१॒र्यः सम॑जाति॒ वेदः॑ ।
इ॒तीम॒म॒ग्निम॒मृता॑ अवोच॒न्बर्हि॑ष्मते॒ मन॑वे॒ शर्म॑ यंसद्ध॒विष्म॑ते॒ मन॑वे॒ शर्म॑ यंसत् ७७८

॥ ९३ ॥ (ऋ० ५ । ३ । १-२, ४-१२)

(७७९-७८०) वसुश्रुत आत्रेयः । ७७९ विराट्, ७८०-७८९ त्रिष्टुप् ।

त्वम॑ग्ने॒ वरु॑णो॒ जाय॑से॒ यत्त्वं मि॒त्रो भ॑वसि॒ यत्समि॑द्धः ।
त्वे विश्वे॑ सहसस्पुत्र दे॒वास्त्वमिन्द्रो॑ दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ७७९

त्वम॑र्य॒मा भ॑वसि॒ यत्क॒नीनां॒ नाम॑ स्वधावन्गुह्यं॑ बिभर्षि ।
अ॒ञ्जन्ति॑ मि॒त्रं सुधि॑तं॒ न गोभि॒र्यद्दम्प॑ती॒ सम॑नसा कृ॒णोषि॑ ७८०

तव॑ श्रि॒या सु॒दृशो॑ देव दे॒वाः पु॒रू दधा॑ना अ॒मृतं॑ सपन्त ।
होता॑रम॒ग्निं मनु॑षो॒ नि षे॑दुर्दश॒स्यन्त॑ उ॒शिजः॒ शंस॑मा॒योः ७८१

न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान् न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।
विशश् च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद् देव मर्तान् ७८२

वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ७८३

यो न आगो अभ्येनो भराति अधीदघमघशंसे दधात ।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेताम् अग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ७८४

त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ७८५

अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान् पुत्रो यस् ते सहसः सून ऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नो अग्ने कदाँ ऋतचिद् यातयासे ७८६

भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज् जोषयासे ।
कुविद् देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ७८७

त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरितातिं पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन् रिपवो जनासो अज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ७८८

इमे यामासस् त्वद्रिगभूवन् वसवे वा तदिदागो अवाचि ।
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात् ७८९

॥ ९४ ॥ (ऋ० ५ । ४ । १-११) त्रिष्टुप् ।

त्वामग्ने वसुपतिं वसूनाम् अभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेम अभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ७९०

हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीहि अस्मद्र्य१क् सं मिमीहि श्रवांसि ७९१

विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि ७९२

जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान् हविरद्याय वक्षि ७९३

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि ७९४

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस् तन्वे३ स्वायै ।
पिपर्षि यत् सहसस्पुत्र देवान् त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ७९५

वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्व अस्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ७९६

अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस् त्रिवरूथेन पाहि ७९७

विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिं पर्षि ।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानो३ अस्माकं बोध्यविता तनूनाम् ७९८

यस् त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानो अमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ७९९

यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ८००

॥ ९५ ॥ (ऋ० ५ । ६ । १-१०) पङ्क्तिः ।

अग्निं तं मन्ये यो वसुर् अस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवो अस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०१

सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०२

अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यम् इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०३

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवि इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०४

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०५

❀

प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यन्त्यानुषग् इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०६

तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।
ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनाम् इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०७

नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृचुस् त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०८

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत् पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ८०९

एवाँ अग्निमजुर्यमुर् गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।
दधदस्मे सुवीर्यम् उत त्यदाश्वश्व्यम् इषं स्तोतृभ्य आ भर ८१०

॥ ९६ ॥ (ऋ० ५ । ७ । १-१०) (८११-८२७) इष आत्रेयः । अनुष्टुप्, ८२० पङ्क्तिः ।

सखायः सं वः सम्यञ्चम् इषं स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनाम् ऊर्जो नप्त्रे सहस्वते ८११

कुत्रा चिद् यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।
अर्हन्तश् चिद् यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ८१२

सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ८१३

सः स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद् दूर आ सते ।
पावको यद् वनस्पतीन् प्र स्मा मिनात्यजरः ८१४

अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।
अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ८१५

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद् विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूनाम् अस्ततातिं चिदायवे ८१६

स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।
हिरिश्मश्रुः शुचिदन् ऋभुरनिभृष्टतविषिः ८१७

शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत् प्र स्वधितीव रीयते ।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ८१८

आ यस्ते सर्पिरासुते अग्ने शमस्ति धायसे ।
ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ८१९

इति चिन् मन्युमध्रिजस् त्वादातमा पशुं ददे ।
आदग्ने अपृणतो अत्रिः सासह्याद् दस्यून् इषः सासह्यान्नृन् ८२०

॥ ९७ ॥ (ऋ० ५ । ८ । १-७) जगती ।

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ८२१

त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ८२२

त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ८२३

त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।
स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः ८२४

त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।
पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ८२५

त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।
उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ८२६

त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे ।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितो३ अभि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ८२७

॥ ९८ ॥ (ऋ० ५ । ९ । १-७)
(८२८-८४१) गय आत्रेयः । अनुष्टुप् । ८३२; ८३४ पङ्क्तिः ।

त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईळते ।
मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक् ८२८

अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः ।
सं यज्ञासश् चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ८२९

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।
धर्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ८३०

उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू यो दग्धासि वना अग्ने पशुर्न यवसे ८३१

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक् संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिवि उप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ८३२

तवाहमग्न ऊतिभिर् मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ८३३

तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर ।
स क्षेपयत् स पोषयद् भुवद् वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ८३४

॥ ९९ ॥ (ऋ० ५ । १० । १-७) अनुष्टुप्, ८३८, ८४१ पङ्क्तिः ।

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ८३५

त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्य१मारुहत् क्राणा मित्रो न यज्ञियः ८३६

त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ८३७

ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश् चिद् येषां बृहत् सुकीर्तिर्बोधति त्मना ८३८

तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया ।
परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः ८३९

नू नो अग्न ऊतये सबाधसश् च रातये ।
अस्माकासश् च सूरयो विश्वा आशास् तरीषणि ८४०

त्वं नो अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान आ भर ।
होतर्विभ्वासहं रयिं स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे ८४१

॥ १०० ॥ (ऋ० ५ । ११ । १-६) (८४२-८६५) सुतंभर आत्रेयः । जगती।

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविर् अग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद् वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ८४२
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितम् अग्निं नरस् त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ८४३
असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर् मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस् ते केतुरभवद् दिवि श्रितः ८४४
अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुया अग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे ।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनो अग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ८४५
तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस् तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीर् आ पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ८४६
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितम् अन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत् त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ८४७

॥ १०१ ॥ (ऋ० ५ । १२ । १-६) त्रिष्टुप् ।

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।
घृतं न यज्ञ आस्येऽ सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ८४८
ऋतं चिकित्व ऋतमिच् चिकिद्धि ऋतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः ।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः ८४९
कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः ।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ८५०
के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ८५१
सखायस् ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर् ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ८५२
यस् ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ८५३

॥ १०२ ॥ (ऋ० ५ ।१३ । १-६) गायत्री ।

अर्चन्तस् त्वा हवामहे अर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त ऊतये ८५४
अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ८५५
अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद् दैव्यं जनम् ८५६
त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ८५७
त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ८५८
अग्ने नेमिरराँ इव देवाँस् त्वं परिभूरसि । आ राधश् चित्रमृञ्जसे ८५९

॥ १०३ ॥ (ऋ० ५ । १४ । १-६)

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ८६०
तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् । यजिष्ठं मानुषे जने ८६१
तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निं हव्याय वोळ्हवे ८६२
अग्निर्जातो अरोचत घ्नन् दस्यून् ज्योतिषा तमः । अविन्दद् गा अपः स्वः ८६३
अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ८६४
अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् । स्वाधीभिर्वचस्युभिः ८६५

॥ १०४ ॥ (ऋ० ५ । १५ । १-५) (८६६-८७०) धरुण आङ्गिरसः । त्रिष्टुप् ।

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ८६६
ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन् धरुणे सेदुषो नॄन् जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः ८६७
अंहोयुवस् तन्वस् तन्वते वि वयो महद् दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस् तुतुर्यात् सिंहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ८६८
मातेव यद् भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो जरसे यद् दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ८६९
वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तम् उरुं दोघं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ८७०

॥ १०५ ॥ (ऋ० ५। १६। १-५) [८७१-८८०] पूरुरात्रेयः। अनुष्टुप्, ८७५ पङ्क्तिः।

बृहद् वयो हि भानवे ऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर् मर्तासो दधिरे पुरः ८७१

स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।
वि हव्यमग्निरानुषग् भगो न वारमृण्वति ८७२

अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन् तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ८७३

अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद् यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ८७४

नू न एहि वार्यम् अग्ने गृणान आ भर ।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचा उतैधि पृत्सु नो वृधे ८७५

॥ १०६ ॥ (ऋ० ५। १७। १-५) अनुष्टुप्, ८८० पङ्क्तिः।

आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ८७६

अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन् मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ८७७

अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ८७८

अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्यो ऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ८७९

नू न इद्धि वार्यम् आसा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ८८०

॥ १०७ ॥ (ऋ० ५। १८। १-५)

[८८१-८८५] द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः। अनुष्टुप्, ८८५ पङ्क्तिः।

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ८८१

द्वितार्य मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक् स्तोता चित् ते अमर्त्य ८८२
तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन् नीयते ८८३
चित्रा वा येषु दीधितिर् आसन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ८८४
ये मे पञ्चाशतं ददुर् अश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत् कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ८८५

॥ १०८ ॥ (ऋ० ५ । १९ । १-५)
[८८६—८९०] वव्रिरात्रेयः । ८८६-८८७ गायत्री, ८८८-८८९ अनुष्टुप्, ८९० विराड्रूपा ।

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश् चिकेत । उपस्थे मातुर्वि चष्टे ८८६
जुहुरे वि चितयन्तो ऽनिमिषं नृम्णं पान्ति । आ दृळ्हां पुरं विविशुः ८८७
आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद् वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ८८८
प्रियं दुग्धं न काम्यम् अजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरो ऽदब्धः शश्वतो दभः ८८९
क्रीळन् नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन् धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ८९०

॥ १०९ ॥ (ऋ० ५ । २० । १-४) [८९१-८९४] प्रयस्वन्त आत्रेयाः । अनुष्टुप्, ८९४ पङ्क्तिः ।

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन् मन्यसे रयिम् ।
तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ८९१
ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरो ऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ८९२
होतारं त्वा वृणीमहे ऽग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ८९३
इत्था यथा त ऊतये सहसावन् दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ८९४

॥ ११० ॥ (ऋ० ५ । २१ ।१-४) [८९५-८९८] सस आत्रेयः । अनुष्टुप्, ८९८ पङ्क्तिः ।

मनुष्वत् त्वा नि धीमहि मनुष्वत् समिधीमहि । अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान् देवयते यज ८९५
त्वं हि मानुषे जने ऽग्ने सुप्रीत इध्यसे । स्रुचस् त्वा यन्त्यानुषक् सुजात सर्पिरासुते ८९६
त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत । सपर्यन्तस् त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ८९७
देवं वो देवयज्यया अग्निमीळीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदिहि ऋतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ८९८

॥ १११ ॥ (ऋ० ५ । २२ । १-४) [८९९-९०२] विश्वसामा आत्रेयः। अनुष्टुप्,९०२ पङ्क्ति ।

प्र विश्वसामन्नत्रिवद् अर्चा पावकशोचिषे । यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ८९९
न्यग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् । प्र यज्ञ एत्वानुषग् अद्या देवव्यचस्तमः ९००
चिकित्विन् मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये । वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ९०१
अग्ने चिकिद्ध्यस्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दंपते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ९०२

॥ ११२ ॥ (ऋ० ५ । २३ । १-४) [९०३-९०६] द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः।अनुष्टुप्,९०६ पङ्क्ति ।

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् । विश्वा यश् चर्षणीरभि आसा वाजेषु सासहत् ९०३
तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर । त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ९०४
विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः । होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ९०५
स हि ष्मा विश्वचर्षणिर् अभिमाति सहो दधे ।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन् नः शुक्र दीदिहि द्युमत् पावक दीदिहि ९०६

॥ ११३ ॥ (ऋ० ५ । २४ । १-४)
[९०७-९१०] बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च क्रमेण गोपायना लौपायना वा । द्विपदा विराट् ।

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ९०७
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ९०८
स नो बोधि श्रुधी हवम् उरुष्या णो अघायतः समस्मात् ९०९
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ९१०

॥ ११४ ॥ (ऋ० ५ । २५ । १-९) [९११-२२७] वसूयव आत्रेयाः । अनुष्टुप् ।

अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः ।
रासत् पुत्र ऋषूणाम् ऋतावा पर्षति द्विषः ९११

❀

स हि सत्यो यं पूर्वे चिद् देवासश् चिद् यमीधिरे ।
होतारं मन्द्रजिह्वमित् सुदीतिभिर्विभावसुम् ९१२

स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ९१३

अग्निर्देवेषु राजति अग्निर्मर्तेष्वाविशन् ।
अग्निर्नो हव्यवाहनो ऽग्निं धीभिः संपर्यत ९१४

अग्निस् तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत् पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ९१५

अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ९१६

यद् वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद् रयिस् त्वद् वाजा उदीरते ९१७

तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ९१८

एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ९१९

॥ ११५ ॥ (ऋ० ५ । २६ । १-८) गायत्री ।

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ९२०
तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ९२१
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ९२२
अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये । होतारं त्वा वृणीमहे ९२३
यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह । देवैरा सत्सि बर्हिषि ९२४
समिधानः सहस्रजिद् अग्ने धर्माणि पुष्यसि । देवानां दूत उक्थ्यः ९२५
न्य१ग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् । दधाता देवमृत्विजम् ९२६
प्र यज्ञ एत्वानुषग् अद्या देवव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदे ९२७

॥ ११६ ॥ (ऋ० ५ । २७ । १-५)

[९२८-९३२] त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्सः, अश्वमेधश्च भारताः राजानः (अत्रिर्भौम इति केचित्)। त्रिष्टुप्, ९३१-९३२ अनुष्टुप्।

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर् वैश्वानर त्र्यरुणश् चिकेत ९२८
यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानो ऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ९२९
एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः ।
यो मे गिरस् तुविजातस्य पूर्वीर् युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ९३०
यो म इति प्रवोचति अश्वमेधाय सूरये ।
ददद्दृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ९३१
यस्य मा परुषाः शतम् उद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ९३२

॥ ११७ ॥ (ऋ० ५ । २८ । १-६)

[९३३-९३८] विश्ववाराग्रेयी । ९३३, ९३५ त्रिष्टुप्, ९३४ जगती, ९३६ अनुष्टुप्, ९३७-९३८ गायत्री ।

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर् देवाँ ईळाना हविषा घृताची ९३३
समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष् कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वसि आतिथ्यमग्ने नि च धत्त इत् पुरः ९३४
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ९३५
समिद्धस्य प्रमहसो ऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ९३६
समिद्धो अग्न आहुत देवान् यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळसि ९३७
आ जुहोता दुवस्यत अग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं हव्यवाहनम् ९३८

॥ ११८ ॥ (ऋग्वेदस्य षष्ठं मण्डलं, सूक्तं १, मन्त्राः १-१३)

[९३९-१०९०] भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । त्रिष्टुप् ।

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता अस्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ९३९

अधा होता न्यसीदो यजीयान् इळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन् ९४०

वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यैस् त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ९४१

पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ९४२

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ९४३

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्वग्निर् होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसम् उप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ९४४

तं त्वा वयं सुध्यो नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ९४५

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ९४६

सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर् विश्वेत् स वामा दधते त्वोतः ९४७

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर् आ ते भद्रायां सुमतौ यतेम ९४८

आ यस् ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्यस् तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ९४९

नृवद् वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ९५०

पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन् वसुता ते अश्याम्।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्ति अग्ने वसु विधते राजनि त्वे ९५१

॥ ११९ ॥ (ऋ० ६ । २ । १-११) अनुष्टुप्, ९६२ शक्करी।

त्वं हि क्षैतवद् यशो ऽग्ने मित्रो न पत्यसे। त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ९५२
त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते। त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ९५३
सजोषस् त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते। यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ९५४
ऋधद् यस् ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते। ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ९५५
समिधा यस् त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत्। वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ९५६
त्वेषस् ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः। सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ९५७
अधा हि विक्ष्वीड्यो ऽसि प्रियो नो अतिथिः। रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ९५८
क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसे ऽग्ने वाजी न कृत्व्यः। परिज्मेव स्वधा गयो ऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ९५९
त्वं त्या चिदच्युता अग्ने पशुर्न यवसे। धामा ह यत् ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ९६०
वेषि ह्यध्वरीयताम् अग्ने होता दमे विशाम्। समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ९६१
अच्छा नो मित्रमहो देव देवान् अग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन् द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम, ता तरेम, तवावसा तरेम ९६२

॥ १२० ॥ (ऋ० ६ । ३ । १—८) त्रिष्टुप्।

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ९६३
ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर् ऋधद्वारायाग्नये ददाश।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर् नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ९६४
सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस् त आ धीः।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद् रण्वो वसतिर्वनेजाः ९६५
तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ९६६
स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ् छिशीत तेजोऽयसो न धाराम्।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर् वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ९६७

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄन् अमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ९६८
दिवो न यस्य विधतो नवीनोद् वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन् ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ९६९
धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर् विद्युन्न दविद्योत् स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ९७०

॥ १२१ ॥ (ऋ० ६ । ४ । १-८)

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानान् उशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ९७१
स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोर् अग्निर्वन्दारु वेद्यश् चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषु उषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः ९७२
द्यावो न यस्य पनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावको ऽश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ९७३
वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ९७४
नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून् ।
तुर्याम यस् त आदिशामरातीर् अत्यो न ह्रुतः पततः परिह्रुत् ९७५
आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैर् अग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत् परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ९७६
त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर् ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ९७७
नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः ।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ९७८

॥ १२२ ॥ (ऋ० ६ । ५ । १-७)

हुवे वः सूनुं सहसो युवानम् अद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ९७९

त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर् दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन् त्सं सौभगानि दधिरे पावके ९८०

त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम्।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग् जातवेदो वसूनि ९८१

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात्।
तमजरेभिर्वृषभिस् तव स्वैस् तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ९८२

यस् ते यज्ञेन समिधा य उक्थैर् अर्केभिः सूनो सहसो ददाशत्।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ९८३

स तत् कृधीषितस् तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान्।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस् तज् जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ९८४

अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम्।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तो ऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ९८५

॥ १२३ ॥ (ऋ० ६ । ६ । १-७)

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ९८६

स श्वितानस् तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ९८७

वि ते विष्वग् वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश् चरन्ति।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ९८८

ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः।
अध भ्रमस् त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ९८९

अध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेर् दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि ९९०

आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस् तोदस्य धृषता ततन्थ।
स बाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन् वनुषो नि जूर्व ९९१

स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम् ।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ९९२

॥ १२४ ॥ (ऋ० ६ । १० । १-७) त्रिष्टुप्; ९९९ द्विपदा विराट् ।

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ९९३
तमु द्युमः पुर्वणीक होतर् अग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ९९४
पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।
चित्राभिस् तमूतिभिश् चित्रशोचिर् व्रजस्य साता गोमतो दधाति ९९५
आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा ।
अध बहु चित् तम ऊर्म्यायास् तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ९९६
नू नश् चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश् च धेहि ।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान् त्सुवीर्येभिश् चाभि सन्ति जनान् ९९७
इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन् यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिम् अवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ९९८
वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः ९९९

॥ १२५ ॥ (ऋ० ६ । ११ । १-६) त्रिष्टुप् ।

यजस्व होतरिषितो यजीयान् अग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति ।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः १०००
त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुग् अन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु ।
पावकया जुह्वा३ वह्निरासा ऽग्ने यजस्व तन्वं१ तव स्वाम् १००१
धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ् जन्म गृणते यजध्यै ।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधु च्छन्दो भनति रेभ इष्टौ १००२
अदिद्युतत् स्वपाको विभावा ऽग्ने यजस्व रोदसी उरूची ।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः १००३

वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नौ अयामि स्रुग् घृतवती सुवृक्तिः ।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः १००४

दशस्या नः पुर्वणीक होतर् देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः १००५

॥ १२६ ॥ (ऋ० ६ । १२ । १-६)

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळ् अग्निस् तोदस्य रोदसी यजध्यै ।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात् सूर्यो न शोचिषा ततान १००६

आ यस्मिन् त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद् राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः ।
त्रिषधस्थस् ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै १००७

तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत् ।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्न् अमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु १००८

सास्माकेभिरेतरी न शूषैर् अग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
द्र्वन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वा उस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः १००९

अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत् तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।
सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो धवीयान् ऋणो न तायुरति धन्वा राट् १०१०

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः १०११

॥ १२७ ॥ (ऋ० ६ । १३ । १-६)

त्वद् विश्वा सुभग सौभगानि अग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् १०१२

त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्य असि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः १०१३

स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रम् अग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि १०१४

यस् ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर् यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः १०१५

ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीरा अग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये १०१६
वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः १०१७

॥ १२८ ॥ (ऋ० ६ । १४ । १-६) अनुष्टुप्, ९६२ शक्करी ।

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः । भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे १०१८
अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः । अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः १०१९
नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः । तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् १०२०
अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् । यस्य त्रसन्ति शवसः संचक्षि शत्रवो भिया १०२१
अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति । सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः १०२२
अच्छा नो मित्रमहो० (९६२)

॥ १२९ ॥ (ऋ० ६ । १५ । १-१९)

जगती, १०२५, १०३७ शक्वरी, १०२८ अतिशक्वरी, १०३९ अनुष्टुप्, १०४० बृहती;
१०३२-३६, १०३८, १०४१ त्रिष्टुप् ।

इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा ।
वेतीद् दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर् ज्योक् चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् १०२३
मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर् वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम् ।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे १०२४
स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्य अन्तरस्य तरुषः ।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः १०२५
द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरम् अग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर् हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे १०२६
पावकया यश् चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः १०२७
अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः १०२८

समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम्।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् १०२९
त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
देवासश् च मर्तासश् च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे १०३०
विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे।
यत् ते धीतिं सुमतिमावृणीमहे ऽध स्मा नस् त्रिवरूथः शिवो भव १०३१
तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चम् अविद्वांसो विदुष्टरं सपेम।
स यक्षद् विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् १०३२
तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस् त आनट् कवये शूर धीतिम्।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित् पृणक्षि शवसोत राया १०३३
त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री १०३४
अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा १०३५
अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा।
ऋता यजासि महिना वि यद् भूर् हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य १०३६
अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो, नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै।
अवा नो मघवन् वाजसातौ, अग्ने विश्वानि दुरिता तरेम, ता तरेम तवावसा तरेम १०३७
अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैर् ऊर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम्।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु १०३८
इममु त्यमथर्ववद् अग्निं मन्थन्ति वेधसः।
यमङ्कूयन्तमानयन्न् अमूरं श्याव्याभ्यः १०३९
जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये।
आ देवान् वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः १०४०
वयमु त्वा गृहपते जनानाम् अग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम्।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस् तेजसा सं शिशाधि १०४१

॥ १३० ॥ (ऋ० ६ । १६ । १—१८)

गायत्री; १०४२,१०४७ वर्धमाना; १०६८।१०८८-१०८९ अनुष्टुप्; १०८७ त्रिष्टुप्।

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने १०४२
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान् वक्षि यक्षि च १०४३
वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश् च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो १०४४
त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् । ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् १०४५
त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते । भरद्वाजाय दाशुषे १०४६
त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् । शृण्वन् विप्रस्य सुष्टुतिम् १०४७
त्वामग्ने स्वाध्यो३ मर्तासो देववीतये । यज्ञेषु देवमीळते १०४८
तव प्र यक्षि संदृशम् उत क्रतुं सुदानवः । विश्वे जुषन्त कामिनः १०४९
त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः । अग्ने यक्षि दिवो विशः १०५०
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि १०५१
तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य १०५२
स नः पृथु श्रवाय्यम् अच्छा देव विवासासि । बृहदग्ने सुवीर्यम् १०५३
त्वामग्ने पुष्करादधि अथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः १०५४
तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरंदरम् १०५५
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनंजयं रणेरणे १०५६
एह्यू षु ब्रवाणि ते ऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः १०५७
यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्रा सदः कृणवसे १०५८
नहि ते पूर्तमक्षिपद् भुवन्नेमानां वसो । अथा दुवो वनवसे १०५९
आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः । दिवोदासस्य सत्पतिः १०६०
स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन् महित्वना । वन्वन्नवातो अस्तृतः १०६१
स प्रत्नवन्नवीयसा अग्ने द्युम्नेन संयता । बृहत् ततन्थ भानुना १०६२
प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया । अर्च गाय च वेधसे १०६३
स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः । दूतश् च हव्यवाहनः १०६४
ता राजाना शुचिव्रता आदित्यान् मारुतं गणम् । वसो यक्षीह रोदसी १०६५
वस्वी ते अग्ने संदृष्टिर् इषयते मर्त्याय । ऊर्जो नपादमृतस्य १०६६
क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठो ऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः । मर्त आनाश सुवृक्तिम् १०६७

ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।
तरन्तो अर्यो अरातीर् वन्वन्तो अर्यो अरातीः १०६८

अग्निस् तिग्मेन शोचिषा यासद् विश्वं न्य१त्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् १०६९

सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे । जहि रक्षांसि सुक्रतो १०७०

त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः । रक्षा णो ब्रह्मणस् कवे १०७१

यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति । तस्मान्नः पाह्यंहसः १०७२

त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम् । मर्तो यो नो जिघांसति १०७३

भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य । अग्ने वरेण्यं वसु १०७४

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः १०७५

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे । सीदन्नृतस्य योनिमा १०७६

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद् दीदयद् दिवि १०७७

उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः १०७८

उप च्छायामिव घृणेर् अगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यऽसंदृशः १०७९

य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ १०८०

आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति । विशामग्निं स्वध्वरं १०८१

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ नि षीदतु १०८२

आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् १०८३

अग्ने युक्ष्वा हि ये तव अश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे १०८४

अच्छा नो याह्या वह अभि प्रयांसि वीतये । आ देवान् त्सोमपीतये १०८५

उदग्ने भारत द्युमद् अजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर १०८६

वीती यो देवं मर्तो दुवस्येद् अग्निमीळीताध्वरे हविष्मान् ।
होतारं सत्ययजं रोदस्योर् उत्तानहस्तो नमसा विवासेत् १०८७

आ ते अग्न ऋचा हविर् हृदा तष्टं भरामसि । ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत १०८८

अग्निं देवासो अग्रियम् इन्धते वृत्रहन्तमम् । येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना १०८९

॥ १३१ ॥ (ऋ० ६ । ४८ । १-१०)

(१०९०-१०९९) शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः) । प्रगाथः = १०९०, १०९२ बृहती; १०९१, १०९३ सतोबृहती, १०९४ बृहती, १०९५ महा सतोबृहती, १०९६ महा बृहती, १०९७ महा सतोबृहती, १०९८ बृहती, १०९९ सतोबृहती ।

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् १०९०

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर् दाशेम हव्यदातये ।
भुवद् वाजेष्वविता भुवद् वृध उत त्राता तनूनाम् १०९१

वृषा ह्यग्ने अजरो महान् विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच् छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि १०९२

महो देवान् यजसि यक्ष्यानुषक् तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व १०९३

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि १०९४

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।
तिरस् तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा १०९५

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत् पावक दीदिहि १०९६

विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति १०९७

त्वं नश् चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस् त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः १०९८

पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वम् अदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नो ऽदेवानि ह्वरांसि च १०९९

॥ १३२ ॥ (ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलं, सूक्तं १, मन्त्राः १-२५)

[११००-१२१३] वासिष्ठो मैत्रावरुणिः । विराट्, १११८-२४ त्रिष्टुप् ।

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर् हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ११००

तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन् त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ११०१

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नो ऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ११०२

प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः ।
यत्रा नरः समासते सुजाताः ११०३

दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् ।
न यं यावा तरति यातुमावान् ११०४

उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची ।
उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ११०५

विश्वा अग्नेऽप दहारातीर् येभिस्तपोभिरदहो जरूथम् ।
प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ११०६

आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक ।
उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ११०७

वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा ।
उतो न एभिः सुमना इह स्याः ११०८

इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः ।
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ११०९

मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा ।
प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य १११०

यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः ।
स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ११११

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात् पाहि धूर्तेररुषो अघायोः ।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ११११२

सेदग्निरग्नीँरत्यस्त्वन्यान् यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः ।
सहस्रपाथा अक्षरा समेति ११११३

सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात् ।
सुजातासः परि चरन्ति वीराः ११११४

अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् ।
परि यमेत्यध्वरेषु होता ११११५

त्वे अग्न आहवनानि भूरि ईशानास आ जुहुयाम नित्या ।
उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ११११६

इमो अग्ने वीततमानि हव्या ऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।
प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ११११७

मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै ।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः ११११८

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११११९

त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक् सुदीती सूनो सहसो दिदीहि ।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ् मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् १११२०

मा नो अग्ने दुर्भृतये सचा एषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः ।
मा ते अस्मान् दुर्मतयो भृमाच्चिद् देवस्य सूनो सहसो नशन्त ११,२१

स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवान् अमर्त्ये य आजुहोति हव्यम् ।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति १११२२

महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान् रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम् ।
येन वयं सहसावन् मदेम अविक्षितास आयुषा सुवीराः १११२३

नू मे ब्रह्माण्यग्न० (११११९)

॥ १३३ ॥ (ऋ० ७।३।१-१०) त्रिष्टुप्।

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम्।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ११२४
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद् व्यस्थात्।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिर् अध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ११२५
उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णो ऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ११२६
वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत् तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि ११२७
तमिद् दोषा तमुषसि यविष्ठम् अग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ११२८
सुसंदृक् ते स्वनीक प्रतीकं वि यद् रुक्मो न रोचस उपाके।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश् चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ११२९
यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश् च हव्यैः।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ११३०
या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत् सूरीञ् जरितॄञ् जातवेदः ११३१
निर्यत् पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात् स्वया कृपा तन्वा३ रोचमानः।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ११३२
एता नो अग्ने सौभगा दिदीहि अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११३३

॥ १३४ ॥ (ऋ० ७।४।१-१०)

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम्।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंषि अन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ११३४
स गृत्सो अग्निस् तरुणश् चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः।
सं यो वना युवते शुचिदन् भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ११३५

अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ११३६

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ११३७

आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्यग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश् च वनिनश् च गर्भं भूमिश् च विश्वधायसं बिभर्ति ११३८

ईशे ह्यग्निरमृतस्य भूरेर् ईशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ११३९

परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्ति अचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ११४०

नहि ग्रभायारणः सुशेवो ऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।
अधा चिदोकः पुनरित् स एति आ नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ११४१

त्वमग्ने वनुष्यतो० (१०३४)

एता नो अग्ने० (११३४)

॥ १३५ ॥ (ऋ० ७ । ७ । १-७)

प्र वो देवं चित् सहसानमग्निम् अश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान् त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ११४२

आ याह्यग्ने पथ्या३ अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः ।
आ सानु शुष्मैर्नदयन् पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग् वनानि ११४३

प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता ।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ११४४

सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम् ।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणे३ ऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ११४५

असादि वृतो वह्निराजगन्वान् अग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता ।
द्यौश् च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ११४६

एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस् तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ११४७
नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११४८

॥ १३६ ॥ (ऋ० ७।८।१-७)

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर् यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ११४९
अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ११५०
कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ११५१
प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ११५२
असन्नित् त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश् चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ११५३
इदं वचः शतसाः संसहस्रम् उदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ११५४
नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा० (११५०)

॥ १३७ ॥ (ऋ० ७।९।१-६)

अबोधि जार उषसामुपस्थाद् होता मन्द्रः कवितमः पावकः ।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर् हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ११५५
स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूनास् तिरस् तमो ददृशे राम्याणाम् ११५६
अमूरः कविरदितिर्विवस्वान् त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रे ऽपां गर्भः प्रस्व१ आ विवेश ११५७

ई॒ळेन्यो॑ वो॒ मनु॑षो यु॒गेषु॑ सम॒न॒गा अ॑शुचज् जा॒तवे॑दाः ।
सु॒सं॒दृशा॑ भा॒नुना॒ यो वि॒भाति॑ प्रति॒ गावः॑ समि॒धानं॑ बुधन्त ११५८

अग्ने॑ या॒हि दू॒त्यं१॑ मा रि॑षण्यो दे॒वाँ अच्छा॑ ब्रह्म॒कृता॑ ग॒णेन॑ ।
सर॑स्वतीं म॒रुतो॑ अ॒श्विना॒पो यक्षि॑ दे॒वान् र॑त्न॒धेया॑य॒ विश्वा॑न् ११५९

त्वाम॑ग्ने समि॒धा॒नो वसि॑ष्ठो॒ जरू॑थं ह॒न् यक्षि॒ रा॒ये पुर॑न्धिम् ।
पु॒रु॒णी॒था जा॑तवेदो जरस्व यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ११६०

॥ १३८ ॥ (ऋ० ७ । १० । १-५) ।

उ॒षो न जा॒रः पृ॒थु पाजो॑ अश्रे॒द् दवि॑द्युतत् दीद्य॒च्छोशु॑चानः ।
वृषा॒ ह॒रिः शु॒चि॒रा भा॑ति भा॒सा धियो॑ हिन्वा॒न उ॑श॒तीर॑जीगः ११६१

स्व१॒र्ण वस्तो॑रु॒षसा॑मरोचि य॒ज्ञं त॑न्वा॒ना उ॒शिजो॒ न मन्म॑ ।
अ॒ग्निर्जन्मा॑नि दे॒व आ वि वि॒द्वान् द्र॒वद् दू॒तो दे॑व॒यावा॒ वनि॑ष्ठः ११६२

अच्छा॒ गिरो॑ म॒तयो॑ देव॒यन्ती॑र् अ॒ग्निं य॑न्ति॒ द्रवि॑णं॒ भिक्ष॑माणाः ।
सु॒सं॒दृशं॑ सु॒प्रती॑कं॒ स्वञ्चं॑ हव्य॒वाह॑मर॒तिं मानु॑षाणाम् ११६३

इन्द्रं॑ नो अग्ने॒ वसु॑भिः स॒जोषा॑ रु॒द्रं रु॒द्रेभि॒रा व॑हा बृ॒हन्त॑म् ।
आ॒दि॒त्येभि॒रदि॑तिं वि॒श्वज॑न्यां॒ बृह॒स्पति॒मृक्व॑भिर्वि॒श्ववा॑रम् ११६४

म॒न्द्रं होता॑रमु॒शिजो॒ यवि॑ष्ठम् अ॒ग्निं विश॑ ईळते अध्व॒रेषु॑ ।
स हि क्षपा॑वाँ॒ अभ॑वद् र॒यी॒णाम् अत॑न्द्रो दू॒तो य॒जथा॑य दे॒वान् ११६५

॥ १३९ ॥ (ऋ० ७ । ११ । १-५)

म॒हाँ अ॑स्यध्व॒रस्य॑ प्रके॒तो न ऋ॒ते त्वद॒मृता॑ मादयन्ते ।
आ विश्वे॑भिः स॒रथं॑ याहि दे॒वैर् न्य॑ग्ने॒ होता॑ प्रथ॒मः स॑दे॒ह ११६६

त्वामी॑ळते अ॒जि॒रं दू॒त्या॑य ह॒विष्म॑न्तः॒ सद॒मिन् मानु॑षासः ।
यस्य॑ दे॒वैरास॑दो ब॒र्हिर॑ग्ने॒ ऽहा॑न्यस्मै सु॒दिना॑ भवन्ति ११६७

त्रिश् चि॑द॒क्तोः प्र चि॑कितु॒र्वसू॑नि॒ त्वे अ॒न्तर्दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ।
म॒नु॒ष्वद॑ग्न इ॒ह य॑क्षि दे॒वान् भवा॑ नो दू॒तो अ॑भिश॒स्तिपावा॑ ११६८

अ॒ग्निरी॑शे बृह॒तो अ॑ध्व॒रस्य॑ अ॒ग्निर्विश्व॑स्य ह॒विषः॑ कृ॒तस्य॑
क्रतुं॑ ह्य॑स्य॒ वस॑वो जु॒षन्त अथा॑ दे॒वा द॑धिरे हव्य॒वाह॑म् ११६९

अग्ने॑ वह ह॒विर॒द्याय॑ दे॒वान् इन्द्र॑ज्येष्ठास इ॒ह मा॑दयन्ताम् ।
इ॒मं य॒ज्ञं दि॒वि दे॒वेषु॑ धेहि यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ११७०

॥ १४० ॥ (ऋ० ७ । १२ । १-३)

अग॑न्म म॒हा नम॑सा॒ यवि॑ष्ठं यो दी॒दाय॒ समि॑द्धः॒ स्वे दु॑रो॒णे ।
चि॒त्रभा॑नुं॒ रोद॑सी अ॒न्तरु॒र्वी स्वा॑हुतं वि॒श्वत॑ः प्र॒त्यञ्च॑म् ११७१

स म॒ह्ना विश्वा॑ दुरि॒तानि॑ सा॒ह्वान् अ॒ग्निः ष्ट॑वे॒ दम॒ आ जा॒तवे॑दाः ।
स नो॑ रक्षिषद् दुरि॒ताद॑व॒द्याद् अ॒स्मान् गृ॑ण॒त उ॒त नो॑ म॒घोन॑ः ११७२

त्वं वरु॑ण उ॒त मि॒त्रो अ॑ग्ने॒ त्वां व॑र्धन्ति म॒तिभि॒र्वसि॑ष्ठाः ।
त्वे वसु॑ सुषण॒नानि॑ सन्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ११७३

॥ १४१ ॥ (ऋ० ७ । १४ । १-३) त्रिष्टुप्, ११७४ बृहती ।

स॒मिधा॑ जा॒तवे॑दसे दे॒वाय॑ दे॒वहू॑तिभिः ।
ह॒विर्भि॑ः शु॒क्रशो॑चिषे नम॒स्विनो॑ व॒यं दा॑शेमा॒ग्नये॑ ११७४

व॒यं ते॑ अग्ने स॒मिधा॑ विधेम व॒यं दा॑शेम सुष्टु॒ती य॑जत्र ।
व॒यं घृ॒तेना॑ध्वरस्य होतर् व॒यं दे॑व ह॒विषा॑ भद्रशोचे ११७५

आ नो॑ दे॒वेभि॒रुप॑ दे॒वहू॑ति॒म् अग्ने॑ या॒हि वष॑ट्कृतिं जुषा॒णः ।
तुभ्यं॑ दे॒वाय॒ दाश॑तः स्याम यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ११७६

॥ १४२ ॥ (ऋ० ७ । १५ । १-१५) गायत्री ।

उ॒प॒स॒द्या॑य मी॒ळ्हुष॑ आ॒स्ये॑ जुहुता ह॒विः । यो नो॒ नेदि॑ष्ठ॒माप्य॑म् ११७७
यः पञ्च॑ चर्ष॒णीर॒भि नि॑ष॒साद॒ दमे॑दमे । क॒विर्गृ॒हप॑ति॒र्युवा॑ ११७८
स नो॒ वेदो॑ अ॒मात्य॑म् अ॒ग्नी र॑क्षतु वि॒श्वत॑ः । उ॒तास्मान् पा॒त्वंह॑सः ११७९
नवं॒ नु स्तोम॑म॒ग्नये॑ दि॒वः श्ये॒नाय॑ जीजनम् । वस्वः॑ कु॒विद् व॒नाति॑ नः ११८०
स्पा॒र्हा यस्य॒ श्रियो॑ दृ॒शे र॒यिर्वी॒रव॑तो यथा । अग्ने॑ य॒ज्ञस्य॒ शोच॑तः ११८१
सेमां वे॑तु॒ वष॑ट्कृतिम् अ॒ग्निर्जु॑षत॒ नो॒ गिर॑ः । यजि॑ष्ठो ह॒व्यवा॒हन॑ः ११८२
नि त्वा॑ नक्ष्य विश्पते द्यु॒मन्तं॑ देव धीमहि । सु॒वीर॑मग्न आहुत ११८३
क्षप॑ उ॒स्रश्॑ च दीदिहि स्व॒ग्नय॑स् त्वया॑ व॒यम् । सु॒वीर॑स् त्वम॑स्म॒युः ११८४
उप॑ त्वा सा॒तये॒ नरो॒ विप्रा॑सो यन्ति धी॒तिभि॑ः । उपाक्ष॑रा सह॒स्रिणी॑ ११८५

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ११८६
स नो राधांस्या भर ईशानः सहसो यहो । भगश् च दातु वार्यम् ११८७
त्वमग्ने वीरवद् यशो देवश् च सविता भगः । दितिश् च दाति वार्यम् ११८८
अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ११८९
अधा मही न आयसि अनाधृष्टो नृपीतये । पूर्भवा शतभुजिः ११९०
त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः । दिवा नक्तमदाभ्य ११९१

॥ १४३ ॥ (ऋ० ७ । १६ । १-१२) प्रगाथः- (बृहती, सतोबृहती ।)

एना वो अग्निं नमसा ऊर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ११९२
स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ११९३
उदस्य शोचिरस्थाद् आजुह्वानस्य मीळ्हुषः ।
उद्धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ११९४
तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।
विश्वा सूनो सहसो मर्तभोजना रास्व तद् यत् त्वेमहे ११९५
त्वमग्ने गृहपतिस् त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् ११९६
कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश् च दक्षते ११९७
त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानाम् ऊर्वान् दयन्त गोनाम् ११९८
येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति ।
ताँस् त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ११९९
स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय १२००

ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा　कामेन श्रवसो महः ।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं　शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य　१२०१

देवो वो द्रविणोदाः　पूर्णां विवष्ट्यासिचम् ।
उद् वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वम्　आदिद् वो देव ओहते　१२०२

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं　वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यम्　अग्निर्जनाय दाशुषे　१२०३

॥ १४४ ॥ (ऋ० ७ । १७ । १–७) द्विपदा त्रिष्टुप् ।

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध　उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम्　१२०४
उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्ताम्　उत देवाँ उशत आ वहेह　१२०५
अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्　त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः　१२०६
स्वध्वरा करति जातवेदा　यक्षद् देवाँ अमृतान् पिप्रयच्च　१२०७
वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः　सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य　१२०८
त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं　देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम्　१२०९
ते ते देवाय दाशतः स्याम　महो नो रत्ना वि दध इयानः　१२१०

॥ १४५ ॥ (ऋ० ७ । ५० । २) जगती ।

यद् विजामन् परुषि वन्दनं भुवद्　अष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत् ।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो　मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः　१२११

॥ १४६ ॥ (ऋ० ७ । १०४ । १०, १४) त्रिष्टुप् ।

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने　यो अश्वानां यो गवां यस् तनूनाम् ।
रिपुः स्तेनः स्तेयकृद् दभ्रमेतु　नि ष हीयतां तन्वा३ तना च　१२१२

यदि वाहमनृतदेव आस　मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे　द्रोघवाचस् ते निर्ऋथं सचन्ताम्　१२१३

॥ १४७ ॥ (ऋग्वेदस्य अष्टमं मण्डलम् । सूक्तं ११, मन्त्राः १–१०)
(१२१४—१२२३) वत्सः काण्वः । गायत्री, १२१४ प्रतिष्ठा, १२१५ वर्धमाना, १२२३ त्रिष्टुप् ।

त्वमग्ने व्रतपा असि　देव आ मर्त्येष्वा　। त्वं यज्ञेष्वीड्यः　१२१४

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य । अग्ने रथीरध्वराणाम् १२१५
स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः । अदेवीरग्ने अरातीः १२१६
अन्ति चित् सन्तमह यज्ञं मर्तस्य रिपोः । नोप वेषि जातवेदः १२१७
मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे । विप्रासो जातवेदसः १२१८
विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये । अग्निं गीर्भिर्हवामहे १२१९
आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात् । अग्ने त्वां-कामया गिरा १२२०
पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे १२२१
समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् १२२२

प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश् च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्व अस्मभ्यं च सौभगमा यजस्व १२२३

॥ १४८ ॥ (ऋ० ८ । १९ । १—३३)

(१२२४—१२६९) सोभरिः काण्वः । प्रगाथः=(ककुप्+ सतोबृहती), १२५० द्विपदा विराट् ।

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमोहिरे १२२४

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषम् अग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् १२२५

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् १२२६

ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिम् अग्निं श्रेष्ठशोचिषम्
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपाम् आ सुम्नं यक्षते दिवि १२२७

यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये । यो नमसा स्वध्वरः १२२८

तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस् तस्य द्युम्नितमं यशः ।
न तमंहो देवकृतं कुतश् चन न मर्त्यकृतं नशत् १२२९

स्वग्नयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जां पते । सुवीरस् त्वमस्मयुः १२३०

प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियो ऽग्नी रथो न वेद्यः ।
त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस् त्वं राजा रयीणाम् १२३१

सो अद्धा दाश्वध्वरो ऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः । स धीभिरस्तु सनिता १२३२

यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते ।
सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम् १२३३

यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः। हव्या वा वेविषद् विषः १२३४

विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु ।
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः १२३५

यो अग्निं हव्यदातिभिर् नमोभिर्वा सुदक्षमाविवासति। गिरा वाजिरशोचिषम् १२३६

समिधा यो निशिती दाशददितिं धामभिरस्य मर्त्यः ।
विश्वेत् स धीभिः सुभगो जनाँ अति द्युम्नैरुद्र इव तारिषत् १२३७

तदग्ने द्युम्नमा भर यत् सासहत् सदने कं चिदत्रिणम्। मन्युं जनस्य दूढ्यः १२३८

येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा येन नासत्या भगः ।
वयं तत् ते शवसा गातुवित्तमा इन्द्रत्वोता विधेमहि १२३९

ते घेदग्ने स्वाध्यो३ ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसम्। विप्रासो देव सुक्रतुम् १२४०

त इद् वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।
त इद् वाजेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे १२४१

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः १२४२

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः १२४३

ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे। यजिष्ठं हव्यवाहनम् १२४४

तिग्मजम्भाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्नये ।
यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यम् अग्निर्घृतेभिराहुतः १२४५

यदीं घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च। असुर इव निर्णिजम् १२४६

यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगन्धिना ।
विवासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः १२४७

यदग्ने मर्त्यस् त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः। सहसः सूनवाहुत १२४८

न त्वा रासीयाभिशस्तये वसो न पापत्वाय सन्त्य ।
न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया १२४९

पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ एतु प्र णो हविः १२५०

तवाहमग्न ऊतिभिर् नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वसो । सदा देवस्य मर्त्यः १२५१

तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिर् अग्ने तव प्रशस्तिभिः ।
त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो मम अग्ने हर्षस्व दातवे १२५२

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस् तिरते वाजभर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमावरः १२५३

तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि १२५४

तमागन्म सोभरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे । सम्राजं त्रासदस्यवम् १२५५

यस्य ते अग्ने अन्ये अग्नय उपक्षितो वया इव ।
विपो न द्युम्ना नि युवे जनानां तव क्षत्राणि वर्धयन् १२५६

॥ १४९ ॥ (ऋ० ८ । १०३ । १-१३)

बृहती; १२६१ विराड्रूपा, १२६३, १२६५, १२६७, १२६९, सतोबृहती;
१२६४, १२६८ ककुप्, १२६६ ह्रसीयसी ।

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनम् अग्निं नक्षन्त नो गिरः १२५७

प्र दैवोदासो अग्निर् देवाँ अच्छा न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि १२५८

यस्माद् रेजन्त कृष्टयश् चर्कृत्यानि कृण्वतः ।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मना अग्निं धीभिः सपर्यत १२५९

प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस् ते वसो दाशत् ।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् १२६०

स दृळ्हे चिदभि तृणत्ति वाजम् अर्वता स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
त्वे देवत्रा सदा पुरूवसो विश्वा वामानि धीमहि १२६१

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्यग्नये १२६२

अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् १२६३

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये १२६४

आ वंसते मघवा वीरवद् यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयसी अच्छा वाजेभिरागमत् १२६५

प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुह्यासावातिथिम् ।
अग्निं रथानां यमम् १२६६

उदिता यो निदिता वेदिता वसु आ यज्ञियो ववर्तति ।
दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः १२६७

मा नो हृणीतामतिथिर् वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
यः सुहोता स्वध्वरः १२६८

मो ते रिषन्ये अच्छोक्तिभिर्वसो ऽग्ने केभिश् चिदेवैः ।
कीरिश् चिद्धि त्वामीट्टे दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः १२६९

॥ १५० ॥ (ऋ० ८ । २३ । १-३०)

(१२७०—१२९९) विश्वमना वैयश्वः । उष्णिक् ।

ईळिष्वा हि प्रतीव्यं यजस्व जातवेदसम् । चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् १२७०
दामानं विश्वचर्षणे ऽग्निं विश्वमनो गिरा । उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम् १२७१
येषामाबाध ऋग्मिय इषः पृक्षश् च निग्रभे । उपविदा वह्निर्विन्दते वसु १२७२
उदस्य शोचिरस्थाद् दीदियुषो व्यजरम् । तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः १२७३
उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा । अभिख्या भासा बृहता शुशुक्वनिः १२७४
अग्ने याहि सुशस्तिभिर् हव्या जुह्वान आनुषक् । यथा दूतो बभूथ हव्यवाहनः १२७५
अग्निं वः पूर्व्यं हुवे होतारं चर्षणीनाम् । तमया वाचा गृणे तमु वः स्तुषे १२७६
यज्ञेभिरद्भुतक्रतुं यं कृपा सूदयन्त इत् । मित्रं न जने सुधितमृतावनि १२७७

ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा । उपो एनं जुजुषुर्नमसस्पदे १२७८
अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः । होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः १२७९
अग्ने तव त्ये अजर इन्धानासो बृहद् भाः । अश्वा इव वृषणस् तविषीयवः १२८०
स त्वं न ऊर्जां पते रयिं रास्व सुवीर्यम् । प्राव नस् तोके तनये समत्स्वा १२८१
यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि । विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति १२८२
श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते । नि मायिनस् तपुषा रक्षसो दह १२८३
न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः । यो अग्नये ददाश हव्यदातिभिः १२८४
व्यश्वस् त्वा वसुविदम् उक्षण्युरप्रीणादृषिः । महो राये तमु त्वा समिधीमहि १२८५
उशना काव्यस् त्वा नि होतारमसादयत् । आयजिं त्वा मनवे जातवेदसम् १२८६
विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत । श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः १२८७
इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः । पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसम् १२८८
तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषम् । विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् १२८९
यो अस्मै हव्यदातिभिर् आहुतिं मर्तोऽविधत् । भूरि पोषं स धत्ते वीरवद् यशः १२९०
प्रथमं जातवेदसम् अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् । प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती १२९१
आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत् । मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे १२९२
नूनमर्च विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत् । ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये १२९३
अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् । विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते १२९४
महो विश्वाँ अभि षतोऽ ऽभि हव्यानि मानुषा । अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि १२९५
वंस्वा नो वार्या पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः । सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः १२९६
त्वं वरो सुषाम्णे ऽग्ने जनाय चोदय । सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते १२९७
त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः । महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि १२९८
अग्ने त्वं यशा असि आ मित्रावरुणा वह । ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा १२९९

॥ १५१ ॥ (ऋ० ८ । ३९ । १-१०) [१३००-१३०९] नाभाकः काण्वः । महापङ्क्तिः ।

अग्निमस्तोष्यृग्मियम् अग्निमीळा यजध्यै ।
अग्निर्देवाँ अनक्तु न उभे हि विदथे कविर् अन्तश्चरति दूत्यं१ नभन्तामन्यके समे १३००
न्यग्ने नव्यसा वचस् तनूषु शंसमेषाम् ।
न्यराती रराव्णां विश्वा अर्यो अरातीर् इतो युच्छन्त्वामुरो नभन्तामन्यके समे १३०१

अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं　घृतं न जुह्व आसनि ।
स देवेषु प्र चिकिद्धि　त्वं ह्यसि पूर्व्यः　शिवो दूतो विवस्वतो　नभन्तामन्यके समे　१३०२
तत्तदग्निर्वयो दधे　यथायथा कृपण्यति ।
ऊर्जाहुतिर्वसूनां　शं च योश् च मयो दधे　विश्वस्यै देवहूत्यै　नभन्तामन्यके समे　१३०३
स चिकेत सहीयसा　अग्निश् चित्रेण कर्मणा ।
स होता शश्वतीनां　दक्षिणाभिरभीवृत　इनोति च प्रतीव्यं१　नभन्तामन्यके समे　१३०४
अग्निर्जाता देवानामग्निर्　वेद मर्तानामपीच्यम् ।
अग्निः स द्रविणोदा　अग्निर्द्वारा व्यूर्णुते　स्वाहुतो नवीयसा　नभन्तामन्यके समे　१३०५
अग्निर्देवेषु संवसुः　स विक्षु यज्ञियास्वा ।
स मुदा काव्या पुरु　विश्वं भूमेव पुष्यति　देवो देवेषु यज्ञियो　नभन्तामन्यके समे　१३०६
यो अग्निः सप्तमानुषः　श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ।
तमागन्म त्रिपस्त्यं　मन्धातुर्दस्युहन्तमम्　अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यं　नभन्तामन्यके समे　१३०७
अग्निस् त्रीणि त्रिधातूनि　आ क्षेति विदथा कविः ।
स त्रीँरेकादशाँ इह　यक्षच्च पिप्रयच्च नो　विप्रो दूतः परिष्कृतो　नभन्तामन्यके समे　१३०८
त्वं नो अग्न आयुषु　त्वं देवेषु पूर्व्य　वस्व एक इरज्यसि ।
त्वामापः परिस्रुतः　परि यन्ति स्वसेतवो　नभन्तामन्यके समे　१३०९

॥ १५२ ॥ (ऋ० ८ । ४३ । १-३३) [१३१०-१३८८] विरूप आङ्गिरसः । गायत्री ।

इमे विप्रस्य वेधसो　ऽग्नेरस्तृतयज्वनः　। गिरः स्तोमास ईरते　१३१०
अस्मै ते प्रतिहर्यते　जातवेदो विचर्षणे　। अग्ने जनामि सुष्टुतिम्　१३११
आरोका इव घेदह　तिग्मा अग्ने तव त्विषः　। दद्भिर्वनानि बप्सति　१३१२
हरयो धूमकेतवो　वातजूता उप द्यवि　। यतन्ते वृथगग्नयः　१३१३
एते त्ये वृथगग्नय　इद्धासः समदृक्षत　। उषसामिव केतवः　१३१४
कृष्णा रजांसि पत्सुतः　प्रयाणे जातवेदसः　। अग्निर्यद् रोधति क्षमि　१३१५
धासिं कृण्वान ओषधीर्　बप्सदग्निर्न वायति　। पुनर्यन् तरुणीरपि　१३१६
जिह्वाभिरह नन्नमद्　अर्चिषा जञ्जणाभवन्　। अग्निर्वनेषु रोचते　१३१७
अप्स्वग्ने सधिष्टव　सौषधीरनु रुध्यसे　। गर्भे सन् जायसे पुनः　१३१८

उदग्ने तव तद् घृताद् अर्ची रोचत आहुतम् । निसानं जुह्वो३ मुखे १३१९
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये १३२०
उत त्वा नमसा वयं होतर्वरेण्यक्रतो । अग्ने समिद्भिरीमहे १३२१
उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुत । अङ्गिरस्वद्धवामहे १३२२
त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता । सखा सख्या समिध्यसे १३२३
स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम् । अग्ने वीरवतीमिषम् १३२४
अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत । इमं स्तोमं जुषस्व मे १३२५
उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते । गोष्ठं गाव इवाशत १३२६
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे १३२७
अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः । अद्मसद्याय हिन्विरे १३२८
तं त्वामज्मेषु वाजिनं तन्वाना अग्ने अध्वरम् । वह्निं होतारमीळते १३२९
पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे १३३०
तमीळिष्व य आहुतो ऽग्निर्विभ्राजते घृतैः । इमं नः शृणवद्धवम् १३३१
तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम् । अग्ने घ्नन्तमप द्विषः १३३२
विशां राजानमद्भुतम् अध्यक्षं धर्मणामिमम् । अग्निमीळे स उ श्रवत् १३३३
अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम् । सप्तिं न वाजयामसि १३३४
घ्नन् मृध्राण्यप द्विषो दहन् रक्षांसि विश्वहा । अग्ने तिग्मेन दीदिहि १३३५
यं त्वा जनास इन्धते मनुष्वदङ्गिरस्तम । अग्ने स बोधि मे वचः १३३६
यदग्ने दिविजा असि अप्सुजा वा सहस्कृत । तं त्वा गीर्भिर्हवामहे १३३७
तुभ्यं घेत् ते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । धासिं हिन्वन्त्यत्तवे १३३८
ते घेदग्ने स्वाध्यो ऽहा विश्वा नृचक्षसः । तरन्तः स्याम दुर्गहा १३३९
अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिषम् । हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे १३४०
स त्वमग्ने विभावसुः सृजन्त्सूर्यो न रश्मिभिः । शर्धन् तमांसि जिघ्नसे १३४१
तत् ते सहस्व ईमहे दात्रं यन्नोपदस्यति । त्वदग्ने वार्यं वसु १३४२

॥ १५३ ॥ (ऋ० ८ । ४४ । १-३०)

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन १३४३
अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना । प्रति सूक्तानि हर्य नः १३४४

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ आ सादयादिह १३४५
उत् ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते १३४६
उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत । अग्ने हव्या जुषस्व नः १३४७
मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् । अग्निमीळे स उ श्रवत् १३४८
प्रत्नं होतारमीड्यं जुष्टमग्निं कविक्रतुम् । अध्वराणामभिश्रियम् १३४९
जुषाणो अङ्गिरस्तम इमा हव्यान्यानुषक् । अग्ने यज्ञं नय ऋतुथा १३५०
समिधान उ सन्त्य शुक्रशोच इहा वह । चिकित्वान् दैव्यं जनम् १३५१
विप्रं होतारमद्रुहं धूमकेतुं विभावसुम् । यज्ञानां केतुमीमहे १३५२
अग्ने नि पाहि नस् त्वं प्रति ष्म देव रीषतः । भिन्धि द्वेषः सहस्कृत १३५३
अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस् तन्वं१ स्वाम् । कविर्विप्रेण वावृधे १३५४
ऊर्जो नपातमा हुवे ऽग्निं पावकशोचिषम् । अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे १३५५
स नो मित्रमहस् त्वम् अग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरा सत्सि बर्हिषि १३५६
यो अग्निं तन्वो३ दमे देवं मर्तः सपर्यति । तस्मा इद् दीदयद् वसु १३५७
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति १३५८
उदग्ने शुचयस् तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतींष्यर्चयः १३५९
ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः । स्तोता स्यां तव शर्मणि १३६०
त्वामग्ने मनीषिणस् त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः । त्वां वर्धन्तु नो गिरः १३६१
अदब्धस्य स्वधावतो दूतस्य रेभतः सदा । अग्नेः सख्यं वृणीमहे १३६२
अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः । शुची रोचत आहुतः १३६३
उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा । अग्ने सख्यस्य बोधि नः १३६४
यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् । स्युष्टे सत्या इहाशिषः १३६५
वसुर्वसुपतिर्हि कम् अस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि १३६६
अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेव सिन्धवः । गिरो वाश्रास ईरते १३६७
युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम् । अग्निं शुम्भामि मन्मभिः १३६८
यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळवे । स्तोमैरिषेमाग्नये १३६९
अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य । तस्मै पावक मृळय १३७०
धीरो ह्यस्यद्मसद् विप्रो न जागृविः सदा । अग्ने दीदयसि द्यवि १३७१

पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे । प्र ण आयुर्वसो तिर १३७२

॥१५४॥ (ऋ० ८ । ७५ । १-१६)

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः १३७३
उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः । श्रद् विश्वा वार्या कृधि १३७४
त्वं ह यद् यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः १३७५
अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् १३७६
तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः । नेदीयो यज्ञमङ्गिरः १३७७
तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् १३७८
कमु ष्विदस्य सेनया अग्नेरपाकचक्षसः । पणिं गोषु स्तरामहे १३७९
मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः । कृशं न हासुरघ्न्याः १३८०
मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः । ऊर्मिर्न नावमा वधीत् १३८१
नमस् ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय १३८२
कुवित् सु नो गविष्टये ऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस् कृधि १३८३
मा नो अस्मिन् महाधने परा वग्भारभृद् यथा । संवर्गं सं रयिं जय १३८४
अन्यमस्मद्भिया इयम् अग्ने सिषक्तु दुच्छुना । वर्धा नो अमवच्छवः १३८५
यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेदग्निर्वृधावति १३८६
परस्या अधि संवतो ऽवराँ अभ्या तर । यत्राहमस्मि ताँ अव १३८७
विद्मा हि ते पुरा वयम् अग्ने पितुर्यथावसः । अधा ते सुम्नमीमहे १३८८

॥१५५॥ (ऋ० ८।६०।१-२०) [१३८९-१४०८] भर्गः प्रागाथः ।
प्रगाथः= (बृहती+सतोबृहती)।

अग्न आ याह्यग्निभिर् होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे १३८९

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश् चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहे ऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् १३९०

अग्ने कविर्वेधा असि होता पावक यक्ष्यः ।
मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यो विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः १३९१

अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अजस्र वीतये ।
अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्हितः १३९२
त्वमित् सप्रथा असि अग्ने त्रातर्ऋतस् कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः १३९३
शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे महाँ असि ।
देवानां शर्मन् मम सन्तु सूरयः शत्रूषाहः स्वग्नयः १३९४
यथा चिद् वृद्धमतसम् अग्ने संजूर्वसि क्षमि ।
एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग् दुर्मन्मा कश् च वेनति १३९५
मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः ।
अस्रेधद्भिस् तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः १३९६
पाहि नो अग्न एकया पाह्यु1त द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस् तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो १३९७
पाहि विश्वस्माद् रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे १३९८
आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यं ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती स्वयशस्तरम् १३९९
येन वंसाम पृतनासु शर्धतस् तरन्तो अर्य आदिशः ।
स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसो जिन्वा धियो वसुविदः १४००
शिशानो वृषभो यथा अग्निः शृङ्गे दविध्वत् ।
तिग्मा अस्य हनवो न प्रतिधृषे सुजम्भः सहसो यहुः १४०१
नहि ते अग्ने वृषभ प्रतिधृषे जम्भासो यद् वितिष्ठसे ।
स त्वं नो होतः सुहुतं हविष्कृधि वंस्वा नो वार्या पुरु १४०२
शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तास इन्धते ।
अतन्द्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिद् देवेषु राजसि १४०३
सप्त होतारस् तमिदीळते त्वा अग्ने सुत्यजमह्रयम् ।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति १४०४

❀

अग्निमग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः ।
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा होतारं चर्षणीनाम् १४०५

केतेन शर्मन्त्सचते सुषामणि अग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।
इषण्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये १४०६

अग्ने जरितर्विश्पतिस् तेपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान् गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः १४०७

मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ।
परोगव्यूत्यनिरामप क्षुधम् अग्ने सेध रक्षस्विनः १४०८

॥ १५६ ॥ (ऋ० ८।७१।१-१५)

[१४०८—१४२३] सुदीति-पुरुमीह्ळावाङ्गिरसौ, तयोर्वान्यतरः । गायत्री, १४१८-१४२३ प्रगाथः=(बृहती, सतोबृहती) ।

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य १४०९
नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात । त्वमिदसि क्षपावान् १४१०
स नो विश्वेभिर्देवेभिर् ऊर्जो नपाद् भद्रशोचे । रयिं देहि विश्ववारम् १४११
न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः । यं त्रायसे दाश्वांसम् १४१२
यं त्वं विप्र मेधसातौ अग्ने हिनोषि धनाय । स तवोती गोषु गन्ता १४१३
त्वं रयिं पुरुवीरम् अग्ने दाशुषे मर्ताय । प्र णो नय वस्यो अच्छ १४१४
उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः । दुराध्ये३ मर्ताय १४१५
अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत । त्वमीशिषे वसूनाम् १४१६
स नो वस्व उप मासि ऊर्जो नपान्माहिनस्य । सखे वसो जरितृभ्यः १४१७

अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये १४१८

अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि १४१९

अग्निं वो देवयज्यया अग्निं प्रयत्यध्वरे ।
अग्निं धीषु प्रथममग्निमर्वति अग्निं क्षैत्राय साधसे १४२०

अग्निरिषां सख्ये ददातु न ईशे यो वार्याणाम्।
अग्निं तोके तनये शश्वदीमहे वसुं सन्तं तनूपाम् १४२१

अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम्।
अग्निं राये पुरुमीह्ल श्रुतं नरो ऽग्निं सुदीतये छर्दिः १४२२ ×

अग्निं द्वेषो योतवै नो गृणीमसि अग्निं शं योश् च दातवे।
विश्वासु विक्ष्ववितेव हव्यो भुवद् वस्तुर्ऋषूणाम् १४२३

॥ १५७ ॥ (ऋ० ८।७२।१-१८) [१४२४-१४४१] हर्यतः प्रागाथः। गायत्री।

हविष्कृणुध्वमा गमद् अध्वर्युर्वनते पुनः । विद्वाँ अस्य प्रशासनम् १४२४
नि तिग्ममभ्यंशुं सीदद्धोता मनावधि । जुषाणो अस्य सख्यम् १४२५
अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया । गृभ्णन्ति जिह्वया ससम् १४२६
जाम्यतीतपे धनुर् वयोधा अरुहद्वनम् । दृषदं जिह्वयावधीत् १४२७
चरन् वत्सो रुशन्निह निदातारं न विन्दते । वेति स्तोतव अम्ब्यम् १४२८
उतो न्वस्य यन्महद् अश्वावद् योजनं बृहत् । दामा रथस्य ददृशे १४२९
दुहन्ति सप्तैकाम् उप द्वा पञ्च सृजतः । तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे १४३०
आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत् । खेदया त्रिवृता दिवः १४३१
परि त्रिधातुरध्वरं जूर्णिरेति नवीयसी । मध्वा होतारो अञ्जते १४३२
सिञ्चन्ति नमसावतम् उच्चाचक्रं परिज्मानम् । नीचीनबारमक्षितम् १४३३
अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवतस्य विसर्जने १४३४
गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया १४३५
आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् १४३६
ते जानत स्वमोक्यं सं वत्सासो न मातृभिः । मिथो नसन्त जामिभिः १४३७
उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः १४३८
अधुक्षत् पिप्युषीमिषम् ऊर्जं सप्तपदीमरिः । सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः १४३९
सोमस्य मित्रावरुणा उदिता सूर आ ददे । तदातुरस्य भेषजम् १४४०
उतो न्वस्य यत् पदं हर्यतस्य निधान्यम् । परि द्यां जिह्वयातनत् १४४१

× अथर्व० २०।१०३।१

॥ १५८ ॥ (ऋ० ८ । ७४ । १-१२)

[१४४२-१४५३] गोपवन आत्रेयः । अनुष्टुब्मुखः प्रगाथः= (अनुष्टुप्+गायत्र्यौ) ।

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः १४४२
यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् । प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः १४४३
पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद् दिवि १४४४

आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
यस्य श्रुतर्वा बृहन्न् आर्क्षो अनीक एधते १४४५
अमृतं जातवेदसं तिरस् तमांसि दर्शतम् । घृताहवनमीड्यम् १४४६
सबाधो यं जना इमे३ ऽग्निं हव्येभिरीळते । जुह्वानासो यतस्रुचः १४४७

इयं ते नव्यसी मतिर् अग्ने अधाय्यस्मदा ।
मन्द्र सुजात सुक्रतो ऽमूर दस्मातिथे १४४८
सा ते अग्ने शंतमा चनिष्ठा भवतु प्रिया । तया वर्धस्व सुष्टुतः १४४९
सा द्युम्नैर्द्युम्निनी बृहद् उपोप श्रवसि श्रवः । दधीत वृत्रतूर्ये १४५०

अश्वमिद् गां रथप्रां त्वेषमिन्द्रं न सत्पतिम् ।
यस्य श्रवांसि तूर्वथ पन्यंपन्यं च कृष्टयः १४५१
यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः । स पावक श्रुधी हवम् १४५२
यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये । स बोधि वृत्रतूर्ये १४५३

॥ १५९ ॥ (ऋ० ८ । ८४ । १-९) (१४५४-१४६२) उशना काव्यः । गायत्री ।

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्निं रथं न वेद्यम् १४५४
कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अध द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः १४५५
त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄंः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना १४५६
कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे १४५७
दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः १४५८
अधा त्वं हि नस् करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः। वाजद्रविणसो गिरः १४५९
कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दंपते । गोषाता यस्य ते गिरः १४६०
तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् १४६१
क्षेति क्षेमेभिः साधुभिर् नकिर्यं घ्नन्ति हन्ति यः । अग्ने सुवीर एधते १४६२

॥ १६० ॥ (ऋ० ८ । १०२ । १ २२)

१४६३-१४८४ प्रयोगो भार्गवः, पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपति-यविष्ठौ सहसः पुत्रौ अन्यतरो वा ।

त्वम॑ग्ने बृ॒हद् वयो॒ दधा॑सि देव दा॒शुषे॑ । क॒विर्गृ॒हप॑ति॒र्युवा॑ १४६३
स न॒ ईळा॑नया स॒ह दे॒वाँ अ॑ग्ने दुव॒स्युवा॑ । चि॒कि॒द् वि॑भान॒वा व॑ह १४६४
त्वया॑ ह स्विद् यु॒जा व॒यं चोदि॑ष्ठेन यविष्ठ्य । अ॒भि ष्मो॒ वाज॑सातये १४६५
औ॒र्व॒भृ॒गु॒वच्छुचि॑म् अप्नवान॒वदा हु॑वे । अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् १४६६
हु॒वे वात॑स्वनं क॒विं प॒र्जन्य॑क्रन्द्यं सह॑ः । अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् १४६७
आ स॒वं स॑वि॒तुर्यथा॒ भग॑स्येव भु॒जिं हु॑वे । अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् १४६८
अ॒ग्निं वो॑ वृ॒धन्त॑म् अध्व॒राणां॑ पुरु॒तम॑म् । अच्छा॒ नप्त्रे॒ सह॑स्वते १४६९
अ॒यं यथा॑ न आ॒भुव॒त् त्वष्टा॑ रू॒पेव॒ तक्ष्या॑ । अ॒स्य क्रत्वा॒ यश॑स्वतः १४७०
अ॒यं विश्वा॑ अ॒भि श्रियो॒ ऽग्निर्दे॒वेषु॑ पत्यते । आ वाजै॒रुप॑ नो गमत् १४७१
विश्वे॑षामि॒ह स्तु॑हि॒ होतॄ॒णां य॒शस्त॑मम् । अ॒ग्निं य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यम् १४७२
शी॒रं पा॑व॒कशो॑चिषं॒ ज्येष्ठो॒ यो दमे॒ष्वा । दी॒दाय॑ दी॒र्घश्रु॑त्तमः १४७३
तमर्व॑न्तं॒ न सा॑न॒सिं गृ॑णी॒हि वि॑प्र शु॒ष्मिण॑म् । मि॒त्रं न या॑त॒यज्ज॑नम् १४७४
उप॑ त्वा जा॒मयो॒ गिरो॒ देदि॑शतीर्ह॒विष्कृत॑ः । वा॒योरनी॑के अस्थिरन् १४७५
यस्य॑ त्रि॒धात्ववृ॑तं ब॒र्हिस् त॒स्थावसं॑दिनम् । आप॑श् चि॒न्नि द॑धा प॒दम् १४७६
प॒दं दे॒वस्य॑ मी॒ळ्हुषो ऽना॑धृष्टाभिरू॒तिभि॑ः । भ॒द्रा सूर्य॑ इवोप॒दृक् १४७७
अग्ने॑ घृ॒तस्य॑ धी॒तिभि॑स् तेपा॒नो दे॑व शो॒चिषा॑ । आ दे॒वान् व॑क्षि॒ यक्षि॑ च १४७८
तं त्वा॑जनन्त मा॒तर॑ः क॒विं दे॒वासो॑ अङ्गिरः । ह॒व्य॒वाह॒मम॑र्त्यम् १४७९
प्रचे॑तसं त्वा क॒वे ऽग्ने॑ दू॒तं वरे॑ण्यम् । ह॒व्य॒वाहं॒ नि षे॑दिरे १४८०
न॒हि मे॒ अस्त्यघ्न्या॒ न स्वधि॑ति॒र्वन॑न्वति । अथै॒ता॒दृग् भ॑रामि ते १४८१
यद॑ग्ने॒ कानि॒ कानि॑ चि॒द् आ ते॒ दारू॑णि द॒ध्मसि॑ । ता जु॑षस्व यविष्ठ्य १४८२
यदत्त्यु॑प॒जिह्वि॑का॒ यद् व॒म्रो अ॑ति॒सर्प॑ति । सर्वं॒ तद॑स्तु ते घृ॒तम् १४८३
अ॒ग्निमिन्धा॑नो॒ मन॑सा॒ धियं॑ सचेत॒ मर्त्य॑ः । अ॒ग्निमी॑धे वि॒वस्व॑भिः १४८४

॥ १६१ ॥ ऋग्वेदस्य मण्डलं १० । सूक्तं १ । मन्त्राः १-७)

[१४८५—१५३३] त्रित आप्त्यः । त्रिष्टुप् ।

अग्रे॑ बृ॒हन्नु॒षसा॑मू॒र्ध्वो अ॑स्थान् निर्ज॒गन्वा॒न् तम॑सो॒ ज्योति॒षागा॑त् ।
अ॒ग्निर्भा॒नुना॒ रुश॑ता॒ स्वङ्ग॒ आ जा॒तो विश्वा॒ सद्मा॒न्यप्रा॑ः १४८५

स जातो गर्भो असि रोदस्योर् अग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून् प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद् गाः १४८६

विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ् जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र १४८७

अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीर् अन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता १४८८

होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्व१ग्निमतिथिं जनानाम् १४८९

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन् यक्षीह देवान् १४९०

आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठ अथा वह सहस्येह देवान् १४९१

॥ १६२ ॥ (ऋ० १० । २ । १-७)

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँऋतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस् तेभिरग्ने त्वं होतृणामस्यायजिष्ठः १४९२

वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा ।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन् १४९३

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान् त्स यजात् सेदु होता सो अध्वरान् त्स ऋतून् कल्पयाति १४९४

यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद् विश्वमा पृणाति विद्वान् येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति १४९५

यत् पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद् विजानन् यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति १४९६

विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान ।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः १४९७

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस् त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान।
पन्थामनु प्रविद्वान् पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि १४९८

॥ १६३ ॥ (ऋ० १० । ३ । १-७)

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि।
चिकिद् वि भाति भासा बृहता असिक्नीमेति रुशतीमपाजन् १४९९
कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज् जनयन् योषां बृहतः पितुर्जाम्।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति १५००
भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् १५०१
अस्य यामासो बृहतो न वग्नून् इन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य।
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश् चिकित्रे १५०२
स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः।
ज्येष्ठेभिर्यस् तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर् वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् १५०३
अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर् जेहमानस्य स्वनयन् नियुद्भिः।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा १५०४
स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः १५०५

॥ १६४ ॥ (ऋ० १० । ४ । १-७)

प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् १५०६
यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानाम् अन्तर्महाँश् चरसि रोचनेन १५०७
शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ् जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः १५०८
मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से।
शये वव्रिश् चरति जिह्वयादन् रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन् १५०९

कुचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः १५१०
तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः १५११
ब्रह्म च ते जातवेदो नमश् च इयं च गीः सदमिद् वर्धनी भूत् ।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस् तन्वोऽ अप्रयुच्छन् १५१२

॥ १६५ ॥ (ऋ० १० । ५ । १—७)

एकः समुद्रो धरुणो रयीणां अस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे ।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः १५१३
समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि १५१४
ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश् चित् तन्तुं मनसा वियन्तः १५१५
ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातम् इषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् १५१६
सप्त स्वसॄररुषीर्वावशानो विद्वान् मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन् वव्रिमविदत् पूषणस्य १५१७
सप्त मर्यादाः कवयस् ततक्षुस् तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ १५१८
असच्च सच्च परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश् च धेनुः १५१९

॥ १६६ ॥ (ऋ० १० । ६ । १-७)

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिर् अग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा १५२०
यो भानुभिर्विभावा विभाति अग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः ।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्यो ऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः १५२१

ईशे यो विश्वस्या देववीतेर् ईशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन् मना हवींष्यग्नौ अरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः १५२२

शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर् देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति ।
मन्द्रो होता स जुह्वा३ यजिष्ठः संमिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् १५२३

तमुस्रामिन्द्रं न रेजमानम् अग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् १५२४

सं यस्मिन् विश्वा वसूनि जग्मुर् वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः ।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व १५२५

अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ ।
तं ते देवासो अनु केतमायन्न् अधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः १५२६

॥ १६७ ॥ (ऋ० १० । ७ । १-७)

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैर् उरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः १५२७

इमा अग्ने मतयस् तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड् वसो दधानो मतिभिः सुजात १५२८

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिम् अग्निं भ्रातरं सदमित् सखायम् ।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्य दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य १५२९

सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर् यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर् द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु १५३०

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम् ।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त १५३१

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान् किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथायज ऋतुभिर्देव देवान् एवा यजस्व तन्वं सुजात १५३२

भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस् तन्वो३ अप्रयुच्छन् १५३३

॥ १६८ ॥ (ऋ० १० । ८ । १-६) [१५३४-१५३९] त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः ।

प्र केतुना बृहता यात्यग्निर् आ रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश् चिदन्ताँ उपमाँ उदानळ् अपामुपस्थे महिषो ववर्ध १५३४

मुमोद गर्भो वृषभः ककुद्मान् असेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत् ।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्त् स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति १५३५

आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त १५३६

उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन् मित्रं तन्वे३ स्वायै १५३७

भुवश् चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि ।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः १५३८

भुवो यज्ञस्य रजसश् च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् १५३९

॥१६९॥ (ऋ० १०।११। १-९) [१५४०-१५५६] हविर्धान आङ्गिः। जगती, १५४६-४८ त्रिष्टुप् ।

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ ऋतून् १५४०

रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति १५४१

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वती उषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुम् अग्निं होतारं विदथाय जीजनन् १५४२

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत १५४३

सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं१ वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः १५४४

उदीरय पितरा जार आ भगम् इयक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस् तविष्यते असुरो वेपते मती १५४५

यस् ते अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैर् आ स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् १५४६

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् १५४७

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः १५४८

॥ १७० ॥ (ऋ० १० । १२ । १-९) त्रिष्टुप् ।

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेन अभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन् सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् १५४९

देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश् चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् १५५०

स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोर् अतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर् दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः १५५१

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् द्यावोऽसुनीतिमयन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् १५५२

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्य अति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश् चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ् छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति १५५३

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्तु अग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् १५५४

यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा १५५५

यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्ति अपीच्ये३ न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त् सविता देवो वरुणाय वोचत् १५५६

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे० । (१५४८)

॥ १७१ ॥ (ऋ० १० । १६ । १—१४)

[१५५७-१५७०] दमनो यामायनः । त्रिष्टुप्, १५६७-७० अनुष्टुप् ।

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात् पितृभ्यः १५५७

शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात् पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेताम् अथा देवानां वशनीर्भवाति १५५८

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितम् ओषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः १५५९

अजो भागस् तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस् तपतु तं ते अर्चिः ।
यास् ते शिवास् तन्वो जातवेदस् ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् १५६०

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस् त आहुतश् चरति स्वधाभिः ।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः १५६१

यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश् च यो ब्राह्मणाँ आविवेश १५६२

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्ष्यन् पर्यङ्खयाते १५६३

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
एष यश् चमसो देवपानस् तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ते १५६४

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् १५६५

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश वो गृहम् इमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स घर्ममिन्वात् परमे सधस्थे १५६६

यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन् यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश् च पितृभ्य आ १५६७

उशन्तस् त्वा नि धीमहि उशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे १५६८

यं त्वमग्ने समदहस् तमु निर्वापया पुनः।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा १५६९

शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति।
मण्डूक्या३ सु सं गम इमं स्व१ग्निं हर्षय १५७०

॥ १७२ ॥ (ऋ० १० । २० । १-१०)

[१५७१-१५८८] विमद ऐन्द्रः, प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्रः। गायत्री, १५७१ एकपदा विराट् (एष मन्त्रः शान्त्यर्थः), १५७२ अनुष्टुप्, १५७९ विराट्, १५८० त्रिष्टुप्।

भद्रं नो अपि वातय मनः १५७१

अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम्।
यस्य धर्मन् त्स्व१रेनीः सपर्यन्ति मातुरूधः १५७२

यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति । भ्राजते श्रेणिदन् १५७३
अर्यो विशां गातुरेति प्र यदानड् दिवो अन्तान्। कविरभ्रं दीद्यानः १५७४
जुषद्धव्या मानुषस्य ऊर्ध्वस् तस्थावृभ्वा यज्ञे । मिन्वन् त्सद्म पुर एति १५७५
स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति । अग्निं देवा वाशीमन्तम् १५७६
यज्ञासाहं दुव इषे ऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य । अद्रेः सूनुमायुमाहुः १५७७
नरो ये के चास्मदा विश्वेत् ते वाम आ स्युः । अग्निं हविषा वर्धन्तः १५७८

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान्।
हिरण्यरूपं जनिता जजान १५७९

एवा ते अग्ने विमदो मनीषाम् ऊर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः।
गिर आ वक्षत् सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः १५८०

॥ १७३ ॥ (ऋ० १० । २१ । १-८) आस्तारपंक्तिः (८+८+१२+१२)।

आग्निं न स्ववृक्तिभिर् होतारं त्वा वृणीमहे।
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे १५८१

त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः।
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे १५८२

त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव।
कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे १५८३

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे १५८४

अग्निर्जातो अथर्वणा विदद् विश्वानि काव्या ।
भुवद् दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे १५८५

त्वां यज्ञेष्वीळतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे ।
त्वं वसूनि काम्या वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे १५८६

त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिरे ।
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे १५८७

अग्ने शुक्रेण शोचिषा उरु प्रथयसे बृहत्
अभिक्रन्दन् वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे १५८८

॥ १७४ ॥ (ऋ० १० । ४५ । १-१२) [१५८९-१६१०] वत्सप्रिर्भालन्दनः । त्रिष्टुप् ।

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निर् अस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रम् इन्धान एनं जरते स्वाधीः १५८९

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद् विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ १५९०

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्व१न्तर् नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसम् अपामुपस्थे महिषा अवर्धन् १५९१

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यद् आ रोदसी भानुना भात्यन्तः १५९२

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः १५९३

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीळुं चिदद्रिमभिनत् परायञ् जना यदग्निमयजन्त पञ्च १५९४

उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रद् उच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् १५९५

दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः।
अग्निरमृतो अभवद् वयोभिर् यदेनं द्यौर्जनयत् सुरेताः १५९६

यस् ते अद्य कृणवद् भद्रशोचे ऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छ अभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ १५९७

आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थउक्थ आ भज शस्यमाने।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्य् उज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः १५९८

त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून् विश्वा वसु दधिरे वार्याणि।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः १५९९

अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् १६००

॥ १७५ ॥ (ऋ० १० । ४६ । १-१०)

प्र होता जातो महान् नभोविन् नृषद्वा सीददपामुपस्थे।
दधिर्यो धायि स ते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः १६०१

इमं विधन्तो अपां सधस्थे पशुं न नष्टं पदैरनु ग्मन्।
गुहा चतन्तमुशिजो नमोभिर् इच्छन्तो धीरा भृगवोऽविन्दन् १६०२

इमं त्रितो भूर्यविन्ददिच्छन् वैभूवसो मूर्धन्यघ्न्यायाः।
स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभिर्युवा भवति रोचनस्य १६०३

मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्वराणाम्।
विशामकृण्वन्नरतिं पावकं हव्यवाहं दधतो मानुषेषु १६०४

प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरा अमूरं पुरां दर्माणम्।
नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर् हिरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम् १६०५

नि पस्त्यासु त्रितः स्तभूयन् परिवीतो योनौ सीददन्तः।
अतः संगृभ्या विशां दमूना विधर्मणायन्त्रैरीयते नॄन् १६०६

अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः १६०७

प्र जिह्वया भरते वेपो अग्निः प्र वयुनानि चेतसा पृथिव्याः ।
तमायवः शुचयन्तं पावकं मन्द्रं होतारं दधिरे यजिष्ठम् १६०८

द्यावा यमग्निं पृथिवी जनिष्टाम् आपस् त्वष्टा भृगवो यं सहोभिः ।
ईळेन्यं प्रथमं मातरिश्वा देवास् ततक्षुर्मनवे यजत्रम् १६०९

यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुषासो यजत्रम् ।
स यामन्नग्ने स्तुवते वयो धाः प्र देवयन् यशसः सं हि पूर्वीः १६१०

॥ १९६ ॥ (ऋ० १० । ५१ । १, ३, ५, ७, ९,) [१६११-१६२४] देवाः ।

महत् तदुल्बं स्थविरं तदासीद् येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः ।
विश्वा अपश्यद् बहुधा ते अग्ने जातवेदस् तन्वो देव एकः १६११

ऐच्छाम त्वा बहुधा जातवेदः प्रविष्टमग्ने अप्स्वोषधीषु ।
तं त्वा यमो अचिकेच्चित्रभानो दशान्तरुष्यादतिरोचमानम् १६१२

एहि मनुर्देवयुर्यज्ञकामो ऽरंकृत्या तमसि क्षेष्यग्ने ।
सुगान् पथः कृणुहि देवयानान् वह हव्यानि सुमनस्यमानः १६१३

कुर्मस् त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात १६१४

तव प्रयाजा अनुयाजाश् च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः ।
तवाग्ने यज्ञो३ऽयमस्तु सर्वस् तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश् चतस्रः १६१५

॥ १९७ ॥ (ऋ० १० । ५२ । १-३, ६-११) जगती. १६१६-१८, १६२१ त्रिष्टुप् ।

यमैच्छाम मनसा सो३ ऽयमागाद् यज्ञस्य विद्वान् परुषश् चिकित्वान् ।
स नो यक्षद् देवताता यजीयान् नि हि पत्सदन्तरः पूर्वो अस्मत् १६१६

अराधि होता निषदा यजीयान् अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यत् ।
यजामहै यज्ञियान् हन्त देवाँ ईळामहा ईड्याँ आज्येन १६१७

साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।
स आयुरागात् सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य १६१८

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् १६१९

अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् १६२०

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वम् उत् तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत् तरेमाभि वाजान् १६२१

त्वष्टा माया वेदपसामपस्तमो बिभ्रत् पात्रा देवपानानि शंतमा।
शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चादेतशो ब्रह्मणस्पतिः १६२२

सतो नूनं कवयः सं शिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ।
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्वमानशुः १६२३

गर्भे योषामदधुर्वत्समासनि अपीच्येन मनसोत जिह्वया।
स विश्वाहा सुमना योग्या अभि सिषासनिर्वनते कार इज्जितिम् १६२४

॥१७८॥ (ऋ० १०।६९।१-१२) [१६२५-१६३६] सुमित्रा वाध्र्यश्वः। त्रिष्टुप्, १६२५-२६ जगती।

भद्रा अग्नेर्वध्र्यश्वस्य संदृशो वामी प्रणीतिः सुरणा उपेतयः।
यदीं सुमित्रा विशो अग्र इन्धते घृतेनाहुतो जरते दविद्युतत् १६२५

घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम्।
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्य इव रोचते सर्पिरासुतिः १६२६

यत् ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः।
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इह श्रवो धाः १६२७

यं त्वा पूर्वमीळितो वध्र्यश्वः समीधे अग्ने स इदं जुषस्व।
स नः स्तिपा उत भवा तनूपा दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे १६२८

भवा द्युम्नी वाध्र्यश्वोत गोपा मा त्वा तारीदभिमातिर्जनानाम्।
शूर इव धृष्णुश्च्यवनः सुमित्रः प्र नु वोचं वाध्र्यश्वस्य नाम १६२९

समज्र्या पर्वत्या३ वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ।
शूर इव धृष्णुश् च्यवनो जनानां त्वमग्ने पृतनायूँरभि ष्याः १६३०

दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा।
द्युमान् द्युमत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेषु दीदयो देवयत्सु १६३१

*

त्वे धेनुः सुदुघा जातवेदो ऽसश्चतेव समना सबर्धुक् ।
त्वं नृभिर्दक्षिणावद्भिरग्ने सुमित्रेभिरिध्यसे देवयद्भिः १६३२

देवाश् चित् ते अमृता जातवेदो महिमानं वाध्र्यश्व प्र वोचन् ।
यत् संपृच्छं मानुषीर्विश आयन् त्वं नृभिरजयस् त्वावृधेभिः १६३३

पितेव पुत्रमबिभरुपस्थे त्वामग्ने वध्र्यश्वः सपर्यन् ।
जुषाणो अस्य समिधं यविष्ठ उत पूर्वाँ अवनोर्व्राधतश् चित् १६३४

शश्वदग्निर्वध्र्यश्वस्य शत्रून् नृभिर्जिगाय सुतसोमवद्भिः ।
समनं चिददहश् चित्रभानो ऽव व्राधन्तमभिनद् वृधश् चित् १६३५

अयमग्निर्वध्र्यश्वस्य वृत्रहा सनकात् प्रेद्धो नमसोपवाक्यः ।
स नो अजामीँरुत वा विजामीन् अभि तिष्ठ शर्धतो वाध्र्यश्व १६३६

॥ १७०. ॥ (ऋ० १० । ७९ । १-७)

[१६३७--१६५०] अग्निः सौचीको, वैश्वानरो वा, (सप्तिर्वाजंभरो वा)। त्रिष्टुप् ।

अपश्यमस्य महतो महित्वम् अमर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।
नाना हनू विभृते सं भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः १६३७

गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि ।
अत्राण्यस्मै पड्भिः सं भरन्ति उत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु १६३८

प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन् कुमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः ।
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः १६३९

तद् वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अत्ति ।
नाहं देवस्य मर्त्यश् चिकेत अग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः १६४०

यो अस्मा अन्नं तृष्वाऽऽदधाति आज्यैर्घृतैर्जुहोति पुष्यति ।
तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षे ऽग्ने विश्वतः प्रत्यङ्ङसि त्वम् १६४१

किं देवेषु त्यज एनश् चकर्थ अग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् ।
अक्रीळन् क्रीळन् हरिरत्तवेऽदन् वि पर्वशश् चकर्त गामिवासिः १६४२

विषूचो अश्वान् युयुजे वनेजा ऋजीतिभी रशनाभिर्गृभीतान् ।
चक्षदे मित्रो वसुभिः सुजातः समानृधे पर्वभिर्वावृधानः १६४३

॥ १८० ॥ (ऋ० १०। ८०। १-७)

अग्निः सप्तिं वाजंभरं ददात्य् अग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिःष्ठाम्।
अग्नी रोदसी वि चरत् समञ्जन्न् अग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरंधिम् १६४४
अग्नेरप्नसः समिदस्तु भद्रा ऽग्निर्मही रोदसी आ विवेश।
अग्निरेकं चोदयत् समत्स्व् अग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि १६४५
अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावा ऽग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम्।
अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्तर् अग्निर्नृमेधं प्रजयासृजत् सम् १६४६
अग्निर्दाद् द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रा सनोति।
अग्निर्दिवि हव्यमा ततान ऽग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा १६४७
अग्निमुक्थैर्ऋषयो वि ह्वयन्ते ऽग्निं नरो यामनि बाधितासः।
अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तो ऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम् १६४८
अग्निं विश ईळते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः।
अग्निर्गान्धर्वीं पथ्यामृतस्या ऽग्नेर्गव्यूतिर्घृत आ निषत्ता १६४९
अग्नये ब्रह्म ऋभवस् ततक्षुर् अग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम्।
अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठा ऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व १६५०

॥ १८१ ॥ (ऋ० १०। ९१। १-१५) [१६५१-१६६५] अरुणो वैतहव्यः। जगती, १६६५ त्रिष्टुप्।

सं जागृवद्भिर्जरमाण इध्यते दमे दमूना इषयन्निळस्पदे।
विश्वस्य होता हविषो वरेण्यो विभुर्विभावा सुषखा सखीयते १६५१
स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहेगृहे वनेवने शिश्रिये तक्ववीरिव।
जनंजनं जन्यो नाति मन्यते विश आ क्षेति विश्योऽ विशंविशम् १६५२
सुदक्षो दक्षैः क्रतुनासि सुक्रतुर् अग्ने कविः काव्येनासि विश्ववित्।
वसुर्वसूनां क्षयसि त्वमेक इद् द्यावा च यानि पृथिवी च पुष्यतः १६५३
प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियम् इळायास्पदे घृतवन्तमासदः।
आ ते चिकित्र उषसामिवेतयो ऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः १६५४
तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतश् चित्राश् चिकित्र उषसां न केतवः।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये १६५५

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित् समानं वनिनश् च वीरुधो ऽन्तर्वतीश् च सुवते च विश्वहा १६५६
वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद् वितिष्ठसे ।
आ ते यतन्ते रथ्योऽ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजराणि धक्षतः १६५७
मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनम् अग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।
तमिदर्भे हविष्या समानमित् तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत् १६५८
त्वामिदत्र वृणते त्वायवो होतारमग्ने विदथेषु वेधसः ।
यद् देवयन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्मन्तो मनवो वृक्तबर्हिषः १६५९
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश् च नो दमे १६६०
यस् तुभ्यमग्ने अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति ।
तस्य होता भवसि यासि दूत्यम् उप ब्रूषे यजस्यध्वरीयसि १६६१
इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ ऋचो गिरः सुष्टुतयः समग्मत ।
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद् वर्धनो यासु चाकनत् १६६२
इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शृणोतु नः ।
भूया अन्तरा हृद्यस्य निस्पृशे जायेव पत्य उशती सुवासाः १६६३
यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये १६६४
अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् १६६५

॥ १८२ ॥ (ऋ० १० । ११५ । १-९)

[१६६६-१६७४] उपस्तुतो वार्ष्टिहव्यः । जगती, १६७३ त्रिष्टुप्, १६७४ शक्वरी ।

चित्र इच्छिशोस् तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावप्येति धातवे ।
अनूधा यदि जीजनदधा च नु ववक्ष सद्यो महि दूत्यं चरन् १६६६
अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना दता ।
अभिप्रमुरा जुह्वा स्वध्वर इनो न प्रोथमानो यवसे वृषा १६६७

तं वो विं न द्रुषदं देवमन्धंस इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम् ।
आसा वह्निं न शोचिषां विरप्शिनं महिव्रतं न सरजन्तमध्वंनः १६६८

वि यस्यं ते ज्रयसानस्यांजर धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युताः ।
आ रण्वासो युयुधयो न सत्वनं त्रितं नंशन्त प्र शिषन्त इष्टये १६६९

स इदग्निः कण्वंतमः कण्वंसखा अर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
अग्निः पातु गृणतो अग्निः सूरीन् अग्निर्ददातु तेषामवो नः १६७०

वाजिन्तंमाय सह्यसे सुपित्र्य तृषु च्यवानो अनु जातवेदसे ।
अनुद्रे चिद् यो धृषता वरं सते महिन्तंमाय धन्वनेदविष्यते १६७१

एवाग्निर्मर्तैः सह सूरिभिर् वसुः ष्टवे सहंसः सूनरो नृभिः ।
मित्रासो न ये सुधिता ऋतायवो द्यावो न द्युम्नैरभि सन्ति मानुषान् १६७२

ऊर्जो नपात् सहसावन्निति त्वा उपस्तुतस्यं वन्दते वृषा वाक् ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः १६७३

इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतास ऋषयोऽवोचन् ।
तांश्च पाहि गृणतश् च सूरीन् वषड्वषळित्यूर्ध्वासो अनक्षन्
नमो नम इत्यूर्ध्वासो अनक्षन् १६७४

॥ १८३ ॥ (ऋ० १० । १२२ । १-८) [१६७५-१६८२] चित्रमहा वासिष्ठः । जगती, १६७५-१६७९ त्रिष्टुप् ।

वसुं न चित्रमहसं गृणीषे वामं शेवमतिथिमद्विषेण्यम् ।
स रासते शुरुधो विश्वधायसो ऽग्निर्होता गृहपतिः सुवीर्यम् १६७५

जुषाणो अग्ने प्रति हर्य मे वचो विश्वानि विद्वान् वयुनानि सुक्रतो ।
घृतनिर्णिग् ब्रह्मणे गातुमेरय तव देवा अजनयन्ननु व्रतम् १६७६

सप्त धामानि परियन्नमर्त्यो दाशद् दाशुषे सुकृते मामहस्व ।
सुवीरेण रयिणाग्ने स्वाभुवा यस् त आनट् समिधा तं जुषस्व १६७७

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं हविष्मन्त ईळते सप्त वाजिनम् ।
शृण्वन्तमग्निं घृतपृष्ठमुक्षणं पृणन्तं देवं पृणते सुवीर्यम् १६७८

त्वं दूतः प्रथमो वरेण्यः स हूयमानो अमृताय मत्स्व ।
त्वां मर्जयन् मरुतो दाशुषो गृहे त्वां स्तोमेभिर्भृगवो वि रुरुचुः १६७९

इषं दुहन् त्सुदुघां विश्वधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुक्रतो ।
अग्ने घृतस्नुस् त्रिर्ऋतानि दीद्यद् वर्तिर्यज्ञं परियन् त्सुक्रतूयसे १६८०

त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु दूतं कृण्वाना अयजन्त मानुषाः ।
त्वां देवा महयाय्याय वावृधुर् आज्यमग्ने निमृजन्तो अध्वरे १६८१

नि त्वा वसिष्ठा अह्वन्त वाजिनं गृणन्तो अग्ने विदथेषु वेधसः ।
रायस्पोषं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १६८२

॥ १८४ ॥ (ऋ० १० । १२४ । १) [१६८३] अग्निः । त्रिष्टुप् ।

इमं नो अग्न उप यज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ।
असो हव्यवाळुत नः पुरोगा ज्योगेव दीर्घं तम आशयिष्ठाः १६८३

॥ १८५ ॥ (ऋ० १० । १४० । १-६)

[१६८४-१६८९] अग्निः पावकः । सतोबृहती, १६८४-८६ विष्टारपङ्क्तिः, १६८९ उपरिष्टाज्ज्योतिः ।

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं१ दधासि दाशुषे कवे १६८४

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे १६८५

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर् मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश् चित्रोतयो वामजाताः १६८६

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिर् अस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् १६८७

इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् १६८८

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतम् अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा १६८९

॥ १८६ ॥ (ऋ० १० । १४२ । १—८)

[१६९०—१६९७] १६९०-१६९१ जरिता, १६९२-९३ द्रोणः, १६९४-९५ सारिसृक्कः, १६९६-९७ स्तम्बमित्रः (एते शार्ङ्गाः)। त्रिष्टुप्, १६९०-९१ जगती, १६९६—९७ अनुष्टुप्।

अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि सहसः सूनो नह्यन्यदस्त्याप्यम्।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि १६९०

प्रवत् ते अग्ने जनिमा पितूयतः साचीव विश्वा भुवना न्यृञ्जसे।
प्र सप्तयः प्र संनिषन्त नो धियः पुरश् चरन्ति पशुपा इव त्मना १६९१

उत वा उ परि वृणक्षि बप्सद् बहोरग्न उलपस्य स्वधावः।
उत खिल्या उर्वराणां भवन्ति मा ते हेतिं तविषीं चुक्रुधाम १६९२

यदुद्वतो निवतो यासि बप्सत् पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना।
यदा ते वातो अनुवाति शोचिर् वप्तेव श्मश्रु वपसि प्र भूम १६९३

प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र एकं नियानं बहवो रथासः।
बाहू यदग्ने अनुमर्मृजानो न्यङ्ङुत्तानामन्वेषि भूमिम् १६९४

उत् ते शुष्मा जिहतामुत् ते अर्चिर् उत् ते अग्ने शशमानस्य वाजाः।
उच्छ्वञ्चस्व नि नम वर्धमान आ त्वाद्य विश्वे वसवः सदन्तु १६९५

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम्।
अन्यं कृणुष्वेतः पन्थां तेन याहि वशाँ अनु १६९६

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः।
ह्रदाश् च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे १६९७

॥ १८७ ॥ (ऋ० १० । १५० । १-५)

[१६९८-१७०२] मृळीको वासिष्ठः। बृहती, १७०१-२ उपरिष्टाज्ज्योतिः, १७०१ जगती वा।

समिद्धश् चित् समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन।
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिर्न आ गहि मृळीकाय न आ गहि १६९८

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि।
मर्तासस् त्वा समिधान हवामहे मृळीकाय हवामहे १६९९

त्वामु जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।
अग्ने देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान् मृळीकाय प्रियव्रतान् १७००
अग्निर्देवो देवानामभवत् पुरोहितो ऽग्निं मनुष्या ऋषयः समीधिरे ।
अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृळीकं धनसातये १७०१
अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे ।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः १७०२

॥ १८८ ॥ (ऋ० १० । १५६ । १-५) [१७०३-१७०७] केतुराग्नेयः । गायत्री ।

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु । तेन जेष्म धनंधनम् १७०३
यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या । तां नो हिन्व मघत्तये १७०४
आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् । अङ्धि खं वर्तया पणिम् १७०५
अग्ने नक्षत्रमजरम् आ सूर्यं रोहयो दिवि । दधज् ज्योतिर्जनेभ्यः १७०६
अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् । बोधा स्तोत्रे वयो दधत् १७०७

॥१८९॥ (ऋ० १०।१७६।२-४) [१७०८-१७१०] सूनुरार्भवः । गायत्री, १७०९-१० अनुष्टुप् ।

प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् । हव्या नो वक्षदानुषक् १७०८
अयमु ष्य प्र देवयुर् होता यज्ञाय नीयते ।
रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ् चेतति त्मना १७०९
अयमग्निरुरुष्यति अमृतादिव जन्मनः ।
सहसश् चित् सहीयान् देवो जीवातवे कृतः १७१०

॥ १९० ॥ (ऋ० १० । १८७ । १-५) [१७११—१७१५] वत्स आग्नेयः । गायत्री ।

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् । स नः पर्षदति द्विषः १७११
यः परस्याः परावतस् तिरो धन्वातिरोचते । स नः पर्षदति द्विषः १७१२
यो रक्षांसि निजूर्वति वृषा शुक्रेण शोचिषा । स नः पर्षदति द्विषः १७१३
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पर्षदति द्विषः १७१४
यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत । स नः पर्षदति द्विषः १७१५

॥ १९१ ॥ (ऋ० १ । १९१ । १) [१७१६] संवनन आङ्गिरसः । अनुष्टुप् ।

संसमिद् युवसे वृषन्न् अग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर १७१६

वैश्वानरोऽग्निः।

॥ १९२ ॥ (ऋ० १ । ५९ । १-७) [१७१७-१७२३] नोधा गौतमः । त्रिष्टुप् ।

वया इदग्ने अग्नयस् ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद् ययन्थ १७१७

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय १७१८

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा १७१९

बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्योऽ न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर् वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः १७२०

दिवश् चित् ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश् चकर्थ १७२१

प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत् १७२२

वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर् भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् १७२३

॥ १९३ ॥ (ऋ० १ । ९८ । १-३) [१७२४-१७२६] कुत्स आङ्गिरसः ।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण १७२४

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् १७२५

वैश्वानर तव तत् सत्यमस्तु अस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १७२६

॥ १९४ ॥ (ऋ० ३।२।१-१५) [१७२७-१७४१] विश्वामित्रो गाथिनः । जगती ।

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।
द्विता होतारं मनुषश् च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति १७२७

स रोचयज् जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत् पुत्र ईड्यः ।
हव्यवाळग्निरजरश् चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः १७२८

क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महाम् अत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे १७२९

आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम् ।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुम् अग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा १७३०

अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् १७३१

पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्यम् उपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः १७३२

आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज् जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परि णीयते कविर् अत्यो न वाजसातये चनोहितः १७३३

नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिर् अग्निर्देवानामभवत् पुरोहितः १७३४

तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनो ऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः १७३५

विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन् त्स्वधितिं न तेजसे ।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत् स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् १७३६

स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान् वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे १७३७

वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद् दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज् जनयज् जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः १७३८

ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य१म् आ यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम् ।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे १७३९
शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् १७४०
मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद् राय ईमहे १७४१

॥ १९५ ॥ (ऋ० ३ । ३ । १-११)

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यति अथा धर्माणि सनता न दूदुषत् १७४२
अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर् देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः १७४३
केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधि संदधुर्गिरस् तस्मिन् त्सुम्नानि यजमान आ चके १७४४
पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः १७४५
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः १७४६
अग्निर्देवेभिर्मनुषश् च जन्तुभिस् तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर् जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः १७४७
अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुनि ऊर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः ।
वयांसि जिन्व बृहतश् च जागृव उशिग् देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् १७४८
विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे १७४९
विभावा देवः सुरणः परि क्षितीर् अग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयम् उप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः १७५०
वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना १७५१

वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहद् अरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायत अग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा १७५२

॥ १९६ ॥ (ऋ० ३ । २६ । १-३, ७-८) जगती, [१७५६-१७५७] त्रिष्टुप् ।

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे १७५३

तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् १७५४

अश्वो न क्रन्दञ् जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे ।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः १७५५

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस् त्रिधातू रजसो विमानो ऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम १७५६

त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्यर्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिर् आदिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् १७५७

॥ १९७ ॥ (ऋ० ४ । ५ । १—१५) [१७५८-१७७२] वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद् भाः ।
अनूनेन बृहता वक्षथेन उप स्तभायदुपमिन्न रोधः १७५८

मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान् ।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः १७५९

साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस् तुविष्मान् ।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वान् अग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् १७६०

प्र ताँ अग्निर्बभसत् तिग्मजम्भस् तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि १७६१

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् १७६२

इदं मे अग्ने कियते पावक अमिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद् दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु १७६३

तमिन्न्वे३व समना समानम् अभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।
ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेर् अग्रे रुप आरुपितं जबारु १७६४
प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग् वदन्ति ।
यदुस्रियाणामप वारिव व्रन् पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः १७६५
इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद् रघुयद् विवेद १७६६
अध द्युतानः पित्रोः सचासा ऽमनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।
मातुष् पदे परमे अन्ति षद् गोर् वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा १७६७
ऋतं वोचे नमसा पृच्छ्यमानस् तवाशसा जातवेदो यदीदम् ।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत् पृथिव्याम् १७६८
किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश् चिकित्वान् ।
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म १७६९
का मर्यादा वयुना कद्ध वामम् अच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः १७७०
अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः ।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्ति अनायुधास आसता सचन्ताम् १७७१
अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच ।
रुशद् वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् १७७२

॥ १९८ ॥ (ऋ० ६ । ७ । १-७)

[१७७३-१७९३] भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । त्रिष्टुप्, १७७८—१७७९ जगती ।

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानाम् आसन्ना पात्रं जनयन्त देवाः १७७३
नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः १७७४
त्वद् विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद् वीरासो अभिमातिषाहः ।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन् त्स्पृहयाय्याणि १७७५

त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत् पित्रोरदीदेः १७७६
वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।
यज् जायमानः पित्रोरुपस्थे ऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् १७७७
वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना ।
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः १७७८
वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर् वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथे ऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता १७७९

॥ १९९ ॥ (ऋ० ६ । ८ । १—७) जगती, १७८६ त्रिष्टुप् ।

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये १७८०
स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर् वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् १७८१
व्यस्तभ्नाद् रोदसी मित्रो अद्भुतो ऽन्तर्वावदकृणोज् ज्योतिषा तमः ।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद् वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् १७८२
अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद् विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः १७८३
युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्यो ऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा १७८४
अस्माकमग्ने मघवत्सु धारय अनामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः १७८५
अदब्धेभिस् तव गोपाभिरिष्टे ऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः १७८६

॥ २०० ॥ (६ । ९ । १-७) त्रिष्टुप् ।

अहश् च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजा अवातिरज् ज्योतिषाग्निस् तमांसि १७८७

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित् पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा १७८८
स इत् तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश् चरन् परो अन्येन पश्यन् १७८९
अयं होता प्रथमः पश्यतेमम् इदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तो ऽमर्त्यस् तन्वा३ वर्धमानः १७९०
ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु १७९१
वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर् वी३दं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश् चरति दूरआधीः किं स्विद् वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये १७९२
विश्वे देवा अनमस्यन् भियानास् त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।
वैश्वानरोऽवतूतये नो ऽमर्त्योऽवतूतये नः १७९३

॥ २०१ ॥ (ऋ० ७ । ५ । १-९) [१७९४-१८१२] वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः ।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः १७९४
पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण १७९५
त्वद् भिया विश आयन्नसिक्नीर् असमना जहतीर्भोजनानि ।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः १७९६
तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर् वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त ।
त्वं भासा रोदसी आ ततन्थ अजस्रेण शोचिषा शोशुचानः १७९७
त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः ।
पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नाम् १७९८
त्वे असुर्यं१ वसवो न्यृण्वन् क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त ।
त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय १७९९

स जायमानः परमे व्योमन् वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः ।
त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्न् अपत्याय जातवेदो दशस्यन् १८००
तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय १८०१
तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः १८०२

॥ २०२ ॥ (ऋ० ७ । ६ । १-७)

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि १८०३
कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर् हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।
पुरंदरस्य गीर्भिरा विवासे ऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि १८०४
न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्रप्र तान् दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश् चकारापराँ अयज्यून् १८०५
यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश् चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषे ऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् १८०६
यो देह्यो३ अनमयद् वधस्नैर् यो अर्यपत्नीरुषसश् चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर् विशश् चक्रे बलिहृतः सहोभिः १८०७
यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस् तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योर् आग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् १८०८
आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्माद् आग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः १८०९

॥ २०३ ॥ (ऋ० ७ । १३ । १-३)

प्राग्नये विश्वशुचे धियंधे ऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् १८१०
त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा १८११

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून् न गोपा इर्यः परिज्मा ।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १८१२

३ रक्षोहाऽग्निः।

॥ २०४ ॥ (ऋ० ४।४।१-१५) [१८१३-१८२७] वामदेवो गौतमः। त्रिष्टुप्।

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानो ऽस्तासि विध्य रक्षसस् तपिष्ठैः १८१३
तव भ्रमास आशुया पतन्ति अनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गान् असंदितो वि सृज विष्वगुल्काः १८१४
प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्ति अग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् १८१५
उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्य१मित्राँ ओषतात् तिग्महेते ।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् १८१६
ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मद् आविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् १८१७
स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् १८१८
सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर् यस् त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः १८१९
अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक् सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास् त्वा सुरथा मर्जयेम अस्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् १८२०
इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन् दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून् ।
क्रीळन्तस् त्वा सुमनसः सपेम अभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् १८२१
यस् त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस् त आतिथ्यमानुषग् जुजोषत् १८२२

महो रुजामि बन्धुता वचोभिस् तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश् चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः १८२३

अस्वप्नजस् तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्य अग्ने तव नः पान्त्वमूर १८२४

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान् त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद् रिपवो नाह देभुः १८२५

त्वया वयं सधन्य१स् त्वोतास् तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यताते ऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण १८२६

अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्य१स्मान् द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् १८२७

॥ २०५ ॥ (ऋ० १० । ८७ । १-२५)

[१८२८—१८५२] पायुर्भारद्वाजः । त्रिष्टुप्, १८४९-५२ अनुष्टुप् ।

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् १८२८

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानान् उप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यपि धत्स्वासन् १८२९

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रा हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याहि राजञ् जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् १८३०

यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भङ्ध्येषाम् १८३१

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् क्रविष्णुर्वि चिनोतु वृक्णम् १८३२

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस् तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
यद् वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः १८३३

उतालब्धं स्पृणुहि जातवेद आलेभानादृष्टिभिर्यातुधानात् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः १८३४

इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यो यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश् चक्षुषे रन्धयैनम् १८३५

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः १८३६

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च १८३७

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एतु ऋतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ् जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि वृङ्धि १८३८

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजं येन पश्यसि यातुधानम् ।
अथर्ववज् ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष १८३९

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद् वाचस् तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या३ जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् १८४०

परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ् छृणीहि परासुतृपो अभि शोशुचानः १८४१

पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु तृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः १८४२

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च १८४३

संवत्सरीणं पय उस्रियायास् तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस् तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मन् १८४४

विषं गवां यातुधानाः पिबन्तु आ वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः ।
परैनान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् १८४५

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान् क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः १८४६

त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तात् त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति ते ते अजरासस् तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु १८४७

पश्चात् पुरस्तादधरादुदक्तात् कविः काव्येन परि पाहि राजन् ।
सखे सखायमजरो जरिम्णे ऽग्ने मर्ताँ अमर्त्यस् त्वं नः १८४८

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् १८४९*

विषेण भङ्गुरावतः प्रति ष्म रक्षसो दह ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिर्ऋष्टिभिः १८५०

प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधाना किमीदिना ।
सं त्वा शिशामि जागृहि अदब्धं विप्र मन्मभिः १८५१

प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम् १८५२

॥ २०६ ॥ (ऋ० १० । ११८ । १—९) [१८५३-१८६१] उरुक्षय आमहीयवः । गायत्री ।

अग्ने हंसि न्यत्रिणं दीद्यन् मर्त्येष्वा । स्वे क्षये शुचिव्रत १८५३
उत् तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे । यत् त्वा स्रुचः समस्थिरन् १८५४
स आहुतो वि रोचते ऽग्निरीळेन्यो गिरा । स्रुचा प्रतीकमज्यते १८५५
घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः । रोचमानो विभावसुः १८५६
जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन । तं त्वा हवन्त मर्त्याः १८५७
तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत । अदाभ्यं गृहपतिम् १८५८
अदाभ्येन शोचिषा ऽग्ने रक्षस् त्वं दह । गोपा ऋतस्य दीदिहि १८५९
स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः । उरुक्षयेषु दीद्यत् १८६०
तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे । यजिष्ठं मानुषे जने १८६१

४ जातवेदा अग्निः ।

॥२०७॥ (ऋ० १ । ९९ । १) [१८६२] कश्यपो मारीचः । त्रिष्टुप् ।

जातवेदसे सुनवाम सोमम् अरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः १८६२

---

* अथर्व ८ । ३१ (७८) ॥ १ ॥ (ऋषि – अथर्वा) पाठभेदः- 'भंगुरावतः' ।

॥ २०८ ॥ (ऋ० १० । १८८ । १-३) [१८६३-१८६५] श्येन आग्नेयः। गायत्री।

प्र नूनं जातवेदसम् अश्वं हिनोत वाजिनम्। इदं नो बर्हिरासदे १८६३
अस्य प्र जातवेदसो विप्रवीरस्य मीळ्हुषः । महीमियर्मि सुष्टुतिम् १८६४
या रुचो जातवेदसो देवत्रा हव्यवाहनीः । ताभिर्नो यज्ञमिन्वतु १८६५

॥ २०९ ॥ (अथर्ववेदे कां० ७। ८४ (८९) । १) [१८६६] भृगुः। जगती।

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह।
विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गयम् १८६६

५ घर्मोऽग्निः।

॥ २१० ॥ (ऋ० १। ११२। १ द्वितीयः पादः) [१८६७] कुत्स आंगिरसः।

अग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये। १८६७

६ औषसोऽग्निः।

॥ २११ ॥ (ऋ० १। ९५। १-११) [१८६८-१८७८] कुत्स आंगिरसः। त्रिष्टुप्।

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः १८६८
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भम् अतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम्।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति १८६९
त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानाम् ऋतून् प्रशासद् वि दधावनुष्ठु १८७०
क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातॄर्जनयत स्वधाभिः।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थात् महान् कविर्निश् चरति स्वधावान् १८७१
आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते १८७२

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूव अञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः १८७३

उद् यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मात् नवा मातृभ्यो वसना जहाति १८७४

त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत् संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव १८७५

उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धो ऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् १८७६

धन्वन् त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते ऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु १८७७

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम् अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १८७८

७ द्रविणोदा अग्निः ।

॥ २१२ ॥ (ऋ० १ । ९६ । १-९) [१८७९—१८८७] कुत्स आंगिरसः । त्रिष्टुप् ।

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश् च मित्रं धिषणा च साधन् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १८७९

स पूर्वया निविदा कव्यतायोर् इमाः प्रजा अजनयन् मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश् च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १८८०

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १८८१

स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर् विदद् गातुं तनयाय स्वर्वित् ।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १८८२

नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १८८३

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १८८४
नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश् च गोपां भवतश् च भूरेर् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् १८८५
द्रविणोदा द्रविणसस् तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः १८८६
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो० । (१८७८)

७ शुचिरग्निः।

॥ २१३ ॥ (ऋ० १ । ९७ । १-८) (१८८७-१८९४) कुत्स आङ्गिरसः । गायत्री ।

अप नः शोशुचदघम् अग्ने शुशुग्ध्या रयिम् ।
अप नः शोशुचदघम् १८८७
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे ।
अप नः शोशुचदघम् १८८८
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश् च सूरयः ।
अप नः शोशुचदघम् १८८९
प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् ।
अप नः शोशुचदघम् १८९०
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः ।
अप नः शोशुचदघम् १८९१
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् १८९२
द्विषो नो विश्वतोमुख अति नावेव पारय ।
अप नः शोशुचदघम् १८९३
स नः सिन्धुमिव नावया अति पर्षा स्वस्तये ।
अप नः शोशुचदघम् १८९४

८ अग्निरापो गावश्च ।

अग्निः सूर्यो वा आपो वा गावो वा घृतस्तुतिर्वा ।

॥ २१४ ॥ (ऋ० ४।५८। १-११) [१८९५-१९०५] वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप्, १९०५ जगती ।

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारद् उपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः १८९५

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्य अस्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद् गौर एतत् १८९६

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश १८९७

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः १८९८

एता अर्षन्ति हृद्यात् समुद्रात् शतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् १८९९

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः १९००

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः १९०१

अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः १९०२

कन्या इव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत् पवन्ते १९०३

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिम् अस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते १९०४*

धामन् ते विश्वं भुवनमधि श्रितम् अन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस् तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् १९०५

---

* अथर्व० ७। ८२ (८७)। १, पाठभेदः- मधुमत् पवन्ताम् ।

१ आप्रीसूक्तानि ।

॥ २१५ ॥ (ऋ० १ । १३ । १-१२)

१९०६-१७ मेधातिथिः काण्वः । आप्रीसूक्तं= [क्रमेण-१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळः, ५ बर्हिः, ६ देवीः द्वारः, ७ उषासानक्ता, ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसा, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, १० त्वष्टा, ११ वनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः] । गायत्री ।

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च १९०६
मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये १९०७
नराशंसमिह प्रियम् अस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् १९०८
अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह । असि होता मनुर्हितः १९०९
स्तृणीत बर्हिरानुषग् घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् १९१०
वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे १९११
नक्तोषासा सुपेशसा अस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बर्हिरासदे १९१२
ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् १९१३
इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः १९१४
इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः १९१५
अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः । प्र दातुरस्तु चेतनम् १९१६
स्वाहा यज्ञं कृणोतन इन्द्राय यज्वनो गृहे । तत्र देवाँ उप ह्वये १९१७

॥ २१६ ॥ (ऋ० १ । १४२ । १-१३)

१९१८-३० दीर्घतमा औचथ्यः । आप्रीसूक्तं= [क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळः ५ बर्हिः, ६ देवीः द्वारः, ७ उषासानक्ता, ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, १० त्वष्टा, ११ वनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः, १३ इन्द्रः] । अनुष्टुप् ।

समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे । तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे १९१८
घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् । यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः १९१९
शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति । नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः १९२०
ईळितो अग्न आ वह इन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । इयं हि त्वा मतिर्मम अच्छा सुजिह्व वच्यते १९२१
स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे । वृञ्जे देवव्यचस्तमम् इन्द्राय शर्म सप्रथः १९२२
वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः । पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः १९२३

*

आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा । यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् १९२४
मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् १९२५
शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती । इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः १९२६
तन्नस् तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना । त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः १९२७
अवसृजन्नुप त्मना देवान् यक्षि वनस्पते । अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः १९२८
पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे । स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन १९२९
स्वाहाकृतान्या गहि उप हव्यानि वीतये । इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे १९३०

॥ २१७ ॥ (ऋ० १ । १८८ । १-११)

१९३१-४१ अगस्त्यो मैत्रावरुणः । आप्रीसूक्तं= (क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यो होतारौ प्रचेतसा, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । गायत्री ।

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह १९३१
तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिषः १९३२
आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि १९३३
प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ १९३४
विराट् सम्राड् विभ्वीः प्रभ्वीर् बह्वीश् च भूयसीश् च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् १९३५
सुरुक्मे हि सुपेशसा अधि श्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् १९३६
प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् १९३७
भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश् चोदयत श्रिये १९३८
त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून् विश्वान् त्समानजे । तेषां नः स्फातिमा यज १९३९
उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् १९४०
पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते १९४१

॥ २१८ ॥ (ऋ० २ । ३ । १-११)

१९४२-५२ गृत्समदः शौनकः । आप्रीसूक्तं= [क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळा-भारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः] । त्रिष्टुप्; १९४८ जगती ।

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्यस्थात् ।
होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन् १९४

नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन् तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः ।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन् मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् १९४३

ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन् देवान् यक्षि मानुषात् पूर्वो अद्य ।
स आ वह मरुतां शर्धो अच्युतम् इन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् १९४४

देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः १९४५

वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् १९४६

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती १९४७

दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
देवान् यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु १९४८

सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदम् अच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य १९४९

पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः १९५०

वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थाद् अग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन् देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् १९५१

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर् घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् १९५२

॥ २१९ ॥ (ऋ० ३।४।१-११)

१९५३-६३ विश्वामित्रो गाथिनः। आप्रीसूक्तं= [क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः]। त्रिष्टुप्।

समित्‌समित् सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
आ देव देवान् यजथाय वक्षि सखा सखीन् त्सुमना यक्ष्यग्ने १९५३

यं देवासस् त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस् तनूनपाद्घृतयोनिं विधन्तम् १९५४

प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै ।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान् यक्षदिषितो यजीयान् १९५५

ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकारि ऊर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः १९५६

सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभीऽमं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः १९५७

आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा३ विरूपे ।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषद् इन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः १९५८

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित् त आहुर् अनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः १९५९

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु १९६०

तन्नस् तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः १९६१

वनस्पतेऽव सृजोप देवान् अग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद १९६२

आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङ् इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् १९६३

॥ २२० ॥ (ऋ० ५ । ५ । १-११)

१९६४-७३ वसुश्रुत आत्रेयः। आप्रीसूक्तं= (क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा. २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळा भारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः)। गायत्री ।

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे १९६४
नराशंसः सुषूदति इमं यज्ञमदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः १९६५

इळितो अग्न आ वह इन्द्रं चित्रमिह प्रियम्। सुखै रथेभिरूतये १९६६
ऊर्णम्रदा वि प्रथस्व अभ्य१र्का अनूषत। भवा नः शुभ्र सातये १९६७
देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये। प्रप्र यज्ञं पृणीतन १९६८
सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा। दोषामुषासमीमहे १९६९
वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः। इमं नो यज्ञमा गतम् १९७०
इळा सरस्वती मही०। (१९१४)
शिवस् त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना। यज्ञेयज्ञे न उदव १९७१
यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि। तत्र हव्यानि गामय १९७२
स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः। स्वाहा देवेभ्यो हविः १९७३

॥ २९१ ॥ (ऋ० ७।२।१-११)

१९७४-८० वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। आप्रीसूक्तं- (क्रमेण १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः)। त्रिष्टुप्।

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद् यजतं धूममृण्वन्।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस् ततनः सूर्यस्य १९७४
नराशंसस्य महिमानमेषाम् उप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या १९७५
ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षम् अन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम्।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम १९७६
सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वद् अध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् १९७७
स्वाध्यो३ वि दुरो देवयन्तो ऽशिश्रयू रथयुर्देवताता।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् १९७८
उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् १९७९
विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि १९८०

आ भारती भारतीभिः सजोषा०। (१९६०)
तन्नस् तुरीपमध पोषयित्नु० । (१९६१)
वनस्पतेऽव सृजोप देवान्० । (१९६२)
आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङ्० । (१९६३)

॥ २२२ ॥ (ऋ० ९ । ५ । १-११)

१९८१-९१ असितः काश्यपो देवलो वा । आप्रीसूक्तं=(क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वार , ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः । गायत्री, १९९४-९७ अनुष्टुप् ।

समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो वि राजति । प्रीणन् वृषा कनिक्रदत् १९८१
तनूनपात् पवमानः शृङ्गे शिशानो अर्षति । अन्तरिक्षेण रारजत् १९८२
ईळेन्यः पवमानो रयिर्वि राजति द्युमान् । मधोर्धाराभिरोजसा १९८३
बर्हिः प्राचीनमोजसा पवमानः स्तृणन् हरिः । देवेषु देव ईयते १९८४
उदातैर्जिहते बृहद् द्वारो देवीर्हिरण्ययीः । पवमानेन सुष्टुताः १९८५
सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति । नक्तोषासा न दर्शते १९८६
उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे । पवमान इन्द्रो वृषा १९८७
भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही । इमं नो यज्ञमा गमन् तिस्रो देवीः सुपेशसः १९८८
त्वष्टारमग्रजां गोपां पुरोयावानमा हुवे । इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः १९८९
वनस्पतिं पवमान मध्वा समङ्ग्धि धारया । सहस्रवल्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययम् १९९०
विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं पवमानस्या गत । वायुर्बृहस्पतिः सूर्यो ऽग्निरिन्द्रः सजोषसः १९९१

॥ २२३ ॥ (ऋ० १० । ७० । १-११)

१९९२-२००२ सुमित्रो वाध्र्यश्वः । आप्रीसूक्तं= (क्रमेण- १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । त्रिष्टुप् ।

इमां मे अग्ने समिधं जुषस्व इळस्पदे प्रति हर्या घृताचीम् ।
वर्ष्मन् पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नाम् ऊर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या १९९२
आ देवानामग्रयावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरश्वैः ।
ऋतस्य पथा नमसा मियेधो देवेभ्यो देवतमः सुषूदत् १९९३

शश्वत्तममीळते दूत्याय   हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम् ।
बर्हिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेन   आ देवान् वक्षि नि षदेह होता   १९९४

वि प्रथतां देवजुष्टं तिरश्चा   दीर्घं द्राघ्मा सुरभि भूत्वस्मे ।
अहेळता मनसा देव बर्हिर्   इन्द्रज्येष्ठाँ उशतो यक्षि देवान्   १९९५

दिवो वा सानु स्पृशता वरीयः   पृथिव्या वा मात्रया वि श्रयध्वम् ।
उशतीर्द्वारो महिना महद्भिर्   देवं रथं रथयुर्धारयध्वम्   १९९६

देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे   उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
आ वां देवास उशती उशन्त   उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे   १९९७

ऊर्ध्वो ग्रावा बृहदग्निः समिद्धः   प्रिया धामान्यदितेरुपस्थे ।
पुरोहितावृत्विजा यज्ञे अस्मिन्   विदुष्टरा द्रविणमा यजेथाम्   १९९८

तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं वरीय   आ सीदत चकृमा वः स्योनम् ।
मनुष्वद् यज्ञं सुधिता हवींषि   इळा देवी घृतपदी जुषन्त   १९९९

देव त्वष्टर्यद्ध चारुत्वमानड्   यदङ्गिरसामभवः सचाभूः ।
स देवानां पाथ उप प्र विद्वान्   उशन् यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः   २०००

वनस्पते रशनया नियूया   देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान् ।
स्वदाति देवः कृणवद्धवींषि   अवतां द्यावापृथिवी हवं मे   २००१

आग्ने वह वरुणमिष्टये न   इन्द्रं दिवो मरुतो अन्तरिक्षात् ।
सीदन्तु बर्हिर्विश्व आ यजत्राः   स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम्   २००२

॥ २२४ ॥ (ऋ० १० । ११० । १ ११)

११ जमदग्निर्भार्गवः, रामो वा जामदग्न्यः । आप्रीसूक्तं=(क्रमेण–१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीः द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः)। त्रिष्टुप् । (अथर्व० ५ । १२ । १–११ [अथर्ववेदे अंगिरा ऋषिः ।] काठक सं० १६ । २०; मैत्रायणी सं० ४।१३ । ३; तै० ब्रा० ३।६।३)

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे   देवो देवान् यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्   त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः   २००३

तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान्   मध्वा समञ्जन् त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्   देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः   २००४

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च आ याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् २००५

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् २००६

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः २००७

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने २००८

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता २००९

आ नो यज्ञं भारती तूयमेतु इळा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु २०१०

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् २०११

उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन २०१२

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञम् अग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः २०१३

२२५ ॥ (वा० यजुर्वेद २० । ३६-४६, तैत्ति० सं० २।६।८; काठकसं० ३८।६, मैत्रायणीसं० ३।११।१।)

समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद् वावृधानः ।
त्रिभिर्देवैस् त्रिंशता वज्रबाहुर् जघान वृत्रं वि दुरो ववार २०१४

नराशंसः प्रति शूरो मिमानस् तनूनपात् प्रति यज्ञस्य धाम ।
गोभिर्वपावान् मधुना समञ्जन् हिरण्यैश् चन्द्री यजति प्रचेताः २०१५

मैत्रायणी-पाठभेदाः- २०१४ (१ समिद्धा) (२००४-५ मध्ये 'नराशंसस्य०' इति मन्त्रोऽग्रे वा० यजुर्वेदे अ० २९-२५-३६ द्रष्टव्य)

काठकपाठभेदाः- २०१५ (१ यजतु)

ईडितो देवैर्हरिवाँ २ अभिष्टिर् आजुह्वानो हविषा शर्धमानः।
पुरन्दरो गोत्रभिद् वज्रबाहुर् आ यातु यज्ञमुप नो जुषाणः २०१६

जुषाणो बर्हिर्हरिवान् न इन्द्रः प्राचीनꣳ सीदत् प्रदिशा पृथिव्याः।
उरुप्रथाः प्रथमानꣳ स्योनम् आदित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः २०१७

इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः।
द्वारो देवीरभितो वि श्रयन्ताꣳ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः २०१८

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम्।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे २०१९

दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होताराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा।
मूर्धन् यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः २०२०

तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः।
अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वती इडा देवी भारती विश्वतूर्तिः २०२१

त्वष्टा दधच् छुष्ममिन्द्राय वृष्णे ऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि।
वृषा यजन् वृषणं भूरिरेता मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् २०२२

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस् त्मन्या समञ्जञ् छमिता न देवः।
इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन २०२३

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस् तुराषाट्।
घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् २०२४

॥ २२६ ॥ (वा० यजुर्वेद २० । ५५-६६; मैत्रा० सं० ३।११।३, काठक सं० ३८।८; तैत्ति० ब्रा० २।६।१२)

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः।
दुहे धेनुः सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम् २०२५

मैत्रा० पाठ०- २०१६ (१ गोत्रभृद्), २०१७ (१ ना, २ सीदात्) २०१८ (१ यन्ति), २०१९ (१ पेशस्वती तन्तुना); २०२० (१ मनसा ; २ होतारा इन्द्र) २०२१ (१ वृषण); २०२२ (१ दधदिन्द्राय शुष्ममपाको) २०२३ (१स्वदातु), २०२४ (१ हव्यमुन्दन्त्स्वाहाकृतं जुषतां हव्यमिन्द्रः)

काठ० पाठ०- २०१९ (१ पेशस्वती तन्तुना), २०२० (१ मनसा , २ होतारा इन्द्रं) २०२१ (१ वृषण), २०२२ (१ दधदिन्द्राय शुष्ममपाको) २०२४ (१ हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य जुषतां स्वाहा)

*

तनूपा भिषजा सुते ऽश्विनोभा सरस्वती ।
मध्वा रजांꣳसीन्द्रियम् इन्द्राय पथिभिर्वहान् २०२६

इन्द्रायेन्दुꣳ सरस्वती नराशꣳसेन नग्नहुम् ।
अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते २०२७

आजुह्वाना सरस्वती इन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् ।
इडाभिरश्विनाविषꣳ समूर्जꣳ सꣳ रयिं दधुः २०२८

अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता ।
सरस्वती तमा भरद् बर्हिषेन्द्राय पातवे २०२९

कवष्यो न व्यचस्वतीर् अश्विभ्यां न दुरो दिशः ।
इन्द्रो न रोदसी उभे दुहे कामान् त्सरस्वती २०३०

उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रꣳ सायमिन्द्रियैः ।
सञ्जानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या २०३१

पातं नो अश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति ।
दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रꣳ सचा सुते २०३२

तिस्रस् त्रेधा सरस्वती अश्विना भारतीडा ।
तीव्रं परिस्रुता सोमम् इन्द्राय सुषुवुर्मदम् २०३३

अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती ।
इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियꣳ रूपꣳ रूपमधुः सुते २०३४

ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता ।
कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती २०३५

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता ।
समधातꣳ सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु २०३६

मैत्रा० पाठ०- २०२६ (१ पथिभिर्वह), २०२८ (१ ०श्विना इषं); २०३३ (१ ०न्द्रायासुषुवु०),
२०३६ (१ समधाता)

काठ० पाठ०- २०२८ (१ ०श्विना इषं); २०३० (१ दुघे), २०३३ (१ ०न्द्रायासुषुवु०)
२०३४, (१ द्वितीयऽर्ध., तथा क्रमाङ्क २०३५ गोपल०गते); २०३६ (१ समधाता)

॥ २२७ ॥ (वा० यजुर्वेद २१ । १२-२२; मैत्रा० सं० ३।११।११, काठक सं० ३८।१०; तै० ब्रा० २।६।१८)

समिद्धो अग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः ।
गायत्री छन्द इन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः २०३७

तनूनपाच् छुचिव्रतस् तनूपाश् च सरस्वती ।
उष्णिहा छन्द इन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः २०३८

इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवो अमर्त्यः ।
अनुष्टुप् छन्द इन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः २०३९

सुबर्हिरग्निः पूषण्वान् स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः ।
बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः २०४०

दुरो देवीर्दिशो महीर् ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
पङ्क्तिश् छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाड् गौर्वयो दधुः २०४१

उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः ।
त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाड् गौर्वयो दधुः २०४२

दैव्या होतारा भिषजा इन्द्रेण सयुजा युजा ।
जगती छन्द इन्द्रियम् अनड्वान् गौर्वयो दधुः २०४३

तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः ।
विराट् छन्द इहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः २०४४

त्वष्टा तुरीपो अद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना ।
द्विपदा छन्द इन्द्रियम् उक्षा गौर्न वयो दधुः २०४५

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।
ककुप् छन्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः २०४६

स्वाहा यज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत् ।
अतिच्छन्दा इन्द्रियं बृहद् ऋषभो गौर्वयो दधुः २०४७

मैत्रा० पाठ०-- २०३७ (१ त्रियवि०), २०३८ (१ अयं प्रथमोऽर्धो न दृश्यते; २ उष्णिक्), २०४१ (१ इन्द्रियं); २०४४ (१ तिस्रो देवीरिडा मही; २ इन्द्रियं), २०४६ (१ ऋषभो गौर्वयो), २०४७ (१ बृहद्वशा वेहद्वयो)

काठ० पाठ०— २०३७ (१ त्रियवि०), २०४१ (२ इहेन्द्रियं), २०४७ (१ अतिच्छन्द; २ बृहदृषभो)

॥ २२८ ॥ (वा० यजुर्वेद २१ । २९—४०; मैत्रायणी सं० ३ । ११ । २; तै० ब्रा० २ । ६ । ११)

होता यक्षत् समिधाग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रꣳ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०४८

होता यक्षत् तनूनपात् सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०४९

होता यक्षन्नराशꣳसं न नग्नहुं पतिꣳ सुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग् रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपा इन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५०

होता यक्षदिडेडित आजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५१

होता यक्षद् बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ् नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग् धेनुः सरस्वती भिषग् दुह इन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५२

होता यक्षद् दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिश इन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजꣳ शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५३

होता यक्षत् सुपेशसोषे नक्तं दिवाश्विना समञ्जाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजꣳ श्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५४

मैत्रा० पाठ० – २०४९ (१ मधुमदाभरन्न०; २ वेत्वाज्यस्य); २०५० (१ सुराया, २ वेत्वाज्यस्य); २०५२ (१ भिषगिन्द्राय दुह इन्द्रियं); २०५३ (१ दिशा; २ 'अश्विनेन्द्राय भेषजं' इति न दृश्यते) २०५४ (१ संजानाने सुपेशसा समञ्जाते, २ त्विषिमिन्द्रेण; ३ हृदा पय.; ४ वीतामाज्यस्य)

होता यक्षद् दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः शूषं सरस्वती भिषक् सीसेन दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५५

होता यक्षत् तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती मह इन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५६

होता यक्षत् सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग् यशः सुरया भेषजं श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५७

होता यक्षद् वनस्पतिं शमितारं शतक्रतुं भीमं न मन्युं राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामं सरस्वती भिषगिन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५८

होता यक्षदग्निं स्वाहाज्यस्य स्तोकानां स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्यां स्वाहा मेषं सरस्वत्यै स्वाह ऋषभमिन्द्राय सिंहाय सहस इन्द्रियं स्वाहाग्निं न भेषजं स्वाहा सोममिन्द्रियं स्वाहेन्द्रं सुत्रामाणं सवितारं वरुणं भिषजां पतिं स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजं स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणो अग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०५९

॥ २२८ ॥ (वा० यजुर्वेद २७ । ११—२२; काठक सं० १८ । १७; मैत्रा० सं० २ । १२ । ६)

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्ति ऊर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः २०६०
तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः । पथो अनक्तु मध्वा घृतेन २०६१
मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशंसो अग्ने । सुकृद्देवः सविता विश्ववारः २०६२

मैत्रा० पाठ०— २०५५ (१ वीतामाज्यस्य); २०५६ (१ रूपमिन्द्रो ; २ महा). २०५७ (१ यक्षत्त्वष्टारं रूपकृतं सुपेशसं वृषभं, २ सुराया; ३ वेत्वाज्यस्य), २०५८ (१ वेत्वाज्यस्य), २०५९ (१ स्वाहा; २ भेषजै ; ३ ०मिन्द्रियैः) [पंक्तिपदच्छेदपद्धतिः क्वचिद्भिन्ना;] २०६० (१ देवेभ्यो देवयानान्) २०६२ (१ नक्षति; २ अग्निः;)

काठ० पाठ०— [पंक्तिच्छेदपद्धतिर्भिन्ना] २०६१ (१ घृतेन... .प्रीणानः इत्येव एका पंक्तिः) २०६२ (१नक्षति)

अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा ।
अग्निं स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु २०६३
स यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रो सुप्रयसः ।
वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च २०६४
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः ।
उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः २०६५
ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता ।
इमं यज्ञमवतामध्वरं नः २०६६
दैव्या होतारा ऊर्ध्वमध्वरं नो ऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् ।
कृणुतं नः स्विष्टिम् २०६७
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु इडा सरस्वती भारती ।
मही गृणाना २०६८
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् ।
रायस्पोषं वि ष्यतु नाभिमस्मे २०६९
वनस्पतेऽव सृजा रराणस्त्मना देवेषु ।
अग्निर्हव्यं शमिता सूदयाति २०७०
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम् ।
विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् २०७१

॥ २३० ॥ (अथर्व० कां० ५।२७)

१—१२ ब्रह्मा । अग्निः। १ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्; २ द्विपदा साम्नी भुरिगनुष्टुप्; ३ द्विपदार्ची बृहती; ४ द्विपदा साम्नी भुरिग्बृहती; ५ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्; ६ द्विपदा विराण्नाम गायत्री; ७ द्विपदा साम्नी बृहती; ८ संस्तारपङ्क्तिः; ९ षट्पदानुष्टुब्गर्भा पराति-जगती, १०—१२ पुरउष्णिक (२-७ एकावसाना)।

उर्ध्वा अस्य समिधो भवन्ति ऊर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः ।
द्युमत्तमा सुप्रतीकः ससूनुस् तनूनपादसुरो भूरिपाणिः २०७२

मैत्रा० पाठ०- २०६४ (१ स ईं मन्द्रा सुप्रयसा स्तरीमन् । बर्हिषो मित्रमहा) २०६५ (१ विश्वा); २०६७ (१ होतारा ऊर्ध्वमिमध्वरं, २ स्विष्टम्); २०६८ (१ स्योनम्; २ मही शब्दः नास्ति) २०६९ (१ त्वष्टः) २०७० (१ विष्य; २ देवेभ्यः) २०७१ (१ जातवेदा, २ देवेभ्यः)

काठ० पाठ० – २०६३ (१ अच्छायं यन्ति; २ घृताचीः ईडाना वह्निं; २०६४ (१ स्तनी मन्द्रस्सुप्रयक्षु); २०६६ (१ दिव्यो न योनिरुषासानक्तामेः), २०६७ (१ होतारोर्ध्वमिमध्वरं; २ स्विष्टम्) २०६८ (१ महीर्गृणानाः); २०६९ (१ त्वष्टः पोषाय विष्य नाभिमस्मे) २०७० (१ सृज; २ हविः)

देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन । २०७३
मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः सुकृद् देवः सविता विश्ववारः २०७४
अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा २०७५
अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु स यक्षदस्य महिमानमग्नेः २०७६
तरी मन्द्रासु प्रयक्षु वसवश्चातिष्ठन् वसुधातरश्च २०७७
द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रतं रक्षन्ति विश्वहा २०७८
उरुव्यचसाऽग्नेर्धाम्ना पत्यमाने ।
आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्तेमं यज्ञमवतामध्वरं नः २०७९
दैवा होतार ऊर्ध्वम् अध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वया अभि गृणत गृणता नः स्विष्टये ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्त्विडा सरस्वती मही भारती गृणाना २०८०
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु । देव त्वष्टा रायस्पोषं वि ष्य नाभिमस्य २०८१
वनस्पतेऽव सृजा रराणः । त्मना देवेभ्यो अग्निर् हव्यं शमिता स्वदयतु २ ८२
अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेदः । इन्द्राय यज्ञं विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् २०८३

॥ २३१ ॥ (वा० यजुर्वेद २८ । १-११)

होता यक्षत् समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि ।
दिवो वर्ष्मन् त्समिध्यत ओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०८४
होता यक्षत् तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम् ।
इन्द्रं देवꣳ स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशꣳसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०८५
होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम् ।
देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०८६
होता यक्षद् बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम् ।
वसुभी रुद्रैरादित्यैः सयुग्भिर्बर्हिरासदद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०८७
होता यक्षदोजो न वीर्यꣳ सहो द्वार इन्द्रमवर्धयन् ।
सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे वि श्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०८८
होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही ।
सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रमवर्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज २०८९

होता यक्षद् दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः ।
कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज २०९०

होता यक्षत् तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः ।
इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०९१

होता यक्षत् त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजंꣳ सुयजं घृतश्रियम् ।
पुरुरूपꣳ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९२

होता यक्षद् वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् ।
मध्वा समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९३

होता यक्षदिन्द्रꣳ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा
स्तोकानाꣳ स्वाहा स्वाहाकृतीनाꣳ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् ।
स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज २०९४

॥ २२२ ॥ (वा० यजुर्वेद २८ । २४-३४)

होता यक्षत् समिधानं महद् यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम् ।
गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९५

होता यक्षत् तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् ।
उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९६

होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्यꣳ सहः सोममिन्द्रं वयोधसम् ।
अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९७

होता यक्षत् सुबर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्यꣳ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम् ।
बृहतीं छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २०९८

होता यक्षद् व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् ।
पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद् व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २०९९

होता यक्षत् सुपेशसा सुशिल्पे बृहती उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् ।
त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद् वीतामाज्यस्य होतर्यज २१००

होता यक्षत् प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम् ।
जगतीं छन्द इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद् वीतामाज्यस्य होतर्यज २१०१

होता यक्षत् पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम् ।
विराजं छन्द इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद् व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २१०२

होता यक्षत् सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धनं रूपाणि बिभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम् ।
द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१०३

होता यक्षद् वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ
रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम् ।
ककुभं छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१०४

होता यक्षत् स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग् वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम् ।
अतिच्छन्दसं छन्द इन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद् व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २१०५

॥ २२३ ॥ (वा० यजुर्वेद २९ । १–११ काठक, सं० ५।६।२; मैत्रा० सं० ३ । १६ । २; तै० ब्रा० ५।१।११)

समिद्धो अञ्जन्कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः ।
वाजी वहन् वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् २१०६

घृतेनाञ्जन् त्सं पथो देवयानान् प्रजानन् वाज्यप्येतु देवान् ।
अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताꣳ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि २१०७

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः २१०८

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु २१०९

एता उ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः ।
ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु २११०

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने ।
उषासा वाꣳ सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि २१११

मैत्रा० पाठ०— २१०७ (१ तनूनपात्सं, २ स्वधा देवैः); २१०८ (१ मेध्यश्चासि); २१०९ (१ देवेभिरक्तम०)
२११० (१ विश्ववारा); २१११ (४ योना इह)

काठ० पाठ०— २१०९ (१ देवेभिरक्तम०), २११० (१ विश्ववारा; २ कवषः, ३ सुप्रयाणा) २१११ (१ योना इह)

प्रथमा वांꣳ सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा ।
अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता २११२

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञꣳ सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत् ।
इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त २११३

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः ।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि होतः २११४

अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवाँ २ ऋतुशः पाथ एतु ।
वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् २११५

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने ।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः २११६

॥ २३४ ॥ (वा० यजुर्वेद २९।२५-३६; काठकसं० १६।२०, मैत्रा० सं० ४।१३।३, तैत्ति० ब्रा० ३।६।३)

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान् यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान् त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः २११७

तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान् मध्वा समञ्जन् त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन् देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः २११८

नराशꣳसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या २११९

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान् यक्षीषितो यजीयान् २१२०

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् २१२१

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः २१२२

मैत्रा० पाठ०-- २११३ (१ स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु) २११४ (१ त्वष्टेमा विश्वा भुवना) २११५ (१ समक्ता; २ देवं); २११९ (१ स्वदन्तु); २१२० (१ आजुह्वाना)

काठ० पाठ०-- २११६ (१ गमिषे; २ सक्ष्या); २११९ अयं मन्त्रो नास्ति ।

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियंꣳ शुक्रपिशं दधाने　२१२३

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता　२१२४

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳ सरस्वती स्वपसः सदन्तु　२१२५

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिꣳशद् भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान् देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्　२१२६

उपावसृज त्मन्या समञ्जन् देवानां पाथ ऋतुथा हवीꣳषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन　२१२७

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः　२१२८

॥ २३५ ॥ (ऋग्वेदीय-परिशिष्ट-प्रैषाध्याये १-१३ । मैत्रा० सं० ४ । १३ । २, २०० । १; काठक सं० १५ । १३, तै० ब्रा० ३ । ६ । २ । १)

होता यक्षदग्निं समिधा सुषमिधा समिद्धं नाभा पृथिव्याः संगथे वामस्य ।
वर्ष्मन् दिव इळस्पदे वेत्वाज्यस्य होतर्यज　२१२९

होता यक्षत् तनूनपातमदितेर्गर्भं भुवनस्य गोपाम् ।
मध्वाद्य देवो देवेभ्यो देवयानान् पथो अनक्तु वेत्वाज्यस्य होतर्यज　२१३०

होता यक्षन्नराशंसं नृशस्तं नॄः प्रणेत्रं ।
गोभिर्वपावान् त्स्याद् वीरैः शक्तीवान् रथैः प्रथमयावा हिरण्यैश्चन्द्री वेत्वाज्यस्य होतर्यज　२१३१

होता यक्षदग्निमीळ ईळितो देवो देवा आवक्षद्दूतो हव्यवाळमूरः ।
उपेमं यज्ञमुपेमो देवो देवहूतिमवतु वेत्वाज्यस्य होतर्यज　२१३२

मैत्रा० पाठ०- २१२८ मंत्रः नोपलभ्यते; २१३१; (१ नृशस्तं, नॄः२प्रणेत्रं); २१३२ (१ ळग्निमिड, २ देवं आ च वक्षद्, ३ ०मूरा),

काठ० पाठ०- २१२९ (१ समिधं), २१३१ अयं मन्त्र नोपलभ्यते; २१३२ (४ देवहूतिं वेत्वा०);

होता यक्षद् बर्हिः सुष्टरीमोर्णम्रदा अस्मिन् यज्ञे वि च प्र च प्रथताँ स्वासस्थं देवेभ्यः ॥
एमेनदद्य वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु प्रियामिंद्रस्यास्तु वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१३३

होता यक्षद् दुर ऋष्वाः कवष्यो कोषधावनीरुद्राताभिर्जिहतां विपक्षोभिः श्रयतां ।
सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे विश्रयन्तामृतावृधो व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २१३४

होता यक्षदुषासानक्ता बृहती सुपेशसा नॄँःपतिभ्यो योनिं कृण्वाने ।
संस्मयमाने इन्द्रेण देवैरेदं बर्हिः सीदतां वीतामाज्यस्य होतर्यज २१३५

होता यक्षद् दैव्या होतारा मन्द्रा पोतारा कवी प्रचेतसा ।
स्विष्टमद्यान्यः करदिषा स्वभिगूर्तमन्य ऊर्जा मतवसेमं यज्ञं दिवि
देवेषु धत्तां वीतामाज्यस्य होतर्यज २१३६

होता यक्षत् तिस्रो देवीरपसामपस्तमा अच्छिद्रमद्येदमपस्तन्वतां ।
देवेभ्यो देवीर्देवमपो व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज २१३७

होता यक्षत् त्वष्टारमचिष्टमपाकं रेतोधां विश्रवसं यशोधां ।
पुरुरूपमकामकर्शनं सुपोषः पोषैः स्यात् सुवीरो वीरैर्वेत्वाज्यस्य हातर्यज २१३८

होता यक्षद् वनस्पतिमुपावस्रक्षाद्धियो जोष्टारं शशमं नरः ।
स्वदान् स्वधितिर्ऋतुथाद्य देवो देवेभ्यो हव्यंवाड् वेत्वाज्यस्य होतर्यज २१३९

अजैदग्निरसनद्वाजं नि देवो देवेभ्यो हव्यवाट् प्रांजोभिर्हिन्वानो धेनाभिः ।
कल्पमानो यज्ञस्यायुः प्रतिरन्नुपप्रेष्य होतर्हव्या देवेभ्यः २१४०

होता यक्षदग्निं स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानां स्वाहा
स्वाहाकृतीनां स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् ॥
स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा अग्न आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज २१४१

मैत्रा० पाठ०- २१३३ (१ देवेभ्या; स्वदन्तु); २१३४ (१ श्रयंतां); २१३५ (नृःपतिभ्यो);
२१३९ (१ स्वदात्; २ हव्यावाड्); २१४०–२१४२ मन्त्रा· नोपलभ्यन्ते ।

का० ठ० पाठ०- २१३४(१ श्रयंतां), २१३६ (१ करत्स्वभि०, २ ०मन्यस्स्वतसेमं), २१३८ (१ ०मचिष्टुमपाकं)
२१३९ (१ स्वदात्); २१४० अयं मंत्रो नोपलभ्यते ।

अथर्ववेदेऽग्निमन्त्राः ।

(अथर्ववेदे कां०१, सू० ९, मं० ३-४ अथर्वा । त्रिष्टुप् ।)

येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः ।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम् २१४२

ऐषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने ।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् २१४३

(अथर्व० २ । १९ । १-४ । विचृद्विषमा गायत्री, २१४८ भुरिग्विषमा ।)

अग्ने यत् ते तपस्तेन तं प्रति तप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २१४४
अग्ने यत् ते हरस्तेन तं प्रति हर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २१४५
अग्ने यत् तेऽर्चिस्तेन तं प्रत्यर्च योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः । २१४६
अग्ने यत् ते शोचिस्तेन तं प्रति शोच योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २१४७
अग्ने यत् ते तेजस्तेन तमतेजसं कृणु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः २१४८

(अथर्व० २।२९।१—२। २१४९ अनुष्टुप्, २१५० त्रिष्टुप् ।)

पार्थिवस्य रस देवा भगस्य तन्वो३ बले ।
आयुष्यमस्मा अग्निः सूर्यो वर्च आ धाद् बृहस्पतिः २१४९

आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधिनिधेह्यस्मै ।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम् २१५०

(अथर्व० २ । ३४ । ३ । त्रिष्टुप्)

ये बध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च ।
अग्निष्टानग्रे प्र मुमोक्तु देवो विश्वकर्मा प्रजया संरराणः २१५१

(अथर्व० कां० ३ । १ । १-३, ५-६। २१५२ त्रिष्टुप्, २१५३ विराड्गर्भा भुरिक्, २१५४ अनुष्टुप्, २१५६ विराट्पुर उष्णिक् ।)

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः २१५२

यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्था—भि प्रेत मृणत सहध्वम् ।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् २१५३

अमित्रसेनां मघवन्न् अस्मान् छत्रूयतीमभि ।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्न् अग्निश्च दहतं प्रति २१५४

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा ।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता २१५५

(अथर्व० ३ । २ । १—३ । २१५६ त्रिष्टुप् ; २१५७-५८ अनुष्टुप् ।)

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् ।
स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः २१५६

अयमग्निरमूमुहद् यानि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः २१५७

इन्द्र चित्तानि मोहय—न्नर्वाङाकूत्या चर ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय २१५८

(अथर्व० ३ । ३ । १ । त्रिष्टुप्)

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची ।
युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नय नमसा रातहव्यम् २१५९

(अथर्व० ३।४।३)

अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाता अग्निर्दूतो अजिरः सं चरातै ।
जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यासा उग्रः २१६०

(अथर्व० ३ । २७ । १ । पञ्चपदा ककुम्मतीगर्भाऽष्टिः ।)

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस् तं वो जम्भे दध्मः २१६१

(अथर्व० ४ । ४ । ६ । भुरिक् ।)

अद्याग्ने अद्य सवित—रद्य देवि सरस्वति ।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः २१६२

(अथर्व० ५।८।१-२। अनुष्टुप्, २१६४ त्र्यवसाना षट्पदा जगती।)

वैकङ्कतेनेध्मेन देवेभ्य आज्यं वह।
अग्ने ताँ इह मादय सर्व आ यन्तु मे हवम् २१६३

इन्द्रा याहि मे हवम् इदं करिष्यामि तच्छृणु।
इम ऐन्द्रा अतिसरा आकूतिं सं नमन्तु मे।
तेभिः शकेम वीर्यं१ जातवेदस्तनूवशिन् २१६४

यदसावमुतो देवा अदेवः संश्चिकीर्षति।
मा तस्याग्निर्हव्यं वाक्षीद्धवं देवा अस्य मोप गुर्ममैव हवमेतन २१६५

(अथर्व ५।२४।२। चतुष्पदातिशक्करी।)

अग्निर्वनस्पतीनाम् अधिपतिः स मावतु।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा २१६६

(अथर्व० ५।२८।१-१४। त्रिष्टुप्, २१७२ पञ्चपदातिशक्करी २१७३, ७५, ७६ ७८ ककुम्मत्यनुष्टुप् २१७९ पुरउष्णिक्।)

नव प्राणान् नवभिः सं मिमीते दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
हरिते त्रीणि रजते त्रीणि अयसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि २१६७

अग्निः सूर्यश्चन्द्रमा भूमिरापो द्यौरन्तरिक्षं प्रदिशो दिशश्च।
आर्तवा ऋतुभिः संविदाना अनेन मा त्रिवृता पारयन्तु २१६८

त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्ताम् अनक्तु पूषा पयसा घृतेन।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् २१६९

इममादित्या वसुना समुक्षते-मममग्ने वर्धय वावृधानः।
इममिन्द्र सं सृज वीर्येणा-स्मिन् त्रिवृच्छ्रयतां पोषयिष्णु २१७०

भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृ-दग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः।
वीरुद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम् २१७१

त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्य-मग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत्।
अपामेकं वेधसां रेत आहुस् तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे २१७२

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
त्रेधामृतस्य चक्षणं त्रीण्यायूंषि तेऽकरम् २१७३

त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्न् एकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन् मृत्युममृतेन साकम् अन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा २१७४

दिवस्त्वा पातु हरितं मध्यात् त्वा पात्वर्जुनम् ।
भूम्या अयस्मयं पातु प्रागाद् देवपुरा अयम् २१७५

इमास्तिस्रो देवपुरा—स्तास्त्वा रक्षन्तु सर्वतः ।
तास्त्वं बिभ्रद्वर्च—स्व्युत्तरो द्विषतां भव २१७६

पुरं देवानाममृतं हिरण्यं य आबेधे प्रथमो देवो अग्रे ।
तस्मै नमो दश प्राचीः कृणो—म्यनु मन्यतां त्रिवृदाबधे मे २१७७

आ त्वा चृतत्वर्यमा पूषा बृहस्पतिः ।
अहर्जातस्य यन्नाम तेन त्वाति चृतामसि २१७८

ऋतुभिष्ट्वार्तवै—रायुषे वर्चसे त्वा ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन संहनु कृण्मसि २१७९

घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।
भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह सहते सौभगाय २१८०

(अथर्व० ६ । ३६ । १-३ । गायत्री ।)

ऋतावानं वैश्वानरम् ऋतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे २१८१
स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतूंरुत्सृजते वशी । यज्ञस्य वय उत्तिरन् २१८२
अग्निः परेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको वि राजति २१८३

(अथर्व०६ । ११० । २-३ । त्रिष्टुप् ।)

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय २१८४

व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् २१८५

(अथर्व० ६ । १११ । १-४ । अनुष्टुप्, २१८६ परानुष्टुप् त्रिष्टुप् ।)

इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्य—यं यो बद्धः सुयतो लालपीति ।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति २१८६
अग्निष्टे नि शमयतु यदि ते मन उद्युतम् । कृणोमि विद्वान् भेषजं यथानुन्मदितोऽससि २१८७
देवैनसादुन्मदितम् उन्मत्तं रक्षसस्परि । कृणोमि विद्वान् भेषजं यदानुन्मदितोऽसति २१८८
पुनस्त्वा दुरप्सरसः पुनरिन्द्रः पुनर्भगः । पुनस्त्वा दुर्विश्वे देवा यथानुन्मदितोऽमसि २१८९

(अथर्व० ६ । ११२ । १-३ । त्रिष्टुप् ।)

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् तुभ्यं देवा अनु जानन्तु विश्वे २१९०
उन्मुञ्च पाशांस्त्वमग्न एषां त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन् ।
स ग्राह्याः पाशान् वि चृत प्रजानन् पितापुत्रौ मातरं मुञ्च सर्वान् २१९१
येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धो ऽङ्गेअङ्ग आर्पित उत्सितश्च ।
वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व २१९२

(अथर्व० ७ । ३४ (३५) । १ ॥ जगती ।)

अग्ने जातान् प्र णुदा मे सपत्नान् प्रत्यजाताञ्जातवेदो नुदस्व ।
अधस्पदं कृणुष्व ये पृतन्यवो ऽनागसस्ते वयमदितये स्याम २१९३

(अथर्व० ७ । ३५ [३६] १-३ ॥ त्रिष्टुप्, २१९४ अनुष्टुप् ।)

प्रान्यान् त्सपत्नान् त्सहसा सहस्व प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः २१९४
इमा यास्ते शतं हिराः सहस्रं धमनीरुत ।
तासां ते सर्वासामह—मश्मना बिलमप्यधाम् २१९५
परं योनेरवरं ते कृणोमि मा त्वा प्रजाभि भून्मोत सूनुः ।
अस्वं१ त्वाप्रजसं कृणोम्य—श्मानं ते अपिधानं कृणोमि २१९६

(अथर्व० ७ । ७४ [७८] । ४ ॥ अनुष्टुप् ।)

व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह ।
तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे २१९७

*

(अथर्व० ७। ७८ (८३) १-२॥ २१९८ परोष्णिक्, २१९९ त्रिष्टुप्।)

वि ते मुञ्चामि रशनां वि योक्त्रं वि नियोजनम्। इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने २१९८
अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन।
दीदिह्य१स्मभ्यं द्रविणेह भद्रं प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु २१९९

(अथर्व० ७। १०६ [१११]। १। बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्।)

यदस्मृति चकृम किं चिदग्न उपारिम चरणे जातवेदः।
ततः पाहि त्वं नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः २२००

(अथर्व० ७। ११५। १२०। १-४॥ अनुष्टुप्, २२०२-३ त्रिष्टुप्।)

प्र पतेतः पापि लक्ष्मि नश्येतः प्रामुतः पत। अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि २२०१
या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टा— भिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्।
अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः २२०२
एकशतं लक्ष्म्यो३ मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः।
तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ २२०३
एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् २२०४

(अथर्व० १९। ३। १-४॥ त्रिष्टुप्, २२०६ भुरिक्।)

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदा—स्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि २२०५
यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः।
अग्ने सर्वास्तन्व१ः सं रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोदा अजस्रः २२०६
यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनूः पितृष्वाविवेश।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रथे ऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि २२०७
श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम्।
यतो भयमभयं तन्नो अस्त्व—व देवानां यज हेडो अग्ने २२०८

अथर्व० १९। ४। १-४॥ त्रिष्टुप्, २२०९ पञ्चपदा विराडतिजगती, २२१० जगती।

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्नि—रग्नये स्वाहा २२०९

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् २२१०

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि ।
अथो भगस्य नो धेहि अथो नः सुहवो भव २२११

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् २२१२

(अथर्व० ९ । ३७ । १-४ ॥ २२१३ त्रिष्टुप्; २२१४ आस्तारपंक्तिः, २२१५ त्रिपदा महाबृहती, २२१६ पुरउष्णिक् ।)

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम् ।
त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे २२१३

वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय २२१४

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय २२१५

ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे २२१६

(अथर्व० ४ । १४ । १-९ । भृगु । त्रिष्टुप्; २२१८, २२२० अनुष्टुप्; २२१९ प्रस्तारपङ्क्तिः; २२२३, २२२५ जगती, २२२४ पञ्चपदातिशक्वरी ।)

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात् सो अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्र आयन् तेन रोहान् रुरुहुर्मेध्यासः २२१७

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यान् हस्तेषु बिभ्रतः ।
दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् २२१८

पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षम् आरुहमन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् २२१९

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे २२२०

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति २२२१

अजमनज्मि पयसा घृतेन दिव्यं सुपर्णं पयसं बृहन्तम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् २२२२

पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभि-र्दर्व्योद्धर पञ्चधैतमोदनम् ।
प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि दक्षिणं धेहि पार्श्वम् २२२३

प्रतीच्यां दिशि भसदमस्य धेहि उत्तरस्यां दिश्युत्तरं धेहि पार्श्वम् ।
ऊर्ध्वायां दिश्य१जस्यानूकं धेहि दिशि ध्रुवायां धेहि पाजस्यं अन्तरिक्षे मध्यतो मध्यमस्य २२२४

शृतमजं शृतया प्रोर्णुहि त्वचा सर्वैरङ्गैः संभृतं विश्वरूपम् ।
स उत्तिष्ठेतो अभि नाकमुत्तमं पद्भिश्चतुर्भिः प्रति तिष्ठ दिक्षु २२२५

(अथर्व० ७ । ८४ । १ । जगती ।)

अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह ।
विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरद्य परि पाहि नो गयम् २२२६

(अथर्व० ७ । १०८ [११३] । १-२॥ २२२७ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्, २२२८ त्रिष्टुप् ।)

यो नस्तायद् दिप्सति यो न आविः स्वो विद्वानरणो वा नो अग्ने ।
प्रतीच्येत्वरणी दत्वती तान् मैषामग्ने वास्तु भून्मो अपत्यम् २२२७

यो नः सुप्ताञ्जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः ।
वैश्वानरेण सयुजा सजोषास् तान् प्रतीचो निर्दह जातवेदः २२२८

(अथर्व० कां १२ । २ । १-१३, ३३-५५ ।। त्रिष्टुप्, २२३०, २२३३, २२३८-४५, २२४७-४९, २२५१-५४, २२५६, २२६४, २२६७ अनुष्टुप् (२२४२ ककुम्मती पराबृहती, २२४४ निचृत्, २२५३ पुरस्तात्ककुम्मती); २२३१ आस्तारपङ्क्तिः, २२३४ भुरिगार्षी पङ्क्तिः २२५८ जगती; २२६१-६२ भुरिग्, २२३५ अनुष्टुब्गर्भा विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्ति ; २२५० पुरस्ताद्बृहती; २२५५ त्रिप० एकाव० भुरिगार्ची गायत्री; २२५७ एकाव० द्विप० आर्ची बृहती; २२५९ एका० द्विप० साम्नी त्रिष्टुप्; २२६० पञ्चपदा बार्हतवैराजगर्भा जगती, २२६३ उपरिष्टाद्विराड् बृहती; २२६५ पुरस्ताद्विराड् बृहती, २२६८ बृहतीगर्भा ।)

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्म-स्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि २२२९

अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च । यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि २२३०

निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद्यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि २२३१

यदग्निः क्रव्याद्यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् २२३२

यत्त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते। सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि २२३३

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय २२३४

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश० (ऋ० १० । १६ । १०) (१५६६)
क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं० (१० । १६ । ९) (१५६६)

क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोकेऽपि भागो अस्तु २२३५

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् २२३६

समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति २२३७

देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत् ।
मुच्यमानो निरेणसो ऽमोगस्माँ अशस्त्याः २२३८

अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् २२३९

संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः। ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् २२४०
यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु। क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः २२४१

अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः २२४२

यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत। तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह २२४३
समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः । अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे २२४४
सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वम् अग्नौ संकसुके च यत् । अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे २२४५

यो नो अग्निः पितरो हृत्स्व१न्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् २२४६
अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा । प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् २२४७
द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या । अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः २२४८
यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते । सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः २२४९
अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे । छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते २२५०
मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य । क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादनुविद्वान्वितावति २२५१
ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो३ यः क्रव्यादं निरादधत् २२५२
यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् । आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् २२५३
ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः ।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः २२५४
अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह २२५५
इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात् । व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् २२५६
अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणाम् अग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः २२५७
जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिम् उषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै २२५८
सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि २२५९
इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् २२६०
अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम २२६१
अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।
अनातुरान् त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज् ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि २२६२
ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा । क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् २२६३
येऽश्रद्धा धनकाम्यात् क्रव्यादा समासते । ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा २२६४

प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः। क्रव्याद्यानग्निरन्तिका- दनुविद्वान्वितावति २२६५

अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः।
माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्य- मरण्यान्या गह्वरं सचस्व २२६६

इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम्।
तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ २२६७

प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पथां वि ह्याविवेश।
परामीषामसून्दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान् त्सृजामि २२६८

(अथर्व० १९। ५५। १-६॥ त्रिष्टुप्; २२७० आस्तारपंक्तिः; २२७३ त्र्यवसाना पंचपदा पुरस्ताज्ज्योतिष्मती।)

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तो ऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम २२६९

या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम २२७०

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम २२७१

प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधी- न्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम २२७२

अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम्। अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये।
सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः २२७३

त्वामिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवत्।
अहरहर्बलिमित् ते हरन्तो ऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने २२७४

(अथर्व० कां० १, सू० २५, मं० १-४। भृग्वङ्गिराः। २२७५ त्रिष्टुप् २२७६-७७ विराड्गर्भा, २२७८ पुराऽनुष्टुप्।)

यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् २२७५

यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम्।
हूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् २२७६

यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः ।
हूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् २२७७

नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि ।
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने २२७८

(अथर्व० २ । ३५ । १ ॥ अङ्गिराः । त्रिष्टुप् ।)

ये भक्षयन्तो न वसून्यानृधु- र्यानग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः ।
या तेषामवया दुरिष्टिः स्विष्टिं नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा २२७९

(अथर्व० ४ । ३९ । १, २, ९, १० ॥ अङ्गिराः । २२८० त्रिपदा महाबृहती, २२८१ संस्तारपङ्क्तिः; । २२८२-८३ त्रिष्टुप् ।)

पृथिव्यामग्नये समनमन्त्स आर्ध्नोत् ।
यथा पृथिव्यामग्नये समनम- न्नेवा मह्यं संनमः सं नमन्तु २२८०

पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः । सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।
आयुः प्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा २२८१

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपा उ ।
नमस्कारेण नमसा ते जुहोमि मा देवानां मिथुया कर्म भागम् २२८२

हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
सप्तास्यानि तव जातवेद- स्तेभ्यो जुहोमि स जुषस्व हव्यम् २२८३

(अथर्व० १ । ७ । १-७ ॥ चातनः । अनुष्टुप्, २२८८ त्रिष्टुप् ।)

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् । त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ २२८४
आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन् । अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय २२८५
वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः । अथेदमग्ने नो हवि- रिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् २२८६
अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् । ब्रवीतु सर्वो यातुमान् अयमस्मीत्येत्य २२८७

पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान्नृचक्षः ।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात् त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् २२८८

आ रभस्व जातवेदो ऽस्माकार्थाय जज्ञिषे । दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय २२८९
त्वमग्ने यातुधानान् उपबद्धाँ इहा वह । अथैषामिन्द्रो वज्रेण अपि शीर्षाणि वृश्चतु २२९०

(अथर्व० १ । ८ । ३-४ ॥ २२९१ अनुष्टुप्, २२९२ बार्हतगर्भा त्रिष्टुप् ।

यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च । नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् २२९१

यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्त्रिणां जातवेदः ।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने २२९२

(अथर्व० १ । २८ । १-२ । अनुष्टुप् ।)

उप प्रागाद् देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः । दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान् किमीदिनः २२९३
प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः । प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः २२९४

(अथर्व० ४ । ३६ । १-१० ॥ अनुष्टुप्, २३०३ भुरिक् ।)

तान् त्सत्यौजाः प्र दहत्वग्निर्वैश्वानरो वृषा । यो नो दुरस्याद्दिप्साच्चाथो यो नो अरातियात् २२९५
यो नो दिप्सदर्दिप्सतो दिप्सतो यश्च दिप्सति । वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम् २२९६
य आगरे मृगयन्ते प्रतिक्रोशेऽमावास्ये । क्रव्यादो अन्यान् दिप्सतः सर्वांस्तान् त्सहसा सहे २२९७
सहे पिशाचान् त्सहसैषां द्रविणं ददे । सर्वान् दुरस्यतो हन्मि सं म आकूतिर्ऋध्यताम् २२९८
ये देवास्तेन हासन्ते सूर्येण मिमते जवम् । नदीषु पर्वतेषु ये सं तैः पशुभिर्विदे २२९९

तपनो अस्मि पिशाचानां व्याघ्रो गोमतामिव ।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् २३००

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे २३०१
यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम । पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते २३०२
ये मा क्रोधयन्ति लपिता हस्तिनं मशका इव । तानहं मन्ये दुर्हितान् जने अल्पशयूनिव २३०३
अभि तं निर्ऋतिर्धत्ताम् अश्वमिवाश्वाभिधान्या । मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति स उ पाशान्न मुच्यते २३०४

(अथर्व० ५ । २९ । १-१५ । त्रिष्टुप्, २३०७ त्रिपदा विराण्नाम गायत्री; २३०९ पुरोऽतिजगती विराड्जगती
२३१५-१८ अनुष्टुप् (२३१५ भुरिक्; २३१७ चतुष्पदा पराबृहती ककुम्मती ।)

पुरस्ताद् युक्तो वह जातवेदोऽग्ने विद्धि क्रियमाणं यथेदम् ।
त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता त्वया गामश्वं पुरुषं सनेम २३०५

तथा तदग्ने कृणु जातवेदो विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः ।
यो नो दिदेव यतमो जघास यथा सो अस्य परिधिष्पताति २३०६

यथा सो अस्य परिधिष्पताति तथा तदग्ने कृणु जातवेदः ।
विश्वेभिर्देवैः सह संविदानः २३०७

❀

अक्ष्यौ३ नि विध्य हृदयं नि विध्य जिह्वां नि तृन्द्धि प्र दतो मृणीहि ।
पिशाचो अस्य यतमो जघास अग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि २३०८

यदस्य हृतं विहृतं यत् पराभृतम् आत्मनो जग्धं यतमत् पिशाचैः ।
तदग्ने विद्वान् पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः २३०९

आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु २३१०

क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भा—कृष्टपच्ये अशने धान्ये३ यः ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु २३११

अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु २३१२

दिवा मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम् ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो३यमस्तु २३१३

क्रव्यादमग्ने रुधिरं पिशाचं मनोहनं जहि जातवेदः ।
तमिन्द्रो वाजी वज्रेण हन्तु च्छिनत्तु सोमः शिरो अस्य धृष्णुः २३१४

सनादग्ने मृणसि यातुधानान्० (ऋ० १० । ८७ । १९) (१८४६)

इमाहर जातवेदो यद्धृतं यत् पराभृतम् । गात्राण्यस्य वर्धन्ताम् अंशुरिवा प्यायतामयम् २३१५
सोमस्येव जातवेदो अंशुरा प्यायतामयम् । अग्ने विरप्शिनं मेध्यम् अयक्ष्मं कृणु जीवतु २३१६
एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः । तास्त्वं जुषस्व प्रति चैना गृहाण जातवेदः २३१७
तार्ष्टाघीरग्ने समिधः प्रति गृह्णाह्यर्चिषा । जहातु क्रव्याद् रूपं यो अस्य मांसं जिहीर्षति २३१८

(अथर्व० २ । ६ । १-५ ॥ शौनकः । त्रिष्टुप् २३२२ चतुष्पदार्षी पङ्क्तिः, २३२३ विराट् प्रस्तारपङ्क्तिः ।)

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या ।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः २३१९

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेमम् उच्चं तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये २३२०

त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः ।
सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन् २३२१

क्षत्रेणाग्ने स्वेन सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व ।
सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञाम् अग्ने विहव्यो दीदिहीह २३२२
अति निहो अति स्रिधो ऽत्यचित्तीरति द्विषः ।
विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर त्वमथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः २३२३

(अथर्व० ६ । १०८ । ४ । अनुष्टुप् ।)

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः । तया मामद्य मेधया ऽग्ने मेधाविनं कृणु २३२४

(अथर्व० ७ । ८२ (८७) । २-६ ॥ त्रिष्टुप्, २३२५ ककुम्मती बृहती, २३२६ जगती ।)

मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
मयि प्रजां मय्यायु-र्दधामि स्वाहा मय्यग्निम् २३२५
इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः ।
क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यम् उपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः २३२६
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन् वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीन् अनु द्यावापृथिवी आ विवेश २३२७
प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ ततान २३२८
घृतं ते अग्ने दिव्ये सधस्थे घृतेन त्वां मनुरद्या समिन्धे ।
घृतं ते देवीर्नप्त्य१ आ वहन्तु घृतं तुभ्यं दुह्रतां गावो अग्ने २३२९

(अथर्व० ४ । २३ । १-७ । मृगारः । त्रिष्टुप्, २३३२ पुरस्ताज्ज्योतिष्मती, २३३३ अनुष्टुप्, २३३५ प्रस्तारपङ्क्तिः ।)

अग्नेर्मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्धते ।
विशोविशः प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चत्वंहसः २३३०
यथा हव्यं वहसि जातवेदो यथा यज्ञं कल्पयसि प्रजानन् ।
एवा देवेभ्यः सुमतिं न आ वह स नो मुञ्चत्वंहसः २३३१
यामन् यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन् कर्मन्नाभगम् ।
अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृधं घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः २३३२
सुजातं जातवेदसम् अग्निं वैश्वानरं विभुम् ।
हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः २३३३

येन ऋषयो बलमद्योतयन् युजा येनासुराणामयुवन्त मायाः ।
येनाग्निना पणीनिन्द्रो जिगाय स नो मुञ्चत्वंहसः २३३४

येन देवा अमृतमन्वविन्दन् येनौषधीर्मधुमतीरकृण्वन् ।
येन देवाः स्व१राभरन् त्स नो मुञ्चत्वंहसः २३३५

यस्येदं प्रदिशि यद् विरोचते यज्जातं जनितव्यं च केवलम् ।
स्तौम्यग्निं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः २३३६

(अथर्व० ६ । ४९ १-२ ॥ गार्ग्यः । २३३७ अनुष्टुप्, २३३८ जगती ।)

नहि ते अग्ने तन्वः क्रूरमानंश मर्त्यः ।
कपिर्बभस्ति तेजनं स्वं जरायु गौरिव २३३७

मेष इव वै सं च वि चोर्वच्यसे यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः ।
शीर्ष्णा शिरोऽप्ससाप्सो अर्दयन्न् अंशून् बभस्ति हरितेभिरासभिः २३३८

(अथर्व० २ । ३६ । १, ३ । पतिवेदनः । २३३९ त्रिष्टुप्, २३४० भुरिक् ।)

आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमे—दिमां कुमारीं सह नो भगेन ।
जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गु—रोषं पत्या सौभगमस्त्वस्यै २३३९

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु २३४०

(अथर्व० २० । २ । २। गृत्समदो मेधातिथिर्वा । विराड् गायत्री ।)

अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु २३४१

(अथर्व० ४ । ४० । १ । शुक्रः । त्रिष्टुप् ।)

ये पुरस्ताज्जुह्वति जातवेदः प्राच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
अग्निमृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि २३४२

(अथर्व० ३ । ३१ । १, ६ । ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।)

वि देवा जरसावृतन् वि त्वमग्ने अरात्या । व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा २३४३

अग्निः प्राणान् त्सं दधाति चन्द्रः प्राणेन संहितः ।
व्य१हं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा २३४४

(अथर्व० ५ । २६ । १ । द्विपदार्षी उष्णिक् ।)

यजूंषि यज्ञे समिधः स्वाहा ऽग्निः प्रविद्वानिह वो युनक्तु २३४५

(अथर्व० ६ । ७१ । १-३ । जगती, २३४८ त्रिष्टुप् ।

यदन्नमद्मि बहुधा विरूपं हिरण्यमश्वमुत गामजामविम् ।
यदेव किं च प्रतिजग्रहाहम् अग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु २३४६

यन्मा हुतमहुतमाजगाम दत्तं पितृभिरनुमतं मनुष्यैः ।
यस्मान्मे मन उदिव रारजीत्य ग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु २३४७

यदन्नमद्म्यनृतेन देवा दास्यन्नदास्यन्नुत संगृणामि ।
वैश्वानरस्य महतो महिम्ना शिवं मह्यं मधुमदस्त्वन्नम् २३४८

(अथर्व० १९ । ६५ । १ । जगती ।)

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम् ।
अव तां जहि हरसा जातवेदो ऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य २३४९

(अथर्व० १९ । ६६ । १ । अति जगती ।)

अयोजाला असुरा मायिनो ऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति ।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः २३५०

(अथर्व० १९ । ६४ । १-४ ॥ अनुष्टुप् ।)

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे । स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु २३५१
इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि । तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च २३५२
यदग्ने यानि कानि चि दा ते दारूणि दध्मसि । सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य २३५३
एतास्ते अग्ने समिध स्त्वमिद्धः समिद्भव । आयुरस्मासु धेह्य मृतत्वमाचार्याय २३५४

(अथर्व० ३ । २१ । १—१० । वसिष्ठः । त्रिष्टुप्, २३५५ पुरोनुष्टुप्, २३५६-५७, २३६२ भुरिक्; २३५९ जगती; २३६० उपरिष्टाद्विराड्बृहती, २३६१ विराड्गर्भा, २३६३ निचृदनुष्टुप्; २३६४ अनुष्टुप् ।)

ये अग्नयो अप्स्व१न्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु ।
य आविवेशोषधीर्यो वनस्पतीं स्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३५५

यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु ।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पद स्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३५६

य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः ।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३५७

यो देवो विश्वाद्यमु काममाहु—र्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः ।
यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस् तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३५८

यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस् त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः ।
वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३५९

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३६०

दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति ।
ये दिक्ष्व१न्तर्ये वाते अन्तस् तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् २३६१

हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् ।
विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम् २३६२

शान्तो अग्निः क्रव्याच् छान्तः पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वदाव्य१स् तं क्रव्यादमशीशमम् २३६३

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः ।
वातः पर्जन्य आदग्निस् ते क्रव्यादमशीशमन् २३६४

(अथर्व० ७ । १०९ (११४) । १-७ । बादरायणिः । अनुष्टुप् २३६५ विराट् पुरस्ताद्बृहती, २३६६-६७, २३६९-७० त्रिष्टुप्)

इदमुग्राय बभ्रवे नमो यो अक्षेषु तनूवशी ।
घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृडातीदृशे २३६५

घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च ।
यथाभागं हव्यदातिं जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या २३६६

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
ता मे हस्तौ सं सृजन्तु घृतेन सपत्नं मे कितवं रन्धयन्तु २३६७

आदिनवं प्रतिदीव्ने घृतेनास्माँ अभि क्षर ।
वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति २३६८

योनौ हुवे धर्नमिदं चकार यो अक्षाणां ग्लहंनं शेषणं च ।
स नौ देवो हविरिदं जुषाणो गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम २३६९
संवसव इति वो नामधेयम् उग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्य१क्षाः ।
तेभ्यौ व इन्दवो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् २३७०
देवान् यन्नाथितो हुवे ब्रह्मचर्यं यदूषिम । अक्षान् यद् बभ्रूनालभे ते नो मृडन्त्वीदृशे २३७१

(अथर्व० ६ । ४७ । १ । अङ्गिराः प्रचेताः । त्रिष्टुप् ।)

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः ।
स नः पावको द्रविणे दधातु आयुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम २३७२

(अथर्व० ७ । ६२ (६४) । १ । मरीचिः काश्यपः । जगती ।)

अयमग्निः सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत् पुरोहितः ।
नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतद् अधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः २३७३

(अथर्व० ७ । ६३ (६५) । १ । जातवेदाः । जगती ।)

पृतनाजितं सहमानमग्निमुक्थैर् हवामहे परमात् सधस्थात् ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामद् देवोऽति दुरितान्यग्निः । २३७४

(अथर्व० ६ । ३५ । १-३ । कौशिकः । गायत्री ।)

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निर्नः सुष्टुतीरुप २३७५
वैश्वानरो न आगमद् इमं यज्ञं सजूरुप । अग्निरुक्थेष्वंहसु २३७६
वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत् । ऐषु द्युम्नं स्वर्यमत् २३७७

(अथर्व० ६ । ११७ । १-३ । त्रिष्टुप् ।)

अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि यमस्य येन बलिना चरामि ।
इदं तदग्ने अनृणो भवामि त्वं पाशान् विचृतं वेत्थ सर्वान् २३७८
इहैव सन्तः प्रति दद्म एनज् जीवा जीवेभ्यो नि हराम एनत् ।
अपमित्य धान्य१ं यज्जघसाहम् इदं तदग्ने अनृणो भवामि २३७९
अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।
ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम २३८०

(अथर्व० ६ । ११८ । १-३ । त्रिष्टुप्)

यद्धस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाणि अक्षाणां गत्नुमुपलिप्समानाः ।
उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्य अप्सरसावनु दत्तामृणं नः २३८१

उग्रंपश्ये राष्ट्रभृत् किल्बिषाणि यदक्षवृत्तमनु दत्तं न एतत् ।
ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानो यमस्य लोके अधिरज्जुरायत् । २३८२

यस्मा ऋणं यस्य जायामुपैमि यं याचमानो अभ्यैमि देवाः ।
ते वाचं वादिषुर्मोत्तरां मद्देवपत्नी अप्सरसावधीतम् २३८३

(अथर्व० ६ । ११९ । १ ३ । त्रिष्टुप् ।)

यददीव्यन्नृणमहं कृणोमि अदास्यन्नग्न उत संगृणामि ।
वैश्वानरो नो अधिपा वसिष्ठ उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् २३८४

वैश्वानराय प्रति वेदयामि यद्यृणं संगरो देवतासु ।
स एतान् पाशान् विचृतं वेद सर्वान् अथ पक्केन सह सं भवेम २३८५

वैश्वानरः पविता मा पुनातु यत् संगरमभिधावाम्याशाम् ।
अनाजानन् मनसा याचमानो यत् तत्रैनो अप तत् सुवामि २३८६

(अथर्व० ६ । १२१ । १, २, ४ । २३८७, २३३८, त्रिष्टुप्, २३८९, २३९० अनुष्टुप् ।)

विषाणा पाशान् वि ष्याध्यस्मद् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।
दुष्वप्न्यं दुरितं नि ष्वास्मद् अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् २३८७

यद् दारुणि बध्यसे यच्च रज्ज्वां यद् भूम्यां बध्यसे यच्च वाचा ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निर् उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् २३८८

वि जिहीष्व लोकं कृणु बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम् ।
योन्या इव प्रच्युतो गर्भः पथः सर्वां अनु क्षिय २३८९

(अथर्व० ६ । ७६ । १-४ कबन्धः । अनुष्टुप्, २३९२ ककुम्मती ।)

य एनं परिषीदन्ति समादधति चक्षसे । संप्रेद्धो अग्निर्जिह्वाभिर् उदेतु हृदयादधि २३९०

अग्नेः सांतपनस्याहं आयुषे पदमा रभे । अद्धातिर्यस्य पश्यति धूममुद्यन्तमास्यतः २३९१

यो अस्य समिधं वेद क्षत्रियेण समाहिताम् । नाभिह्वारे पदं नि दधाति स मृत्यवे २३९२

नैनं घ्नन्ति पर्यायिणो न सन्नाँ अव गच्छति। अग्नेर्यः क्षत्रियो विद्वान् नाम गृह्णात्यायुषे २३९३

(अथर्व० ६। ७७। १-३। अनुष्टुप्।)

अस्थाद् द्यौरस्थात् पृथिवि अस्थाद् विश्वमिदं जगत्।
आस्थाने पर्वता अस्थु स्थाम्न्यश्वाँ अतिष्ठिपम् २३९४

य उदानट् परायणं य उदानण्न्यायनम्। आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे २३९५

जातवेदो नि वर्तय शतं ते सन्त्वावृतः। सहस्रं त उपावृतस् ताभिर्नः पुनरा कृधि २३९६

अग्निसहचारी देवगणः

१२ वैश्वानरोऽग्निः सूर्यश्च।

(ऋ० १०। ८८। १-१९) मूर्धन्वानाङ्गिरसो, वामदेव्यो वा। सौर्य-वैश्वानरोऽग्नि। त्रिष्टुप्।)

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त २३९७

गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्हम् आविः स्वरभवज्जाते अग्नौ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापो ऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य २३९८

देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिर् अग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम्।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमाम् आततान रोदसी अन्तरिक्षम् २३९९

यो होतासीत् प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद् यत् श्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः २४००

यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन् अतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः २४०१

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस् ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन्।
मायामू तु यज्ञियानामेताम् अपो यत् तूर्णिश्चरति प्रजानन् २४०२

दृशेन्यो यो महिना समिद्धो ऽरोचत दिवियोनिर्विभावा।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः २४०३

*

सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निम् आदिद्धविरजनयन्त देवाः ।
स एषां यज्ञो अभवत् तनूपास् तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः २४०४

यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा ।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमाम् ऋजूयमानो अतपन्महित्वा २४०५

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निम् अजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम् ।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः २४०६

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूताम् आदित् प्रापश्यन् भुवनानि विश्वा २४०७

विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन् ।
आ यस्ततानोषसो विभातीर् अपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् २४०८

वैश्वानरं कवयो यज्ञियासो ऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम् ।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम् २४०९

वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः ।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात् २४१०

द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणाम् अहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च २४११

द्वे समीची बिभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम् ।
स प्रत्यङ् विश्वा भुवनानि तस्थौ अप्रयुच्छन् तरणिर्भ्राजमानः २४१२

यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।
आ शेकुरित् सधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् २४१३

कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् २४१४

यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो३ वसते मातरिश्वः ।
तावद् दधात्युप यज्ञमायन् ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् २४१५

१३ रक्षोहाऽग्निः ।

(ऋ० १० । १६२ । १-६ । रक्षोहा= (गर्भस्य दोषनिवारकः) (अत्रानुसंधेया मन्त्राः १८१३-१८६१) रक्षोहा ब्राह्मः । अनुष्टुप् ।)

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये २४१६

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् २४१७

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि २४१८

यस्त ऊरू विहरति अन्तरा दंपती शये ।
योनिं यो अन्तरारेळ्हि तमितो नाशयामसि २४१९

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि २४२०

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि २४२१

१४ अपां-न-पादग्निः ।

(ऋ० २ । ३५ । १-१५ । गृत्समदः शौनकः । त्रिष्टुप् ।)

उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।
अपां नपादाशुहेमा कुवित् स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि २४२२

इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान २४२३

समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसम् अपां नपातं परि तस्थुरापः २४२४

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु २४२५

अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर् देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् ।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् २४२६

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर् द्रुहो रिषः संपृचः पाहि सूरीन् ।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि २४२७

स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व१न्तर् वसुदेयाय विधते वि भाति २४२८

यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः २४२९

अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर् हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः २४३०

हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृग् अपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात् परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै २४३१

तदस्यानीकमुत चारु नाम अपीच्यं वर्धते नप्तुरपाम् ।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य २४३२

अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर् दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः २४३३

स ईं वृषाजनयत् तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णो ऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष २४३४

अस्मिन् पदे परमे तस्थिवांसम् अध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः २४३५

अयांसमग्ने सुक्षितिं जनाय अयांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः २४३६

१५ अग्नीन्द्रादयः ।

(ऋ० ७ । ४१ । १ । वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्नीन्द्रमित्रावरुणाश्विभगपूषब्रह्मणस्पतिसोमरुद्राः । जगती ।)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम २४३७

१६ अग्निर्मरुतश्च ।

(ऋ० १ । १९ । १-९ । मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।)

प्रति त्यं चारुमध्वरं　गोपीथाय प्र हूयसे　। मरुद्भिरग्न आ गहि　२४३८
नहि देवो न मर्त्यो　महस्तव क्रतुं परः　। मरुद्भिरग्न आ गहि　२४३९
ये महो रजसो विदुर्　विश्वे देवासो अद्रुहः । मरुद्भिरग्न आ गहि　२४४०
ये उग्रा अर्कमानृचुर्　अनाधृष्टास ओजसा　। मरुद्भिरग्न आ गहि　२४४१
ये शुभ्रा घोरवर्पसः　सुक्षत्रासो रिशादसः　। मरुद्भिरग्न आ गहि　२४४२
ये नाकस्याधि रोचने　दिवि देवास आसते । मरुद्भिरग्न आ गहि　२४४३
य ईङ्खयन्ति पर्वतान्　तिरः समुद्रमर्णवम्　। मरुद्भिरग्न आ गहि　२४४४
आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्　तिरः समुद्रमोजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि　२४४५
अभि त्वा पूर्वपीतये　सृजामि सोम्यं मधु　। मरुद्भिरग्न आ गहि　२४४६

(ऋ० ८ । १०३ । १४ । सोभरिः काण्वः । अनुष्टुप् ।)

अग्ने याहि मरुत्सखा　रुद्रेभिः सोमपीतये ।
सोभर्या उप सुष्टुतिं　मादयस्व स्वर्णरे　२४४७

१७ अग्निमित्रावरुणादयः ।

(ऋ० १ । ३५ । १ । हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । अग्निर्मित्रावरुणौ रात्रिः सविता च । जगती ।)

ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये　ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं　ह्वयामि देवं सवितारमूतये　२४४८

१८ अग्निर्वरुणश्च ।

(ऋ० ४ । १ । २-५ । वामदेवो गोतमः । त्रिष्टुप्, २४४९ अति जगती, २४५० धृतिः ।)

स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ　अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम् ।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं　राजानं चर्षणीधृतम्　२४४९

सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न　चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या ।
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो　मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान　शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि　२४५०

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् २४५१
स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि २४५२

१९ अग्नाविष्णू ।

(अथर्व कां० ७ । २९ (३०) । १-२ । मेधातिथिः । त्रिष्टुप् ।)

अग्नाविष्णू महि तद्वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात् २४५३
अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ ।
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात् २४५४

२० अग्निसूर्यौ ।

(ऋ० ८ । ५६ । (८) ५ । वालखिल्यसूक्तम् । पृषध्रः काण्वः । पंक्तिः ।)

अचेत्यग्निश्चिकितुर् हव्यवाट् स सुमद्रथः ।
अग्निः शुक्रेण शोचिषा बृहत्सूरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत २४५५

२१ (केशिनः)–अग्निः सूर्यो वायुश्च ।

(ऋ० १ । १६४ । ४४ दीर्घतमा औचथ्यः । त्रिष्टुप् ।)

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर् ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् २४५६

२२ अग्निसूर्यानिलाः ।

(ऋ० ८ । १८ । ९ इरिम्बिठिः काण्वः । उष्णिक् ।)

शमग्निरग्निभिः करच् छं नस्तपतु सूर्यः । शं वातो वातु अरपा अप स्रिधः २४५७

अग्निसूर्यवायवः।

(ऋ० १० । १३६ । १-७ ॥ २४५८ जूतिः, २४५९ वातजूतिः २४६० विप्रजूतिः, २४६१ वृषाणकः, २४६२ करिक्रतः २४६ एतशः, २४६४ ऋष्यशृङ्गः (एते वातरशना मुनयः) । (केशिनः=) अग्नि-सूर्य-वायवः । अनुष्टुप् ।)

केश्यग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी ।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते २४५८

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मला ।
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद् देवासो अविक्षत २४५९

उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आ तस्थिमा वयम् ।
शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ २४६०

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत् ।
मुनिर्देवस्यदेवस्य सौकृत्याय सखा हितः २४६१

वातस्याश्वो वायोः सखा अथो देवेषितो मुनिः ।
उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः २४६२

अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन् ।
केशी केतस्य विद्वान् त्सखा स्वादुर्मदिन्तमः २४६३

वायुरस्मा उपामन्थत् पिनष्टि स्मा कुनन्नमा ।
केशी विषस्य पात्रेण यद् रुद्रेणापिबत् सह २४६४

अग्नीषोमौ ।

(ऋ० १ । ९३ । १-१२ । गोतमो राहूगणः । २४६५-२४६७ अनुष्टुप्ः २४६८-२४७१, २४७६ त्रिष्टुप्ः २४७२ जगती त्रिष्टुब्वा; २४७३-२४७५ गायत्री ।)

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् । प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः २४६५
अग्नीषोमा यो अद्य वाम् इदं वचः सपर्यति । तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् २४६६
अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् । स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् २४६७

अग्नीषोमा चेति तद् वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषो ऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः २४६८

युवमेतानि दिवि रोचनानि अग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्याद् अग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् २४६९
आन्यं दिवो मातरिश्वा जभार अमथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधाना उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् २४७०
अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतम् अथा धत्तं यजमानाय शं योः २४७१
यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद् देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् २४७२
अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः २४७३
अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत् २४७४
अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् । आ यातमुप नः सचा २४७५
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् २४७६

(अथर्व० ६ । ५४ । १-३ । ब्रह्मा । अनुष्टुप् ।)

इदं तद् युज उत्तरम् इन्द्रं शुम्भाम्यष्टये । अस्य क्षत्रं श्रियं महीं वृष्टिरिव वर्धया तृणम् २४७७
अस्मै क्षत्रमग्नीषोमौ अस्मै धारयतं रयिम् । इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे कृणुतं युज उत्तरम् २४७८
सबन्धुश्चासबन्धुश्च यो अस्माँ अभिदासति । सर्वं तं रन्धयासि मे यजमानाय सुन्वते २४७९

(अथर्व० ६ । ५८ । ३ । अथर्वा (यशस्कामः) । अग्निः, इन्द्रः, सोमः । अनुष्टुप् ।)

यशा इन्द्रो यशा अग्निर् यशाः सोमो अजायत ।
यशा विश्वस्य भूतस्य अहमस्मि यशस्तमः २४८०

(अथर्व० ६ । ९३ । ३ । शन्तातिः । अग्निषोमौ वरुणः मरुतः वातपर्जन्यौ । त्रिष्टुप् ।)

त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधाद् विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः ।
अग्नीषोमा वरुणः पूतदक्षा वातापर्जन्ययोः सुमतौ स्याम २४८१

(अथर्व० ७ । ११४ (११९) । १-२ ॥ भार्गवः । अग्नीषोमौ । अनुष्टुप् ।)

आ ते ददे वक्षणाभ्य आ तेऽहं हृदयाद् ददे ।
आ ते मुखस्य संकाशात् सर्वं ते वर्च आ ददे २४८२
प्रेतो यन्तु व्याध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः ।
अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु सोमो हन्तु दुरस्यतीः २४८३

अग्निदेवता-पुनरुक्त-मन्त्रभागाः ।

ऋग्वेदस्य प्रथमं मण्डलम् ।

[२] १ । १ । २ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । अग्नि)
स देवाँ एह वक्षति ।
(७०५) ४ । ८ । २ (वामदेवो गौतम । अग्नि)
स देवाँ एह वक्षति ।
[४] १ । १ । ४ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । अग्नि)
विश्वत परिभूरसि ।
(१८९२) १।९७ । ६ (कुत्स आंगिरस । अग्नि)
विश्वतः परिभूरसि ।
[५] १ । १ । ५ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । अग्नि)
देवो देवेभिरागमत् ।
(५१२) ३ । १० । ४ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
अग्निर्देवेभिरागमत् ।
[८] १ । १ । ८ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । अग्नि)
राजन्तमध्वराणां ।
(३८) १ । २७ । १ (शुनः शेप आजीगर्ति । अग्नि)
सम्राजन्तमध्वराणाम् ।
(१०३) १ । ४५ । ४ (प्रस्कण्व काण्व । अग्नि)
राजन्तमध्वराणाम् ।
८ । ८ । १८ (सध्वंस काण्व । अश्विनौ)
राजन्तमध्वराणाम् ।
[१०] १ । १२ । १ (मेधातिथि काण्व । अग्नि)
अग्निं दूतं वृणीमहे ।
(७०) १ । ३६ । ३ प्र त्वा दूतं वृणीमहे ।
(८८) १ । ४४ । ३ अद्या दूतं वृणीमहे ।
[१०] १ । १२ । १ (मेधातिथि काण्व । अग्नि)
अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ।
(७०) १ । ३६ । ३ (कण्वो घौर । अग्नि)
प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
(९१) १ । ४४ । ७ (प्रस्कण्व काण्व । अग्नि)
होतारं विश्ववेदसम् ।
(१२२६) ८ । १९ । ३ (सोभरि काण्व । अग्नि)
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ।

[१२ । १ । १२ । ३ (मेधातिथि काण्व । अग्नि)
अग्ने देवाँ इहा वह ।
(१९) १ । १२ । १० (मेधातिथि काण्व । अग्नि)
अग्ने देवाँ इहा वह ।
(२२) १ । १५ । ४ (मेधातिथि काण्व । अग्नि)
अग्ने देवाँ इहा वह ।
[१३] १ । १२ । ४ (मेधातिथि काण्व । अग्नि)
यदग्ने यासि दूत्यम् । देवैरा सत्सि बर्हिषि ।
(२२१) १ । ७४ । ७ (गोतमो राहूगण । अग्नि)
यदग्ने यासि दूत्यम् ।
(९२४) ५ । २६ । ५ (वसूयव आत्रेया । अग्नि)
देवैरा सत्सि बर्हिषि ।
(१३५६) ८ । ४४ । १४ (विरूप आंगिरस । अग्नि)
देवैरा सत्सि बर्हिषि ।
[१५] १ । १२ । ६ (मेधातिथि काण्व । अग्नि)
कविर्गृहपतिर्युवा ।
(११७८) ७ । १५ । २ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
कविर्गृहपतिर्युवा ।
(१४६३) ८ । १०२ । १ (प्रयोगो भार्गव — । अग्नि)
कविर्गृहपतिर्युवा ।
[१६] १ । १२ । ७ कविमग्निमुप स्तुहि ।
१ । १३६ । ६ इन्द्रमग्निमुप स्तुहि ।
[१६] १ । १२ । ७ सत्यधर्माणमध्वरं ।
५ । ५१ । २ सत्यधर्माणो अध्वरम् ।
[१८] १ । १२ । ९ (मेधातिथि काण्व । अग्नि)
तस्मै पावक मृळय ।
(१३७०) ८ । ४४ । २८ (विरूप आंगिरस । अग्नि)
तस्मै पावक मृळय ।
[१९] १ । १२ । १० (मेधातिथि काण्व । अग्नि)
स नः पावक दीदिवः ।
(५१६) ३ । १० । ८ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
स नः पावकः दीदिहि ।
[१९] १ । १२ । १०; (१२) १ । १२ । ३, (२२) १ । १५ । ४
अग्ने देवाँ इहा वह ।

[२०] १ । १२ । ११ (मेधातिथि काण्व । अग्निः)
स नः स्तवान आ भर।
...रयिं वीरवतीमिषम्।
८ । २४ । ३ (विश्वमना वैयश्व । इन्द्र)
स नः स्तवान आ भर रयिं।
९ । ४० । ५ (बृहन्मतिराङ्गिरस । पवमान सोम)
स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यम्।
९ । ६१ । ६ अमहीयुराङ्गिरस । पवमान सोम)
स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम्।
[२१] १ । १२ । १२ (मेधातिथि काण्व । अग्नि)
अग्ने शुक्रेण शोचिषा।
.. इमं स्तोमं जुषस्व न ।
(१३५६) ८ ४४।१४ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
अग्ने शुक्रेण शोचिषा।
(१५८८) १० । २१ । ८ (विमद ऐन्द्र । अग्नि)
अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु।
(१३२५) ८।४३।१६ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
इमं स्तोमं जुषस्व मे ।
[२२] १ । १५ । ४. (१२) १ । १२ । ३. (१९) १ । १२ । १०
अग्ने देवाँ इहा वह ।
[२८] १ । २६ । १; १ । १४ । ११, **सेमं नो अध्वरं यज।**
[३१] १ । २६ । ४ (शुन शेप आजीगर्ति । अग्नि)
वरुणो मित्रो अर्यमा । सीदन्तु मनुषो यथा।
१ । ४१ । १ (कण्वो घौर. । वरुणमित्रार्यमण.)
वरुणो मित्रो अर्यमा ।
४ । ५५ । १० (वामदेवो गौतम । विश्वेदेवा)
वरुणो मित्रो अर्यमा।
५ । ६७ । ३ (यजत आत्रेय. । मित्रावरुणौ)
वरुणो मित्रो अर्यमा ।
८ । १८ । ३ (इरिम्बिठि काण्व । आदित्या)
वरुणो मित्रो अर्यमा ।
८ । २८ । २ (मनुर्वैवस्वत । विश्वेदेवा)
वरुणो मित्रो अर्यमा ।
८ । ८३ । २ (कुसीदी काण्व । विश्वेदेवा)
वरुणो मित्रो अर्यमा ।
९ । ६४ । २९ (कश्यपो मारीच । पवमान सोम)
सीदन्तो वनुषो यथा ।
[३२] १ । २६ । ५ (शुन शेप आजीगर्ति. । अग्निः)
इमा उ षु श्रुधा गिरः।

(१०४) १ । ४५ । ५ (प्रस्कण्व काण्व । अग्नि)
इमा उ षु श्रुधी गिरः।
(४३३) २ । ६ । १ (सोमाहुतिर्भार्गव । अग्नि)
इमा उ षु श्रुधी गिरः।
[३७] १ । २६ । १० (शुन शेप आजीगर्ति । अग्नि)
इमं यज्ञमिदं वचः ।
१ । ९१ । १० (गोतमो राहूगण । सोम)
इमं यज्ञमिदं वचो । जुजुषाण उपागहि ।
(१६९९) १० । १५० । २ (मृळीको वासिष्ठ । अग्नि)
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।
[३८] १ । २७ । १ (शुन शेप आजीगर्ति । अग्नि)
सम्राजन्तमध्वराणाम् ।
(८) १।१।८; (१०३) १ । ४५ । ४ **राजन्तमध्वराणां।**
८ । ८ । १८ **राजन्तावध्वराणां ।**
[५७] १ । ३१ । ८ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । अग्नि)
यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः।
९ । ६९ । १० (हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । पवमान सोम.)
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः।
१० । ६७ । १२ (अयास्य आङ्गिरस । बृहस्पति)
देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः।
[७०] १ । ३६ । ३ **प्र त्वा दूतं वृणीमहे,**
(१०) १ । १२ । १ **अग्निं दूतं वृणीमहे ।**
(८८) १ । ४४ । ३ **अद्या दूतं वृणीमहे ।**
[७०] १।३६।३; (१०) १ । १२ । १; (९२) १ । ४४ । ७
होतारं विश्ववेदसं ।
[७१] १ । ३६ । ४ **देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा ।**
१ । ४० । ५ **यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा ।**
७ । ६६ । १२ **यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा ।**
७।८२।१०; ८३।१० **अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा ।**
८ । १९ । १६ **येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा।**
८ । २६ । ११ **सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा।**
१० । ३६ । १ **द्यावा क्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।**
१० । ६५ । १ **अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा ।**
१० । ६५ । ९ **इन्द्रवायू वरुणो मित्रो अर्यमा ।**
१० । ९२ । ६ **तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा ।**
[७२] १ । ३६ । ५ (कण्वो घौर । अग्नि)
अग्ने दूतो विशामसि ।
(९४) १ । ४४ । ९ (प्रस्कण्व काण्व । अग्नि)
अग्ने दूतो विशामसि।

[७४] १ । ३६ । ७ (कण्वो घौर । अग्नि)
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
८ । ६९ । १७ (प्रियमेध आङ्गिरस । इन्द्र)
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
[७५] १ । ३६ । ८ (कण्वो घौर । अग्नि)
उरु क्षयाय चक्रिरे।
७ । ६० । ११ (वसिष्ठ । मित्रावरुणौ)
उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ।
[७७] १ । ३६ । १० (कण्वो घौर । अग्नि)
यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
(९०) १ । ४४ । ५ (प्रस्कण्व काण्व । अग्नि)
याजिष्ठं हव्यवाहन।
(११८२) ७ । १५ । ६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
यजिष्ठो हव्यवाहनः।
(१२४४) ८ । १९ । २१ (सोभरि काण्वः । अग्नि)
यजिष्ठं हव्यवाहनम् ।
[७९] १ । ३६ । १२ **स नो मृळ महाँ असि।**
(७१२) ४ । ९ । १ **अग्ने मृळ महाँ असि ।**
१ । ३६ । १४ (कण्वो घौर । यूप)
कृधी न **उर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे।**
१ । १७२ । ३ (अगस्त्यो मैत्रावरुण । मरुतः)
ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ।
[८०] १ । ३६ । १५ (कण्वो घौर । अग्नि)
पाहि नो अग्ने रक्षस पाहि धूर्तेरराव्णः ।
(१११२) ७ । १ । १३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात्पाहि **धूर्तेरररुषो** अघायो
[८७] १ । ४४ । २ (प्रस्कण्व काण्व । अग्नि)
अग्ने रथीरध्वराणाम् ।
(१२१५) ८ । ११ । २ (वत्स काण्व । अग्नि)
अग्ने रथीरध्वराणाम्।
[८७] १ । ४४ । २; १ । ९ । ८; ८ । ६५ । ९
अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ।
[८८] १ । ४४ । ३ **अद्या दूतं वृणीमहे ।**
(१०) १ । १२ । १ **अग्निं दूतं वृणीमहे ।**
(७०) १ । ३६ । ३ **प्र त्वा दूतं वृणीमहे ।**
[९०] १ । ४४ । ५, (७७) १ । ३६ । १०
यजिष्ठं हव्यवाहन । ७ । १५ । ६ **यजिष्ठो हव्यवाहनः** । ८ । १९ । २१ **यजिष्ठ हव्यवाहनं ।**
[९२] १ । ४४ । ७; (१०) १ । १२ । १;
(७०) १।३६। ३ **होतारं विश्ववेदसं ।**

[९४] १ । ४४ । ९, (७२) १ । ३६ । ५
अग्ने दूतो विशामसि ।
[९६] १ । ४४ । ११ (प्रस्कण्व काण्व । अग्नि)
नि त्वा यज्ञस्य साधनम् ।
(५३८) ३ । २७ । २ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
गिरा **यज्ञस्य साधनम् ।**
८ । ६ । ३ (वत्स काण्व । इन्द्र)
स्तोमैर्य**ज्ञस्य साधनम् ।**
(१२७८) ८ । २३ । ९ (विश्वमना वैयश्व । अग्नि)
यज्ञस्य साधनं गिरा।
[९९] १ । ४४ । १४ (प्रस्कण्व काण्व । अग्नि)
अग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
अश्विभ्यामुषसा सजूः ।
७ । ६६ । १० (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । आदित्य)
अग्निजिह्वा ऋतावृधः।
१० । ६५ । ७ (वसुकर्णो वासुक्र । विश्वेदेवा)
दिवक्षसो **अग्निजिह्वा ऋतावृधः ।**
५ । ५१ । ८ (स्वस्त्यात्रेय । विश्वेदेवा)
अश्विभ्यामुषसा सजूः ।
[१०३] १ । ४५ । ४ (प्रस्कण्व काण्व । अग्नि)
प्रियमेधा अहूषत ।
८।८।१८ (सध्वंस काण्व । अश्विनौ)
प्रियमेधा अहूषत ।
८।८७।३ द्युम्नीको वा वासिष्ठ । अश्विनौ)
[१०३] १,४५,४; (८) १,१,८ **राजन्तमध्वराणाम् ।**
८,८,१८ **राजन्तावध्वराणाम् ।**
(३८) १,२७,१ **सम्राजन्तमध्वराणाम् ।**
[१०३] १,४५,४ **अग्निं शुक्रेण शोचिषा ।**
(२१) १,१२,१२ **अग्ने शुक्रेण शोचिषा।**
[१०४] १,४५,५; (३२) १,२६,५, २,६,१
इमा उ षु श्रुधी गिरः ।
[१०५] १,४५,६ (प्रस्कण्व काण्व । अग्नि)
अग्ने हव्याय वोळ्हवे ।
(५६१) ३,२९,४ (विश्वामित्रो गाथिन अग्नि)
अग्ने हव्याय वोळ्हवे ।
[१०६] १ । ४५ । ७ (प्रस्कण्व काण्व । अग्नि)
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं ।
(१६८९) १०,१४०,६ (अग्नि पावक । अग्नि)
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा ।

[१०७] १,४५,८, अग्ने **मर्ताय दाशुषे** १ ८४,७,९,९८,४ वसु **मर्ताय दाशुषे** । ८,१,२२ देवां **मर्ताय दाशुषे** ।

[१११] १,५८,२ (नोधा गौतम । अग्नि)

दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ।

९,८६,९ (अकृष्टा माषा । पवमान सोम)

[११३] १,५८,४ (नोधा गौतम । अग्नि)

कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ।

(७०१) ४,७,९ (वामदेवो गौतम । अग्नि)

कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाः ।

(११६) १ । ५८ । ७ (नोधा गौतम । अग्नि)

यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।

सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ।

१०, ३०, ४ (कवष ऐलूष । आप अपानपात् वा)

यं विप्रास ईळते अध्वरेषु ।

३,५४,२ (प्रजापतिर्वैश्वामित्र प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वेदेवा)

सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ।

[११७] १,५८,८ **अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य** ४,२,२ **इह त्वं सूनो०**-६,५०,९ **उत त्वं सूनो०**-।

[११८]१,५८,९,(१२३) १,६०,५, १,६१,१६;१,६२,१३, १,६४, १५, ८,८०, १०, ९, ९३, ५ **प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्** ।

[१२२] १,६०,४ (नोधा गौतम । अग्नि)

अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ।

(१९५) १,७२,१ (पराशर शाक्य अग्नि)

[१४३] १ । ६६ । ९, १० (पराशर शाक्त्य । अग्नि)

एनोन्नवन्त गावः स्व १ र्दृशीके ।

(१७३) १, ६९,९, १० (पराशर शाक्त्य । अग्नि)

नवन्त विश्वे स्व १ र्दृशीके ।

[१६२] १, ६८, ९, १०, **पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त** ।

९, ९७, ३०, **पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यता न** ।

[१७०] १, ६९, ७ **नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति** ।

१०, १०,५ **नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि** ।

[१७३] १, ६९, ९, १० ; (१४३) १, ६६, ९, १०

[१७८] १, ७०, ५, ६, (पराशर शाक्त्य । अग्नि)

स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां ।

(११६५) ७, १०, ५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)

स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणाम् ।

[१८८] १, ७१, ४ (पराशर शाक्त्य । अग्नि)

मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा ।

(३४८) १, १४८, १ (दीर्घतमा औचथ्य । अग्नि.)

मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा ।

[१९३] १,७१,९ (पराशर शाक्त्यः । अग्नि.)

राजानामित्रावरुणा सुपाणी ।

३, ५६, ७ (प्रजापतिर्वैश्वामित्र प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वेदेवा)

[१९४] १, ७१, १० (पराशर शाक्त्य । अग्नि)

प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कवि सन् ।

७, १८, २ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्रः)

एवाव द्युभिरभि०— ।

[१९५] १, ७२, १ (पराशर शाक्त्य । अग्नि)

हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।

७, ४५, १ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । सविता)

[१९५] १,७२,१; (१२२) १,६०,४ **अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणां** ।

[१९७] १,७२,३ (पराशर शाक्त्य । अग्नि)

नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि ।

(९४२) ६,१,४ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)

[१९८] १,७२,४ **अग्निं पदे परमे तस्थिवांसम्** ।

२,३५,१४ **अस्मिन् पदे०— ।**

[१९९] १,७२,५ (पराशर शाक्त्य । अग्नि)

रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः ।

४,२४,३ (वामदेवो गौतम । इन्द्र)

रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम ।

[२०३] १,७२,९ (पराशर शाक्त्य । अग्नि)

कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।

३,३१,९ (कुशिक ऐषीरथि विश्वामित्रो गाथिनो वा । इन्द्र)

[२०६] १,७३,२ (पराशर शाक्त्य । अग्नि)

देवो न यः सविता सत्यमन्मा ।

९,९७,४८ (कुत्स आङ्गिरसः । पवमान सोमः)

[२०७] १,७३,३ (पराशर शाक्त्य । अग्नि)

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।

पुरः सदः शर्मसदो न वीरा ।

३, ५५, २१ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वेदेवा)

इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति०—।

[२११] १,७३,८ (पराशर शाक्त्य. । अग्नि·)

आपप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ।

१०,१३९,२ (विश्वावसुर्देवगन्धर्व । सविता)
[२१४] १,७३,१० (पराशर शाक्त्य । अग्नि)
एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु।
(६६६) ४,२,२० (वामदेवो गौतम । अग्नि)
एता ते अग्न उचथानि वेधोऽवोचाम कवये **ता जुषस्व।**
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो **रायः** पुरुवार प्र यन्धि।
[२१७] १,७४,३ (गोतमो राहूगण । अग्नि)
अग्निर्**वृत्रहा**जनि।
धनंजयो रणेरणे।
(१०५६) ६,१६,१५ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्निः)
दस्युहन्तमम्।
धनंजयं रणेरणे।
[२२१] १.७४,७;(१३) १,१२,४ **यदग्ने यासि दूत्यम्।**
[२२७] १,७५,४ (गोतमो राहूगण । अग्नि)
सखा सखिभ्य ईड्यः।
९ ६६,१ (शतं वैखानसा । पवमान सोम)
[२३२] १,७६,४ (गोतमो राहूगण । अग्नि)
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र।
(१४९३) १०,२,२ (त्रित आप्त्य । अग्नि)
— पोत्रं जनानां।
[२३४] १, ७७, १ (गोतमो राहूगण । अग्नि)
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ।
(६४७) ४, २, १ (वामदेवो गौतम । अग्नि)
—० ऋतावा । होता यजिष्ठो।
[२३७] १, ७७, ४ **वाजप्रसूता इषयन्त मन्म।**
७, ८७, ३ **प्रचेतसो य इषयन्त मन्म।**
[२३९] १, ७८, १ (गोतमो राहूगण । अग्नि)
अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे।
द्युम्नैरभि प्र णोनुमः।
४,३२, ९ (वामदेवो गौतम. । इन्द्र)
अभि त्वा गोतमा गिरानूषत।
(१०७०) ६, १६, २९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)
आ भर जातवेदो विचर्षणे।
(१०७७) ६. १६, ३६ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)
आ भर जातवेदो विचर्षणे।
(१३११) ८, ४३, २ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
जातवेदो विचर्षणे।
[२३९ - २४३] १. ७८. १–५ **द्युम्नैरभि प्र णोनुमः।**
[२४६] १, ७९, ३ (गोतमो राहूगण । अग्निः)
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा।

८, २७, १७ (मनुर्वैवस्वत । विश्वेदेवा)
—वरुणः सरातयो।
१०, ९३, ४ (तान्व पार्थ्य । विश्वेदेवा)
[२४७] १, ७९, ४ (गोतमो राहूगण । अग्नि)
ईशानः सहसो यहो।
(११८७) ७, १५, ११ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
[२४८] १,७९,५ (गोतमो राहूगण । अग्नि)
अग्निरीळेन्यो गिरा।
(१८५५)१०,११८,३(उरुक्षय आमहीयव । रक्षोहाऽग्नि)
[२५१] १,७९,८ (गोतमो राहूगण । अग्नि)
सत्रासाहं वरेण्यम्।
३,३४,८ (विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्र)
—वरेण्यं सहोदां।
[२५२] १,७९,९ (गोतमो राहूगण । अग्नि)
रयिं विश्वायुपोषसम्।
६,५९,९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । इन्द्राग्नी)
[२५५] १, ७९, १२ (गोतमो राहूगण । अग्नि)
अग्नी रक्षांसि सेधति।
(११८६) ७, १५, १० (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
[२५६–२६९] १, ९४, १–१४ **अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव।**
[२५८] १, ९४, ३ (कुत्स आङ्गिरस । अग्नि)
त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्।
(३८१) २,१,१३ (गृत्समद शौनको भार्गव (आङ्गिरस शौनहोत्रो) । अग्नि)
[२६८] १, ९४, १३ **शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमे।**
५, ६५, ५ **स्याम सप्रथस्तमे।**
[२७१] १, ९४, १६, **(१८७८) ९५, ११, (१८७८)**
९६, ९; (१७२६) ९८, ३, १००, १९, १०२,
११; १०३, ८; १०५, १९, १०६, ७, १०७,
३, १०८, १३; १०९ ८; ११०, ९, १११, ५;
११२, २५; ११३, २०; ११४, ११, ११५, ६;
९, ९७,५८; तन्नो मित्रो वरुणो मामह-
न्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।
[१८७२] (औषसोऽग्नि प्रकरणं) । ऋ १।९५।१-११
१, ९५, ५**जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे।**
२, ३५, ९ **जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः।**
[१८७५] १,९५,८ (कुत्स आङ्गिरसः । अग्नि औषसोऽग्निर्वा)
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत् गोभिरद्भिः। धीः।

९.७१,८ (ऋषभो वैश्वामित्र । पवमान सोम.)
त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य सुष्टुती गोअग्रया।
(ऋ१, ९६, १—९ द्रविणोदा अग्निः प्रकरण ।)
[१८७८] १.९५.११; १.९६.९ (कुत्स आङ्गिरस । अग्नि.)
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो
रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति
सिन्धु पृथिवी उत द्यौः ।
[१८७९-१८८६] १, ९६, १-७ देवा अग्निं
धारयन्द्रविणोदाम् ।
[१८८४] १.९६.६ (कुत्स आङ्गिरस । अग्नि
द्रविणोदा अग्निर्वा)
रायो बुध्नः संगमनो वसूनां ।
१०,१३९,३ विश्वावसुर्देव गन्धर्वः । सविता)
[१८८६] १।९६ । ८ द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य ।
१,१५,७ द्रविणोदा द्रविणसो ।
[१८७८] १.९६.९ (१८७८) १. ९५, ११
(शुचिरग्नि प्रकरणं ऋ १, ९७, १-८)
(१८८७-१८९४) १,९७, १, १-८,
अप नः शोशुचदघम् ।
[१८८९] १, ९७, ३ प्रास्माकासश्च सूरयः ।
(८४०) ५, १०, ६ अस्माकासश्च सूरयो ।
[१८९२] १, ९७, ६ , (४) १, १, ४
विश्वतः परिभूरसि ।
[१७२५] १, ९८. २ (कुत्स आङ्गिरस । अग्नि ,
वैश्वानरोऽग्निर्वा)
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां । स नो दिवा
स रिषः पातु नक्तम् ।
(१७९५) ७, ५, २ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । वैश्वानरोऽग्नि)
पृष्टो दिवि धाय्यग्निःपृथिव्यां ।
(१८९८) १०, ८७, १ (पायुर्भारद्वाज । रक्षोहाग्नि)
स नो दिवा ।
(जातवेदा अग्नि प्रकरण)
[१८९२] १, ९९, १ स न पर्षदति दुर्गाणि विश्वा ।
(३६२) १, १८९, २, १०. ५६. ७
स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
[२७२] १, १२७, १ वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं ।
(१४१९) ८. ७१. ११ अग्निं सूनुं०-
[२७३] १,१२७,२ (परुच्छेपो दैवोदासिः। अग्निः) हुवेम
विप्रेभिः शुक्र मन्मभि । होतारं चर्षणीनाम् ।

(१३९१) ८ । ६०, ३ (भर्गः प्रागाथः । अग्निः)
विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः
१२७६) ८, २३, ७ (विश्वमना वैयश्वः । अग्निः)
अग्निं वः हुवे होतारं चर्षणीनाम् ।
(१४०५) ८, ६०, १७ (भर्ग· प्रागाथः । अग्निः)
अग्निमग्निं वो हुवेम । होतारं चर्षणीनाम् ।
[२७९] १, १२७; ८ (परुच्छेपो दैवोदासि । अग्निः)
अतिथिं मानुषाणां ।
(१२९४) ८ २३, २५ (विश्वमना वैयश्व । अग्नि)
[२८०] १, १२७, ९ (परुच्छेपो दैवोदासिः । अग्नि)
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
१, १७५, ५ (अगस्त्यो मैत्रावरुण । इन्द्र)
[२८१] १, १२७, १० (परुच्छेपो दैवोदासि । अग्नि)
विश्वासु क्षासु जोगुवे ।
५, ६४, २ (अर्चनाना आत्रेय । मित्रावरुणौ)
[२८४] १, १२८, २ (परुच्छेपो दैवोदासि । अग्नि)
ऋतस्य पथा नमसा हविष्मता ।
(१९९३) १०, ७०, २ (सुमित्रो वाध्र्यश्व ।
आप्रीसूक्तं=नराशंस)
ऋतस्य नमसा मियेधो ।
१०, ३१, २ (कवष ऐलूषः । विश्वे देवाः)
पथा नमसा विवासेत् ।
[२८८] १,१२८,६ (परुच्छेपो दैवोदासि । अग्नि)
अरतिः . ।
... देवत्रा हव्यमोहिषे ।
अग्निर्द्वारा व्यृण्वति ।
(१२२४) ८,१९,१ (सोभरिः काण्व । अग्नि)
अरतिं० देवत्रा हव्यमोहिरे ।
(१३०५) ८,३९,६ (नाभाक काण्व । अग्नि)
अग्निर्द्वारा व्यूर्णुते ।
[२९०] १,१२८,८ (परुच्छेपो दैवोदासिः । अग्नि·)
अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं
न्येरिरे
(७६१) ५,१,७ (बुधगविष्ठिरावात्रेयौ । अग्निः)
अग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
(१०१९) ६,१४.२ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः)
अग्निं होतारमीळते
(११९२) ७,१६.१ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । प्रगाथ·)
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं ।

[३०१] १,१४०,१० (दीर्घतमा औचथ्यः। अग्नि)
अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिहि।
(१७८५) ६,८,६ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। वैश्वानरोऽग्नि)
—धारयानामि।
[३१३] १,१४१,९ अराम्न नेमिः परिभूरजायथा ।
१,३२,१५— परि ता बभूव।
[३१९] १,१४३,२ (दीर्घतमा औचथ्य। अग्नि)
स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निः।
(१७८१) ६,८,२ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। वैश्वानरोऽग्नि)
— व्योमनि व्रतान्यग्निः।
(१८००) ७,५,७ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । वैश्वानरोऽग्नि)
—व्योमन्।
ऋतपत्याय जातवेदो ।
[३२५] १, १४३, ८ अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः।
(१७८६) ६, ८, ७ अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन्।
[३२९] १, १४४, ४ समाने योना मिथुना समोकसा।
१, १५९, ४ जामी सयोनी--।
[३३०] १, १४४, ५ (दीर्घतमा औचथ्य । अग्नि)
देवं मर्तास ऊतये हवामहे।
(५००) ३, ९, १ (विश्वामित्रो गाथिनः। अग्नि.)
देवं मर्तास ऊतये।
(९०१) ५, २२, ३ (विश्वसामा आत्रेयः। अग्निः)
— ऊतये।
(१२१९) ८, ११, ६ (वत्स काण्व । अग्नि)
—ऊतये। अग्निं गीर्भिर्हवामहे।
[३३२] १, १४४, ७ (दीर्घतमा औचथ्य । अग्निः)
मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
रण्वः संदृष्टौ पितुमाँइव क्षयः।
(१४४८) ८, ७४, ७ (गोपवन आत्रेय.। अग्निः)
मन्द्र सुजात सुक्रतो।
१०, ६४, ११ (गयः प्लात। विश्वेदेवाः)
— क्षयो।
[३४०] १, १४६, ३ समानं वत्समभि संचरन्ती।
३, ३३, ३; १०, १७, ११ समानं योनिमनु संचरन्ती (१०, १७, ११, संचरन्तम्)।
[३४३] १, १४७, १ (दीर्घतमा औचथ्यः। अग्निः)
ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः।

(६९९) ४, ७, ७ (वामदेवो गौतमः। अग्नि.)
—धामन्रणयन्त—।
[३४५] १, १४७, ३ (दीर्घतमा औचथ्य. । अग्नि)
(१८२५) ४, ४, १३ (वामदेवो गोतम । रक्षोहाऽग्नि.)
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्। — ररक्ष तान्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः।
[३४८] १,१४८,१ मथीद्यदी विष्टो मातरिश्वा।
(१८८) १,७१,४ — विभृतो-।
[३५१] १,१४८,४ (दीर्घतमा औचथ्य । अग्नि)
आदस्य वातो अनु वाति शोचिः।
(११२५) ७,३,२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । अग्नि.)
[३५३] १,१४९,१ (दीर्घतमा औचथ्यः। अग्नि)
महः स राय एषते पतिर्दन्।
१०,९३,६ (तान्व पार्थ्य. । विश्वेदेवा)
—एषते।
[३६१] १,१८९,१ (अगस्त्यो मैत्रावरुण । अग्नि)
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
(४७५) ३,५,६(विश्वामित्रो गाथिन. । अग्नि)
—देवो—।
[३६२] १,१८९,२ (अगस्त्यो मैत्रावरुणः। अग्नि)
स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा।
१०,५६,७ (बृहदुक्थो वामदेव्य. । विश्वेदेवा)
[२४३८-४६] १, १९, १-९ मरुद्भिरग्न आ गहि।
[२४४०] १, १९, ३ (मेधातिथि काण्व । अग्निर्मरुतश्च)
विश्वे देवासो अद्रुहः।
९, १०२, ५ (त्रित आप्त्य । पवमानः सोम)
[२४४६] १, १९, ९ (मेधातिथि काण्व । अग्निर्मरुतश्च)
अभि त्वा पूर्वपीतये।
८, ३, ७ (मेधातिथि काण्व । इन्द्रः)
[२४६६] १, ९३, २ (गोतमो राहूगण । अग्नीषोमौ)
गवां पोषं स्वश्व्यम्।
९, ६५, १७ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा। पवमान. सोम)
[२४६७] १, ९३, ३ (गोतमो राहूगण । अग्नीषोमौ)
विश्वमायुर्व्यश्नवत्।
८, ३१, ८ (मनुर्वैवस्वतः। दम्पती)
विश्वमायुर्व्यश्नुतः।
१०. ८५, ४२ (सूर्या सावित्री ऋषिका । सूर्या सावित्री)
विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।

[२४६८] १, ९३, ४ अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं ।
३, १२, ९ तद्वां चेति प्र वीर्यम् ।
[२४७०] १, ९३, ६ (गोतमो राहूगण । अग्नीषोमौ)
यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ।

७, ९९, ४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्राविष्णू)
[२४७२] १, ९३, ८ (गोतमो राहूगण. । अग्नीषोमौ)
विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
७, ८२, १ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । इन्द्रावरुणौ)

ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलम् ।

[३७०] २, १, २ (गृत्समद शौनको भार्गव [आङ्गिरस शौनहोत्र] । अग्नि)
(१६६०) १०, ९१, १० (अरुणो वैतहव्य । अग्नि)
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ।

[३८१] २, १, १३ (२५८) १ ९४ ३
त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
[३८४] २, १, १६ (गृत्समद शौनको भार्गव [आङ्गिरस शौनहोत्र] । अग्नि)=
(३८४) २, २, १३, (गृत्समद शौनक । अग्नि)
ये स्तोतृभ्यो गो अग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ।

(३८४) २, १, १६, २, १३, ११, २१; १३, १३; १४, १२ १५, १०; १६, ९, १७, ९, १८, ९ २०, ९ २३, १९ २४, १६ २७, १७; २८, ११, २९, ७; ३३, १५; ३५, १५; ३९, ८, ४०, ६, ४२, ३, ९, ८६, ४८, बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ।

[३८६] २, २, २ (गृत्समद शौनक । अग्नि)
अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
८, ८८, १ (नोधा गोतम । इन्द्र)
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
[३८८] २, २, ४ पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ।
९, ७०, ३ अदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।

[३९२] २, २, ८ (गृत्समद शौनक । अग्नि)
होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरः ।
(१५४४) १०, ११, ५ (हविर्धान आङ्गि । अग्नि)
होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।

[४१७] २, ४, २ (सोमाहुतिर्भार्गव । अग्नि)
इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वा३यो ।
(१६०२) १०, ४६, २ (वत्सप्रिर्भालन्दन. । अग्नि.)
—सधस्थे ।
इच्छन्तो धीरा भृगवोऽविन्दन् ।
[४२८] २, ५, ४ (सोमाहुतिर्भार्गव । अग्नि.)
वया इवानु रोहते ।
८, १३, ६ (नारद काण्व. । इन्द्र)
—जुषन्त यत् ।
[४३२] २, ५, ८ (सोमाहुतिर्भार्गव । अग्नि)
अयमग्ने त्वे अपि ।
(१३७०) ८, ४४, २८ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
[४३३] २, ६, १ (३२) १, २६, ५; (१०४) १, ४५, ५
इमा उ षु श्रुधी गिरः ।
[४३७] २, ६, ५ (सोमाहुतिर्भार्गव । अग्नि)
स नो वृष्टिं दिवस्परि ।
९, ६५, २४ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमान सोम)
ते नो — ।
[४४३] २, ७, ३ अति गाहेमहि द्विषः ।
(५३९) ३, २७, ३ अति द्वेषांसि तरेम ।
[४४४] २, ७, ४ (सोमाहुतिर्भार्गव । अग्नि)
शुचिः पावक वन्द्यो ।
(११८६) ७, १५, १० (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्नि)
—ईड्यः ।
[४०१] २, ८, ५ अग्निमुक्थानि वावृधुः ।
८, ६, ३५; ८, ९५, ६ इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
[४०१] २, ८, ५ (गृत्समद शौनक । अग्नि)
विश्वा अधि श्रियो दधे ।
(१५८३) १०, २१, ३ (विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक । अग्नि)
—श्रियो धिषे विवक्षसे ।

१०, १२७, १ (कुशिक सौभर रात्रिर्वा भारद्वाजी। रात्रि)
—श्रियो ऽधित।
[४०२] २, ८, ६ (गृत्समद शौनक । अग्नि)
अरिष्यन्त सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यत।
८, २५, ११ (विश्वमना वैयश्व । विश्वेदेवा)
अरिष्यन्तो नि पायुभि सचेमहि।

९, ३५, ३ (प्रभूवसुराङ्गिरस । पवमान सोम)
अभि ष्याम पृतन्यतः।
(९२०) ५, २६, १, (१०४३) ६, १६, २,
(१४७८) ८, १०२, १६.
आ देवान्वक्षि यक्षि च
२ ३६, ४, (गृत्समद शौनक । अग्नि शुचिश्च)
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि च।

ऋग्वेदस्य तृतीयं मण्डलम्।

[४५१] ३,१,५, क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः।
३,३१,१६ मध्वः पुनाना —।
[४५९] ३ १,१३, १,१६४,५२
अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां।
[४६१] ३,१,१५ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः।
३,५४,१ (प्रजापतिर्वैश्वामित्र, प्रजापतिर्वाच्यो वा। विश्वेदेवा) शृणोतु नो —।
[४६५] ३,१,१९ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान महीभिरूतिभिः सरण्यन्।
३,३१,१८ (कुशिक ऐषीरथि विश्वामित्रो गाथिनो वा। इन्द्र)
४,३२,१ (वामदेवो गौतम । इन्द्र)
आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि। महान्महीभिरूतिभि।
[४६६] ३,१,२० (विश्वामित्रो गाथिन । अग्निः)
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदाः।
३, ३०, २ (विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्र)
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा।
(४६६) ३, १, २१, (४६७) ३, १, २० जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदाः।
[४६७] ३, १, २१ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम।
३, ५९, ४ (विश्वामित्रो गाथिन । मित्र)
६, ४७, १३ (गर्गो भारद्वाज । इन्द्र)
१०, १३१, ७ (सुकीर्ति काक्षीवत । इन्द्र)
१०, १४, ६ (यमो वैवस्वत । अङ्गिर पितृअथर्वभृगवसोम। लिङ्गोक्तदेवता पितरो वा)
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि —
[४६८] ३ १ २२ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
अग्ने महि द्रविणमा यजस्व।
(१६५०) १० ८० ७ (अग्नि सौचीको वैश्वानरो वा सप्तिर्वाजंभरो वा। अग्नि)
[४६९] ३, १, २३ = ३,५,११ = ३,६,११ = ३,७,११ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि) ३,१५,७ (उत्कील कात्य । अग्नि) = ३,२२,५ (गाथी कौशिक । अग्नि) = ३,२३,५ (देवश्रवा देववातश्च भारतौ। अग्नि)
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे।
[४७३] ३,५,४, मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो।
(७७९) ५, ३, १ त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः।
[४७३] ३ ५ ४, (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
मित्रो होता वरुणो जातवेदाः।
१०,८३,२ (मन्युस्तापस । मन्यु)
मन्युर्होता—।
[४७४] ३,५,५, (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः।
(१७६५) ४,५,८, (वामदेवो गौतम । वैश्वानरोऽग्नि)
—रूपो—
[४७५] ३, ५, ६ विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान्।
(६६१) १, १८९, १ —देव—।
[४६९] ३, ५, ११=३, १ २३=३, ६, ११ = ३, ७, ११
३, १५ ७=३, २२, ५=३ २३, ५
[४८१] ३, ६, २ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
आ रोदसी अपृणा जायमान

४ १८,५ (अदिति ऋषिका । वामदेव)
आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
(१८११) ७, १३, २ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि ।
वैश्वानरोऽग्नि)
—जायमानः ।
(१५९४) १० ४५, ६ (वत्सप्रिर्भालन्दन । अग्नि)
—अपृणाज्जायमानः ।
[४८४] ३, ६, ५ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
त्वं दूतो अभवो जायमानः ।
[४८५] ३, ६, ६, (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ।
(९९३) ६, १०, १ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)
—करति जातवेदा ।
(१२०६) ७, १७, ३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
(१२०७) ७, १७, ४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
—करति जातवेदा ।
[४८८] ३, ६, ९ (१९५२) २, ३, ११ **अनुष्वधमा वह मादयस्व ।**
[४९१] ३, ६, ११ ३, १, २३ ३, ५, ११
३ ६, ११, ३, ७, ११;
३, १५, ७ ३, २२, ५ ३, २३, ५
[४९७] ३, ७ ८, (१९५९) ३, ४, ७
[५००] ३, ९, १ : (९०१) ५ २२, ३, ८, ११, ६
देवं मर्तास ऊतये ।
(३३०) १, १४४, ५ **— ऊतये हवामहे ।**
[५००] ३, ९, १ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
अपां नपातं सुभग सुदीदितिं ।
(१२२७) ८, १९, ४ (सोभरि काण्व । अग्नि)
ऊर्जो —।
[५००] ३, ९, १; १, ४०, ४ **सुप्रतूर्तिमनेहसम् ।**
[५०५] ३, ९, ६ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
तं त्वा मर्ता अगृभ्णत **देवेभ्यो हव्यवाहन ।**
(१८५७) १०, ११८, ५ (उरुक्षय आमहीयव ।
रक्षोहाऽग्नि)
देवेभ्यो हव्यवाहन । तं त्वा हवन्त मर्त्याः ।
१०, ११९, १३ (लव ऐन्द्र । आत्मा [इन्द्र])
देवेभ्यो हव्यवाहनः ।
(१६९८) १०, १५०, १ (मृळीको वासिष्ठ । अग्निः)
देवेभ्यो हव्यवाहन ।

[५०७] ३, ९, ८ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
शीरं पावकशोचिषम् ।
(१३४०) ८, ४३, ३१ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
(१४७३) ८, १०२, ११ (प्रयोगो भार्गव, पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपति – यविष्ठौ सहस पुत्रौऽन्यतरो वा । अग्नि)
(१५८१) १०, २१, १ (विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्र । अग्नि)
—पावकशोचिषं विवक्षसे ।
[५०८] ३, ९ ९ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
१०, ५२, ६ (अग्नि सौचीक । विश्वेदेवा)
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं
त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा
आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥
[५०९] ३, १०, १ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् ।
(१३६१) ८, ४४,१९ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
—मनीषिणः ।
१०, १३४, १ (मान्धाता यौवनाश्व । इन्द्र)
महान्त त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।
[५१०] ३, १०, २ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने ।
गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ।
(१५८७) १०, २१,७ (विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्र । अग्नि)
त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिरे ।
(१८५९) १०, ११८, ७ (उरुक्षय आमहीयव ।
रक्षोहोऽग्नि)
अदाभ्येन शोचिषाग्ने रक्षस्त्वं दह । गोपा ऋतस्य दीदिहि ।
[५१०] ३, १०, २ **अग्ने होतारमीळते । (१०१९)**
६, १४, २, **अग्निं होतारमीळते** (२९०) १, १२८, ८
[५११] ३, १०, ३ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
ददाशति समिधा जातवेदसे ।
(११७४) ७, १४, १ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
समिधा जातवेदसे ... ।
नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये ।
[५१२] ३, १०, ४ **अग्निर्देवेभिरागमत् ।**
(५) १, १, ५ **देवो— ।**

[५१६] ३, १०, ८ स नः पावक दीदिहि
(१९) १, १२, १० —दीदिव·।
[५१७] ३, १०, ९ तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः
समिन्धते। १, २२, २१ (विष्णुर्देवता)
तद्विप्रासो विपन्यवो —।
[५१६] ३, १०, ८ द्युमदस्मे सुवीर्यम्।
(५८०) ३, १३, ७ द्युमदग्ने—।
[५१७] ३, १०, ९ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम्।
(७०४) ४, ८, १ (वामदेवो गौतम । अग्नि)
हव्यवाहममर्त्यम्।
(१४७९) ८, १०२, १७ (प्रयोगो भार्गव पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपति–यविष्ठौ सहस पुत्रावन्यतरो वा। अग्नि)
हव्यवाहममर्त्यम।
[५२०] ३ ११ ३ केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः।
१, ७, १० आत्मा—।
[५२१] ३, ११, ४ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
वह्नि देवा अकृण्वत।
(१२०३) ७, १६, १२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । प्रगाथ)
[५२३] ३, ११, ६ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
अग्निस्तुविश्रवस्तम ।
(९१५) ५ २५ ५ (वसयव आत्रेया । अग्नि)
—स्तमं।
[५२५] ३, ११, ८ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
मन्मभिः। विप्रासो जातवेदसः।
(१२१८) ८ ११ ५ (वत्स काण्व । अग्नि)
मनामहे—।
[५७५] ३,१३,२ १,१३४,२ दक्षं सचन्त ऊतयः।
[५८०] ३,१३,७ द्युमदग्ने सुवीर्यं।
(५१६) ३,१०,८ द्युमदस्मे—।
[५८५] ३,१४,५ (ऋषभो वैश्वामित्र । अग्नि)
उत्तानहस्ता नमसोपसद्य।
(१०८७) ६,१६, ४६ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)
उत्तानहस्तो नमसा विवासेत्।
(१६३८) १०,७९,२ (अग्नि सौचीको वैश्वानरो वा सप्तिर्वाजंभरो वा। अग्नि)
उत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु।
[५९१] ३,१५,५ अच्छिद्रा शर्म जरितःपुरूणि।
२,२५,५ —दधिरे—।
(४६९) ३,१५,७=३,१,२३=३,५,११=
३,६,११=३,७,११=३,२२,५=३,२३,५
[५९५] ३,१६,२ (उत्कील कात्य । अग्निः)
इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं।
७,१८,२५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । सुदास पैजवन)
—मरुतः सश्चतानु।
[५९९] ३,१६,६ तुविद्युम्न यशस्वता।
१, ९, ६ —यशस्वतः।
[६०१] ३,१७,२ यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान्।
(६७३) ४,३,८ साधा दिवो—।
[६०३] ३,१७,४, २,४०,१ अकृण्वन्नमृतस्य देवा
नाभिम्।
[६०४] ३,१७,५ (कतो वैश्वामित्र । अग्नि)
यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता
स्वधया च शंभुः।
(७८२) ५,३,५ (वसुश्रुत आत्रेय । अग्निः)
न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो
अस्ति स्वधावः।
[६१०] ३,१९,१ (गाथी कौशिक । अग्नि)
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्।
(१६१६) १०,५३,१ (देवा अग्नि सौचीक। अग्नि)
[६११] ३,१९,२ (गाथी कौशिकः। अग्नि)
सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम्।
प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः।
(६८४) ४,६,३ (वामदेवो गौतम । अग्नि)
यता सुजूर्णी रातिनी घृताची ।
[६१८] ३, २१, १ (६२१) ३।२१।४ स्तोकानाम्
(३, २१, ४ स्तोकासो)
अग्ने मेदसो घृतस्य।
[६१९] ३, २१, २ (गाथी कौशिक । अग्नि)
श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम्।
१०, २४, २ (विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक. । इन्द्र)
·वार्यं विवक्षसे।
[४६९] ३, २२, ५ (गाथी कौशिक । अग्नि)
३, १, २३ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
३, ५, ११ = ३, ६, ११ = ३, ७, ११=

३, १५, ७ (उत्कील कात्य । अग्नि)
३, २३, ५ (देवश्रवा देववातश्च भारतौ । अग्नि.)
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो त्वस्मे ॥
[५२७] ३, २४, १ ३, ८, ३ वर्चो धा यज्ञवाहसे ।
[५२९] ३, २४, ३ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
अग्ने द्युमन जागृवे सहसः सूनवाहुत ।
एद बर्हिः सदो मम ।
(१२४८) ८, १९, २५ (सोभरि काण्व । अग्नि)
यदग्ने ।
सहसः सूनवाहुत ।
(१३७१) ८, ७५, ३ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
सहसः सूनवाहुत ।
८, १७, १ (इरिम्बिठि काण्व । इन्द्र)
एद बर्हिः सदो मम ।
[५३८] ३, २७, २ गिरा यज्ञस्य साधनम् ।
(९६) १, ४४, ११ नि त्वा — ।
८, ६, ३ स्तोमैर्यज्ञस्य— ।
(१२७८) ८, २३, ९ यज्ञस्य साधनं गिरा ।
[५३९] ३, २७,३ अति द्वेषांसि तरेम ।
(४४३) २, ७, ३ अति गाहेमहि द्विषः ।

[५४०] ३, २७, ४ अग्निः पावक ईड्यः ।
(११८६) ७, १५ १०, शुचि — ।
[५४१] ३, २७, ५ पृथुपाजा अमर्त्यो ।
(१७३७) ३, २, ११ वैश्वानरः— ।
[५४३] ३, २७, ७ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
होता देवो अमर्त्यः ।
(१२४७) ८ ,१९, २४ (सोभरि काण्व । अग्नि)
[५४९] ३, २७,१३ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
तिरस्तमांसि दर्शतः ।
(१४४६) ८, ७४, ५ (गोपवन आत्रेय । अग्नि)
दर्शतम् ।
[५५२] ३, २८, १ (५५७) ३, २८, ६
पुरोळाशं जातवेदः ।
[५६१] ३, २९, ४ नाभा पृथिव्या अधि ।
(१९४८) २, ३, ७ —अधि सानुषु त्रिषु ।
[५६१] ३, २९, ४, (१०५) १, ४५, ६ अग्ने हव्याय वोळ्हवे ।
(८६२) ५, १४, ३ अग्निं हव्याय— ।
[५७३] ३, २९, १६ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ।
३, ३५, ४ (विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्र)

ऋग्वेदस्य चतुर्थं मण्डलम् ।

[२४५०] ४, १, ३, (वामदेवो गौतम । अग्नि , अग्नी वरुणौ)
अग्ने मृळीक वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
८, २७, ३ (मनुर्वैवस्वत । विश्वेदेवा)
प्र सू न एत्वध्वरोऽग्ना देवेषु पूर्व्य ।
आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ।
[६३७] ४, १, ११ महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
४, १७, १४ त्वचो बुध्ने—
[६३९] ४, १, १३ अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तः ।
५, ३१, ३ प्राचोदयत्सुदुघा— ।
[६४१] ४, १, १५ (वामदेवो गौतम । अग्नि)
दळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ।
४, १६, ६ (वामदेवो गौतम । इन्द्र)
वचोभिर्व्रजं — ।

(१५९९) १०; ४५, ११ (वत्सप्रिर्भालन्दन । अग्निः)
व्रजं — ।
[६४३] ४ १, १७ (वामदेवो गौतम । अग्नि)
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ।
६, ५१, २ (ऋजिश्वा भारद्वाज । विश्वेदेवाः)
७, ६०, २ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । मित्रावरुणौ)
[६४६] ४, १, २० (वामदेवो गौतम । अग्नि)
सुमृळीको भवतु जातवेदाः ।
६, ४७, १२ (गर्गो भारद्वाज । इन्द्र)
१०, १३१, ६ (सुकीर्ति काक्षीवत । इन्द्र)
विश्ववेदाः ।
[६४७] ४, २, १ (२३४) १, ७७, १
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा ।
[६४८] ४, २, २ इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य ।

(११७) १, ५८, ८ अच्छिद्रा सूनो ।
६, ५०, ९ उत त्वं सूनो— ।
[६६४] ४, २, १८ आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्य
देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।
७, ६०, ३ सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ।
८, २५, ७ अधि या बृहतो दिवो३ भि यूथेव पश्यत ।
[६६६] ४, २, २०, (२१४) १, ७३, १० एता ते अग्न
उचथानि वेधो ।
[६६६] ४, २, २० उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो न ।
८, ४८, ६ प्र चक्षय कृणुहि— ।
[६६७] ४, ३, २ १, १२४, ७, १०, ७१, ४, (१६६३)
१०, ९१, १३ जायेव पत्य उशती सुवासा ।
[६७३] ४, ३, ८ साधो दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।
(६०१) ३, १७, २ यथा दिवो— ।
[६७५] ४, ३, १० (वामदेवो गौतम । अग्नि)
वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूध ।
६, ६६ १ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । मरुत)
सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूध ।
[६७६] ४, ३, ११ (वामदेवो गौतम । अग्नि)
आवि स्वरभवज्जाते अग्नौ ।
(२३९८) १०, ८८, २ मूर्धन्वानाङ्गिरसो वामदेव्यो वा ।
सूर्य—वैश्वानरो)
[६८३] ४, ६, २ (वामदेवो गौतम. । अग्नि)
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन् ।
(७४१) ४ १३, २ (वामदेवो गौतम । अग्नि
[लिंगोक्तदेवता इति एके])
—सविता देवो अश्रेद् ।
(७४६) ४, १४, २ (वामदेवो गौतम । अग्नि
[लिङ्गोक्तदेवता इति एके])
ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज् ।
७, ७२, ४, (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अश्विनौ)
—सविता देवो अश्रेद् ।
[६८४] ४, ६ ३ यता सुजूर्णी रातिनी घृताची ।
६, ६३, ४ प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।
[६८४] ४, ६, ३; (६११) ३, १९, २
प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः ।
[६८५] ४, ६, ४ (वामदेवो गौतमः । अग्नि)
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ।
६, ५२, १७ (ऋजिश्वा भरद्वाज. । विश्वेदेवा)
—अग्नौ ।

[६८६] ४, ६, ५ (वामदेवो गौतम । अग्नि
अग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा
(११४५) ७, ७, ४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि
[६९२] ४, ६, ११ (वामदेवो गौतम । अग्नि)
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्नमस्यन्त
उशिजः शंसमायोः
(७८१) ५, ३, ४ (वसुश्रुत आत्रेय । अग्नि
—नि षेदुर्दशस्यन्त उशिज —
[६९३] ४, ७, १ (वामदेवो गौतम । अग्निः)
होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः
(१३९१) ८, ६०, ३ (भर्ग प्रगाथ. । अग्निः
मन्द्रो —ड्यो
[६९६] ४, ७, ४ १, ८६, ५, (९०३) ५, २३ १
विश्वा यश्चर्षणीरभि
[७००] ४, ७ ८ विदुष्टरो दिव आरोधनानि ।
(७०७) ४, ८, ४ विद्वाँ आरोधनं दिव
[७०१] ४ ७ ९ कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाः ।
(११३) १, ५८ ४— रुशदूर्मे अजर ।
[७०२] ४, ७, १० यदस्य वातो अनुवाति शोचि· ।
(३५१) १, १४८, ४; (११२५) ७, ३,
आदस्य वातो अनु वाति शोचिः
(१६९३) १०, १४२, ४ यदा ते वातो अनुवाति
शोचिः
[७०४] ४, ८, १, (१४७९) ८, १०२, १७ हव्यवाह
ममर्त्यम् । ३, १०, ९ —मर्त्य सहोवृधम्
[७०५] ४, ८, २; (२) १, १, २ स देवाँ एह वक्षति
[७०७] ४, ८, ४ विद्वाँ आरोधनं दिवः ।
(७००) ४ ७, ८ विदुष्टरो दिव आरोधनानि
[७०९] ४, ८, ६, (वामदेवो गौतमः । अग्निः
ससवांसो वि शृण्विरे
८, ५४, ६ (मातरिश्वा काण्व । इन्द्रः
[७१२] ४, ९, १ अग्ने मृळ महाँ असि ।
(७९) १, ३६, १२ स नो मृळ
[७१६] ४, ९, ५ (वामदेवो गौतम । अग्नि)
वेषि ह्यध्वरीयताम्
हव्या...
(९६१) ६, २, १० (भारद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि
वेषि—
. . . हव्यम्—
[७२४] ४, १०, ५ श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ।

(११२९) ७. ३, ६ वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके।
[७३२] ४, ११, ५ (वामदेवो गौतम । अग्नि)
त्वामग्ने ...।
. दमूनसं गृहपतिममूरम्।
(८२१) ५, ८, १ (इष आत्रेय । अग्नि)
त्वामग्ने— ।
.. वरेण्यम्— ।
[७३६] ४, १२,३ अग्निर्वाजस्य परमस्य रायः।
७, ६०, ११ वाजस्य साता ।
[७३६] ४, १२, ३ (वामदेवो गौतम । अग्नि)
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो।
(१२०३) ७, १६, १२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
—विधते सुवीर्यम्।
[७३९] ४, १२, ६ (वामदेवो गौतम । अग्नि)
१०,१२६,८ (कुल्मलबर्हिष शैलूषि अहोमुग्वा वामदेव्य । विश्वेदेवा)
यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षितामगुञ्चता यजत्राः।
एवो ष्व १ स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतर न आयुः।
[७४०] ४, १३, १ यातमश्विना सुकृतो दुरोणम्।
१, ११७, २ (अश्विनौ)
[७४१] ४, १३, २, ७, ७२ ४ उर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेत्। (६८३) ४, ६, २
—सवितेवाश्रेत्। (७४६) ४, १४ २ ऊर्ध्वं केतुं— ।
[७४४] ४, १३, ५=४, १४, ५ (वामदेवो गौतम । अग्नि (लिङ्गोक्तदेवता इति एके)
अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम्।
[७४६] ४, १४, २ ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेत्।
(७४१) ४, १३, २

[७४६] ४, १४, २ ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन्।
१, ९२, ४ — कृण्वती।
[७४६] ४, १४, २, १, ११५, १ आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं।
[७४७] ४, १४, ३; उषा ईयते सुयुजा रथेन।
१, ११३, १४ ओषा याति— ।
[७४८] ४, १४ ४ (वामदेवो गौतम । अग्नि)
रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ।
४, ४५, २ (वामदेवो गौतम । अश्विनौ)
—उषसो व्युष्टिषु ।
[७४८] ४, १४, ४ अस्मिन्यज्ञे वृषणा मादयेथाम्।
१, १८४, २ अस्मे उ षु वृषणा मादयेथाम्।
[७४४] ४, १४, ५; ४, १३, ५

[७५१] ४, १५, ३ (वामदेवो गौतम । अग्निः)
दधद्रत्नानि दाशुषे।
९, ३, ६ (शुनःशेप आर्जीगर्ति स देवरात कृत्रिमो वैश्वामित्रः। पवमान सोम)
[७५४] ४, १५, ६ (वामदेवो गौतम. । अग्नि)
तमर्वन्तं न सानसिम्।
(१४७४)८,१०२,१२(प्रयोगो भार्गव ,पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा गृहपति–यविष्ठौ सहस. पुत्रौऽन्यतरो वा। अग्निः)
४, १५, ७, ९ (म ७, देवता सोमक साहदेव्य . कुमार साहदेव्यः। म ९, अश्विनौ)
४, १५,८ कुमारात्साहदेव्यात्।
[१८९७] ४, ५८, ३ (वामदेवो गौतम। अग्नि सूर्यो वा आपो वा गावो वा घृतस्तुतिर्वा)
महो देवो मर्त्याँ आ विवेश
८, ४८, १२ अमर्त्यो— ।
[१९०४] ४, ५८, १० अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिम्।
९, ६२, ३ (पवमान सोम.)।

ऋग्वेदस्य पञ्चमं मण्डलम्।

[७५९] ५, १, ५ (बुधगविष्ठिरावात्रेयौ। अग्नि)
दमेदमे सप्त रत्ना दधानो।
६, ७४, १ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। सोमारुद्रौ)
—दधाना।

[७५९, ७६०] ५, १, ५-६ अग्निर्होता नि षसादा (६ न्यसीदत्) यजीयान्।
(९४०) ६, १, २ अधा होता न्यसीदो यजीयान्।
(९४४) ६, १, ६ होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान्।

१०, ५२, २ अहं होता न्यसीदं यजीयान्।
[७६१] ५, १, ७ अग्निं होतारमीळते नमोभिः।
(२९०) १, १२८, ८ अग्निं होतारमीळते वसुधितिं। (१०१९) ६, १४, २ अग्निं होतारमीळते।
[७६२] ५, १, ८ सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजाः।
७, ५५, ७ — वृषभः।
[७६५] ५, १, ११ एह देवान्हविरद्याय वक्षि।
(७९३) ५, ४, ४ आ च देवान्हवि ..।
[७७४] ५, २, ८ (कुमार आत्रेय वृशो वा जानः उभौ वा, २, ९ वृशो जान । अग्नि)
प्र मे देवानां व्रतपा उवाच।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष
तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम्।
१०, ३२, ६ (कवष ऐलूष. । इन्द्र.)
[७७७] ५, २, ११; ५,२९, १५ रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्।
१, १३०, ६ — स्वपा अतक्षिषुः।
[७७९] ५, ३, १ त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः।
(४७३) ३, ५, ४ मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो।
[७८१] ५, ३, ४, (६९२) ४, ६, ११ होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्दशस्यन्त (४, ६, ११ नमस्यन्त) उशिजः शंसमायोः।
[७८५] ५, ३, ८ (वसुश्रुत आत्रेय. । अग्नि.)
त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः।
(१६८१) १०, १२२, ७ (चित्रमहा वासिष्ठ । अग्नि.)
त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु दूतं कृण्वाना अजयन्त मानुषाः।
[७९१] ५, ४, २ हव्यवाळग्निरजरः पिता नः।
(१७१८) ३, २, २ हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितः।
[७९१] ५, ४, २, ३, ५४, २२, ६, १९, ३
अस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि।
[७९२] ५, ४, ३ विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां।
(१७३६) ३, २, १०— मानुषीरिषः।
(९४६) ६, १, ८ — शश्वतीनां।
[७९३] ५, ४, ४ यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य।
१, १२३, १२ यतमाना—।
[७९३] ५, ४, ४ आ च देवान्हविरद्याय वक्षि।
(७६५) ५, १, ११ एह देवान्ह—।

[७९६] ५, ४, ७ (वसुश्रुत आत्रेय । अग्नि)
वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे।
(११७५) ७, १४, २ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
वयं ते अग्ने समिधा विधेम।
वयं देव हविषा भद्रशोचे।
[७९७] ५, ४, ८ (वसुश्रुत आत्रेय । अग्नि)
अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व।
६, ५२, १२ (ऋजिश्वा भारद्वाज । विश्वेदेवा)
इम नो अग्ने अध्वरं।
७, ४२, ५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । विश्वेदेवा)
इमं नो अग्ने —।
[७९८] ५, ४, ९ अस्माकं बोध्यविता तनूनाम्।;
७, ३२, ११ (इन्द्रः)
[८०१-१०] ५, ६, १ - १०; ९, २०, ४
इषं स्तोतृभ्य आ भर।
८, ७७, ८ तेन स्तोतृभ्य आ भर।
८, ९३, १९ कया स्तोतृभ्य—।
[८०५] ५, ६, ५ (वसुश्रुत आत्रेय । अग्नि)
आ ते अग्न ऋचा हविः।
(१०८८) ६,१६,४७ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः)
— हविर्।
[८०६] ५,६,६, १,८१,९ विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्।
१०,१३३, २ विश्वं पुष्यसि—।
[८१०] ५, ६१० (वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः)
दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्व्यम्।
८,६,२४ (वत्सः काण्वः । इन्द्रः)
उत त्यदाश्व्यम्।
८,३१,१८ (मनुर्वैवस्वतः । दम्पत्याशिषः)
असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्व्यम्।
[८११] ५,७,१ ऊर्जो नप्त्रे सहस्वते।
(१४६९) ८, १०२, ७ अच्छा नप्त्रे—।
[८२१] ५,८,१ दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम्।
(७३२) ४, ११, ५— गृहपतिममूरम्।
[८३०] ५,९,३ (गय आत्रेयः । अग्निः)
यं शिशुं यथा जनित्रारणी।
विशामग्निं स्वध्वरम्।
(१०८१) ६, १६, ४० (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः)
शिशुं जातं न बिभ्रति।
विशामग्निं स्वध्वरं।

[८३१] ५ ९ ४ (गय आत्रेय । अग्निः)

वनाग्ने पशुर्न यवसे ।

(९६०) ६, २, ९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)

अग्ने पशुर्न यवसे ।

वना व्रश्चन्ति शिक्रम ।

[८३४] ५,९,७ (गय आत्रेय । अग्नि)

तं नो अग्ने अभी नरो **रयिं सहस्व आ भर ।**

(९०४) ५,२३,२ (द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेय । अग्नि)

तमग्ने पृतनाषह **रयिं सहस्व आ भर ।**

[८३४] ५,९,७, (८४१)५,१०,७, (८७५) ५,१६,५,

(८८०) ५, १७, ५, **उतैधि पृत्सु नो वृधे ।**

६,४६,३ **भवा समत्सु ... ।**

[८३५] ५,१० १ **प्र नो राया परीणसा ।** १,१२९,९

[८३६] ५ १०, २ **क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।**

(८८२) ५, १८, २ **स्वस्य दक्षस्य मंहना ।**

[८४०] ५, १०, ६ **अस्माकासश्च सूरयः ।**

(१८८९) १, ९७, ३ **प्रास्माकासश्च सूरयः ।**

[८४०] ५,१०,६, ४,३७ ७ **विश्वा आशास्तरीषणि ।**

[८४१] ५, १०, ७ **स्तुत स्तवान आ भर ।**

(२०) १,१२,११ स नः स्तवान आ भर ।

[८४३] ५,११,२ (सुतंभर आत्रेय । अग्निः)

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं ।

(१६७८) १०,१२२,४ (चित्रमहा वासिष्ठ । अग्निः)

—पुरोहित ।

शृण्वन्तमग्निं घृतपृष्ठमुक्षणं ।

[८४३] ५ ११ २ **इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि ।**

(१९६३) ३,४,११— **सरथं तुरेभिः ।**

१०,१५,१०— **सरथं दधानाः ।**

[८४६] ५, ११, ५ **आ पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ।**

१०,१२०,९ **हिन्वन्ति च शवसा ।**

[८४९] ५,१२,२ (८५३) ५,१२,६ **ऋतं स पात्यरुषस्य ।**

(८४९) ५, १२, २ सपाम्यरुषस्य वृष्ण ।

[८५५] ५, १३, २ **सिध्रमद्य दिविस्पृशः ।**

(१९२५) १, १४२, ८; २, ४१, २० **दिविस्पृशम् ।**

[८५८] ५, १३, ५ (सुतंभर आत्रेय । अग्नि.)

त्वामग्ने वाजसातमं ।

स नो रास्व सुवीर्यम् ।

८, ९८, १२ (नृमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः)

त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तं ।

स नो रास्व सुवीर्यम् ।

[८६१] ५, १४, २ (सुतंभर आत्रेयः । अग्नि)

तम् ... ।

यजिष्ठं मानुषे जने ।

(१८६१) १०, ११८, ९ (उरुक्षय आमहीयवः । रक्षोहाऽग्निः) **तं ... ।**

[८६२] ५, १४, ३ (सुतंभर आत्रेयः । अग्नि)

तं हि शश्वन्त ईळते ।

७, ९४, ५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्राग्नी)

ता हि शश्वन्त ईळते ।

[८६२] ५, १४, ३; (५६१) ३. २९, ४

[८६५] ५, १४, ६ **स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् ।**

१, ९, ३ (इन्द्रः) **स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे ।**

[८६९] ५, १५, ४ (धरुण आङ्गिरस । अग्नि)

दधानः परि त्मना विपुरूपो जिगाति ।

७, ८४, १ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्रावरुणौ)

दधाना परि त्मना विपुरूपा जिगाति ।

[८७१] ५, १६, १ **मर्तासो दधिरे पुरः ।**

१, १३१, १. ८, १२, २२ **देवासो ... ।**

८, १२, २५ **देवास्त्वा ।**

[८७७] ५, १७, २ (पुरुरात्रेयः । अग्नि.)

अस्य हि स्वयशस्तर ।

५, ८२, २ (शावाश्व आत्रेयः । सविता)

— स्वयशस्तरं ।

[८७७] ५, १७, २ **मन्द्र परो मनीषया ।**

(१४२६) ८, ७२, ३ रुद्रं ... ।

[८८२] ५,१८,२ **स्वस्य दक्षस्य मंहना ।**

(८३६) ५, १०, २ **क्रत्वा दक्षस्य— ।**

[८९३] ५, २०, ३ (प्रयस्वन्त आत्रेया. । अग्निः)

होतार त्वा वृणीमहे ।

प्रयस्वन्तो हवामहे ।

(९२३) ५, २६, ४ (वसूयव आत्रेयाः । अग्निः)

होतारं त्वा वृणीमहे ।

(१३८९) ८, ६०, १ (भर्ग प्रागाथ । अग्निः)

होतारं— ।

(१५८१) १०, २१, १ (विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्र । अग्निः)

होतारं— ।

७, ९४, ६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्राग्नी)

प्रयस्वन्तो— ।

८,६५,६ (प्रगाथ काण्व । इन्द्रः)
प्रयस्वन्तो— ।
[८९७] ५,२१,३ (सस आत्रेय । अग्नि)
त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
(९०५) ५।२३।३ (द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेय. । अग्नि)
विश्वे हि त्वा सजोषसो ।
(१२८७) ८,२३,१८ (विश्वमना वैयश्व । अग्नि)
विश्वे हि त्वा सजोषसो— ।
[८९७] ५,२१,३, १।१५।७,
(१०४८) ६,१६,७ यज्ञेषु देवमीळते ।
[८९८] ५,२१,४ देवं वो देवयज्यया ।
(१४२०) ८,७१,१२ अग्निं वो— ।
[८९८] ५, २१, ४ ऋतस्य योनिमासदः । ३,६२,१३
९,८,३; ९,६४,२२ ऋतस्य योनिमासदम् ।
[८९९] ५ २२,१ (विश्वसामा आत्रेय । अग्नि)
होता मन्द्रतमो विशि ।
(१४१९) ८, ७१, ११ (सुदीति– पुरुमीळ्हावाङ्गिरसौ तयोर्वान्यतर. । अग्नि)
[९००] ५,२२,२ (विश्वसामा आत्रेय । अग्निः)
न्यग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ।
(९२६) ५,२६,७ (९२७) ८ (वसूयव आत्रेया. । अग्नि.)
न्यग्निं जातवेदसं ।
दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ— ।
[९०१] ५,२२,३; (५००) ३,९,१,
(१२१९) ८,११,६ देवं मर्तास ऊतये ।
(३३०) १,१४४,५ — ऊतये हवामहे ।
[९०२]५,२२,४ स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रय
५, ३९, ५ गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ।
[९०४] ५, २३, २, (८३४) ५, ९, ७
[९०५] ५, २३, ३; (८९७) ५, २१, ३
[९०५] ५, २३, ३; ५, ३५, ५; ८, ५, १७; ६, ३७
जनासो वृक्तबर्हिषः ।
३, ५९, ९ जनाय वृक्तबर्हिषे ।
[९०६] ५, २३, ४ (द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेय. । अग्नि)
रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ।
(१०९६) ६, ४८, ७ (शंयुर्बार्हस्पत्य , तृणपाणि । अग्निः)

[९१४] ५, २५, ४ (वसूयव आत्रेया । अग्नि)
अग्निं धीभिः सपर्यत ।
(१२५९) ८, १०३, ३ (सोभरि काण्व । अग्नि.)
[९१५] ५, २५, ५; (५२३) ३, ११, ६
[९१६] ५, २५, ६. १, ११, २ जेतारमपराजितम् ।
[९१८] ५, २५, ८ ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
१०, ६४, १५, १००। ८ ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहत् ।
[९१९] ५, २५, ९ (वसूयव आत्रेया । अग्नि)
स नो विश्वा अति द्विषः ।
६, ६१, ९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । सरस्वती)
सा नो— ।
[९२०] ५, २६. १ (वसूयव आत्रेया । अग्नि)
मन्द्रया देव जिह्वया ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ।
(१०४३) ६, १६, २ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः ।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ।
(१४७८) ८, १०२, १६ (प्रयोगो भार्गव , पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपति—यविष्ठौ सहस पुत्रौ ऽन्यतरो वा । अग्नि) आ देवान्वक्षि यक्षि च ।
[९२१] ५, २६, २ (वसूयव आत्रेया । अग्नि)
तं त्वा घृतस्नवीमहे ।
देवाँ आ वीतये वह ।
(११९५) ७, १६, ४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह । … तद्यस्त्वमहे ।
[९२३] ५, २६, ४ (वसूयव आत्रेया । अग्नि.)
अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये ।
५, ५१, १ (स्वस्त्यात्रेय । विश्वेदेवा)
अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि ।
देवेभिर्हव्यदातये ।
[९२३] ५, २६, ४, (८९३) ५, २०, ३,
(१३८९) ८, ६०, १
(१५८१) १०, २१, १ होतारं त्वा वृणीमहे ।
[९२४] ५, २६, ५ (वसूयव आत्रेया । अग्नि)
यजमानाय सुन्वते ।
८, १४, ३ (गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्र)
—सुन्वते ।

८, १०, १७ (इरिम्बिठि काण्व । इन्द्र)
१०, १७५, ४ (ऊर्ध्वग्रावा आर्बुदिः सर्प । ग्रावाणः)
[९२४] ५, २६, ५, (१३) १, १२, ४. (१३५६)
८, ४४, १४ देवैरा सत्सि बर्हिषि ।
(९२६) ५, २६, ७ (९२७) ८, (९००) ५, २२, २
५, २६, ९, १, ३९, ५ देवासः सर्वया विशा ।

[९२८] ५, २७, १ त्रैवृष्णो अग्ने दशभि सहस्रै ।
८, १, ३३ आसंगो अग्ने — ।
[९३८] ५, २८, ६ (विश्ववारात्रेयी । अग्नि)
अग्निं प्रयत्यध्वरे ।
(१५८६) १०,२१,६ अग्ने प्रयत्यध्वरे ।
(१४२०) ८, ७१, १२ (सुदीति-पुरुमीळ्हावाङ्गिरसौ, तयोर्वान्यतरः । अग्नि)

ऋग्वेदस्य षष्ठं मण्डलम् ।

[९४०] ६,१,२ (७५९) ५,१,५
[९४२] ६,१,४ (१९७) १,७२,३ नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि ।
[९४४] ६,१,६ (९४०) ६,१,२
[९४६] ६,१,८ (७९२) ५,४,३
[९४७] ६,१,९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)
यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
(१६७७) १०,१२२,३ (चित्रमहा वासिष्ठ. । अग्नि)
—समिधा तं जुषस्व ।
[९४८] ६,१,१० नमोभिरग्ने समिधोत हव्यै ।
७,६३,५ नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ।
[९४८] ६,१,१० (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर् ।
(१०१५) ६,१३,४ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)
यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
[९४९] ६,१,११ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः)
आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा ।
(९७६) ६,४,६ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)
अग्ने ततन्थ— ।
[९५०] ६, १, १२ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्नि)
पूर्वीरिषो बृहतीरारे अघा
अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ।
९, ८७, ९ (उशना काव्य । पवमानः सोम)
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो ।
६, ७४, २ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । सोमारुद्रौ)
अस्मे भद्रा— ।
[९६०] ६, २, ९, (८३१) ५, ९, ४ अग्ने पशुर्न यवसे ।
[९६१] ६, २, १०, (७१६) ४,९,५ वेषि ह्यध्वरीयताम् ।

[९६२] ६, २, ११= ६, १४, ६, (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्नि)
अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोच
सुमतिं रोदस्यो । वीहि स्वस्ति सुक्षितिं
दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम
ता तरेम तवावसा तरेम ।
(१०२७) ६, १५, १५ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहव्य आङ्गिरसो वा । अग्नि)
दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ।
[९७३] ६, ४, ३ २, २०, ५
अश्वस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ।
[९७६] ६, ४, ६, (९४९) ६, १, ११
[९७८] ६, ४, ८, (९९९) १०, ७, (१०११) १२, ६, (१०१७) १३. ६, १७, १५; २४, १०,
मदेम शतहिमाः सुवीरा ः ।
[९७९] ६ ५, १ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)
अद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
६, २२, २ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
— मतिभि शविष्ठम् ।
[९८३] ६, ५, ५ यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैः ।
४, ४, ७ यस्त्वा नित्येन हविषा य— ।
[९९१] ६, ६, ७ चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं ।
४, ४४, ६ नू नो रयिं— ।
[१७७७] ६, ७, ५ महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।
५, ८५, ६, मही देवस्य नकिरा— ।
[१७७९] ६, ७, ७ वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर् ।
१, १६०, ४ वि यो ममे रजसी सुक्रतूयया ।
[१७७९] ६, ७, ७ वैश्वानरो वि दिवो रोचना कवि ।
९, ८५, ९ अरूरुचद्वि दिवो— ।

[९९३] ६, १०, १; (४८५) ३, ६, ६,
[९९९] ६, १०, ६ **अवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ।**
६, २६, २ **महो वाजस्य—।**
[१००४] ६, ११, ५ **वृञ्जे ह यज्ञमसा बर्हिरग्नौ।**
७, २, ४ **प्र वृञ्जते नमसा—।**
[१००५] ६, ११, ६ **देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।**
(१०११) ६, १२, ६ **विश्वेभिरग्ने —।**
[१००९] ६, १२, ४ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)
अग्निः ध्रुवे दम आ जातवेदाः।
(११७२) ७, १२, २ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
[१०११] ६, १२, ६; (१००५) ६, ११, ६
[१०१५] ६, १३, ४; (९४८) ६, १, १०
[१०१९] ६, १४, २ (७६१) ५, १, ७

[९६२] ६, १४, ६ =, ६, २, ११; (१०३७) ६, १५, १५
ता तरेम तवावसा तरेम।
[१०२५] ६, १५, ३ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य, वीतहव्य आङ्गिरसो वा। अग्निः)
अर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः।
छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो **भरद्वाजाय सप्रथ।**
(१६७०) १०, ११५, ५ (उपस्तुतो वार्ष्टिहव्यः। अग्नि) **अर्यः तरुषः।**
(१०७४) ६, १६, ३३ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य.। अग्नि)
भरद्वाजाय सप्रथ शर्म यच्छ।
[१०२८] ६,१५,६,६ **देवो देवेषु वनते हि वार्यं**
(६. नो दुवः)।
[१०२९] ६,१५,७ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहव्य आङ्गिरसो वा। अग्नि)
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम्।
(१३५१) ८,४४,१० (विरूप आङ्गिरसः। अग्नि)
विप्रं होतारमद्रुहं।
यज्ञानां केतुमीमहे।
[१०३४] ६,१५,१२ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यो, वीतहव्य आङ्गिरसो वा। अग्निः)
(१०३४) ७,४,९ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि.। अग्नि.)
त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री।

[१०३७] ६,१५,१५ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः वीतहव्य आङ्गिरसो वा। अग्निः)
(१६१७) १०,५३,२ देवा अग्नि सौचीक । अग्नि)
— हि रूयत्।

[१०४३] ६,१६,२ (९२०) ५,२६,१
[१०४६] ६, १६, ५ **दिवोदासाय सुन्वते।**
४, ३०, २० **— दाशुषे।**
६, ३१, ४ **— सुन्वते सुतक्र।**
[१०४८] ६, १६, ७, **त्वामग्ने स्वाध्यो।**
(१२४०) ८, १९, १७; (१३३९) ४३, ३०
ते घेदग्ने स्वाध्यो।
[१०४८] ६, १६, ७. (८९७) ५, २१, ३
[१०५०] ६, १६, ९; १, १४, ११ **तं होता मनुर्हित।**
[१०५०] ६, १६, ९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य.। अग्नि.)
वह्निरासा विदुष्टरः।
(१२००) ७, १६, ९ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
[१०५१] ६, १६, १० अग्न आ **याहि वीतये।**
५, ५१, ५ वायवा **याहि वीतये।**
[१०५६] ६, १६, १५ (२१७) १, ७४, ३
[१०६१] ६, १६, २० **स हि विश्वाति पार्थिवा।**
६, ४५, २० **स हि विश्वानि पार्थिवाँ।**
[१०६३] ६, १६, २२ ५, ५२, ४ **स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया।**
[१०६५] ६, १६, २४; १, १४, ३ **आदित्यान्मारुतं गणम्।**
[१०६९] ६, १६, २८, **अग्निस्तिग्मेन शोचिषा।**
(२१) १, १२, १२ **अग्ने शुक्रेण —।**
[१०७०] ६, १६, २९, (२३९) १, ७८, १
(१०७७) ६, १६, ३६;
(१३११) ८, ४३, २ **जातवेदो विचर्षणे।**
[१०७०] ६, १६, २९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्निः)
जहि रक्षांसि सुक्रतो।
९, ६३, २८ (निध्रुविः काश्यपः। पवमानः सोमः)
[१०७१] ६, १६, ३० (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। अग्नि)
त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायत।
(११९१) ७, १५, १५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। अग्नि.)
— हसो दोषावस्तरघायतः।
[१०७४] ६, १६, ३३; (१०२५) ६, १५, ३

[१०७६] ६, १६. ३५ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)
सीदन्नृतस्य योनिमा ।
९, ३२, ४ (श्यावाश्व आत्रेय । पवमान सोम)
९, ६४, ११ (कश्यपो मारीच । पवमानः सोम)
[१०७७] ६, १६, ३६; (१०७०) ६, १६, २९
[१०८१] ६, १६, ४०, (८३०) ५, ९, ३
[१०८५] ६, १६, ४४ अभि प्रयांसि वीतये ।
१, १३५, ४ सुधितानि वीतये ।
[१०८५] ६, १६, ४४, १, १४, ६ आ देवान्त्सोमपीतये ।
[१०८७] ६, १४, ४६ . ४, ३, १ होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
[१०८७] ६, १६, ४६, (५८५) ३, १४, ५
[१०८८] ६, १६, ४७, (८०५) ५, ६, ५
[१०९०] ६, ४८, १ प्रप्र वयममृतं जातवेदसं ।
(१४४६) ८, ७४ ५ अमृतं जातवेदसं ।

[१०९२] ६, ४८, ३ (शंयुर्बार्हस्पत्य , तृणपाणि । अग्निः)
महान्विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे ।
(१७९७) ७, ५, ४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । वैश्वानरोऽग्नि)
त्वं भासा रोदसी आ ततन्थाजस्रेण शोचिषा शोशुचानः ।
[१०९५] ६, ४८, ६ (शंयुर्बार्हस्पत्यः, तृणपाणि । अग्निः)
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा ।
(११५६) ७, ९, २ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
—ददृशे राम्याणाम् ।
[१०९७] ६, ४८, ८ (शंयुर्बार्हस्पत्य , तृणपाणिः । अग्नि)
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः शत हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ।
(१२०१) ७, १६, १० वसिष्ठोमैत्रावरुणि । अग्नि)
ये राधासि ददत्यश्व्या ।
ता अंहस पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठय ।

ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलम् ।

[१११२] ७, १, १३, (८०) १, ३६, १५
[१११९] ७, १, २०=७, १, २५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्य सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभि सदा नः ।
[१११९] ७,१,२०,२५;(११३३)३, १०; (११४८)७,७,७, ७,८,७(११६०) ९, ६; (११७०) ११, ५, (११७३) १२, ३, १३, ३; (११७६) १४, ३, १९, ११, २०, १०, २१, १०, २२, ९, २३, ६; २४, ६; २५, ६, २६, ५, २७, ५; २८, ५; २९, ५, ३०, ५; ३४, २५; ३५, १५, ३६, ९; ३७, ८; ३९, ७; ४०, ६; ४१, ७, ४२, ६, ४३, ५. ४५, ४ ४६, ४, ४७, ४. ४८, ४. ५१, ३, ५३, ३; ५४; ४; ५६, २५; ५७, ५, ५८, ६, ६०, १२; ६१, ७; ६२, ६; ६३, ६, ६४, ५, ६५, ५, ६७, १०; ६८, ९,६९,८; ७०,७, ७१, ६; ७२, ५, ७३,५; ७५, ८;७६,७,७७, ६, ७८, ५; ७९, ५; ८०, ३; ८४, ५; ८५, ५; ८६, ८; ८७, ७, ८८, ७; ९०, ७, ९१, ७; ९२,५; ९३, ८, ९५, ६; ९७, १०, ९८, ७; ९९, ७, १००, ७, १०१, ६, ९, ९०, ६, ९७, ३, ६; १०, ६५, १५; ६६, १५, १२२, ८, यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।
[११२५] ७,३,२, १,१४८, ४ आदस्य वातो अनु वाति शोचिः ।
[११२९] ७, ३, ६, ४, १०, ५,
[११३३] ७, ३, १०; =७, ४, १० (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्नि)
एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।
७, ६०, ६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । मित्रावरुणौ)
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस् ।
[११३५] ७, ४, २ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्नि.)
स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु ।
सं यो वना युवते शुचिदन् ।
(१६६७) १०,११५, २ (उपस्तुतो वार्ष्टिहव्यः। अग्निः)
अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तम सं यो वना युवते भस्मना दता ।

[११३७] ७, ४, ४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्नि)
मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि।
(१५९५) १०, ४५, ७ (वत्सप्रिर्भालन्दन । अग्नि)
[११४०] ७, ४, ७; ४, ४१, १० नित्यस्य रायः पतयः स्याम।
७, ४, ९ = (१०३४) ६, १५, १२
७, ४, १० = (११३३) ७, ३, १०
७, ४, १० = ७, ३, १०
[११४५] ७, ७, ४; (६८६) ४, ६, ५
[११४८] ७, ७, ७ ७, ८, ७ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः)
नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम्।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥
[११५४] ७, ८, ६; २, ३८, ११
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति।
(११४८) ७, ८, ७= ७, ७, ७
[११५६] ७, ९, २ (१०९५) ६, ४८, ६
[११६५] ७, १०, ५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्निः)
मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु।
(१६०४) १०, ४६, ४ (वत्सप्रिर्भालन्दन । अग्निः)
मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्वराणाम्। विशाम् ।
[११६५] ७, १०, ५ स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणाम्।
(१७८) १, ७०, ५ — क्षपावाँ अग्नी रयीणां।
(११६६) ७, ११, १ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो।
१०, १०४, ६ (अष्टको वैश्वामित्रः । इन्द्रः)
दाश्वाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतः।
[११६७] ७,११,२ त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः।
(१९९४) १०, ७०, ३ शश्वत्तममीळते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम्।
[११६९] ७, ११, ४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । अग्नि)
अथा देवा दधिरे हव्यवाहम्।
१०, ५२, ३ (अग्निः सौचिकः । विश्वे देवाः)
[११७२] ७, १२, २; (१००९) ६, १२, ४
[११७४] ७, १४, १; (५११) ३ १०, ३

[११७५] ७, १४, २ वयं ते अग्ने समिधा विधेम।
(१८२७) ४, ४, १५ अया ते—।
(७९६) ५, ४, ७ वयं त अग्न उक्थैर्विधेम।
[११७६] ७, १४, ३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्नि)
तुभ्यं देवाय दाशतः स्याम।
(१२०६) ७, १७, ७ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः)
ते ते देवाय दाशतः स्याम।
[११७८] ७, १५, २, ९, १०१, ९ यः पञ्च चर्षणीरभि।
५, ८६, २ या पञ्च—।
[११७८] ७, १५, २ (१५) १, १२, ६
[११८२] ७, १५, ६ (७७) १, ३६, १०
[११८४] ७, १५, ८ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
स्वग्नयस्त्वया वयम्। सुवीरस्त्वमस्मयुः।
(१२३०) ८, १९, ७ (सोभरि काण्व । अग्नि)
स्वग्नयो .. ।
सुवीरस्त्वमस्मयुः।
[११८६] ७, १५, १०, (२५५) १, ७९, १२
अग्नी रक्षांसि सेधति।
[११८६] ७, १५, १०; (४४४) २, ७, ४
[११८७] ७, १५, ११, (२४७) १, ७९, ४
ईशान सहसो यहो।
[११८९] ७, १५, १३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः।
(१३५३) ८, ४४, ११ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
अग्ने नि पाहि नस्त्वं प्रति ष्म देव रीषतः
[११९१] ७, १५, १५; (१०७१) ६, १६, ३०
[११९२] ७, १६, १ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्नि)
ऊर्जो नपातमा हुवे।
(१३५५) ८, ४४, १३ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
[११९२] ७, १६, १; (२८३) १, १२८, ८
[११९४] ७, १६, ३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्नि)
उदस्य शोचिरस्थाद्।
(१२७३) ८, २३, ४ (विश्वमना वैयश्वः । अग्निः)
[११९५] ७, १६, ४, (९२३) ५, २६, २
[११९७] ७, १६, ६, १, १५, ३ त्वं हि रत्नधा असि।
[१२००] ७, १६, ९; (१०५०) ६, १६, ९
[१२०१] ७, १६, १०, (१०९५) ६, ४८, ८
[१२०२] ७, १६, ११ पूर्णा विवष्ट्यासिचम्।
२, ३७, १ अध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम्।
[१२०३] ७, १६, १२; (५२१) ३, ११, ४

[१२०३] ७, १६, १२; (७३६) ४, १२, ३
[१२०६] ७, १७, ३, (४८५) ३, ६, ६
[१२०७] ७, १७, ४; (१२०६) ७, १७, ३
[१२१०] ७, १७, ७; (११७६) ७, १४, ३

ऋग्वेदस्याष्टमं मण्डलम् ।

[१२१४] ८, ११, १ त्व यज्ञेष्वीड्यः ।
(१५८६) १०, २१, ६ त्वां यज्ञेष्वीळते ।
[१२१५] ८, ११, २, (८७) १, ४४, २
[१२१८] ८, ११, ५, (५२५) ३, ११, ८
[१२१९] ८, ११, ६, (५००) ३, ९, १
[१२१९] ८ ११, ६ (वत्सः काण्व । अग्निः)
अग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
१०, १४१, ३ (अग्निस्तापस । विश्वे देवा)
[१२२१] ८, ११, ८ (वत्स काण्वः । अग्नि)
(१३३०) ८, ४३, २१ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभु‍ः ।
समत्सु त्वा हवामहे ।
[१२२२] ८, ११, ९ (वत्स‍ः काण्वः । अग्निः)
वाजयन्तो हवामहे ।
८, ५३ (वालखिल्य ५), २ (मेध्य‍. काण्व. । इन्द्र.)
(१२२४) ८, १९, १; (२८८) १, १२८, ६
[१२२६] ८, १९, ३, (१०) १, १२, १
[१२२७] ८, १९, ४ ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदिति-
मग्निं श्रेष्ठशोचिषम् । (१३५५) ८, ४४, १३
ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् ।
[१२२९] ८, १९, ६ न तमंहो देवकृतं कुतश्चन ।
२, २३, ५ न तमंहो न दुरितं कुतश्चन ।
१०, १२६, १ न तमंहो न दुरितं ।
[१२३०] ८, १९, ७ (११८४) ७, १५, ८
[१२३१] ८, १९, ८ (सोभरि काण्व । अग्नि)
अतिथिर्न मित्रियोऽग्नी रथो न वेद्यः ।
(१४५४) ८, ८४, १ (उशना काव्य । अग्नि)
प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् ।
अग्निं रथं न वेद्यम् ।
[१२३२] ८, १९, ९, ४, ३७, ६ स धीभिरस्तु सनिता ।
[१२३९] ८, १९, १६; (७१) १, ३६, ४
[१२४०] ८, १९, १७ (सोभरिः काण्वः । अग्नि.)
ते घेदग्ने स्वाध्यो ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसम् ।
(१३३९) ८, ४३, ३० (विरूप आङ्गिरस । अग्नि.)
ते घेदग्ने स्वाध्योऽहा विश्वा नृचक्षसः ।

[१२४३] ८, १९, २०; २, २६, २ भद्रं मनः कृणुष्व
वृत्रतूर्ये ।
[१२४४] ८, १९, २१; (७७) १, ३६, १०
[१२४७] ८, १९, २४; (५४३) ३, २७, ७
[१२४८] ८, १९, २५, (५२९) ३, २४, ३
[१२५५] ८, १९, ३२ सम्राज त्रासदस्यवम् ।
१०, ३३, ४ राजानं त्रासदस्यवम् ।
[१२५८] ८, १९, ३५ स्यामेदृतस्य रथ्यः ।
७, ६६, १२, ८, ८३, ३ यूयमृतस्य — ।
[१२७३] ८, २३, ४, (११९४) ७, १६, ३
[१२७६] ८, २३, ७; (२७३) १, १२७, २
[१२७८] ८, २३, ९; (९६) १, ४४, ११
[१२८१] ८, २३, १२ रयिं रास्व सुवीर्यम् ।
(८५८) ५, १३, ५; ८, ९८, १२
स नो रास्व सुवीर्यम् ।
९, ४३, ६ सोम रास्व सुवीर्यम् ।
[१२८७] ८, २३, १८; (८९७) ५, २१, ३
[१२९१] ८, २३, २२ (विश्वमना वैयश्व । अग्नि)
अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् । प्रति स्रुगेति ।
(१३०७) ८, ३९, ८ (नाभाक काण्व । अग्नि)
अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ।
(१३९०) ८, ६०, २ (भर्ग. प्रागाथः । अग्नि)
स्रुचश्चरन्त्यध्वरे । अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ।
(१४७२) ८, १०२, १० (प्रयोगो भार्गव., पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपति- यविष्ठौ सहसः पुत्रौऽन्यतरो वा । अग्नि.)
अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ।
[१२९२] ८, २३, २३ आभिर्विधेमाग्नये ।
८, ४३, ११ स्तोमैर्विधेमाग्नये ।
[१२९४] ८, २३, २५, १, १२७, ८
[१२९६] ८, २३, २७ (विश्वमना वैयश्व । अग्निः)
वंस्वा नो वार्या पुरु ।
(१४०२) ८, ६०, १४, (भर्ग प्रागाथः । अग्नि)
[१२९८] ८, २३, २९ त्वं नो गोमतीरिष‍. ।

५, ७९, ८; ८, ५, ९; ९, ६२, ४ **उत नो— ।**
[१२९९] ८, २३, ३० (विश्वमना वैयश्व । अग्नि)
ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा ।
८, २५, १ (विश्वमना वैयश्व । मित्रावरुणौ)
ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा ।
[१३००] ८, ३९, १–१०, ८,४०,१-११, ४१, १-१०; ४२,४–६ **नभन्तामन्यके समे ।**
[१३०५] ८, ३९, ६, (२८८) १, १२८, ६
[१३०७] ८, ३९, ८, (१२९१) ८, २३, २२
[१३१०] ८, ४३, १, ८, ३, १५ **गिरः स्तोमास ईरते ।**
[१३११] ८, ४३, २ (२३९) १, ७८, १
[१३२०] ८, ४३, ११ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
स्तोमैर्विधेमाग्नये ।
(१६६४) १०, ९१, १४ (अरुणो वैतहव्य । अग्नि)
यस्मिन्नश्वास ऋषभास **उक्षणो वशा ।**
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे ।
(१३६९) ८, ४४, २७ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
स्तोमैरिषेमाग्नये ।
[१३२४] ८, ४३, १५ **अग्ने वीरवतीमिषम् ।**
(२०) १, १२, ११, ९, ६१, ६ **रयिं — ।**
[१३२५] ८, ४३, १६; **इमं स्तोमं जुषस्व मे ।**
(२१) १, १२, १२ **इमं स्तोमं जुषस्व नः ।**

[१३२७] ८, ४३, १८ **विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ।**
(१३३८) ८, ४३, २९
[१३२९] ८, ४३, २० **वह्निं होतारमीळते ।**
(१०१९) ६, १४, २ **अग्निं होतारमीळते ।**
(५१०) ३, १०, २ **अग्ने— ।**
[१३३०] ८, ४३, २१= (१२२१) ८, ११, ८
[१३३१] ८, ४३, २२ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
इम नः शृणवद्धवम् ।
१०, २६, ९ (विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्र । पूषा)
[१३३२] ८, ४३, २३ , ४, ३२, १३= ८, ६५, ७
त त्वा वय हवामहे ।
[१३३३] ८, ४३, २४ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
अग्निमीळे स उ श्रवत् ।
(१३४८) ८, ४४, ६ (विरूप आङ्गिरसः । अग्निः)
[१३३९] ८, ४३, ३०; (१२४०) ८, १९, १७

[१३४०] ८, ४३, ३१, (५०७) ३, ९, ८
[१३४१] ८, ४३, ३२ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे ।
९, १००, ८ (रेभसूनू काश्यपौ । पवमानः सोमः)
[१३४८] ८, ४४ ६, (१३३३) ८, ४३, २४
[१३५१] ८, ४४, ९, ६, ५२, १२
चिकित्वान्दैव्यं जनम् ।
[१३५२] ८, ४४, १० (१०२९) ६, १५ ७
[१३५३] ८, ४४, ११ (११८९) ७, १५, १३
[१३५५] ८, ४४, १३ (११९२) ७, १६, १
[१३५६] ८, ४४, १४ (२१) १, १२, १२
[१३६१] ८, ४४, १९ (५०९) ३, १०, १
[१३६७] ८, ४४, २५; ८, ६, ४ **समुद्रायेव सिन्धवः ।**
[१३६९] ८, ४४, २७ (१३२०) ८, ४३, ११
[१३७०] ८, ४४, २८, २, ५, ८
[१३७०] ८, ४४, २८, १, १०, ९ **तस्मै पावक मृळय ।**
८, ४५, १ (त्रिशोक काण्व । अग्नीन्द्रौ)
स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
(१९१०) १, १३, ५ (मेधातिथि काण्व । आप्रीसूक्त=बर्हिः)
स्तृणीत बर्हिरानुषग् ।
८, ४५, १, १-३ **येषामिन्द्रो युवा सखा ।**
[२४५५] ८, ५६ (वाल ८)। ५, (पृषध्रः काण्व । अग्निर्मिया)
(२१) १, १२, १२
[१३८९] ८, ६०, १; ५, २०, ३
[१३९०] ८, ६०, २; ८, २३, २२
[१३९१] ८, ६०, ३; ४, ७, १
[१३९१] ८, ६०, ३; १, १२७, २
[१३९२] ८, ६०, ४ (भर्ग प्रागाथ । अग्निः)
मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
(१६८६) १०, १४०, ३ (अग्नि पावक । अग्नि)
[१३९६] ८,६०,८ **मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने ।**
८,२२,१४ — **रिपवे वाजिनीवसू ।**
[१३९८] ८,६०,१० **पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः ।**
१,३६,१५
[१४००] ८,६०,१२ **येन वंसाम पृतनासु शर्धतः ।**
६,१९,८ — **पृतनासु शत्रून् ।**
[१४०२] ८,६०,१४; ८,२३,२७
[१४०५] ८,६०,१७; १,१२७,२
[१४०६] ८,६०,१८; **इषण्यया नः पुरुरूपमा भर**

वाजं नेदिष्ठमूतये।
८,१,४ उप क्रमस्व पुरुरूपमा— ।
[१४०७] ८,६०,१९ (भर्ग प्रागाथ । अग्नि)
तपानो देव रक्षसः।
(१४७८) ८,१०२,१६ (प्रयोगो भार्गव पावकोऽग्नि र्बार्हस्पत्यो वा गृहपति-यविष्ठा सहस पुत्रावन्यतरो वा। अग्नि) तपानो देव शोचिषा।
[१४१४] ८,७१,६ प्र णो नय वस्यो अच्छ।
६,४७,७ प्र नो नय प्रतरं वस्या अच्छ।
(१५९७) १०,४५,९ प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छ।
[१४१६] ८,७१,८ त्वमीशिषे वसूनाम्।
१,१७०,५ त्वमीशिषे वसुपते वसूनाम्।
[१४१७] ८,७१,९, १,३०,१० सखे वसो जरितृभ्यः।
३,५१,६ —जरितृभ्यो वयो धाः।
[१४१८] ८,७१,१० पुरुप्रशस्तमूतये।
८,१२,१४ पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत्।
[१४२०] ८,७१,१२ (८९८) ५,२१,४
[१४२१] ८,७१,१२ (९३८) ५,२८,६
(१५८६) १०,२१,६ अग्ने प्रयत्यध्वरे।
[१४२१] ८,७१,१३ ईशे यो वार्याणाम्।
१,५,२; २४,३ ईशानं वार्याणाम्।
१०,९,५ ईशाना वार्याणाम्।
[१४२६] ८,७२,३, (८७७) ५,१७,२
[१४३८] ८,७२,१५ उप स्रक्केषु बप्सत।
७,५५,२ — बप्सतो नि षु स्वप।
[१४३९] ८,७२,१६ अधुक्षत्पिप्युषीमिषम्। ८,७,३
[१४४६] ८,७४,५ (१०९०) ६,४८,१
[१४४६] ८,७४,५, (५४९) ३,२७,१३
[१४४८] ८,७४,७, (३३२) १,१४४,७
[१४५३] ८,७४,१२; ७,९४,५ सबाधो वाजसातये।
८,७४,१४ वक्षन्वयो न तुग्र्यम्।
८,३,२३ अस्तं वयो— ।
[१३७५] ८,७५,३, (५२९) ३,२४,३
[१३८४] ८,७५,१२ मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्ग्भा रभृद्यथा।
६,५९,७ — परा वक्तं गविष्टिषु।

[१३८८] ८,७५,१६ ३,४१,६, ८,९८,११
अधा ते सुम्नमीमहे।
[१४५४] ८,८४,१ प्रेष्ठं वो अतिथिं (स्तुषे)।
१,१८६,३ —अतिथिं गृणीषे।
[१४५४] ८,८४,१ (१२३१) ८,१९,८
[१४५६] ८,८४,३ रक्षा तोकमुत त्मना।
१,४१,६ विश्वं तोकमुत त्मना।
[१४६१] ८,८४,८ ५,३५,७ पुरोयावानमाजिषु।
[१४६३] ८,१०२,१ (१५) १,१२,६
[१४६५] ८,१०२,३, ८,२१,११ त्वया ह स्विद्युजा वयं।
[१४६६-६८] ८,१०२, ४-६ अग्निं समुद्रवाससम्।
[१४६९] ८,१०२,७ ५,७,१
[१४७१] ८,१०२,९ (प्रयोगो भार्गव पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा गृहपति-यविष्ठौ सहस पुत्रोऽन्यतरो वा। अग्नि)
अग्निर्देवेषु पत्यये।
आ वाजैरुप नो गमत्।
९,४५,४ (अयास्य आङ्गिरस । पवमान सोम)
इन्दुर्देवेषु पत्यये।
[१४७२] ८,१०२,१० (१२९१) ८,२३,२२
[१४७३] ८,१०२,११ (५०७) ३,९,८
[१४७४] ८,१०२,१२ (७५४) ४,१५,६,
[१४७८] ८,१०२,१६, (१४०७) ८,६०,१९
[१४७८] ८,१०२,१६, (९२०) ५,२६,१
[१४७९] ८,१०२,१७, (७०४) ४,८,१
[१४८०] ८,१०२,१८ अग्ने दूत वरेण्यम्।
(१०) १,१२,१ अग्निं दूतं वृणीमहे।
[१२५९] ८,१०३,३, (९१४) ५,२५,४
[१२६१] ८,१०३,५, १,४०,४ स धत्ते अक्षिति श्रवः।
९,६६,७ दधानो अक्षिति श्रवः।
[१२६१] ८,१०३,५: ५,८२,६; ८,२२,१८
विश्वा वामानि धीमहि।
[१२६३] ८,१०३,७ (सोभरि काण्व । अग्नि)
पर्षि राधो मघोनाम्।
९,१,३ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । पवमानः सोमः)

ऋग्वेदस्य दशमं मंडलम्।

[१४९३] १०,२,२, (२३२) १,७६,४
[१४९३] १०,२,२ देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन्।

(१९४२) १,३,१
[१४९५] १०,२,४ यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि।

८,४८,९ यत्ते वयं —।
[१५०७] १०,४,२ अन्तर्महाँश्चरासि रोचनेन।
३,५५,९ अन्तर्महांश्चरति रोचनेन।
[१५१२] १०,४,७ (त्रित आप्त्य । अग्नि)
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत
नस्तन्वो ३ अप्रयुच्छन्।
(१५३३) १०,७,७ (त्रित आप्त्य । अग्नि)
भवा नो अग्नेऽ विनोत गोपा।
त्राखोत नस्तन्वो ३ अप्रयुच्छन्।
[१५१४] १०,५,२ (त्रित आप्त्य । अग्निः)
ऋतस्य पद कवयो नि पान्ति।
१०,१७७,२ (पतङ्ग प्राजापत्य । मायाभेद)
ऋतस्य पदे कवयो —।
[१५२६] १०,६,७ सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ।
८,९६,२१ —हव्यो बभूव।
[१५२६] १०,६,७, त ते देवासो अनु केतमायन्।
४,२६,२ मम देवासो—।
[१५२८] १०,७,२, १,१६३,७
यदा ते मर्तो अनु भोगमानत्।
[१५३१] १०,७,५ विश्नु होतार न्यसादयन्त। ३,९,९
[१५३३] १०,७,७ (१५१२) १०,४,७
[१५३४] १०,८,१, ६,७३,१
आ रोदसी वृषभो रोरवीति।
[१५३४] १० ८,१ अपामुपस्थे महिषः ववर्ध।
(१५९१) १०,४५,३
अपामुपस्थे महिषा अवर्धन्।
१०,९,५ ईशाना वार्याणाम्।
१,५,२, २४,३ ईशान वार्याणाम्।
(१४२१) ८,७१,१३ ईशे यो वार्याणाम।
१० ९६,६= १,२३,२०
१०,९,७= १,२३,२१
१०,९,७= १,२३,२१ १०,५७,४ ज्योक्च
सूर्यं दृशे। १०,९,८= १,२३,२२
१० ९,९=१,२३,२३
[१५४४] १०,११,५ (३९२) २,२,८
[१५४७] १०,११,८ देवी देवेषु यजता यजत्र।
४,५६,२ दवी देवेभिर्यजते यजत्रैः।
७,७५,७ देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः।
[१५४८] १०,११,९= १०,१२,९ (हविर्धान आङ्गि । अग्निः)
ध्रुवी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा
रथममृतस्य द्रवित्नुम्।
आ नो वह रोदसी देवपुत्र माकिर्देवानामप
भूरिह स्याः।
[१५५४] १०,१२,६; १०,१०,२
सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति।
[१५४८] १०,१२,९=१०,११,९
[१५६४] १०,१६,८ तस्मिन्देवा अमृता मादयन्ते।
(१९६३) ३,४,११=७,२ ११ स्वाहा देवा —।
[१५७१] १०,२०,१ (विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा
वासुक्र । अग्निः)
भद्रं नो अपि वातय मनः।
१०,२५,१ (विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा
वासुक्र । सोम)
—वातय मनो।
[१५८०] १०,२०,१० (विमद ऐन्द्र, प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा
वासुक्र । अग्नि)
एवा .. ।
इयान इषमूर्जं सुक्षिति विश्वमाभाः।
१०,९९,१२ (वम्रो वैखानस । इन्द्र)
एवा ।
स इयान करति स्वस्तिमस्मा इषमूर्जं सुक्षितिं
विश्वमाभाः।
[१५८१] १०,२१,१ (८९३) ५,२०,३
[१५८२] १०,२१,१ (५०७) ३,९,८
[१५८३] १०,२१,३ (४०१) २,८,५
[१५८६] १०,२१,६ (१२१४) ८,११,१
[१५८६] १०,२१,६ अग्ने प्रयत्यध्वरे।
(९३८) ५,२८,६,
(१४२०) ८,७१,१२ अग्निं प्रयत्यध्वरे।
[१५८७] १०,२१,७ (५१०) ३,१०,२
[१५८८] १०,२१,८ (२१) १,१२,१२
[१५९०] १०,४५,२ विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
(१६४७) १०,८०,४ अग्नेर्धामानि ।
[१५९०] १०,४५,२ (वत्सप्रिर्भालन्दनः । अग्नि.)
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं
यत आजगन्थ।
१०,८४,५ (मन्युस्तापसः । मन्युः)
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि
विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ।
[१५९१] १०,४५,३ (१५३४) १०,८,१

[१५९४] १०,४५,६ (४८४) ३,६,५
[१५९५] १०,४५,७ (११३७) ७,४,४
[१५९७] १९,४५,९ (१४१४) ८,७१,६
[१५९८] १०,४५,१०, ५,३७,५
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवति ।
[१५९९] १०,४५,११ (६४१) ४,१,१५
[१६००] १० ४५,१२, ९,६८,१० अद्वेषे द्यावापृथिवी
हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ।
[१६०२] १०,४६,२ (४१७) २,४,२
[१६०४] १०,४६,४ (११६५) ७,१०,५
[१६१०] १०,४६,१० यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहम् ।
७,११,४
[१६१६] १०,५३,१ (६१०) ३,१९,१
[१६१७] १०,५३,२ (१०३७) ६,१५,१५
देवा देवता १०,५३,५: ७,३५,१४
गोजाता उत ये यज्ञियासः ।
१०,५३,५, ७,१०४,२३ पृथिवी नः पार्थिवा-
त्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ।
[१६२३] १०,५३,१० येन देवासो अमृतत्वमानशुः ।
१०,६३,४ बृहद्देवासो— ।
[१६३१] १०,६९,७ सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा ।
१,१००,१२ सहस्रचेता शतनीथ ऋभ्वा ।
[१६३८] १०,७९,२ (५८५) ३,१४,५
[१६४५] १०,८०,२ अग्निर्मही रोदसी आ विवेश ।
३,६१,७ वृषा मही — ।
[१६४७] १०,८०,४, (१५९०) १०,४५,२
[१६५०] १०,८०,७ (४६८) ३,१,२२
[१६५४] १०,९१,४ अरेपसः सूर्यस्येव रश्मय ।
५,५५,३ विरोकिणः सूर्यस्येव — ।
[१६६०] १०,९१,१० (३७०) २,१,२
[१६६३] १०,९१,१३ (६६७) ४,३,२
[१६६४] १०,९१,१४ (८०५) ५,६,५
[१६६४] १०,९१,१४ (१३२०) ८,४३,११
[१६६७] १०,११५,२ (११३५) ७,४,२
[१६७०] १०,११५,५ (१०२५) ६,१५,३
[१६७३] १०,११५,८, १,५३,११ त्वां स्तोषाम त्वया
सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
[१६७७] १०,१२२,३ (९४७) ६,१,९
[१६७८] १०,१२२,४ (८४३) ५,११,२
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं ।

[१६८१] १०,१२२,७ (७८५) ५,३,८
[१६८५] १०,१४०,२ पृणक्षि रोदसी उभे ।
८,६४,४ ओभे पृणासि रोदसी ।
[१६८६] १०,१४०,३ (१३९२) ८,६०,४
[१६८९] १०,१४०,६ (१७३१) ३,२,५
अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना ।
[१६८९] १०, १४०, ६ (१०६) १, ४५, ७
[१६९८] १०, १५०, १ (५०५) ३, ९, ६
[१६९९] १०, १५०, २ (३७) १, २६, १०
[१७०१] १०, १५०, ४ अग्निर्देवो देवानामभवत्पुरो-
हितः । (१७३४) ३, २, ८ अग्निर्देवानामभव
त्पुरोहितः । (२०१३) १०, ११०, ११
अग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
[१७०५] १०, १५६, ३ पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।
८, ६, ९; ९, ६२, १२, ६३, १२
रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
[१७०६] १०, १५६, ४; ८, ८९, ७; ९, १०७, ७ आ
सूर्यं रोहयो दिवि । १, ७, ३ — रोहयद्दिवि ।
[१७११] १०, १८७, १ वृषभाय क्षितीनाम् ।
७, ९८, १ जुहोतन— ।
[१७११-१५] १०, १८७, १-५ स नः पर्षदति द्विषः ।
[१७१३] १०, १८७, ३ वृषा शुक्रेण शोचिषा ।
(२१) १, १२, १२ अग्निः शुक्रेण— ।
[१७१६] १०, १९१, १ अग्ने विश्वान्यर्य आ ।
९,६१,११ पना — ।
[१७१६] १०, १९१, १ स नो वसून्या भर ।
८, ९३, २९ स नो विश्वान्या भर ।
[१७१९] १,५९,३ (नोधा गौतम । अग्निर्वैश्वानर)
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
१,९१,४ (गोतमो राहूगण । सोमः)
[१७१९] १,५९,५ राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां ।
३,३४,२ इन्द्र क्षितीनामसि — ।
[१७२१] १,५९,५ (नोधा गौतम । अग्निर्वैश्वानर)
युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ।
७,९८,३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्र)
[१७२५] १,९८,२ (कुत्स आङ्गिरसः । अग्नि वैश्वानरोऽग्निर्वा)
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां ।
(१७९५) ७,५,२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. ।
वैश्वानरोऽग्नि)
पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां ।

(१८९८) १०,८७,१ (पायुर्भारद्वाज । रक्षोहाऽग्नि)
स नो दिवा स रिष· पातु नक्तम् ।
[१७२८] ३,२,२ (विश्वामित्रो गाथिनः । वैश्वानरोऽग्नि)
हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो।
(७९१) ५,४,२ (वसुश्रुत आत्रेय. । अग्नि)
हव्यवाळग्निरजरः पिता नो।
[१७३१] ३, २,५ (विश्वामित्रो गाथिन । वैश्वानरोऽग्नि·)
अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना।
(१६८९) १०, १४०, ६ (अग्नि· पावक· । अग्निः)
[१७३४] ३, २, ८ (विश्वामित्रो गाथिन । वैश्वानरोऽग्नि)
अग्निर्देवानामभवत्पुरोहितः ।
(२०१३) १०, ११०, ११ (जमदग्निर्भार्गव राम्रो वा जामदग्न्य.) आप्रीसूक्तं=(स्वाहाकृतय)
अग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
(१७०१) १०, १५०, ४ (मृळीको वासिष्ठ । अग्नि)
अग्निर्देवो देवानामभवत्पुरोहितो।
[१७३६] ३, २, १० (विश्वामित्रो गाथिन । वैश्वानरोऽग्नि.)
विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः।
(७९२) ५, ४, ३ (वसुश्रुत आत्रेय । अग्नि.)
— मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
(९४६) ६, १, ८ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि)
— विश्पतिं शश्वतीनां ।
प्रतीशाणिमिपयन्त पावकं ।
[१७३७] ३,२,११ (विश्वामित्रो गाथिन । वैश्वानरोऽग्नि.)
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो।
(५४१) ३,२७,५ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
पृथुपाजा अमर्त्यो।
[१७५५] ३,२६,३ स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं ।
८,१२,३३ सुवीर्यं स्वश्व्यं।
[१७६०] ४,५ ३ सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान् ।
२,१२,१२ यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान् ।
[१७६१] ४,५,४ (वामदेवो गौतम. । वैश्वानरोऽग्नि)
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ।
१०,८९,८ (रेणुर्वैश्वामित्रः । इन्द्र)
प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम युजं न जना मिनन्ति मित्रम् ।
[१७६५]४,५,८ पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः।
(४७४) ३,५,५ पाति प्रियं रिपो अग्रं पद वेः।
[१७७७] ६,७,५ महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।
५,८५,६ मही देवस्य नकिरा दधर्ष ।
[१७७९] ६,७,७ वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुः ।
१,१६०,४ वि यो ममे रजसी सुक्रतूयया।
[१७७९] ६, ७, ७ वैश्वानरो वि दिवो रोचना कवि ।
९, ८५, ९ अरू रुचद्वि दिवो रोचना कविः।
[१७८१] ६, ८, २; (३१९) १, १४३, २ स जायमानः परमे व्योमनि। (१८००) ७, ५, ७ — व्योमन् ।
[१७८१] ६, ८, २ व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतु·।
(१७७९) ६, ७, ७ वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतु ।
[१७८५] ६, ८, ६ अस्माकमग्ने मघवत्सु धारय।
(३०१) १, १४०, १० — मघवत्सु दीदिहि ।
[१७८६] ६,८,७ अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन्।
(३२५) १,१४३,८ अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टे ऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ।
[१७९५] ७,५,२ पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां ।
(१७२५) १,९८,२ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां।
[१७९५] ७,५,२ नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
६,४४,२१ वृषा सिन्धूनां — ।
[१७९७] ७,५,४ अजस्रेण शोचिषा शोशुचान· ।
(१०९२) ६,४८,३— शोशुचच्छुचे ।
[१७९९] ७,५,६ उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ।
१,११७,२१ उरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ।
[१८००] ७,५,७ स जायमानः परमे व्योमन् ।
(३१९) १,१४३,२, (१७८१) ६,८,२— व्योमनि ।
[१८०६] ७,६,४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । वैश्वानरोऽग्निः) शचीभिः।
अनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ।
१०,७४,५, (गौरिवीति शाक्त्यः । इन्द्र)
शचीव इन्द्रमवसे कृणु वमनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ।
[१८११] ७,१३,२ (४८१) ३,६,२
आ रोदसी अपृणा जायमानः।
४,१८,५ (१५९४) १०,४५,६
आ रोदसी अपृणाज्जायमान· ।
[१८१७] ४,४,५ (वामदेवो गौतम. । रक्षोहाऽग्निः)
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून्।
१०,११६,५ (अग्नियुतः स्थौरोऽग्नियूपो वा स्थौर. । इन्द्र.)
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम् ।

प्रतीत्या शत्रून्विगदेषु वृश्च ।
[१८१९] ४,४,७ यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
(९८३) ६,५,५ यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैः ।
[१८२५] ४,४,१३ = (३४५) १,१४७,३
[१८२७] ४,४,१५ (वामदेवो गोतमः । रक्षोहाऽग्निः)
अया ते अग्ने समिधा विधेम ।
(११७५) ७,१४,२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः)
वयं ते अग्ने— ।
[१८२८] १०,८७,१, (१७२५) १,९८,२
स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ।
[१८३१, १८४०] १०,८७,४ १३
ताभि- (१३ तया)- र्विध्य हृदये यातुधानान् ।
[१८४८] १०,८७,२१ पश्चात्पुरस्तादधरादुदक्तात् ।
७,१०४,१९ प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तात् ।
[१८५०] १०,८७,२३ अग्ने तिग्मेन शोचिषा ।
अग्निस्तिग्मेन— । (२१) १,१२,१२
[१८५५] १०,११८,३ (२४८) १,७९,५
अग्निरीळेन्यो गिरा ।
[१८५७] १०,११८,५, (५०५) ३,९,६,
(१६९८) १०,१५०,१ देवेभ्यो हव्यवाहन ।
१०,११९,१३ देवेभ्यो हव्यवाहन ।
[१८५९] १०,११८,७ गोपा ऋतस्य दीदिहि ।
(५१०) ३,१०,२ दीदिहि स्वे दमे ।
[१८६१] १०,११८,९; (८६१) ५,१४,२
यजिष्ठं मानुषे जने ।
(देवता- १-२३ अश्विनौ) १,११२,१-२३
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।
[१८६३] १०,१८८,१ अश्वं हिनोत वाजिनम् ।
९,६२,१८ हरिं हिनोत वाजिनम् ।
[१८६३] १०,१८८,१; (१९२४) १,१३,७, ८,६५,६
इदं नो बर्हिरासदे ।
[१८७२] १,९५,५ जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
२,३५,९ जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
[१८७५] १,९५,८ (कुत्स आङ्गिरसः । अग्निः, औषसोऽग्निर्वा)
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्सम्पृञ्चानः सदने
गोभिरद्भिः ।
... .. धीः ।
९,७१,८ (ऋषभो वैश्वामित्रः । पवमानः सोमः)
त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता
सेधति स्रिधः ।

स सुष्टुती नसते सं गो अग्रया ।
[१८७८] १,९५,११=१,९६,९ (कुत्स आङ्गिरसः । अग्निः, औषसोऽग्निर्वा)
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक
श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः
पृथिवी उत द्यौः ।
[१८७९-८५] १,९६,१-७
देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ।
[१८८४] १,९६,६ (कुत्स आङ्गिरस । अग्नि द्रविणोदा अग्निर्वा)
रायो बुध्नः संगमनो वसूनां ।
१०,१३९,३ (विश्वावसुर्देवगन्धर्व । सविता)
[१८८६] १,९६,८ द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य ।
१,१५,७ द्रविणोदा द्रविणसो ।
[१८८७] १,९६,९=१,९५,११
[१८८७-९४] १,९७,१,१-८ अप नः शोशुचदघम् ।
[१८८९] १,९७,३ प्रास्माकासश्च सूरयः ।
(८४०) ५,१०,६ अस्माकासश्च सूरयो ।
[१८९२] १,९७,६; (४) १,१,४ विश्वतः परिभूरसि ।
[१८९७] ४,५८,३ महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ।
८,४८,१२ अमर्त्यो मर्त्यां आविवेश ।
[१९०४] ४,५८,१० अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिम् ।
९,६२,३
[१९०७] १,१३,२ (मेधातिथि काण्व । आप्रीसूक्तं=
तनूनपात) मधुमन्तं तनूनपाद् ।
(१९११) १,१४२,२ (दीर्घतमा औचथ्यः । आप्रीसूक्तं=
तनूनपात)
[१९०७] १,१३,२ अद्या कृणुहि वीतये ।
६,५१,१० नूनत्कृणुहि वीतये ।
[१९०८; १२] १,१३,३, ७ अस्मिन्यज्ञ उप ह्वये ।
[१९०९] १,१३,४ असि होता मनुर्हितः ।
१,१४,११ त्वं होता मनुर्हितो ।
८,३४,८ आ त्वा होता मनुर्हितो ।
[१९१०] १,१३,५ (मेधातिथि : काण्व । आप्रीसूक्तं=बर्हिः)
स्तृणीत बर्हिरानुषग् ।
३,४१,२ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्र)
तिस्तिरे बर्हिरानुषक् ।
८,४५,१ (त्रिशोकः काण्व. । इद्र , १ अग्नीन्द्रौ)
स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।

[१९११] १,१३,६ (मेधातिथि काण्वः । आप्रीसूक्तं=
देवी द्वार)
वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः ।
(१९२३) १,१४२,६ (दीर्घतमा औचथ्य ।
आप्रीसूक्त=देवी. द्वार)
वि श्रयन्तामृतावृध ।
द्वारो देवीरसश्चत ।
[१९१२] १,१३,७ (मेधातिथिः काण्वः । आप्रीसूक्तं=
उषासानक्ता)
नक्तोषासा सुपेशसा ।
इदं नो बर्हिरासदे ।
(१९२४) १,१४२,७ (दीर्घतमा औचथ्य ।
आप्रीसूक्तं= उषासानक्ता)
नक्तोषासा सुपेशसा ।
८,६५,६ (प्रगाथ काण्व । इन्द्र.)
इदं नो बर्हिरासदे ।
(१८६३) १०,१८८,१ (श्येन आग्नेय)
जातवेदा अग्नि)
इदं नो बर्हिरासदे ।
[१९१३] १, १३, ८ (मेधातिथि काण्व । आप्रीसूक्त=
दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ)
ता **सुजिह्वा** उप ह्वये **होतारा दैव्या कवी ।**
यज्ञं नो यक्षतामिमम् ।
(१९२५) १,१४२,८ (दीर्घतमा औचथ्य ।
आप्रीसूक्तं=दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ)
मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी **होतारा** दैव्या **कवी ।**
यज्ञं नो यक्षतामिमं ।
(१९३७) १,१८८,७ (अगस्त्यो मैत्रावरुणः ।
आप्रीसूक्तं= दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ)
सुवाचसा होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमम् ।
[१९१४] १, १३, ९ (मेधातिथि काण्वः । आप्रीसूक्तं=
तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः)
(१९७१) ५,५,८ (वसुश्रुत आत्रेय । आप्रीसूक्तं—)
इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ।
[१९१५] १,१३,१०; १,७,१० **अस्माकमस्तु केवलः ।**
[१९१८] १, १४२, १ (दीर्घतमा औचथ्य । आप्रीसूक्तं=
इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा)
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं ।

८,१३,१४ (नारद काण्व । इन्द्र)
—पूर्व्यं यथा विदे ।
[१९१९] १, १४२, २, (१९०७) १, १३, २
मधुमन्तं तनूनपाद् ।
[१९१९] १,१४२,२ **यज्ञं विप्रस्य मावतः ।**
१, १७, २ **हवं विप्रस्य मावतः ।**
[१९२०] १,१४२,३ (दीर्घतमा औचथ्य । आप्रीसूक्त=
नराशंस)
शुचिः पावको अद्भुतो ।
८,१३,१९ (नारद काण्व. । इन्द्र)
शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुत ।
९,२४,६ (असित काश्यपो देवलो वा । पवमान. सोम)
शुचि पावको अद्भुतः ।
९,२४,७ (असित काश्यपो देवलो वा । पवमान. सोम)
शुचिः पावक उच्यते ।
[१९२१] १,१४२,४ (दीर्घतमा औचथ्य । आप्रीसूक्तं=इळ)
ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
(१९६६) ५,५,३ (वसुश्रुत आत्रेय. । आप्रीसूक्तं-इळ)
[१९२३] १,१४२,६; (१९११) १,१३,६
[१९२४] १, १४२, ७ (दीर्घतमा औचथ्य. आप्रीसूक्तं-
उषासानक्ता)
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ।
(१९६९) ५,५,६ (वसुश्रुत आत्रेय । आप्रीसूक्तं=
उषासानक्ता) **यह्वी — ।**
९,३३,५ (त्रित आप्त्य. । पवमान सोमः)
यह्वीॠतस्य मातर ।
९,१०२,७ (त्रित आप्त्य. । पवमानः सोम)
यह्वी ऋतस्य मातरा ।
१०,५९,८ (बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गोपायनाः ।
द्यावापृथिवी) **यह्वी ऋतस्य मातरा ।**
८,८७,४ (कृष्ण आङ्गिरसो, द्युम्नीको वा वासिष्ठः,
प्रियमेध आङ्गिरसो वा । अश्विनौ)
अश्विना बर्हि. सीदतं सुमत् ।
[१९२५] १,१४२,८ (१९१३) १,१३,८
[१९२५] १,१४२,८ (दीर्घतमा औचथ्यः । आप्रीसूक्त=
दैव्या होतारो प्रचेतसो)
सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।
२,४१,२० (गृत्समद शौनकः । द्यावापृथिवी हविर्धाने वा)
(८५५) ५,१३,२ (सुतंभर आत्रेय । अग्नि)
सिध्रमद्य दिविस्पृशः ।

[१९२८] १,१४२,११; १,१०५,१४
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः।
(१९४०) १,१८८,१० अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ।

[१९३४] १,१८८,४ (अगस्त्यो मैत्रावरुण । आप्रीसूक्तं=बर्हि)
प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् ।
(१९८४) ९,५,४ (असित काश्यपो देवलो वा । आप्रीसूक्तं=बर्हि.)
बर्हिः प्राचीनमोजसा पवमान स्तृणन्हरिः।

[१९३७] १,१८८,७ , (१९१३) १,१३,८

[१९४०] १,१८८,१० (१९२८) १,१४२,११

[१९४२] २,३,१ (गृत्समद शौनक । आप्रीसूक्तं= इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा)
देवो देवान्यजत्वग्निर्र्हन् ।
(१४९३) १०,२,२ (त्रित आप्त्य । अग्नि.)

[१९४८] २,३,७ (गृत्समद शौनक । आप्रीसूक्तं= दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ)
दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर।
नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु।
(१९५९) ३,४,७ (विश्वामित्रो गाथिन । आप्रीसूक्तं= दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ)
(४९७) ३,७,८ (विश्वामित्रो गाथिनः । अग्नि)
दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे ।
१०,६६,१३ (वसुकर्णो वासुकः । विश्वे देवा)
—प्रथमा पुरोहित ।
(२००९) १०,११०,७ (जमदग्निर्भार्गवः रामो वा जामदग्न्यः । आप्रीसूक्तं = दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ)
— प्रथमा सुवाचा ।
(५६१) ३,२९,४ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि.)
नाभा पृथिव्या अधि।

[१९५०] २,३,९ अथा देवानामप्येतु पाथः ।
३,८,९; ७,४७,३ देवा (७,४७,३ देवैर्)
देवानामपि यन्ति पाथः।

[१९५२] २, ३, ११ (गृत्समद शौनकः । आप्रीसूक्तं= स्वाहाकृतय)
अनुष्वधमा वह मादयस्व ।
(४८८) ३,६,९ (विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः)

[१९५८] ३,४,६ यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषत् ।
१,४३,३ यथा नो मित्रो वरुणो ।

[१९५९] ३,४,७ (४९७) ३,७,८ (विश्वामित्रो गाथिन. । आप्रीसूक्तं = दैव्यो होतारौ प्रचेतसौ)
दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति । ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनुव्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥

[१९५९] ३,४,७, (१९४८) २,३,७

[१९६०] ३, ४ ८ (विश्वामित्रो गाथिन । आप्रीसूक्तं=
७,२,८ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । आप्रीसूक्तं= तिस्रो देव्य सरस्वतीळाभारत्यः)
आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः । सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक्तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥

[१९६१] ३,४,९ (विश्वामित्रो गाथिन । आप्रीसूक्तं=त्वष्टा)
७,२,९ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आप्रीसूक्तं=त्वष्टा)
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व । यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥

[१९६२] ३,४,१० (विश्वामित्रो गाथिन । आप्रीसूक्तं= वनस्पति.)
७,२,१० (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । आप्रीसूक्तं= वनस्पतिः)
वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति । सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥

[१९६३] ३,४,११ (विश्वामित्रो गाथिनः । आप्रीसूक्तं=
७।२।११ वसिष्ठो मैत्रावरुणि । आप्रीसूक्तं= स्वाहाकृतयः)
आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ।
(८४३) ५,११,२ (सुतंभर आत्रेय । अग्नि)
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि ।
१०,१५,१० (शंखो यामायनः । पितरः)
इन्द्रेण देवै सरथं दधाना ।
(२००२) १०,७०,११ (सुमित्रो वाध्र्यश्व । आप्रीसूक्तं=स्वाहाकृतयः ।
स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ।

[१९६६] ५,५,३ ; (१९२१) १,१४२,४

[१९६९] ५,५,६ ; (१९२४) १,१४२,७

देवत--संहितान्तर्गत-

अग्निमन्त्राणां उपमासूची।



अंशु. इव ५,२९,११; २२११ अय आप्यायताम्।
अंहः न ६,२,४, ९५५ स मर्त द्विष तरति।
अंहः न ६,११,६, १००५ वावसाना वय .. वृजन।
अगुवः न ७,९,५, १९७८ समनेषु[अग्नि शिशु] . समञ्जन्।
अघ्न्या कृश न ८,७५,८; १३८० देवा नः मा हासु.।
अंगिरस्वत् १,३१,१७; ६६ [अग्ने] सदने अच्छ आ याहि।
अगिरस्वत् ८,४३,१३, ८२२ शुचे, त्वा हवामहे।
अज न १,६७,५; १४८ अग्निः...क्षां पृथिवीं च दाधार।
अतस यथा [त्व] ८,६०,७, १३९५ क्षमि वृक्ष सर्जूर्वसि।
अतसं शुष्कं न ४,४,४, १८१६ समिधान, यः नः।
अतिथिः न १,७३,१, २०५ स्योनशीः[अग्नि] . प्रीणान.।
अतिथिः (न) ६,२,७, ९५८ प्रिय. . अग्नि।
अतिथि. न ८,१९,८, १२३१ अग्नि मित्रियः प्रशसमान.।
अत्य न १,५८,२; १११ प्रुषितस्य [अग्ने] पृष्ठ... रोचते।
अत्यः रथ्य वारान् दोधवीति न २,४,४, ४१९
अत्य. न ६,२,८; ९५९ अग्ने, शिशु [त्व]... ह्वार्य।
अत्य. न ६,४,५, ९७५... स्व हुत. पततः परिह्वत्।
अत्य. न १०,६,२, १५२१. . अपरिह्वतः सति।
अत्य न ३,२,७; १७३३ सः [अग्नि] अध्वराय परि।
अत्यम् न ७,३,५; ११२८ यविष्ठ तं अग्नि नरः मर्जयन्त।
अत्यम् न ३,२,३, १७२९ महाँ अग्नि वाज सनिष्यन्।
अत्रिवत् ५,७,८; ८१८ यस्मै (अग्नये)...परीयते।
अथर्यः न ४,६,८; ६८९ य अग्निं द्विः पञ्च स्वसार।
अथर्ववत् ६,१५,१७. १३०९ वेधस इम उ त्वन।
अथर्ववत् १०,८७,१२; १३८९ दैव्येन ज्योतिषा सत्य।
अद्रोघः न ६,१२,३, १००८ ओषधीषु द्रविता अवर्त्रे।
अध्वराः इव ३,६,१०; ४८९ ऋतजातस्य सुमेके ऋतावरी।
अप्नवानवत् ८,१०२,४, १४६६ समुद्रवाससं अग्नि आहुवे।
अमतिः न १,७३,२; २०६ पुरुप्रशस्तः (अग्नि) सत्यः।
अमृतात् इव १०,१७६,४; १७९०अयम् अग्नि . .जन्मनः।
अयः न ४,२,१७; ६६३ सुकर्माणः देवाः जनिम. धमंत।
अयसः धारां न ६,३,५ ९६७ सः[अग्निः]असिष्यत् तेजः..
अर्वन्तम् न ४,१५,६,७५४ सानसिं तम् दिवेदिवे.।
अर्वन्तं न ८,१०२,१२, १४७४सानसिं शुष्मिणं...गृणीहि।

अर्वाणम हिरिश्मश्रु न १०,४६,५, १६०१ [पथ]।
अपरशयून् जन इव [अथर्व] ८४,३६,९, २३०३ गे
अरनी मही सिन्धु इव ५,११,५, ८४६ अग्ने, त्वा गिर।
अविता विश्वासु विक्षु इव ८,७१,१५, १४०३ ऋप्रगा वरनु.।
अशनि यथा दिव्या १,१४३,५, ३२२ य (अग्निः) वराय।
अशनि. गोयुयुध. सृजाना न ६,६,५. ९९०
अशन्या वृक्षम् इव (अथ०) ७,१०९,४, २३८८ यः अग्यान।
अश्वः गविष्टिषु क्रन्दन् १,३६,८, ७५ अग्ने त्व कण्व।
अश्व. न ३,२७,१४, ५५० वृषा देववाहनः अग्निः।
अश्व. न ३,२९,६, ५६३ वनेषु वाजी अरुष आ विरोचते।
अश्व न ४,२,८, ६५४ दाश्वान्स त स्वे दमे हेस्या ... ।
अश्व. न ६,३,४; ९६६ (अग्निः) आस्या यतस्यान.।
अश्व. न यवसे अविष्यन् प्रोथत् ७,३,२; ११२५ मह।
अश्व क्रन्दत् जनिभि. न ३,२६,३, १७१५ युगे युगे।
अश्वास. न रारहाणा. रथ्यः १,१४८,३, ३५० य [अग्निम्]।
अश्वाः (इव) त्रिषितास. ६,६,४, ९८९ प्र सू नयन्त।
अश्वा. इव ८,२३,११, १२८० तव इन्वानास. भा।
अश्वा. एवै. ससीवन्तः वाजन १०,६,६, १५२५ यग्मिन्।
अश्व वाजिन न ७,७,१, १४४२ सहमान देव अग्नि .।
अश्व रथ्य न ८,१०३,७, १२६३ सुदानवः दयवः।
अश्वावत ८,७२,६, १४२९ अरय महत् बृहत् योजन।
अश्वाः जात शिशु न ३,१,४, ४५० सस यह्वी सुभग।
अश्वः इव (अथर्व०) १२,२,१०; २२६३ .अग्निः अनिकाम।
अश्वं अश्वाभिधान्या इव (अथ०) ४,३६,१०, २३०४
अश्वाय इव (अथर्व०) १९,५५,१; २२६९ अस्मै घास्य।
अश्वाय इव (अथर्व०) १९,५५,६, २२७४ अस्मै वासम्।
अश्वमिद् ८,७४,१०. १४५१ गां रथप्रा [अग्नि] तूर्वय।
असमश्वता इव १०,६९,८; १६३२ समना सबर्धुक त्वे।
असिः गां इव १०,७९,६; १६४२ अक्रीळन् क्रीळन् हरि.।
असुरः इव ८,१९,२३, १२४६ अग्निः निर्णिज उन् च।
अस्ता इव १,७०,११; १८४ [अग्नि] शूर.।
अस्ता इव ६,३,५; ९६७ [स्वकीया ज्वालाम्] असिष्यन्।
अस्तु दिद्युत न १,६६,७, १४० त्वेषप्रतीका।
अस्तुः अशनां शर्यां न १,१४८,४, ३५१ अस्य शोचिः।

आत्मा इव १,७३,२, २०६ अग्निः . शेवः।
आप इव प्रवता ३,५,८; ४७७ ... शुम्भमाना प्रवतः।
आपि (यथा) आपये यजति १,२६,३, ३० तथा त्वमपि।
आयु न ६,११,४; १००३ य सुप्रयस पञ्च जनाः. भजते।
आरोकाः इव ८,४३,३, १३१२ अग्ने तव तिग्मा त्विषः।
आशुम् न १,६०'५; १२३ वाजंभर त्वां (अग्निम्) ।
आशुम् न ४,७,११, ७०३ अर्वा (अग्नि.) [हवरश्मिम्]।
आशुम् इव आजिषु मंसि १०,१५६,१ १७०३ न. धियः।
इन्द्र न ६,४,७, ९७७ शवसा त्वा नूतमा देवता।
इन्द्र न ८,७४,१०, १४५१ सत्पतिम्, (हे) कृष्टय।
इन्द्र न १०,६,'५; १५२४ रेजमान अग्नि गीर्भिः।
इन्द्रस्य इव ७,६,१, १८०३ वन्दमान [अहम्] तवस.।
इषिराय भोज्या न १,१२८,५, २८७ अस्य अग्ने.।
उग्र शवसा न १,१२७,११, २८२ अग्ने शवसा।
उग्र इव ६,१६,३९, १०८० शर्यहा [अग्निः अस्ति]।
उद्र. इव ८,१९,१४; १२३७ स. सुभगः जनान् सुम्ने.।
उपमित रोध न ४,५,१; १७५८ अनूनेन बृहता वक्षथेन।
उरुज्यन्त्र इव दिविरुक्म ५,१,१२; ६६६ गविष्ठिर.... अश्रेत्।
भानुना उपम न ६,१५,५; १०२७ य. [अग्निः] रुरुचे।
उपसाम् इव १०,९१,४; १६५४ चिकित्र ते ईतय संति।
उपसां केतव. इव ८,४३,५, १३१४ एते ते अग्नयः।
उपसा केतव न १०,९१,५ १६५५ चिकित्र तव केतव।
उपः जार न १,६९,१, १६४ शुक्र. [अग्निः] [भवति]।
उपः जार न १,६९,९, १७२ विभावा सज्ञानरूप।
उप जार न ७,१०,१; ११६१ पृथु पाजः अश्रेत्।
उस्रः पिता इव ६,१२,४, १००९ ऊवस्रः यज्ञे जारयायि।
उस्रा. इव प्रस्नातीः ८ ७'१,८, १३८०देवाः ..न. मा हासु.।
ऊध मातु [प्रतियथा वत्साः उपजीवन्ति] १०,२०,२;
　१५७२ [तद्वत्] यस्य धर्मन् स्वर एनीः सपर्यन्ति।
ऊध. न गोना १,६९,३, १६६ अग्नि .. पितूनां स्वाम।
ऊर्मा सिन्धो. उपाके आ १,२७,६; ४३चित्रभानो विभक्तासि।
ऊर्मय सिन्धो. प्रस्वनितास इव १,४४,१२, ९७ अग्नेः।
ऊर्मि नाव न ८,७५,९; १३८१ समस्य, कृत्यः परिद्वेषसः।
ऊर्मय प्रवणे न ८,१०३,११; १२६७ धिया वाज सिषासत।
ऋभु न ६,३,८; ९७० त्वेष. रभसानः [अग्नि.] ..अद्यौत्।
ऋषिः न १,६६,४, १३७ [अग्नि.] स्तुभ्वा [अस्ति।]
एकाम् इव ३,७,४, ४९३ दिद्युतः अग्नि रोदसी वि।
एतर्रा न ६,१२,४, १००९ अस्माकेभि. शूषैः अग्निः. .सत्वे।
ओकः न १,६६,३; १३६ [अग्निः] रण्वः।
औशिज परमन् न दीयन् ६,४,६, ९७६ चित्रः शोचिषा।
कन्या इव अग्नि अञ्जानाः वहतु ४,५८,९, १९०३ वहतुं।
कविम् इव ८,८४,१; १४५५ प्रचेतसं यं देवासः मर्त्येषु।
कुमार न १०,७९,३; १६३९ मातु प्रतर गुह्यं इच्छन्।
क्रतुः न १,६६,५; १३८ [अस्ति] नित्य.।
क्रतुम् न ४,१०,१; ७२०तम् ते (त्वा) ओहैः स्तोमैः ऋध्याम।
क्रतुः न १,६७,१, १४५ ... [अग्नि.] भद्रः।
क्षामा इव विश्वा भुवनानि ६,५,०; ९८० यस्मिन् पावके।
क्षितिः पृथ्वी न १,६५,'५; १२८ [विस्तीर्णा भूमि. इव।]
क्षिति राया न ४,५,१'५; १७७१ सुदृशीकरूप पुरुवार।
क्षेम. न १,६७,१. १४'१ [अग्निः] साधुः।
क्षोद. न १,६५,'५; १२८ शंभु (यथा उदकं सुखं करोति)।
क्षोदः न १,६५,६, १२९ [अग्नि] सिन्धुः स्यन्दनशीलं।
क्षोद सिन्धु न १,६६,१०; १४३ [अग्नि] नीचीः ऐनोत।
स्वादिनम् न ६,१६,४०, १०८१ यं स्वध्वरं अग्निम्।
गर्भ इव गर्भिणीषु सुधित ३,२९,२; ५५९ जातवेदाः।
गर्भ इव योन्यो प्रच्युत. अथ० ६,१११,४; २३८९ सर्वान्।
गविषः द्राप दविध्नत् ४,१३,०; ७४१ यत् रश्मय।
गिरिः न १,६५,५, १२८ भुज्म (सर्वेषां भोजयिता।)
गुहा इव ३,१,१४; ४६०... स्वे सदसि शृङ्ग अग्नि नव।
गावः अस्त न १,६६,९, १४२ तं व. (त्वा) इद्धं अग्नि।
गाव. वाश्राय प्रतिहर्यते ८,४३,१७, १३१६ अग्ने, ममस्तुतः।
गाव उष्ण मजम् इव १०,४,२; १५०७ यविष्ठ, त्वां जनासः।
गावः वाश्राः न (वा०) ९१,६; १८७३ उभे मेने... एवैः।
गा. खिले विष्ठिताः इव (अथ०) ७,११५,४; २२०४ एता।
गौ स्व जरायुम् इव (अथ०) ६,४९,१, २३३७ कपि.।
गावः इयार्वी उरुज्रयौ अरुषी न १,७१,१; १८५ सनीळाः।
गो. पदम् न ४,५,३, १७६० अग्नि . अपगूळहं मनीषां।
गोपाः पशून् न ७,१३,३, १८११ इर्यः परिज्मा, अग्ने।
गौर्यं यथा ह त्यत् पदिषितां ४,१२,६, ७३९ एनो।
ग्रावा सोता इव ४,३,३, ६६८ (तस्मै) देवाय शांहित।
ग्रावा इव ५,२५,८, ९१८ बृहत् [स्वम्] उच्यते।
घनाः इव १,३६,१६, ८१ तपुर्जम्भ, अराव्णः विष्वक् ..।
घर्मः न ५,१९,४; ८८९ [अग्नि.] वाजजठरः अदब्धः।
घृतं न अध्न्यायाः तप्तं शुचि ४,१,६; ६३१ देवस्य मंहना।
घृतं पूतं न ४,१०,६, ७२५ स्वयातः, ते तनूः... ओपाः।
घृत न अस्ये [प्रहुतं] यज्ञे सुपूतं ५,१२,१; ८४८ वृषभाय।
घृतं शुचि न ६,१०,२, ९९४ मतयः ,, यं शूवं सोमं अस्मै।
आसनि कं घृत न ८,३९,३, १३०२ अग्ने, तुभ्यं सन्मानि।
घृतं सुचि इव १०,९१,१५; १६६५ अग्ने ते आस्ये...।
घृतं पूतं न ३,१,१; १७२७ ऋतावृधे वैश्वानराय...।
चक्षाणि वस्तोः न ६,४,२; ९७२ सः अग्निः...विभावा।
चन्द्रम् सुरुचं इव १,२,४, ४८८ [देवाः] अग्निं सस्वहारे।

चर्म इव ४,१३,४; ७४३ सूर्यस्य रश्मयः अप्सु अनाः ..।
चर्मणी इव ६,८,३; १७८२ वैश्वानरः धिषणे अवर्तयत्।
चित्रः यामन् अश्विनोः न ३,२९,६; ५६३ वनेषु वाजी ।
छाया इव १,७३,८; २११ त्व अग्निः विश्व भुवन ।
छायाम् इव ६,१२,३८, १०७९ अग्ने, घृणेः ते शर्म वय ।
जनयः नित्य पति न १,७१,१; १८५ उशतीः सनीळा. ।
जनयः शुम्भमाना १०,११०.५, २००७ व्यचस्वतीः ।
" " (वा०य०) २९,३०; २१२२ "
जनयः न पतिरिष ४,५.५, १७६१ दुरेवाः पापास. सन्तः ।
जनयः सुपत्नी (यथा) वा०य० २०,४०; २०१८ इन्द्र दुरः।
जनयः पत्नीः न वा०य० २० ४३, २०२१ इन्द्रं जुषाणाः।
जन्म तनय न ३,१५,२, ५८९ अग्ने, मे स्तोम नित्य ।
जाया योनौ इव १,६६,५; १३८ [अग्निहोत्रादिगृहे ।]
जाया पत्ये उशती सुवासाः ४,३,२, ६६७ अय ते योनि ।
जाया पत्ये उशती सुवासाः १०,९१,१३, १६६३ [अहम् ।]
जारः आ १०,११,६; १५४५ ... भगं पितरा उदीरय ।
जूर्णः इव पुरि ६.२,७, ९५८ [अग्ने] त्व रण्व ।
तक्वीः इव १०,९१,२; १६५२ वने वने शिश्रिये ।
तक्वा न १,६६,२; १३५ [अग्नि.] भूर्णि ।
ततरुष न ६,१२,२, १००७ जहः [त्रिषध.स्थ ।]
तन्यतुः यथा ५,२५,८, ९१८ दिवः त स्वान आर्त ।
दिवः तन्यतु. न ७,३,६; ११२९ ते शुष्मः एति ।
तरणिः इव १,१२८,६, २८८ अरतिः अग्निः दक्षिणे हस्ते ।
तस्कराः तनू त्यजा इव १०,४,६; १५११ वनर्गुः दशभि ।
ताळित् इव १,९४,७, २६२ दूरे चित सन् अति रोचसे ।
तातृषाणः न २,४,६, ४२१ यः अग्निः ..वना आभाति ।
तायुं पश्वा (सहवर्तमानं) न १,६५,१, १२४ धीराः सजोषाः।
तायुः गुहा पदं दधानः न ५,१५,५; ८७० महः राये अत्रि।
तायुः ऋणः न ६,१२,५; १०१० यः रुधः स्पन्द्रः विषितः।
तोदः अध्वन् न ६,१२,३ १००८ वृधसानः वनेराट् अग्नि।
तोदस्य शरणे महस्य आ १,१५०,१; ३५८ अग्ने, तव स्वित्।
त्वष्टा रूपा इव ८,१०२,८, १४७० अयं [अग्नि] नः .. ।
यथा अग्नये इळाभि ७,३,७; ११३० अग्ने, नः तेभि ।
विद्युत् अस्तुः त्वेषप्रतीका न १,६६,७, १४० [अग्नि] ।
दिवः ज्योतिः न १,६९,१; [अग्निः] समीची पप्रा ।
दिव शिशुं न ४,१५,६ ७५४ अरुषं त दिवे दिवे ।
दिवः न ४,१०,४, ७२७ अग्ने ते शुष्माः प्रस्तनयन्ति ।
दिवः न ५,१७,३; ८७८ यस्य [अग्ने] रेतसा व्यास ।
दिवः न ६,३,७, ९६९ विधत यस्य [अग्ने] .. ।
दुरधम् न ५,१९ ४, ८८९ जाम्यो रुचा [अग्नि] भ्रगोतु।
दूतः जन्य. मित्र्यः इव २,६,७ ४३९ कवे अग्ने, उभया।
देव न १,७३,३, २०७ [अग्नि]... विश्वधाय्यः ।
द्याम् इव परिज्मानं १,१२७,२, २७३ चर्षणीनां होतार ।
द्यौः स्तृभि न २,२,५, ६८९ [अग्नि] रोदसी ।
द्यौ नभोभिः स्मयमान २,४,६; ४२१ ...कृष्णाध्वा तपुः।
द्याम् इव स्तृभिः ४,७,३. ६९५ विश्वेषां अध्वराणां ।
द्यौः न १,६५,३, १२६ .. भूम अभुत् ।
द्याव. न १०,११५,७, १६७२ [ऋतायव] द्युम्ने यंति ।
द्यौ स्तनयन् इव १०,४५,४; १५९२ अग्नि अक्रन्दत ।
द्रविः न ६,३,४, ९६६ [अग्निः] रक्षत दारु द्रावयति ।
द्वेषो युतः न ५,९,६, ८३३ . मर्त्यानां दुरिता तुर्याम् ।
धनुः इव (अथर्व०) ४,४.६, २१६२ ... पस आ तनय ।
धन्वाराहा न १,१२७,३, २७४ नि.षहमाण (अग्नि)।
धायोभि वा ६,३,८, ९७० य [अग्नि] युज्येभि ।
धारा उदन्या इव २,७,३; ४४३ वग विश्वा द्विष. ।
धासिम् इव १,१४०,१; २९२ सुद्युते अग्नये योनिम् . ।
धीर स्त्रेन इव १,१४५,२, ३३४ [अग्निः] मनसा ।
धेनव स्वसरेषु वत्स न २,२,२; ३८६ [अग्ने] त्वा ।
धेनुः दुहाना (इव) २,२,९, ३०.३ [अग्ने त्वदीया] धीः ।
धेनो मंहना इव ४,१,६; ६३२ देवस्य महना स्पार्हा ।
धेनुम् इव ५,१,१; ७५५ आयतीं उषासं प्रति जनानां ।
धेनुः सुदुघा इव ७,२,६, ११७९ उषासा नक्ता सुविताय ।
ध्माता इव ५,९,५, ८३२ यत् [अग्निः] ईम् उपधमति ।
ध्मातरी यथा ५,९,५, ८३२ .. (स्वयमेव स्वात्मान ।
नभः रूपं न १,७१,४०, १९४ (त्व) कवि सन् अभि ।
नभन्यः अर्वा १,१४९,३, ३५५ अग्नि अत्यः कवि ।
नराम् न १,१४९,२, ३५४ यः रोदस्योः वृषा ।
नारी इव अनवद्या पतिजुष्टा १,७३,३, २०७ अग्निः भवति ।
नेमिः अरान् न १,१४१,९; ३१३ अग्ने यत सीम् क्रतुना ।
नेमि चक्रम् इव २,५,३; ४२७ अग्नि ...विश्वानि काव्या ।
नेमिः अरान् इव ५,१३,६, ८५९ अग्ने त्व देवान् ।
नेमि ऋभव यथा ८,७५,५, १३७७ अग्निः महातिथि ।
नावा सिन्धुम् न ५,४,९, ७९८ जातवेदः नः विश्वानि ।
नावा इव ५,२५,९; ९१९ अग्नि. नः विश्वा द्विषः ।
नावा इव सिन्धु १,९९,१; १८६२ अग्नि न विश्वा ।
नावा इव १,९७,७, १८९३ विश्वतोमुख, नः द्विषः ।
नावया सिन्धुम् इव १,०७,८; १८९४ सः त्व न स्वस्तये ।
पयः न धेनुः १,६६,२; १३५ (पयः इव प्रीणयिता) ।
परशु न द्रुहतरः १,१२७,३, २७४ दीद्यान. अग्निः ।
परशु न ४,६,८, ६८९ तिग्मं स्वास दन्त अग्निम् ।
परशुः न ६,३,४, ९६६ [अग्निः] . जिह्वा विजेहमानः ।
परिज्मा इव ६,२,८, ९५९ अग्ने [त्व] [सर्वगत] ।

परिज्मा इव ६,१३,२, १०१३ दस्मवर्चाः क्षयसि ।
पथ्या इव ६,८,५ १७८४ राजन्, अजर,.. तेजमा ।
पशु न शिश्वा १,६५,१०, १३३ अग्नि शिश्वा अभूत ।
पशु न २,४,७, ४२२ अग्नि . स्वयु अगोपा एति ।
पशु न दाता ५,७,७, ८१७ सहिष्म आक्षित धन्य. ।
पशु न यवसे ५,५,४, ८३१ अग्ने (त्व) वना .. पुरु ।
पशु न यवसे ६,२,९०; ९६० अग्ने, त्वं स्याचित ।
पशु इव अवसृष्ट १०,४,३, १५०८ [त्यान्] जिगीषसे ।
पशु नष्ट पदै. न १०,४६,२, १६०२ धीरा. अपां सध स्थे ।
पशुपा इव १,४४,६, ३३१ अग्ने, त्व दिव्यस्य पार्थिवस्य ।
पशुपा इव ४,६,४; ६८५ अग्नि त्रिविष्टि .. परि एति ।
पशुपा इव १०,१४२,२; १६९१ न. धिय. .. त्मना ।
पशुवे न १,१२७,१०, २८१ उषर्बुधे अग्नये व स्तोम ।
पाथ. न २,२,४; ३८८ पायु पृश्न्या. पतरं अक्षभिः ।
पितुमान् इव १,१४४,७, ३३२ अग्ने, त्वं संदृष्टा रण्वः, ।
पिता सूनवे इव १,१,९, ९ अग्ने, न. . सूपायन ।
पिता सूनवे इव १,२६,३; ३० अग्ने (पितृस्थानीय. ।)
पितु न जिव्रेः १,७७,१०, १८३ [अग्ने] त्वा नरः पुरुत्रा ।
पितु न १,१२७,८, २७९ यस्य आसया अमी विश्वे ।
पिता इव २,१०,१, ४०९ जोहूत्र. प्रथम. अग्निः यत् ।
पितु यथा ८,७५,२६, १३८८ अग्ने, ते अवसः वय पुरा ।
पिता पुत्रम् इव १०,६९,१०; १६३४ सपर्यन् वाध्र्यश्वः...।
पितरा इव ३,१८,१, ६०५ अग्ने, त्वं उपेता सुमनाः ।
पित्रो (इव) ७,६,६, १८०८ रोदस्योः उपस्थ वैश्वानर ।
पुत्रा. पितुः न १,६८,९; १६२ ये अस्य (अग्नेः) शास ।
पुत्रः न १,६९,५, १६८ जातः अग्निः .. दुरोणे रण्वः ।
पुत्रः मातरा न १०,१,७; १४९१ अग्ने, (त्व) धात्रा ।
पुत्र. पितुः न ८,१९,२७, १२५० सुधृतः [अग्निः] न. ।
पुष्टिः रण्वा न १,६५,५, १२८ (अग्नि. सर्वेषां ।)
पुष्टिः स्वस्य इव २,४,४, ४१९ अस्य पुष्टिः रण्वा ।
पु न मही आयसी शतभुजिः ७,१५,१४, ११९० अग्ने ।
पूर्ववत् ३,२,१२, १७६८ सः जन्तवे धन जनयन् ।
पृष्ठा वीता वृजिना च इव ४,२,११, ६५७ विद्वान् [अग्नि ।]
प्रपा धन्वन् इव १०,४,१; १५०६ हे अग्ने [त्व] असि ।
प्रयाः मरुता इव ३,२९,१५, ५७२ ब्रह्मगः प्रथमजाः सति ।
प्रयुक्ति मरुतां न ६,११,१; १००० अग्ने ..[अस्मच्छ्रुन् ।]
प्रसितिः शूरस्य इव ६,६,५, ९९० अग्नेः क्षातिः . असि ।
प्रसिति पृथ्वी न ४,४,१, १८१३ ... पाजः कृणुष्व ।
प्राणः वायुः न १,६६,१; १३४ (प्रश्वसन् वायुरिव अग्नि.।)
बन्धुरा इव ३,१४,३, ५८२ ते उषास. दुरोणे तस्थतुः ।
बृ .. ी इव १,५०,४, १५२० रोदसी सूनव [अभूताम् ।]

भगः इव १,१४४,३; ३१८ हव्यः सारथिः (सन्) ।
भगः ऋतुपाः इव ३,२०,४, ६१७ दैवीनां क्षितीनां नेता
भगः न ५,१६,२, ८७२ अग्निः ...वारं वि ऋण्वति ।
भगम् इव १,१४१,६, ३१० होतार अग्नि पपृचानासः ।
भगं दक्ष न १,१४१,११, ३१५ अग्ने, अस्मे पर्णसि ।
भग न १,१४१,१०, ३१४ हे महिरत्न, नव्यं त्वा वय ।
भगस्य भुजिम् इव ८,१०२,६, १४६८ भुजि समुद्रवाससं ।
भद्रे न १,९५,६; १८७३ [एनं अग्नि] उभे भद्रे मेने .. ।
भार गुरु न ४,५,६, १७६३ अग्ने, क्रियते [त्वदीयं कर्म]
भारभृत् यथा ८,७१,१२, १३८४[तथा] अस्मिन् महाधने ।
भीमः न १,१४०,६, २९७ दुर्गृभिः...श्वङ्क्षा दविधाव ।
स्वजेन्यं भूम पृष्ठा इव ५,७,५, ८१५ ईम् [अग्नि] घृतस्य ।
भूमा विश्व इव ८,३९,७, १३०६ मः मुदा पुरु काव्या..।
भृगुवत् ८,४३,१३, १३२२ शुचे त्वा...हवामहे ।
भृगुवत् और्वं ८,१०२,४, १४६६ समुद्रवाससम अग्निं...हुवे ।
भोज्या मरुतां न १,१२८,५, २८७ अस्य अग्नेः तविषीषु ।
भ्राता इव स्वस्नां १,६५,७, १३० (अग्नि हितकारी अस्ति)।
मधो पात्रा न ८,१०३,६, १२६२ अस्मै अग्नये...प्रयंति ।
मध्वा न ५,१९,३, ८८८ जन्तवः कृष्टय एना ।
मन. न १,७१,९, १९३ यः एकः सूर अध्वन . एति ।
मनुवत् २,१०,६, ४१४ [वधम्] ... वदेम ।
मनुष. यथा (सीदन्ति) १,२६,४; ३१ तथा वरुणः, मित्रः ।
मनुषः यथा यज्ञेभिः ६,४,१, ९७१ एवा नः अद्य समना ।
मनुष्वत् १,३१,१७; ६६ अगिरः, सदने अच्छ आयाहि ।
मनुष्वत् २,५,२, ४२६ पोता अष्टम दैव्य विश्व ... इन्वति ।
मनुष्वत् ३,१७,२; ६०१ अध इमं यज्ञ प्रतिर ।
मनुष्वत् ५,२१,१, ८९५ अग्ने, त्वा निधीमहि ।
मनुष्वत् ५,२१,१, ८९५ अग्ने, त्वा समिधीमहि ।
मनुष्वत् ५,२१,१, ८९५ अगिरः अग्ने, देवयते ... देवान् ।
मनुष्वत् ७,२,३, १०७६ मनुना समिद्ध अग्नि महेम ।
मनुष्वत् ७,११,३, ११६८ अग्ने, देवान् इह यक्षि ।
मनुष्वत् ८,४३,१३, १३२२ शुचे, त्वा हवामहे ।
मनुष्वत् ८,४३,२७, १३३६ त्वां जनासः इन्धते ।
मनुष्वत् १०,७०,८, १९९९ यज्ञ इळा देवी घृतपदी जुषन्त ।
मनुष्वत् १०,११०,८, २०१० चेतयन्ती इह इळा ।
मनुष्यः न १,५९,४, १७२० दक्ष. होता वैश्वानराय प्रायुंक्त ।
ममता इव ६,१०,२, ९९४ मतयः ... यं शूषं स्तोमं पवंते ।
मर्मृजेन्य. उशिग्भि न १,१८९,७; ३६७ अग्ने अक्रः त्वं ।
मर्यं वाजिन न ८,४३,२५; १३३४ विश्वायुवेपसं हित ।
माता इव ५,१५,४; ८६९ पप्रथानः [त्वं] जनजन... भरसे ।
मित्रम न शेवम १,५८,६, ११५ जनेभ्य सुहवं वरेण्यं दधुः

मित्रः न १,७७,३, २३६ सः [अग्नि] रथीः ... अभूत ।
मित्रम् इव १,१४३,७; ३२४ समिधानः अग्नि ऋंजते ।
मित्रम न २,२,३; ३८७ देवाः शुक्रशोचिषं क्षितिषु ।
मित्रः इव २,४,१, ४१६ य जातवेदा देवः ... भूत ।
मित्रं न (क्षेष्वन्त.) २,४,३, ४१८ देवास क्षेष्यन्तः ।
मित्र. न ४,६,७, ६८८ ...सुधित पावक अग्नि दीदाय।
मित्रम् न ५,३,२, ७८० सुधितं गोभि अञ्जन्ति ।
मित्रम् न ५,१६,१, ८७१ मर्तासः [अग्निं] प्रशस्तिभि ।
मित्रः न ६,२,१; ९५२ अग्ने, त्वं क्षैतवत यश. पत्यसे।
मित्र न ६,१५,२, १०२४ भृगव सुधित य दधु ।
मित्रं न ८,२३,८; १२७७ ऋतावनि जने सुधितम् ।
मित्र न ८,७४,२, १४४३ सर्पिरासुति जनास शंसति ।
मित्रम् इव ८,८४,१, १४५४ प्रिय व. श्रेष्ठ अतिथिं स्तुषे ।
मित्रम् इव १०,७,५, १५३१ प्रयोग अग्नि आयव ।
मित्रम् न २,२,३; ३८७ देवाः शुक्रशोचिषं क्षितिषु ।
मित्रः इव २,४,१, ४१६ य. देव जातवेदा दिधिषाय्यः।
मित्रः न ५,१०,२, ८३६ यज्ञिय त्वं क्राणा [भव] ।
मित्रः न ६,२,१; ९५२ अग्ने, त्व क्षैतवत् यश ।
मित्र न ६,१३,२; १०१३ बृहत ऋतस्य, क्षत्ता असि ।
मित्रं प्रिय न ६,४८,१; १०९० अमृत जातवेदस वय ..।
मित्रं न ८,१०२,१२, १४७४ यातयज्जनं शुष्मिण. .गृणीहि.
मित्रः यथा, वरुण , इन्द्रः ३,४,६, १९५८ तथा उषासानक्ते
मित्रास न १०,११५,७; १६७२ सुधिता ऋतायव ।
मृगाः क्षिपण. ईषमाणा इव ४,५८,६; १९०० एते घृतस्य।
मेता इव ४,६,२, ६८३ [अग्नि] धूम धाम् उप ।
मेष इव (अथ०) ६,४९,२; २३३८ यत् उत्तरद्रौ उपर. च ।
यथा ऋतुभि. देवान् देव, १०,७,६, १५३२ एवं, आ यज।
यज्ञ प्रजानन् यथा अव ४,२३,२, २३३१ एवा देवेभ्य न ।
ययातिवत् १,३१,१७, ६६ अगिर , सदने अच्छ आ याति।
यवः न पक्व. १,६६,३, १३६ पक्वः यवः इव उपभोग योग्य ।
यवः वृष्टि इव २,५,६; ४३० तासा(जुह्वादीनाम्) आगतौ।
यवं न ७,३,४, ११२७ दस्म, [त्व] जुह्वा विवेक्षि ।
यवसा पुष्यते इव १०,११,५, १५४४ त्वं सदा रण्वः असि।
यह्वम् न ५,१६,४; ८७४ रोदसी श्रवः तमिन परि ।
याता इव १,७०,११, १८४ भीमः अग्निरपि दृष्टमात्रेण ।
यामन् तूर्वन् न ६,१५,५; १०२७ एतशस्य रणं य ।
युयुधयः न १०,११५,४; १६६९ रण्वासः ऋत्विज सन्ति।
युवत्योः [न] १०,३,७; १५०५ दिवस्पृथिव्यो ..अरतिः ।
युवतयः युवानं अस्मेराः २,३५,४, २४२५ मर्मृज्यमानाः ।
यूथा इव क्षुमति पश्व ४,२,१८; ६६४ देवानां यत् ।
यूथम् न ५,२,४ ७७०अह सुमत पुरु शोभमानं अनान् ।
योधः शत्रून् न १,१४३,५; ३२२ अग्नि वनानि ऋञ्जते ।
योषण अभ्रातर न ४,५,५, १७६२ दुरेवाः पापासः ।
योषाः समना इव ४,५८,८; १९०२ कल्याण्यः स्मयमानास ।
रघवः वाजम् न ४,५,१३, १७७० का मर्यादा, वयुना ।
रथः न १,५८,३, ११२ देवः विक्षु .. आयुषु ऋञ्जसान ।
रथ न १,६६,६, १३९ रुक्मी [अग्नि]।
रथः शिक्वभिः कृतः न १,१४१,८, ३१२ यात. (सन्)।
रथ न ३,१५,५, ५९२ अग्ने, कार्ष्मि. त्व न वाज .. ।
रथः न स्वान ५,१०,५, ८३९ अग्ने, धृष्णुया भ्राजन्त ।
रथ न ८,१९,८, १२३१ [अग्नि] वेधः ।
रथम् इव १,९४,१, २५६ जातवेदसे मनीषया इम स्तोम।
रथम् इव २,२,३; ३८७ देवा त वेध अग्निम् न्येरिरे ।
रथम् न क्रन्तः ४,२,१४; ६६० सुध्यः आशुषाणा ।
रथम् न ५,२,११, ७७७ तुविजात, विप्रः अह ते एत ।
रथम् न ८,८४,१, ११५४ वेध अग्नि स्तुषे ।
रथम् न १०,४,६, १५११ शुचयद्भि अङ्गै.... युंक्ष्व ।
कुलिशः रथ न ३,२,१, १७२७ द्विता होतार मनुषः।
रथम् न ३,२,१५, १७४१ मन्द्रं विश्वचर्षणि चित्रं ईमहे ।
रथाम. एक नियानं वहव १०,१४२,५, १६९४ दद्दश्रे।
रथ. न १०,१७६,२, १७०९ य अभीवृतः ।
रथी. इव ४,१५,२, ७१० अग्नि: अध्वर परि याति ।
रथी इव ८,७५,१, १३७३ अग्नेः देवहूतमान् युंक्ष्व ।
रथ्य यथा १०,९१,७, १६५७ अग्ने, यक्षतः ते अजराणि।
रथी पतीन् इव अथर्व० ७,६२,१; २३७३ अग्निः अजयत।
रथ्या इव २,४,६, ४२१ [अग्निः] .. स्वानीत् ।
रयि. न १,६६,१, १३४ [अग्निः] चित्रः ।
रयिः पितृवित्तः इव १,७३,१ २०५ यः [अग्निः] वयोधाः ।
रयिः न देवतातये १,१२७,९, २८० अग्ने, शुष्मिन्तमः ।
रयिः इव १,१२८,१; २८३ अग्निः श्रवस्यते . [भवति ।]
रयिः यथा वीरवनः ७,१५,५; ११८१ [तथा] यस्य श्रियः ।
रयि चारु न १,५८,६, ११५ [अग्ने] भृगवः त्वा आदधुः।
रयिम् इव १,६०,१, ११९ प्रशस्त [अग्नि] मातरिश्वा भरत।
रयि न १,१४१,११, ३१५ अस्मे स्वर्थं दमूनसं...पपृचानि।
रश्मयः ध्रुवासः सूर्ये न १,५९,३, १७१९ वैश्वानरे अग्ना ।
रश्मीन् यमति इव १,१४१,११; ३१५ स उभे जन्मनी ।
रश्मीन् सारथिः वोळ्हुः १,१४४,३, ३२८ हव्य सारथि.।
राजा इभ्यान् न १,६५,७; १३० [अग्निः] वनानि . अत्ति।
राजा अजुर्यम् इव १,६७,१; १४४ मित्रः [अग्नि] . ।
राजा हितमित्रः न १,७३,३; २०७ [यः अग्निः] ..उपेक्षति।
राजा इव ६,४,४; ९७४ अवृके क्षेष्यन्त जे ।
राजा न ६,९,१, १७८७ जायमान अग्निः ज्योतिषा ।

राजा अमवान् इयेन इव ४,४,१, १८१३[अग्ने, त्व याहि।]
राजानम् विश: इव ६,८,४; १७८३ . [स्तोतार ।]
रुक्म न ४,१०,५; ७२४ अग्ने, स्वादिष्ठा तव सदृष्टि ।
रुक्म. न ४ १०,६; ७२५ स्वधाव , ते शुचि हिरण्य: रोचते।
रुक्म न ७,३,६, ११२९ स्वर्नाक, यत ..उपाके ।
रेभ न ६,३,६; ९६८ स: [अग्नि:]...उस्रा प्रति वस्ते ।
रेभ: (ऋपृणा अग्ने) न १,१२७,१०, २८१ ऋपूणां [मध्ये।]
वन्दना वृक्षम् इव (अथ०) ७,११५,२; २२०२ या पतयालु:।
वयग (यूथे साह्वान्) न १,५८,५, ११४ तपुर्जम्भ वाति।
वंसग तिरमश्रृग. न ६,१६,३९, १०८० अग्ने, त्व .. ।
वत्स. [इव] ८,७२,५, १४२८ चरन रुशन् इह निदातारं ।
वत्साम. मातृभि न ८.७२,१४, १४३७ जामिभि नसना।
वना इव १,१२७,३, २७४ यस्य [अग्ने] समृतौ वीळु ।
वना इव १,१२७,४, २७५ य [अग्नि.] पुरूणि गाहते।
वनिन: वया: न ६,१३,१, १०१२ अग्ने, त्वत् विश्वा ।
वनिनं न ६,८,५; १७८४ अजर, अघशस नीचा... वृश्च ।
वनेराट् [न] ६,१२,३; १००८ यस्य [अग्ने:] अरति: ।
वाता इव १०,१४२,४, १६९३ यदा वात: ते शोचि ।
वया: इव २,५,४; ४२८ अस्य [अग्ने:] ध्रुवा मता विद्वान्।
वयाम् प्र उजिजहाना: इव ५,१,१, ७५५ अस्य यह्वा: ।
वया. (उपक्षित.) इव ८,१९,३३, १२५६ अग्ने, अन्य ।
वया. इव ६,७,६, १७७८ सप्त विस्रुह:...वैश्वानरस्य ।
वयाः इव २,३,६, १९४७ उपासानक्त . रण्विते तत ।
वरुण. यथा १०,११,१, १५४० स [अग्नि:] धिया वेद ।
वरुण: न १,१४३,४; ३२१ य. एक: वस्व: [अग्नि:] ।
वर्म स्यूत इव १,३१,१५, ६४ अग्न, त्व नर पासि ।
वर्म युत्सु इव १,१४१,१०; ३०१ [त्व] परिजभुराण: भव ।
वसुम् न १०,१२२,१, १६७५ चित्रमहस[अग्निम्]गृणीषे।
वस्त्रेव इव १,१४०,१, २९२ योनि [योनिस्थान] ...।
वह्निम् न १०,११५,३, १६६८ आसा . [हवि.] वहतां।
वाजयन इव २,८,१, ३९७ यशसामस्य मीळहुष अग्ने: ।
वाजयु न ५,१०,५, ८३९ अग्ने धृष्णुया भ्राजनय यति।
वाजी न १,६६,४; १३७ [अग्नि] प्रीत: [अस्ति] ।
वाजी न प्रीत: १,६९,५, १६८ [अग्नि.] विश: ..वितारीत।
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभान ४,३,१२; ६७७ अग्ने,मधुमन्ति ।
वाजिन न ४,६,५, ६८६ अस्य[अग्ने:] शोका: द्रवति।
वाजी सन् (इव) ४,१५,१, ७४९ होता अग्नि: न. अध्वरे।
वाजी न ६,२,८, ९५९ अग्ने, [त्व] कृण्व. ।
वाजी अरुष: न ४,५८,७; १९०१ घृतस्य धारा. भवति।
वात: इव १,७९,१; २४४ हिरण्यकेश: अहि: धुनि: ... ।
वाता न १०,११५,४; १६६९ पक्षो: अच्युता [प्रभावा]।
वायु: न ६,४,५, ९७५ राष्ट्री ..अक्तून् अरयेति ।
वायुं न ६,४,७, ९७७ शवसा...त्वा नृतमा: पृणंति ।
वायु पाथ: न ७,५,७; १८०० परमे व्योमन् जायमान: ।
वार् न १,४,६, ४११ य. अग्नि: ... पथा [गच्छति]।
वार् इव ४,५,८, १७६८ उस्रियाणां यत् ...अप व्रन् ।
वे. न ६,३,५; ९६७ अग्नि:.. रघुपत्मजंहा: द्रुषद्वा ।
विं न १०,११५,३, १६६८ द्रुषद देवम् अग्निम् ।
विदे यथा [ददति] १,१२७,४, २७५अरये दळहा चित् दु: ।
विद्युत न ३,१,१४; ४६०शुक्रा. बृहन्त: भानव: सचंत ।
विद्युत: परिज्मान न ५,१०,५, ८३९ अग्ने, धृष्णुया ।
विद्युत न ६,३,८; ९७० य. [अग्नि:] स्वेभि शुष्मै: . . ।
विद्युत वर्पर्यस्य इव १०,९१,५; १६५५ चिकित्र,श्रिय: संति।
विप: न ८,१९,३३; १२५६ तव क्षत्राणि वर्धयन् ।
विप्र(जातवेदसं)न १,१२७,१, २७२ होतारं अग्नि मन्ये।
विप्र न ६,१५,४, १०२६ द्युक्षवचस हव्यवाहं ... ऋंजसे ।
विप्र: न ८,४४,२९, १३७१ अग्ने,...सदा जागृवि: असि।
विश्पति: रेवान् इव १,२७,१२; ४९ स: अग्नि: श्रृगोतु ।
विश्पति जेन्य न १,१२८,७; २८९ अग्नि. यज्ञेषु ।
विश्व. विशाम् न १,७०,४; १७७ अमृत: अग्नि: .. ।
वीरा: शर्मसद: न १,७३,३, २०७ [यस्य अग्ने:]पुर: वर्तते।
वृजन न ६,११,६, १००५ वावसाना: [वयं] .. सतेम ।
वृषभस्य इव १,९४,१०, २६५ अग्ने, ते रव: अस्ति ...।
वृषभ श्रृंगे शिशान: यथा ८,६०,१३; १४०१[तया] अग्नि:।
वृषभ. न १०,४,५, १५१० अज्ञाता अप: प्र वेति ।
वृषा इव १,१४०,६; २९७ अग्नि (नमन्) ..रोरुवत ।
वृषा इन. प्रोयमान: यवसे न १०,११५,२; १६६७ अभि।
वेधसे न ३,१०,५, ५१३ विपां ज्योतींषि बिभ्रते...भरत।
व्याघ्र गोमतां इव (अथ०) ४,३६,६; २३०० [अहम्] ।
शमिता न देव [वा० य०] २०,४५; २०१३ वनस्पति: ।
शर्ध: मारुत न १,१२७,६, २७७ [अग्नि] तुविष्वणि ।
शर्ध: मारुतं न ४,६,१०, ६९१ ते त्वेषारा: अर्चय: ... ।
शर्म सूनवे वीळु न १,१२७,५; २७६ अस्य आयु: अभूत्।
शर्यहा इव ६,१६,३९, १०८० त्वम् उग्र: [असि] ।
शर्यहा उग्र इव (वा) त्वं शत्रूणां पुर: रुरोजिथ ।
शासु चिकितुष: न १,७३,१; २०५ य: [अग्नि:]।
शिवाभि. स्मयमाना: १,७९,२, २४५ [अद्भि: विद्युद्भि.]।
शिशु नव यथा ५,९,३; ८३० यम् अग्नि अरणी जनिष्ट।
शिशु जात न ६,१६,४०, १०८१ अग्निम् हस्ते आ।
शिशु न १०,४,३; १५०८ माता जेन्यं त्वा...वर्धयन्ती।
शिशुं न ६,७,४. १७७६ जायमानं त्वा...विश्वे देवा: नवंते।
शिशुं मातरा न ७,२,५; १९७८ पूर्वी रिहाणे समनेषु ।

शूरः इव १०,६९,५; १६२९ धृष्णु. च्यवनः अग्नि.।
शूरः इव १०,६९,६, १६३० धृष्णुः च्यवनः जनानाम्।
शूरस्य त्वेषयात् वयः इव १,१४१,८; ३१२ त्वेषयात् अग्ने।
शूरस्य प्रसितिः इव ६,६,५, ९९० अग्ने क्षातिः दुर्वतुः।
शुरुधः हेषस्वतः न ६,३,३, ९६५ अयं वनेजाः अक्तोः।
शेवः जने न १,६९,४; १६७ अग्निः.. मध्ये आहूर्यः।
श्येनाय दिवः ७,१५,४, ११८० अग्नये नव स्तोमम्।
श्येनासः न ४,६,१०, ६९१ त्वेषासः ते अर्चय ...गच्छंति।
श्रुष्टीवानः न १,१२७,९; २८० अजर ते ...परिचरन्ति।
श्वेतः न १,६६,६, १३९ यत् अभ्रात् तदा ..(श्वेत आदित्य।
संवयन्ती तत तन्तु पेशमा वा०य० २०,४१; २०१९देवाना।
ससद् पितुमती इव ४,१ ८; ७३४ अग्नि. सदा रण्वः।
सखा सख्ये यथा१,२६,३, ३० तथा अग्ने मह्यं अभीष्ट देहि।
सखा सख्ये इव ३,१८,१, ६०५ अग्ने उपेतौ नः .. भव।
सचा मनू सर्हायसे राज्ञे १,७१,४, १८८ भृगवाण. ईम्।
सत्याः यशस्वती अपस्युव.१,७९,१, २४४ उषसः नवेदा।
सस्मिन् न ३,२२,१, ६२३ जातवेद. सहस्त्रिण अत्यम्।
सस्मि न ८,४३,२५, १३३४ सुवेपसं अग्नि वाजयामसि।
सस्य इव १०,१४२,२, १६९१ नः धियः.. सनिषंत।
सद्म इव १,६७,१०; १५३ धीराः[अग्नि] ..समाय चक्रुः।
समनम् पृथिव्या अग्नये(अथ०)४,३९,४, २२८०एवं मह्य।
समिधा जातवेद इध्मेन अथ० १९,३४,२, २३५२ तथा त्वं।
सरजन्तम् न १०,११५,३, १६६८ अध्वनः [राजयन्तम्]।
सरितः धेनाः व ४,५८,६, १९०० घृतस्य धाराः स्रवंति।
सवातरौ तेजसा (वा० य०) २८,६; २०८९ सुदुघे मही।
सविता देव. न १,७३,२, २०६ [यः अग्नि.] सत्य०।
सविता इव ४,६,२, ६८३ [अग्नि.] भानु. ऊर्ध्वं।
सवितुः यथा सवम् ८,१०२,६, १४६८ अग्निं आहुवे।
सविता बाहू इव १,९५,७, १८७४ औषसः अग्नि. ।
ससं पक्कं न १०,७९,३; १६३९ शुचन्तं रिप उपस्थे अविदन्।
सस्त्रांसम् इव ३,९,५;५०४ इत्था त्मना तिरोहितं अग्नि।
साची इव १०,१४२,२; १६९१ .अग्ने, त्वं विश्वा न्यृजसे।
साधु न १,७०,११; १८४ [अग्नि] ...गृध्रुः।
सारथिः वोल्हुः रश्मीन् १,१४४,३; ३२८ हव्यः सारथिः।
सिंहम् इव ३,९,४; ५०३ अद्रुहः निचिरामः स्रिध.।
सिंहं क्रुद्धं न [मृगाः] ५,१५,३, ८६८ शत्रव मां परिद्दुः।
सिंहं न नानदत्३,२,११, १७३७प्रजज्ञिवान् वृषामः जिन्वते
सिंहं श्वानः (अथ०) ४,३६,६; २३०० ते [पिशाचः]।
सिस्रतीः इव १०,११,३; १५८३ धर्माणः जुहूभि ।
सिन्धवः नीचीः न १,७२,१०, २०४ अग्नेः सृष्टाः क्षरंति।
सिन्धवः समुद्राय इव ८,४४,२५, १३६७ अग्ने गिरः ईरते।
सिन्धो इव ४,५८,७; १९०१ प्राध्वने शूघनासः।
सिन्धव (भाम्वक्षस.) १,१४३,३; ३२० भाम्वक्षसः।
सूनुः न नित्य. १,६६,१; १३४(ध्रुव पुत्रः इव प्रियकारी।)
सूनु न ६,२,७, ९५८ [अग्ने, त्व] अध्ययाय्यः।
सूरः न १,६६,१; १३४ [अग्नि] सदृक्।
सूर मिह न १ १४३,१३, ३२७ अमीचक्षम न अग्नि ।
सूर न १,१४९,३; ३५५ अय अग्नि हुस्कान शताऽमा।
सूर न ६,२,६; ९५७ पावक, त्व लुता रोचसे।
सूर न ६,३,३; ९६५ यस्य दशति .. अरेपा।
सूरः न ७,३,६, ११२९ चित्र भानु प्रति चक्षि।
सूर्य. न ६,४,३, ९७३ शुक्रः भासासि वस्ते।
सूर्य. भानुमद्भि अर्कै न ६,४,६, ९७६ अग्ने, त्व भामा।
सूर्यं न ६,१२,१, १००६ सः अय सहसः सूनु नतान्।
सूर्यः न ७,८,४; ११५२ बृहद्भा. अग्निः ..विरोचते।
सूर्यः सृजन् न ८,४३,३२, १३४१ अग्ने त्वं रश्मिभि.।
सूर्यः इव ८,१०२,१५, १४७७ अस्य [अग्नेः] उपदृक्।
सूर्य इव १०,६९,२, १६२६ सर्पिरासुति . रोचते।
सूर्यस्य इव १०,९१,४; १६५४ चिकित्र ते रश्मयः. ।
सूर्ये चक्षषि इव ५,१,४ ७१८ देवयता मनांसि अग्नि।
सूर्यं चक्षु न ६,११,५; १००४ यज्ञः अश्रायि।
सूर्यस्य दिवि शुक्र यजतमिव १०,७,३, १५२९ बृहत.।
सृष्टा सेना इव १,६६,७, १४० [अग्नि.] भय दधाति।
सृष्टा सेना इव १,१४३,५; ३२२ य अग्नि वराय न।
सृष्टा सेना इव ७,३,४, ११२७ ते [अग्ने] प्रसिति. एति।
सेना प्रर्गाधनी इव १०,१४२,४; १६९३ पृथक् एषि।
सोमाः इव ५,२७,५, ९३२ बप्सन् यासि।
सोमा न १०,४६,७; १६०७ वायव. अग्नय.।
सोम चम्रि इव १०,९१,१५, १६६५ अग्ने ते आस्ये।
सोमः इव ६,८,१; १७८ वैश्वानराय अग्नये नऽग्मी पवते।
सोमः न १,६५,१०, १३३ अग्नि ..वेधा.।
सोमस्य अंशुः इव (अथ०) ५,२९ १२, २३१६ अय।
स्थूणा उपमित् इव १,५९,१, १७१७ अग्ने त्व उपमित्।
सप्त यह्वीः स्रवतः समुद्र न १,७१,७; १९१ विश्वा. पृक्षा।
स्वधितिः इव ५,७,८; ८१८ शुचि स्म यस्मै [अग्नये]।
स्वधितिः पूता इव ७,३,९; ११३२ शुचि. [अग्निः]निरगात्
स्वधितिं न ३,२,१०, १७३६ इषः मानुषीः विशा अकृण्वन्
स्वनः मरुतां इव १,१४३,५, ३२२ यः [अग्नि.] वराय।
स्वनाः न १०,३,५, १५०३ यस्य भामासः . . पवन्ते।
स्वर चित्रं विभाव न १,१४८,१; ३४८ यं मनुष्यासु विक्षु।
स्वर् न २,२,७; ३९१ अग्ने, द्यावापृथिवी . ब्रह्मणा कृधि।
स्वर् न २,२,८; ३९२ सः [अग्नि] राम्याः उषसः दीदेत्।

दैवत-संहितान्तर्गत-अग्निमंत्राणां सूची ।

❀

सोमसूक्तेषु पठिताः, सोममन्त्रसंग्रहे मुद्रिताश्च

अग्निमन्त्राः ।

(ऋ० ९।६६।१९--२१)

(शतं वैखानसाः । अग्निः पवमानः । गायत्री ।)

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ २४८४

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयम् ॥ २४८५

अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
दधद् रयिं मयि पोषम् ॥ २४८६

(ऋ० ९।६७।२३-२७)

(पवित्र आङ्गिरसो वा वासिष्ठो वा उभौ वा । पवमानोऽग्निः । गायत्री, २४९१ अनुष्टुप् ।)

यत् ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥ २४८७

यत् ते पवित्रमर्चिवदग्ने तेन पुनीहि नः ।
ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥ २४८८

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
मां पुनीहि विश्वतः ॥ २४८९

त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः ।
अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥ २४९०

पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया ।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा ॥ २४९१

दैवत-संहितान्तर्गत-अग्निदेवतायाः

गुणबोधक-पदानां सूची ।

अंश स्त्वम् २,१,४; ३७२

अक्तः द्युभिः ६,४,६; ९७६। ६,५,६; ९८४

अक्र· १,१८९,७, ३६७

अक्षभि शवं चक्षाण. १,१२८,३,२८५

अक्षित ८,७२,१०, १४३३

अगृभीतशोचिः ८,२३,१. १२७०

अग्नयः [बहुवचनम्] १,१२७,५, २७६

अग्नय अग्निभ्यः वरम् ७,१,४; ११०३

अग्निः. .सामान्येन सर्वत्र निर्देशः।

अग्निः अन्यान् अग्नीन् अति अस्ति ७,१,१४, १११३

अग्नि अग्निभिः सजोषा ७,३,१;११२४

अग्नि· ह नाम धायि दन् अपस्तमः, यः भस्मना दता वना सं युवते १०,११५,२, १६६७

अग्नौ प्रविष्टः चरति अथर्व ४,३९, ९; २२८२

अगदः अयम् अथर्व०५,२९, ६--९, २३१०--२३१३

अग्रजः [त्वष्टा] ९,५,९, १९८९

अग्रयावा देवानाम् १०,७०,२,१९९३

अग्रियः ६,१६,४८; १०८९। १,१३, १०; १९१५

अङ्कूयन् ६,१५,१७; १०३९

अङ्गिराः १,३१,१७; ६६। १,७४,५; २१९। ४,३,१५, ६८०। ४,९,७; ७१८। ५,८,४, ८२४। ५,१०,७, ८४१। ५,११.६. ८४७। ५,२१,१; ८९५। ६,२,१०, ९६१। ६,१६,११ १०५२।८,६०,२,१३९०।८,७४,११; १४५२। ८, ८४, ४, १४५७। ८,१०२,१७ १४७९

अङ्गिरसः [देवताविशेषः] अथर्व० ३,२१,८, २३६२

अङ्गिरा ऋषि १,३१,१; ५०

अङ्गिरा ऋषिः प्रथमः १,३१,१; ५०

अङ्गिरसां ज्येष्ठः १,१२७,२; २७३

अङ्गिरस्तमः १,३१,२; ५१। १,७५,२; २२५। ८, २३, १०, १२६९। ८,४३,१८.१३२७। ८,४४,८,१३५०

अच्छिद्रोतिः १,१४५,३; ३३५

अजः अथर्व० ४,१४,६; २२२२

अजरः १,५८,२, १११। १,५८,४. ११३। १,१२७,९. २८०। १,१४४,४; ३२९। १.१४६,२ ३३९। ५,४,२ ७९१। ५,६,४, ८०४। ५,७,४. ८१४। ६,२,९, ९६०। ६,४,३, ९७३। ६,५,७. ९८५। ६,१५,५, १०२७। ६,१६,४५; १०८६। ६,४८,३, १०९२। ७,१५,१३; ११८९। ८,२३,११; १२८०। ८,२३,२०; १२८९। १०,११५,४; १५६९। १०, ४६, ७; १६०७। ३,२६,२; १७२८। ६,८,५; १७८४। १०,८७,२१, १८४८। १०,८८,३; २३९९

अजरः जूर्यत्सु वनेषु ३,२३,१; ६२७

अजराः १,१२७,५; २७६

अजस्रः १०,६,२; १५२१। अथर्व० ७,७८,१; २१९८। १९,३,२; २२०६

अजिर ७,११,२; ११६७। अथर्व० ३,४,३; २१६०

अजिरशोचिः ८,१९,१३ १२३६

अजुर्यः १,६७,१, १४४। २,८,२; ३९८। ३,७,४ ४९३। १०,८८,१३; २४०९

अजुर्याः [देवीर्द्वार] २,३,५; १९४६

अज्ञन् मतीनां कृदरम् वा० य० २९,१; २१०६

अज्ञानः सप्त होतृभिः ३,१०,४; ५१२

अतन्द्रः १,७२,७, २०१। ८,६०,१५; १४०३

अतन्द्रः दूतः ७,१०,५, ११६५

अतिथिः १,४४,४; ८९। १,५८,६; ११५। १,१२८,४; २८६। २,२,८; ३९२। २,४,१, ४१६। ५,१,८; ७६२।५,४,५;७९४।५,८,२; ८२२।

अपाम् गर्भ प्र० आ विवेश ७,९,३; ११५७

" नपात् १,१४३,१, ३१८। १०,८,५, १५३८

अपां नपात् [देवता] २,३५,१-१५; २४२२-३६

अपां सध.स्थे-स्थः १०,४६,२, १६०२

अपाक. ६,११,४, १००३। ६,१२,२, १००७

अपाकचक्षाः ८,७५,७, १३७९

अपाद् ४,१,११, ६३७

अपूर्व्यः ३,१३,५; ५७८

अप्तुरः ३,२७,११, ५४७

अप्यः १,१४५,५, ३३७

अप्रतिष्कुतः ३,२,१४, १७४०

अप्रमृष्य. २,३५,६, २४२७

अप्रयुच्छन् १,१४३,८; ३२५। ३,५,६, ४७१। १०,८८,१६; २४१२। अथर्व० २,६,३, २३२१

अप्रायुः दिवातरात् १,१२७,५, २७६

अप्रोषिवान् ८,६०,१९, १४०७

अप्सरसौ (सः)। अथर्व० ६,११८,१, २३८१

अप्सुजाः ८,४३,२८, १३३७

अप्सु श्रितः ३,९,४; ५०३

अप्सुषद् ३, ३, ४; १७४६। अथर्व० १२,२,४, २२३२

अभिद्युः ८,७५,६, १३७८

अभिमाति जनानां १०,६९,५, १६२९

अभिमाति जित् अथ० २,६,३, २३२१

अभिशस्तिचातनः ३,३,६, १७४७

अभिशस्तिपा अथर्व० ४,३९,९, २२८२

अभिशस्तिपावा ७,११,३, ११६८

अभिशस्तिपावा यज्ञानाम् १, ७६, ३; २३१

अभिशोक. अथर्व० १,२५,३, २२७७

अभिश्री. १,९८,१; १७२४

" अध्वराणाम् ८,४४,७; १३४९

अभिश्वसन् एति १,१४०,५; २९६

अभिष्टिः [इंद्रः] वा० य० २०,३८; २०१६

अमर्त्यः १,४४,१, ८६। १ ४४,११, ९६। १,५८,३, ११२। १,७०,४; १७७। ३,१०,९; ५१७। ३,११,२; ५१९। ३,२४,२, ५२८। ३,२७,५-७; ५४१-४३। ४,१,१, ६३१। ४,८,१, ७०४। ५,१४,१-२; ८६०-६१। ५,१८,१-२, ८८१--८२। ६,३,६, ९३८। ६,१२,३, १००८। ६,१६,६ १०४७। ७, १, २३, ११२२। ७,१५,१०; ११८६। ८,११,५, १२१८। ८, १९, ३; १२२६। ८, १९, २४; १२४७। ८, १०२, १७; १४७९। १०,२१,४; १५८४। १०,७९,१; १६३७। १०, १२२, ३, १६७७। १०, १४०, ४, १६८७। ३,२,११, १७३७। ६,९,४-७, १७९० -९३। १०,८७,२१, १८४८। १०,११८,६; १८५८। वा०य० २१,१५, २०४०। २८,३; २०८६। २८,१७, २०९८। अथर्व० ७,८४,१, १८६६

अमित्रदम्भन ४,१५,४; ७५२

अमीवचातनः १,१२,७; १६। अथर्व० १,२८,१, २२९३

अमूरः १,१४१,१२, ३१६। ३,२५,३, ५३४। ३,१९,१, ६१०। ४,६,२; ६८३। ४,११,५,७३२। ६,१५,१७, १०३९। ७,९,३, ११५७। ८,७४,७, १४४८। १०,४,४, १५०९। १०, ४६, ५; १६०५। ४, ४, १२, १८२४। ऋ० प्रैष ४, २१३२

अमृक्तः ३,११,६; ५२३

अमृतः १,२६,९; ३६। १,४४,५; ९०। १,५८,१, ११०। १,६८,४, १५७। १,७७,१, २३४। २,१०,१ २; ४०९-१०। ३, १, १८, ४६४। ३,२९,५; ५६२। ३,२९,१३, ५७०। ३,१४,७; ५८७। ३,२०,२; ६१६। ४,२,१; ६४७। ४,२, ९; ६५५। ४,३,३; ६६८। ४,११,५, ७३२। ५,१८,५, ८८५। ६,४,२; ९७२। ६,५,५, ९८३। ६,१५,६; १०२८। ६,१५,८; १०३०। ६,४८,१, १०९०। ७,४,४, ११३७। ७,१६,१, ११९२। ८,२३,१९, १२८८। ८,७१,११, १४१९। ८, ७४, ५; १४४६। १०,४५,७; १५९५। १०,९१,११; १६६१। ३,३,१; १७४२। ४,५,२; १७५९। ६,७,४; १७७६। १,१३,५; १९१०। १०,७०,११; २००२ अथर्व० १२,२,३३, २२४६

अमृतः वयोभि. १०,४५,८; १५९६

अमृतं म आसन् (आस्ये) ३,२६,७; १७५६

अमृतस्य केतुः ६,७,६, १७७८

" नाभिः ३,१७,४; ६०३

" रक्षिता ६,७,७; १७७९। ६,९,३; १७८९

अमृतानां प्रथमः १,२४,२; २७

अमृतानि सत्रा चक्राः विश्वा १,७२,१; १९५

अमे देवान् धात् १,६७,३; १४६

अयोदंष्ट्रः १०,८७,२, १८२९

अरम् विश्वस्मै १,६६, ५; १३८

अरंकृत्य १०,५१,५; १६१३

अरतिः १,१२८,६; २८८। ३,१७,४; ६२३। ४,१,१; ६३१। ४,२,१; ६४७। ७,१६,१; ११९२। ६,१५,४; १०२६। ८,१९,१, १२२४। ८,१९,२१; १२४४। १०, २, १; १४९९। १०,३,६; १५०४। १०,४५,७; १५९५। १०,४६,४; १६०४

अरतिः अक्तोः ६,३,५; ९६७

" दिवः इव २,२,२, ३८६।

" दिवस्पृथिव्योः २,२,३; ३८७। १०,३,७; १५०५। २,५,१; १७९४

" रोदस्यो... १,५९,२; १७१८

पदा स्वे एव निदिताः त्रिः सप्त गुह्यानि १,७२,६; २००
पदे तस्थिवान् परमे १,७२,४; १९८
पनिष्ठ ३,१,१३; ४५९
पन्यांसः ८,७४,३; १४४४
पप्रथानः ५,१५,४; ८६९
पप्रि. अथ० १२,२,४७; २२६१
पयस.-स् अथ० ४,१४,६, २२२२
पयस्वत्-स्वान् १,१३,१३
पयस्वतो [उषासानक्ते] २,३,६;१९४७
परः आमासु पूर्षु २,३५,६, २४२७
परमेष्ठी अथ० १,७,२; २२८५
परस्पाः २,९,२,६; ४०४,४०८
परिज्मा ६,२,८; ९५९ । ९,७२,१०, १४३३ । ३,२६,९,१७३५ । ७,१३,३; १८१२
परिधि मनुष्याणाम् अथ० १२,२,४४, २२५७
परिभूः अथ० ३,२१,४, २३५८
परिभूः देवान् १०,१२,२; १५५०
परिभूः विश्वाता त्मना ३,३,१०,१७५१
परिभूतमः १०,९१,८, १६५८
परियन् वर्तिर्यशम् १०,११२,५,१६८०
परिवीतः १०,४६,६; १६०६
परिष्कृत ८,३९,९; १३०८
पर्जन्य क्रन्धः ८,१०२,५, १४६७
पर्येति पार्थिवं एवेन सद्यः १,१२८,३, २८५
पर्वतानां मित्रः ३,५,४; ४७३
पलितः १०,४,५; १५१०
पवमानः ९,५,१-११; १९८१-९१ ९,६६,२० । साम० २,७,१,११
पाविता अथ० ६,११९,३, २३८६ । ९,६६,२०; । साम० २,७,१,११
पाजः अस्य रुशत् ३,२९,३; ५६०
पाञ्चजन्यः अथ० ४,२३,१; २३३०
पात्रः ६,७,१, १७७७
पाद्रा अस्य त्रयः ४,५८,३; १८९७
पायुः ६,१५,८; १०३० । ४,४,३; १८१५

पावकः १,१२,१०, १९ । १,६०,४; १२२ । २,७,४; ४४४ । ३,५,७; ४७६ । ३,१०,८, ५१६ । ३,२७,४, ५४० । ३,१७,१; ६०० । ३,२१,२, ६१९ । ४,६,७; ६८८ । ५,४,३,७, ७९२, ७९६ । ५, ७, ४; ८१४ । ५,२३,४, ९०६ । ५,२६,१; ९२० । ६, १, ८; ९४६ । ६, २, ६ ९६८ । ६,४,३; ९७३ । ६,५,२, ९८० । ६,६,२, ९८७ । ६,१५,७; १०२९ । ६,४८,७; १०९६ । ७,३,१; ११२४ । ७,३,९, ११३२ । ७,९,१; ११५५ । ७,१५,१०; ११८६ । ८,२३,१९, १२८८।८,४४,२८,१३७०।८,६०,३, ११, १३९१,१३९९ । ८,७४,११; १४५२ । १०,४५,७, १५९५ । १०,४६,४,७-८,१६०४,१६०७,१६०८। ४,५,६; १७६३ । १,९५,११,१८७८ । १,९६,९; १८८७ । १,१३,१; १९०६। १,१४२,३,६,१९२०,१९२३। २,३,१; १९४२ । अथ० ६,४७,१, २३७१
पावक वर्चाः १०,१४०,२; १६८५
पावक शोचिः ३,९,८,५०७।३,११,७, ५२४ । ४,७,५; ६९७ । ५,२२,१; ८९९ । ६,१५,१४;१०३६।८,४३,३१; १३४० । ८,४४,१३; १३५५ । ८, १०२,११;१४७३।१०,२१,१, १५८१। ३,२६,६, १७३२
पिता १,३१,१०; ५९ । १,३१,१६; ६५ । २,१,९; ३७७ । २,५,१;४२५। ३,२७,९, ५४५ । ५,४,२; ७९१
पिता आप्रस्य चित् १,३१,४, ६३
पिता यज्ञानाम् ३,३,४, १७४५
पिता माता मनुषाणां सदमित् ६,१,५, ९४३
पितुमान् १,१४१,२, ३०६
पितुष्पिता ६,१६,३५, १०७६
पितूयन् १०,१४२,२, १६९१
पिन्वमान मधुमत् घृतम् वा० य० २९,१,२२०६
पिशङ्गरूपः [त्वष्टा] २,३,९, १९५०
पुनानः क्रतुम् ३,१,५; ४५१
पुमान् ४,३,१०; ६७५
पुरः १०,८७,२१; १८४९
पुर एता १,७६,२; २३०
पुर एता विशाम् ३,११,५; ५२२
पुरन्दरः ६,१६,१४; १०५५ ।७,६,२ १८०४
पुरन्दरः [इन्द्रः] वा० य० २०,३८ २०१६ । २८,३, २०८६
पुराजा: १०,५,५, १५१७
पुरीष्याः [प्यासः बहु०] ३,२२,४; ६२६
पुरुक्षुः १,६८,१०; १६३ । ३,२५,२; ५३३
पुरुचेतनः ६,१६,१९; १०६०
पुरुतम. ६,६,२; ९८७
पुरुधप्रतीक ३,७,३, ४९१
पुरुनिःष्ठः ५,१,६, ७६०
पुरुपेशासु गर्भः भुवत् २,१०,३; ४११
पुरुप्रशस्तः १,७३,२; २०६ । ८,१०३,१२, १४६८ । ८,७०,१०; १४१८
पुरुप्रिय १,१२,२, ११ । १,४४,३ ८८ । १,४५,६; १०५ । ५,१८,१; ८८१ । ८,४३,३१, १३४०।८,७४,१; १४४२ । ३,३,४, १७४५
पुरुप्रैषः १,१४५,३ ३३५
पुरुरूपः ५,८२,५,८२२,८२५। वा०य० २८,९; २०९२
पुरुवारः २,२,२; ३८६ । ४,२,२०; ६६६ । ६,१,३; ९५१।६,५,१,९७९ । ६,१५,७; १०२९ । ४,५,१५; १७७२;
पुरुवारपुष्टि. १,९६,४; १८८२
पुरुवेपसम् (द्वि०) ८.४४,२६, १३६८
पुरुशोभन ५,२,४, ७७०
पुरुश्चन्द्र १,२७,११; ४८ । ३,२५,३; ५३४ । ५,८,१; ८११

समिधानः १,१४३,२; ३१९। २,२,१, ६; ३८५,३९०। ४,६,११, ६९२।५, ८,४,६,८२४ ८२६। ६,४८,७;१०९६। ७,९,४; ११५८। ८ ४४,९,१३५१। ८,६०,५, १३९३। १०,२,७;१४९८। १०,१५०,९;१६९९।४,५,१५ १७७२। ४,४,४, १८१६। ३,४,११, १९६३। ७,२,११; १९६३। वा० य० २८,२४; २०९५। साम० १,६,१३,१

समिधः अस्य ऊर्ध्वा अथ० ५,२,७; २०७२

समिध्यमानः अध्वरे ३,२७,४, ५४०

समिध्यमानः अनु प्रथमा ३,१७,१; ६००

समीची [उषासानक्ते] २,३,६, १९४४

समुद्रः ४,५८,१, १८९५ । १०,५, १, १५१३

समुद्रथ ३,३,९, १७१०

सम्पृञ्चानः सदने अग्निः गोभि. १,९५, ८; १८७५

सम्प्रेद्ध. अथ० ६,७६,१, २३९०

सम्मिश्लः १०,६४; १५२३

सम्राज्-ट् ८,१९,३२, १२५५। ७, ६,१; १८०३। अथ० ६,३६,३, २१८३

सम्राजत्-न् अध्वराणम् १,२७,१,३८

सरजत्-न् अध्वनः १०,११५,३, १६६८

सरण्यन् ३,१,१९, ४६५

सरस्वती [देवता] पश्य 'देव्य. तिस्रः' अथ० ४,४,६, २१६२

सरस्वती त्वम् २,१,११; ३७९

सर्पिरासुतिः २,७,६, ४४६ । ५,७, ९; ८१९। ५,११,२, ८९६। १०, ६९,२; १६२६

सविता [देवता] ४,१३,२; ७४१। १,३५,१, २४४८। वा०य० २७,१३, २०६२। अथ० ५,२७,३; २०७४। २,२९,२; २१५०। ७,११५,२,२२०२। ३,२१,८, २३६२। ४,४,६; २१६२

सविता त्व देव रत्नधा २,१,७, ३७५

सवीर्यः वा० य० २८,३, २०८६

सवेदाः अथ० १२,२,१४, २२४०

ससः ३,५,६, ४७५

ससवान् वाजम् १०,११,५, १५४४

ससुनुः अथ० ५ २७,१; २०७२

सस्नि ३,१५,५, ५९२

सहः [इन्द्र.] वा०य०२१,४०; २०५९। २८,३६, २०९७

सहः १,३६,१८, ८३। ८,१०२,५; १४६७

सहन्तम १,१२७,९. २८०

सहन्त्य १,२७,८, ४५। ६,१६,३३; १०७४। ८,११,२; १२१५

सहमानः अथ० १२,२,४६; २२५९। ७,६३(६५),१, २३७३

सहसस्पुत्र २,७,६, ४४६ । ३,१४, १,४,६, ५८१,५८४,५८६। ३,१६ ५, ५९८। ३,१८ ४, ६०८।५,३,१,६, ७७९,७८३। ५,४,६, ७९५। ५,११, ६, ८४७

सहस. सुनर. १०,११५,७, १६७२

सहस.सूनु.१,५८ ८,११७। १,१२७,१; २७२। १,१४३,१; ३१८। ३.१ ८; ४५४। ३,११,४; ५२१। ३,२४,३; ५२९। ३ २५,५, ५३६। ३,२८,३,५, ५५४,५५६। ४,२,२;६४८।४,११,६. ७३३।५,३,९;७८६।५ ४,८. ७९७। ६,१,१०; ९४८। ६,४,१, ९७१। ६ ५,१, ९७९। ६,५,५, ९८३। ६,६,१; ९८६। ६,११,६; १००५। ६,१२,१, १००६। ६, १३, ४-५, १०१५-१६। ६, १३, ६, १०१७। ६,१५,३; १०२५। ७, १, २१-२२; ११२०-२१। ७, ३, ८, ११३१। ७,७,७;७,८,७, ११४८। ७,१६,४, ११९५। ८,१९,७,२५,१२३०,१२४८। ८,७५,३; १३७१। ८,६०,२; १३९०। ८, ७१, ११; १४१९। १०, ११, ७; १५४६ । १०, ४५, ५; १५९३ । १०,१४२ १, १६९०

सहसान १,१८९,८;३६८। २,१०,६; ४१४। ५,२५,९, ९१२। ७, ७, १; ११४२

सहसावान् १, १८९, ५, ३६५ । ३,१,२२; ४६८। ५,२० ४, ८९४। ७, ४, ९; १०३४। ६, १५, ११; १०३४। ७,१,२४, ११२३। ७,४,६; ११३९ । १०, २१, ४, १५८४ । १०,११५,८, १६७३

सहसिन्-मी ४,११,१; ७२८

सहसा यहुः १, २६, १०; ३७। १,७४,५, २१९। १,७९,४, २४७। ७, १५, ११, ११८७। ८, १९, १२, १२३५ । ८, ६०, १३, १४०१ । ८,८४,५; १४५८

सहसो युवा १,१४१,१०, ३१४

सहस्कृतः १,४५,९; १०८।३,२७,१०; ५४६। ५,८,१; ८२१। ६,१६,३७; १०७८। ८, ४३, १६, २८, १३२५, १३३७। ८ ४४,११, १३५३

सहस्यः १,१४७,५, ३४७। २,२,११; ३९५। ५,२२,४, ९०२। ७,१,५; ११०४। ७,१६ ८, ११९९। १०,१,७, १४९१। १०,८७ २२, १८४९

सहस्रऋष्टिः [वज्रः] अथ० १९,६६,१; २३५०

सहस्रजित ५,२६,६,९२५। १,१८८,१; १९३१

सहस्रतरी १० ६९,७, १६३१

सहस्रमुष्कः ८,१९,३२, १२५५

सहस्रम्भरः २,९,१; ४०३

सहस्रोता ४,५,३; १७६०

सहस्रवल्शः [वनस्पतिः] ९,५,१०; १९९०

८,१०३,६, १२६२ । ८,२३,१७, १२८६ । ८, ४३, १२; १३२१ । ८,४३,२०; १३२९ । ८,४४,६-७, १०; १३४८-४९,१३५२ । ८,७५, १; १३७३ । ८,६०.१,३; १३८९, १३९१ । ८,६० १४, १४०२ । ८,७१, ११, १४१९ । १०, १, ५; १४८९ । १०,२,३,५,१४९४,१४९६ । १०,६,४; १५२३ । १०,११,३-४; १५४२-४३ । १०,१२,१-२; १५४९-५० । १०, २१,१; १५८१ । १०,४६,१,४,८; १६०१,१६०४,१६०८ । १०,५३,२; १६१७ । १०,९१,८-९,११, १६५८-५९,१६६१ । १०,१२२,१,१६७५ । १०, १७६,३, १७०९ । १०.५९,४ १७२० । ३,२६,१,६,१७२७,१७३२ । ३,२,१५; १७४१ । ४,४,११. १८२३ । १,१३, १,४,८, १९०६,१९०९,१९१३ । १, १४२,८, १९२५ । २,३,१, १९४२ । ३,४,३-४, १९५५-५६ । १०,७०,३; १९९९ । १०,११०,३,११; २०१०, २०१८ । ३,३,१, अथ० ६,७१,१-२,

२३४६-४७ । ३, २१, ५, २३५९ । साम० १,१,७,७,

होता अध्वरस्य ६.१५.१४, १०३६

होता चर्षणीनाम् १,२७,२: २७३ । ८,२३,७; १२७६ । ८,६०,१७,१४०५

होता देवानाम् वा० य० २९,२८, २१२०

होता पूर्व: ५,३.५; ७८२

होता पूर्व्यः १,९४,६,२६१ । ८ ७५,१, १३७३

होता प्रथमः ७,११,१; ११६६ । ६,९,४, १७९०

होता प्रथम देवजुष्टः १०,८८,४, २४००

होता मनुर्हितः ६,१६,९; १०५०

होता यज्ञानां विश्वषाम् ६,१६,१; १०४२

होता यशस्तमः विप्रु ८,२३,१०; १२७९

होता रोदस्यो ६,१६,४६, १०८७

होता विप्रु मानुर्षापु १०,१,४,१४४८, १०,७,५; १५३१

होता शश्वतीनाम् ८,३९,५, १३०४

होता सनात् ८,११,१०, १२२३

होता हविष विश्वस्य १०,९१,१; १६५१

होतारौ दैव्यौ १,१३,८, १९१३ । १,१४२,८, १९२५ । १,१८८,७; १९३७ । २,३,७, १९४८

" (प्रचेतसौ) [देवता] ३,४,७, १९५९ । ५,५,७, १९७० । ७,२,७; १९८० । ९,५,७,१९८७ । १०,७०,७, १९९८ । १०, ११०, ७; २००९ । वा०य० २०,४२,६३, २०२०,२०३२ । २१,१८,३६, २०४३,२०५५ । २७, १८, २०६७ । २८,७.३०; २०९०, २१०१ । २९,७,३२: २११२,२१२४ । ऋ० प्रैष ८, २१३६ । अथ० ५,१२, ७, २००९ । ५,२७,९. २०८०

होत्रम् तव २,१,२, ३७१

होत्रवाह ५,२६ ७; ९२६

होत्राविद् ५,८.३, ८२३

हृदुः अथ० १,२५,२-३; २२७६-७७ ।

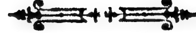




दैवत-संहिता

(२)

इन्द्रदेवता



संपादक
भट्टाचार्य श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)



संवत् १९९८, शक १८६३, सन १९४२



मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवळेकर, B A.
स्वाध्याय-मण्डल, भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा)

इन्द्रदेवता का परिचय।

मेघस्थानीय विद्युत्।

अब इन्द्रदेवता के स्वरूप का परिचय करनेका यत्न करना है। इन्द्रदेवता कौन है, कहां रहता है, क्या करता है, हमसे उनका संबंध क्या है, उसकी सहायता हमें किस तरह मिल सकती है? इसका विचार करना है। इन्द्रदेवता 'मेघस्थानीय विद्युत्' है, ऐसा कई कहते हैं। इन्द्रका अर्थ Thunderbolt [मेघस्थानीय विद्युत्] है, ऐसा इनका कहना है। इन्द्रदेवताके अनंतविधस्व रूप में मेघस्थानीय विद्युत् यह एक रूप है, इसमें सन्देह नहीं है। पर युरोपीयन लोग सर्वथा मेघस्थानीय विद्युत् ही 'इन्द्र' है, ऐसा जब कहने लगते हैं, तब हम कहते हैं कि, वेदका संपूर्ण इन्द्रदेवता का वर्णन 'मेघस्थानीय विद्युत्' पर घट नहीं सकता। इसका विचार करना हो, तो 'इन्द्रिय' शब्दका प्रथम विचार कीजिये।

इन्द्रिय = इन्द्रकी शक्ति।

'इन्द्रिय' शब्द इन्द्र शब्दसे ही बनता है। 'इन्द्र+इ+य' ये तीन विभाग इन्द्रपदमें हैं, इन्द्र [इ] की [य] शक्ति, यह इसका अर्थ है। इन्द्रिय 'इन्द्रकी शक्ति' है। भगवान् पाणिनी महामुनि 'इन्द्रिय' शब्दका निर्वचन ऐसा करते हैं—

> इन्द्रियं इन्द्रलिङ्गं इन्द्रदृष्टं इन्द्रसृष्टं इन्द्रजुष्टं इन्द्रदत्तं इति वा। [अष्टा० ५।२।९३]
>
> इन्द्र आत्मा, तस्य लिङ्गं, करणेन कर्तुः अनुमानात्। इन्द्रेण दुर्जयमिन्द्रियम्। [भट्टोजी०]
>
> इन्द्रेण दृष्टं ज्ञातं 'मम चक्षुः, मम श्रोत्रं' इत्यादिक्रमेण सृष्टं, अदृष्टद्वारा जुष्टं, प्रीणितं सेवितं वा। दत्तं यथायथं विषयेभ्यः॥
>
> [कौमुदी तत्त्वबोधिनी टीका]

'इन्द्र आत्माका नाम है। इस आत्माका ज्ञान इससे होता है, इन्द्रने यह अपना साधन है, ऐसा जाना है, इन्द्रने अपनी साधना के लिये इसको निर्माण किया, इन्द्रने इसका सेवन किया, इन्द्रने यह विषयोंके प्रति भेजा है, वह इन्द्रिय है।'

यहां भगवान् पाणिनी मुनि अपने व्याकरण में "इन्द्र की शक्ति" इस अर्थमें इन्द्रिय शब्द सिद्ध करते हैं। यह इन्द्रिय शब्द वेदमें है। अर्थात् इन्द्रकी शक्ति अर्थमें यह इन्द्रिय शब्द है और वह वेदमें है। केवल मेघस्थानीय विद्युत् ही अर्थ लेनेसे इस पाणिनी महामुनिके बताये अर्थकी सिद्धि नहीं हो सकती।

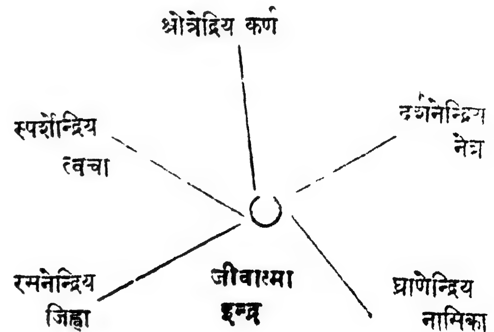
हम भी अपने आंख, नाक, कान आदि साधनोंको 'इंद्रिय' ही कहते हैं। ये ज्ञानके साधन और कर्मके साधन इन्द्रिय ही हैं, अर्थात् ये इन्द्रके साधन हैं, ये इन्द्रकी शक्तियाँ हैं। अर्थात् इन्द्र इनके पीछे है, इन्द्रसे इनमें शक्ति आ रही है, इनसे इन्द्रका ज्ञान हो रहा है। यह विवरण देखनेसे मेघस्थानीय विद्युतही केवल इन्द्र नहीं है, यह बात सिद्ध हो जाती है। वेदमें कहा है—

> आदित् इ नेम इन्द्रियं यजन्ते। [ऋ० ४।२४।५]

"[नेमे] अन्य लोग [आत् इत्] उस समय [इन्द्रियं] इन्द्रियोंको बल देनेवाले इन्द्रका [यजन्त] यजन करते हैं। इस मन्त्रमें 'इंद्रिय' शब्दही इन्द्रका वाचक आया है, क्योंकि इन्द्रमें जो शक्ति है, वह इन्द्रकी है, इन्द्रही इन्द्रिय-रूप बना है और मानवी देहोंमें कार्य कर रहा है।

देहधारी जीवके पास सब इन्द्रियां हैं, वह सबकी सब इन्द्रकी शक्तियां है, अर्थात् इंद्रियोंके पीछे इन्द्र छिपके रहा है, अपनी शक्तिको इन्द्रियोंद्वारा प्रकट कर रहा है। इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि, जीवात्मा इन्द्र है और इन्द्रियां उसकी शक्तियां हैं।

इन्द्रके इन्द्रिय



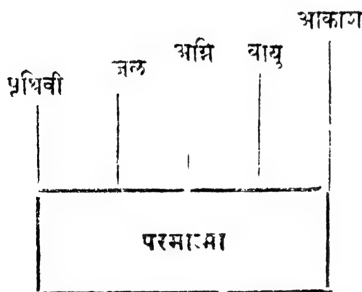
इन्द्रके ये इन्द्रिय हैं । इससे स्पष्ट हो जाता है, कि यह इन्द्र निःसन्देह आत्मा है, जो अन्दर रहता है और अपनि शक्तियोंको बाहर इन्द्रियस्थानोंमें भेजकर विविध कार्य करता है ।

हमारे इन्द्रियभी बाह्य देवताओंपर अवलम्बित है। जैसा नेत्र सूर्यपर, जिह्वा जलपर, नासिका पृथ्वीपर, त्वचा वायुपर और कर्ण आकाशपर अवलम्बित है। बाह्य देवताओंसेही ये इन्द्रियगोलक बने है। इसका वर्णन ऐतरेय उपनिषदमें इस तरह किया है—

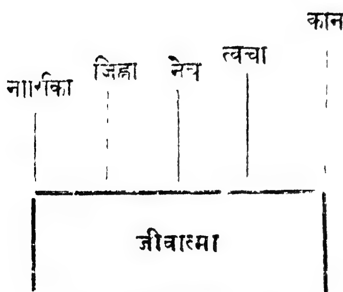
> आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत् ।
> दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन् ।
> वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् ॥ [ऐतरेय]

'सूर्य आंख बन कर नेत्रस्थानमें प्रविष्ट हुआ, दिशा (आकाश) कान बन कर श्रवणेन्द्रियके स्थानमें प्रविष्ट हुई, वायु प्राण बन कर नासिकाके स्थानमें प्रविष्ट हुआ।' इसी तरह अन्यान्य देवताएं अन्यान्य इन्द्रियस्थानोंमें प्रविष्ट हुई हैं।

विश्वसृष्टि



व्यक्तिसृष्टि



इससे स्पष्ट हो जाता है, जो देवता इस विशाल जगत् में परमात्मदेहमें है, वे ही सूक्ष्म अंशरूपसे इस जीवके देहमें इंद्रियो रूपमें प्रकट हुई हैं। इस तरह विचार करनेपर यह बात प्रकट होगी कि, जैसा इंद्रियोंके पीछे जीवात्माके रूपमें 'इंद्र' है, उसी तरह विश्वव्यापक शक्तियोंके पीछे परमात्मारूप में भी इन्द्रही है। अर्थात् एकही इन्द्रके जीवात्मा और परमात्मा ये रूप क्रमशः शरीरमें और विश्वमें है। यहांतक हमने इन्द्र का स्वरूप सामान्यतः मेघस्थानीय विद्युत से पृथक् है, यह देख लिया। अब इसका विचार अधिक करनेके लिये सबसे प्रथम हम निरुक्तकार श्री यास्काचार्यजीका निर्वचन देखते हैं—

निरुक्तकी व्युत्पत्ति ।

इन्द्र इरां दृणातीति वा, इरां ददातीति वा, इरां दधातीति वा, इरां दारयत इति वा, इरां धारयत इति वा, इन्दवे द्रवतीति वा, इन्दौ रमत इति वा, इन्धे भूतानीति वा, 'तद्यदेनं प्राणैः समैन्धंस्तदिन्द्रस्येन्द्रत्वं' इति विज्ञायते, इदं करणादित्याग्रयणः, इदं दर्शनादित्यौपमन्यवः, इन्दतेर्वैश्वर्यकर्मणः, इन्दञ्छत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वा, आदरयिता च यज्वनाम् ।

(निरुक्त० १०।१।९)

इसमें निम्नलिखित प्रकार की निरुक्तियां दीं हैं। क्रमशः ये अब देखिये—

(१) इरां दृणाति= जो अन्नको, जलको, बीजको फोडता है,
(२) इरां ददाति= जो अन्न वा जलको देता है,
(३) इरां दधाति=जो अन्न वा जलका धारण करता है,
(४) इरां दारयते=जो अन्न वा जलका विदारण करता है,
(५) इरां धारयते= जो अन्न वा जलका धारण करता है,
(६) इन्दवे द्रवति= जो इन्दु-चन्द्रमा के लिये द्रवरूप होता है, रस निष्पन्न करता है,
(७) इन्दौ रमते= जो जल या रसमें रमता है,
(८) इन्धे भूतानि= जो भूतोंको प्रकाशित करता है, उजाला करता है, तेजस्वी करता है,
(९) प्राणैः समैन्धन्= प्राणोंसे जिसका दीपन होता है, प्राणोंसे जो प्रकाशित होता है,
(१०) इदं करोति= इस जगत् को जो निर्माण करता है,
(११) इदं पश्यति= इस विश्व को जो देखता है,
(१२) इन्दतीति इन्द्रः =परम ऐश्वर्यसे जो संपन्न होता है,

(१३) इंद्रन् शत्रूणां दारयिता= शत्रुओं को विदारण करनेवाला,

(१४) इंद्रन् शत्रूणां द्रावयिता= शत्रुओंको जो भगा देता है,

(१५) यज्वनां आदरयिता=याजकोंका आदर करनेवाला,

ये निर्वचन श्री यास्काचार्य के दिये हैं । इस प्रत्येक निर्वचन की सत्यता की परीक्षा करना हो, तो इन अर्थोंके दर्शक मन्त्र वेदोंमें ढुंढने चाहिये । जिस अर्थके वेदमन्त्र मिलेंगे, वह अर्थ वेदप्रमाणयुक्त है, अतः आदरणीय है, और जो वेदमें नहीं दीखेगा, वह लेनेयोग्य नहीं, ऐसा समझना योग्य है। अन्तिम तीनों अर्थ वेदके प्रमाणोंसे परिपुष्ट है, इसके प्रमाण हम आगे देंगे। क्रमांक ९-१२ तकके अर्थ अध्यात्म में पाठक देख सकते है, इस विषयमें पाणिनी मुनि का सूत्र पूर्वस्थलमें दिया है और उसका विवरण किया है और इसी तरह की ऐतरेयोपनिषद् की व्युत्पत्ति आगे हम देंगे । अध्यात्मपक्ष के मन्त्र भी पर्याप्त मिलेंगे। अन्य व्युत्पत्तियोंके लिये वेदमें मन्त्र देखने चाहिये। यह एक बडा खोज करनेका विषय है। इसका निर्देश यहां इसलिये किया है कि, इससे पाठकोंके मनमें इस बातका प्रकाश हो जाय कि, निरुक्तकार आदिकोंके अर्थ उस समय ही लेने चाहिये, जिस समय उस अर्थ को दर्शानेवाले मन्त्र मिल जायँ। अस्तु ! हम अब ब्राह्मणों और उपनिषदों में दिये हुए 'इन्द्र' पद के निर्वचन देखते हैं। सबसे प्रथम ऐतरेय उपनिषदमें एक उत्तम निर्वचन दिया है, वह देखिये-

उपनिषदोंमें इन्द्रका अर्थ।

तस्मादिदन्द्रो नाम इदंद्रो ह वै नाम तमिदन्द्रं संतं इन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥ [ऐ० उ० ४।३।१४]

'इसका नाम 'इदं-द्र' था। इस 'इदं-द्र' को ही 'इंद्र' परोक्षवृत्तिसे कहने लगे।' 'इदं-द्र' का अर्थ है, (इद) इस शरीरमें (द्र) सुराख करनेवाला। इस शरीरमें सुराख करके वहां इंद्रियों को निर्माण करनेवाला। इस आत्माने इस शरीरमें अनेक सुराख किये और उनसे अपने विविध कार्य करने लगा। इन सुराखोंका नाम ही इंद्रियां है। इस विषय में पहिले दी हुई 'इंद्रिय' शब्दकी व्युत्पत्ति देखिये। इस सम्बन्धमें 'इरां दृणाति' यह यास्कीय निरुक्ति देखने योग्य है। इस तरह ऐतरेय उपनिषद् की यह व्युत्पत्ति इन्द्रका स्वरूप 'आत्मा' निश्चित करती है। अब और देखिये-

एष ब्रह्मा, एष इन्द्रः एष प्रजापतिः,
एते सर्वे देवाः । [ऐ० उ० ५।३]

'यही ब्रह्मा है, यही इन्द्र है, यही प्रजापति है, यही सब देव हैं।' अर्थात् इन्द्र नामसे अथवा 'इदं-द्र' नामसे यहां वर्णन किया है, वही सब देवतारूप है अथवा उसीके रूप सब देवता है।

ततः प्राणोऽजायत, स इन्द्रः स एषोऽसपत्नोऽद्वितीयः। [बृ० उ० १।५।१२]

'उससे प्राण हुआ, वही इन्द्र है और वही शत्रुरहित एक तथा अद्वितीय है।' यहां प्राणकोही इन्द्र कहा है। तथा-

एतं इन्धं सन्तं इन्द्र इत्याचक्षते। [बृ०उ०४।२।२]

'इस इन्ध अर्थात् प्रदीप्त करनेवालेकोही इन्द्र कहते हैं।' निरुक्तकारने यह व्युत्पत्ति दी है। 'इन्धे भूतानि' [निरु०] जो भूतोंको प्रकाशित करता है। निम्नलिखित वर्णनमें इन्द्रको परमात्मासे छोटा बताया है-

भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। [तै०उ०२।८।१]

इस परमात्माके भयसे अग्नि और इन्द्र डरते हुए धीमे धीमे प्रकाशते है।' तथा-

शतं देवानां आनन्दाः स एक इन्द्रस्यानन्दः।
शतं इन्द्रस्यानन्दाः स एको बृहस्पतेरानन्दः॥ [तै० उ०२।८।१]

'देवोंके सौ आनन्दोंके बराबर इन्द्रका एक आनन्द है। इन्द्रके सौ आनंदोके बराबर बृहस्पतिका एक आनन्द है।'

एष खलु आत्मा इन्द्रः। [मै०उ०६।८]
असौ वा आदित्य इन्द्रः [मै०उ०६।२३]
चाक्षुष इन्द्रोऽयम्। [मै०उ०७।११]
इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः॥ [प्रश्न० २।९]

स ब्रह्मा, स शिवः, स हरिः, सेन्द्रः, सोऽक्षरः,
परमः स्वराट्। [नृ०पू०ता०उ०१।४]

'यह आत्मा निःसंदेह इन्द्र है। यह सूर्य इन्द्र है। चक्षु में तो तेज है, वह इन्द्र है। प्राण ही इन्द्र है, वही तेजसे रक्षण करता है, अन्तरिक्षमें यही संचार करता है,

सूर्य भी यही है। वही ब्रह्मा, शिव, हरि, इन्द्र, अक्षर और परम स्वराट् है।' अर्थात् प्राण ही इन्द्र है और वही सब देवताओंका रूप धारण करता है।

मस्तकमें इन्द्रशक्ति।

अपने शरीर मस्तकमें एक स्तन जैसा अवयव है, इसका वर्णन तै० उपनिषद् में निम्नलिखित प्रकार आया है—

अन्तरेण तालुके य एष स्तन इव अवलंबते सा इंद्रयोनिः। [तै०उ०१।६ १]

'तालुके अन्दर [मस्तकके बीचमें] एक स्तन जैसा अवयव है, वह इन्द्रशक्तिको उत्पन्न करनेवाला है।' अपने शरीर में इन्द्रशक्ति का संचार यहांसे होता है। इस को 'पीनियल ग्लण्ड' [इन्द्रग्रंथी] कहते हैं। योगसाधन करते हुए इस पर ध्यान करनेसे यह ग्रन्थी उत्तेजित होती हैं, जिससे अनेक लाभ होते हैं। इस विषयमें 'इंद्र-शक्तिका विकास' नामक पुस्तक अवश्य देखिये।

इन्द्रके विषयमें ब्राह्मणग्रंथोंमें निम्नलिखित वचन मिलते हैं। वे अब देखिये--

ब्राह्मणग्रन्थोंमें इन्द्रका अर्थ।

(१) इंधो वै नाम एष योऽयं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषः तं वा एतं इंधं संतं इंद्र इत्याचक्षते। [श०ब्रा०१४।६।११।२]

(२) अस्मिन् वा इदमिंद्रियं प्रत्यस्थादिति तदिंद्रस्य इंद्रत्वम्। [तै०ब्रा०२।२।१०।४]

(३) इंद्रस्य इंद्रियेणाभिषिञ्चामि। [गे०ब्रा०८।७]

(४) इंद्र [एवैनं] इंद्रियेण[अवति][तै०ब्रा०१।७।६।६]

(५) दधातु इंद्र इंद्रियम्। [तां०ब्रा०१।३।५]

(६) मयि इंद्र इंद्रियं दधातु। [श०ब्रा०१।८।१।४२]

(७) इंद्र इति होतं आचक्षते य एषः [सूर्य.] तपति। [श०ब्रा०४।६।७।११]

(८) एष वै शुक्रो य एष तपति एष उ एवेन्द्रः। [श०ब्रा०४।५।५।७;४।५।९।४]

(९) स यः स इंद्र एष एव स य एष तपति। [जै०ब्रा०उ०१।२८।२;१३२।५]

(१०) यः स इंद्रोऽसौ स आदित्य। [श०ब्रा०८।५।३।२]

(११) अथ यत्रैतत्प्रदीप्तो भवति। उच्चैर्धूमः परमया जूत्या बल्बलीति तर्हि हैष [अग्निः] भवतींद्रः। [श०ब्रा०२।३।२।११]

(१२) इंद्रो वाग् इत्यु वाऽआहुः [श०ब्रा०११।४।५।४]

(१३) तस्मादाहुरिन्द्रो वागिति [श०ब्रा०११।१।६।१८]

(१४) अथ य इंद्रः सा वाक्। [जै०ब्रा०उ०१।३३।२]

(१५) वाग्वा इंद्र। [कौ०ब्रा०२।७;१३।५]

(१६) वागिन्द्र। [श०ब्रा०८।७।२।६]

(१७) यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः [श० ब्रा० ४।१।३।१९]

(१८) योऽयं चक्षुषि पुरुष एष इन्द्रः। [जै०ब्रा०उ०१।४३।१०]

(१९) ततः प्राणोऽजायत स इन्द्रः। [श०ब्रा०१४।४।३।१९]

(२०) प्राण एवेंद्रः। [श०ब्रा० १२।९।१।१४]

प्राण इन्द्रः। [श०ब्रा० ६।१।२।२८]

(२१) हृदयमेवेंद्रः। [श०ब्रा०१२।९।१।१५]

(२२) यन्मनः स इंद्रः। [गो०ब्रा०उ०४।११]

(२३) मन एवेंद्रः। [श०ब्रा०१२।९।१।१३]

(२४) इंद्रो वै यजमानः। [श०ब्रा०२।१।२।११; २।३।३।१०;४।५।४।८,५।१।३।४;८।५।३।८]

(२५) द्वयेन वा एष इंद्रो भवति यश्च क्षत्रियो यदु च यजमानः। [श०ब्रा०५।३।५।२७]

(२६) ऐंद्रो वै राजन्यः। [तै०ब्रा०३।८।२३।२]

(२७) इंद्रः क्षत्रम्। [श०ब्रा०१०।४।१।५;कौ०ब्रा०१२।८; श०ब्रा० २।५।२।२७-२।५।४।८;३।९।१।१६;४।३।३।६]

(२८) यदशनिरिंद्रः। [कौ०ब्रा०६।९]

(२९) स्तनयित्नुरेवेंद्रः। [श०ब्रा०११।६।३।९]

(३०) इन्द्रो ब्रह्मेति। [कौ०ब्रा०६।१४]

(३१)प्रजापतिर्वा स इन्द्रः। [श०ब्रा०२।३।१।७]

(३२) देवलोको वा इन्द्रः। [कौ०ब्रा०१६।८]

(३३) इन्द्रो बलं बलपतिः। [श०ब्रा०११।४।३।१२; तै० ब्रा० २।५।७।४]

(३४)वीर्यं वा इन्द्रः।[तां.ब्रा.९।७।५,८।गो०ब्रा०उ०६।७]

(३५) इन्द्रियं वीर्यं इन्द्रः।[श०ब्रा०२।५।४।८;३।९।१।१५; ५।४।३।१८]

(३६) शिस्नमिन्द्रः। [श०ब्रा०१२।९।१।१६]
(३७) रेत इन्द्रः। [श०ब्रा०१२।५।१।१७]
(३८) अर्जुनो ह वै नाम इन्द्रः। [श०ब्रा०२।१।२।११; ५।४।३।७]
(३९) इन्द्रो ह्याहवनीयः। [श०ब्रा०२।६।१।३८;२।३।२।२]
(४०) इन्द्र एष यदुद्गाता। [जै०ब्रा०उ०१।२२।२]
(४१) इन्द्रः खलु वै श्रेष्ठो देवतानाम्। [तै०ब्रा०२।७।१।३]
(४२) इन्द्रः सर्वा देवता, इन्द्रश्रेष्ठा देवाः। [श०ब्रा० ३।४।२।२;१।६।३।२०]
(४३) ततो वा इन्द्रो देवानामधिपतिरभवत्। [तै०ब्रा०२।२।१०।३]
(४४) इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः, पारयिष्णुतम। [ऐ०ब्रा०७।१६,८।१२]
(४५) इन्द्रो वै देवानां ओजिष्ठो बलिष्ठः। [कौ०ब्रा०६।१४;गो०ब्रा०उ०१।३]
(४६) इन्द्र ओजसां पते। [तै०ब्रा०३।११।४।२]
(४७) इन्द्राय अंहोमुचे। [तै०ब्रा०१।७।३।७]
(४८) इन्द्राय सुत्राम्णे। [तै०ब्रा०१।७।३।७]
(४९) ओकः कारी हैवैषामिन्द्रो भवति। [गो०ब्रा०६।४,५।१५, ऐ०ब्रा०८।१७,२०]
(५०) इन्द्रो यज्ञस्यात्मा, इन्द्रो देवता। [श०ब्रा०९।५।१।३३]
(५१) ऋक्सामे वा इंद्रस्य हरी [ऐ० ब्रा० २।२४; तै० ब्रा० १।६।३।९]
(५२) इंद्रस्य हरी बृहद्रथंतरे। [तां० ब्रा० ९।४।८]
(५३) सेना इंद्रस्य पत्नी। [गो० ब्रा० २।९]
(५४) ऐंद्राः पशवः। [ऐ० ब्रा० ६।२५]
(५५) एतद्वा इंद्रस्य रूपं यदृषभः। [श०ब्रा०२।५।३।१८]
(५६) इंद्रो वा अश्वः। [कौ० ब्रा० १५।४]
(५७) ऐंद्रो वै माध्यंदिनः। [गो० ब्रा०उ० १।२३, ६।९। कौ० ब्रा० ५।५, २२।७; ऐ० ब्रा० ६।३०]
(५८) इंद्रो ज्योतिर्ज्योतिरिंद्र इति। [कौ०ब्रा०१४।१]
(५९) यत् शुक्लं तदैन्द्रम्। [श० ब्रा० १२।९।१।१२]

इतने ब्राह्मणग्रन्थोंके वचनों में 'इंद्र' के जो अर्थ दिये हैं, वे ये हैं– [१] दक्षिण नेत्रमें जो पुरुष है, वह इन्द्र है, [२] इंद्रियकी शक्तिसे इन्द्र का बोध होता है, [३] इन्द्र इंद्रियसे रक्षा करता है, [४] सूर्य ही इन्द्र है, [५] अग्नि जो बलसे जलता है, जिसका धूम ऊपर जाता है वह इंद्र है, [६] वाणी ही इन्द्र है, [७] वायुही इन्द्र है, प्राण इंद्र है, [८] हृदय, मन ये इन्द्र हैं, [९] यजमान इन्द्र है, [१०] क्षत्रिय, राजन्य इन्द्र है, [११] क्षात्र तेज इन्द्र है, [१२] मेघस्थानीय विद्युत् इन्द्र है, [१३] ब्रह्मा इन्द्र है, [१४] प्रजापति, देवलोक, ये इन्द्र हैं, [१५] बल और बलवान् दोनों इन्द्र है, [१६] वीर्य इन्द्र है, [१७] शिस्न और रेत इन्द्रिय है, [१८] अर्जुन इन्द्र है(इन्द्र पुत्र होनेसे), [१९] आहवनीय अग्नि इन्द्र है, [२०] उद्गाता इन्द्र है, [२१] देवोंमें श्रेष्ठ देव इन्द्र है, सब देवताही इन्द्र है, देवोंका राजा इन्द्र है। [२२] जो देवोंमें बलिष्ठ, ओजिष्ठ, सहिष्ठ और संकटोंसे पार ले जानेवाला है, वह इन्द्र है, [२३] पापसे छुडानेवाला, रक्षा करनेवाला इन्द्र है, [२४] घर बनानेवाला इन्द्र है, [२५] यज्ञ का आत्मा, यज्ञ का देवता इन्द्र है, [२६] बैल इन्द्र का रूप है, अश्व इंद्र है, [२७] ज्योति इन्द्र है, जो श्वेत तेज है, वह इन्द्र है, [२८] ऋचा व साम, बृहत् और रथन्तर ये इन्द्रके घोडे हैं। [२९] सेना इन्द्रकी पत्नी है।

इन इन्द्रके अर्थों या स्वरूपों को देखनेसे केवल मेघस्थानीय विद्युत्‌ही इन्द्र है, ऐसा कहना योग्य नहीं हो सकता।

शरीरमें इंद्र= आंखकी पुतली, इन्द्रिय, हृदय, मन, प्राण, आत्मा, वाणी, बल, ओज, सह, गौरवर्ण, शिस्न, रेत ये शरीरमें इन्द्रके रूप हैं।

मानवोंमें इंद्र= यजमान, ब्रह्मा, उद्गाता, राजा, क्षत्रिय, वीर, बलिष्ठ, ओजिष्ठ, सहिष्ठ, दुःखोंके पार ले जानेवाला, वक्ता, घर बनानेवाला इन्द्र है।

देवोंमें इन्द्र= सब देवता, देवोंका राजा, सूर्य, आदित्य, अग्नि, तेज, विद्युत, मेघस्थानीय बिजुली इन्द्र है।

पशुओंमें इन्द्र= बैल और अश्व ये पशुओंमें इन्द्र हैं।

इस तरह इन्द्रके रूप विविध स्थानोंमें हैं। 'इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' [ऋ०६।४७।१८] इन्द्र अपनी शक्तियोंसे नाना रूप धारण करता है, यह इस तरह उनके नाना रूप है। सब विश्वही उसका रूप है और विश्वान्तर्गत हरएक रूप इन्द्रकाही रूप है।

इस तरह इन्द्र की महिमा देखनेयोग्य है। अब वेदमें जो नाम इंद्रके लिये आये हैं, उनका विचार करते हैं–

वेदमें इन्द्रके विशेषण।

परमेश्वर का ही नाम 'इन्द्र' है, ऐसा स्पष्ट दर्शानेवाले कई पद वेदके मंत्रोंमें है देखिये—[अनूनः] किसी स्थानपर न्यून्य नही, सब स्थानोमें एक जैसा भरा है, सर्व व्यापक [दिवि-क्षाः द्युक्षः]द्युलोकमे, आकाशमे रहनेवाला[स्वर्पति] द्युलोक अथवा आकाशका स्वामी, [विश्वतस्पृथुः] विश्वके चारों और भरपूर विश्वसे भी अधिक व्यापक, [अन्तरिक्षप्रा] अन्तरिक्षमे, बीचके अवकाशमे परिपूर्ण होकर रहनेवाला, [विभुः] व्यापक,विश्वव्यापक, [विश्वभूः] विश्वमें भरपूर, विश्वभरमे रहनेवाला, [दिविस्पृश] आकाशमें व्यापक ये शब्द इन्द्रदेव विश्वभरमें परिपूर्ण-तया व्यापक है, यह भाव बताते है कि सर्वव्यापक परमेश्वर ही इन्द्र है, यह बात इन शब्दोंसे सिद्ध होती है।

[विश्वकर्मा] सब विश्वकी रचना करनेवाला, विश्वरूप कर्म करनेवाला [लोककृत्] सब सूर्यादि लोकोंका निर्माण करनेवाला [विश्वमनाः] विश्व जितना जिसका व्यापक मन है, [विश्ववेदाः] विश्वको यथावत् जाननेवाला ये पदभी इंद्र परमात्माही है, ऐसा बताते है। ये पद वेदमंत्रों में इन्द्रके गुण बताते है। विश्वकी रचना करनेवाला और विश्वको जाननेवाला इन्द्र निःसंदेह परमेश्वर है।

[विश्वरूपः] विश्व ही जिसका रूप है, विश्वमें जो जो वस्तु हे, वह सब इन्द्रकाही रूप है। इन्द्रही नाना रूप धारण कर विश्वमें रहता है। भगवद्गीता का ११वाँ अध्याय इसी 'विश्वरूपदर्शन' नामका है। वही भाव दर्शाने-वाला इन्द्रवाचक यह शब्द वेदमंत्रमें है। [विश्व-देवः] सब देव जिसके अंश है। विश्वरूपी परमेश्वरकाही यह वर्णन है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, आदि सब देवताएं जिसके शरीरके अंग प्रत्यंग हैं। परमात्मा ही इन्द्र है, यह आशय इन्द्रवाचक इन शब्दोंसे व्यक्त होता है।

(ईशानकृत्)स्वामियोंको बनानेवाला अर्थात् राजा-ओंका भी जो राजा है, प्रभुका भी प्रभु, [बृहत्पतिः] इस बडे विश्व का एकमात्र पालन करनेवाला, [वास्तोष्पति] सब वस्तुओंका पालक, [ज्येष्ठ राजः] सब राजाओंमें जो सबसे श्रेष्ठ राजा है, [ज्येष्ठतमः] श्रेष्ठोमें जो श्रेष्ठ है, [देवतमः] सब देवोंमें जो श्रेष्ठ देव है, [द्युमत्तमः] प्रकाशवानोंमें जो सबसे अधिक प्रकाशमान है, [पितृतमः] पिताओंकाभी जो पिता है, [शिवतमः, शंतमः, शंभूः] कल्याण करनेवालोंमें जो सबसे अधिक कल्याण करनेवाला है, [असमः] जिसके समान कोई नहीं है, ये सब इन्द्र-वाचक पद परमेश्वरका ही बोध कराते हैं।

[स्वरोचि] उसका अपना निज तेज है, किसी दूसरेके तेजसे वह तेजस्वी नही बना, अपने तेजसेही वह सदा प्रकाशता रहता है, [बृहद्भानुः] उसका तेज बडा भारी है, उससे बडा किसीका भी तेज नहीं है, [चित्रभानुः] उस का तेज चित्रविचित्र है। वह स्वयं ज्योति है। ये शब्द परमेश्वरका स्वयं तेजस्वी होना बताते हैं। इन्द्रके लिये ये शब्द प्रयुक्त हुए है। अपने तेजसे सब विश्वको सुंदर रूप देता है, यह भाव [सुरूपकृत्नु] पदसे व्यक्त होता है।

यह [अमर्त्य] अमर है, [अजरः] अजर है। [अजुरः, अजुर्यः, अजुर्यत्] क्षीण होनेवाला नहीं है, सबका [पूर्वजाः] पूर्वज है, सबका आदि है, सब धर्मोका निर्माण-कर्ता [धर्मकृत्]है, [विधर्ता] सबका आधार है, ये पद इन्द्रके लिये प्रयुक्त हुए है और ये स्पष्टताके साथ ईश्वरके वाचक प्रतीत होते है। [अनपच्युत्] इसको स्वस्थानसे कोई हिला नहीं सकता, यह अपने स्थानमें सदा रहता है।

[विश्वचर्षणि] सर्व मनुष्यसमाजही परमेश्वरका रूप है, जनता—जनार्दन ही उसको कहते हैं, [पाञ्चजन्यः] पञ्च जन अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांच प्रकारके लोग उसका स्वरूप है, [विश्वानर] सब मानवजातिही ईश्वरका स्वरूप है। 'ब्राह्मण इस ईश्वरकी सिर है, क्षत्रिय इसके बाहु है, वैश्य इसका उदर है और शूद्र इसके पांव हैं। [ऋ० १०।९०।१२] इस वेदोक्त वर्णन के अनुसार ये पद निःसन्देह परमात्मवाचक हैं।

ये पद किस मन्त्रमें प्रयुक्त हुए है, यह पाठक इन सूचियों में देख सकते है और इनके मन्त्रभी देख सकते हैं। पर ये सब शब्द इन्द्रवाचक हैं और ये सब शब्द परमात्माके ही वाचक हैं। अर्थात् 'इंद्र' परमात्माही है। इस वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि, जो इन्द्र को केवल मेघ-स्थानीय विद्युत् ही मानते हैं, वे इन्द्रके इस परमेश्वरीय भाव को नहीं जान सकते।

एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति।
अग्निं यमं मातरिश्वानं आहुः ॥ [ऋ० १।१६४।४६]

"एकही सत् है, जिसका वर्णन विद्वान् लोक अनेक प्रकार से करते हैं, उसको अग्नि, यम, मातरिश्वा, वायु, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि कहते हैं।" इस तरह उस 'एकं सत्' को इन्द्रपद से वर्णन किया। अतः इन्द्र आत्मा है अथवा 'एकं-सत्' ही है। अब इस विषयके कुछ मन्त्र यहां देखते हैं-

सबका एक राजा।

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृंगिणो वज्रबाहुः। सेदु राजा क्षयति चर्षणीनां अरान्न नेमिः परि ता बभूव॥

(७२९ ऋ० १ ३२-१५)

इंद्र (यातः अवसितस्य राजा) जंगम और स्थावर पदार्थमात्र का राजा है, वही (वज्रबाहु) वज्र के समान जिसके बाहु है, ऐसा इन्द्र (शमस्य च शृंगिण.) शान्त और सींगवालों का अर्थात् शान्त और क्रूरों का भी राजा है। वही (चर्षणीनां राजा) सब प्रजाजनों का राजा है। जिस तरह (अरान् नेमिः) अरों को चक्र की लोहपट्टि घेरती है, उस तरह (ताः परि बभूव) इन सब को वही घेरता है।

सब का एकमात्र प्रभु है, वह सब को घेरता है, वह सब के चारों ओर है। सर्वव्यापक है। सब स्थावर जंगम का एकमात्र प्रभु है। तथा और देखिए-

य एकश्चर्षणीनां वसूनां इरज्यति।
इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम्॥ (३६ ऋ० १-७-९)

"इन्द्र ही पञ्चजनों का, और सब प्रजाजनों का तथा (वसूनां) सब धनों का एकमात्र स्वामी है।"

स्थावरजंगम का एक ही प्रभु है। इस विश्व के अनेक ईश्वर नहीं हैं, यही सब का एकमात्र एक ही प्रभु है। मनुष्यों, पशुओं और सब अन्य वस्तुओं का अधिष्ठाता यही है। इसकी आज्ञा का कोई उलंघन कर नहीं सकता। यह द्युलोक से भी बडा है। इस विषय में आगे का मंत्र देखिए-

द्युलोक से बडा।

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति। भीमस्तुविष्मान् चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसग॥

(७९७ ऋ० १-५५-१)

द्युलोक से भी (अस्य वरिमा) इस इन्द्र का महिमा बहुत बडा है। पृथ्वी से भी बहुत बडा है। वह इन्द्र (भीमः) भयंकर (तुविष्मान्) बलवान् और (चर्षणिभ्यः आतपः) लोगो के लिये प्रकाश देनेवाला है। (वंसगः) बैल जैसा वह वीर (तेजसे वज्रं शिशीते) तीक्ष्ण करने के लिये शूर के वज्र को तेज करता है।

आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि।
न त्वावाँ इंद्र कश्चन न जातो न जनिष्यते
अति विश्वं ववक्षिथ॥ (९२० ऋ० १-८१-५)

इन्द्र ने (पार्थिव रजः पप्रौ) पृथ्वी और अन्तरिक्ष को व्यापा है, उसने (दिवि रोचना बद्बधे) द्युलोक में तेजस्वी तारागण रखे है। तेरे समान दूसरा कोई नहीं है, न कोई है और न होगा। (विश्व अति ववक्षिथ) तू विश्व से बढकर है।

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि॥

(६५ ऋ० १-१०-८)

हे इन्द्र! (उभे रोदसी) द्युलोक और पृथिवी ये दोनों (त्वा न इन्वतः) तुम को अपने अन्दर समा नही सकते। तू (ऋघायमाण) शत्रुओं का नाश करनेवाला है। (स्वर्वती अपः जेष) तेजस्वी उदकों का जय करके वह उदक और (गा.) गौवे (अस्मभ्य सं धूनुहि) हम सब के लिये दो।

इन्द्र पृथ्वी और द्युलोक से भी बढकर है। सर्वत्र व्याप कर रहनेवाला वह है और वह इससे भी अधिक व्यापक है, अर्थात् वह जहां नहीं, ऐसा स्थान नहीं है।

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मन। चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम॥

(७७१ ऋ० १-५२-१२)

(त्वं अस्य रजस व्योमनः पारे) तूने इस अन्तरिक्ष और आकाश के परे रहकर (भूमिं चकृषे) भूमि का निर्माण किया। (स्वभूत्योजा धृषन्मन) तू अपने सामर्थ्य से युक्त और शत्रुका धर्षण करनेवाला है, अत: हमारी (अवसे) रक्षा करने के लिये यह सब (ओजसः प्रतिमान) अपने बल के योग्य कर्म करता है। तू (स्वः दिव अपः परिभूः एषि) द्युलोक, अन्तरिक्ष और अपोलोक को घेर कर रहता है।

त्रिलोक इंद्र से विभक्त नहीं।

न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम्। अमादिदस्य तित्विषे समोजसः॥
(३११ ऋ० ८-१२-२४)

(यं वज्रिणं) जिस इन्द्र को (रोदसी) द्युलोक और पृथ्वी तथा (अन्तरिक्षाणि) अन्तरिक्ष (न विविक्तः) अपने से पृथक् कर नहीं सकते। उस इन्द्र के (ओजसः) बल से सब कुछ (तित्विषे) प्रकाशित होता है।

कुछ भी दूर नहीं है।

न ते दूरे परमा चिद् रजांसि आ तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम्। स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ॥
(१२३९ ऋ० ३-३८-२)

(परमा रजांसि) दूर रजोलोक भी तेरे लिये (न ते दूरे) दूर नहीं है, हे (हरिवः) अश्वयुक्त इन्द्र! (हरिभ्यां) अपने दोनों घोडों के साथ (आ प्रयाहि) आओ, (स्थिराय वृष्णे) तुज जैसे स्थिर बलवान् वीर के लिये ये सवन किये हैं और अग्नि प्रज्वलित करके (ग्रावाणः युक्ताः) रस निकालने के लिये ग्रावों को लगा दिया है।

द्युलोक का उत्पादक इन्द्र।

जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो। यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजित् मरुत्वां इन्द्र सत्पते॥ (१७७२ ऋ० ८-३६-४)

इन्द्र, द्युलोक और पृथ्वीका उत्पन्न करनेवाला है। तू सोमका पान कर, आनंद प्राप्त कर। सब देव जो भाग तेरे लिए निश्चित करते हैं, वह यह है। सब (पृतनाः) सैन्य का पराभव करनेवाला तू है और (अप्सु जित्) जलमें अथवा अन्तरिक्षमें विजय करनेवाला भी तू ही है।

पृथ्वी और जल का उत्पादक।

स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरंदरो दासीरैरयद् वि। अजनयन् मनवे क्षां अपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत्॥ (१२१४ ऋ० २ २०-७)

"वह वृत्र का नाश करनेवाला और (पुरन्दरः) शत्रु के नगरों का भेदन करनेवाला इन्द्र (कृष्णयोनीः दासीः) काले दासों अर्थात् शत्रुओं को (वि ऐरयत्) भगा देता है। उसने मनुष्योंके लिए (क्षां अपः च) पृथ्वी और जल उत्पन्न किया। वह इन्द्र यज्ञ करनेवालों की प्रशंसा की वृद्धि करे।

'कृष्णयोनी' शब्द का अर्थ कृष्ण कृत्य करनेवाले दुष्ट शत्रु है। ऐसे शत्रुओं को इन्द्र भगा देता है।

आकाश खडा करनेवाला।

अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्तं आ रोदसी अपृणदन्तरिक्षम्। स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥ सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैः वज्रेण खान्यतृणत् नदीनाम्। वृथासृजत् पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार (११६३-६४ ऋ० २।१५।२-३)

(अवंशे) आधाररहित आकाश में (बृहन्तं द्यां अस्तभायत्) बडे आकाश को स्थिर किया और (रोदसी) पृथ्वी और आकाश को तथा (अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष को (आ अपृणत्) भर दिया। उसने पृथ्वी का धारण किया और बढाया।

(मानैः) नाप लेकर (प्राचः सद्म इव) जैसा मकान बनाते हैं, वैसा (नदीनां खानि अतृणत्) वज्रसे नदियोंके मार्ग बना दिये (दीर्घयाथैः पथिभिः) दीर्घ मार्गों से जानेवाली नदियां उसने सहजी उत्पन्न की हैं।

विश्वकी रचना करनेका यह अपूर्व वर्णन है। सब लोकलोकांतर निराधार अन्तराल में रखे हैं, यह प्रभु का अद्भुत सामर्थ्य है। और देखिए–

नक्षत्र स्थिर किये।

इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च। स्थिराणि न पराणुदे॥ (३६२ ऋ० ८-१४-९)

इन्द्रने आकाशमें तेजस्वी तारागण स्थिर और सुदृढ किए। उन स्थिरोंको कोई (न पराणुदे) हिला नहीं सकता।

नक्षत्र स्थिर हैं, यह यहां कहा है। नक्षत्रों को स्थिर करनेवाला यही इन्द्र है। अतः इसकी शक्ति अगाध है, सब उसके सामने कांपते हैं–

स्थावर, जंगम कांपते हैं।

अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगच्च रेजते। त्वष्टा चित् तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भिया अर्चन् अनु स्वराज्यम्॥ (९१३ ऋ० १-८०-१४)

हे (अद्रिवः) इन्द्र! (ते अभिष्टने) तेरे गर्जन से जो स्थावर, जंगम है, वह सब (रेजते) कांपने लगता है, (तव मन्यवे) तेरा क्रोध होनेपर त्वष्टा भी (भिया वेविज्यते) डर से कांपता है। ऐसा तेरा प्रभाव है, अतः स्वराज्य की अर्चना कर।

तव त्विषो जनिमन् रेजत द्यौ रेजद् भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः। ऋघायन्त सुभ्वः पर्वतास आर्दन् धन्वानि सरयन्त आपः॥२॥ सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत्। य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रं अनपच्युतं सदसो न भूम॥४॥ य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः। सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः॥५॥ (१४८९, ९१-९२ ऋ. ४।१७।२,४,५)

(तव त्विष जनिमन्) तेरे जन्मके समय तेरे तेजसे (द्यौः रेजत) द्युलोक कांपने लगा, (भूमिः रेजत्) भूमी भी कांपने लगी, (स्वस्य मन्योः भियसा) तेरे क्रोध के भयसे ये भयभीत हुए, (पर्वतासः सुभ्वः ऋघायन्तः) उत्तम पर्वत फट गए, (धन्वानि आर्दन्) शुष्क देश गीले हुए, और (आपः सरयन्त) जल बहने लगा।

(ते जनिता द्यौ सुवीरः अमन्यत्) तेरा जनक पिता द्युलोक उत्तम पुत्र से युक्त अपने आपको मानने लगा, (इन्द्रस्य कर्ता) वह इंद्र का प्रकट करनेवाला था और वह (सु-अप-तम) बडे कर्मों का कर्ता हुआ। उसने (सुवज्र) उत्तम वज्रधारी (अनपच्युतं) न गिरनेवाले (स्वर्यं) तेजस्वी इन्द्र को उत्पन्न किया।

वह एक ही वीर (भूमा च्यावयति) बडे शत्रुको हटाता है, वही स्तुत्य इन्द्र (कृष्टीनां राजा) प्रजाओंका एकमात्र राजा है। वह इन्द्र उपासक को धन देता है, इसलिये सब संसार (विश्वे एनं सत्यं अनुमदन्ति) इस सच्चे वीर का अनुमोदन करता है।

सब का वश करनेवाला इंद्र।

अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि। यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते॥ (७८७ ऋ १।५४।२)

उस शक्तिमान् और बुद्धिमान् इंद्र की स्तुति करो कि, जो अपने (धृष्णुना शवसा) धर्षणशील बल से दोनों द्यावापृथिवी को अपने वश में करता है। जैसा (वृषभ) वीर्यशाली वीर अपने सामर्थ्य से स्त्री को वश करता है।

सब विश्व जिस के सामने कांपता है, भयभीत होता है, जिस की मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर सकता। अतः प्रभु सब को वश करनेवाला है।

इंद्र का असीम सामर्थ्य।

असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे। ये त इंद्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च॥ (७९३ ऋ १।५४।८)

(अ-सम क्षत्र) इंद्र का क्षात्र तेज असीम है, उस की (मनीषा असमा) बुद्धि भी असीम है। (नेमे) ये याजक (अपसा प्र सन्तु) अपने कर्म से उत्कर्ष को प्राप्त हों। क्योंकि जो लोक तेरी बधाई करते हैं, वे (महि स्थविर वृष्ण्यं क्षत्र) बडा विशाल, पौरुषयुक्त क्षात्र तेज प्राप्त करते हैं।

इतना असीम सामर्थ्य है, इसीलिये सब पर उस का प्रभुत्व चल रहा है, सब को वश में वह रखता है। उस पर कोई हुकूमत नहीं कर सकता, पर सब पर उसी की हुकूमत चलती है। देखिये—

सत्यमित् तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान्। अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम्॥ (१०७१ ऋ. ६।३०।४)

हे इंद्र! यह सत्य है कि, तेरे जैसा न कोई देव है और (न मर्त्यः) न मानव है। तेरे से (ज्यायान्) बडा तो कोई नहीं है। (अर्णः परिशयानं अहिं अहन्) जल को प्रतिबंध करनेवाले शत्रु का वध कर के तूने (अपः समुद्रं अवासृजः) जल खुला किया, जो समुद्र तक बहता रहा।

हरएक वस्तुमात्र में प्रभु का सामर्थ्य दीखता है। क्या जल में, क्या वनस्पति में, क्या अन्य पदार्थों में, उस का

सामर्थ्य विश्वभर में ओतप्रोत भरा है। अत सब पर उस का प्रभुत्व स्थिर है और उस की आज्ञा का कोई उलंघन नही कर सकता, इस विषय में देखिये-

तेरे मार्ग का अतिक्रमण सूर्य नहीं करता।

दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्व-प्रसूता । सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत् त्वस्य ॥ (१२४९ ऋ. ३।३०।१२)

(प्रदिष्टाः दिशः) निश्चित किये दिशाओं को जो कि, (हर्यश्व-प्रसूता) इन्द्रने निश्चित किये है, (सूर्य न मिनाति) सूर्य नहीं छोडता। (अश्वैः यद् अध्वनः आनट्) घोडा से जब वह मार्गपर से चला जाता है, तब [विमोचनं कृणुते] विमोचन करता है। यह इसी का कार्य है।

इस तरह अनेक मन्त्र पाठक इन सूक्तों में परमेश्वर के वाचन देख सकते हैं, तथा पूर्वस्थान में जो विशेषण के शब्द ईश्वरवाचक करके बताये हैं, उन पदों का भाव पाठक इन मन्त्रों में देख सकते है और अनुभव कर सकते है कि, इंद्रदेवता के मंत्रों में ईश्वरविषयक वर्णन का अच्छा स्थान है।

•मैं इन्द्र हूं = इन्द्रका साक्षात्कार।

प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति। नेन्द्रोऽस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श कमभि ष्टवाम ॥ ३ ॥ अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना। ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि ॥४॥ (९९३-९४ ऋ० ८।१००।३-४)

यदि इन्द्र (सत्यं अस्ति) सचमुच है, तब तो उस की (स्तोमं भरत) स्तुति करो, पर नेमने (आह) कहा कि (न इन्द्रः अस्ति) इन्द्र नहीं है, (क ईं ददर्श) किसने उसे देखा ? और हम (कं अभि स्तवामः) किस-की स्तुति करें ?

इन्द्रने उत्तर दिया- हे (जरितः) स्तोता ! (अयं अस्मि) यह मैं हूं (इह मा पश्य) यहां मुझे देख। (मन्हा विश्वा जातानि अभि अस्मि) अपने महत्त्व से सब वस्तुओं पर मैं ही प्रभाव करता हूं ! अतः (ऋतस्य प्रदिशः) सत्य को बतानेवाले (मा वर्धयन्ति) मुझे ही बढाते हैं। (आ दर्दिर) क्रुद्ध होने पर मैं [भुवना दर्दरीमि] सब भुवनों का नाश करता हूं।

भक्त को इन्द्र प्रत्यक्ष दर्शन देता है, यह बात यहां दर्शायी है। ईश्वरसाक्षात्कार होता है। ईश्वर साक्षात् होकर 'मैं हू' ऐसा कहता है। जिसका भाग्य हो, उस को यह दर्शन होगा।

इस तरह ईश्वरवर्णनपरक मंत्रों का नमूना देखने के बाद हम वीरत्वविषयक वर्णन का नमूना देखना चाहते हैं। ऊपर के स्थान में जहां ब्राह्मणग्रंथों के वचन दिये हैं, वहां 'राजा, क्षत्रिय, वीर, शूर' आदि का वाचक (इन्द्र) पद आया है। इन्द्र के इस भाव का अब विचार करना है—

क्षत्रिय वीर इन्द्र।

अब हम क्षत्रिय पराक्रमी वीर इन्द्र का विचार करते हैं। इन्द्रदेवता के जो मन्त्र वेद में है, उन में उसके पराक्रम के मंत्र ही बहुत है। अर्थात् क्षत्र भाव इन्द्र में विशेष प्रकट है। शत्रु का हनन यह भाव इसमें मुख्य है। इस भाव के वाचक शब्द इन्द्र के नामों में ये हैं-

(असुरहा) असुरों का नाश करनेवाला, (अहिहा) अहि नामक शत्रु का वध करनेवाला, (दस्युहा) शत्रुओंका नाश करनेवाला, (वृत्रहा, वृत्रहन्ता) वृत्र का वध करनेवाला, (अघहन्ता) सब प्रकार से वैरियों का नाश करनेवाला, (विहन्ता) विशेष रीति से दुष्टों का वध करनेवाला, (सत्राहा) मित्रदल को इकट्ठा कर के शत्रु का नाश करनेवाला, (महावधः) बडी कत्तल करनेवाला, ये इन्द्र के वाचक शब्द शत्रुवध करने का उस का स्वभाव बताते हैं।

शत्रु का हमला होने पर उसको सहकर अपने स्थान में सुस्थिर रहने का भाव निम्नलिखित शब्दोंद्वारा व्यक्त होता है- (अभिमातिषाह, अभिमानिहा) शत्रु को सहना, (चर्षणीसहः) शत्रुसेना के आक्रमण को सहने-वाला, (जनं सह , नृषहः) जनताकी चढाईको सहने-वाला, (प्रसहः) विशेष प्रकारकी चढाई को सहनेवाला, (पृतनाषाह्) शत्रु की सेना के हमले को सहनेवाला, (तुराषाह्) त्वरा के साथ शत्रु के हमले को सहनेवाला,

(विश्वाषाह्) सब प्रकारके शत्रु को सहनेवाला, (सत्रा-षाह्) मिलकर अनेक शत्रु हमला करते हुए आ गये, तो उसको सहनेवाला, (प्राशुषाह्) अति शीघ्रता के साथ शत्रु के हमले को सहने की तैयारी करनेवाला, इन्द्र है। शत्रु को सहने का अर्थ अपनी वीरता से, अपने बल से, अपनी शक्ति से शत्रु के हमले को सहना है। शत्रु का हमला होने पर अपना स्थान न छोडना, अपने स्थान पर रहते हुए शत्रु को पराजय देकर भगा देने का नाम है, शत्रु को सहना। स्वयं शत्रु को सहना और स्वयं शत्रु को असह्य होना, यह द्विविध वैदिक युद्ध-कौशल्य है।

इस तरह शत्रु को असह्य बनने के लिये उत्तम वीर बनना आवश्यक है। यह भाव इन्द्रवाचक निम्नलिखित शब्दों में देखना उचित है- (सुवीरः) उत्तम वीर होना, (महावीरः, प्रवीरः, एकवीरः) सब से बडा वीर होना, बलवान् और वीर्यवान् होना, अजिंक्य वीर होना, (अभिवीरः, पुरुवीरः) सब प्रकार का वीरत्व अपने पास रखना, अपनी सेना में सब वीर ऐसे रखने कि, जो उक्त प्रकार वीर्य दिखा सकें, (वीरतरः वीरतम) वीरों में उत्तम वीर बनना, (अभिभूतरः) शत्रुका पराभव करना, विशेष प्रवीण बनना, (अवोजित्) रक्षणशक्ति के साथ शत्रु को जीतना (संसृष्टजित्, सत्राजित्, सजित्वानः) सब शत्रुओं को जीतनेवाला, विजय प्राप्त करने की शक्ति से युक्त, ये इन्द्रवाचक शब्द बताते हैं कि, इन्द्र किस तरह के वीर का नाम है।

(अपराजितः) कभी जो पराभूत नहीं होता, (धनंजयः) युद्ध में शत्रु के धन को जीतनेवाला, युद्ध में विजयी, (पूर्भित् पूर्भित्तमः) शत्रु के नगरों और कीलों का नाश करनेवाला, (पुरंदरः) शत्रु के नगरों का भेदन करके अन्दर प्रवेश करनेवाला, (अभिभूः) सब प्रकार से शत्रु का पराभव करनेवाला (अभीरुः, विभीषणः) जिस को स्वयं कभी भय नहीं होता, पर जो शत्रु को भयंकर मालूम होता है, (वीरयुः) जो वीरों को अपने पास रखता है, वीरों को वीरोचित कार्यों में जो लगाता रहता है, (आजिकृत् रणकृत्) जो युद्ध करने में परम कुशल है, (आजितुर) जो युद्ध में त्वरा से अपने कर्म करता है, अतः जो (आजिपतिः) युद्ध का स्वामी कहलाता है, ये इन्द्र के शब्द इन्द्र का रणकौशल्य बता रहे हैं।

(वाजिनीवसुः) सेना ही जिसका धन है, सेना को ही जो अपना धन मानता है, (महाव्रातः) बडे सेनासमुदायों को जो युद्धों में चलाता है, बडी से बडी सेना का संचालन करने में जो कभी प्रमाद नहीं करता, (सेना-नीः) जो बडी कुशलता से सेना को चलाता है, (बलविज्ञाय, सबलः) बल के लिये, चतुरंगबल के लिये जिसकी सर्वत्र प्रसिद्धि है, (सत्यशुष्मा) जिसका बल सत्य है, अर्थात सदा विजय पाने में निश्चित सामर्थ्य से जो युक्त है, जो (पुरोहितः, पुरःस्थाता, पुरएता) अपनी सेना के अग्रभाग में रहता है, तथा शत्रु के ऊपर हमला करने में जो सदा आगे बढता है।

(रथयुः, रथितमः) रथयुद्ध में जो प्रवीण है, जिसके पास बहुत रथ हैं, रथसेना के संचालन में जो प्रवीण है, (उरुक्रमः) शत्रुपर जो बडे आक्रमण करता है, (वृषरथ, सुखरथः) बैलोंके रथ और सुख देनेवाले रथ जिसके पास हैं, (रथेष्ठाः) रथपर जो रहता है, (बन्धुरेष्ठाः) रथमें विशेष स्थानपर जो बैठता है। ये शब्द इन्द्र का रथयुद्ध-कौशल बतानेवाले हैं।

(शवसः सूनुः, सहसः सूनुः) बलका पुत्र ये शब्द इसके असीम बलके सूचक हैं। (महाहस्ती) इस से उस के बडे हाथ, बडे बलवाले हाथ हैं, अथवा उसके पास बडे हाथी हैं, यह भाव व्यक्त होता है। (उग्र-धन्वा) बडे प्रखर मनुष्य को बर्तनेवाला, (इषुहस्तः) हाथ में बाण लेनेवाला, (वज्रहस्त, वज्रभृत्,) हाथ में वज्र लेनेवाला, वज्र का धारण करनेवाला, (वज्रबाहु, सुबाहुः, उग्रबाहुः, सुपाणिः) उत्तम बाहु, वज्र जैसे कठोर बाहु, बलवान् बाहु और हाथों से युक्त इंद्र है, (तिग्मायुधः) जिस के शस्त्र अति तीक्ष्ण हैं।

इस की शक्ति के विषय में निम्नलिखित शब्द देखिये- (अभिभूत्योजा) शत्रु का पराभव करनेवाला जिस का सामर्थ्य है, (अमितौजाः) जिस के बल की सीमा नहीं है, (असमात्योजाः धृष्णु-ओजाः) जिस का सामर्थ्य शत्रु का धर्षण करने में प्रकट होता है, (स्वधृत्योजाः, स्वौजाः, विश्वौजाः) सब प्रकार का सामर्थ्य जिस के

पास सदा तैयार रहता है। (बाहु-ओजाः) जिस का बाहुबल बहुत ही बडा है। (सहस्वान्, तवीयान्) जिस का बल बडा है। ये शब्द इन्द्र का बल बता रहे है। (पुरुवर्पा) शब्द उस का शरीर विशाल है, यह भाव बताता है। यह भी उस के बडे सामर्थ्य का सूचक है।

(हरिप्राः) इन्द्र घोडेपर सवार होता है, (पर्वतेष्ठाः) पर्वतपर अथवा पर्वत के कीले में रहकर शत्रु से लडता है, वह ऐसा युद्ध करता है कि इस का युद्धकौशल देखकर शत्रु भी इसकी प्रशंसा करते है, यह भाव (अरि-ष्टुत) इस शब्दसे व्यक्त होता है।

(पुरुमायः) वह शत्रुके साथ लडनेमें कपट भी करता है, (वामनीतिः) वह शत्रु के साथ (सुनीतिः, सुनीथ) अच्छी नीति भी बरतता है और बुरी भी। (शतनीथ, सहस्रनीथः) सैकडों और सहस्रों प्रकार की युक्तियां उस के पास रहती हैं, इसलिए वह (अच्युत, अनपच्युत) अपने स्थानसे च्युत नहीं होता, (दुश्च्यवनः) उसको अपने स्थानसे भ्रष्ट करना अशक्य है, पर वह ऐसा है कि, वह दूसरे बडे बडे शत्रुओंको (अच्युतच्युत्) उनके स्थानों से हटा देता है, जो अपने स्थानोंपर स्थिर हुए शत्रु है, उनको परास्त करके हटा देता है, (अदब्धा, अदाभ्यः) वह शत्रुओंसे कभी न डरनेवाला है, कभी न दबनेवाला और कभी दबाया न जानेवाला है। (सचेताः, प्रचेताः, विचेता, सहस्रचेताः) वह अनन्त प्रकार की कुशल बुद्धियोंसे युक्त है, इसलिए अपने बल को शत्रुके नाश करने में उत्तम रीतिसे लगाता है और विजय प्राप्त करता है।

इंद्र (प्रमति) विशेष बुद्धिमान् है, (विप्रतम, कवितम) विशेष ज्ञानी, (सुवेदा, सुविद्वान्) उत्तम ज्ञानी है, (सुमनाः) उत्तम मनवाला है, (अजातशत्रु, अशत्रुः) स्वयं किसी की शत्रुता नहीं करता, (विश्वतो-धीः) उस की बुद्धि चारों ओर पहुचनेवाली है, सब ओर वह खुली आंखों से देखता है, अतएव किसी शत्रु के द्वारा (अनाधृष्यः, अधृष्य) उस का पराभव या धर्षण नहीं होता, अतः (अप्रतिधृष्टशवाः) उसको सदा विजयी बलवाला कहा गया जाता है।

इंद्र [एकराट्, सम्राट्, स्वराट्] उत्तम राजा है, ऐसा कहते है। (नृपाता) मानवों की रक्षा वह उत्तम रीति से करता है। उसको (उर्वरापतिः) भूमि का सच्चा पालन करनेहारा कहते है। (गणपतिः) सब गणों का पालन करता है। एक एक कार्य करनेवालों के संघों को गण कहते है। इन गणों का उत्तम रीति से पालन इंद्र करता है, क्योंकि (कारुधायाः) कारीगरों का पोषण करने का कार्य वह करता है। कारीगरों के पोषण से राष्ट्र मे सुस्थिति रहती है। (नृपतिः, विशस्पतिः, विश्पतिः) मानवों की पालना वह करता है, (मित्रपति, सत्पति) सज्जनो का पालन करता है, मित्रजनों का, मित्रदलों का पालन करता है, (रयिपति, रायस्पति, वसुपति) वह धन का पालन और संग्रह करता है। यह इंद्र (गोपाः, शुचिपाः, व्रतपाः, चर्षणिप्राः, संवनन) अर्थात् सब प्रजाओं का, पशुओं का, प्रजा के सब कर्मों का रक्षण करता है, इस से उस के राष्ट्र का उदय होता है। (प्राविता) इसीलिये उसको सच्चा रक्षक कहते हैं और यह रक्षण वह (शवसस्पतिः) सब के बल का रक्षण करता हुआ करता है। यही उस की बुद्धिमत्ता है।

इंद्र का पशुपालनरूप कर्तव्य बतानेवाले शब्द ये है- (संभृताश्व) उत्तम अश्वों को पास रखनेवाला, (स्वश्वः) उत्तम घोडे जिस के पास हैं, (हर्यश्वः) शीघ्रगामी घोडे जिस के पास है, अथवा हरिद्वर्ण घोडे जिस के पास हैं, (स्वश्वयु) उत्तम घोडे जिस के रथ को जोडे जाते है, (अश्वपति) जो घोडों की पालना उत्तम करता है, (गवां पति, गोपतिः) गोपालन करता है, (गव्युः, भूरिगुः) जिस के पास बहुत गौवें रहती है, (शचिगु, अध्रिगु) जो उत्तम गौवो से युक्त है। ये शब्द इंद्र के पशुपालन का भाव बता रहे है।

प्रजाजनों के लिये उस की रक्षा कैसी मिलती है, वह बात निम्नलिखित इन्द्रवाचक शब्दों से ज्ञात होती है, (अक्षितोतिः) जिस का संरक्षण का सामर्थ्य कभी कम नहीं होता, (ऊर्वी-ऊतिः) जिस की रक्षण करने की शक्ति बडी भारी है, (शतमूतिः, सहस्रोतिः) सैकडों और हजारों साधनों से जो प्रजा की रक्षा करता है, (भद्रकृत्) वह सब का कल्याण करता है।

उसकी शक्ति [अपारः] अपार है, पर वह सुगमता से

शत्रु के (सुपारः) पार होता है।

इस तरह इन्द्र के वाचक, गुणबोधक अनेक शब्द हैं, जो वेदमंत्रों में प्रयुक्त हुए हैं और इन्द्र के गुण, कर्म, स्वभाव बताते हैं। इन्द्र राजा, वीर, शूर, बली, विजयी है और उसका शासन प्रजा का कल्याण करनेवाला है, इत्यादि भाव इन शब्दों से स्पष्ट प्रतीत होते हैं।

यदि पाठक इन्द्र के वर्णन के सब पदों का इस तरह अभ्यास करेंगे, तो इन्द्र का स्वरूप सहजी से ज्ञात हो सकता है। और इन्द्र के मन्त्रोंद्वारा शौर्यवीर्यादि गुणों का संवर्धन करने का जो कार्य वेद को अभीष्ट है वह भी पाठकोंके अन्त करणमें प्रकट हो सकता है।

जो इन्द्र के पराक्रम इन शब्दोंद्वारा प्रकट हुए हैं, उनका वर्णन पाठक अब मन्त्रोंद्वारा देखें। अब हम ऐसे मन्त्र देते हैं, जिनमें पूर्वोक्त स्थान में जो इन्द्र के गुण शब्दोंद्वारा प्रकट हुए हैं, वे ही मन्त्रों के वर्णनों से प्रकट होंगे।

आर्य के लिये प्रकाश दो।

धिष्वा शव शूर येन वृत्रमवाभिनद् दानुमौर्णवाभम्। अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥ सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून्। अस्मभ्यं तत् त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥ (१११८-१९ ऋ० २-११-१८।१९)

हे शूर इन्द्र! (शवः धिष्व) तू बल धारण कर (येन वृत्रं दानु अवाभिनत्) जिससे शत्रु का नाश हो जाय। (आर्याय ज्योतिः अपावृणोः) आर्य के लिये प्रकाश की ज्योति बताओ। (सव्यतः दस्यु नि सादि) सीधी ओर शत्रु को दबा दो।

(ये ते ऊतिभिः तरन्त) जो तेरी रक्षाओं से शत्रु के पार हो जाते हैं। (आर्येण विश्वा स्पृधः दस्यून्) आर्य के द्वारा स्पर्धा करनेवाले दस्युओं का नाश करता है। (अस्मभ्यं) हम सब के लिये उस विश्वरूपी त्वष्टृपुत्र का नाश कर। शत्रु का पूर्णता से नाश कर।

यहां (आर्याय ज्योतिः अपावृणोः) आर्यों के लिये प्रकाश कर, ऐसा स्पष्ट कहा है। आर्यों का मार्ग विश्वभरमें खुला रहे, किसी स्थान पर आर्यों को रोकटोक या प्रतिबंध न हो, यही यहां तात्पर्य है। आर्य सर्वत्र विजयी होते हुए अपनी और विश्व की उन्नति करते जांय, यही यहां तात्पर्य है।

धार्मिकों का हितकर्ता।

अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः। वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षत स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ॥ (७५३ ऋ० १।५१।९)

(अनुव्रताय) धर्मव्रत का पालन करनेवालोंका हित करनेके लिए (अपव्रतान् रन्धयन्) व्रतहीनोंका नाश करता हुआ इन्द्र (आ-भूभि) उपासकों के साथ रहकर (अन-आभुवः श्नथयन्) अभक्तों का नाश करता है। (वृद्धस्य चित् वर्धतः) इन्द्र प्रथम से ही बढा है पर वह और भी बढता भी है और (द्यां इनक्षत) द्युलोक तक पहुंचता है। ऐसे इन्द्र की (स्तवानः) स्तुति करनेवाला (वम्रः संदिहः विजघान) संदेह दूर करता है, अर्थात् इन्द्र का महत्त्व जानता है।

यहां (अनुव्रत) और (अपव्रत) ये दो शब्द बडे बोधप्रद हैं। धर्मानुकूल चलनेवाले अनुव्रत कहलाते हैं और अधर्म में प्रवृत्ति होना अपव्रतियोंका लक्षण है। इन्द्र का यहां कर्तव्य है कि वह अधार्मिकों का नाश करे और धार्मिक सत्यव्रतियों की उन्नति करने में सहायक हो।

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। (गीता ४।८)

यह वचन इस मन्त्रके साथ देखनेसे बडा बोध मिलता है।

पंचजनों का रक्षक।

विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम्। षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृश परि परो अभवः सास्युक्थ्य (११४६ ऋ २।१३।१०)

सबने इसके बल की वृद्धि की है। इसके पराक्रम के लिए सबने धन दिया है। पृथ्वी के (षट् विष्टिरः अस्तभ्नाः) छः भाग स्थिर किए हैं। (पञ्च संदृशः) पंच जनों का विजय करनेवाला तू ही है, अतः तू (उक्थ्य असि) प्रशंसनीय हो। तथा-

आ यस्मिन् हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः। आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोः आध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥ (१९६३ ऋ० ६।२९।२)

(यस्मिन् हस्ते) जिस इन्द्र के जिस हाथ में (नर्या मिमिक्षु) मनुष्यों के हितके लिए ही सब धन है और जो सुवर्ण के रथमें बैठकर सब को धन देता है, जिसके (स्थूरयोः) स्थूल हाथ में रथके लगाम है, जो अपने रथको घोडे जोतता है और जो घोडे सरल मार्ग से चलते है। वह इन्द्र है। तथा–

एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु। तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥

(१७१५ ऋ० ५।३२।११)

इंद्र ही एक (सत्पति) सब का उत्तम पालनकर्ता है और (पाञ्चजन्यं) पञ्चजनों का हित करनेवाला है; तू हि (जनेषु) लोगों में यशस्वी है, ऐसा मै (शृणोमि) सुनता हूं। उपासक लोग दिनरात तेरा ही स्वीकार करें। तथा–

लोकहितार्थ युद्ध।

स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः। अधा चन श्रद् दधाति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥

(८०१ ऋ १।५५।५)

(स युध्मः) वह इद्र बडा योद्धा है, वह (जनेभ्यः) जनों के हित के लिये (ओजसा महानि समिथानि कृणोति) अपने सामर्थ्य से बडे युद्ध करता है। अतः सब लोग (वधं वज्रं निघनिघ्नते) शत्रु पर मारक शस्त्र का प्रहार करनेवाले (त्विषीमते इन्द्राय) तेजस्वी इद्र के विषय में (श्रद् दधति) श्रद्धा रखते है।

सब जनता के हित करने के लिये युद्ध किया जावे, यह सूचना यहां मिलती है। जनता के हित करने के लिये क्या करना चाहिये, इस का दर्शन अगले मन्त्र में पाठक करें–

दस्युको दण्ड और आर्योंकी उन्नति करो।

वि जानीहि आर्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रंधया शासदव्रतान्। शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन।

(७५२ ऋ० १-५१-८)

हे इन्द्र! (आर्यान् विजानीहि) आर्य कौन हैं, यह तू जान, और (ये च दस्यवः) जो दस्यु या शत्रु हैं, उनको भी तू जान। (बर्हिष्मते) यज्ञकर्ता के हित के लिये (अव्रतान् शासत्) व्रतहीन शत्रुओं को दण्ड देकर (रन्धय) नष्टभ्रष्ट कर। (शाकी भव) समर्थ होकर रह (यजमानस्य चोदिता) यजमान को प्रेरणा दे। (सध-मादेषु) साथ साथ मिलजुल कर जहां सत्कर्म किये जाते हैं, ऐसे यज्ञोमें (ते ता विश्वा इत्) तेरे वे सब सत्कर्म प्रशंसा-योग्य होते है।

शत्रु को दण्ड देना और सज्जनों की उन्नति करना ही राजा का कर्तव्य इस मन्त्र से प्रकट होता है। प्रजा के रक्षण करने के लिये क्षत्रिय को सदैव तत्पर रहना चाहिये, यह सूचना अगला मंत्र देता है—

रक्षण के लिये खडा रहो।

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो। सं अन्येषु ब्रवावहै ॥ (७०४ ऋ० १-३०-६)

हे शतक्रतो! (अस्मिन् वाजे) इस युद्ध में (नः ऊतये) हमारा रक्षण करने के लिये (ऊर्ध्वः तिष्ठ) युद्धमें सुसज्ज होकर खडा रह। (अन्येषु सं ब्रवावहै) अन्य प्रसगों में हम मिलकर बात करेगे कि, वहां क्या करना चाहिये।

आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः। वाजेभिरुप नो हवम्। (७०६ ऋ० १।३०।८)

(यदि श्रवत्) यदि इन्द्रने हमारी पुकार सुनी, तो वह (सहस्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः) सहस्रों सामर्थ्यों और बलों के साथ (नः हवं) हमारी पुकार के स्थान के प्रति (आगमत्) अवश्य दौडते हुए आ जायगा।

यहां (वाजे ऊर्ध्वः तिष्ठ) युद्ध में उठकर खडा रह, ऐसा कहा है। राष्ट्र में क्षत्रियों को प्रजारक्षणार्थ ऐसा ही खडा रहना चाहिये। दुष्टों का नाश करने के विषय में वेद का आदेश स्पष्ट है—

दुष्टों का नाश कर।

उद् वृह रक्षः सहमूलं इंद्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि। आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥ (१२५४ ऋ० ३।३०।१७)

हे इन्द्र! (रक्षः) राक्षसोंको जडके साथ (उद् वृह) उखाड दो, (मध्यं वृश्च) उनका मध्य काट दो और (अग्रं

प्रति श्रणीहि) उनका अन्तभाग काट दो। (कीवतः सललूकं आचकर्थ) दुष्टोंको दूर कर और ज्ञान का द्वेष करनेवाले दुष्टपर तपा शस्त्र (अस्य) फेंक।

यह मन्त्र दुष्टोंको उखाड देनेके लिये विशेष स्पष्टतापूर्वक उपदेश देता है। वृत्र शत्रु का नाम है। इन्द्रसे वृत्र का वैर प्रसिद्ध है। इस वृत्र का वध इन्द्रने किया है। इस वर्णनके सैकडों मंत्र वेदमें हैं। उनमेसे कुछ देखिये —

वृत्रवध।

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जह्वे महावीरं तुविबाधं ऋजीषम्। नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इंद्रशत्रुः॥ अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रं अधि सानौ जघान। वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः॥ [७२०-२१, ऋ० १।३२।६-७]

[अ-योद्धा इव] अब मेरे साथ युद्ध करनेयोग्य कोई नहीं रहा, ऐसा माननेवाला वह [दुर्मदः] दुष्टबुद्धि शत्रु [महावीर] बडे शूर [तुविबाधं] बहुतोंका पराभव करनेवाले [ऋजीष] अदम्य इन्द्रको [आजह्वे] अपने सम्मुख आह्वान करने लगा। परन्तु वह [इन्द्रशत्रु] इन्द्र का शत्रु [वधानां समृतिं न अतारीत्] इन्द्रके शस्त्रके घावों को सहन न कर सका। अन्तमें [रुजानाः सं पिपिषे] छिन्नभिन्न होकर चूर्ण हुआ।

पश्चात् उस [अ पाद-हस्तः] पांव और हाथसे विहीन [अ-पृतन्यत्] सेनारहित वृत्रने [इन्द्रं वज्रं अधि सानौ जघान] इंद्रपर उसकी गर्दनमें शस्त्र मारा, पर [वध्रिः वृष्णो प्रतिमानं बुभूषन्] नपूंसक का सामना जैसा वीर्यवान्‌से होता है, वैसी उसकी अवस्था हुई और [पुरुत्रा व्यस्तः] अनेक स्थानोंमें फेंका जाकर [अशयत्] गिर पडा।

तथा और देखिये—

वज्रको नचाया।

त्वं गोत्रं अङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित्। ससेन चिद् विमदायावहो वसु आजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन्॥ [७४७; ऋ० १।५१।३]

हे इन्द्र! तूने अंगिरोंके लिये [गोत्रं अप अवृणोः] गौके स्थान को खुला कर दिया, अत्रि के लिये [शतदुरेषु गातुवित्] सौ द्वारोंवाले स्थानसे गमनका मार्ग बताया, विमद के लिये [ससेन वसु अवहः] धान्यके द्वारा धन दिया और वावसान के लिये [अद्रिं नर्तयन्] अपने वज्र को नचाया, अर्थात् वज्र से शत्रुको मारा। तथा—

युवं तमिंद्रा पर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम्। दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत्। अस्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः [१०३२ ऋ० १।१३२।६]

[पुरोयुधा] आगे होकर युद्ध करनेवाले तुम [यः नः पृतन्यात्] जो हमपर सैन्यसे चढाई करे, उसका वध करो, उसका [वज्रेण त हत] वज्रसे वध करो। [दूरे चत्ताय] दूर रहनेवाले पर भी जो वज्र हमला करता है वह गहन स्थान में भी जा सकता है। [अस्माकं शत्रून्] हमारे शत्रुओंको [विश्वतः परि] चारों ओरसे घेरो और [विश्वत दर्मा दर्षीष्ट] चारों ओरसे विदारण करो।

सेना लकर हमपर हमला करनेवाला तथा अन्य प्रकार से सतानेवाला ये सब शत्रु ही है और शत्रु को दूर करना ही इन्द्र का कर्तव्य है। क्योंकि शत्रु वध्यही है—

शत्रु वध्य हैं।

इंद्र दृह्य यामकोशा अभूवन् यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः। दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः [१२५२, ऋ० ३।३०।१५]

हे इन्द्र! [दृह्य] प्रबल बन। [याम-कोशा अभूवन्] कोशोंको प्रतिबंध हो रहा है। [यज्ञाय गृणते सखिभ्य] यज्ञकर्म, उपासना और मित्रोंको [शिक्ष] शिक्षा दे। [दुःमायव] दुष्ट, कपटी, [दुः एवा] दुश्चरित्र, [निषङ्गिण मर्त्यास रिपवः] तर्कस लिये शत्रुरूप मानव है, वे [हन्त्वास] हनन करनेयोग्य है।

शस्त्रास्त्र लिये शत्रु हमारे चारों ओर खडे है, उनका वध होनेके विना मानवों को सुख प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये शत्रुको दूर करना योग्य है—

स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि। अहन्निंद्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः। अस्मत्रा ते सध्र्यक् संतु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः॥ [१०२९, ऋ० १।१३२।२]

[स्वर्जेषे] सुख देनेवाले युद्धमें [उषर्बुधः] प्रातःकालमें जाग्रत होनेवाले वीर! आक्रमण करनेवाले शत्रुको तू पराजित करता है। और उसका वध करता है। [त रातयः असत्रा भद्रयक] तेरे दान हमारे पास इकट्ठे हों, तेरे दान कल्याण-कारक हों।

शत्रुको परास्त करके विजय संपादन करना आवश्यक है इस विषयमें देखिये—

युद्धोंमें विजयी।

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयाम शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये। [१२, ऋ० ११४।९]

धनोंकी हमें प्राप्ति होनेके लिये, हे सैकडों कर्म करने-वाले इन्द्र! [वाजेषु] युद्धोंमें [त्वा वाजिन वाजयाम.] युद्धोंमें लडनेवाले तुझ वीर को बढाते है. [बलिष्ठ करते है, युद्धमें भेजते है।]

सैकडों पराक्रम करनेवाले वीरको शतक्रतु कहते है। युद्धों-में अपने नेता वीरका बल बढानेयोग्य कर्म उसके अनुया-यिकोंको करने चाहिये। कभी ऐसा कर्म करना नही चाहिये, जिससे अपने नेताकी शक्ति कम या क्षीण हो। तथा—

शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्व-सद्भिः धनानि। स नो हिरण्यरथं दंसनावान् त्स नः सनिता सनये स नोऽदात्॥
[७१४, ऋ०१।३०।१६]

इन्द्रने [पोप्रुथद्भिः] स्फुरण जिनमें दीखता है, [नानदद्भिः] जो हिनहिनाते हैं, [शाश्वसद्भिः] जिनका जोरसे श्वासो-च्छ्वास हो रहा है, ऐसे घोडोंके साथ [धनानि जिगाय] धन देनेवाले युद्धोंमें विजय प्राप्त किया। उसने [नः हिरण्य-रथ दंसनावान्] हमें सुवर्णका रथ दिया, और उसने हमें [सनये अदात्] दान कर दिया।

इन्द्र युद्धोमे हिनहिनानेवाले घोडोंके साथ जाता है और विजय प्राप्त करता है। तथा—

कपटी शत्रुका नाश।

गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु अपीवृतं मायिनं क्षियन्तम्। उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसं अहन्नहिं शूर वीर्येण॥ [११०५; ऋ०२।११।५]

[गुहा हित] गुहामें रहनेवाले, [गुह्यं] गुप्त [अप्सु गूळ्हं] पानीमें गुप्त रहनेवाले [अपीवृतं मायिनं] कपटी शत्रुको [क्षियन्तं] अपने कीलेमें रखनेवाले [द्यां अप. तस्तभ्वांसं] जलोंको बंद करनेवाले [अहिं] शत्रुको अपने [वीर्येण अहन्] पराक्रमसे नष्ट कर दिया है।

शत्रु जलको प्रतिबंधमें रखता है, क्योंकि जल न मिलनेसे सैनिक हैरान होते हैं और शीघ्र वश होते हैं। आजभी युद्धमें यही हम देखते है। जल जिसके पास है, वह जिसके पास जल नहीं है उसको, अपने काबू करता है। वही हम इन्द्र और वृत्रके युद्धमें देखते है। वृत्र प्रथम जलपर कबजा करता है, इस कारण इन्द्रके अनुयायी हराण होते हैं, पश्चात् इन्द्र शत्रुका वध करके जलके स्रोत खुले करता है, तब जनता आनंदित होती है। इन्द्र-वृत्रके युद्धमें यह वर्णन स्थानस्थानपर है—

जल सुप्राप्य करना।

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन् निरुद्धा आपः पणिनेव गावः। अपां बिलं अपिहितं यदासीत् वृत्रं जघन्वां अप तद्ववार। [७२५; ऋ० १।३२।११]

[दास-पत्नी. अहिगोपा आप. अतिष्ठन्] दास शत्रुने अपने आधीन किये जल [निरुद्धाः] रोके हुए थे, जैसे [पणिना इव गावः] बनिया गौवोंको रोकता है। इन जलोका द्वार [अपिहितं आसीत्] ढका हुआ था। पर इन्द्रने [वृत्रं जघन्वान्] वृत्रको मारा और [तत् अप ववार] वह द्वार खोल दिया।

शत्रुने जलको अपने अधीन किया था, उस शत्रुको परास्त करके जल सबको मिलनेयोग्य खुला कर दिया। यह युद्धनीति है। युद्ध्यमान एक पक्ष दूसरेका जल बंद करता है, जिससे उसके सैनिक जलके विना तडपने लगते है। फिर वह इस शत्रुको परास्त करता और जलको सुप्राप्य बनाता है। इसी तरह अन्न, वस्त्र, तथा स्थानके विषयमें जानना योग्य है।

जेता नृभिः इंद्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमा-नस्य कारोः। प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यंता गिरो यदि च त्मना भूत्॥ [१०५८, ऋ०१।१७८।३]

[शूरः इन्द्रः] शूर इन्द्र [नृभिः] अपने वीरोंके साथ [पृत्सु] युद्धोंमें [जेता] विजय करता है। [नाधमानस्य कारोः

इवं श्रोता] नाथ होनेकी इच्छा करनेवाले कारीगरका कहना सुनता है। [दाशुषः रथ उपाके प्रभर्ता] दाताके रथ को वित्तके पास पहुंचाता है । [यदि त्मना भूत] यदि उसमें इच्छा हुई, तो वह [गिरः उद्यन्ता] वाणियों को भी प्रेरणा करता है।

वीर अपने अनुयायियोंको युद्धमें जानेकी प्रेरणा करता है। इसकी प्रेरणासे प्रेरित हुए वीर युद्ध करते और वीजयी होते हैं।

शत्रुको जंजिरोंसे बांधकर कारागारमें रखना।

स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः। येन शुष्णं मायिनं आयसो मदे दुध्र आभृषु रामयन्नि दामनि॥ [८०१; ऋ०१।५६।३]

[सः] इन्द्र[तुर्-वनिः] त्वरासे कार्य करता है, इसलिये [महान्] बडा है। उसका [तुजा शवः अरेणु] हिंसक बल निर्मल है, स्वच्छ है, वह [पौंस्ये] पौरुष दिखानेके युद्धमें [गिरेः भृष्टिः न भ्राजते] पर्वतके शिखरके समान चमकता है। [मदे] आनन्दमें [दुध्र] रहता हुआ वह इन्द्र [मायिनं शुष्णं] कपटी शोषक शत्रुको [आयसः आभृषु दामनि] लोहेके कारागृहमें जंजिरोंसे [नि रामयन्] रख देता है।

शत्रु जब पकडा जाता है, तब उसको प्रतिबंधमें रखना योग्य ही है—

फौलादका तीक्ष्ण वज्र।

त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शंबरं भिनत्। यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषत् शितां गभस्ति अशनिं पृतन्यसि। [८८९; ऋ०१।५४।४]

[मन्दिना धृषत्] आनन्ददायक सामसे उत्साहयुक्त बना हुआ [शितां गभस्ति अशनिं] तीक्ष्ण वज्रको हाथमें लेकर [मायिनः पृतन्यसि] कपटी शत्रुसे जिस समय तू युद्ध करता है, उस समय [बृहतः दिवः सानु कोपय.] बडे द्युलोक के शिखरको तू हिला देता है और शंबर राक्षस को अपने बलसे [अव भिनत] छिन्न भिन्न करता है।

शत्रुके शस्त्रास्त्रोंकी अपेक्षा अपने शस्त्र अधिक प्रखर रहने चाहिये। तब नि संदेह विजय होता है । इन्द्रका मुख्य शस्त्र वज्र है। यह फौलाद का अति तीक्ष्ण शस्त्र है। इन्द्रके पास अन्य भी अस्त्र बहुत होते है । शत्रुसे ये शस्त्रास्त्र अच्छे होते हैं, इसलिये इन्द्र विजयी होता है—

जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतो इन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः। अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसं अधारयो दिव्या सूर्यं दृशे॥ [८६०,ऋ० १।५२।८]

हे [संभृतक्रतो इन्द्र] संपूर्ण बलासे युक्त इन्द्र ! [मनुषे अपः गातुयन्] मानवोंकी ओर जलके प्रवाह भेजनेके लिये [हरिभिः वृत्र जघन्वां] घोडोंको साथ लेकर तूने वृत्रको मार डाला, उस समय तूने [आयसं वज्र अधारयः] फौलादका वज्र धारण किया था और [दिवि दृशे सूर्य] आकाशमें सर्वत्र प्रकाश होनेके लिये सूर्यको स्थापन किया था।

इन्द्र कपटी शत्रुओंसे कपट करता है, सीधे शत्रुओंसे सीधा बर्ताव करता है। कपटी शत्रुओंके कपटजालमें कभी फंसता नही। यह यहाँ विशेष रीतिसे देखना चाहिये।

कपट करनेवालोंसे कपट।

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत। त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येषु आविथ॥

[८८९। ऋ०१।५१।५]

हे इन्द्र ! जो [स्वधाभिः शुप्ता अधि अजुह्वत] जो अपने ही मुखमें अन्नोंका हवन करते है अर्थात जो स्वयं भोग भोगते है, उन [मायिनः] कपटियोंको तूने [मायाभि अप अधमः] कपटोंसेही नीचे गिराया, [त्वं नृमण. पिप्रो पुर प्रारुजः]तूने धनेच्छु पिप्रु नामक शत्रुके नगरोंको तोड दिया, और तूने [ऋजिश्वान] ऋजिश्वाको [दस्युहत्येषु प्राविथ] शत्रुओंका वध करनेके समयमें बचाया।

[मायाभिः मायिनः अप अधमः] कपटोंसे कपटी शत्रुओंको दबाना योग्य है। सर्वत्र यही न्याय है, जो वेदने बताया है। शत्रुके नगर, कीले, देश आदि जलाना, तोडना नष्ट करना, यह भी एक युद्ध की नीति ही है, देखिये—

शत्रुओंके नगर फोड डाले।

अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत्। सं वज्रेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिं अतिरच्छाशदानः। [८८२, ऋ०१।३३।१३]

[अस्य सिध्मः शत्रून् अभि अजिगात्] इस इन्द्रका यशस्वी वज्र शत्रुपर जा गिरा, इसने [तिग्मेन पुरः विभेत्] तीक्ष्ण शस्त्रसे नगरोंको तोड डाला। इन्द्रने [वृत्र वज्रेण स असृजत्] वृत्रपर वज्र फेंक दिया और [शाशदानः स्वां

मर्ति अतिरत्] प्रशंसित हुआ, वह इन्द्र अपनी बुद्धिके अनुसार विजयको प्राप्त कर सकता है।

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधी तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी । त्वं शता वंगृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्विना॥ [७८१; ऋ० १।५३।८]

अतिथिग्व राजाके तेजस्वी चक्रसे तू करज और पर्णय शत्रुओंका वध किया व ऋजिश्वाने घेर हुए [शता पुरः अभिनत्] शत्रुके सौ कीलो अथवा नगरोंको तोड दिया।

आ यद्धरी इंद्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात्। येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान् पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः॥ [८८६; ऋ० १।६३।२]

[यत्, जब हे इन्द्र ! तेरे [हरी] घोडे [विव्रता वेः] इधर, उधर भटकते थे, उनको तूने [आ] पास लाकर रथको जोड दिया, तब [ते बाह्वोः वज्रं] तेरे बाहुमें वज्र [जरिता आधात्] स्तोताने रख दिया। हे [अ-वि-हर्यत क्रतो] हे अजिंक्य वीर ! हे [पुरुहूत] बहुतों द्वारा प्रशंसित ! तू [अमित्रान् पूर्वीः पुरः] शत्रुओंको और उनके बहुतसे नगरोंको [इष्णासि] नाश करनेकी इच्छा करता है।

शत्रुके सैंकडों कीलोंका नाश।

अध्वर्यवो यः शतं शंबरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः। यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद् भरता सोममस्मै॥ [११५५; ऋ०२।१४।६]

जिसने शबरके [शतं पुरः बिभेद] सौ कीले तोड दिये, [शत सहस्र अपावत्] जिसने लाखो सैनिकोंका नाश किया, उस इन्द्रको सोम अर्पण करो।

न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि श्रृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिंद्र। यावत्तरो मघवन् यावदोजो वज्रेण शत्रुं अवधीः पृतन्युम्॥ [७८०; ऋ० १।३३।१२]

[इलिबिशस्य दृळहा न्याविध्यत] शत्रुके सुदृढ कीलोंको तोड दिया। [श्रृंगिण शुष्ण वि अभिनत्] सींगवाले शुष्ण को छिन्नभिन्न किया। हे इन्द्र! त्वरासे और बलसे तूने [पृतन्य शत्रु वज्रेण अवधीः] युद्धकी इच्छा करनेवाले शत्रुका वज्रसे वध किया।

प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरंदरः। याभिः काण्वस्योप बर्हिरासदं यासद् वज्री भिनत्पुरः॥ [९४; ऋ०८।१।८]

उसके लिये गायत्र सामका गायन करो, जो [पुरंदरः] शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला सबको पूज्य है, जो कण्वके यज्ञमें जाता है और जो वज्रधारी [पुरः भिनत्] शत्रुके कीले तोडता है।

शत्रुके कीले अथवा नगर जलाकर, तोड कर जो शत्रुका नाश करता है वह वीर इन्द्र है। कण्व नाम ज्ञानी का है।

पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत। इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः॥ [७३; ऋ०१।११।४]

इन्द्र [पुरां भिन्दु] शत्रुके कीलोंका या नगरोंका भेदन करनेवाला, [युवा कवि] तरुण कवि, [अमित ओजा] अत्यत बलवान् [वज्री] वज्रादि शस्त्र धारण करनेवाला, [विश्वस्य कर्मणो धर्ता] सब कर्मोंका धारण करनेवाला अर्थात् सब कर्मोंको निभानेवाला होनेके कारण [पुरुष्टुतः] अनेकों द्वारा प्रशंसित [अजायत] हुआ है।

इस तरह के शूरत्व के कारण वह सर्वत्र प्रसिद्ध है।

वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते। वृह माया अनानतः॥ [२०६८; ऋ०६।४५।९]

हे वज्रधारी शचीपते इन्द्र ! शत्रुके [दृळहानि] सदृढ कीले भी [विवृह] तोड दो।

बनावटी कीलोंका नाश।

स हि श्रवस्यु सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन्। ज्योतींषि कृण्वन्नवृकानि यज्यवेऽव सुक्रतु सर्तवा अपः सृजत॥ [८०२; ऋ०१।५५।६]

[स श्रवस्युः] वह कीर्तिकी इच्छा करनेवाला इन्द्र [ओजसा वृधानः] अपने पराक्रमसे बढनेवाला [क्ष्मया कृत्रिमा सदनानि] शत्रुके भूमिके साथ रहनेवाले बनावटी कीलोंका [विनाशयत] नाश करता है। [यज्यवे] याजकके हित के लिये [अवृकाणि ज्योतींषि कृण्वन्] तेजोंको खुला करनेवाला वह [सक्रतुः] उत्तम कर्म करनेवाला इन्द्र [अपः सर्तवै अव सृजत] जलोंको प्रवाह बननेके लिये उत्पन्न करता है।

बनावटी कीले वे होते है [कृत्रिमा सदना] कि जो सेना अपनी रक्षार्थ थोडेसे परिश्रमसे तैयार करती है। ये भी इन्द्र तोडता है और शत्रुको परास्त करता है।

बीस राजोंसे युद्ध।

त्वमेतान् जनराज्ञो द्विर्दशाऽबंधुना सुश्रवसोपजग्मुषः। षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक्॥ [७८३; ऋ० १।५३।९]

[अबन्धुना] सहायता के विना [सुश्रवसा] सुश्रव अर्थात् कीर्तिमान् राजाने जिन [द्विः दश जनराज्ञ] बीस जनराजोंके ऊपर हमला किया था, उनके ६००९९ रथोंसे युक्त दुर्धर्ष सेनाको अपने चक्रसे तूने [नि वृणक] नष्ट कर दिया।

सेनामें ६००९९ रथों के लिये छः लाख सैनिक आवश्यक हैं। इतनी बडी सेनाके साथ यह युद्ध हुआ, ऐसा वर्णन यहां है। यह वर्णन काल्पनिक या रूपकभी माना जाय, तो भी बडी सेनाका संचालन यहां दीखता है, वह विचार के योग्य है।

इन्द्रके रथके घोडे।

आ द्वाभ्यां हरिभ्यां इंद्र याहि आ चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः। आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥ ४ ॥ आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः। आपञ्चाशता सुरथेभिरिंद्रा ऽऽ षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥ ५ ॥ आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमान। अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इंद्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥ ६ ॥

[११९३--९५; ऋ०२।१८।४-६]

हे इन्द्र! दो, चार, छः, आठ, दस, वीस, तीस, चालीस, पचास, साठ, सत्तर, अस्सी, नव्वे, अथवा सौ घोडों को जोते हुए रथमें बैठकर यहां आ और इस सोमका ग्रहण करो।

इन्द्रके घोडोंका यह वर्णन है। इस समय राष्ट्रपतिका जलूस पचास या साठ घोडोंके रथमें बिठलाकर निकालनेका वर्णन देखते हैं। इससे १०० घोडोंके रथमें इन्द्रका जलूस निकालना, विजयी वीरका जलूस ऐसा बडा निकालना संभव तो हो सकता है। इसमें कोई अत्युक्ति प्रतीत नहीं होती।

शिरस्त्राण धारण करनेवाला इन्द्र।

इंद्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रतस्तुविकूर्मिर्ऋघावान्। यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु क्व त्या ते वृषभ वीर्याणि॥ त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतानि एको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः। तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥

[१२६०-६१; ऋ०३।३०।३-४]

हे [वृषभ] बलवान् इन्द्र! तू [सु-शिप्रः] उत्तम शिरस्त्राण धारण किया हुआ, [मघ-वा] धनवान् [तरुत्रः] त्वरासे संरक्षण करनेवाला, [महाव्रतः] महासेनाको चलानेवाला, [तुवि-कूर्मिः] महापराक्रमी, [ऋघावान्] समृद्धिवान् और [उग्रः] बडा पराक्रमी है। तू [मर्त्येषु बाधित] मानवोंमें जो पराक्रम किये, वे तेरे पराक्रम [क्व] कहां हुए हैं?

तूं [एकः] अकेलाही [अच्युतानि च्यावयन्] स्थिरों को हिलानेवाला है, तूं [वृत्रा जिघ्नमानः] शत्रुओंका वध करता है। तेरे [अनुव्रताय] अनुकूल कार्य करनेके लिये द्युलोक, भूलोक और सब पर्वत [निमिता इव तस्थुः] स्थिर जैसे रहे हैं।

बडा पादत्राण।

अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम्। छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥२॥ अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम्। वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥३॥

[१०२५--२६; ऋ० १।१३३]

हे [अद्रिवः] वज्रधारी! [अभिव्लग्या] ढूंढ ढूंढकर [यातुमतीनां शीर्षा] दुष्टोंके सिर [वटूरिणा पदा छिन्धि] पादत्राणयुक्त पावसे तोड, बडे पादत्राणयुक्त पावसे तोड, दुष्टोंको [अव जहि] बडे स्मशानमें नष्ट कर।

शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य।

इदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना। त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवः ततक्ष वज्रं अभिभूत्योजसा ॥ [७३६, ऋ० १।५२।७]

जिस तरह [ऊर्मयः ह्रदं] जलप्रवाह जलाशय को भर देते हैं, उस तरह [ब्रह्माणि तव वर्धना] ये स्तोत्र तेरी बधाई को भर देते हैं, वर्णन करते हैं। त्वष्टाने [युज्यं शवः] तेरे योग्य बल [वावृधे] बढाया और [अभिभूति-ओजसा वज्रं ततक्ष] शत्रुका पराभव करनेकी शक्तिके साथ तेरे लिये वज्रभी बनाया।

इन्द्रके अन्तरिक्षस्थ शत्रु।

त्वमेतान रुदतो जक्षतश्च अयोधयो रजस इंद्र पारे। अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥७॥ चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुंभमानाः। न हिन्वानासस्तितिरुस्त इंद्रं परि स्पशो अदधात् सूर्येण ॥ ८ ॥ [७३६-३७; ऋ०१।३३।७-८]

हे इन्द्र! तूने इन [रुदतः जक्षतः च] रोनेवाले और भोग भोगनेवाले शत्रुओंको (अयोधयः रजसः पारे) युद्ध करके अन्तरिक्षके पार भगा दिया । (दस्युं अदहः) तूने शत्रुको जला दिया और [दिवः अत्र] द्युलोकसे उसको नीचे गिरा दिया । तथा [शंसं आवः] याजकोंकी स्तुतियोंको उच्च स्थानमें स्थिर किया है ।

सोनेके आभूषणोंसे सुशोभित हुए वे शत्रु [पृथिव्याः परीणहं चक्राणास] पृथ्वीके परिघमें भ्रमण करते थे, वेभी (स्पृशः) शत्रुके दूत [इन्द्र हिन्वानामः न तितिरुः] इन्द्रको परीजित न कर सके । पर [सूर्येण परि अदधात्] उसने ही शत्रुओंको सूर्यप्रकाशसे आच्छादित किया ।

यह युद्ध निःसन्देह पृथ्वीके ऊपरका नहीं है । यह आकाशमें होनेवाला युद्ध है अथवा यह रूपक भी होगा।

शत्रुका वध और सत्यप्रचार ।

प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् । जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥ [१०४३, ऋ० ३।३०।६]

हे इन्द्र! [ते] तेरा रथ दो घोडोंके द्वारा शीघ्र यहां आवे [ते वज्र] तेरा वज्र [शत्रून् प्रमृणन् प्र एतु] शत्रुओं का वध करता हुआ चले । [प्रतीच.] हमला करनेवाले शत्रुओंको. [अनूच] दोनों ओरसे आनेवाले शत्रुओं को, तथा [पराचः]भागनेवाले शत्रुओंको तू नष्ट कर, [विश्वं सत्यं कृणुहि] विश्वमें सत्यका प्रचार कर और वह सर्वत्र [विष्टं अस्तु] प्रविष्ट हो कर रहे ।

आगे बढ ।

प्रेहि अभिहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपो
अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ [१०२, ऋ० १।८०।३]

हे इन्द्र [प्रेहि] शत्रुपर चढाई कर, [अभिहि] शत्रुका नाश कर, [धृष्णुहि] शत्रुको परास्त कर। [ते वज्रः न नियंसते] तेरे वज्रका प्रतिकार कोई कर नहीं सकता। हे इन्द्र! [ते शव· नृम्णं] तेरा बल विजयकारी है, अतः [वृत्र हनः] शत्रुका नाश कर, [अपः जय] जलोंको प्राप्त कर, [स्वराज्य अर्चन् अनु] स्वराज्यकी अर्चना करते हुए यह सब कर ।

नव्वे नदियाँ ।

वि ते वज्रासो अस्थिरन् नवतिं नाव्यारे अनु ।
महत् त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितं अर्चन्
अनु स्वराज्यम् ॥ [१०७; ऋ० १।८०।८]

हे इन्द्र! [ते वज्रास.] तेरे वज्र [नवतिं नाव्या अनु] नौकाएं जिनमें चलती है, ऐसे नव्वे नादियोंके पास [वि अस्थिरन्] पहुचे है । तेरा पराक्रम बहुत बडा है, तेरे बाहुओंमें बहुत बल है, स्वराज्यकी अर्चना करते हुए यह सब कर।

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतमर्भे हवामहे स वाजेषु
प्र नोऽविषत् ॥ [११६, ऋ०१।८१।१]

[वृत्रहा इन्द्र.] शत्रुनाशक इन्द्र [मदाय शवसे] आनन्द और बल बढानेके लिये [नृभि. वावृधे] मनुष्योंने बढाया है, मनुष्योंने उसकी बधाई की है । [तं महत्सु आजिषु] उसको हम बडे संग्रामोमे तथा [अर्भे हवामहे] भयानक युद्धमें बुलाते हैं। वह हमें [वाजेषु अविषत्]युद्धोंमें बचावे ।

युद्धके समय इन्द्र की सहायता मांगी जाती है। क्योंकि इन्द्रही वीर्य बढाता है ।

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असिदभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि
सुन्वते भूरि ते वसु ॥ [११७, ऋ०१।८१।२]

हे वीर! तू [सेन्यः असि] सेना अपने पास रखनेवाला वीर है । शत्रुओंका [भूरि पराददिः] परास्त करनेवाला है, [दभ्रस्य वृधः] छोटेको तू बढानेवाला है, तू यजमान को ज्ञान सिखाता है [ते भूरि वसु सुन्वते] तेरा बहुत धन यज्ञ करनेवाले के लिये ही है ।

अरोरवीद् वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो
निर्जूर्वात् । नि मायिनो दानवस्य माया अपा-
दयत् पपिवान्त्सुतस्य ॥ [११९०, ऋ० २।११।१०]

[मानुषः] मनुष्यका हित करनेवाले इन्द्रने जब [अमानुषं] अमानुष शत्रुका वध किया, तब इसका वज्र [अरोरवीत्] गर्जना करने लगा । सोम रस पीनेवाले इन्द्रने [मायिनः दानवस्य मायाः निः अपादयत्] कपटी शत्रुके सब कपटोंका नाश किया ।

न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः। न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु॥ [११७४,ऋ० २।१६।३]

[त इंद्रिय] तेरा सामर्थ्य द्यावापृथिवी [न परिभ्वे] कम नहीं कर सकते, समुद्रों और पर्वतोंसे तेरे रथको प्रतिबंध नहीं होता, तेरे वज्रको कोई पराभव नहीं कर सकता, ऐसा तू अपने सत्वर चलानेवाले घोडोंसे बहुत योजन तक [पतसि] दूर जाता है।

अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद् यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः। रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक्॥ [११८०, ऋ० २।१७।३]

हे इन्द्र! तू प्रथम बडा पराक्रम करने लगा, उस समय ज्ञानके साथ बडा बल तूने प्रकट किया। रथमें बैठ इन्द्रने [विच्युताः] अपने स्थानसे भ्रष्ट किये शत्रु [सध्र्यक्] इकट्ठे मिलकर तथा [पृथक्] अलग अलग रहकर भी [प्रसिस्रते] भागते रहते हैं।

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते। अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम्॥१॥ अभिभुवेऽभिभंगाय वन्वतेऽषाळ्हाय सहमानाय वेधसे। तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत॥२॥ [१२१७-१८;ऋ०२।२१]

[विश्वजिते] विश्वविजयी, [धनजिते] धनको जीतनेवाले, [स्वर्जिते] तेजस्विता प्राप्त करनेवाले, [सत्राजिते] साथ साथ जीतनेवाले, [नृजिते] मानवी शत्रुको जीतनेवाले, [उर्वराजिते] उपजाऊ भूमिको जीतनेवाले, [अश्वजिते] घोडोंको जीतनेवाले,[गोजिते]गौओंको जीतनेवाले, [अब्जिते]जलको जीतनेवाले,[अभिभुवे] सामनेसे शत्रुका पराभव करनेवाले, [अभिभंगाय] शत्रुका नाश करनेवाले [अषाळ्हाय] जिसका प्रताप शत्रुको सहन नहीं होता, [सहमानाय] पर शत्रुका हमला सहन करनेवाले, [वेधसे] शत्रुका वेध करनेवाले, अग्नि जैसे तेजस्वी, [दुष्टरीतवे] जिसका पार करना अशक्य है, ऐसे [सत्रासाहे] मिलकर हमला करनेपर भी जो अपने स्थानपर स्थिर रहता है, ऐसे इन्द्रका स्तोत्र हम गाते हैं।

यहां इकट्ठे इन्द्रके बहुतसे कर्म बताये है, ये देखनेयोग्य हैं-

सर्व कर्मोंमें अग्रेसर।

त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि। प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः॥ [७९९, ऋ० १।५५।३]

हे इन्द्र! तू [महः नृम्णस्य] बडे धनका और [धर्मणां इरज्यसि] धर्मोंका अधिपति है। तू अपने पराक्रमसे देवताओंमें प्रतिष्ठा पाता है, क्योंकि तूं [विश्वस्मै कर्मणे] सब कर्मोंमें [उग्रः पुरोहित] प्रचंड अग्रगामी वीर है।

पुरोहित का अर्थ यहां नेता है, जो कर्म करने के लिये आगे होता है।

बलशाली धन।

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्। यस्मिन् विश्वानि पौंस्या॥ [२२; ऋ०१।५।९]

[यस्मिन् विश्वानि पौंस्या] जिसमें सब प्रकारके बल है, ऐसी शक्ति इन्द्र हमें देवे, क्योंकि [इन्द्र, अ-क्षित-ऊतिः] इन्द्रके रक्षण करनेके सामर्थ्य अनत है।

हमें धन चाहिये, पर वह ऐसा चाहिये कि, जिसके साथ हमारे पास सब प्रकारके सामर्थ्य भी प्राप्त हो। ऐसा धन हमें नहीं चाहिये कि, जो हमे कमजोर बनावे।

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्। वर्षिष्ठमूतये भर॥ [३८; ऋ०१।८।१]

हे इन्द्र। [स-जित्वानं] सदा जयशाली, [सदा-सहं] सदा शत्रुका नाश करनेमें समर्थ और [वर्षिष्ठ] सदा बढनेवाला और कभी न घटनेवाला ऐसा [सानसिं रयिं] सुख देनेवाला धन [ऊतये आभर] हमारी रक्षाके लिये हमारे पास भर कर ले आ।

हमें धन ऐसा चाहिये कि, जिससे हमारा सदा जय होता रहे, शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य हमारे पास रहे, हमारे महत्कार्योंमें जितना धन हमें आवश्यक हो, उतना सदा मिलता रहे, धनके अभावके कारण हमारे पुरुषार्थ रुके न रहे, तथा हमारी रक्षा होती रहे। अर्थात् हमें ऐसा धन नहीं चाहिये, जिस धनमें फंस कर हमारा पराभव होता रहे, जिससे हम शत्रुका नाश करनेमें असमर्थ हो जांय, जो आवश्यक कर्तव्योंके लिये न्यून हो जांय और जिससे हम अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ सिद्ध हो जांय।

हमें धन मिले।

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्। विश्वायुर्धेह्यक्षितम्॥ अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम्। इन्द्र ता रथिनीरिषः॥[५८-५९, ऋ० १।९।७-८]

हे इन्द्र! हमें ऐसा धन मिले, जिसके साथ [गोमत्] बहुत गौवें हों, [वाजवत्] बहुत घोडे अर्थात् वाहन हो, [अ-क्षित] जो नाश न होनेवाला हो जो [विश्व-आयु] सब प्रकारसे आयुष्य बढानेवाला हो, [पृथु-- बृहत् श्रवः] जो विपुल तथा श्रेष्ठ प्रकारके यशसे युक्त हो। हे इन्द्र! हमें [सहस्र--सातमं] सहस्रों प्रकारका [बृहत् द्युम्न श्रवः] विपुल और तेजस्वी धन हो। [ता रथिनी इष] तथा अन्न ऐसा हो कि, जो अनेक गाडियोंमें भरकर लाया जा सके।

हमारे घरमें गौवें, घोडे, वाहन, गाडियां, रथ, धन भरपूर हों, किसी तरह न्यूनता न रहे। अन्नभी बहुत हमें प्राप्त हो। हमसे इस धनका उत्तम उपयोग हो, जिससे हमारा यश चारों दिशाओंमें फैले। इस तरहका धन हमें चाहिये।

इन्द्रकी गुह्य मन्त्रणा।

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्।
मा नो अति ख्यः॥ [६, ऋ० १।४।३]

'तेरी गुह्य सुमतियां हमें मालूम हों, हमारे शत्रु उनको न जान सकें।'

'अन्तम सुमति' वह है, जो राज्यशासन करनेवाले वीरोंके पास ही रहती है। गुह्य सलाह या मसलत, गुप्त मन्त्रणा इन्द्रके पास रहती है, क्योंकि यह इन्द्र सब विश्वका साम्राज्य चलाता है। हम उसके अनुयायी है, इसलिये वह मन्त्रणा हमें ही मालूम हों, पर शत्रुओं को उनका पता न लगे।

घुटने जोडकर प्रार्थना।

स वह्निभिः ऋक्वभिः गोषु शश्वन् मितज्ञुभिः
पुरुकृत्वा जिगाय। पुरः पुरोहा सखिभिः
सखीयन् दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन्।
[२०१३; ऋ० ६।३२।३]

[सः] उस इन्द्रने [मितज्ञुभिः] घुटने जोडकर प्रार्थना करनेवालोंके लिये [पुरुकृत्वा जिगाय] वारवार विजय किया। उस इन्द्रने अनेक मित्रोंके साथ शत्रुके [दृळ्हा पुरः] सुदृढ नगर तोड दिये।

इन्द्र और माताका संवाद।

जज्ञानो नु शतक्रतुः वि पृच्छदिति मातरम्।
क उग्राः के ह शृण्विरे॥१॥
आदीं शवस्यब्रवीत् और्णवाभं अहीशुवम्।
ते पुत्र सन्तु निष्टुरः॥२॥
समित् तान्वृत्रहाखिदत् खे अराँ इव खेदया।
प्रवृद्धो दस्युहाभवत्॥३॥ [६४०-४२; ऋ० ८।७७]

इन्द्र उत्पन्न होते ही अपनी मातासे पूछने लगा कि, कौन शूर है और कौन प्रसिद्ध वीर हैं? वह माता उससे बोली कि और्णवाभ और अहीशुव ये वीर है। हे पुत्र! इन का निःपात करना उचित है। इन्द्रने उनको खींच लिया और नाश किया, इससे वह बडा हुआ।

माता अपने पुत्रको वीरताकी शिक्षा कैसी देवे, यह इन मन्त्रोंमें है। माताएं इस का मनन करें। बचपनसे इस तरह माताएं बोध देती रहेंगी, तो पुत्र वीर ही बनेंगे, इस में संदेह नही है।

अन्तिम निवेदन।

इन्द्रदेवता के विषयमें इतना मनन यहां पर्याप्त है। इन्द्र आत्मा अथवा परमात्मा है, यह प्रथम बताया है और उत्तर विभागमें इन्द्र क्षत्रिय शूर वीर है, यह भाव बताया है। इन्द्रकी अन्यान्य विभूतियाँ मन्त्रोंका मनन करनेके बाद पाठक स्वयं जान सकते है।

इस स्थानपर जो इन्द्रवाचक पद दिये हैं, वे किस मन्त्रमें कहां है, यह पाठक इन सूचियोंसे जान सकते हैं। तथा इन सूचियोंका उपयोग करनेपर पाठकोंको इसी तरह अन्यान्य शब्द मिल सकते है कि, जिनसे इन्द्र का ठीक ठीक स्वरूप जाना जा सकता है।

अग्निकी अपेक्षा इन्द्रकी सूचियां अधिक है। तथा इसमें उत्तरपदसूची भी विशेष उपयोगी है।

धन्यवाद।

इन्द्रकी विशेषण, उपमा, तथा अन्य सूचियां बनानेका बडे परिश्रमका कार्य श्री पं० अनंत दिनकर रास्ते, पूना-निवासीने किया है। इसलिये वे धन्यवाद के लिये योग्य है। अग्निकी सूचियां भी इन्हींकी बनायी है।

अन्तमें पाठकोंसे प्रार्थना यही है कि, वे इस दैवत-संहिता से जितना अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं, उतना प्राप्त करें और वेदके सत्य सिद्धान्त के पास पहुचनेका आनन्द प्राप्त करें।

औंध, जि० सातारा संपादक
माघ वद्य सं० १९९८ श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

इन्द्रदेवता का परिचय।

भूमिका की विषय-सूची।

इन्द्रदेवताकी सूचियाँ।

*

इन्द्रमन्त्राणां ऋषिसूची।

(१) इन्द्रः।

ऋषिः	मन्त्रसंख्या	पृष्ठं
मधुच्छन्दा वैश्वामित्र	१-६९	१
जेता माधुच्छन्दसः	७०-७७	४
मेधातिथिः काण्वः	७८-८६	,,
प्रगाथो (घौर) काण्व·	८७-८८	७
मेधातिथि--मेध्यातिथी काण्वौ	८९--११५	७
मेधातिथिःकाण्वः(आङ्गिरसःप्रियमेधश्च)	११६--१५५	,,
देवातिथिः काण्व	२२९ -४२	१३
वत्स काण्व	२४३ -८७	१४
पर्वतः काण्व·	२८८--३२०	१५
नारदः काण्वः	३२१--५३	१७
गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ	३५४ -८१	१८
इरिम्बिठिः काण्वः	३८२--४०८	१९
सोभरिः काण्वः	४०९--२४	२०
नीपातिथिः काण्वः	४२५ -३९	२१
सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरस	४४०- ४२	,,
त्रिशोकः काण्वः	४४३--८४	२२
प्रस्कण्वः काण्वः	४८५--९४	२३
पुष्टिगुः काण्व.	४९५--५०४	२४
श्रुष्टिगुः काण्वः	५०५--१४	२५
आयुः काण्व·	५१५--२४	,,
मेध्यः काण्व.	५२५--३२	२६
मातरिश्वा काण्वः	५३३--३८	२७
कृशः काण्वः	५३९--४३	,,
पृषध्रः काण्वः	५४४--४७	,,
भर्गः प्रागाथः	५४८--६५	२८
प्रगाथो घौरः काण्वः	५६६- ७७	२९
प्रगाथ· काण्वः	५७८--६१२	३०
कलिः प्रागाथः	६१३--२७	३१
कुरुसुति. काण्वः	६२८--६०	३२
एकद्यूनौंधसः ६६१--६९; कुसीदी काण्वः ६७०--८७		३४
आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः	६८८- ७१४	३५
हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः	७१५--४४	३६
सव्य आङ्गिरसः	७४५--८१६	३८
कुत्स आङ्गिरसः	८१७-५५	४४

ऋषिः	मंत्रसंख्या	पृष्ठ
नोधा गौतम.	८५६--९९	४६
गोतमो राहूगण'	९००-५६	५०
वार्षागिराः ऋज्राश्वाऽम्बरिष-सहदेव-भयमान-सुराधसः	९५७--७५	५४
रेभः काश्यपः	९७६ -९०	५५
नेमो भार्गवः	९९१-९३,९९६-९९	५६
इन्द्र	९९४-९५	,,
परुच्छेपो दैवोदासि	१०००-१०४१	५७
अगस्त्यो मैत्रावरुणिः	१०४२-११००	६१
गृत्समदो भार्गवः शौनक	११०१-१२३७	६५
गाथिनो विश्वामित्रः	१२३८-१४३६	७५
कुशिक ऐषीरथिः	१२६०-१२८१	७७
वामदेवो गौतमः	१४६७-१६६६	९०
गौरिवीतिः शाक्त्यः	१६६७-८१	१०३
बभ्रुरात्रेय	१६८२-९२	१०४
अवस्युरात्रेयः १६९३-१७०४, गातुरात्रेयः १७०५-१६		१०५
प्राजापत्यः संवरणः	१७१७-३५	१०६
प्रभूवसुराङ्गिरसः १७३६-४९,भौमोऽत्रिः१७५०-६८		१०८
श्यावाश्व आत्रेयः	१७६९-८२	११०
आत्रेयी अपाला	१७८३-८९	१११
विश्वमना वैयश्वः	१७९०-१८१६	,,
वशोऽश्व्यः	१८१७-४०	११२
बार्हस्पत्यो भरद्वाजः	१८४१-२००५	११४
सुहोत्रो भारद्वाजः	२००६-१५	११५
शुनहोत्रो भारद्वाजः	२०१६-२५	११६
नरो भारद्वाजः	२०२६-३५	११७
शंयुर्बार्हस्पत्यः	२०३६--२१०३	११८
गर्गो भारद्वाजः	२१०४--१८	१२२
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः	२११९--२२९०	१३३
प्रियमेध आङ्गिरसः	२२९१--२३१०	१४५
पुरुहन्मा आङ्गिरसः	२३११--३५	१४६
तिरश्चीराङ्गिरसः	२३३६--६३	१४७
द्युतानो वा मारुतः	२३४५--६३	१४८
नृमेध आङ्गिरसः	२३६४--८३	१४९
नृमेध--पुरुमेधावाङ्गिरसौ	२३८४--९६	१५०

इन्द्रसहचारी देवगणः।

(१) इन्द्राग्नी ।

(२) इन्द्रावरुणौ ।

वामदेवो गौतमः	३१४६-५६	२०२
त्रसदस्युः पौरुकुत्स्य	३१५७--६०	२०३
बार्हस्पत्यो भरद्वाजः	३१६१-७१	”
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः	३१७२--३२०१	२०४
सुपर्ण काण्वः	३२०२--८	२०६
विवस्वानृषिः	३२०९	२०७

(३) इन्द्रवायू।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र	३२१०--१२	”
मेधातिथि काण्व	३२१३--१४	”
परुच्छेपो दैवोदासिः	३२१५--१९	”
गृत्समद शौनक	३२२०	२०८
वामदेवो गौतम	३२२१- २९	”
स्वस्त्यात्रेयः	३२३०--३२	”
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः	३२३३-४२	”
विवस्वानृषिः	३२४३	२०९
वसिष्ठः	३२४४	”

(४) इन्द्र-मरुतश्च।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः	३२४५--४६	”

(५) मरुत्वानिन्द्रः।

मेधातिथिः काण्वः	३२४७-४९	२१०
इन्द्रः	३२५०--५१,३२५३,३२५५,	”
	३२५७,३२५९--६१	”
मरुतः	३२५२,३२५४,३२५६,३२५९	”
अगस्त्यो मैत्रावरुणिः	३२६२--६८	”

(६) इन्द्रामरुतौ।

तिरश्चीराङ्गिरसो, द्युतानो वा मारुतः	३२६९	२११

(७) इन्द्रासोमौ।

गृत्समदः शौनकः	३२७०	”
बार्हस्पत्यो भरद्वाजः	३२७१--७५	”
रेणुर्वैश्वामित्रः	३२७६	२१२
ऋषिः	३२७७	”
वसिष्ठो मैत्रावरुणिः (पातनः)	३२७८--३३०२	”

(८) इन्द्राविष्णू।

दीर्घतमा औचथ्यः	३३०३--५	२१४
बार्हस्पत्यो भरद्वाजः	३३०६--१३	”
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः	३३१४--१६	२१५

(९) इन्द्राबृहस्पती।

वामदेवो गौतमः	३३१७--२४	”
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः	३३२५	२१६
तिरश्चीराङ्गिरसो द्युतानो वा मारुतः	३३२६	”

(१०) देव-भूमि-बृहस्पतीन्द्राः।

गर्गो भारद्वाजः	३३२७	”
अङ्गिरा	३३२८--२९	”

(११) इन्द्रापूषणौ।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः	३३३०--३५	”
अथर्वा	३३३६	”

(१२) ऋणञ्चयेन्द्रौ।

बभ्रुरात्रेय	३३३७-४०	२१७

(१३) इन्द्र-ऋभवश्च।

विश्वामित्रो गाथिनः	३३४१--४३	”

(१४) इन्द्रोषसौ।

वामदेवो गौतमः	३३४५--४७	”

(१५) इन्द्राश्वौ।

वामदेवो गौतमः	३३४८--४९	”

(१६) इन्द्रस्त्वष्टा।

गृत्समद शौनकः	३३५०--५१	२१८

(१७) इन्द्रो गावश्च।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः	३३५२- ५३	”

(१८) इन्द्राकुत्सौ।

अवस्युरात्रेयः	३३५४	”

(१९) इन्द्रद्यावापृथिव्यः।

बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः	३३५५	”

(२०) इन्द्रापर्वतौ।

गाथिनो विश्वामित्रः	३३५६	”

(२१) इन्द्रः सोमो ब्रह्मणस्पतिर्दक्षिणा च।

मेधातिथिः काण्वः	३३५७--५८	”

(२२) इन्द्राब्रह्मणस्पती।

गृत्समदः शौनकः	३३५९	२१९
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः	३३६०--६१	”

(२३) दुन्दुभीन्द्रौ।

गर्गो भारद्वाजः	३३६२	”

(२४) इन्द्रसूर्यादयः।

ब्रह्मा	३३६३	”



दैवत-संहिता ।

(ऋग्यजुःसामाथर्वणां संहितानां सर्वान् मन्त्रान् देवतानुसारेण संगृह्य निर्मिता ।)

२ इन्द्रदेवता ।

(१-६१) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।३।४-६)

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ४
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ५
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ६

॥ २ ॥ (ऋ० १।४।१-१०)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि १
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः २
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ३
परेहि विग्रमस्तृत-मिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम् ४
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद् दुवः ५
उत नः सुभगाँ अरि-र्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ६
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन् मन्दयत्सखम् ७
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ८
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ९
यो रायोऽवनिर्महान् त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत १०

॥ ३ ॥ (ऋ० १।५।१-१०)

आ त्वेता नि षीदते—न्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः १
पुरूतमं पुरूणा—मीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते २
स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् । गमद्वाजेभिरा स नः ३
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ४
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याशिरः ५
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ६
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शं ते सन्तु प्रचेतसे ७
त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ८
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ९
मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् १०

॥ ४ ॥ (ऋ० १।६।१-३, १०)

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि १
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा २
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ३
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः १०

॥ ५ ॥ (ऋ० १।७।१-१०)

इन्द्रमिद्गाथिनो बृह—दिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत १
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः २
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ३
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ४
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ५
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ६
तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ७
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ८
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ९
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः १०

॥ ६ ॥ (ऋ० १।८।१-१०)

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर १
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता २
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयेम सं युधि स्पृधः ३
वयं शूरेभिरस्तृभि–रिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ४
महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ५
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ६
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ७
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ८
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ९
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये १०

॥ ७ ॥ (ऋ० १।९।१-१०)

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा १
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये २
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ३
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ४
सं चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित् ते विभु प्रभु ५
अस्मान्त्सु तत्र चोदये–न्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ६
सं गोमदिन्द्र वाजव–दस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ७
अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ८
वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ९
सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति १०

॥ ८ ॥ (ऋ० १।१०।१-१२) अनुष्टुप् ।

गायन्ति त्वा गायत्रिणो ऽर्चन्त्यर्कमर्किणः । ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद् वंशमिव येमिरे १
यत् सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् । तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति २
युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा । अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ३
एहि स्तोमाँ अभि स्वरा ऽभि गृणीह्या रुव । ब्रह्म च नो वसो सचे–न्द्र यज्ञं च वर्धय ४

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे । शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च ५
तमित सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये । स शक्र उत नः शक दिन्द्रो वसु दयमानः ६
सुविवृतं सुनिरज मिन्द्र त्वादातमिद्यशः । गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ७
नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः । जेषः स्ववर्तीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ८ ६५
आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः। इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ९
विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम् । वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् १०
आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब । नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ११
परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः । वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः १२ ६९

॥ ९ ॥ (ऋ० १।११।१-८)

(७०-७७) जेता माधुच्छन्दसः । अनुष्टुप् ।

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् १ ७०
सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते । त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् २
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः । यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ३
पुरां भिन्दुर्युवा कवि रमितौजा अजायत । इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ४
त्वं वलस्य गोमतो ऽपावरद्रिवो बिलम् । त्वां देवा अबिभ्युषस् तुज्यमानास आविषुः ५
तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् । उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ६ ७५
मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः । विदुष्टे तस्य मेधिरास् तेषां श्रवांस्युत्तिर ७
इन्द्रमीशानमोजसा भि स्तोमा अनूषत । सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ८ ७७

॥ १० ॥ (१।१६।१-९)

(७८-१३९) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये । इन्द्र त्वा सूरचक्षसः १
इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः । इन्द्रं सुखतमे रथे २
इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे । इन्द्रं सोमस्य पीतये ३ ८०
उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः । सुते हि त्वा हवामहे ४
सेमं नः स्तोममा ग ह्युपेदं सवनं सुतम् । गौरो न तृषितः पिब ५
इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि । ताँ इन्द्र सहसे पिब ६
अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शंतमः। अथा सोमं सुतं पिब ७

विश्वमित् सवनं सुत — मिन्द्रो मदाय गच्छति । वृत्रहा सोमपीतये　　८　　८५
सेमं नः काममा पृण　गोभिरश्वैः शतक्रतो । स्तवाम त्वा स्वाध्यः　　९

॥ ११ ॥ (ऋ० ८।१।१-२९)

[प्रगाथो (घौरः) काण्वः; ३-२९ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ ।] १-४ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ५-२९ बृहती ।

मा चिदन्यद् वि शंसत　सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते　मुहुरुक्था च शंसत　　१
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं　गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयंकरं　मंहिष्ठमुभयाविनम्　　२
यच्चिद्धि त्वा जना इमे　नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु ते　ऽहा विश्वा च वर्धनम्　　३
वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितो　ऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर　वाजं नेदिष्ठमूतये　　४　　९०
महे चन त्वामद्रिवः　परा शुल्काय देयाम् ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो　न शताय शतामघ　　५
वस्याँ इन्द्रासि मे पितु — रुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो　वसुत्वनाय राधसे　　६
क्वेयथ क्वेदसि　पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत् पुरंदर　प्र गायत्रा अगासिषुः　　७
प्रास्मै गायत्रमर्चत　वावातुर्यः पुरंदरः ।
याभिः काण्वस्योप बर्हिरासदं　यासद् वज्री भिनत् पुरः　　८
ये ते सन्ति दशग्विनः　शतिनो ये सहस्रिणः ।
अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुव — स्तेभिर्नस्तूयमा गहि　　९　　९५
आ त्व१द्य सबर्दुघां　हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिष — मुरुधारामरंकृतम्　　१०
यत् तुदत् सूर एतशं　वङ्कू वातस्य पर्णिना ।
वहत् कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुः　त्सरद् गन्धर्वमस्तृतम्　　११

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसु रिष्कर्ता विह्रुतं पुनः १२
मा भूम निष्ट्या इवे न्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि १३
अमन्महीदनाशवो ऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत् सु ते महता शूर राधसा ऽनु स्तोमं मुदीमहि १४ १००

यदि स्तोमं मम श्रव दस्माकमिन्द्रमिन्दवः ।
तिरः पवित्रं ससृवांस आशवो मन्दन्तु तुग्र्यावृधः १५
आ त्वद्य सधस्तुतिं वावातुः सख्युरा गहि ।
उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वाव त्वधा ते वश्मि सुष्टुतिम् १६
सोता हि सोममद्रिभि रेमेनमप्सु धावत ।
गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्नरो निर्धुक्षन् वक्षणाभ्यः १७
अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा ऽऽ जाता सुक्रतो पृण १८
इन्द्राय सु मदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम् ।
शक्र एणं पीपयद् विश्वया धिया हिन्वानं न वाजयुम् १९ १०५

मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा ।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत २०
मदेनेषितं मद मुग्रमुग्रेण शवसा ।
विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदे हि ष्मा ददाति नः २१
शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे ।
स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुतः २२
एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा ।
सरो न प्रास्युदरं सपीतिभि रा सोमेभिरुरु स्फिरम् २३
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये २४ ११०

आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये २५

पिबा त्व१स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुति-श्चारुर्मदाय पत्यते २६
य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः ।
गमत् स शिप्री न स योषदा गम-द्धवं न परि वर्जति २७
त्वं पुरं चरिष्ण्वं वधैः शुष्णस्य सं पिणक् ।
त्वं भा अनु चरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः २८
मम त्वा सूर उदिते मम मध्यन्दिने दिवः ।
मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वस-वा स्तोमासो अवृत्सत २९ ११५

॥ १२ ॥ (ऋ० ८।२।१-४०)

[मेधातिथिः काण्वः, (आङ्गिरसः प्रियमेधश्च)] । गायत्री, २८ अनुष्टुप् ।

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन् ररिमा ते १
नृभिर्धूतः सुतो अश्नै-रव्यो वारैः परिपूतः । अश्वो न निक्तो नदीषु २
तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ३
इन्द्र इत् सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः । अन्तर्देवान् मर्त्याँश्च ४
न यं शुक्रो न दुराशी-र्न तृप्रा उरुव्यचसम् । अपस्पृण्वते सुहार्दम् ५ १२०
गोभिर्यदीमन्ये अस्मन् मृगं न व्रा मृगयन्ते । अभित्सरन्ति धेनुभिः ६
त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य । स्वे क्षये सुतपाव्नः ७
त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्व१ः सुपूर्णाः । समाने अधि भार्मन् ८
शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः । दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ९
इमे त इन्द्र सोमा-स्तीव्रा अस्मे सुतासः । शुक्रा आशिरं याचन्ते १० १२५
ताँ आशिरं पुरोळाश-मिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि । रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ११
हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् । ऊधर्न नग्ना जरन्ते १२
रेवाँ इद् रेवतः स्तोता स्यात् त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः श्रुतस्य १३
उक्थं चन शस्यमान-मगोररिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानम् १४
मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः । शिक्षा शचीवः शचीभिः १५ १३०

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्त १६
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत १७
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः १८
ओ षु प्र याहि वाजेभि- र्मा हृणीथा अभ्यस्मान् । महाँ इव युवजानिः १९
मो ष्वद्य दुर्हणावान् त्सायं करदारे अस्मत । अश्रीर इव जामाता २० १३५
विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम् । त्रिषु जातस्य मनांसि २१
आ तू षिञ्च कण्वमन्तं न घा विद्म शवसानात् । यशस्तरं शतमूतेः २२
ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय । भरा पिबन्नर्याय २३
यो वेदिष्ठो अव्यथि- ष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः । वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् २४
पन्यंपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय २५ १४०
पाता वृत्रहा सुत- मा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः २६
एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् । गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् २७
स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादम् २८
स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय । इन्द्र कारिणं वृधन्तः २९
गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि । सत्रा दधिरे शवांसि ३० १४५
एवेदेष तुविकूर्मि- र्वाजाँ एको वज्रहस्तः । सनादमृक्तो दयते ३१
हन्ता वृत्रं दक्षिणेने- न्द्रः पुरू पुरुहूतः । महान् महीभिः शचीभिः ३२
यस्मिन् विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्रयांसि च । अनु घेन्मन्दी मघोनः ३३
एष एतानि चकारे- न्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे । वाजदावा मघोनाम् ३४
प्रभर्ता रथं गव्यन्त- मपाकाच्चिद् यमवति । इनो वसु स हि वोळ्हा ३५ १५०
सनिता विप्रो अर्वद्भि- र्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः । सत्योऽविता विधन्तम् ३६
यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा । यो भूत् सोमैः सत्यमद्वा ३७
गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम् । कण्वासो गात वाजिनम् ३८
य ऋते चिद् गास्पदेभ्यो दात् सखा नृभ्यः शचीवान् । ये अस्मिन् काममश्रियन् ३९
इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम् । मेषो भूतोऽभि यन्नयः ४० १५५

॥ १३ ॥ (ऋ० ८।३।१-२४)

[मेध्यातिथिः काण्वः]। प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती), २१ अनुष्टुप्, २२-२३ गायत्री, २४ बृहती।

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३ ऽस्माँ अवन्तु ते धियः १
भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभि-रा नः सुम्नेषु यामय २
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितो ऽभि स्तोमैरनूषत ३
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ४
इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ५ १६०
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ६
अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ७
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अद्या तमस्य महिमानमायवो ऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ८
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ९
येना समुद्रमसृजो महीरप-स्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे १० १६५
शग्धी न इन्द्र यत् त्वा रयिं यामि सुवीर्यम्।
शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते शग्धि स्तोमाय पूर्व्य ११
शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिषासतः।
शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृप-मिन्द्र प्रावः स्वर्णरम् १२
कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः १३
कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः १४

उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव १५ १७०
कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद् धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् १६
युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि १७
इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसातये ।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम् १८
निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः ।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः १९
निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः ।
निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् । २० १७५
यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः ।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम् २१
रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम् ।
अदाद् रायो विबोधनम् २२
यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः ।
अस्तं वयो न तुग्र्यम् २३
आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम् ।
तुरीयमिद् रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवम् २४

॥ १४ ॥ (ऋ० ८।३२।१-३०)

[मेधातिथिः काण्वः] । गायत्री ।

प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया । मदे सोमस्य वोचत १ १८०
यः सृबिन्दुमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम् । वधीदुग्रो रिणन्नपः २
न्यर्बुदस्य विष्टपं वर्ष्माणं बृहतस्तिर । कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ३
प्रति श्रुताय वो धृषत् तूर्णाशं न गिरेरधि । हुवे सुशिप्रमूतये ४
स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः । पुरं न शूर दर्षसि ५
यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः । आरादुप स्वधा गहि ६ १८५
वयं घा ते अपि ष्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः । त्वं नो जिन्व सोमपाः ७

उत नः पितुमा भर संरराणो अविक्षितम् । मघवन् भूरि ते वसु ८
उत नो गोमतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः । इळाभिः सं रभेमहि ९
बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये । साधु कृण्वन्तमवसे १०
यः संस्थे चिच्छतक्रतु-रादीं कृणोति वृत्रहा । जरितृभ्यः पुरूवसुः ११ १९०
स नः शक्रश्चिदा शकद् दानवाँ अन्तराभरः । इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः १२
यो रायोऽवनिर्महान् त्सुपारः सुन्वतः सखा । तमिन्द्रमभि गायत १३
आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम् । भूरेरीशानमोजसा १४
नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम् । नकिर्वक्ता न दादिति १५
न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम् । न सोमो अप्रता पपे १६ १९५
पन्य इदुप गायत पन्य उक्थानि शंसत । ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् १७
पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः । इन्द्रो यो यज्वनो वृधः १८
वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः । इन्द्र पिब सुतानाम् १९
पिब स्वधैनवाना-मुत यस्तुग्र्ये सचा । उतायमिन्द्र यस्तव २०
अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे । इमं रातं सुतं पिब २१ २००
इहि तिस्रः परावत इहि पञ्च जनाँ अति । धेना इन्द्रावचाकशत् २२
सूर्यो रश्मिं यथा सृजा ऽऽत्वा यच्छन्तु मे गिरः । निम्नमापो न सध्र्यक् २३
अध्वर्यवा तु हि षिञ्च सोमं वीराय शिप्रिणे । भरा सुतस्य पीतये २४
य उद्नः फलिगं भिन-न्न्यक् सिन्धूँरवासृजत् । यो गोषु पक्वं धारयत् २५
अहन् वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम् । हिमेनाविध्यदर्बुदम् २६ २०५
प्र व उग्राय निष्टुरे ऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत २७
यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः । इन्द्रो देवेषु चेतति २८
इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितम् २९
अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ३०

॥ १५ ॥ (ऋ० ८।३३।१-१९)

[मेध्यातिथिः काण्वः] । बृहती, १६-१८ गायत्री, १९ अनुष्टुप्।

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते १ २१०
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः २

*

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ३
पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः संमिश्लो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः ४
यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे ।
य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूर्भिदारितः ५
यो धृषितो योऽवृतो यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः ।
विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः ६ ११५
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ७
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ८
य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत ९
सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः १०
वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी ।
वृषा रथो मघवन् वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ११ १२०
वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर ।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणाम् १२
एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम् ।
नायमच्छा मघवा शृणवद् गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः १३
वहन्तु त्वा रथेष्ठा—मा हरयो रथयुजः ।
तिरश्चिद्र्यं सवनानि वृत्रह—न्नन्येषां या शतक्रतो १४
अस्माकमद्यान्तमं स्तोमं धिष्व महामह ।
अस्माकं ते सवना सन्तु शंतमा मदाय द्युक्ष सोमपाः १५
नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति । यो अस्मान् वीर आनयत् १६ १२५
इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत् स्त्रिया अशास्यं मनः । उतो अह क्रतुं रघुम् १७
सप्ती चिद् घा मदच्युता मिथुना वहतो रथम् । एवेद् धूर्वृष्ण उत्तरा १८

अधः पश्यस्व मोपरिं संतरां पादुकौ हर ।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ १९

॥ १६ ॥ (ऋ० ८।४।१-१४)

[देवातिथिः काण्वः] । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवे ऽसि प्रशर्ध तुर्वशे १
यद् वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि २ २३०
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ३
मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद् दधिषे सहः ४
प्र चक्रे सहसा सहो बभञ्ज मन्युमोजसा ।
विश्वे त इन्द्र पृतनायवो यहो नि वृक्षा इव येमिरे ५
सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिम् ।
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये दाश्नोति नमउक्तिभिः ६
मा भेम मा श्रमिष्मो—ग्रस्य सख्ये तव ।
महत् ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ७ २३५
सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनव—स्तूयमेहि द्रवा पिब ८
अश्वी रथी सुरूप इद् गोमाँ इदिन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति सभामुप ९
ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमा गहि पिबा सोमं वशाँ अनु ।
निमेघमानो मघवन् दिवेदिव ओजिष्ठं दधिषे सहः १०
अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ११
स्वयं चित् स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब १२ २४०

रथेष्ठायाध्वर्यवः सोममिन्द्राय सोतन ।
अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते सुन्वन्तो दाश्वध्वरम् १३
उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः ।
अर्वाञ्चं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप १४

॥ १७ ॥ (ऋ० ८।६।१-४५)

[वत्सः काण्वः] । गायत्री ।

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे १
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा २
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ३ १४५
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ४
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ५
वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ६
इमा अभि प्र णोनुमो विपामग्रेषु धीतयः । अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ७
गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः । कण्वा ऋतस्य धारया ८ १५०
प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम् । प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ९
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि १०
अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ११
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवु—ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः १२
यदस्य मन्युरध्वनीद् वि वृत्रं पर्वशो रुजन् । अपः समुद्रमैरयत् १३ १५५
नि शुष्ण इन्द्र धर्णसिं वज्रं जघन्थ दस्यवि । वृषा ह्युग्र शृण्विषे १४
न द्याव इन्द्रमोजसा नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् । न विव्यचन्त भूमयः १५
यस्त इन्द्र महीरपः स्तभूयमान आशयत् । नि तं पद्यासु शिश्नथः १६
य इमे रोदसी मही समीची समजग्रभीत् । तमोभिरिन्द्र तं गुहः १७
य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः । ममेदुग्र श्रुधी हवम् १८ १६०
इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषीः १९
या इन्द्र प्रस्वस्त्वा ऽऽसा गर्भमचक्रिरन् । परि धर्मेव सूर्यम् २०
त्वामिच्छवसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः । त्वां सुतास इन्दवः २१
तवेदिन्द्र प्रणीतिषू—त प्रशस्तिरद्रिवः । यज्ञो वितन्तसाय्यः २२
आ न इन्द्र महीमिषं पुरं न दर्षि गोमतीम् । उत प्रजां सुवीर्यम् २३ १६५

उत त्यद्वाश्वश्व्यं यदिन्द्र नाहुषीष्वा । अग्रे विक्षु प्रदीदयत् २४
अभि व्रजं न तत्निषे सूर उपाकचक्षसम् । यदिन्द्र मृळयासि नः २५
यदङ्ग तविषीयस इन्द्र प्रराजसि क्षितीः । महाँ अपार ओजसा २६
तं त्वा हविष्मतीर्विश उप ब्रुवत ऊतये । उरुज्रयसमिन्दुभिः २७
उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत २८ १७०
अतः समुद्रमुद्वत श्चिकित्वाँ अव पश्यति । यतो विपान एजति २९
आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवा ३०
कण्वास इन्द्र ते मतिं विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम् । उतो शविष्ठ वृष्ण्यम् ३१
इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव । उत प्र वर्धया मतिम् ३२
उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः । विप्रा अतक्ष्म जीवसे ३३ १७५
अभि कण्वा अनूषता ऽऽपो न प्रवता यतीः । इन्द्रं वनन्वती मतिः ३४
इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः । अनुत्तमन्युमजरम् ३५
आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम् । इममिन्द्र सुतं पिब ३६
त्वामिद् वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः । हवन्ते वाजसातये ३७
अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न वर्त्येतशम् । अनु सुवानास इन्दवः ३८ १८०
मन्दस्वा सु स्वर्णर उतेन्द्र शर्यणावति । मत्स्वा विवस्वतो मती ३९
वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत् । वृत्रहा सोमपातमः ४०
ऋषिर्हि पूर्वजा अस्ये क ईशान ओजसा । इन्द्र चोष्कूयसे वसु ४१
अस्माकं त्वा सुताँ उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः । शतं वहन्तु हरयः ४२
इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम् । कण्वा उक्थेन वावृधुः ४३ १८५
इन्द्रमिद् विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः । इन्द्रं सनिष्युरूतये ४४
अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ४५

॥ १८ ॥ (ऋ० ८।१२।१-३३)

[पर्वतः काण्वः]। उष्णिक्, ३३ शंकुमती (पिंगलमतेन)।

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति । येना हंसि न्य१त्रिणं तमीमहे १
येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् । येना समुद्रमाविथा तमीमहे २
येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः । पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ३ १९०
इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः । येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ४
इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते । इन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ५

यो नो देवः परावतः सखित्वनाय मामहे । दिवो न वृष्टिं प्रथयन् ववक्षिथ ६
ववक्षुरस्य केतव उत वज्रो गभस्त्योः । यत् सूर्यो न रोदसी अवर्धयत् ७
यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः । आदित् त इन्द्रियं महि प्र वावृधे ८
इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभि र्न्यर्शसानमोषति । अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे ९
इयं त ऋत्वियावती धीतिरेति नवीयसी । सपर्यन्ती पुरुप्रिया मिमीत इत् १०
गर्भो यज्ञस्य देवयुः क्रतुं पुनीत आनुषक् । स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत् ११
सनिर्मित्रस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये । प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत् १२
यं विप्रा उक्थवाहसो ऽभिप्रमन्दुरायवः । घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत् १३
उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत् । पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत् १४
अभि वह्नय ऊतये ऽनूषत प्रशस्तये । न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत् १५
यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद् वा घ त्रित आप्त्ये । यद् वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः १६
यद् वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे । अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः १७
यद् वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः १८
देवंदेवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि । अधा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः १९
यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमेभिः सोमपातमम् । होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशुः २०
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः २१
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः । इन्द्रं वाणीरनूषता समोजसे २२
महान्तं महिना वयं स्तोमेभिर्हवनश्रुतम् । अर्कैरभि प्र णोनुमः समोजसे २३
न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् । अमादिदस्य तित्विषे समोजसः २४
यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः । आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः २५
यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधीः । आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः २६
यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे । आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः २७
यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे । आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे २८
यदा ते मारुतीर्विश स्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे । आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे २९
यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः । आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे ३०
इमां त इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः । जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ३१
यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन् । नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ३२
सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः । होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ३३

॥ १९ ॥ (ऋ० ८।१३।१-३३)

[नारदः काण्वः] । उष्णिक् ।

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम् । विदे वृधस्य दक्षसो महान् हि षः १
स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः । सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित २
तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् । भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ३
इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ४
नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत् त्वा सुन्वन्त ईमहे । रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम् ५ ३२५
स्तोता यत् ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद् गिरः । वया इवानु रोहते जुषन्त यत् ६
प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुर्हवम् । मदेमदे ववक्षिथा सुकृत्वने ७
क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः । अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः ८
उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद् वशी । नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण ९
स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा । गन्तारा दाशुषो गृहं नमस्विनः १० ३३०
तूतुजानो महेमते ऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः । आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ११
इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय । श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् १२
हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यंदिने दिवः । जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि १३
आ तू गहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः । तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं यथा विदे १४
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् । यद् वा समुद्रे अन्धसोऽवितेदसि १५ ३३५
इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्दवः । इन्द्रे हविष्मतीर्विशो अराणिषुः १६
तमिद् विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः । इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन् वया इव १७
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद् वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् १८
स्तोता यत् ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे । शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः १९
तदिद् रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु । मनो यत्रा वि तद् दधुर्विचेतसः २० ३४०
यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यन्धसः । येन विश्वा अति द्विषो अतारिम २१
कदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शंतमः । कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः २२
उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथम् । अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे २३
तमीमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः । नि बर्हिषि प्रिये सददध द्विता २४
वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः । धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः २५ ३४५
इन्द्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्रिवः । ऋतादियर्मि ते धियं मनोयुजम् २६
इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये । हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर २७

अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम् । उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः २८
इमा अस्य प्रतूर्तयः पदं जुषन्त यद् दिवि । नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे २९
अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे । मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य ३०
वृषायमिन्द्र ते रथ उतो ते वृषणा हरी । वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः ३१
वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः । वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ३२
वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः । वावन्थ हि प्रतिष्टुतिं वृषा हवः ३३

॥ २० ॥ (ऋ० ८।१४।१-१५)

[गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ] । गायत्री ।

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोषखा स्यात् १
शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् २
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ३
न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः । यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ४
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ५
वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ६
व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद् वलम् ७
उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ८
इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ९
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः १०
त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ११
इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् १२
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः १३
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः १४
असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् १५

॥ २१ ॥ (ऋ० ८।१५।१-१३)

[गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ] । उष्णिक् ।

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतं । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत १
यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना २
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ३
तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ४

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ५
तदद्या चित् त उक्थिनो ऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा । वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ६
तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् । वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ७
तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ८
त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ९
त्वं वृषा जनानां मंहिष्ठ इन्द्र जज्ञिषे । सत्रा विश्वा स्वपत्यानि दधिषे १०
सत्रा त्वं पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि तोशसे । नान्य इन्द्रात् करणं भूय इन्वति ११
यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये । अस्माकेभिर्नृभिरत्रा स्वर्जय १२
अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशन् । इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम् १३

॥ २२ ॥ (ऋ० ८।१६।१-१२)

[इरिम्बिठिः काण्वः] । गायत्री ।

प्र सम्राजं चर्षणीना मिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् १
यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या । अपामवो न समुद्रे २
तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं सनिभ्यः ३
यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुत्राः । हर्षुमन्तः शूरसातौ ४
तमिद् धनेषु हितेष्व धिवाकाय हवन्ते । येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ५
तमिच्च्यौत्नैरार्यन्ति तं कृतेभिश्चर्षणयः । एष इन्द्रो वरिवस्कृत् ६
इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषि रिन्द्रः पुरू पुरुहूतः । महान् महीभिः शचीभिः ७
सः स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः । एकश्चित् सन्नभिभूतिः ८
तमर्केभिस्तं सामभि स्तं गायत्रैश्चर्षणयः । इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ९
प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु । सासह्वांसं युधामित्रान् १०
स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः । इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ११
स त्वं न इन्द्र वाजेभि र्दशस्या च गातुया च । अच्छा च नः सुम्नं नेषि १२

॥ २३ ॥ (ऋ० ८।१७।१-१५)

[इरिम्बिठिः काण्वः] । [१४ वास्तोष्पतिर्वा] । गायत्री, प्रगाथः= (१४ बृहती, १५ सतोबृहती)।

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम १
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु २
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ३
आ नो याहि सुतावतो ऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ४

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्यो–रनु गात्रा वि धावतु । गृभाय जिह्वया मधु ५
स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे३ तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ६
अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ७ ४००
तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ८
इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ९
दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते १०
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ११
शाचिगो शाचिपूजना–ऽयं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे १२ ४०५
यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन् दध्र आ मनः १३
वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणा–ऽसत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीना–मिन्द्रो मुनीनां सखा १४
पृदाकुसानुर्यजतो गवेषण एकः सन्नभि भूयसः ।
भूर्णिमश्वं नयत् तुजा पुरो गृभे–न्द्रं सोमस्य पीतये १५

॥ २४ ॥ (ऋ० ८।२१।१-१६)

[सोभरिः काण्वः] । प्रगाथः- (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती) ।

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे १
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवो–ग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् २ ४१०
आ याहीम इन्दवो ऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमं सोमपते पिब ३
वयं हि त्वा बन्धुमन्तमबन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम ।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि विश्वेभिः सोमपीतये ४
सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे । अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ५
अच्छा च त्वैना नमसा वदामसि किं मुहुश्चिद् वि दीधयः ।
सन्ति कामासो हरिवो ददिष्ट्वं स्मो वयं सन्ति नो धियः ६
नूत्ना इदिन्द्र ते वय–मूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः । विद्मा पुरा परीणसः ७ ४१५
विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्य१–मा ते ता वज्रिन्नीमहे ।
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ८
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ९
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् १०

त्वया ह स्विद् युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि । संस्थे जनस्य गोमतः ११
जयेम कारे पुरुहूत कारिणो ऽभि तिष्ठेम दूढ्यः ।
नृभिर्वृत्रं हन्याम शूशुयाम चा ऽवेरिन्द्र प्र णो धियः १२ ४१०
अभ्रातृव्यो अना त्व मनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे १३
नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्या दित् पितेव हूयसे १४
मा ते अमाजुरो यथा मूरास इन्द्र सख्ये त्वावतः । नि षदाम सचा सुते १५
मा ते गोदत्र निरराम राधस इन्द्र मा ते गृहामहि ।
दृळ्हा चिदर्यः प्र मृशाभ्या भर न ते दामान आदभे १६

॥ २५ ॥ (ऋ० ८।३४।१-१८)

[नीपातिथिः काण्वः, १६-१८ सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरसः] । अनुष्टुप्, १६-१८ गायत्री ।

एन्द्र याहि हरिभि रुप कण्वस्य सुष्टुतिम् । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो १ ४२५
आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो २
अत्रा वि नेमिरेषा मुरां न धूनुते वृकः । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ३
आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ४
दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम् । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ५
स्मत्पुरन्धिर्न आ गहि विश्वतोधीर्न ऊतये । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ६ (४३०)
आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ७
आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ८
आ त्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेव वक्षतः । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ९
आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो १०
आ नो याह्युपश्रु त्युक्थेषु रणया इह । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ११ (४३५)
सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः संभृताश्वः । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो १२
आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो १३
आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो १४
आ नः सहस्रशो भरा ऽयुतानि शतानि च । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो १५
आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः । ओजिष्ठमश्व्यं पशुम् १६ (४४०)
य ऋज्रा वातरंहसो ऽरुषासो रघुष्यदः । भ्राजन्ते सूर्या इव १७
पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु । तिष्ठं वनस्य मध्य आ १८

॥ २६ ॥ (ऋ० ८।४५।१-४२)

[त्रिशोकः काण्वः] । [१ अग्नीन्द्रौ] । गायत्री ।

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा १
बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा २
अयुद्ध इद् युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ३
आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद् वि मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ४
प्रति त्वा शवसी वदद् गिरावप्सो न योधिषत् । यस्ते शत्रुत्वमाचके ५
उत त्वं मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत् । यद् वीळयासि वीळु तत् ६
यदाजिं यात्याजिकृ-दिन्द्रः स्वश्वयुरुप । रथीतमो रथीनाम् ७
वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन् विष्वग्यथा वृह । भवा नः सुश्रवस्तमः ८
अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये । न यं धूर्वन्ति धूर्तयः ९
वृज्याम ते परि द्विषो ऽरं ते शक्र दावने । गमेमेदिन्द्र गोमतः १०
शनैश्चिद् यन्तो अद्रिवो ऽश्वावन्तः शतग्विनः । विवक्षणा अनेहसः ११
ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता । जरितृभ्यो विमंहते १२
विद्मा हि त्वा धनंजय-मिन्द्र दृळहा चिदारुजम् । आदारिणं यथा गयम् १३
ककुहं चित् त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णविन्दवः । आ त्वा पणिं यदीमहे १४
यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्ष मघत्तये । तस्य नो वेद आ भर १५
इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः । पुष्टावन्तो यथा पशुम् १६
उत त्वाबधिरं वयं श्रुत्कर्णं सन्तमूतये । दूरादिह हवामहे १७
यच्छुश्रूया इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत । भवेरापिर्नो अन्तमः १८
यच्चिद्धि ते अपि व्यथि-र्जगन्वांसो अमन्महि । गोदा इदिन्द्र बोधि नः १९
आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररम्भा शवसस्पते । उश्मसि त्वा सधस्थ आ २०
स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने । नकिर्यं वृण्वते युधि २१
अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् २२
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । माकीं ब्रह्मद्विषो वनः २३
इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब २४
या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे । ता संसत्सु प्र वोचत २५
अपिबत् कद्रुवः सुत-मिन्द्रः सहस्रबाह्वे । अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् २६
सत्यं तत् तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यम् । व्यानट् तुर्वणे शमि २७

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषम् २८ ४७०
ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्र्यावृधम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते २९
यः कृन्तदिद् वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम् । गोभ्यो गातुं निरेतवे ३०
यद् दधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि । मा तत् करिन्द्र मृळय ३१
दभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं शृण्वे अधि क्षमि । जिगात्विन्द्र ते मनः ३२
तवेदु ताः सुकीर्तयो ऽसन्नुत प्रशस्तयः । यदिन्द्र मृळयासि नः ३३ ४७५
मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु । वधीर्मा शूर भूरिषु ३४
बिभया हि त्वावत उग्रादभिप्रभङ्गिणः । दस्मादहमृतीषहः ३५
मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो । आवृत्वद् भूतु ते मनः ३६
को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत् । जहा को अस्मदीषते ३७
एवारे वृषभा सुते ऽसिन्वन् भूर्यावयः । श्वघ्नीव निवता चरन् ३८ ४८०
आ त एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा । यदीं ब्रह्मभ्य इद्ददः ३९
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ४०
यद्वीळाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ४१
यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ४२

॥ २७ ॥ (ऋ० ८।४९।१-१०)

[प्रस्कण्वः काण्वः] । प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

अभि प्र वः सुराधस मिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति १ ४८५
शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः २
आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः।
आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं१ सरः पृणन्ति शूर राधसे ३
अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ४
आ नः स्तोममुप द्रव द्धियानो अश्वो न सोतृभिः।
यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेषु रातयः ५
उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुम्।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः ६ ४९०

यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि ।
अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ७
अजिरासो हरयो ये त आशवो वाता इव प्रसक्षिणः ।
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ८
एतावतस्त ईमह इन्द्र सुम्नस्य गोमतः ।
यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ९
यथा कण्वे मघवन् त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनी–न्द्र गोमद्धिरण्यवत् १०

॥ २८ ॥ (ऋ० ८।५०।१–१०)

[पुष्टिगुः काण्वः] । प्रगाथः– (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

प्र सु श्रुतं सुराधस–मर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते १ ४९५
शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः २
यदीं सुतास इन्दवो ऽभि प्रियममन्दिषुः ।
आपो न धायि सवनं म आ वसो दुघा इवोप दाशुषे ३
अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः ।
आ त्वा वसो हवमानास इन्दव उप स्तोत्रेषु दधिरे ४
आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।
यं ते स्वदावन्त्स्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम् ५
प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे ६ ५००
यद्ध नूनं परावति यद् वा पृथिव्यां दिवि ।
युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ७
रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध ओजो वातस्य पिप्रति ।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे ८
एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः ।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे ९
यथा कण्वे मघवन् मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि ।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियम् १०

॥ २९ ॥ (ऋ० ८।५१।१-१०)

(५०५-५१४) श्रुष्टिगुः काण्वः । प्रगाथः- (विषमा बृहती; समा सतोबृहती)।

यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम् ।
नीपातिथौ मघवन् मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा १ ५०५
पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादय-च्छयानं जिव्रिमुद्धितम् ।
सहस्राण्यसिषासद् गवामृषि-स्त्वोतो दस्यवे वृकः २
य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः ।
इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्य-रिष्यन्तं न भोजसे ३
यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचु-स्त्रिधातुमुत्तमे पदे ।
स त्विमा विश्वा भुवनानि चिक्रद-दादिज्जनिष्ट पौंस्यम् ४
यो नो दाता वसूना-मिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे ५
यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ६ ५१०
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ७
प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन् ।
यदेदस्तम्भीत् प्रथयन्नमूं दिव-मादिज्जनिष्ट पार्थिवः ८
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः ९
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवो ऽस्मे सुवानास इन्दवः १०

॥ ३० ॥ (ऋ० ८।५२।१-१०)

(५१५-५२४) आयुः काण्वः । प्रगाथः- (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम् ।
यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषस्या-यौ मादयसे सचा १ ५१५
पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनी-न्द्र सुवाने अमन्दथाः ।
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि २
य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत् ।
यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः ३

यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो ।
तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः ४
यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।
अयामन्नुग्रो मघवा पुरूवसु-र्गोरश्वस्य प्र दातु नः ५
यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ६ ५२०
कदा चन प्र युच्छस्यु-भे नि पासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य हवनं त इन्द्रिय-मा तस्थावमृतं दिवि ७
यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र गिर्वणः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे ।
अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवम् ८
अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ९
समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः १०

॥ ३१ ॥ (ऋ० ८।५३।१-८)

(५२५-५३२) मेध्यः काण्वः । प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणाम् ।
पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविद-मीशानं राय ईमहे १ ५२५
य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे ।
तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे २
आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः ।
ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः ३
विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु ।
शीष्टेषु चित् ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ४
इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभि-रा स्वापे स्वापिभिः ५
आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम् ।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ६ ५३०
यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते ।
यं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे ७

अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयु राजिं यामि सदोतिभिः ।
त्वामिदेव तममे समश्वयु र्गव्युरग्रे मथीनाम् ८

॥ ३२ ॥ (ऋ० ८।५४।१-६)

(५३३-५३८) मातरिश्वा काण्वः । प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

एतत् त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ।
ते स्तोभन्त ऊर्जमावन् घृतश्चुतं पौरासो नक्षन् धीतिभिः १
नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे ।
यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व २
यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम ।
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन् ५ ५३५
आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो ।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे ६
सन्ति ह्यर्ये आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
अस्मान् नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ७
वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय ८

॥ ३३ ॥ (ऋ० ८।५५।१-५)

(५३९-५४३) कृशः काण्वः । [प्रस्कण्वश्च] । गायत्री, ३, ५ अनुष्टुप् ।

भूरीदिन्द्रस्य वीर्यं१ व्यख्यमभ्यायति । राधस्ते दस्यवे वृक १
शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते । मह्ना दिवं न तस्तभुः २ ५४०
शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि ।
शतं मे बल्बजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम् ३
सुदेवाः स्थ काण्वायना वयोवयो विचरन्तः । अश्वासो न चङ्क्रमत ४
आदित् साप्तस्य चर्किर न्नानूनस्य महि श्रवः ।
श्यावीरतिध्वसन् पथ श्चक्षुषा चन संनशे ५

॥ ३४ ॥ (ऋ० ८।५६।१-४)

(५४४-५४७) पृषध्रः काण्वः । गायत्री ।

प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदर्श्यह्रयम् । द्यौर्न प्रथिना शवः १
दश मह्यं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः । नित्याद्रायो अमंहत २ ५४५
शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम् । शतं दासाँ अति स्रजः ३

तन्त्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता । अश्वानामिन्न यूथ्याम् ४

॥ ३५ ॥ (ऋ० ८।६१।१-१८)

(५४८-५६५) भर्गः प्रागाथः । प्रगाथः- (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); १७ शंकुमती ।

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् १
तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः २
आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः ।
विद्मा हि त्वा हरिवः पृत्सु सासहि मधृष्टं चिद् दधृष्वणिम् ३ ५५०
अप्रामिसत्य मघवन् तथेदस दिन्द्र क्रत्वा यथा वशः ।
सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू चिद्यन्तो अद्रिवः ४
शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविद मनु शूर चरामसि ५
पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवाम स्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ६
त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ७
त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ८ ५५५
अविप्रो वा यदविध द्विप्रो वेन्द्र ते वचः ।
स प्र ममन्दत् त्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ९
उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरंदरो यदि मे शृणवद्धवम् ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे १०
न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः ।
यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहे ११
उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहि मृणकातिमदाभ्यम् ।
वेदा भृमं चित् सनिता रथीतमो वाजिनं यमिदू नशत् १२
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभि र्वि द्विषो वि मृधो जहि १३ ५६०

त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे १४
इन्द्रः स्पळुत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः।
स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं स पश्चात् पातु नः पुरः १५
त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः।
आरे अस्मत् कृणुहि दैव्यं भय—मारे हेतीरदेवीः १६
अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः।
विश्वा च नो जरितृन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः १७
प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः संमिश्लो वीर्याय कम्।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः १८ ५६५

॥ ३६ ॥ (ऋ० ८।६२।१-१२)

(५६६-५७७) प्रगाथो घौरः काण्वः। पङ्क्तिः, ७-९ बृहती।

प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति।
उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः १
अयुजो असमो नृभि—रेकः कृष्टीरयास्यः।
पूर्वीरति प्र वावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः २
अहितेन चिदर्वता जीरदानुः सिषासति।
प्रवाच्यमिन्द्र तत् तव वीर्याणि करिष्यतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ३
आ याहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना।
येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ४
धृषतश्चिद् धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत् त्वम्।
तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ५ ५७०
अव चष्ट ऋचीषमो ऽवताँ इव मानुषः।
जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ६
विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ७
गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ८
समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा।
विदे तदिन्द्रश्चेतनमध श्रुतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ९

उज्जातमिन्द्र ते शव उत् त्वामुत् तव क्रतुम् ।
भूरिगो भूरि वावृधु- र्मघवन् तव शर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः १० ५७५
अहं च त्वं च वृत्रहन् त्सं युज्याव सनिभ्य आ ।
अरातीवा चिदद्रिवो ऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ११
सत्यमिद् वा उ तं वय- मिन्द्रं स्तवाम नानृतम् ।
महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः १२

॥ ३७ ॥ (ऋ० ८।६३।१-११)

(५७८-६१०) प्रगाथः काण्वः । गायत्री; १, ४-५, ७ अनुष्टुप् ।

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे । यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे १
दिवो मानं नोत्सदन् त्सोमपृष्ठासो अद्रयः । उक्था ब्रह्म च शंस्या २
स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप । स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ३ ५८०
स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः । शिवो अर्कस्य होम- न्यस्मत्रा गन्त्ववसे ४
आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः । श्वात्रमर्का अनूषते- न्द्र गोत्रस्य दावने ५
इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च । यमर्का अध्वरं विदुः ६
यत् पाञ्चजन्यया विशे- न्द्रे घोषा असृक्षत । अस्तृणाद्बर्हणा विपो३ ऽर्यो मानस्य स क्षयः ७
इयमु ते अनुष्टुति- श्चकृषे तानि पौंस्या । प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ८ ५८५
अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे । यवं न पश्व आ ददे ९
तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः । स्याम मरुत्वतो वृधे १०
बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः । जेषामिन्द्र त्वया युजा ११

॥ ३८ ॥ (ऋ० ८।६४।१-१२) गायत्री ।

उत त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि १
पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति २ ५९०
त्वमीशिषे सुताना- मिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ३
एहि प्रेहि क्षयो दि- व्या३घोषञ्चर्षणीनाम् । ओभे पृणासि रोदसी ४
त्यं चित् पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्रिणम् । वि स्तोतृभ्यो रुरोजिथ ५
वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे । अस्माकं काममा पृण ६
क्व१ स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ७ ५९५
कस्य स्वित् सवनं वृषा जुजुष्वाँ अव गच्छति । इन्द्रं क उ स्विदा चके ८

कं ते दाना असक्षत वृत्रहन् कं सुवीर्या । उक्थे क उ स्विदन्तमः ९
अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते । तस्येहि प्र द्रवा पिब १०
अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः । आर्जीकीये मदिन्तमः ११
तमद्य राधसे महे चारुं मदाय घृष्वये । एहीमिन्द्र द्रवा पिब १२ ६००

॥ ३९ ॥ (ऋ० ८।६५।१-१२)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः । आ याहि तूयमाशुभिः १
यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे । यद्वा समुद्रे अन्धसः २
आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे । इन्द्र सोमस्य पीतये ३
आ त इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः । रथे वहन्तु बिभ्रतः ४
इन्द्र गृणीष उ स्तुषे महाँ उग्र ईशानकृत् । एहि नः सुतं पिब ५ ६०५
सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे । इदं नो बर्हिरासदे ६
यच्चिद्धि शश्वतामसी न्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ७
इदं ते सोम्यं मध्व धुक्षन्नद्रिभिर्नरः । जुषाण इन्द्र तत् पिब ८
विश्वाँ अर्यो विपश्चितो ऽति ख्यस्तूयमा गहि । अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ९
दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम् । मा देवा मघवा रिषत् १० ६१०
सहस्रे पृषतीना मधि श्चन्द्रं बृहत् पृथु । शुक्रं हिरण्यमा ददे ११
नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः । श्रवो देवेष्वक्रत १२

॥ ४० ॥ (ऋ० ८।६६।१-१५)

(६१३-६१७) कलिः प्रागाथः। प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), १५ अनुष्टुप्।

तरोभिर्वो विदद्वसु मिन्द्रं सबाध ऊतये।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् १
न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदे सुशिप्रमन्धसः।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् २
यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः।
स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृति मिन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ३ ६१५
निखातं चिद्यः पुरुसंभृतं वसू दिद्वपति दाशुषे।
वज्री सुशिप्रो हर्यश्व इत् कर दिन्द्रः क्रत्वा यथा वशत् ४
यद् वावन्थ पुरुष्टुत पुरा चिच्छूर नृणाम्।
वयं तत् त इन्द्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः ५

सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युक्ष सोमपाः ।
त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्ठः सुन्वते भुवः ६
वयमेनमिदा ह्यो ऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा ऽऽ नूनं भूषत श्रुते ७
वृकश्चिदस्य वारण उरामथि रा वयुनेषु भूषति ।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गही न्द्र प्र चित्रया धिया ८ ६१०
कदू न्व१स्याकृत मिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ९
कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम् ।
इन्द्रो विश्वान् बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणीँरभि १०
वयं घा ते अपूर्व्ये न्द्र ब्रह्माणि वृत्रहन् ।
पुरूतमासः पुरुहूत वज्रिवो भृतिं न प्र भरामसि ११
पूर्वीश्चिद्धि त्वे तुविकूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः ।
तिरश्चिदर्यः सवना वसो गहि शविष्ठ श्रुधि मे हवम् १२
वयं घा ते त्वे इ द्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि ।
नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता १३ ६१५
त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधो ऽभिशस्तेरव स्पृधि ।
त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित १४
सोम इद्वः सुतो अस्तु कलयो मा बिभीतन ।
अपेदेष ध्वस्मायति स्वयं घैषो अपायति १५

॥ ४१ ॥ (ऋ० ८।७६।१-१२)

(६१८-६६०) कुरुसुतिः काण्वः । गायत्री ।

इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा । मरुत्वन्तं न वृञ्जसे १
अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः । वज्रेण शतपर्वणा २
वावृधानो मरुत्सखे न्द्रो वि वृत्रमैरयत् । सृजन्त्समुद्रिया अपः ३ ६३०
अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम् । इन्द्रेण सोमपीतये ४
मरुत्वन्तमृजीषिण मोजस्वन्तं विरप्शिनम् । इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ५
इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ६
मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः पिबा सोमं शतक्रतो । अस्मिन् यज्ञे पुरुष्टुत ७

तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः । हृदा हूयन्त उक्थिनः ८ ६३५
पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु । वज्रं शिशान ओजसा ९
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् १०
अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद् दस्युहाभवः ११
वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे १२

॥ ४२ ॥ (ऋ० ८।७७।१-११)
[गायत्री, १०-११ प्रगाथः= (बृहती, सतोबृहती)]

जज्ञानो नु शतक्रतु—र्वि पृच्छदिति मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे १ ६४०
आदीं शवस्यब्रवी—दौर्णवाभमहीशुवम् । ते पुत्र सन्तु निष्टुरः २
समित् तान् वृत्रहाखिदत् खे अराँ इव खेदया । प्रवृद्धो दस्युहाभवत् ३
एकया प्रतिधापिबत् साकं सरांसि त्रिंशतम् । इन्द्रः सोमस्य काणुका ४
अभि गन्धर्वमतृण—दबुध्नेषु रजःस्वा । इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद् वृधे ५
निराविध्यद् गिरिभ्य आ धारयत् पक्वमोदनम् । इन्द्रो बुन्दं स्वाततम् ६ ६४५
शतब्रध्न इषुस्तव सहस्रपर्ण एक इत् । यमिन्द्र चकृषे युजम् ७
तेन स्तोतृभ्य आ भर नृभ्यो नारिभ्यो अत्तवे । सद्यो जात ऋभुष्ठिर ८
एता च्यौत्नानि ते कृता वर्षिष्ठानि परीणसा । हृदा वीड्वधारयः ९
विश्वेत् ता विष्णुराभर—दुरुक्रमस्त्वेषितः ।
शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् १०
तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनुः साधुर्बुन्दो हिरण्ययः ।
उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋदूपे चिदृदूवृधा ११ ६५०

॥ ४३ ॥ (ऋ० ८।७८।१-१०)
[गायत्री, १० बृहती ।]

पुरोळाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर । शता च शूर गोनाम् १
आ नो भर व्यञ्जनं गामश्वमभ्यञ्जनम् । सचा मना हिरण्यया २
उत नः कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर । त्वं हि शृण्विषे वसो ३
नकीं वृधीक इन्द्र ते न सुषा न सुदा उत । नान्यस्त्वच्छूर वाघतः ४
नकीमिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे । विश्वं शृणोति पश्यति ५ ६५५
स मन्युं मर्त्याना—मदब्धो नि चिकीषते । पुरा निदश्चिकीषते ६
क्रत्व इत् पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः । वृत्रघ्नः सोमपाव्नः ७

त्वे वसूनि संगता विश्वा च सोम सौभगा । सुदात्वपरिह्वृता ८
त्वामिद्यवयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः । त्वामश्वयुरेषते ९
तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं चना ददे ।
विनम्य वा मघवन्त्संभृतस्य वा पूर्धि यवस्य काशिना १० ६६०

॥ ४४ ॥ (ऋ० ८।८०।१-९)
(६६१-६६९) एकद्यूर्नौधसः । गायत्री ।

नह्यन्यं बळाकरं मर्डितारं शतक्रतो । त्वं न इन्द्र मृळय १
यो नः शश्वत् पुराविथाऽमृध्रो वाजसातये । स त्वं न इन्द्र मृळय २
किमङ्ग रध्रचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि । कुवित् स्विन्द्र णः शकः ३
इन्द्र प्र णो रथमव पश्चाच्चित् सन्तमद्रिवः । पुरस्तादेनं मे कृधि ४
हन्तो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि । उपमं वाजयु श्रवः ५ ६६५
अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित् परि । अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृधि ६
इन्द्र दृह्यस्व पूरसि भद्रा त एति निष्कृतम् । इयं धीर्ऋत्वियावती ७
मा सीमवद्य आ भागुर्वी काष्ठा हितं धनम् । अपावृक्ता अरत्नयः ८
तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि । आदित् पतिर्न ओहसे ९

॥ ४५ ॥ (ऋ० ८।८१।१-९)
(६७०-६८७) कुसीदी काण्वः ।

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन १ ६७०
विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् । तुविमात्रमवोभिः २
नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् । भीमं न गां वारयन्ते ३
एतो न्विन्द्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजम् । न राधसा मर्धिषन्नः ४
प्र स्तोषदुप गासिषच्छ्रवत् साम गीयमानम् । अभि राधसा जुगुरत् ५
आ नो भर दक्षिणेनाऽभि सव्येन प्र मृश । इन्द्र मा नो वसोर्निर्भाक् ६ ६७५
उप क्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानाम् । अदाशूष्टरस्य वेदः ७
इन्द्र य उ नु ते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः । अस्माभिः सु तं सनुहि ८
सद्योजुवस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चन्द्राः । वशैश्च मक्षू जरन्ते ९

॥ ४६ ॥ (ऋ० ८।८२।१-९)

आ प्र द्रव परावतोऽर्वावतश्च वृत्रहन् । मध्वः प्रति प्रभर्मणि १
तीव्राः सोमास आ गहि सुतासो मादयिष्णवः । पिबा दधृग्यथोचिषे २ ६८०

दुधा मन्युस्वादु ते ऽरं वराय मन्यवे । भुवत् त इन्द्र शं हृदे ३
आ त्वंशत्रवा गहि न्यु१क्थानि च हूयसे । उपमे रोचने दिवः ४
तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कम् । प्र सोम इन्द्र हूयते ५
इन्द्र श्रुधि सु मे हव मस्मे सुतस्य गोमतः । वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि ६
य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ७ ६८५
यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे । पिबेदस्य त्वमीशिषे ८
यं ते श्येनः पदाभरत तिरो रजांस्यस्पृतम् । पिबेदस्य त्वमीशिषे ९

॥ ४७ ॥ (ऋ० १।२८।१-४)

(६८८-७१४) आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । अनुष्टुप् ।

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे । उलूखलसुताना मवेद्विन्द्र जल्गुलः १
यत्र द्वाविव जघना धिषवण्या कृता । उलूखलसुताना मवेद्विन्द्र जल्गुलः २
यत्र नार्यपच्यव मुपच्यवं च शिक्षते । उलूखलसुताना मवेद्विन्द्र जल्गुलः ३ ६९०
यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन् यमितवा इव । उलूखलसुताना मवेद्विन्द्र जल्गुलः ४

॥ ४८ ॥ (ऋ० १।२९।१-७) पंक्तिः ।

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ १
शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ २
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ३
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ४ ६९५
समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ५
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ६
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ७

॥ ४९ ॥ (ऋ० १।३०।१-१६)
१-१०, १२-१५ गायत्री, ११ पादनिचृद्गायत्री, १६ त्रिष्टुप् ।

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः १
शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् । एदु निम्नं न रीयते २ ७००
सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे । समुद्रो न व्यचो दधे ३
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ४
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ५
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतये ऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ६
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ७ ७०५
आ घा गमद्यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ८
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ९
तं त्वा वयं विश्ववारा—ऽऽशास्महे पुरुहूत । सखे वसो जरितृभ्यः १०
अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् । सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ११
तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु । यथा त उश्मसीष्टये १२ ७१०
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम १३
आ घ त्वावान् त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः १४
आ यद् दुवः शतक्रत—वा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः १५
शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान् त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् १६ ७१४

॥ ५० ॥ (ऋ० १।३२।१-१५)
(७१५-७४४) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् १ ७१५
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः २
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्र—महन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ३
यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीना—मान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत् सूर्यं जनयन् द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ४

अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंस—मिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णा—ऽहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ५
अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ६ ७१०
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्र—मास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ७
नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत् तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ८
नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रे—न्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद् दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ९
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः १०
दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन् निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार ११ ७१५
अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत् त्वा प्रत्यहन् देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोम—मवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् १२
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद् ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहिश्चो—तापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये १३
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत् ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि १४
इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीना—मरान् न नेमिः परि ता बभूव १५

॥ ५१ ॥ (ऋ० १।३२।१-१५)

एतायामोप गव्यन्त इन्द्र—मस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः १ ७२०
उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कै—र्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् २
नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ३

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक् ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ४
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रा ऽयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद् दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ५
अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेना मयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ६ ७३५
त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चा योधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ७
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात् सूर्येण ८
परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानै निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ९
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापु र्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् १०
अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्या ऽवर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ११ ७४०
न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन् यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् १२
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत ।
सं वज्रेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः १३
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्या मुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ १४
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्र ञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः १५

॥५२॥ (ऋ० १।५१।१-१५)

(७४५-८१६) सव्य आङ्गिरसः । जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मिय मिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत १ ७४५
अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयो ऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत २

त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपो-तात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेनं चिद् विमदायावहो वस्वा-जावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ३
त्वमपामपिधानावृणोरपा-ऽधारयः पर्वते दानुमद् वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहि-मादित् सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे । ४
त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ५
त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथा-ऽरन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ६ ७५०
त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ७
वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत् ता ते सधमादेषु चाकन ८
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रता-नाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद् वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ९
तक्षद् यत् त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः १०
मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद् वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत् पुरः ११ ७५५
आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनो ऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि १२
अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत् ता ते सवनेषु प्रवाच्या १३
इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयु-रिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता १४
इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत् सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम १५

॥५३॥ (ऋ० १।५१।१-१५) जगती; १३; १५ त्रिष्टुप् ।

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथ-मेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः १ ७६०

स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीवृत मुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा २
स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ३
आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्व१ः स्वा अभिष्टयः ।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ४
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।
इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद् वलस्य परिधींरिव त्रितः ५
परीं घृणा चरति तित्विषे शवो ऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ६ ७६५

ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शव स्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ७
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रत विन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायस मधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ८
बृहत् स्वश्चन्द्रममवद् यदुक्थ्य१ मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ९
द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वना दयोयवीद् भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद् बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः १०
यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजि रहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ११ ७७०

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसो ऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् १२
त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् १३
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् १४
आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद् भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ १५

॥ ५४ ॥ (ऋ० १।५३।१-११) जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।

न्यू३ षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविद—न्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते १ ७७५
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि २
शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ३
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभि—र्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभि—र्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ४
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ५
ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ६ ७८०
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ७
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधी—स्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरो ऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ८
त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशा—ऽबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ९
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभि—स्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः १०
य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ११ ७८५

॥ ५५ ॥ (ऋ० १।५४।१-११) जगती; ६, ८-९, ११ त्रिष्टुप् ।

मा नो अस्मिन् मघवन् पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे ।
अक्रन्दयो नद्यो३ रोरुवद् वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत १
अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि ।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते २

अर्चा दिवे बृहते शूष्यं वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ३
त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत् ।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ४
नि यद् वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद् व्रन्दिनो रोरुवद् वना ।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित् कृणवः कस्त्वा परि ५ ७९०
त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ६
स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति ।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ७
असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे ।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ८
तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ९
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते १० ७९५
स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम् ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन् राये च नः स्वपत्या इषे धाः ११

॥ ५६ ॥ (ऋ० १।५५।१-८) जगती ।

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ।
भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः १
सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः ।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात् स युध्म ओजसा पनस्यते २
त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि ।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ३
स इद् वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम् ।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ४ ८००
स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद् दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ५

स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत ६
दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ७
अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ८
॥५७॥ (ऋ० १।५६।१-६)

एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् १ ८०५
तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा २
स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ३
देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ४
वि यत् तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन् वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ५
त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्याऽरुजः ६ ८१०
॥५८॥ (ऋ० १।५७।१-६)

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् १
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः २
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ३
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः ४
भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ५ ८१५

*

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ६

॥ ५९ ॥ (ऋ० १।१०१।८-११)

(८८७-८५५) कुत्स आङ्गिरसः । (१ गर्भस्राविण्युपनिषद्) । जगती, ८-११ त्रिष्टुप् ।

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे १
यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे २
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद् यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ३
यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ४ ८९०
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पति—र्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ५
यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभि—र्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधु—र्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ६
रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ७
यद् वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद् वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ८
त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भि—रस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ९ ८९५
मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तू—शन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व १०
मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११

॥ ६० ॥ (ऋ० १।१०२।१-११) १-१० जगती, ११ त्रिष्टुप् ।

इमां ते धियं प्र भरे महो मही—मस्य स्तोत्रे धिषणा यत् त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहि—मिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु १

अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् २
तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ३ ८३०
वयं जयेम त्वया युजा वृत—मस्माकमंशमुदवा भरेभरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ४
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ५
गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसा—ऽथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ६
उत ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत सहस्राद् रिरिचे कृष्टिषु श्रवः।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे म—ह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरंदर ७
त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजस—स्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथा—ऽशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ८ ८३५
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिद—मिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ९
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथा—ऽर्भेष्वाजा मघवन् महत्सु च।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीम—स्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय १०
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अ—स्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ११

॥ ६१ ॥ (ऋ० १।१०३।१-८) त्रिष्टुप्।

तत् त इन्द्रियं परमं पराचै—रधारयन्त कवयः पुरेदम्।
क्षमेदमन्यद् दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः १
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन् व्यंसं मघवा शचीभिः २ ८४०
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद् वि दासीः।
विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्या—ऽऽर्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ३
तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत्।
उपप्रयन् दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ४

तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत् सो अविन्ददश्वान् त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ५
भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरो ऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ६
तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत् ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ७ ८४५
शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ८

॥ ६२ ॥ (ऋ० १।१०४।१-९)

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान् दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे १
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गु र्नू चित् तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन् ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् २
अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ३
युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ४ ८५०
प्रति यत् स्या नीथादर्शि दस्यो रोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादि न्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ५
स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्व नागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ६
अधा मन्ये श्रत ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योना विन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ७
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भे न्मा नः पात्रा भेत सहजानुषाणि ८
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहु रयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ९ ८५५

॥ ६३ ॥ (ऋ० १।६१।१-१६)

[८५६-८९९] नोधा गौतमः ।

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाधिगव ओह मिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा १

अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त २
अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ३
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्ती—न्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ४
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्ये—न्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ५ ८६०
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय ।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ६
अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ७
अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नी—रिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ८
अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ९
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्च—दभि श्रवो दावने सचेताः १० ८६५
अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ११
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चे—ष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै १२
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधा—न्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् १३
अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः १४
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषा—मेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः १५ ८७०

एवा ते हारियोजना सुवृक्ती–न्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात १६

॥ ६४ ॥ (ऋ० १।६२।१-१३)

प्र मन्महे शवसानाय शूष–माङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियाया–ऽर्चामार्कं नरे विश्रुताय १
प्र वो महे महि नमो भरध्व–माङ्गूष्यं शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् २
इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत् सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ३
स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३ नवग्वैः ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ४ ८७५
गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि व–रुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ५
तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन् मध्वर्णसो नद्य१श्चतस्रः ६
द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योम–न्नधारयद् रोदसी सुदंसाः ७
सनाद् दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भि–र्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ८
सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद् दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद् रोहिणीषु ९ ८८०
सनात् सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नी–र्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् १०
सनायुवो नमसा नव्यो अर्कै–र्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन् मनीषाः ११
सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः १२
सनायते गोतम इन्द्र नव्य–मतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १३

॥ ६५ ॥ (ऋ० १।६३।१-९)

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मै-र्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळहासः किरणा नैजन् १ ८८५
आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वे-रा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् ।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान् पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः २
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ३
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद् वज्रिन् वृषकर्मन्नुभ्नाः ।
यद्ध शूर वृषमणः पराचै-र्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ४
त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन् दृळहस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
व्य१स्मदा काष्ठा अर्वते व-र्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ५
त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ६ ८९०
त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा व-र्गंहो राजन् वरिवः पूरवे कः ७
त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रा-मिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ८
अकारि त इन्द्र गोतमेभि-र्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ९

॥ ६६ ॥ (ऋ० ८।८८।१-६)

[प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।]

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे १
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे २ ८९५
न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः ।
यद् दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ३
योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना ।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ४

प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिव--मनु स्वधां ववक्षिथ ५
नकिः परिष्टिर्मघवन् मघस्य ते यद् दाशुषे दशस्यसि।
अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये ६

॥ ६७ ॥ (ऋ० १।८०।१-१६)

[९००-९१५] गोतमो राहूगणः। (अथर्वा, मनुः, दध्यङ् च)। पंक्तिः।

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम्।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहि--मर्चन्ननु स्वराज्यम् १ ९००
स त्वामदद् वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसा--ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् २
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपो ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ३
निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपो ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ४
इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः।
अभिक्रम्याव जिघ्नते ऽपः सर्माय चोदय--न्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ५
अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छ--त्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ६ ९०५
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवो ऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम्।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधी--रर्चन्ननु स्वराज्यम् ७
वि ते वज्रासो अस्थिर--न्नवतिं नाव्या३ अनु।
महत् त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हित--मर्चन्ननु स्वराज्यम् ८
सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः।
शतैनमन्वनोनवु--रिन्द्राय ब्रह्मोद्यत--मर्चन्ननु स्वराज्यम् ९
इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः।
महत् तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृज--दर्चन्ननु स्वराज्यम् १०
इमे चित तव मन्यवे वेपेते भियसा मही।
यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधी--रर्चन्ननु स्वराज्यम् ११ ९१०

न वेपसा न तन्यते न्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायता ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् १२
यद् वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवो ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् १३
अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगच्च रेजते ।
त्वष्टा चित् तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भिया ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् १४
नहि नु यादधीमसी न्द्रं को वीर्या परः ।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधु रर्चन्ननु स्वराज्यम् १५
यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथे न्द्रं उक्था समग्मता ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् १६ ९१५

॥ ६८ ॥ (ऋ० १।८१।१-९)

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषू तेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् १
असि हि वीर सेन्यो ऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु २
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधो ऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ३
क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयो र्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ४
आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यते ऽति विश्वं ववक्षिथ ५ ९२०
यो अर्यो मर्तभोजनं पराददाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ६
मदेमदे हि नो ददि र्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतो भयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ७
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसु मुप कामान्त्ससृज्महे ऽथा नोऽविता भव ८
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनाना मर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ९

॥ ६९ ॥ (ऋ० १।८२।१-६) पंक्तिः; ६ जगती ।

उपो षु शृणुही गिरो मघवन् मातथा इव ।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद् योजा न्विन्द्र ते हरी १ ११५
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी २
सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ३
स घा तं वृषणं रथ—मधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ४
युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ५
युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः
उत् त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान् वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ६ १२०

॥ ७० ॥ (ऋ० १।८३।१-६) जगती ।

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः १
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रिय—मवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव २
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ३
आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजन—मश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ४
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ५ १२५
बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यते ऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१—स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ६

॥ ७१ ॥ (ऋ० १।८४।१-२०)

[१-६ अनुष्टुप्, ७-९ उष्णिक्; १०-१२ पंक्तिः; १३-१५ गायत्री; १६-१८ त्रिष्टुप्,
(प्रगाथः= १९ बृहती, २० सतोबृहती ।)]

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि । आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः १

इन्द्रमिद्धरी वहतो ऽप्रतिधृष्टशवसम्। ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् २
आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी। अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ३
इमामिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम्। शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ४ १४०
इन्द्राय नूनमर्चतो क्थानि च ब्रवीतन। सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ५
नकिष्ट्वद् रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे। नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ६
य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे। ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ७
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्। कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ८
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति। उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ९ १४५

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः।
या इन्द्रेण सयावरी र्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् १०
ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ११
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् १२
इन्द्रो दधीचो अस्थभि र्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव १३
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम्। तद् विदच्छर्यणावति १४ १५०
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे १५
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् १६
क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति।
कस्तोकाय क इभायोत राये ऽधि ब्रवत् तन्वे३ को जनाय १७
को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः १८
त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डिते न्द्र ब्रवीमि ते वचः १९ १५५
मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसो ऽस्मान् कदा चना दभन्।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ २०

॥७२॥ (ऋ० १।१००।१-१९)

(९५७-९७५) वार्षागिराः ऋज्राश्वाऽम्बरीष-सहदेव-भयमान-सुराधसः। त्रिष्टुप्।

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट्।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती १
यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती २
दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ३
सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद् वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन्।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ४ ९६०
स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान्।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन् मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ५
स मन्युमीः समदनस्य कर्ता ऽस्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत्।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ६
तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ७
तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय।
सो अन्धे चित् तमसि ज्योतिर्विदन् मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ८
स सव्येन यमति व्राधतश्चित् स दक्षिणे संगृभीता कृतानि।
स कीरिणा चित् सनिता धनानि मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ९ ९६५
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्व१द्य।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती १०
स जामिभिर्यत् समजाति मीळ्हे ऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ११
स वज्रभृद् दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती १२
तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत् स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान्।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती १३

यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद् रोदसी विश्वतः सीम्।
स पारिषत् क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती १४ ९७०
न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती १५
रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामी—र्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु १६
एतत् त्यत् त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः १७
दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवै—र्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत्।
सनत् क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत् सूर्यं सनदपः सुवज्रः १८
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अ—स्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १९ ९७५

॥ ७३ ॥ (ऋ० ८।९७।१-१५)

(९७६-९९०) रेभः काश्यपः। बृहती, १०, १३ अतिजगती, ११-१२ उपरिष्टाद्बृहती, १४ त्रिष्टुप्, १५ जगती।

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः १
यमिन्द्र दधिषे त्व—मश्वं गां भागमव्ययम्।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ २
य इन्द्र सस्त्यव्रतो ऽनुष्वापमदेवयुः।
स्वैः ष एवैर्मुमुरत् पोष्यं रयिं सनुतर्धेहि तं ततः ३
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ४
यद्वासि रोचने दिवः समुद्रस्याधि विष्टपि।
यत् पार्थिवे सदने वृत्रहन्तम यदन्तरिक्ष आ गहि ५ ९८०
स नः सोमेषु सोमपाः सुतेषु शवसस्पते।
मादयस्व राधसा सूनृतावते—न्द्र राया परीणसा ६
मा न इन्द्र परा वृणग् भवा नः सधमाद्यः।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ७

अस्मे इन्द्र सचा सुते नि षदा पीतये मधु ।
कृधी जरित्रे मघवन्नवो मह दस्मे इन्द्र सचा सुते ८
न त्वा देवास आशत न मर्त्यासो अद्रिवः ।
विश्वा जातानि शवसाभिभूरसि न त्वा देवास आशत ९
विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजू स्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतो ग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम १० ९८५
समीं रेभासो अस्वर न्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ११
नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहो ऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः १२
तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री १३
त्वं पुर इन्द्र चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयध्यै ।
त्वद् विश्वानि भुवनानि वज्रिन् द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा १४
तन्म ऋतमिन्द्र शूर चित्र पात्व पो न वज्रिन् दुरिताति पर्षि भूरि ।
कदा न इन्द्र राय आ दशस्ये र्विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन् १५ ९९०

॥ ७४ ॥ (ऋ० ८।१००।१-९)

(९९१-९९९) नेमो भार्गवः, ४-५ इन्द्रः, ९ वज्रो वा । त्रिष्टुप्, ६ जगती, ७,९ अनुष्टुप् ।

अयं त एमि तन्वा पुरस्ताद् विश्वे देवा अभि मा यन्ति पश्चात् ।
यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्रा ऽऽदिन्मया कृणवो वीर्याणि १
दधामि ते मधुनो भक्षमग्रे हितस्ते भागः सुतो अस्तु सोमः ।
असश्च त्वं दक्षिणतः सखा मे ऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि २
प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति ।
नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श कमभि ष्टवाम ३
अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना ।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्या दर्दिरो भुवना दर्दरीमि ४
आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे ।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोच दचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखायः ५ ९९५

विश्वेत् ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थ मघवन्निन्द्र सुन्वते ।
पारावतं यत् पुरुसंभृतं व॒स्वपावृणोः शरभाय ऋषिबन्धवे ६
प्र नूनं धावता पृथङ् नेह यो वो अवावरीत् ।
नि षीं वृत्रस्य मर्मणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत् ७
समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः ।
भरन्त्यस्मै संयतः पुरःप्रस्रवणा बलिम् ९
सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे ।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धू॒निन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः १२ ९९९

॥ ७५ ॥ (ऋ० १।१२९।१-११)

(१०००-१०४१) परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः; ८-९ अतिशक्कर्यौ, ११ अष्टिः ।

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि ।
सद्यश्चित् तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् ।
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसा॒मिमां वाचं न वेधसाम् १ १०००
स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद् दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभि॒रसि प्रतूर्तये नृभिः ।
यः शूरैः स्व१: सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् २
दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद् यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।
इन्द्रोत तुभ्यं तद् दिवे तद् रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ३
अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।
अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् ।
नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ४
नि षू नमातिमतिं कयस्य चित् तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभि॒रुग्राभिरुग्रोतिभिः ।
नेषि णो यथा पुराऽनेनाः शूर मन्यसे ।
विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्नि॒रासा वह्निर्नो अच्छ ५
प्र तद् वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति ।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।
अव स्रवेदघशंसोऽवतर॒मव क्षुद्रमिव स्रवेत् ६ १००५

वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम् ।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभि-रेमिषा पृचीमहि ।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभि-र्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ७
प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन् दुर्मतीनाम् ।
स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः ।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ८
त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।
सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः ९
त्वं न इन्द्र राया तरूषसो-ग्रं चित् त्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे ।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य ।
अन्यमस्मद् रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः १०
पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधो ऽवयाता सदमिद् दुर्मतीनां देवः सन् दुर्मतीनाम् ।
हन्ता पापस्य रक्षस-स्त्राता विप्रस्य मावतः ।
अधा हि त्वा जनिता जीजनद् वसो रक्षोहणं त्वा जीजनद् वसो ११ १०१०

॥ ७६ ॥ (ऋ० १।१३०।१-१०) अत्यष्टिः; १० त्रिष्टुप् ।

एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पति-रस्तं राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये १
पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं न वंसग-स्तातृषाणो न वंसगः ।
मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्य-महा विश्वेव सूर्यम् २
अविन्दद् दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्म-न्यनन्ते अन्तरश्मनि ।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ३
दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्य-दहिहत्याय सं श्यत् ।
संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ४

त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवे ऽच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव ।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ५ १०२५
इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः ।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।
अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ६
भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो ।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ७
इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद् विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ८
सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायती—शान आ मुषायति ।
उशना यत् परावतो ऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणि—रहा विश्वेव तुर्वणिः ९
स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः १० १०३०

॥ ७७ ॥ (ऋ० १।१३१।१-७) अत्यष्टिः ।

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नते—न्द्राय मही पृथिवी वरीमभि—र्द्युम्नसाता वरीमभिः ।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा १
विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः २
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्व1र्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ३
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्य—मयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ४

आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन् मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ५ १०२५
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ६
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ७

॥ ७८ ॥ (ऋ० १।१३२।१-६) [६ (अर्धर्चस्य) इन्द्रापर्वतौ] ।

त्वया वयं मघवन् पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः ।
नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते ।
अस्मिन् यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् १
स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि ।
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः ।
अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः २
तत् तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन् यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम् ।
वि तद् वोचेरध द्विताऽन्तः पश्यन्ति रश्मिभिः ।
स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ३ १०३०
नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रजमिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम् ।
ऐभ्यः समान्या दिशाऽस्मभ्यं जेषि योत्सि च ।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ४
सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद् धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः ।
तस्मा आयुः प्रजावदिद् बाधे अर्चन्त्योजसा ।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ५
युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम् ।
दूरे चत्ताय च्छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् ।
अस्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ६

॥ ७९ ॥ (ऋ० १।१३३।१-७) १ त्रिष्टुप्, २-४ अनुष्टुप्, ५ गायत्री, ६ धृतिः, ७ अष्टिः ।

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन् १
अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् । छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा २ १०३५
अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् । वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ३
यासां तिस्रः पञ्चाशतो ऽभिव्लङ्गैरपावपः । तत् सु ते मनायति तकत् सु ते मनायति ४
पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण । सर्वं रक्षो नि बर्हय ५
अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः ।
शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभि-र्वधैरुग्रेभिरीयसे ।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभि-स्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ६
वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ७ १०४०

॥ ८० ॥ (ऋ० १।१३९।६) अत्यष्टिः ।

वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिद-स्तुभ्यं सुतास उद्भिदः ।
ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे ।
गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ६ १०४१

॥ ८१ ॥ (ऋ० १।१६७।१) (१०४२-११००) अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः ।
सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः १

॥ ८२ ॥ (ऋ० १।१६९।१-८) त्रिष्टुप्, २ चतुष्पदा विराट् ।

महश्चित् त्वमिन्द्र यत एतान् महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान् त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा १
अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टी-र्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ २
अम्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वा-नापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ३ १०४५
त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ४

त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः ।
ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ५
प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन् महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुबुध्नास एता स्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ६
प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमै ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ७
त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवै र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ८ १०५०

॥ ८३ ॥ (ऋ० १।१७०।१-५)

[इन्द्रः; (४ अगस्त्यो वा), १, ५ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः] । १ बृहती २-४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद् वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्य मुताधीतं वि नश्यति १
किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव । तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः २
किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे । विद्मा हि ते यथा मनो ऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ३
अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः । तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ४
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वा ऽध प्राशान ऋतुथा हवींषि ५ १०५५

॥ ८४ ॥ (ऋ० १।१७३।१-१३) त्रिष्टुप्, ४ विराट्स्थाना विषमपदा वा ।

गायत् साम नभन्यं यथा वे रर्चाम तद् वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत् सद्मानं दिव्यं विवासान् १
अर्चद् वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यै र्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात् ।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः २
नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन् भरद् गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद् गौ रन्तर्दूतो न रोदसी चरद् वाक् ३
ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ४
तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद् योधीयान् वृषण्वान् ववव्रुषश्चित् तमसो विहन्ता ५ १०६०
प्र यदित्था महिना नृभ्यो अ स्त्यरं रोदसी कक्ष्ये३ नास्मै ।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ६

समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै ।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद् ये अनुमदन्ति वाजैः ७
एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत् त आसु मदन्ति देवीः ।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद् गौः सूरींश्चिद् यदि धिषा वेषि जनान् ८
असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।
असद् यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठा स्तुरो न कर्म नयमान उक्था ९
विष्पर्धसो नरां न शंसै रस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।
मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः १० १०६५
यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्ध ञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ११
मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवै रस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।
महश्चिद् यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः १२
एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः
आ नो ववृत्याः सुवितायं देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् १३

॥ ८५ ॥ (ऋ० १।१७४।१-१०) त्रिष्टुप्।

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन् पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्र स्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः १
दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः २ १०७०
अजा वृत इन्द्र शूरपत्नी र्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ३
शेषन् नु त इन्द्र सस्मिन् योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद् युधा गा स्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ४
वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ऽभि स्पृधो यासिषद् वज्रबाहुः ५
जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरू ञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।
प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायो स्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ६
रपत् कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः ।
करत् तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ७ १०७५

सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।
भिनत् पुरो न भिदो अदेवी-र्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ८
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमती-र्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत् समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ९
त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता ।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् १०

॥ ८६ ॥ (ऋ० १।१७५।१-६) १ स्कन्धोग्रीवी बृहती; २-५ अनुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप् ।

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः । वृषा ते वृष्ण इन्दु-र्वाजी सहस्रसातमः १
आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः । सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः २ १०८०
त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् । सहावान् दस्युमव्रत-मोषः पात्रं न शोचिषा ३
मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा । वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ४
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः । वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ५
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ६

॥ ८७ ॥ (ऋ० १।१७६।१-६) अनुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप् ।

मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश । ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि १ १०८५
तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् । अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद् वृषा २
यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु । स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग् दिव्येवाशनिर्जहि ३
असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः । अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ४
आवो यस्य द्विबर्हसो ऽर्केषु सानुषगसत् । आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ५
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ६ १०९०

॥ ८८ ॥ (ऋ० १।१७७।१-६) त्रिष्टुप् ।

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग् युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् १
ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे २
आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ३

अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ४
ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वा ऽऽउप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ५ १०९५

॥ ८९ ॥ (ऋ० १।१७८।१-५)

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग् विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः १
न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन् गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च २
जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ३
एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत ।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ४
त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रू ऽऽनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भू ऽऽर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ५ ११००

॥ ९० ॥ (ऋ० २।११।१-२१)

(११०१-११३७) गृत्समद (आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। विराट्स्थाना, २१ त्रिष्टुप्।

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम् ।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः १
सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
अमर्त्यं चिद् दासं मन्यमान ऽऽमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः २
उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन् स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ३
शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ४
गुहा हितं गुह्यं गूळहमप्स्व ऽऽपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांस ऽऽमहन्नहिं शूर वीर्येण ५ ११०५
स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महा ऽऽन्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ६

हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम् ।
वि समना भूमिरप्रथिष्टाऽरंस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन् ७
नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन् त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन् नि ८
इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः ।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ९
अरोरवीद् वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात् ।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत् पपिवान्त्सुतस्य १० १११०

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ११
त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम १२
स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवाऽस्मे रयिं रासि वीरवन्तम् १३
रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः ।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् १४
व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्राऽवर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः १५ १११५

बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् १६
उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् १७
धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद् दानुमौर्णवाभम् ।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र १८
सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय १९
अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः ।
अवर्तयत् सूर्यो न चक्रं भिनद् वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् २० ११२०

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः २१

॥ ९१ ॥ (ऋ० २।१२।१-१५) त्रिष्टुप् ।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः १
यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः २
यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ३
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाद-दर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ४ १११५
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोर-मुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ५
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ६
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ७
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद् रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ८
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ९ ११२०
यः शश्वतो मह्येनो दधाना-नमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः १०
यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ११
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मा-नवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहु-र्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः १२
द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहु-र्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः १३

*

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः १४ ११३५
यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम १५

॥ १२ ॥ (ऋ० २।१३।१-१३) जगती, १३ त्रिष्टुप् ।

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद् यासु वर्धते ।
तदाहना अभवत पिप्युषी पयो ऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् १
सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम् ।
समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः २
अन्वेको वदति यद् ददाति तद् रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ३
प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन् दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ४ ११४०
अधाकृणोः पृथिवीं संदृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक् पथः ।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ५
यो भोजनं च दयसे च वर्धन मार्द्रादा शुष्कं मधुमद् दुदोहिथ ।
स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ६
यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणा ऽधि दाने व्य१वनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ७
यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्य मुतैवाद्य पुरुकृत सास्युक्थ्यः ८
शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ९ ११४५
विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः १०
सुप्रवाचनं तव वीर वीर्य१ं यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ११

अरंमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् ।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः १२
अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून् बृहद् वदेम विदथे सुवीराः १३

॥ ९३ ॥ (ऋ०२।१४।१-१२) त्रिष्टुप् ।

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोम—मामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः ।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि १ ११५०
अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य २
अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वात—मिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ३
अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ४
अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ५
अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्र—मपावपद् भरता सोममस्मै ६ ११५५
अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान् न्यावृणग् भरता सोममस्मै ७
अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुताये—न्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ८
अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ९
अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद् दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत १०
अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
तमूर्दरं न पृणता यवेने—न्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ११ ११६०
अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून् बृहद् वदेम विदथे सुवीराः १२

॥ ९४ ॥ (ऋ० २।१५।१-१०)

प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्याऽस्य मदे अहिमिन्द्रो जघान १
अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार २
सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।
वृथासृजत् पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ३
स प्रवोळ्हॄन् परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।
सं गोभिरश्वैरसृजद् रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ४ ११६५
स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात् सो अस्नातॄनपारयत् स्वस्ति ।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ५
सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ६
स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत् परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद् व्य१नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ७
भिनद् वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ८
स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ९ ११७०
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः १०

॥ ९५ ॥ (ऋ० २।१६।१-९) जगती; ९ त्रिष्टुप् ।

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद् युवानमवसे हवामहे १
यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्संभृताधि वीर्या ।
जठरे सोमं तन्वी३ सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् २
न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ३

विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते ।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ४ ११७५
वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मि-र्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे ।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ५
वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृप्णुहि ६
प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिष-दिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ७
पुरा संबाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ९ ११८०

॥ ९६ ॥ (ऋ० १।१७।१-९) जगती; ८-९ त्रिष्टुप् ।

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते ।
विश्वा यद् गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् १
स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत २
अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद् यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक् ३
अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मने-शानकृत् प्रवया अभ्यवर्धत ।
आद् रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत् सीव्यन् तमांसि दुधिता समव्ययत् ४
स प्राचीनान् पर्वतान् दृंहदोजसा ऽधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत पृथिवीं विश्वधायस-मस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ५ ११८५
सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद् विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक् तुविष्वणिः ६
अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो३ येन मामहः ७

भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ९

॥ ९७ ॥ (ऋ० २।१८।१-९) त्रिष्टुप् ।

प्राता रथो नवो योजि सस्नि श्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत १ ११९०
सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीय मुतो तृतीयं मनुषः स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊ जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा २
हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योज मायै सूक्तेन वचसा नवेन ।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन् यजमानासो अन्ये ३
आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र या ह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेय मयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ४
आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वा ङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा ऽऽ षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ५
आशीत्या नवत्या याह्यर्वा ङा शतेन हरिभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ६ ११९५
मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथा ऽस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ७
न म इन्द्रेण सख्यं वि योष दस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ९

॥ ९८ ॥ (ऋ० २।१९।१-९)

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः १
अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तो ऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत् ।
प्र यद् वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त २ ११००

स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम् ।
अजनयत् सूर्यं विदद् गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ३
सो अप्रतीनि मनवे पुरूणी—न्द्रो दाशद् दाशुषे हन्ति वृत्रम् ।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत् पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ४
स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा—ऽऽ देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान् ।
आ यद् रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ५
स रन्धयत् सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।
दिवोदासाय नवतिं च नवे—न्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ६
एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः ।
अश्याम तत् साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ७ १२०५
एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मा—ऽवस्यवो न वयुनानि तक्षुः ।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ९

॥ ९९ ॥ (ऋ० २।२०।१-९) त्रिष्टुप्; ३ विराड्रूपा ।

वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् ।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् १
त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान् ।
त्वमिनो दाशुषो वरूते—त्थाधीरभि यो नक्षति त्वा २
स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता ।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ३ १२१०
तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन् पुरा वावृधुः शाशदुश्च ।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ४
सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान् ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवा—नश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ५
स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः ।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वा—ञ्छिरो भरद् दासस्य स्वधावान् ६
स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरंदरो दासीरैरयद् वि ।
अजनयन् मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ७

तस्मै तवस्यमनु दायि सत्रे—न्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।
प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धु—र्हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नि तारीत् ८ १२१५
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ९

॥ १०० ॥ (ऋ० २।२१।१-६) जगती; ६ त्रिष्टुप् ।

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरे—न्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् १
अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वते ऽषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत २
सत्रासाहो जनभक्षो जनंसह—श्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः ।
वृतंचयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ३
अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथु—रिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ४ १२२०
यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ५
इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ६

॥ १०१ ॥ (ऋ० २।२२।१-४) १ अष्टिः, २-३ अतिशक्वरी, ४ अष्टिः अतिशक्वरी वा ।

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्म—स्तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः १
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभव—दा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः २
साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ३ १२२५
तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यद् देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः ।
भुवद् विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ४

॥ १०२ ॥ (ऋ० २।३०।१-५; ७-८; १०) [८ पूर्वार्धर्चस्य सरस्वती] । त्रिष्टुप् ।

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः ।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम् १

यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत् प्र तं जनित्री विदुष उवाच ।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् २
ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षे ऽधा वृत्राय प्र वधं जभार ।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत् तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ३
बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चि- देवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ४ १२३०
अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।
तोकस्य साता तनयस्य भूरे- रस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ५
न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्र- न्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।
यो मे पृणाद् यो ददद् यो निबोधाद् यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत ७
सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाण- मिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ८
अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरै- र्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि १०

॥ १०३ ॥ (ऋ० १।४१।१०-१२) गायत्री ।

इन्द्रो अङ्ग महद् भय- मभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः १० १२३५
इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ११
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून् विचर्षणिः १२ १२३७

॥ १०४ ॥ (ऋ० ३।३०।१-२२) (१२३८-१४६६) गाथिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनाना- मिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः १
न ते दूरे परमा चिद् रजां- स्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ २
इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋघावान् ।
यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु क्व१ त्या ते वृषभ वीर्याणि ३ १२४०
त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युता- न्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।
तव द्यावापृथिवी पर्वतासो ऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ४
उताभये पुरुहूत श्रवोभि- रेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन् ।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत् संगृभ्णा मघवन् काशिरित् ते ५

प्र सू तं इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ६
यस्मै धायुरदधा मर्त्याया ऽभक्तं चिद् भजते गेह्यं१ सः ।
भद्रा तं इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ७
सहदानुं पुरुहूत क्षियन्त महस्तमिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारु मपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ८ १२४५
नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ ।
अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्ष मर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ९
अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार ।
सुगान् पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन् वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः १०
एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम् ।
उतान्तरिक्षादभि नः समीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ११
दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः ।
सं यदानळध्वन आदिदश्वै र्विमोचनं कृणुते तत् त्वस्य १२
दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तो र्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
विश्वे जानन्ति महिना यदागा दिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि १३ १२५०
महि ज्योतिर्निहितं वक्षणा स्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः ।
विश्वं स्वाद्म संभृतमुस्रियायां यत् सीमिन्द्रो अदधाद् भोजनाय १४
इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन् यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः १५
सं घोषः शृण्वेऽवमैरमित्रै र्जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।
वृश्चेमधस्ताद् वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन् रन्धयस्व १६
उद् वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य १७
स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।
रायो वन्तारो बृहतः स्यामा ऽस्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् १८ १२५५
आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।
ऊर्व इव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् १९
इमं कामं मन्दया गोभिरश्वै श्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् २०

आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मो ऽस्मभ्यं सु मघवन् बोधि गोदाः २१
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् २२

॥ १०५ ॥ (ऋ० ३।३१।१-२२) कुशिक ऐषीरथिः, गाथिनो विश्वामित्रो वा।

शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद् विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन् त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे १ १२६०
न जामये तान्वो रिक्थमारैक् चकार गर्भं सनितुर्निधानम्।
यदी मातरो जनयन्त वह्नि मन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् २
अग्निर्जज्ञे जुह्वा३ रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे।
महान् गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ३
अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन्।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ४
वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन् प्राचाहिन्वन् मनसा सप्त विप्राः।
विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ५
विदद् यदी सरमा रुग्णमद्रे र्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः।
अग्रं नयत् सुपद्यक्षराणा मच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ६ १२६५
अगच्छदु विप्रतमः सखीय न्नसूदयत् सुकृते गर्भमद्रिः।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्य न्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ७
सतःसतः प्रतिमानं पुरोभू र्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम्।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन् त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ८
नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ९
संपश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः।
वि रोदसी अतपद् घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् १०
स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यै रुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः।
उरूच्यस्मै घृतवद् भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ११ १२७०
पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत् सुकृतो वि हि ख्यन्।
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् १२

मही यदि धिषणा शिश्नथे धात् सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः ।
गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीची विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः १३
मह्या ते सख्यं वश्मि शक्ती रा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरे रस्माकं सु मघवन् बोधि गोपाः १४
महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वा नादित् सखिभ्यश्चरथं समैरत ।
इन्द्रो नृभिरजनद् दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् १५
अपश्चिदेष विभ्वो ३ दमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद् विश्वश्चन्द्राः ।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रै र्द्युभिर्हिन्वत्यक्तुभिर्धनुत्रीः १६ ११७५
अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे ।
परि यत् ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः १७
पतिर्भव वृत्रहन्त्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः ।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभि र्महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन् १८
तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन् नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः १९
मिहः पावकाः प्रतता अभूवन् त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः २०
अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात ।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः २१ ११८०
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् २२

॥ १०६ ॥ (ऋ० ३।३२।१-१७)

इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यंदिनं सवनं चारु यत् ते ।
प्रपुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन् विमुच्या हरी इह मादयस्व १
गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय ।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व २
ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्ध न्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।
माध्यंदिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ३
त इन्न्वस्य मधुमद् विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदा ऽमर्मणो मन्यमानस्य मर्म ४ ११८५

मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।
स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ५
त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँ इव प्रासृजः सर्तवाजौ ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ६
यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ७
इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ८
अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।
न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ९ ११९०
त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन् ।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशी—रथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः १०
अहन्नहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौ—र्यदन्यया स्फिग्याऽ क्षामवस्थाः ११
यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भू—दुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन् यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत १२
यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वा—गैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम् ।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभि—र्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः १३
विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अंहसो यत्र पीपरद् यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते १४ ११९५
आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् १५
न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धु—र्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त ।
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा—ऽऽदृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम् १६
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र—मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् १७

॥ १०७ ॥ (ऋ० ३।३३।६-७)

इन्द्रो अस्माँ अरदद् वज्रबाहु—रपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत् सविता सुपाणि—स्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ६

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं१ तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघाना ऽऽयन्नापोऽयनमिच्छमानाः ७ १३००

॥ १०८ ॥ (ऋ० ३।३४।१-११)

इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कै र्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे १
मखस्य ते तविषस्य प्र जूति मियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा २
इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग्वने ष्वाविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम् ३
इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्ना मविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ४
इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ५ १३०५
महो महानि पनयन्त्यस्ये न्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ६
युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ७
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमा मिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ८
ससानात्याँ उत सूर्यं ससाने न्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ९
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचो ऽथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् १० १३१०
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ११

॥ १०९ ॥ (ऋ० ३।३५।१-११)

तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय १
उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि ।
द्रवद् यथा संभृतं विश्वतश्चि दुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् २

उपो नयस्व वृषणा तपुष्पो–तेमव त्वं वृषभ स्वधावः।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः। ३
ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ४ १३१५
मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन् यजमानासो अन्ये।
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ५
तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि।
अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ६
स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम्।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ७
इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन्।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन् विद्वान् पथ्या३ अनु स्वाः ८
याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन् गणस्ते।
तेभिरेतं सजोषा वावशानो३ऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ९ १३२०
इन्द्र पिब स्वधया चित् सुतस्या–ऽग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ता–द्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व १०
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र–मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ११

॥ ११० ॥ (ऋ० ३।३६।१-११) [१० घोर आङ्गिरसः।]

इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभि–र्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् १
इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः।
प्रयम्यमानान् प्रति षू गृभाये–न्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः २
पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे।
यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ३ १३२५
महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्यु१–ग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत् सोमासो हर्यश्वममन्दन् ४
महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ५

प्र यत् सिन्धवः प्रसवं यथाय—न्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान् यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः ६
समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रै—र्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ७
हृदा इव कुक्षयः सोमधानाः समी विव्याच सवना पुरूणि ।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ८ १३३०
आ तू भर माकिरेतत् परि ष्ठाद् विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
इन्द्र यत् ते माहिनं दत्रम—स्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ९
अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषि—न्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् १०
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र—मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ११

॥ १११ ॥ (ऋ० ३।३७।१-११) गायत्री, ११ अनुष्टुप् ।

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि १
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः २ १३३५
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ३
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ४
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ५
वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ६
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ७ १३४०
शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्र सोमं शतक्रतो ८
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ९
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत् ते शुष्मं तिरामसि १०
अर्वावतो न आ ग—ह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ११

॥ ११२ ॥ (ऋ० ३।३८।१-१०)

[प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा; तावुभावपि वा गाथिनो विश्वामित्रो वा ।] त्रिष्टुप् ।

अभि तष्टेव दीधया मनीषा—मत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः ।
अभि प्रियाणि मर्मृशत् पराणि कवीँरिच्छामि संदृशे सुमेधाः १ १३४५

इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम् ।
इमा उ ते प्रण्यो३ वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् २
नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन् ।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ३
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूष—ञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामा—ऽऽ विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ४
असूत पूर्वो वृषभो ज्याया—निमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ५
त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान् व्रते गन्धर्वाँ अपि वायुकेशान् ६ १३५०
तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनो—रा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।
अन्यदन्यदसुर्यं१ वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ७
तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ८
युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद् दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ९
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र—मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् १०

॥ ११३ ॥ (ऋ० ३।३९।१-९)

इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमाना ऽच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।
या जागृविर्विदथे शस्यमाने—न्द्र यत् ते जायते विद्धि तस्य १ १३५५
दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः २
यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् ।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ३
नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः ।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावा—नुद् गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ४
सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वै—रभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन् ।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ५

इन्द्रो मधु संभृतमुस्रियायां पद्वद् विवेद शफवन्नमे गोः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ६ १३६०
ज्योतिर्वृणीत तमसो विजान न्नारे स्याम दुरितादभीके ।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ७
ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु ष्या दारे स्याम दुरितस्य भूरेः ।
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत् ८
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ९

॥ ११४ ॥ (ऋ० ३।४०।१-९) गायत्री ।

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः १
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् २ १३६५
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः। तिर स्तवान विश्पते ३
इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ४
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ५
गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद् यशः ६
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ७ १३७०
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ८
यदन्तरा परावत मर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ९

॥ ११५ ॥ (ऋ० ३।४१।१-९)

आ तू न इन्द्र मद्र्य ग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः १
सत्तो होता न ऋत्विय स्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन् प्रातरद्रयः २
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ३ १३७५
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ४
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ५
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ६
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ७
मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ८ १३८०
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ९

॥ ११६ ॥ (ऋ० ३।४२।१-९)

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः १

तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावंभिः सुतम् । कुविन्न्वस्य तृप्णवः २
इन्द्रमित्था गिरो ममा-ऽच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ३
इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत ४ १३८५
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ५
विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ६
इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ७
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ८
त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ९ १३९०

॥ ११७ ॥ (ऋ० ३।४३।१-८) त्रिष्टुप्।

आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठा-स्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हि-स्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते १
आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः २
आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ३
आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद् वन्दनानि ४
कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद् राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ५ १३९५
आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः ६
इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार ।
यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टी-र्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ७
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र-मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ८

॥ ११८ ॥ (ऋ० ३।४४।१-५) बृहती।

अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ ग-ह्या तिष्ठ हरितं रथम १
हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः ।
विद्वांश्चिकित्वान् हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः २ १४००

द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ३
जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुध—मा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ४
इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुत—मुद् गा हरिभिराजत ५

॥ ११९ ॥ (ऋ० ३।४५।१-५)

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभि—र्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनो ऽति धन्वेव ताँ इहि १
वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळ्हा चिदारुजः २ १४०५
गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ३
आ नस्तुजं रयिं भरा—ऽशं न प्रतिजानते ।
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुही—न्द्र संपारणं वसु ४
स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः ।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ५

॥ १२० ॥ (ऋ० ३।४६।१-५) त्रिष्टुप ।

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याऽणी—न्द्र श्रुतस्य महतो महानि १
महाँ असि महिष वृष्ण्येभि—र्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् २ १४१०
प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ३
उरुं गभीरं जनुषाभ्यु१ग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ४
यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्य—ध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ५

॥ १११ ॥ (ऋ० ३।४७।१-५)

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् १
सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वा ऽथाभयं कृणुहि विश्वतो नः २ १४१५
उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोम मिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।
याँ आभजो मरुतो ये त्वा ऽन्वहन् वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ३
ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन् ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ४
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधान मकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायो ग्रं सहोदामिह तं हुवेम ५

॥ ११२ ॥ (ऋ० ३।४८।१-५)

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य १
यज्जायथास्तदहरस्य कामे ऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे २ १४२०
उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः ।
प्रयावयन्नचरद् गृत्सो अन्यान् महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ३
उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूया ऽऽमुष्या सोममपिबच्चमूषु ४
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ५

॥ ११३ ॥ (ऋ० ३।४९।१-५)

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन् विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन् ।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः १
यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः २ १४२५
सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ३

धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ४
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र—मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ५
॥ १२४ ॥ (ऋ० ३।५०।१-५)
इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान् ।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नै—रास्य हविस्तन्वः॑ काममृध्याः १
आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः ।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोः २ १४३०
गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपार—मिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः ।
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन् त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ३
इमं कामं मन्दया गोभिरश्वै—श्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ४
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र—मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ५
॥ १२५ ॥ (ऋ० ३।५१।१-१२) त्रिष्टुप्, १-३ जगती, १०-१२ गायत्री ।
चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१—मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभि—रमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे १
शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः ।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् २ १४३५
आकरे वसोर्जरिता पनस्यते ऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति ।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ३
नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थै—रभि प्र वीरमर्चता सबाधः ।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ४
पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति ।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ५
तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्या३पिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ६
इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्म—न्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ७ १४४०

स वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।
जातं यत् त्वा परि देवा अभूषन् महे भराय पुरुहूत विश्वे ८
अप्तूर्ये मरुत आपिरेषो ऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः ।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ९
इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्व१स्य गिर्वणः १०
यस्ते अनु स्वधामसत् सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्यम् ११
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्र बाहू शूर राधसे १२ १४४५

॥ ११६ ॥ (ऋ० ३।५२।१-८) त्रिष्टुप्, १-४ गायत्री, ६ जगती ।

धानावन्तं करम्भिण—मपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः १
पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्यं हव्यानि सिस्रते २
पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ३
पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः । इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ४
माध्यंदिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम् ।
प्र यत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ५ १४५०
तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः ६
पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ७
प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम् ।
दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ८

॥ ११७ ॥ (ऋ० ३।५३।२-१४) त्रिष्टुप् १० जगती, १२ अनुष्टुप्, १३ गायत्री ।

तिष्ठा सु कं मघवन् मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि ।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः २
शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीही—न्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम् ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदा—ऽथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ३ १४५५
जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनि—स्तदित् त्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।
यदा कदा च सुनवाम सोम—मग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ४
परा याहि मघवन्ना च याही—न्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ५

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ६
इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ७
रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं१ परि स्वाम्।
त्रिर्यद् दिवः परि मुहूर्तमागात् स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ८ १४६०
महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतो ऽस्तभ्नात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः।
विश्वामित्रो यदवहत् सुदास—मप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ९
हंसा इव कृणुथ श्लोकमद्रिभि—र्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु १०
उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्व—मश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः।
राजा वृत्रं जङ्घनत् प्रागपागु—दगथा यजाते वर आ पृथिव्याः ११
य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम्।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् १२
विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे। करदिन्नः सुराधसः १३ १४६५
किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन् रन्धया नः १४ १४६६

॥ ११८ ॥ (ऋ० ४।१६।१-२१) (१४६७-१६६६) वामदेवो गौतमः। त्रिष्टुप्।

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्ष—मिहाभिपित्वं करते गृणानः १
अव स्य शूराध्वनो नान्ते ऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधा—श्चिकितुषे असुर्याय मन्म २
कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात्।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारू—नह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ३
स्व१र्यद् वेदि सुदृशीकमर्कै—र्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ४ १४७०
ववक्ष इन्द्रो अमितमृजी—ष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा।
अतश्चिदस्य महिमा वि रे—च्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ५

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वा—नपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभि—र्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ६
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ७
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्द—राविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ८
अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त ९ १४७५
आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत् ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी १०
यासि कुत्सेन सरथमवस्यु—स्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन् कविर्यदहन् पार्याय भूषात् ११
कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून् प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके १२
त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांस—मृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत् कृष्णा नि वपः सहस्रा ऽत्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः १३
सूर उपाके तन्वं१ दधानो वि यत् ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत् १४ १४८०
इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन् त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थै—रोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः १५
तमिद् व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चि—न्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः १६
तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिंश्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य समृतिर्भवा—त्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः १७
भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्मो—रुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः १८
एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन् विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः १९ १४८५

एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नू चिद् यथा नः सख्या वियोष-दसन्न उग्रोऽविता तनूपाः २०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः २१

॥ १२९॥ (ऋ० ४।१७।१-२१) त्रिष्टुप्, १५ एकपदा विराट् ।

त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान् त्सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान् १
तव त्विषो जनिमन् रेजत द्यौ रेजद् भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः ।
ऋघायन्त सुभ्व१ः पर्वतास आर्दन् धन्वानि सरयन्त आपः २
भिनद् गिरिं शवसा वज्रमिष्ण-न्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।
वधीद् वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ३ १४९०
सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौ-रिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत् ।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्र-मनपच्युतं सदसो न भूम ४
य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ५
सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ६
त्वमध प्रथमं जायमानो ऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रति प्रवत आशयान-महिं वज्रेण मघवन् वि वृश्चः ७
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ८ १४९५
अयं वृतश्चातयते समीची-र्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्य-स्य प्रियासः सख्ये स्याम ९
अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्न-न्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळ्हं भयत एजदस्मात १०
समिन्द्रो गा अजयत् सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः ।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता संभरश्च वस्वः ११
कियत् स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत् पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः १२

क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोती—र्यर्ति रेणुं मघवा समोहम्।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौ—रुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् १३ १५००
अयं चक्रमिषणत् सूर्यस्य न्येतशं रीरमत् ससृमाणम्।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ १४
असिक्न्यां यजमानो न होता १५
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोति—मा च्यावयामोऽवते न कोशम् १६
त्राता नो बोधि ददृशान आपि—रभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम्।
सखा पिता पितृतमः पितृणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः १७
सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र १८ १५०५
स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्म—न्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः १९
एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत् सत्या चर्षणीधृदनर्वा।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे २०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः २१

॥ १३० ॥ (ऋ० ४।१८।१-१३)

[१३ वामदेवो गौतमः, १ इन्द्रः, ४ (उत्तरार्धर्चस्य),५-७ अदितिः]।

[१,४ उत्तरार्धस्य, ५,६,७ वामदेवः; २,३,४ पूर्वार्धस्य, ८-१३ इन्द्रः।] त्रिष्टुप।

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः १
नाहमतो निरया दुर्गहैतत् तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै २ १५१०
परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत् सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ३
किं स ऋधक् कृणवद् यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः।
नही न्वस्य प्रतिमानम—स्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ४

अवद्यमिव मन्यमाना गुहाक-रिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम्।
अथोदस्थात् स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ५
एता अर्षन्त्यललाभवन्ती-र्ऋतावरीरिव संक्रोशमानाः।
एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ६
किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्ते-न्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः।
ममैतान् पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद् वि सिन्धून् ७ १५१५
ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्यु-र्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत ८
ममच्चन ते मघवन् व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवा-ञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन ९
गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागा-मनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम्।
अरीळ्हं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् १०
उत माता महिषमन्ववेन-दमी त्वा जहति पुत्र देवाः।
अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन् त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ११
कस्ते मातरं विधवामचक्र-च्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम्।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद् यत् प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य १२ १५२०
अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम्।
अपश्यं जायाममहीयमाना-मधा मे श्येनो मध्वा जभार १३

॥१३१॥ (ऋ० ४।१९।१-११)

एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद् वृणते वृत्रहत्ये १
अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः २
अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्य-मबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र।
सप्त प्रति प्रवत आशयान-महिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ३
अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः।
दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजो ऽवाभिनत् ककुभः पर्वतानाम् ४ १५२५
अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन् त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ५

त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम्।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ६
प्राग्रुवो नभन्वो३ न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद् युवतीर्ऋतज्ञाः।
धन्वान्यज्राँ अपृणक् तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो३ दंसुपत्नीः ७
पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद् वि सिन्धून्।
परिष्ठिता अतृणद् बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ८
वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ।
व्य१न्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित् समरन्त पर्व ९ १५३०
प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्रा ऽऽविद्वाँ आह विदुषे करांसि।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्ता ऽपांसि राजन् नर्याविवेषीः १०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ११

॥ १३२ ॥ (ऋ० ४।२०।१-११)

आ न इन्द्रो दूरादा न आसा दभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः संगे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् १
आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छा ऽर्वाचीनोऽवसे राधसे च।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शी मं यज्ञमनु नो वाजसातौ २
इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत् सनिष्यसि क्रतुं नः।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ३ १५३५
उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ४
वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभि र्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता।
मर्यो न योषामभि मन्यमानो ऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ५
गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ६
न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्य।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रा ऽस्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ७
ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीना मुत व्रजमपवर्तासि गोनाम्।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान् वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ८ १५४०

कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु का चिदृष्वः ।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहो ऽथा दधाति द्रविणं जरित्रे ९
मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत् ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन् त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः १०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ११

॥ १३३ ॥ (ऋ० ४।२१।१-११)

आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वी र्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् १
तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन् ।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो३ न सम्राट् साह्वान् तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः २ १५४५
आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य ३
स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ४
उप यो नमो नमसि स्तभाय न्नियर्ति वाचं जनयन् यजध्यै ।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थै रेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ५
धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान् त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः ६
सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद् धिये प्रायसे मदाय ७ १५५०
वि यद् वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद् गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो३ वहन्ति ८
भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ९
एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्रा ड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य १०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ११

॥ १३४ ॥ (ऋ० ४।२२।१-११)

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान् करति शुष्म्या चित् ।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति १ १५५५
वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये २
यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत् प्र भूम ३
विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन् रेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत् परिज्मन् नोनुवन्त वाताः ४
ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित् सवनेषु प्रवाच्या ।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ५
ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः ।
अधा ह त्वद् वृषमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त ६ १५६०
अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः ।
यत् सीमनु प्र मुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ७
पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धुरा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः ।
अस्मद्र्यक् शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ८
अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ९
अस्माकमित् सु शृणुहि त्वमिन्द्राऽस्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान् ।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरंधीरस्माकं सु मघवन् बोधि गोदाः १०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ११ १५६५

॥ १३५ ॥ (ऋ० ४।२३।१-११) ८-१० ऋतं वा ।

कथा महामवृधत् कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः ।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय १
को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः २

कथा शृणोति हूयमानमिन्द्रः कथा शृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ३
कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविणं दीध्यानः ।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत ४
कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन् कामं सुयुजं ततस्रे ५ १५७०
किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम ।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्वर्ण चित्रतममिष आ गोः ६
द्रुहं जिघांसन् ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणा चिद् यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ७
ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वी-र्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ८
ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ९
ऋतं येमान ऋतमिद् वनो-त्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते १० १५७१
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ११

॥ १३६ ॥ (४।२४।१-११) त्रिष्टुप्, १० अनुष्टुप् ।

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्र-मर्वाचीनं राधस आ ववर्तत् ।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः १
स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात २
तामिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत् त्यागमुभयासो अग्मन् नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ३
क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्रा-ऽऽशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
सं यद् विशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ४ १५८०
आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त आदित् पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात् ।
आदित् सोमो वि पपृच्यादसुष्वी-नादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ५

कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थे—न्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन् तमित् सखायं कृणुते समत्सु ६
य इन्द्राय सुनवत् सोममद्य पचात् पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन् तस्मिन् दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्रः ७
यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद् वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः ८
भूयसा वस्नमचरत् कनीयो ऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद् दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम ९ १५८५
क इमं दशभिर्ममे—न्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जङ्घन—दथैनं मे पुनर्ददत १०
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ११

॥ १३७ ॥ (ऋ० ४।२५।१–८) त्रिष्टुप् ।

को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे १
को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती २
को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यां—ऽशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ३ १५९०
तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंस—ज्ज्योक् पश्यात् सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ४
न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत् प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ५
सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामि—र्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ६
न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रो ऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ७
इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ८ १५९५

❀

॥ १३८ ॥ (ऋ० ४।२६।१-३) [१-३ इन्द्रो वा] । [१-३ आत्मा वा] ।

अहं मनुरभवं सूर्यश्चा॒ऽहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जे ऽहं कविरुशना पश्यता मा १
अहं भूमिमददामार्याया॒ऽहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् २
अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य ।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ३

॥ १३९ ॥ (ऋ० ४।२८।१-५) [इन्द्रासोमौ वा ।]

त्वा युजा तव तत् सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धू॒नपावृणोदपिहितेव खानि १
त्वा युजा नि खिदत् सूर्यस्ये॒न्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि २ १६००
अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून् मध्यंदिनादभीके ।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत् ३
विश्वस्मात् सीमधमाँ इन्द्र दस्यून् विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रू॒नविन्देथामपचितिं वधत्रैः ४
एवा सत्यं मघवाना युवं त॒दिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।
आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित् ततृदाना ५

॥ १४० ॥ (ऋ० ४।२९।१-५)

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्या॒ङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः १
आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान् हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः २ १६०५
श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान् करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च ३
अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
उप त्मनि दधानो धुर्याशून् त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ४
त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ५

॥ १४१ ॥ (ऋ० ४।३०।१-८, १२-२४) गायत्री; ८, २४ अनुष्टुप्।

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । नकिरेवा यथा त्वम् १
सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः । सत्रा महाँ असि श्रुतः २ १६१०
विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः । यदहा नक्तमातिरः ३
यत्रोत बाधितेभ्य—श्चक्रं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ४
यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत । त्वमिन्द्र वनूँरहन् ५
यत्रोत मर्त्याय क—मरिणा इन्द्र सूर्यम् । प्रावः शचीभिरेतशम् ६
किमादुतासि वृत्रहन् मघवन् मन्युमत्तमः । अत्राह दानुमातिरः ७ १६१५
एतद् घेदुत वीर्य१—मिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् । स्त्रियं यद् दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ८
उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि । परि ष्ठा इन्द्र मायया १२
उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् । पुरो यदस्य संपिणक् १३
उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शम्बरम् १४
उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः । अधि पञ्च प्रधीँरिव १५ १६२०
उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आभजत् १६
उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः । इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् १७
उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्ररथावधीः १८
अनु द्वा जहिता नयो ऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् । न तत् ते सुम्नमष्टवे १९
शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे २० १६२५
अस्वापयद् दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः । दासानामिन्द्रो मायया २१
स घेदुतासि वृत्रहन् त्समान इन्द्र गोपतिः । यस्ता विश्वानि चिच्युषे २२
उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् । अद्या नकिष्टदा मिनत् २३
वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा । वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती २४

॥ १४२ ॥ (४।३१।१ १५) गायत्री, ३ पादनिचृत्।

कया नश्चित्र आ भुव—दूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता १ १६३०
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृळ्हा चिदारुजे वसु २
अभी षु णः सखीना—मविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ३
अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः । नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ४
प्रवता हि क्रतूना—मा हा पदेव गच्छसि । अभक्षि सूर्ये सचा ५
सं यत् त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे । अध त्वे अध सूर्ये ६ १६३५

उत स्मा हि त्वामाहुरि न्मघवानं शचीपते । दातारमविदीधयुम् ७
उत स्मा सद्य इत् परि शशमानाय सुन्वते । पुरू चिन्मंहसे वसु ८
नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः । न च्यौत्नानि करिष्यतः ९
अस्माँ अवन्तु ते शत मस्मान्त्सहस्रमूतयः । अस्मान् विश्वा अभिष्टयः १०
अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महो राये दिवित्मते ११ १६४०
अस्माँ अविड्ढि विश्वहे न्द्र राया परीणसा । अस्मान् विश्वाभिरूतिभिः १२
अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः । नवाभिरिन्द्रोतिभिः १३
अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते १४
अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य । वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि १५

॥ १४३ ॥ (ऋ० ४।३२।१-२२) गायत्री ।

आ तू न इन्द्र वृत्रह न्नस्माकमर्धमा गहि । महान् महीभिरूतिभिः १ १६४५
भृमिश्चिद् घासि तूतुजि रा चित्र चित्रिणीष्वा । चित्रं कृणोष्यूतये २
दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा । सखिभिर्ये त्वे सचा ३
वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः । अस्माँअस्माँ इदुदव ४
स नश्चित्राभिरद्रिवो ऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरा गहि ५
भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः । युजो वाजाय घृष्वये ६ १६५०
त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः । स नो यन्धि महीमिषम् ७
न त्वा वरन्ते अन्यथा यद् दित्ससि स्तुतो मघम् । स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ८
अभि त्वा गोतमा गिरा ऽनूषत प्र दावने । इन्द्र वाजाय घृष्वये ९
प्र ते वोचाम वीर्या३ या मन्दसान आरुजः । पुरो दासीरभीत्य १०
ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या । सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ११ १६५५
अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः । ऐषु धा वीरवद् यशः १२
यच्चिद्धि शश्वतामसी न्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे १३
अर्वाचीनो वसो भवा ऽस्मे सु मत्स्वान्धसः । सोमानामिन्द्र सोमपाः १४
अस्माकं त्वा मतीना मा स्तोम इन्द्र यच्छतु । अर्वागा वर्तया हरी १५
पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् १६ १६६०
सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य खार्यः १७
सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि । अस्मत्रा राध एतु ते १८
दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि । भूरिदा असि वृत्रहन् १९

भूरिंदा भूरिं देहि नो मा दुभ्रं भूर्या भंर । भूरि घेदिंन्द्र दित्ससि २०
भूरिदा ह्यसिं श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन् । आ नों भजस्व राधंसि २१ १६६५
प्र तें बभ्रू विंचक्षण शंसामि गोषणो नपात् । माभ्यां गा अनु शिश्रथः २२ १६६६

॥ १४४ ॥ (ऋ० ५।२९।१-१५)

(१६६७-१६८१) गौरिवीतिः शाक्त्यः । [९ (प्रथमपादस्य) उशना वा] । त्रिष्टुप् ।

त्र्यर्यमा मनुंषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षा—स्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः १
अनु यदीं मरुतो मन्दसान—मार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्यं ।
आदत्त वज्रमभि यदहिं ह—न्नपो यह्वीरसृजत् सर्तवा उं २
उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्ये—न्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्द—दहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ३
आद् रोदसी वितरं वि ष्कंभायत संविव्यानश्चिद् भियसें मृगं कः
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ४ १६७०
अध क्रत्वां मघवन् तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम् ।
यत सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपंरा एतशे कः ५
नव यदस्य नवतिं च भोगान् त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत ।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम् ६
सखा सख्ये अपचत् तूयमग्नि—रस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि ।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद् वृत्रहत्याय सोमम् ७
त्री यच्छता महिषाणामघो मा—स्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघानं ८
उशना यत् सहस्यैऽरयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ९ १६७५
प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद् वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः १०
स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्ध—न्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन् पक्तीरपिबः सोममस्य ११
नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् १२

कथो नु ते परि चराणि विद्वान् वीर्या मघवन् या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम १३
एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्य—परीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन् कृणवो दधृष्वान् न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः १४ १६८०
इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् १५ १६८१

॥ १४५ ॥ (ऋ० ५।३०।१-११) (१६८२-१६९२) बभ्रुरात्रेयः ।

क्व१स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन् तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती १
अवाचचक्षं पदमस्य सस्व—रुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहु—रिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम २
प्र नु वयं सुते या ते कृतानी—न्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान् वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ३
स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ४ १६८५
परो यत् त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद् दासपत्नीः ५
तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ६
वि षू मृधो जनुषा दानमिन्व—न्नहन् गवा मघवन्त्संचकानः ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो य—दवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ७
युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित् स्वर्यं१ वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ८
स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद् युधये दस्युमिन्द्रः ९ १६९०
समत्र गावोऽभितोऽनवन्ते—हेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकै—र्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् १०
यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्द—न्नरोरवीद् वृषभः सादनेषु ।
पुरंदरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ११ १६९१

॥ १४६ ॥ (५।३१।१ ८, १० - १३) (१६९३--१७०४) अवस्युरात्रेयः, (८ तृतीयपादस्य कुत्सो वा, चतुर्थपादस्य उशना वा) ।

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् १
आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व ।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्य—मेनांश्चिज्जनिवतश्चकर्थ २
उद्यत सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत् सुदुघा वव्रे अन्त—र्वि ज्योतिषा संववृत्वत् तमोऽवः ३ १६९५
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कै—रवर्धयन्नहये हन्तवा उ ४
वृष्णे यत् ते वृषणो अर्कमर्चा—निन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ५
प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन् या चकर्थ ।
शक्तीवो यद् विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ६
तदिन्नु ते करणं दस्म विप्रा—ऽहिं यद् घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित् परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ७
त्वमपो यदवे तुर्वशाया—ऽरमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद् वामुशनारन्त देवाः ८ १७००
वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान् कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् १०
सूरश्चिद् रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत् सनिष्यति क्रतुं नः ११
आयं जना अभिचक्षे जगामे—न्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन् ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति १२
ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्यो—जो जनेषु येषु ते स्याम १३ १७०४

॥ १४७ ॥ (ऋ० ५।३२।१-१२) (१७०५-१७१६) गातुरात्रेयः ।

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान् बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद् वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् १ १७०५

त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः २
त्यस्यं चिन्महतो निर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।
य एक इदंप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अंजनिष्ट तव्यान् ३
त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम् ।
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम् ४
त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तम मर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ५
त्यं चिदित्था कत्पयं शयान मसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्यो च्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ६ १७१०
उद् यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ७
त्यं चिदर्णं मधुपं शयान मसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचम् ८
को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः ।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ९
न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।
सं यदोजो युवते विश्वमाभि रनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त १०
एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ११ १७१५
एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र १२ १७१६

॥ १४८ ॥ (ऋ० ५।३३।१-१०) (१७१७-१७३५) प्राजापत्यः संवरणः ।

महिं महे तवसे दीध्ये नॄ निन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान् ।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत १
स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कै र्हरीणां वृषन् योक्त्रमश्रेः ।
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् २
न ते त इन्द्राभ्य१स्मदृष्वा ऽयुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता ऽऽ रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ३

पुरू यत् त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन्।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ४ १७२०
वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः।
आस्मार्ञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ५
पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ६
एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून्।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ७
उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरे स्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ८
उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ९ १७२५
उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् १०

॥१४९॥ (ऋ० ५।३४।१-९) जगती, ९ त्रिष्टुप्।

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन १
आ यः सोमेन जठरमपिप्रता ऽमन्दत मघवा मध्वो अन्धसः।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् २
यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ३
यस्यावधीत् पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते।
वेतीद्वस्य प्रयता यतंकरो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः ४ १७३०
न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ५
वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजो ऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ६
समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ७

सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसा—ववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्य१॒न्यमकृत प्रवेप—न्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ८
सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन् क्षत्रममवत् त्वेषमस्तु ९ १७३५

॥ १५० ॥ (५।३५।१-८) (१७३६-१७४९) प्रभूवसुराङ्गिरसः । अनुष्टुप्, ८ पङ्क्तिः ।

यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर । अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् १
यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः । यद् वा पञ्च क्षितीना—मवस्तत् सु न आ भर २
आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे । वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ३
वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः । स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ४
त्वं तमिन्द्र मर्त्य—ममित्रयन्तमद्रिवः । सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ५ १७४०
त्वामिद् वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः । उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ६
अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु । सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ७
अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरंध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ८

॥ १५१ ॥ (ऋ० ५।३६।१-६) त्रिष्टुप्, ३ जगती ।

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद् दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाण—श्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् १
आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत् सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे २ १७४५
चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन् पुरूवसुः ३
एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रे—यर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन् यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ४
वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौ—र्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन् भरे धाः ५
यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान् त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ६ १७४९

॥ १५२ ॥ (ऋ० ५।३७।१-५) (१७५०-१७६८) भौमोऽत्रिः । त्रिष्टुप् ।

सं भानुना यतते सूर्यस्या—ऽऽजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान् य इन्द्राय सुनवामेत्याह १ १७५०

समिद्धाग्निर्वनवत् स्तीर्णबर्हि र्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्य यदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् २
वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद् रथ आ च घोषात् पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ३
न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्र स्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ४
पुष्यात् क्षेमे अभि योगे भवा त्युभे वृतौ संयती सं जयाति ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ५

॥ १५३ ॥ (ऋ० ५।३८।१-५) अनुष्टुप् ।

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो । अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय १ १७५५
यदीमिन्द्र श्रवाय्य मिषं शविष्ठ दधिषे । पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् २
शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः । उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ३
उतो नो अस्य कस्य चिद् दक्षस्य तव वृत्रहन् । अस्मभ्यं नृम्णमा भरा ऽस्मभ्यं नृमणस्यसे ४
नू त आभिरभिष्टिभि स्तव शर्मञ्छतक्रतो । इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ५

॥ १५४ ॥ (ऋ० ५।३९।१-५) अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः ।

यदिन्द्र चित्र मेहना ऽस्ति त्वादातमद्रिवः । राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर १ १७६०
यन्मन्यसे वरेण्य मिन्द्र द्युक्षं तदा भर । विद्याम तस्य ते वय मकूपारस्य दावने २
यत् ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् । तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ३
मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् । इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ४
अस्मा इत् काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ५

॥ १५५ ॥ (ऋ० ५।४०।१-४) उष्णिक्, ४ त्रिष्टुप् ।

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम १ १७६५
वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम २
वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ३
ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट् छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ४ १७६८

॥ १५६ ॥ (ऋ० ८।३६।१-७)
(१७६९-१७८२) श्यावाश्व आत्रेयः । शक्करी, ७ महापङ्क्तिः ।

अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते १
प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते २ १७७०
ऊर्जा देवाँ अवस्योजसा त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ३
जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ४
जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ५
अत्रीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ६
श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन् ७ १७७५

॥ १५७ ॥ (ऋ० ८।३७।१-७) महापङ्क्तिः, १ अतिजगती ।

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वतः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः १
सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः २
एकराळस्य भुवनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ३
सस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ४
क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ५ १७८०
क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ६

श्यावाश्वस्य रेभत--स्तथा शृणु यथाशृणो--रत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र क्षत्राणि वर्धयन् ७ १७८०

॥ १५८ ॥ (ऋ० ८।९१।१-७)

(१७८३-१७८९) आत्रेयी अपाला । अनुष्टुप्, १-२ पङ्क्तिः ।

कन्या३ वारवायती सोममपि स्रुताविदत् ।
अस्तं भरन्त्यब्रवी--दिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा १
असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत् ।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिण--मपूपवन्तमुक्थिनम् २
आ चन त्वा चिकित्सामो ऽधि चन त्वा नेमसि ।
शनैरिव शनकैरिवे--न्द्रायेन्दो परि स्रव ३ १७८५
कुविच्छकत् कुवित् करत् कुविन्नो वस्यसस्करत् ।
कुवित् पतिद्विषो यती--रिन्द्रेण संगमामहै ४
इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरा--मादिदं म उपोदरे ५
असौ च या न उर्वरा--दिमां तन्वं१ मम ।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ६
खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पू--त्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् ७ १७८९

॥ १५९ ॥ (ऋ० ८।२४।१-२७)

(१७९०-१८१६) विश्वमना वैयश्वः । उष्णिक् ।

सखाय आ शिषामहि ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे १ १७९०
शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा । मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि २
स नः स्तवान आ भर रयिं चित्रश्रवस्तमम् । निरेके चिद् यो हरिवो वसुर्ददिः ३
आ निरेकमुत प्रिय--मिन्द्र दर्षि जनानाम् । धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर ४
न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरन्त आमुरः । न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु ५
आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋणोम्यद्रिवः । आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ६ १७९५
विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम । उग्र प्रणेतरधि षू वसो गहि ७
वयं ते अस्य वृत्रहन् विद्याम शूर नव्यसः । वसोः स्पार्हस्य पुरुहूत राधसः ८
इन्द्र यथा ह्यस्ति ते ऽपरीतं नृतो शवः । अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुषे ९

आ वृंषस्व महामह महे नृतम राधसे । दृळ्हाश्चिंद् दृह्य मघवन् मघत्तये १०
नू अन्यत्रां चिदद्रिव स्त्वन्नों जग्मुराशसः । मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः ११ १८००
नह्यं१ङ्ग नृतो त्व दुन्यं विन्दामि राधसे । राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः १२
एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु । प्र राधसा चोदयाते महित्वना १३
उपो हरींणां पतिं दक्षं पृञ्चन्तमब्रवम् । नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य १४
नह्यं१ङ्ग पुरा चन जज्ञे वीरतरस्त्वत् । नकीं राया नैवथा न भन्दना १५
एदु मध्वों मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः १६ १८०५
इन्द्रं स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश शवसा न भन्दना १७
तं वो वाजानां पति महूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् १८
एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् । कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् १९
अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः । घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत २०
यस्यामितानि वीर्या३ न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा २१ १८१०
स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् । अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे २२
एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् । सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् २३
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव २४
तदिन्द्राव आ भर येना दंसिष्ठ कृत्वने । द्विता कुत्साय शिश्नथो नि चोदय २५
तमु त्वा नूनमीमहे नव्यं दंसिष्ठ सन्यसे । स त्वं नो विश्वा अभिमातीः सक्षणिः २६ १८१५
य ऋक्षादंहसो मुचद् यो वार्यात् सप्त सिन्धुषु । वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः २७ १८१६

॥ १६० ॥ (ऋ० ८।४६।१-२० २९-३१;३३)

(१८१७-१८४०) वशोऽश्व्यः । गायत्री, १ पादनिचृत्, ५ ककुप्, ७ बृहती, ८ अनुष्टुप्, ९ सतोबृहती, ११-१२ विपरीतोत्तरः प्रगाथः=(बृहती, विपरीता), १३ द्विपदा जगती, १४ बृहती पिपीलिकमध्या, १५ ककुम्न्यंकुशिरा, १६ विराट्, १७ जगती, १८ उपरिष्टाद् बृहती, १९ बृहती, २० विषमपदा बृहती, ३० द्विपदा विराट्, ३१ उष्णिक् ।

त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् १
त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषाम् । विद्म दातारं रयीणाम् २
आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो । गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ३
सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रः पान्त्यद्रुहः ४ १८२०
दधानो गोमदश्ववत् सुवीर्यमादित्यजूत एधते । सदा राया पुरुस्पृहा ५
तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम् । ईशानं राय ईमहे ६

तस्मिन् हि सन्त्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा ।
तमा वहन्तु सप्तयः पुरूवसुं मदाय हरयः सुतम् ७
यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः ।
य आददिः स्व१र्नृभि र्यः पृतनासु दुष्टरः ८
यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ९ १८२५
गव्यो षु णो यथा पुरा ऽश्वयोत रथया । वरिवस्य महामह १०
नहि ते शूर राधसो ऽन्तं विन्दामि सत्रा ।
दशस्या नो मघवन्नू चिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ ११
य ऋष्वः श्रावयत्सखा विश्वेत्स वेद जनिमा पुरुष्टुतः ।
तं विश्वे मानुषा युगे न्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुचः १२
स नो वाजेष्वविता पुरूवसुः पुरःस्थाता मघवा वृत्रहा भुवत् १३
अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा १४ १८३०
ददी रेक्णस्तन्वे ददिर्वसु ददिर्वाजेषु पुरुहूत वाजिनम् । नूनमथ १५
विश्वेषामिरज्यन्तं वसूनां सासह्वांसं चिदस्य वर्पसः । कृपयतो नूनमत्यथ १६
महः सु वो अरमिषे स्तवामहे मीळ्हुषे अरंगमाय जग्मये ।
यज्ञेभिर्गीर्भिर्विश्वमनुषां मरुता मियक्षसि गाये त्वा नमसा गिरा १७
ये पातयन्ते अज्मभि र्गिरीणां स्नुभिरेषाम् ।
यज्ञं महिष्वणीनां सुम्नं तुविष्वणीनां प्राध्वरे १८
प्रभङ्गं दुर्मतीना मिन्द्र शविष्ठा भर ।
रयिमस्मभ्यं युज्यं चोदयन्मते ज्येष्ठं चोदयन्मते १९ १८३५
सनितः सुसनितरुग्र चित्र चेतिष्ठ सूनृत ।
प्रासहा सम्राट् सहुरिं सहन्तं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् २०
अध प्रियमिषिराय षष्टिं सहस्रासनम् । अश्वानामिन्न वृष्णाम् २१
गावो न यूथमुप यन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः २२
अध यच्चारथे गणे शतमुष्ट्राँ अचिक्रदत् । अध श्वित्नेषु विंशतिं शता २३
अध स्या योषणा मही प्रतीची वशमश्व्यम् । अधिरुक्मा वि नीयते २४ १८४०

॥ १६१ ॥ (ऋ० ६।१७।१-१५)

(१८४१-२००५) बार्हस्पत्यो भरद्वाज । त्रिष्टुप्; १५ द्विपदा त्रिष्टुप् ।

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र ।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः १
स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान् वृषभो यो मतीनाम् ।
यो गोत्रभिद् वज्रभृद् यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् २
एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ३
ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम् ।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ४
येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानो ऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ५ १८४५
तव क्रत्वा तव तद् दंसनाभि-रामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्हो-दूर्वाद् गा असृजो अङ्गिरस्वान् ६
पप्राथ क्षां महि दंसो व्युर्वी-मुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ७
अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान् त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ८
अध द्यौश्चित् ते अप सा नु वज्राद् द्वितानमद् भियसा स्वस्य मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद् विश्वायुः शयथे जघान ९
अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् १० १८५०
वर्धान् यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम् ।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन् वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ११
आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् १२
एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम् ।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्र-मा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् १३
स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान् ।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन् दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र १४

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः १५ १८५५

॥ १६२ ॥ (ऋ० ६।१८।१-१५)

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभि-र्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् १
स युध्मः सत्वा खजकृत् समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी ।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणा-मेकः कृष्टीनामभवत् सहावा २
त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँ-रेकः कृष्टीरवनोरार्याय ।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१ तत् त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ३
सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयो ऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ४
तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।
हन्नच्युतच्युद् दस्मेषयन्त-मृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ५ १८६०
स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत् समत्सु ६
स मज्मना जनिम मानुषाणा-ममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ७
स यो न मुहे न मिथू जनो भूत् सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च ।
वृणक् पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ८
उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्रा ऽभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ९
अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा ।
गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोजा-ऽध्वानयद् दुरिता दम्भयच्च १० १८६५
आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चि-ददेव ईशे पुरुहूत योतोः ११
प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वे-र्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः १२
प्र तत् ते अद्या करणं कृतं भूत् कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षा-मुत् तूर्वयाणं धृषता निनेथ १३

❀

अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन् विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः १४
अनु द्यावापृथिवी तत् त ओजो ऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत् ते अस्त्यु-क्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः १५ १८७०

॥ १६३ ॥ (ऋ० ६।१९।१-१३)

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायो-रुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् १
इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद् बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद् यो वावृधे असामि २
पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्य१क् सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ३
तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकै-रिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित् पूर्वे जरितार आसु-रनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ४
धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
सं जग्मिरे पथ्या३ रायो अस्मिन् त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ५ १८७५
शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणा-मस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ६
यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम् ।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ७
आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून् तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ८
आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चा-दोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वा-ङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ९
नृवत् त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन् धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् १० १८८०
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधान-मकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायो-ग्रं सहोदामिह तं हुवेम ११
जनं वज्रिन् महि चिन्मन्यमान-मेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु १२

वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोःशत्रोरुत्तर इत् स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः १३

॥ १६४ ॥ (ऋ० ६।२०।१-१३) त्रिष्टुप्, ७ विराट्।

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्य—स्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान् ।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दुद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् १
दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रा ऽसुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम् ।
अहिं यद् वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन् विष्णुना सचानः २ १८८५
तूर्वन्नोजीयान् तवसस्तवीयान् कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत् पुरां दर्त्नुमावत् ३
शतैरपद्रन् पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत किं चन प्र ४
महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत् पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये क—रिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ५
प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ६
वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन् तद् रेक्णो अप्रमृष्य—मृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ७ १८९०
स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ८
स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद् वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ९
सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्द—र्द्धन् दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् १०
त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भू—र्वरिवस्यन्नुशने काव्याय ।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ११
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमती—र्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत् समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति १२ १८९५
तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप् ।
दीदयदित् तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन् दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्य१र्कैः १३

॥ १६५ ॥ (ऋ० ६।२१।१-८,१०,१२)

इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या १
तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् २
स इत् तमोऽवयुनं ततन्वत् सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ३
यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु ।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ४ १९००
इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत सखायः ।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ५
तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः ।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात् त्वा महान्तम् ६
अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत् सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ७
स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।
त्वं ह्याऽपिः प्रदिवि पितॄणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ ८
इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति १० १९०५
स नो बोधि पुरएता सुगेषूत दुर्गेषु पथिकृद् विदानः ।
ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् १२

॥ १६६ ॥ (६।२२।१-११)

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान् त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् १
तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् २
तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो मादयध्यै ३

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चि — ज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ४ १९१०
तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठा — मिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ५
अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ६
तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मे — न्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ७
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ८
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इंद्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ९ १९१५
आ संयतमिंद्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि १०
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ११

॥ १६७ ॥ (ऋ० ६.२३.१-१०)

सुत इत् त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद् वा युक्ताभ्यां मघवन् हरिभ्यां बिभ्रद् वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि १
यद् वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद् वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्य — दरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् २
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ३ १९२०
गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ४
अस्मै वयं यद् वावान तद् विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थे — न्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ५
ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत् त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शंतमानि रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ६

स नो बोधि पुरोळाशं रराणः पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदो-रुं कृधि त्वायत उ लोकम् ७
स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ८ १९२५
तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित् तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ९
एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद् यथा जरित्र उत सूरि-रिंद्रो रायो विश्ववारस्य दाता १०

॥ १६८ ॥ (ऋ० ६।२४।१-१०)

वृषा मद इंद्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थै-र्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः १
ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् २
अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन् प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यूऽतयो रुरुहुरिंद्र पूर्वीः ३ १९३०
शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः संचरणीः ।
वत्सानां न तंतयस्त इंद्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ४
अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वो ऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिंद्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषा ऽर्यो वशस्य पर्येतास्ति ५
वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठा-दुक्थेभिरिंद्रानयंत यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयंत आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ६
न यं जरंति शरदो न मासा न द्याव इंद्रमवकर्शयंति ।
वृद्धस्य चिद् वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ७
न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इंद्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद् भवति गाधमस्मै ८ १९३५
गम्भीरेण न उरुणामत्रिन् प्रेषो यन्धि सुतपावन् वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्य-न्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ९
सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः १०

॥ १६९ ॥ (ऋ० ६।२५।१-९)

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान् न उग्र १
आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्य—न्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूची—रार्याय विशोऽव तारीर्दासीः २
इन्द्र जामय उत येऽजामयो ऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ३
शूरो वा शूरं वनते शरीरै—स्तनूरुचा तरुषि यत् कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ४
नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णु—र्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ५
स पत्यत उभयोर्नृम्णमयो—र्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ६
अध स्मा ते चर्षणयो यदेजा—निन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ७
अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रे—न्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ८ १९४१
एवा नः स्पृधः समजा सम—त्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ९

॥ १७० ॥ (ऋ० ६।२६।१-८)

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः
सं यद् विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन् दाः १
त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् २
त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् ।
त्वं शिरो अमर्मणः पराह—न्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ३
त्वं रथं प्र भरो योधमृष्व—मावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन् त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ४ १९५०

त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन् प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ५
त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमै र्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन् षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ६
अहं चन तत् सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत् स्तवन्ते सधवीर वीरा स्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ७
वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ८

॥ १७१ ॥ (ऋ० ६।२७।१-७)

किमस्य मदे किम्वस्य पीता विन्द्रः किमस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः १ १९५५
सदस्य मदे सद्वस्य पीता विन्द्रः सदस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि सत् ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः २
नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन् मघवत्त्वस्य विद्म ।
न राधसोराधसो नूतनस्ये न्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ३
एतत् त्यत् त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत् ते निहतस्य शुष्मात् स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ४
वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषो ऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् ।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन् पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ५
त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या ।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन् ६ १९६०
यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा ।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद् वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ७

॥ १७२ ॥ (ऋ० ६।२९।१-६)

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपु र्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् १
आ यस्मिन् हस्ते नर्या मिमिक्षु रा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयो राध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः २

श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षु र्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान्।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नृतविषिरो बभूथ ३
स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद् यस्मिन् पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ४ १९६५
न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ५
एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तू ती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ६
॥ १७३ ॥ (ऋ० ६।३०।१-५)

भूय इद् वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वसूनि।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे १
अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद् वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् २
अद्या चिन्नू चित् तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदु स्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ३ १९७०
सत्यमित् तन्न त्वावाँ अन्यो अस्ती न्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान्।
अहन्नहिं परिशयानमर्णो ऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ४
त्वमपो वि दुरो विषूची रिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ५
॥ १७४ ॥ (ऋ० ६।३१।१-५)

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रे न्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वा नृधीमहि सधमादस्ते अद्य १
प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन् पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन्।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा २
आसस्राणासः शवसानमच्छे न्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयु र्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ३ १९७५
वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्ती न्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ४
इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दाते न्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ऽऽ ता सूरिः पृणति तूतुजानः ५

॥ १७५ ॥ (ऋ० ६।३८।१-५)

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद् द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य याम—ञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः १
दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्या—न्मद्र्य१गिन्द्रमियमृच्यमाना २
तं वो धिया परमया पुराजा—मजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन् महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ३ १९८०
वर्धाद् यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तो—र्वर्धान् मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ४
एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।
महामुग्रमवसे विप्र नून—मा विवासेम वृत्रतूर्येषु ५

॥ १७६ ॥ (ऋ० ६।३९।१-५)

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्ने—र्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः ।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवे—षो युवस्व गृणते गोअग्राः १
अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः ।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणींर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः २
अयं द्योतयदद्युतो व्य१क्तून् दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र ।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ३ १९८५
अयं रोचयदरुचो रुचानो३ ऽयं वासयद् व्यृ१तेन पूर्वीः ।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ४
नू गृणानो गृणते प्रत्न राज—न्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः ।
अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नॄनृचसे रिरीहि ५

॥ १७७ ॥ (ऋ० ६।४०।१-५)

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदाया—ऽव स्य हरी वि मुचा सखाया ।
उत प्र गाय गण आ निषद्या—ऽथा यज्ञाय गृणते वयो धाः १
अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन् ।
तमु ते गावो नर आपो अद्रि—रिन्दुं समह्यन् पीतये समस्मै २
समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ।
त्वायता मनसा जोहवीमी—न्द्रा याहि सुविताय महे नः ३ १९९०

आ याहि शश्वदुशता ययाथे॑न्द्र॑ महा मन॑सा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्मा॑णि शृणव इमा नो ऽथा॑ ते यज्ञस्तन्वे३ वयो॑ धात् ४
यदि॑न्द्र दिवि पार्ये यदृधग् यद् वा स्वे सद॑ने यत्र वासि॑ ।
अतो॑ नो यज्ञमव॑से नियुत्वा॑न् त्सजोषा॑: पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ५

॥ १७८ ॥ (ऋ० ६।४१।१-५)

अहे॑ळमान उप॑ याहि यज्ञं तुभ्यं॑ पवन्त इन्द॑वः सुतास॑: ।
गावो न व॑ज्रिन्त्स्वमोको अच्छे॑न्द्रा ग॑हि प्रथमो यज्ञिया॑नाम् १
या ते॑ काकुत् सुकृ॑ता या वरि॑ष्ठा यया शश्वत पिब॑सि मध्व॑ ऊर्मिम् ।
तया॑ पाहि प्र ते॑ अध्वर्युर॑स्थात सं ते वज्रो॑ वर्ततामिन्द्र गव्युः २
एष द्रप्सो वृ॑षभो विश्वरू॑प इन्द्रा॑य वृष्णे सम॑कारि सोम॑: ।
एतं पि॑ब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशि॑षे प्रदिवि यस्ते अन्न॑म् ३ १९९५
सुतः सोमो असु॑तादिन्द्र वस्या॑नयं श्रेया॑ञ्चिकितुषे रणा॑य ।
एतं ति॑तिर्व उप॑ याहि यज्ञं तेन विश्वास्तवि॑षीरा पृणस्व ४
ह्वया॑मसि त्वेन्द्र॑ याह्यर्वा॑ङरं ते सोम॑स्तन्वे॑ भवाति ।
शत॑क्रतो मादय॑स्वा सुतेषु प्रास्माँ अ॑व पृत॑नासु प्र विक्षु ५

॥ १७९ ॥ (ऋ० ६।४२।१-४) अनुष्टुप्, ४ बृहती।

प्रत्य॑स्मै पिपी॑षते विश्वा॑नि विदुषे॑ भर । अरंगमाय जग्मये ऽप॑श्चाद्दघ्वने नर॑ १
एमे॑नं प्रत्येत॑न सोमे॑भिः सोमपात॑मम् । अम॑त्रेभिर्ऋजीषिण॑मिन्द्रं॑ सुतेभिरिन्दु॑भिः २
यदी॑ सुतेभिरिन्दु॑भिः सोमे॑भिः प्रतिभूष॑थ । वेदा विश्व॑स्य मेधि॑रो धृषत तंतमिदेष॑ते ३ २०००
अस्मा॑अस्मा इदन्ध॑सो ऽध्वर्यो॑ प्र भ॑रा सुतं। कुवित् सम॑स्य जेन्य॑स्य शर्ध॑तो ऽभिश॑स्तेरवस्पर॑त ४

॥ १८० ॥ (ऋ० ६।४३।१-४) उष्णिक्।

यस्य त्यच्छम्ब॑रं मदे दिवो॑दासाय रन्धय॑: । अयं स सोम॑ इन्द्र ते सुतः पिब॑ १
यस्य॑ तीव्रसुतं मदं॑ मध्यमन्तं॑ च रक्ष॑से । अयं स सोम॑ इन्द्र ते सुतः पिब॑ २
यस्य गा अन्तरश्म॑नो मदे॑ दृळ्हा अवासृ॑जः। अयं स सोम॑ इन्द्र ते सुतः पिब॑ ३
यस्य॑ मन्दानो अन्ध॑सो माघो॑नं दधिषे शव॑ः। अयं स सोम॑ इन्द्र ते सुतः पिब॑ ४ २००५

॥ १८१ ॥ (ऋ० ६।३१।१-५)

(२००६-२०१५) सुहोत्रो भारद्वाजः । त्रिष्टुप्, ४ शक्वरी।

अभू॑रेको॑ रयिपते रयीणा॑मा हस्त॑योरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तन॑ये च सूरे ऽवो॑चन्त चर्षणयो विवा॑चः १

त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वा ऽच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते २
त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्रा ऽशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ३
त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ४
स सत्यसत्वन् महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ५ २०१०

॥ १८२ ॥ (ऋ० ६।३२।१-५)

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शंतमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् १
स मातरा सूर्येणा कवीना मवासयद् रुजदद्रिं गृणानः ।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् २
स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन् मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन् दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ३
स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीना मा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ४
स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यै रप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट् ।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ५ २०१५

॥ १८३ ॥ (ऋ० ६।३३।१-५)

(२०१६-२०२५) शुनहोत्रो भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत् स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् १
त्वां हीऽ३न्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीँरशाय स्त्वोत इत् सनिता वाजमर्वा २
त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान् दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कै रा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ३
स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ४

नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन् दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ५ २०२०

॥ १८४ ॥ (ऋ० ६।३४।१-५)

सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वी—र्वि च त्वद् यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का १
पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न महे शवसे युजानो३ ऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् २
न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणी—रिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शतं यत् सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ३
अस्मा एतद् दिव्य१ चैर्व मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ४
अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।
असद् यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ५ २०२५

॥ १८५ ॥ (ऋ० ६।३५।१-५)

(२०२६-२०३५) नरो भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

कदा भुवन् रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः १
कर्हि स्वित् तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् नीळयासे जयाजीन् ।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्वि—न्द्र द्युम्नं स्वर्वद् धेह्यस्मे २
कर्हि स्वित् तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ३
स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ४
तमा नूनं वृजनमन्यथा चि—च्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे ।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनो—राङ्गिरसान् ब्रह्मणा विप्र जिन्व ५ २०३०

॥ १८६ ॥ (ऋ० ६।३६।१-५)

सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः ।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद् देवेषु धारयथा असुर्यम् १

अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय ।
स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये २
तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति ३
स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनाना—मेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ४
स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयु—र्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ५ २०३५

॥ १८७ ॥ (ऋ० ६।४४।१-२४)

(२०३६-२१०३) शंयुर्बार्हस्पत्यः । त्रिष्टुप्, १-६ अनुष्टुप्, ७-९ (८ वा) विराट् ।

यो रयिवो रयिंतमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः । सोमः सुतः स इंद्र ते ऽस्ति स्वधापते मदः १
यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् । सोमः सुतः स इंद्र ते ऽस्ति स्वधापते मदः २
येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः । सोमः सुतः स इंद्र ते ऽस्ति स्वधापते मदः ३
त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् । इंद्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ४
यं वर्धयंतीद् गिरः पतिं तुरस्य राधसः । तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ५ २०४०
तद् व उक्थस्य बर्हणे—न्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद् रोहंति सक्षितः ६
अविदद् दक्षं मित्रो नवीयान् पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत ।
ससवान्स्तौलाभिर्धौतरीभि—रुरुष्या पायुरभवत सखिभ्यः ७
ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन ।
दधानो नाम महो वचोभि—र्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ८
द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभि—र्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ९
इंद्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः १० २०४५
मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ट इंद्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन् प्र वृहापृणतः ११
उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्ती—न्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन् मघोनः १२

अध्वर्यो वीर प्र महे सुताना-मिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा।
यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभि-र्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् १३
अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वा-निन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै १४
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः १५ २०५०

इदं त्यत पात्रमिन्द्रपान-मिंद्रस्य प्रियममृतमपायि।
मत्सद् यथा सौमनसाय देवं व्य१स्मद् द्वेषो युयवद् व्यंहः १६
एना मंदानो जहि शूर शत्रू-ञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान्।
अभिषेणाँ अभ्या३देदिशानान् पराच इंद्र प्र मृणा जही च १७
आसु ष्मा णो मघवन्निंद्र पृ-त्स्व१स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इंद्र सूरीन् कृणुहि स्मा नो अर्धम् १८
आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु १९
आ ते वृषन् वृषणो द्रोणमस्थु-र्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम् २० २०५५

वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय २१
अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत्।
अयं स्वस्य पितुरायुधानी-न्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः २२
अयमकृणोदुषसः सुपत्नी-रयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् २३
अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभाय-दयं रथमयुनक् सप्तरश्मिम्।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् २४

॥ १८८ ॥ (ऋ० ६।४५।१-३०) गायत्री, २९ अतिनिचृत्।

य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा १ २०६०
अविप्रे चिद् वयो दध-दनाशुना चिदर्वता । इन्द्रो जेता हितं धनम् २

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ३
सखायो ब्रह्मवाहसे ऽर्चत प्र च गायत । स हि नः प्रमतिर्मही ४
त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि । उतेदृशे यथा वयम् ५
नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः । नृभिः सुवीर उच्यसे ६ २०६५
ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम् । गां न दोहसे हुवे ७
यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता । वीरस्य पृतनाषहः ८
वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते । वृह माया अनानत ९
तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते । अहूमहि श्रवस्यवः १०
तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने । हव्यः स श्रुधी हवम् ११ २०७०

धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान् । त्वया जेष्म हितं धनम् १२
अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते । भरे वितन्तसाय्यः १३
या त ऊतिरमित्रहन् मक्षूजवस्तमासति । तया नो हिनुही रथम् १४
स रथेन रथीतमो ऽस्माकेनाभियुग्वना । जेषि जिष्णो हितं धनम् १५
य एक इत तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः । पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः १६ २०७५

यो गृणतामिदासिथाऽऽपिरूती शिवः सखा । स त्वं न इन्द्र मृळय १७
धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः । सासहीष्ठा अभि स्पृधः १८
प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् । ब्रह्मवाहस्तमं हुवे १९
स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते । गिर्वणस्तमो अध्रिगुः २०
स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः । गोमद्भिर्गोपते धृषत् २१ २०८०

तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद् गवे न शाकिने २२
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत् सीमुप श्रवद् गिरः २३
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् २४
इमा उ त्वा शतक्रतो ऽभि प्र णोनुवुर्गिरः । इन्द्र वत्सं न मातरः २५
दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव २६ २०८५

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः २७
इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । वत्सं गावो न धेनवः २८
पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि । वाजेभिर्वाजयताम् २९
अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । अस्मान् राये महे हिनु ३०

॥ १८९ ॥ (ऋ० ६।४६।१-१४) प्रगाथः (= विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नर–स्त्वां काष्ठास्वर्वतः १ २०९०
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे २
यः सत्राहा विचर्षणि–रिन्द्रं तं हूमहे वयम्।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ३
बाधसे जनान् वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ४
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पपुरि श्रवः।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ५
त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसो ऽमित्रान्त्सुषहान् कृधि ६ २०९५
यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु।
यद् वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ७
यद् वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने यत् पूरौ कच्च वृष्ण्यम्।
अस्मभ्यं तद् रिरीहि सं नृषाह्ये ऽमित्रान् पृत्सु तुर्वणे ८
इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ९
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभु–रभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वण–स्तनूपा अन्तमो भव १०
अध स्मा नो वृधे भवे–न्द्र नायमवा युधि।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ११ २१००
यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितॄणाम्।
अध स्मा यच्छ तन्वे३ तने च छर्दि–रचित्तं यावय द्वेषः १२
यदिन्द्र सर्गे अर्वत–श्चोदयासे महाधने।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँ इव श्रवस्यतः। १३
सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि १४ २१०३

❀

॥ १९० ॥ (ऋ० ६।४७।६-१९; २१) (११०४-१११८) गर्गो भारद्वाजः । त्रिष्टुप्; १९ बृहती ।

धृषत् पिब कुलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यंदिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ६
इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ७ ११०५
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान् त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ८
वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन् रायो अर्यः ९
इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत् किं चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् १०
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ११
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम १२ १११०
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्या-ऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु १३
अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मि-र्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरू न राधः सवना पुरूण्य-पो गा वज्रिन् युवसे समिन्दून् १४
क ईं स्तवत् कः पृणात् को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत् ।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः १५
शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमाय-न्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् १६
परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति १७ १११५
रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश १८
युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु १९

दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं　कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।
अहन् दासा वृषभो वस्नयन्तो-दव्रजे वर्चिनं शम्बरं च　२१　२११८

॥ १९१ ॥ (ऋ० ७।१८।१-२१) (२११९-२१३९) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

त्वे ह यत् पितरश्चिन्न इन्द्र　विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वा-स्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः　१
राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवा-ऽव द्युभिरभि विदुष्कविः सन् ।
पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वै-स्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान्　२　२१२०
इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र　मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु　स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन्　३
धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्ष-न्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा　ऽऽ न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ　४
अर्णांसि चित् पप्रथाना सुदास　इन्द्रो गाधान्यकृणोत् सुपारा ।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः　शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः　५
पुरोळा इत् तुर्वशो यक्षुरासीद्　राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च　सखा सखायमतरद् विषूचोः　६
आ पक्थासो भलानसो भनन्ता　ऽलिनासो विषाणिनः शिवासः ।
आ योऽनयत् सधमा आर्यस्य　गव्या तृत्सुभ्यो अजगन् युधा नॄन्　७　२१२५
दुराध्यो३ अदितिं स्रेवयन्तो　ऽचेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीम् ।
मह्नाविव्यक् पृथिवीं पत्यमानः　पशुष्कविरशयच्चायमानः　८
ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णी-माशुश्चनेदभिपित्वं जगाम ।
सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रा-नरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः　९
ईयुर्गावो न यवसादगोपा　यथाकृतमभि मित्रं चितासः ।
पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः　श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च　१०
एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या　वैकर्णयोर्जनान् राजा न्यस्तः ।
दस्मो न सद्मन् नि शिशाति बर्हिः　शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम्　११
अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्व-नु द्रुह्युं नि वृणग्वज्रबाहुः ।
वृणाना अत्र सख्याय सख्यं　त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा　१२　२१३०
वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषा-मिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्　जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम्　१३

नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि १४
इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः ।
दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे १५
अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम् ।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः १६
आध्रेण चित् तद्वेकं चकार सिंह्यं चित् पेत्वेना जघान ।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद् विश्वा भोजना सुदासे १७ ११३५
शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम् ।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन् नि जहि वज्रमिन्द्र १८
आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि १९
न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः ।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाऽव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् २०
प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताऽधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् २१

॥ १९२ ॥ (ऋ० ७।१९।१-११)

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः १ ११४०
त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् २
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ३
त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चाऽस्वापयो दभीतये सुहन्तु ४
तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहञ्च वृत्रं नमुचिमुताहन् ५
सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ६ ११४५

मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टा—वघाय भूम हरिवः परादै।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथै—स्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ७
प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशी—ह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ८
सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाश—न्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ९
एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्य—मस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् १०
नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ११ २१५०

॥ १९३ ॥ (ऋ० ७।२०।१-१०)

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावा—ञ्चक्रिरपो नर्यो यत् करिष्यन्।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभि—स्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् १
हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् २
युध्मो अनर्वा खजकृत् समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः।
व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ३
उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वा ऽऽ पप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः।
नि वज्रमिन्द्रो हरिवान् मिमिक्षन् त्समन्धसा मदेषु वा उवोच ४
वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्ती—नः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ५ २१५१
नू चित् स भ्रेषते जनो न रेषन् मनो यो अस्य घोरमाविवासात्।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत् स राय ऋतपा ऋतेजाः ६
यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्ष—न्नयज्ज्यायान् कनीयसो देष्णम्।
अमृत इत् पर्यासीत दूर—मा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ७
यस्त इन्द्र प्रियो जनो ददाश—दसन्निरेके अद्रिवः सखा ते।
वयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः स्याम वरूथे अघ्नतो नृपीतौ ८
एष स्तोमो अचिक्रदद् वृषा त उत स्तामुर्मघवन्नक्रपिष्ट।
रायस्कामो जरितारं त आगन् त्वमङ्ग शक्र वस्व आ शको नः ९

स न इन्द्र त्वयताया इषे धा–स्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्ति–र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १० ११६०

॥ १९४ ॥ (ऋ० ७।२१।१-१०)

असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञै–र्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु १
प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः ।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः २
त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
त्वद् वावक्रे रथ्यो३ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा ३
भीमो विवेषायुधेभिरेषा–मपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।
इंद्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोत वि वज्रहस्तो महिना जंघान ४
न यातव इंद्र जूजुवुर्नो न वंदना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जंतो–र्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ५ ११६५
अभि क्रत्वेंद्र भूरध ज्मन् न ते विव्यङ् महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघंथ न शत्रुरंतं विविदद् युधा ते ६
देवाश्चित् ते असुर्याय पूर्वे ऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।
इंद्रो मघानि दयते विषह्ये–द्रं वाजस्य जोहुवंत सातौ ७
कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावे–शानमिंद्र सौभगस्य भूरेः ।
अवो बभूथ शतमूत अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ८
सखायस्त इंद्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके३ ऽभीतिमर्यो वनुषां शवांसि ९
स न इंद्र त्वयताया इषे धा–स्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्ति–र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १० ११७०

॥ १९५ ॥ (ऋ० ७।२२।१-९) विराट्, ९ त्रिष्टुप् ।

पिबा सोममिंद्र मंदतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा १
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि । स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु २
बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् । इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ३
श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रे–र्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् । कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ४
न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् । सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ५ ११७५

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरिं मनीषी हवते त्वामित् । मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक् कः ६
तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि । त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ७
नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मो-दश्नुवन्ति महिमानमुग्र । न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ८
ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ९

॥ १९६ ॥ (ऋ० ७।२३।१-६)

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्ये-न्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानो-पश्रोता म ईवतो वचांसि १ २१८०
अयामि घोष इन्द्र देवजामि-रिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् २
युजे रथं गवेषणं हरिभ्या-मुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वे-न्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ३
आपश्चित् पिप्युः स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ४
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्ता-नस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ५
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६ २१८५

॥ १९७ ॥ (ऋ० ७।२४।१-६)

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः १
गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्ति-रियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा २
आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषि-न्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्च-माङ्गूषमच्छा तवसं मदाय ३
आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि ।
वरीवृजत् स्थविरेभिः सुशिप्रा-ऽस्मे दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्र ४
एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरी३वात्यो न वाजयन्नधायि ।
इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः ५ २१९०

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६

॥ १९८ ॥ (ऋ० ७।२५।१-६)

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत् समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वो र्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत १
नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्राँ अभि ये नो मर्तासो अमन्ति ।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सो रा नो भर संभरणं वसूनाम् २
शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्या ऽस्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ३
त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्र ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ४ ११९५
कुत्सा एते हर्यश्वाय शूष मिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः ।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् ५
एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६

॥ १९९ ॥ (ऋ० ७।२६।१-५)

न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः ।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोष न्नृवन्नवीयः शृणवद् यथा नः १
उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः ।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते २
चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः ३ ११००
एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम् ।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वी रस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ४
एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नॄन् कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति ।
सहस्रिण उप नो माहि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५

॥ २०० ॥ (ऋ० ७।२७।१-५)

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत् पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः १

य इन्द्र शुष्मो मघवन् ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
त्वं हि दृळ्हा मघवन् विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः २
इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीना—मधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ३ २२०५
नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ४
नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय ।
गोमदश्वावद् रथवद् व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५
॥ २०१ ॥ (ऋ० ७।२८।१-५)

ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वा—नर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः ।
विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व १
हवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत् पासि शवसिन्नृषीणाम् ।
आ यद् वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन् क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः २
तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान् त्सं यन्नॄन् न रोदसी निनेथ ।
महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञे ऽतूतुजिं चित् तूतुजिरशिश्नत् ३ २२१०
एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ४
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५
॥ २०२ ॥ (ऋ० ७।२९।१-५)

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारो—र्ददो मघानि मघवन्नियानः १
ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणो ऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वो—प ब्रह्माणि शृणव इमा नः २
का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन् दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वाया ऽधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ३ २२१५
उतो घा ते पुरुष्या३ इदासन् येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ४
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५

॥ २०३ ॥ (ऋ० ७।३०।१-५)

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन् भवा वृध इन्द्र रायो अस्य ।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर १
हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु २
अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान् दधो यत् केतुमुपमं समत्सु ।
न्य१ग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ३ १११०
वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि ।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ४
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५

॥ २०४ ॥ (ऋ० ७।३१।१-१२) गायत्री, १०-१२ विराट् ।

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने १
शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चकृमा सत्यराधसे २
त्वं न इन्द्र वाजयु—स्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ३ ११२५
वयमिन्द्र त्वायवो ऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्व१स्य नो वसो ४
मा नो निदे च वक्तवे ऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ५
त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ६
महाँ उतासि यस्य ते ऽनु स्वधावरी सहः । मम्नाते इन्द्र रोदसी ७
तं त्वा मरुत्वती परि भुवद् वाणी सयावरी । नक्षमाणा सह द्युभिः ८ ११३०
ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन् दस्ममुप द्यवि । सं ते नमन्त कृष्टयः ९
प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् । विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः १०
उरुव्यचसे महिने सुवृक्ति—मिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः । तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ११
इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै । हर्यश्वाय बर्हया समापीन् १२

॥ २०५ ॥ (ऋ० ७।३२।१-२७) २६ पूर्वार्धर्चस्य शक्तिर्वासिष्ठो वा (शाट्यायने ब्राह्मणे); २६-२७ शक्तिर्वासिष्ठो वा (ताण्डके ब्राह्मणे) । प्रगाथः- (बृहती, सतोबृहती), ३ द्विपदा विराट् ।

मो षु त्वा वाघतश्चना—ऽऽरे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताच्चित् सधमादं न आ गही—ह वा सन्नुप श्रुधि १ ११३५
इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः २

रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं　पुत्रो न पितरं हुवे　३
इम इन्द्राय सुन्विरे　सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये　हरिभ्यां याह्योक आ　४
श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां　नू चिन्नो मर्धिषद् गिरः ।
सद्यश्चिद् यः सहस्राणि शता दद—न्नकिर्दित्सन्तमा मिनत्　५
स वीरो अप्रतिष्कुत　इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्　त्सुनोत्या च धावति　६　२२४०
भवा वरूथं मघवन् मघोनां　यत समजासि शर्धतः ।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेम—ह्या दूणाशो भरा गयम्　७
सुनोता सोमपाव्ने　सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्　पृणन्नित् पृणते मयः　८
मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे　कृणुध्वं राय आतुजे ।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति　न देवासः कवत्नवे　९
नकिः सुदासो रथं　पर्यास न रीरमत ।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो　गमत् स गोमति व्रजे　१०
गमद् वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो　यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथाना—मस्माकं शूर नृणाम्　११　२२४५
उदिन्न्वस्य रिच्यते—ऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान् न दभन्ति तं रिपो　दक्षं दधाति सोमिनि　१२
मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं　दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं　य इन्द्रे कर्मणा भुवत　१३
कस्तमिन्द्र त्वावसु—मा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत् ते मघवन् पार्ये दिवि　वाजी वाजं सिपासति　१४
मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय　ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभि—र्विश्वा तरेम दुरिता　१५
तवेदिन्द्रावमं वसु　त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि　नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते　१६　२२५०
त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो　य ईं भवन्त्याजयः ।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवो　ऽवस्युर्नाम भिक्षते　१७

यदिन्द्र यावतस्त्व—मेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय १८
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन १९
तरणिरित् सिषासति वाजं पुरंध्या युजा ।
आ व इंद्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् २०
न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत् पार्ये दिवि २१ ११५५
अभि त्वा शूर नोनुमो ऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृश—मीशानमिन्द्र तस्थुषः २२
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे २३
अभी षतस्तदा भरे—न्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः २४
परा णुदस्व मघवन्नमित्रान् त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् २५
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि २६ ११६०
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपो ऽति शूर तरामसि २७

॥ २०६ ॥ (ऋ० ७।३३।१-९) १-९ वसिष्ठपुत्राः इन्द्रो वा । त्रिष्टुप् ।

श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन् वोचे परि बर्हिषो नॄन् न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः १
दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात् सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान् २
एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारे—वेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ३
जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणा—मक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।
यच्छक्करीषु बृहता रवेणे—न्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ४ ११६५

उद् द्यामिवेत् तृष्णजो नाथितासो ऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रो—दुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ५
दण्डा इवेद् गोअजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ६
त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेत—स्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ७
सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ८
त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति।
यमेन ततं परिधिं वयन्तो ऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ९ २२७०

॥ १०७ ॥ (ऋ० ७।५५।२-८) (प्रस्वापिनी उपनिषद्)। २-४ उपरिष्टाद्बृहती, ५-८ अनुष्टुप्।

यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप २
स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप ३
त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप ४
सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ५
य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ६ २२७५
सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ७
प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धा—स्ताः सर्वाः स्वापयामसि ८

॥ १०८ ॥ (ऋ० ७।९७।१) त्रिष्टुप्।

यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च १

॥ १०९ ॥ (ऋ० ७।९८।१-६)

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद् याति सुतसोममिच्छन् १
यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् २ ११८०
जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ३
यद् योधया महतो मन्यमानान् त्साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् ।
यद् वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्या स्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ४
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ५
तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इंद्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ६

॥ ११० ॥ (ऋ० ७।१०४।८, १६, १९-२२) । त्रिष्टुप्; २१ जगती ।

यो मा पाकेन मनसा चरंत मभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इंद्र वक्ता ८ ११८५
यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इंद्रस्तं हंतु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट १६
प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्ता भि जहि रक्षसः पर्वतेन १९
एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इंद्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः २०
इंद्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्या विवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः २१
उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र २२ ११९०

॥ २११ ॥ (ऋ० ८।६८।१-१३)

(२२९१-२३१०) प्रियमेध आङ्गिरसः । गायत्री, अनुष्टुम्मुखः प्रगाथः=
(अनुष्टुप्+गायत्र्यौ); १, ४, ७, १० अनुष्टुप् ।

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि । तुविकूर्मिमृतीषह मिन्द्र शविष्ठ सत्पते १
तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आ पप्राथ महित्वना २
यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ३
विश्वानरस्य वस्पति मनानतस्य शवसः । एवैश्च चर्षणीना मूती हुवे रथानाम् ४
अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीळ्हेषु यं नरः । नाना हवन्त ऊतये ५ २२९५
परोमात्रमृचीषम मिन्द्रमुग्रं सुराधसम् । ईशानं चिद्वसूनाम् ६
तंतमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये । यः पूर्व्यामनुष्टुति मीशे कृष्टीनां नृतुः ७
न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः । नकिः शवांसि ते नशत् ८
त्वोतासस्त्वा युजा ऽप्सु सूर्ये महद्धनम् । जयेम पृत्सु वज्रिवः ९
तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम ।
इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् १० २३००
यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्रिवः । यज्ञो वितन्तसाय्यः ११
उरु णस्तन्वे३ तन उरु क्षयाय नस्कृधि । उरु णो यन्धि जीवसे १२
उरुं नृभ्य उरुं गव उरुं रथाय पन्थाम् । देववीतिं मनामहे १३

॥ २१२ ॥ (ऋ० ८।६९।१-१०, [११ पूर्वार्ध], १३-१८)

अनुष्टुप्, २ उष्णिक्, ४-६ गायत्री, १६ पङ्क्ति, १७-१८ बृहती ।

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे । धिया वो मेधसातये पुरंध्या विवासति १
नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् । पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि २ २३०५
ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
जन्मन् देवानां विश स्त्रिष्वा रोचने दिवः ३
अभि प्र गोपतिं गिरे न्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ४
आ हरयः ससृज्रिरे ऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ५
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत् सीमुपह्वरे विदत् ६
उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ७ २३१०
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ८

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिङ्गा परि चनिष्कद दिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ९
आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः । अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे १०
अपादिन्द्रो अपादग्नि र्विश्वे देवा अमत्सत । (पूर्वार्ध.) ११
यो व्यतीरफाणयत सुयुक्ताँ उप दाशुषे । तक्को नेता तदिद्वपु रुपमा यो अमुच्यत १३ २३१५
अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा १४
अर्भको न कुमारको ऽधि तिष्ठन् नवं रथम् । स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् १५
आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् १६
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने १७
अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत १८ २३२०

॥ २१३ ॥ (ऋ० ८।७०।१-१५)

(२३२१-२३३५) पुरुहन्मा आङ्गिरसः । बृहती. १-६ प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती),
१२ शंकुमती, १३ उष्णिक्, १४ अनुष्टुप्, १५ पुरउष्णिक् ।

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे १
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः २
नकिष्टं कर्मणा नश द्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वस मधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ३
अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवु र्द्यावः क्षामो अनोनवुः ४
यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ५ २३२५
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ६

न सीमदेव आप—दिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशा युयोजते हरी इन्द्रो युयोजते ७
तं वो महो महाय्य—मिन्द्रं दानाय सक्षणिम् ।
यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः ८
उदू षु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे ।
उदू षु मह्यै मघवन् मघत्तय उदिन्द्र श्रवसे महे ९
त्वं न इन्द्र ऋतयु—स्त्वानिदो नि तृम्पसि ।
मध्ये वसिष्व तुविनृम्णोर्वो—र्नि दासं शिश्नथो हथैः १० २३३०
अन्यव्रतममानुष—मयज्वानमदेवयुम् ।
अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः ११
त्वं न इन्द्रासां हस्ते शविष्ठ दावने । धानानां न सं गृभायास्मयु—र्द्विः सं गृभायास्मयुः १२
सखायः क्रतुमिच्छत कथा राधाम शरस्य । उपस्तुतिं भोजः सूरिर्यो अह्रयः १३
भूरिभिः समह ऋषिभि—र्बर्हिष्मद्भिः स्तविष्यसे ।
यदित्थमेकमेकमि—च्छर वत्सान् पराददः १४
कर्णगृह्या मघवा शौरदेव्यो वत्सं नस्त्रिभ्य आनयत् । अजां सूरिर्न धातवे १५ २३३५

॥ २१४ ॥ (ऋ० ८।९५।१-९) (२३३६-२३६५) तिरश्चीराङ्गिरस । अनुष्टुप् ।

आ त्वा गिरो रथीरिवा—ऽस्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
अभि त्वा समनूषते—न्द्र वत्सं न मातरः १
आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतास इन्द्र गिर्वणः ।
पिबा त्वऽस्यान्धस इन्द्र विश्वासु ते हितम् २
पिबा सोमं मदाय क—मिन्द्र श्येनाभृतं सुतम् ।
त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ३
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ४
इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ५ २३४०
तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ६

❀

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान् ममत्तु ७
इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः ८
इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ९

॥२१५॥ (ऋ० ८।९६।१-१३, १६-२१)

[द्युतानो वा मारुतः । त्रिष्टुप्, ४ विराट्, २१ पुरस्ताज्ज्योतिः ।]

अस्मा उषास आतिरन्त याम—मिन्द्राय नक्तमूर्म्याः सुवाचः ।
अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थु—र्नृभ्यस्तराय सिन्धवः सुपाराः १ २३४५
अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिः सप्त सानु संहिता गिरीणाम् ।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्या—द्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार २
इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः ।
शीर्षन्निन्द्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषन्त श्रुत्या उपाके ३
मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम् ।
मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनाम् ४
आ यद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र धत्से मदच्युतमहये हन्तवा उ ।
प्र पर्वता अनवन्त प्र गावः प्र ब्रह्माणो अभिनक्षन्त इन्द्रम् ५
तमु ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात् ।
इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भि—रुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ६ २३५०
वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्व—थेमा विश्वाः पृतना जयासि ७
त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्रा इव राशयो यज्ञियासः ।
उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ८
तिग्ममायुधं मरुतामनीकं कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष ।
अनायुधासो असुरा अदेवा—श्चक्रेण ताँ अप वप ऋजीषिन् ९
मह उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः ।
गिर्वाहसे गिर इन्द्राय पूर्वी—र्धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत् १०

उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां द्रुणा न पारमीरया नदीनाम् ।
नि स्पृश धिया तन्वि श्रुतस्य जुष्टतरस्य कुविदङ्ग वेदत् ११ २३५५
तद्विविड्ढि यत् त इंद्रो जुजोषत् स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास ।
उप भूष जरितर्मा रुवण्यः श्रावया वाचं कुविदङ्ग वेदत् १२
अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठ—दियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्त—मप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त १३
त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानो ऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः १६
त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रै—स्त्वं गा इंद्र शच्येदविन्दः १७
त्वं ह त्यद्वृषभ चर्षणीनां घनो वृत्राणां तविषो बभूथ ।
त्वं सिन्धूँरसृजस्तस्तभानान् त्वमपो अजयो दासपत्नीः १८ २३६०
स सुक्रतू रणिता यः सुतेष्व—नुत्तमन्युर्यो अहेव रेवान् ।
य एक इन्नर्यपांसि कर्ता स वृत्रहा प्रतीदन्यमाहुः १९
स वृत्रहेन्द्रश्चर्षणीधृत् तं सुष्टुत्या हव्यं हुवेम ।
स प्राविता मघवा नोऽधिवक्ता स वाजस्य श्रवस्यस्य दाता २०
स वृत्रहेन्द्र ऋभुक्षाः सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूव ।
कृण्वन्नपांसि नर्या पुरूणि सोमो न पीतो हव्यः सखिभ्यः २१ २३६३

॥ २२६ ॥ (ऋ० ८।९८।१-१२)

(२३६४-२३८३) नृमेध आङ्गिरसः। उष्णिक्; ७, १०-११ ककुप्, ९, १२ पुरउष्णिक् ।

इंद्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे १
त्वमिंद्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि २ २३६५
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१—रगच्छो रोचनं दिवः । देवास्त इंद्र सख्याय येमिरे ३
एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः । गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ४
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी । इंद्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ५
त्वं हि शश्वतीना—मिंद्र दर्ता पुरामसि । हंता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ६
अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे । उदेव यन्त उदभिः ७ २३७०
वार्ण त्वा यव्याभि—र्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ८

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयो—रौ रथ उरुयुगे । इन्द्रवाहा वचोयुजा ९
त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनाषहम् १०
त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे ११
त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्त—मुप ब्रुवे शतक्रतो । स नो रास्व सुवीर्यम् १२ २३७५

॥ २१७ ॥ (ऋ० ८।९९।१-८) प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

त्वामिदा ह्यो नरो ऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्यु—प स्वसरमा गहि १
मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे त्वे आ भूषन्ति वेधसः ।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः २
श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ३
अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ४
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्व—भि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ५ २३८०
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ६
इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतम—मतूर्तं तुग्र्यावृधम् ७
इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूतिं शतक्रतुम् ।
समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवानं वसूजुवम् ८ २३८३

॥ २१८ ॥ (ऋ० ८।८९।१-७)

(२३८४-२३९६) नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ । १-४ प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ५-६ अनुष्टुप्, ७ बृहती ।

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहंतमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि १
अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहा ऽथेन्द्रो द्युम्न्याभवत् ।
देवास्त इंद्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण २ २३८५

प्र व इंद्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतु र्वज्रेण शतपर्वणा ३
अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित् ते असद्बृहत् ।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ४
यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय ।
तत् पृथिवीमप्रथय स्तदस्तभ्ना उत द्याम् ५
तत् ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ६
आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन् तपता सुवृक्तिभि र्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ७ २३७०

॥ २१९ ॥ (ऋ० ८।९०।१-६) प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

आ नो विश्वासु हव्य इंद्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः १
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः २
ब्रह्मा त इंद्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता ।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजने न्द्र या ते अमन्महि ३
त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे ।
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषे ऽर्वाञ्चं रयिमा कृधि ४
त्वमिन्द्र यशा अस्यृ जीषी शवसस्पते ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इद नुत्ता चर्षणीधृता ५ २३९५
तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इंद्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ६ २३९६

॥ २२० ॥ (८।९२।१-३३)

(२३९७-२४२९) श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः । गायत्री, १ अनुष्टुप् ।

पान्तमा वो अंधस इंद्रमभि प्र गायत । विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् १
पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं१ सनश्रुतम् । इंद्र इति ब्रवीतन २
इंद्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः । महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ३
अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः । इंदोरिन्द्रो यवाशिरः ४ २४००

तम्वभि प्रार्चतेन्द्रं सोमस्य पीतये । तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ५
अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा । विश्वाभि भुवना भुवत् ६
त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ७
युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ८
शिक्षा ण इंद्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ९ २४०५
अतश्चिदिन्द्र ण उपा ऽऽ याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया १०
अयाम धीवतो धियो ऽर्वद्भिः शक्र गोदरे । जयेम पृत्सु वज्रिवः ११
वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा । उक्थेषु रणयामसि १२
विश्वा हि मर्त्यत्वना ऽनुकामा शतक्रतो । अगन्म वज्रिन्नाशसः १३
त्वे सु पुत्र शवसो ऽवृत्रन् कामकातयः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते १४ २४१०
स नो वृषन्त्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्न्वा । धियाविड्ढि पुरंध्या १५
यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः । तेन नूनं मदे मदेः १६
यस्ते चित्रश्रवस्तमो य इन्द्र वृत्रहन्तमः । य ओजोदातमो मदः १७
विद्मा हि यस्ते अद्रिवस्त्वादत्तः सत्य सोमपाः । विश्वासु दस्म कृष्टिषु १८
इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः १९ २४१५
यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इंद्रं सुते हवामहे २०
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः २१
आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिंधवः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते २२
विव्यक्थ महिना वृषन् भक्षं सोमस्य जागृवे । य इंन्द्र जठरेषु ते २३
अरं त इंद्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् । अरं धामभ्य इंदवः २४ २४२०
अरमश्वाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने २५
अरं हि ष्मा सुतेषु णः सोमेष्विंद्र भूषसि । अरं ते शक्र दावने २६
पराकात्ताच्चिदद्रिवस्त्वां नक्षन्त नो गिरः । अरं गमाम ते वयम् २७
एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः २८
एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिंद्र मे सचा २९ २४२५
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ३०
मा न इंद्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमन् । त्वा युजा वनेम तत् ३१
त्वयेदिंन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः । त्वमस्माकं तव स्मसि ३२
त्वामिद्धि त्वायवो ऽनुनोनुवतश्चरान् । सखाय इन्द्र कारवः ३३ २४२९

॥२२१॥ (ऋ०८।९३।१-३३)

(२४३०-२४६२) सुकक्ष आङ्गिरसः । गायत्री ।

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य १ २४३०
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् २
स न इन्द्रः शिवः सखा ऽश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ३
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ४
यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत् सत्यमित् तव ५
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ६ २४३५
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ७
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ८
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ९
दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्वणः । त्वं च मघवन् वशः १०
यस्य ते नू चिदादिशं न मिनन्ति स्वराज्यम् । न देवो नाध्रिगुर्जनः ११ २४४०
अधा ते अप्रतिष्कुतं देवी शुष्मं सपर्यतः । उभे सुशिप्र रोदसी १२
त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । परुष्णीषु रुशत् पयः १३
वि यदहेरध त्विषो विश्वे देवासो अक्रमुः । विदन्मृगस्य ताँ अमः १४
आदु मे निवरो भुवद् वृत्रहादिष्ट पौंस्यम् । अजातशत्रुरस्तृतः १५
श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् । आ शुषे राधसे महे १६ २४४५
अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत । यत् सोमेसोम आभवः १७
बोधिन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः । शृणोतु शक्र आशिषम् १८
कया त्वं न ऊत्या ऽभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर १९
कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान् वृषभो रणत् । वृत्रहा सोमपीतये २०
अभी षु णस्त्वं रयिं मन्दसानः सहस्रिणम् । प्रयन्ता बोधि दाशुषे २१ २४५०
पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये । अपां जग्मिर्निचुम्पुणः २२
इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधासो अध्वरे । अच्छावभृथमोजसा २३
इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितम् २४
तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो । स्तोतृभ्य इन्द्रमा वह २५
आ ते दक्षं वि रोचना दधद्रत्ना वि दाशुषे । स्तोतृभ्य इन्द्रमर्चत २६ २४५५
आ ते दधामीन्द्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो । स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय २७

भद्रंभद्रं न आ भरे—षमूर्जं शतक्रतो । यदिन्द्र मृळयासि नः २८
स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो । यदिन्द्र मृळयासि नः २९
त्वामिद् वृत्रहन्तम सुतावन्तो हवामहे । यदिन्द्र मृळयासि नः ३०
उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ३१ २४६०
द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः । उप नो हरिभिः सुतम् ३२
त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि । उप नो हरिभिः सुतम् ३३ २४६१

॥ २२२ ॥ (ऋ० १०।८।७-९)

(२४६३-२४६५) त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः । त्रिष्टुप् ।

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्त—रिच्छन् धीतिं पितुरेवैः परस्य ।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ७
स पित्र्याण्यायुधानि विद्वा—निन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत् ।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान् त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ८
भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजो ऽवाभिनत् सत्पतिर्मन्यमानम् ।
त्वाष्ट्रस्य चिद् विश्वरूपस्य गोना—माचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क् ९ २४६५

॥ २२३ ॥ (ऋ० १०।२२।१-१५)

(२४६६-२४९०) ऐन्द्रो विमदः प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । पुरस्ताद्बृहती,
५, ७, ९ अनुष्टुप्, १५ त्रिष्टुप् ।

कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्य जने मित्रो न श्रूयते ।
ऋषीणां वा यः क्षये गुहा वा चर्कृषे गिरा १
इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः ।
मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या २
महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तूतुजिः ।
भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ३
युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ४
त्वं त्या चिद् वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ५ २४७०
अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम् ।
आ जग्मथुः पराकाद् दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ६

आ नं इन्द्र पृक्षसे ऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् ।
तत् त्वां याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ७
अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तु रन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ८
त्वं नं इन्द्र शूर शूरैं रुत त्वोतांसो बर्हणा ।
पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ९
त्वं तान् वृत्रहत्यें चोदयो नृन् कार्पाणे शूर वज्रिवः ।
गुहा यदीं कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् १० २४७५
मक्षू ता तं इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ११
माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वी रस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः १२
अस्मे ता तं इन्द्र सन्तु सत्या ऽहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः १३
अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद् विश्वायवे नि शिश्नथः १४
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः १५ २४८०

॥ २२४ ॥ (ऋ० १०।२३।१-७) जगती; १, ७ त्रिष्टुप्, ५ अभिसारिणी ।

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद् वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा १
हरी न्वस्य या वने विदे वस्वि न्द्रो मघैर्मघवा वृत्रहा भुवत ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षाः पत्यते शवो ऽव क्ष्णौमि दासस्य नाम चित् २
यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ३
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधू दिद्धूनोति वातो यथा वनम् ४
यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ५ २४८५

स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजन—न्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे ।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य य—दा पशुं न गोपाः करामहे ६
माकिर्न एना सख्या वि यौषु—स्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः ।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिव—दस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ७

॥ २२५ ॥ (ऋ० १०।२४।१-३) आस्तारपङ्क्तिः ।

इन्द्र सोममिमं पिब मधुमन्तं चमू सुतम् ।
अस्मे रयिं नि धारय वि वो मदे सहस्रिणं पुरूवसो विवक्षसे १
त्वां यज्ञेभिरुक्थै—रुप हव्येभिरीमहे ।
शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे २
यस्पतिर्वार्याणा—मसि रध्रस्य चोदिता ।
इन्द्र स्तोतॄणामविता वि वो मदे द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ३ २४९०

॥ २२६ ॥ (ऋ० १०।२७।१-२४) (२४९१-२५१९) ऐन्द्रो वसुक्रः । त्रिष्टुप् ।

असत् सु मे जरितः साभिवेगो यत् सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम् १
यदीदहं युधये संनया—न्यदेवयून् तन्वा३ शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् २
नाहं तं वेद य इति ब्रवी—त्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत् समरणमृघाव—दादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ३
यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन् ।
जिनामि वेत् क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य ४
न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात् कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून् किरणः समेजात् ५ २४९५
दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान् बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् ।
घृषुं वा ये निनिदुः सखाय—मध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः ६
अभूर्वौक्षीर्व्यु१ आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत् ।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष ७
गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन् ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः ।
हवा इदर्यो अभितः समायन् कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ८

सं यद्वयं यवसादो जनाना—महं यवाद उर्वज्रे अन्तः।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छा—दथो अयुक्तं युनजद्ववन्वान् ९
अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात् संसृजानि।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्या—दयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः १० २५००
यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम्।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य ईं वहाते य ईं वा वरेयात् ११
कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण।
भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् १२
पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम्।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम् १३
बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः १४
सप्त वीरासो अधरादुदाय—न्नष्टोत्तरात्तात् समजग्मिरन्ते।
नव पश्चातात् स्थिविमन्त आयन् दश प्राक् सानु वि तिरन्त्यश्नः १५ २५०५
दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय।
गर्भं माता सुधितं वक्षणा—स्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति १६
पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन्।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्वन्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता १७
वि क्रोशनासो विष्वञ्च आयन् पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः।
अयं मे देवः सविता तदाह द्र्वन्न इद्वनवत् सर्पिरन्नः १८
अपश्यं ग्रामं वहमानमारा—दचक्रया स्वधया वर्तमानम्।
सिषक्त्यर्यः प्र युगा जनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् १९
एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि।
आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् २० २५१०
अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तो ऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात्।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति २१
वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौ—स्ततो वयः प्र पतान् पूरुषादः।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् २२
देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन् कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन्।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् २३

सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये ।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते २४

॥ २२७ ॥ (ऋ० १०।२९।१-८) ।

वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् १ २५१५
प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् २
कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव ।
कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ३
कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन् मनीषाः ४
प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ५
मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि ६ २५२०
आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ७
व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ८

॥ २२८ ॥ (१०।२८।१, ३-५, ७, ९, ११)
[१ इन्द्रस्नुषा वसुक्रपत्नी ऋषिका; ३-५, ७, ९, ११ ऐन्द्रो वसुक्र ऋषिः ।]

विश्वो ह्यन्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो ना जगाम ।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात् स्वाशितः पुनरस्तं जगायात् १
अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान् त्सुन्वन्ति सोमान् पिबसि त्वमेषाम् ।
पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन् हूयमानः ३
इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति ।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ४ २५२५
कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्सस्य पाकस्तवसो मनीषाम् ।
त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन् क्षेम्या धूः ५

एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन् वृषणमिन्द्र देवाः ।
वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानो ऽप व्रजं महिना दाशुषे वम् ७
शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगारा ऽद्रिं लोगेन व्यभेदमारात् ।
बृहंतं चिद्दहते रंधयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ९
तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेत द्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः ।
सिम उक्षणोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः ११ २५२९

॥ २२९ ॥ (ऋ० १०।३२।१-९)
(२५३०-२५४०) कवष ऐलूषः । जगती, ६-९ त्रिष्टुप् ।

प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि वरेभिर्वरॉ अभि षु प्रसीदतः ।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति यत् सोम्यस्यान्धसो बुबोधति १ २५३०
वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत ।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वराँ उप ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः २
तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयति ।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत् पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ३
तदित् सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन् वहतुं न धेनवः ।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्या ऽभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः ४
प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पद मेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः ।
जरा वा येष्वमृतेषु दावने परि व ऊमेभ्यः सिञ्चता मधु ५
निधीयमानमपगूळ्हमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इंद्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ६ २५३५
अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः ।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्यो त स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ७
अद्येदु प्राणीदममन्निमाहा ऽपीवृतो अधयन्मातुरूधः ।
एमेनमाप जरिमा युवान महेळन् वसुः सुमना बभूव ८
एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि ।
दान इद्वो मघवानः सो अ स्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि ९

॥ २३० ॥ (ऋ० १०।३३।२-३) प्रगाथः= (२ बृहती, ३ सतोबृहती)

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
नि बाधते अमतिर्नग्नता जसु र्वेर्न वेवीयते मतिः २

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो ।
सकृत सु नो मघवन्निन्द्र मृळया ऽधा पितेव नो भव ३ २५४०

॥ २३१ ॥ (ऋ० १०।३८।१-५) (२५४१-२५४५) मुष्कवानिन्द्रः । जगती ।

अस्मिन् न इन्द्र पृत्सुतौ यशस्वति शिमीवति क्रन्दसि प्राव सातये ।
यत्र गोषाता धृषितेषु खादिषु विष्वक् पतन्ति दिद्यवो नृषाह्ये १
स नः क्षुमन्तं सदने व्यूर्णुहि गोअर्णसं रयिमिन्द्र श्रवाय्यम् ।
स्याम ते जयतः शक्र मेदिनो यथा वयमुश्मसि तद्वसो कृधि २
यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुता ऽदेव इन्द्र युधये चिकेतति ।
अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रव स्त्वया वयं तान् वनुयाम संगमे ३
यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च भूरिभि र्यो अभीके वरिवोविन्नृषाह्ये ।
तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नर मर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ४
स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवा नानुदं वृषभ रध्रचोदनम् ।
प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु त्वावान् मुष्कयोर्बद्ध आसते ५ २५४५

॥ २३२ ॥ (ऋ० १०।४२।१-११)
(२५४६-२५७८) कृष्ण आङ्गिरसः । त्रिष्टुप् ।

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् १
दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्ट मा च्यावय मघदेयाय शूरम् २
किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ३
त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान् नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ४
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् ५ २५५०
यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रु र्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ६
आराच्छत्रुमप बाधस्व दूर मुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ७

प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंस—न्नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ८
उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले ।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित् तं राया सृजति स्वधावान् ९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धना—न्यस्माकेन वृजनेना जयेम १० २५५५
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चा—दुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ११

॥ २३३ ॥ (ऋ० १०।४३।१-११) जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये १
न घा त्वद्रिगप वेति मे मन—स्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हि—ष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते २
विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिंधवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ३
वयो न वृक्षं सुपलाशमासद—न्त्सोमास इन्द्रं मंदिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युत—द्विदत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ४ २५६०
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शक—न्न पुराणो मघवन् नोत नूतनः ५
विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ६
आपो न सिंधुमभि यत् समक्षर—न्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ७
वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवे ऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ८
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ९ २५६५
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धना—न्यस्माकेन वृजनेना जयेम १०

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चा—दुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इंद्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ११

॥ २३४ ॥ (ऋ० १०।४४।१-११) जगती, १-३, १०-११ त्रिष्टुप् ।

आ यात्विंद्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्य—पारेण महता वृष्ण्येन १
सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि २
एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहु—मुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्म—मेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ३ २५७०
एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतस—मूर्जः स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्य—सो यथा केनिपानामिनो वृधे ४
गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्य—नाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ५
पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयो ऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुह—मीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ६
एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यो ऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ७
गिरींरज्रान् रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ८ २५७५
इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ९
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धना—न्यस्माकेन वृजनेना जयेम १०
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चा—दुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इंद्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ११ २५७८

॥ २३५ ॥ (ऋ० १०।४८।१-११)
(२५७९-२६०७) वैकुण्ठ इंद्रः । जगती, ७, १०-११ त्रिष्टुप् ।

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पति—रहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।
मां हवन्ते पितरं न जंतवो ऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् १

अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वण–स्त्रिताय गा अजनयमहेरधि ।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे गोत्रा शिक्षन् दधीचे मातरिश्वने २ २५८०
मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम् ।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च ३
अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम् ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ४
अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ५
अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वे–न्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत ।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळ्हा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः ६
अभी३दमेकमेको अस्मि निष्षा–ळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ७ २५८५
अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्कर–मिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम् ।
यत् पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ८
प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद् गवामेषे सख्या कृणुत द्विता ।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहय–मादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ९
प्र नेमस्मिन् ददृशे सोमो अन्त–र्गोपा नेममाविरस्था कृणोति ।
स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन् द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः १०
आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षु–रपराजितमस्तृतमषाळ्हम् ११

॥ २३६ ॥ (ऋ० १०।४९।१-११) जगती; २,११ त्रिष्टुप् ।

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्व–हं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् ।
अहं भुवं यजमानस्य चोदिता ऽयज्वनः साक्षि विश्वस्मिन् भरे १ २५९०
मां धुरिन्द्रं नाम देवता दिवश्च ग्मश्चापां च जन्तवः ।
अहं हरी वृषणा विव्रता रघू अहं वज्रं शवसे धृष्ण्वा ददे २
अहमत्कं कवये शिश्नथं हथै–रहं कुत्समावमाभिरूतिभिः ।
अहं शुष्णस्य श्नथिता वधर्यमं न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ३
अहं पितेव वेतसूँरभिष्टये तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम् ।
अहं भुवं यजमानस्य राजनि प्र यद्भरे तुजये न प्रियाधृषे ४

अहं रंधयं मृगयं श्रुतर्वणे यन्माजिहीत वयुना चनानुषक् ।
अहं वेशं नम्रमायवेऽकर—महं सव्याय पड्गृभिमरन्धयम् ५
अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं सं वृत्रेव दासं वृत्रहारुजम् ।
यद्वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुषग् दूरे पारे रजसो रोचनाकरम् ६ २५९५
अहं सूर्यस्य परि याम्याशुभिः प्रैतशेभिर्वहमान ओजसा ।
यन्मा सावो मनुष आह निर्णिज ऋधक् कृषे दासं कृत्व्यं हथैः ७
अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टरः प्राश्रावयं शवसा तुर्वशं यदुम् ।
अहं न्य१न्यं सहसा सहस्करं नव व्राधतो नवतिं च वक्षयम् ८
अहं सप्त स्रवतो धारयं वृषा द्रवित्न्वः पृथिव्यां सीरा अधि ।
अहमर्णांसि वि तिरामि सुक्रतु—र्युधा विदं मनवे गातुमिष्टये ९
अहं तदासु धारयं यदासु न देवश्चन त्वष्टाधारयद्रुशत् ।
स्पार्हं गवामूधःसु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्यं सोममाशिरम् १०
एवा देवाँ इन्द्रो विव्ये नॄन् प्र च्यौत्नेन मघवा सत्यराधाः ।
विश्वेत् ता ते हरिवः शचीवो ऽभि तुरासः स्वयशो गृणन्ति ११ २६००

॥ २३७ ॥ (ऋ० १०।५०।१-७) जगती, ३, ४ अभिसारिणी, ५ त्रिष्टुप् ।

प्र वो महे मन्दमानायान्धसो ऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इंद्रस्य यस्य सुमखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः १
सो चिन्नु सख्या नर्य इनः स्तुत—श्चर्कृत्य इंद्रो मावते नरे ।
विश्वासु धूर्षु वाजकृत्येषु सत्पते वृत्रे वाप्स्व१भि शूर मंदसे २
के ते नर इंद्र ये त इषे ये ते सुम्नं सधन्य१मियक्षान् ।
के ते वाजायासुर्याय हिन्विरे के अप्सु स्वासूर्वरासु पौंस्ये ३
भुवस्त्वमिंद्र ब्रह्मणा महान् भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः ।
भुवो नॄँश्च्यौत्नो विश्वस्मिन् भरे ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे ४
अवा नु कं ज्यायान् यज्ञवनसो महीं त ओमात्रां कृष्टयो विदुः ।
असो नु कमजरो वर्धाश्च विश्वेदेता सवना तूतुमा कृषे ५ २६०५
एता विश्वा सवना तूतुमा कृषे स्वयं सूनो सहसो यानि दधिषे ।
वराय ते पात्रं धर्मणे तना यज्ञो मन्त्रो ब्रह्मोद्यतं वचः ६
ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा वसूनां च वसुनश्च दावने ।
प्र ते सुम्नस्य मनसा पथा भुवन् मदे सुतस्य सोम्यस्यान्धसः ७ २६०७

॥ २३८ ॥ (ऋ० १०।५४।१-६)

(२६०८-२६२१) बृहदुक्थो वामदेव्यः । त्रिष्टुप् ।

तां सु ते कीर्तिं मघवन् महित्वा यत् त्वां भीते रोदसी अह्वयेताम् ।
प्रावो देवाँ आतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इंद्र १
यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
मायेत् सा ते यानि युद्धान्याहु र्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से २
क उ नु ते महिमनः समस्या ऽस्मत पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः ।
यन्मातरं च पितरं च साक मजनयथास्तन्वः स्वायाः ३ २६१०
चत्वारि ते असुर्याणि नामा ऽदाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ ४
त्वं विश्वा दधिषे केवलानि यान्याविर्या च गुहा वसूनि ।
काममिन्मे मघवन् मा वि तारी स्त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता ५
यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्त र्यो असृजन्मधुना सं मधूनि ।
अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि ६

॥ २३९ ॥ (ऋ० १०।५५।१-८)

दूरे तन्नाम गुह्यं पराचै र्यत् त्वां भीते अह्वयेतां वयोधै ।
उदस्तभ्नाः पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्रान् मघवन् तित्विषाणः १
महत् तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग् येन भूतं जनयो येन भव्यम् ।
प्रत्नं जातं ज्योतिर्यदस्य प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च २ २६१५
आ रोदसी अपृणादोत मध्यं पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्त ।
चतुस्त्रिंशता पुरुधा वि चष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ३
यदुष औच्छः प्रथमा विभाना मजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम् ।
यत् ते जामित्वमवरं परस्या महन्महत्या असुरत्वमेकम् ४
विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वा ऽद्या ममार स ह्यः समान ५
शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीळः ।
यच्चिकेत सत्यमित् तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ६
ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद् वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ७ २६२०

युजा कर्मांणि जनयंन् विश्वौजा अशस्तिहा विश्वमंनास्तुराषाट् ।
पीत्वी सोमंस्य दिव आ वृधानः शूरो निर्युधाधमद् दस्यून् ८ २६२१

॥ २४० ॥ (ऋ० १०।६०।५) (२६२२) बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः गायत्री ।

इन्द्रं क्षत्रासंमातिषु रथंप्रोष्ठेषु धारय । दिवीव सूर्यं दृशे ५ २६२२

॥ २४१ ॥ (ऋ० १०।७३।१-११)
(२६२३--२६३३) गौरिवीतिः शाक्त्यः । त्रिष्टुप् ।

जनिष्ठा उग्रः सहंसे तुराय मन्द्र ओजिंष्ठो बहुलाभिंमानः ।
अवंर्धन्निन्द्रं मरुतंश्चिदत्र माता यद्वीरं दुधनद्धनिष्ठा १
द्रुहो निषंत्ता पृशनी चिदेवैः पुरू शंसेन वावृधुष्ट इन्द्रम् ।
अभीवृंतेव ता महापदेनं ध्वान्तात् प्रंपित्वादुदंरन्त गर्भाः २
ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगा स्यवंर्धन् वाजा उत ये चिदत्र ।
त्वमिंन्द्र सालावृकान्त्सहस्र मासन् दंधिषे अश्विना ववृत्याः ३ २६२५
समना तूर्णिरुपं यासि यज्ञ मा नासंत्या सख्यायं वक्षि ।
वसाव्यामिन्द्र धारयः सहस्रा ऽश्विनां शूर ददतुर्मघानि ४
मन्दंमान ऋतादधि प्रजायै सखिंभिरिन्द्र इषिरेभिरर्थम् ।
आभिर्हि माया उप दस्युमागा न्मिहः प्र तम्रा अंवपत तमांसि ५
सनामाना चिद् ध्वसयो न्यंस्मा अवाहन्निन्द्रं उषसो यथानः ।
ऋष्वैरंगच्छः सखिंभिर्निकांमैः साकं प्रंतिष्ठा हृद्यां जघन्थ ६
त्वं जंघन्थ नमुचिं मखस्युं दासं कृण्वान ऋषंये विमांयम् ।
त्वं चंकर्थ मनंवे स्योनान् पथो देवत्राञ्जंसेव यानान् ७
त्वमेतानि पप्रिषे वि नामे शान इंद्र दधिषे गभंस्तौ ।
अनु त्वा देवाः शवंसा मद न्त्युपरिबुध्नान् वनिनंश्चकर्थ ८ २६३०
चक्रं यदंस्याप्स्वा निषंत्त मुतो तदंस्मै मध्विच्चंच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिंषितं यदूधः पयो गोष्वदंधा ओषंधीषु ९
अश्वादियायेति यद्वद न्त्योजंसो जातमुत मंन्य एनम् ।
मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद १०
वयः सुपर्णा उपं सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषंयो नाधंमानाः ।
अपं ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षु र्मुमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान् ११

॥ २४२ ॥ (ऋ० १०।७४।१-६)

वसूनां वा चर्कृष इयक्षन् धिया वा यज्ञैर्वा रोदस्योः ।
अर्वन्तो वा ये रयिमन्तः सातौ वनुं वा ये सुश्रुणं सुश्रुतो धुः　१
हव एषामसुरो नक्षत द्यां श्रवस्यता मनसा निंसत क्षाम् ।
चक्षाणा यत्र सुवितार्य देवा द्यौर्न वारेभिः कृणवन्त स्वैः　२　२६३५
इयमेषाममृतानां गीः सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम् ।
धियं च यज्ञं च साधन्त—स्ते नो धान्तु वसव्य१मसामि　३
आ तत् त इन्द्रायवः पनन्ता—ऽभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं१ ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन्　४
शचीव इन्द्रमवसे कृणुध्व—मनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ।
ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्तिं भर्ता यो वज्रं नर्यं पुरुक्षुः　५
यद्वावान पुरुतमं पुराषा—ळा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः ।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान् यदीमुश्मसि कर्तवे करत तत्　६　२६३९

॥ २४३ ॥ (ऋ० १०।८६।१-२३)

(२६४०-२६६२) इन्द्रः; ७, १३, २३ ऐन्द्रो वृषाकपिः २-६, ९-१०, १५-१८ इन्द्राणी । पङ्क्तिः ।

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपि—रर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः　१　२६४०
परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्द—स्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः　२
किमयं त्वां वृषाकपि—श्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्व१र्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः　३
यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिष—दपि कर्णे वराहयु—र्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः　४
प्रिया तष्टानि मे कपि—र्व्यक्ता व्यदूदुषत ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः　५
न मत् स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः　६　२६४५
उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः　७

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्व--मभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ८
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणी--न्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ९
संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणी--न्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १०
इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पति--र्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ११ १६५०
नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १२
वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हवि--र्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १३
उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इ--दुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १४
वृषभो न तिग्मशृङ्गो ऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयु--र्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १५
न सेशे यस्य रम्बते ऽन्तरा सक्थ्या३ कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १६ १६५१
न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बते ऽन्तरा सक्थ्या३ कपृद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १७
अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरु--मादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १८
अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनो ऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः १९
धन्व च यत् कृन्तत्रं च कति स्वित् ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपे ऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः २०
पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनो ऽस्तमेषि पथा पुन--र्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः २१ १६६०

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व१ स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २२
पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ २६६२

॥ २४४ ॥ (२६६३–२६७९) (ऋ० १०।८९।१–४, ६–१८) रेणुर्वैश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रं स्तवा नृतमं यस्य मह्ना विबबाधे रोचना वि ज्मो अन्तान् ।
आ यः पप्रौ चर्षणीधृद्वरोभिः प्र सिन्धुभ्यो रिरिचानो महित्वा ॥ १
स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा ।
अतिष्ठन्तमपस्यं१ न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥ २
समानमस्मा अनपावृदर्च क्ष्मया दिवो असमं ब्रह्म नव्यम् ।
वि यः पृष्ठेव जनिमान्यर्य इन्द्रश्चिकाय न सखायमीषे ॥ ३ २६६५
इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥ ४
न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः ।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि ॥ ६
जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः ॥ ७
त्वं ह त्यदृणया इन्द्र धीरोऽसिर्न पर्व वृजिना शृणासि ।
प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम युजं न जना मिनन्ति मित्रम् ॥ ८
प्र ये मित्रं प्रार्यमणं दुरेवाः प्र संगिरः प्र वरुणं मिनन्ति ।
न्य१मित्रेषु वधमिन्द्र तुम्रं वृषन्वृषाणमरुषं शिशीहि ॥ ९ २६७०
इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥ १०
प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र वृधो अहभ्यः प्रान्तरिक्षात्प्र समुद्रस्य धासेः ।
प्र वातस्य प्रथसः प्र ज्मो अन्तात्प्र सिन्धुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः ॥ ११
प्र शोशुचत्या उषसो न केतुरसिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः ।
अश्मेव विध्य दिव आ सृजानस्तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान् ॥ १२
अन्वह मासा अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः ।
अन्विन्द्रं रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् ॥ १३

क्वर्हि स्वित् सा त इन्द्र चेत्यासद्—घस्य यद् भिनदो रक्ष एषत् ।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते १४ २६७५
शत्रूयन्तो अभि ये नस्ततस्रे महि व्राधन्त ओगणास इन्द्र ।
अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्तां सुज्योतिषो अक्तवस्ताँ अभि ष्युः १५
पुरूणि हि त्वा सवना जनानां ब्रह्माणि मन्दन् गृणतामृषीणाम् ।
इमामाघोषन्नवसा सहूतिं तिरो विश्वाँ अर्चतो याह्यर्वाङ् १६
एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनां विद्याम सुमतीनां नवानाम् ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विश्वामित्रा उत त इन्द्र नूनम् १७
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र—मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् १८ २६७९

॥२४५॥ (ऋ० १०।९९।१-१२) (२६८०-२६९१) वम्रो वैखानसः ।

कं नश्चित्रमिषण्यसि चिकित्वान् पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै ।
कत् तस्य दातु शवसो व्युष्टौ तक्षद्वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत् १ २६८०
स हि द्युता विद्युता वेति साम पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद ।
स सनीळेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः २
स वाजं यातापदुष्पदा यन् त्स्वर्षाता परि षदत् सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत् ३
स यह्व्यो३ऽवनीर्गोष्वर्वा ऽऽ जुहोति प्रधन्यासु सस्रिः ।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ४
स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारेअवद्य आगात् ।
वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन् ५
स इद् दासं तुवीरवं पतिर्दन् षळक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत् ।
अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो विपा वराहमयोअग्रया हन् ६ २६८५
स द्रुह्वणे मनुष ऊर्ध्वसान आ साविषदर्शसानाय शरुम् ।
स नृतमो नहुषोऽस्मत् सुजातः पुरोऽभिनदर्हन् दस्युहत्ये ७
सो अभ्रियो न यवस उदन्यन् क्षयाय गातुं विदन्नो अस्मे ।
उप यत् सीददिन्दुं शरीरैः श्येनोऽयोपाष्टिर्हन्ति दस्यून् ८
स व्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात् ।
अयं कविमनयच्छस्यमान—मत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ९

अयं दशस्यन् नर्येभिरस्य दस्मो देवेभिर्वरुणो न मायी ।
अयं कनीन ऋतुपा अवे्द्यमिमीताररुं यश्चतुष्पात् १०
अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रजं दरयद् वृषभेण पिप्रोः ।
सुत्वा यद् यजतो दीदयद्गीः पुर इयानो अभि वर्पसा भूत ११ २६९०
एवा महो असुर वक्षथाय वम्रकः पड्भिरुप सर्पदिन्द्रम् ।
स इयानः करति स्वस्तिमस्मा इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः १२ २६९१

॥ २४६ ॥ (ऋ० १०।१०३।१-३,५-११,१३)

(२६९२-२७०१) ऐन्द्रोऽप्रतिरथः । [१३ मरुतो वा] । त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप् ।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः १
संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा २
स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यु१ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ३
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ५ २६९५
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ६
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्यो३ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ७
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ८
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ९
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत् सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद् वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः १० २७००
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ११

प्रता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवो ऽनाधृष्या यथासथ १३ २७०१

॥ २४७ ॥ (ऋ० १०।१०४।१-११)

(२७०२-२७१२) अष्टको वैश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

असावि सोमः पुरुहूत तुभ्यं हरिभ्यां यज्ञमुप याहि तूयम् ।
तुभ्यं गिरो विप्रवीरा इयाना दधन्विर इन्द्र पिबा सुतस्य १
अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इंद्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः २
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इंद्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ३ २७०५
ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणंतः सधमाद्यासः ४
प्रणीतिभिष्टे हर्यश्व सुष्टोः सुषुम्नस्य पुरुरुचो जनासः ।
मंहिष्ठामूतिं वितिरे दधानाः स्तोतार इंद्र तव सूनृताभिः ५
उप ब्रह्माणि हरिवो हरिभ्यां सोमस्य याहि पीतये सुतस्य ।
इंद्रं त्वा यज्ञः क्षममाणमानड् दाश्वाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतः ६
सहस्रवाजमभिमातिषाहं सुतेरणं मघवानं सुवृक्तिम् ।
उप भूषन्ति गिरो अप्रतीत—मिन्द्रं नमस्या जरितुः पनन्त ७
सप्तापो देवीः सुरणा अमृक्ता याभिः सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित् ।
नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्ती—र्देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्दः ८ २७१०
अपो महीरभिशस्तेरमुञ्चो ऽजागरास्वधि देव एकः ।
इंद्र यास्त्वं वृत्रतूर्ये चकर्थ ताभिर्विश्वायुस्तन्वं पुपुष्याः ९
वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्ति—रुतापि धेना पुरुहूतमीट्टे ।
आर्दयद् वृत्रमकृणोदु लोकं ससाहे शक्रः पृतना अभिष्टिः १०
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र—मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ११ २७१२

॥ २४८ ॥ (ऋ० १०।१०५।१-११)

(२७१३-२७२३) कौत्सो दुर्मित्रः सुमित्रो वा । उष्णिक्; १ गायत्री वा, २, ७ पिपीलिकमध्या; ११ त्रिष्टुप् ।

कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आव श्मशा रुधद्वाः । दीर्घं सुतं वाताप्याय १

हरी यस्य सुयुजा विव्रता वे—रर्वन्तानु शेपा । उभा रजी न केशिना पतिर्दन् २ २७१५
अप योरिन्द्रः पापज आ मर्तो न शश्रमाणो बिभीवान् । शुभे यद्युयुजे तविषीवान् ३
सचायोरिन्द्रश्चर्कृष आँ उपानसः सपर्यन् । नदयोर्विव्रतयोः शूर इन्द्रः ४
अधि यस्तस्थौ केशवन्ता व्यचस्वन्ता न पुष्ट्यै । वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् ५
प्रास्तौदृष्वौजा ऋष्वेभि—स्ततक्ष शूरः शवसा । ऋभुर्न क्रतुभिर्मातरिश्वा ६
वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे हिरीमशो हिरीमान् । अरुतहनुरद्भुतं न रजः ७ २७२०
अव नो वृजिना शिशी—ह्यृचा वनेमानृचः । नाब्रह्मा यज्ञ ऋधग्जोषति त्वे ८
ऊर्ध्वा यत् ते त्रेतिनी भूद् यज्ञस्य धूर्षु सद्मन् । सजूर्नावं स्वयशसं सचायोः ९
श्रिये ते पृश्निरुपसेचनी भू—च्छ्रिये दर्विररेपाः । यया स्वे पात्रे सिञ्चस उत् १०
शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा सुमित्र इत्थास्तौद् दुर्मित्र इत्थास्तौत् ।
आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं प्रावो यद्दस्युहत्ये कुत्सवत्सम् ११ २७२४

॥ २४९ ॥ (ऋ० १०।१११।१-१०)

(२७२५-२७३४) वैरूपोऽष्टादंष्ट्रः । त्रिष्टुप् ।

मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषां यथायथा मतयः सन्ति नृणाम् ।
इन्द्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः १ २७२५
ऋतस्य हि सदसो धीतिरद्यौत् सं गार्ष्टेयो वृषभो गोभिरानट् ।
उदतिष्ठत् तविषेणा रवेण महान्ति चित् सं विव्याचा रजांसि २
इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद स हि जिष्णुः पथिकृत् सूर्याय ।
आन्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद्गोः पतिर्दिवः सनजा अप्रतीतः ३
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य व्रतामिनादङ्गिरोभिर्गृणानः ।
पुरूणि चिन्नि तताना रजांसि दाधार यो धरुणं सत्यताता ४
इन्द्रो दिवः प्रतिमानं पृथिव्या विश्वा वेद सवना हन्ति शुष्णम् ।
महीं चिद् द्यामातनोत् सूर्येण चास्कम्भ चित् कम्भनेन स्कभीयान् ५
वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रमस्त—रदेवस्य शूशुवानस्य मायाः ।
वि धृष्णो अत्र धृषता जघन्था—ऽथाभवो मघवन् बाह्वोजाः ६ २७३०
सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद ७
दूरं किल प्रथमा जग्मुरासा—मिन्द्रस्य याः प्रसवे सस्रुरापः ।
क्व स्विदग्रं क्व बुध्न आसा—मापो मध्यं क्व वो नूनमन्तः ८

सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानाँ आदिदेताः प्र विविज्रे जवेन ।
मुमुक्षमाणा उत या मुमुच्रेऽधेदेता न रमन्ते नितिक्ताः ९
सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन् त्सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम् ।
अस्तमा ते पार्थिवा वसू॒न्यस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः १० २७३४

॥ २५० ॥ (ऋ० १०।११२।१-१०) (२७३५-२७४४) वैरूपो नभःप्रभेदनः ।

इन्द्र पिब प्रतिकामं सुतस्य प्रातःसावस्तव हि पूर्वपीतिः ।
हर्षस्व हन्तवे शूर शत्रू॒नुक्थेभिष्टे वीर्या॒३ प्र ब्रवाम १ २७३५
यस्ते रथो मनसो जवीया॒नेन्द्र तेन सोमपेयाय याहि ।
तूयमा ते हरयः प्र द्रवन्तु येभिर्यासि वृषभिर्मन्दमानः २
हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य श्रेष्ठै रूपैस्तन्वं स्पर्शयस्व ।
अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः सध्रीचीनो मादयस्वा निषद्य ३
यस्य त्यत् ते महिमानं मदे॒ष्विमे मही रोदसी नाविविक्ताम् ।
तदोक आ हरिभिरिन्द्र युक्तैः प्रियेभिर्याहि प्रियमन्नमच्छ ४
यस्य शश्वत् पपिवाँ इन्द्र शत्रू॒ननानुकृत्या रण्या चकर्थ ।
स ते पुरंधिं तविषीमियर्ति स ते मदाय सुत इन्द्र सोमः ५
इदं ते पात्रं सनवित्तमिन्द्र पिबा सोममेना शतक्रतो ।
पूर्ण आहावो मदिरस्य मध्वो यं विश्व इदभिहर्यन्ति देवाः ६ २७४०
वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा जनासो हितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते ।
अस्माकं ते मधुमत्तमानी॒मा भुवन्त्सवना तेषु हर्य ७
प्र त इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि ।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम् ८
नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ९
अभिख्या नो मघवन् नाधमानान् त्सखे बोधि वसुपते सखीनाम् ।
रणं कृधि रणकृत् सत्यशुष्माऽभक्ते चिदा भजा राये अस्मान् १० २७४४

॥ २५१ ॥ (ऋ० १०।११३।१-१०) (२७४५-२७५४) वैरूपः शतप्रभेदनः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावताम् ।
यदैत् कृण्वानो महिमानमिन्द्रियं पीत्वी सोमस्य क्रतुमाँ अवर्धत १ २७४५

तमस्य विष्णुर्महिमानमोजसां—ऽशुं दधन्वान् मधुनो वि रप्शते ।
देवेभिरिन्द्रो मघवा सयावभि—र्वृत्रं जघन्वाँ अभवद् वरेण्यः २
वृत्रेण यदहिना बिभ्रदायुधा समस्थिथा युधये शंसमाविदे ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मना ऽवर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम् ३
जज्ञान एव व्यबाधत स्पृधः प्रापश्यद् वीरो अभि पौंस्यं रणम् ।
अवृश्चदद्रिमव सस्यदः सृज—दस्तभ्नान्नाकं स्वपस्यया पृथुम् ४
आदिन्द्रः सत्रा तविषीरपत्यत वरीयो द्यावापृथिवी अबाधत ।
अवाभरद्धृषितो वज्रमायसं शेवं मित्राय वरुणाय दाशुषे ५
इन्द्रस्यात्र तविषीभ्यो विरप्शिन ऋघायतो अरंहयन्त मन्यवे ।
वृत्रं यदुग्रो व्यवृश्चदोजसा ऽपो बिभ्रतं तमसा परीवृतम् ६ २७५०
या वीर्याणि प्रथमानि कर्त्वा महित्वेभिर्यतमानो समीयतुः ।
ध्वान्तं तमोऽव दध्वसे हत इन्द्रो मह्ना पूर्वहूतावपत्यत ७
विश्वे देवासो अध वृष्ण्यानि ते ऽवर्धयन्त्सोमवत्या वचस्यया ।
रद्धं वृत्रमहिमिन्द्रस्य हन्मना ऽग्निर्न जम्भैस्तृष्वन्नमावयत् ८
भूरि दक्षेभिर्वचनेभिर्ऋक्वभिः सख्येभिः सख्यानि प्र वोचत ।
इन्द्रो धुनिं च चुमुरिं च दम्भय—ञ्छ्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये ९
त्वं पुरूण्या भरा स्वश्व्या येभिर्मंसै निवचनानि शंसन् ।
सुगेभिर्विश्वा दुरिता तरेम विदो षु ण उर्विया गाधमद्य १० २७५४

॥ २५२ ॥ (ऋ० १०।११३।१-९)

(२७५५-२७६३) स्थौरोऽग्नियुत स्थौरोऽग्नियूपो वा । त्रिष्टुप् ।

पिबा सोमं महत इंद्रियाय पिबा वृत्राय हन्तवे शविष्ठ ।
पिब राये शवसे हूयमानः पिब मध्वस्तृपदिन्द्रा वृषस्व १ २७५५
अस्य पिब क्षुमतः प्रस्थितस्ये—न्द्र सोमस्य वरमा सुतस्य ।
स्वस्तिदा मनसा मादयस्वा—ऽर्वाचीनो रेवते सौभगाय २
ममत्तु त्वा दिव्यः सोम इन्द्र ममत्तु यः सूयते पार्थिवेषु ।
ममत्तु येन वरिवश्चकर्थ ममत्तु येन निरिणासि शत्रून् ३
आ द्विबर्हा अमिनो यात्विन्द्रो वृषा हरिभ्यां परिषिक्तमन्धः ।
गव्या सुतस्य प्रभृतस्य मध्वः सत्रा खेदामरुशहा वृषस्व ४

नि तिग्मानि भ्राशयन् भ्राश्या न्यव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम् ।
उग्राय ते सहो बलं ददामि प्रतीत्या शत्रून् विगदेषु वृश्च ५
व्य१र्य इन्द्र तनुहि श्रवांस्यो जः स्थिरेव धन्वनोऽभिमातीः ।
अस्मद्र्यग्वावृधानः सहोभि रनिभृष्टस्तन्वं वावृधस्व ६ २७६०
इदं हविर्मघवन् तुभ्यं रातं प्रति सम्राळहृणानो गृभाय ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यं पक्वो३ ऽद्धीन्द्र पिब च प्रस्थितस्य ७
अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि चनो दधिष्व पचतोत सोमम् ।
प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ८
प्रेन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यामियर्मि सिंधाविव प्रेरयं नावमर्कैः ।
अया इव परि चरन्ति देवा ये अस्मभ्यं धनदा उद्भिदश्च ९ २७६३

॥ २५३ ॥ (ऋ० १०।१२०।१-९)

(२७६४-२७७२) आथर्वणो बृहद्दिवः ।

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रू ननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः १
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु २ २७६५
त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा स मदः सु मधु मधुनाभि योधीः ३
इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं मदेमदे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयो धृष्णो स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् यातुधाना दुरेवाः ४
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ५
स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्व मिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम् ।
आ दर्षते शवसा सप्त दानून् प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि ६
नि तद्दधिषेऽवरं परं च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ मातरा स्थापयसे जिगत्नू अत इनोषि कर्वरा पुरूणि ७ २७७०
इमा ब्रह्म बृहद्दिवो विवक्ती न्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ८

एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वा ऽवोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्रा हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ९ २७७२

॥ २५४ ॥ (ऋ० १०।१३१।१-३,६-७) (२७७३-२७७७) सुकीर्तिः काक्षीवत ।

अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रा नपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम १
कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः २
नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।
गव्यन्त इंद्रं सख्याय विप्रा अश्वायंतो वृषणं वाजयन्तः ३ २७७५
इंद्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ६
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्या ऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इंद्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ७ २७७७

॥ २५५ ॥ (१०।१३३।१-७)

(२७७८-२७८४) सुदाः पैजवनः । शक्करी, ४-६ महापङ्क्ति , ७ त्रिष्टुप् ।

प्रो ष्वस्मै पुरोरथ मिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् संगे समत्सु वृत्रहा ऽस्माकं बोधि चोदिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु १
त्वं सिंधूँरवासृजो ऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे
नभंतामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु २
वि षु विश्वा अरातयो ऽर्यो नशंत नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इंद्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु
नभंतामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ३ २७८०
यो न इंद्राभितो जनो वृकायुरादिदेशति ।
अधस्पदं तमीं कृधि विबाधो असि सासहि र्नभंतामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ४
यो न इंद्राभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अव तस्य बलं तिर महीव द्यौरध त्मना नभंतामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ५

वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वमा रभामहे ।
ऋतस्य नः पथा नयाऽति विश्वानि दुरिता नभंतामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ६
अस्मभ्यं सु त्वमिन्द्र तां शिक्ष या दोहते प्रति वरं जरित्रे ।
अच्छिद्रोध्नी पीपयद् यथा नः सहस्रधारा पयसा मही गौः ७ २७८४

॥ २५६ ॥ (ऋ० १०।१३४।१-७)

(२७८५-२७९१) १-६ (पूर्वार्धस्य) मान्धाता यौवनाश्वः, ६ (उत्तरार्धस्य)-७ गोधा ऋषिका । महापङ्क्ति , ७ पंक्तिः ।

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनां देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् १ २७८५
अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ आदिदेशति देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् २
अव त्या बृहतीरिषो विश्वश्चन्द्रा अमित्रहन् ।
शचीभिः शक्र धूनुहीन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ३
अव यत् त्वं शतक्रतविन्द्र विश्वानि धूनुषे ।
रयिं न सुन्वते सचा सहस्रिणीभिरूतिभिर्देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ४
अव स्वेदा इवाभितो विष्वक् पतन्तु दिद्यवः ।
दूर्वाया इव तन्तवो व्य१स्मदेतु दुर्मतिर्देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ५
दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मंतुमः ।
पूर्वेण मघवन् पदाऽजो वयां यथा यमो देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ६ २७९०
नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मंत्रश्रुत्यं चरामसि ।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे ७ २७९१

॥ २५७ ॥ (ऋ० १०।१३८।१-६) (२७९२-२७९७) अङ्ग औरवः । जगती ।

तव त्य इंद्र सख्येषु वह्नय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम् ।
यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः १
अवासृजः प्रस्वः श्वञ्चयो गिरीनुदाज उस्रा अपिबो मधु प्रियम् ।
अवर्धयो वनिनो अस्य दंससा शुशोच सूर्य ऋतजातया गिरा २
वि सूर्यो मध्ये अमुचद् रथं दिवो विद् दासाय प्रतिमानमार्यः ।
दृळ्हानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इंद्रो व्यास्यच्चकृवाँ ऋजिश्वना ३

अनाधृष्टानि धृषितो व्यास्य—न्निधींरदेवाँ अमृणदयास्यः ।
मासेव सूर्यो वसु पुर्यमा ददे　गृणानः शत्रूँरशृणाद्विरुक्मता　४　२७९५
अयुद्धसेनो विभ्वा विभिंदुता　दाशद् वृत्रहा तुज्यानि तेजते ।
इंद्रस्य वज्रादबिभेदभिश्नथः　प्राक्रामच्छुन्ध्यूरजंहादुषा अनः　५
एता त्या ते श्रुत्यानि केवला　यदेक एकमकृणोरयज्ञम् ।
मासां विधानमदधा अधि द्यवि　त्वया विभिन्नं भरति प्रधिं पिता　६　२७९७

॥ २५८ ॥ (ऋ० १०।१४४।१-६)
(२७९८-२८०३) तार्क्ष्यः सुपर्णः, यामायन ऊर्ध्वकृशनो वा।
गायत्री, २ बृहती, ५ सतोबृहती, ६ विष्टारपङ्क्तिः।

अयं हि ते अमर्त्य　इंदुरत्यो न पत्यते । दक्षो विश्वायुर्वेधसे　१
अयमस्मासु काव्य　ऋभुर्वज्रो दास्वते ।
अयं बिभर्त्यूर्ध्वकृशनं मदं—मृभुर्न कृत्व्यं मदम्　२
घृषुः श्येनाय कृत्वन　आसु स्वासु वंसगः । अव दीधेदहीशुवः　३　२८००
यं सुपर्णः परावतः　श्येनस्य पुत्र आभरत् । शतचक्रं योऽह्यो वर्तनिः　४
यं ते श्येनश्चारुमवृकं पदाभर—दरुणं मानमन्धसः ।
एना वयो वि तार्यायुर्जीवस　एना जागार बंधुता　५
एवा तदिन्द्र इंदुना　देवेषु चिद्धारयाते महि त्यजः ।
क्रत्वा वयो वि तार्यायुः सुक्रतो　क्रत्वायमस्मदा सुतः　६　२८०३

॥ २५९ ॥ (ऋ० १०।१४७।१-५)
(२८०४-२८०८) सुवेदाः शैरीषिः । जगती, ५ त्रिष्टुप् ।

श्रत् ते दधामि प्रथमाय मन्यवे　ऽहन्यद् वृत्रं नर्यं विवेरपः ।
उभे यत् त्वा भवतो रोदसी अनु　रेजते शुष्मात् पृथिवी चिदद्रिवः　१
त्वं मायाभिरनवद्य मायिनं　श्रवस्यता मनसा वृत्रमर्दयः ।
त्वामिन्नरो वृणते गविष्टिषु　त्वां विश्वासु हव्यास्विष्टिषु　२　२८०५
ऐषु चाकन्धि पुरुहूत सूरिषु　वृधासो ये मघवन्नानशुर्मघम् ।
अर्चन्ति तोके तनये परिष्टिषु　मेधसाता वाजिनमह्रये धने　३
स इन्नु रायः सुभृतस्य चाकन—न्मदं यो अस्य रंह्यं चिकेतति ।
त्वावृधो मघवन् दाश्वध्वरो　मक्षू स वाजं भरते धना नृभिः　४
त्वं शर्धाय महिना गृणान　उरु कृधि मघवञ्छग्धि रायः ।
त्वं नो मित्रो वरुणो न मायी　पित्वो न दस्म दयसे विभक्ता　५　२८०८

॥ २६० ॥ (ऋ० १०।१४८।१-५) (२८०९-२८१३) पृथुर्वैन्यः । त्रिष्टुप् ।

सुष्वाणास इंद्र स्तुमसि त्वा ससवांसश्च तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य चाकन् त्मना तना सनुयाम त्वोताः १
ऋष्वस्त्वमिन्द्र शूर जातो दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु बिभृमसि प्रस्रवणे न सोमम् २ २८१०
अर्यो वा गिरो अभ्यर्च विद्वा— नृषीणां विप्रः सुमतिं चकानः ।
ते स्याम ये रणयन्त सोमै— रेनोत तुभ्यं रथोळ्ह भक्षैः ३
इमा ब्रह्मेन्द्र तुभ्यं शंसि दा नृभ्यो नृणां शूर शवः ।
तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाक— न्नुत त्रायस्व गृणत उत स्तीन् ४
श्रुधी हवमिन्द्र शूर पृथ्या उत स्तवसे वेन्यस्यार्कैः ।
आ यस्ते योनिं घृतवन्तमस्वा— रूर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः ५ २८१३

॥ २६१ ॥ (ऋ० १०।१५२।१-५) (२८१४-२८१८) शासो भारद्वाजः । अनुष्टुप् ।

शास इत्था महाँ अस्य— मित्रखादो अद्भुतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन १
स्वस्तिदा विशस्पति— र्वृत्रहा विमृधो वशी ।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः २ २८१५
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रह— न्नमित्रस्याभिदासतः ३
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदास— त्यधरं गमया तमः ४
अपेन्द्र द्विषतो मनो ऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ५ २८१८

॥ २६२ ॥ (ऋ० १०।१५३।१-५) (२८१९-२८२३) देवजामय इन्द्रमातरः । गायत्री ।

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् १
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन् वृषेदसि २ २८२०
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ३
त्वमिन्द्र सजोषस— मर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसा ४
त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा । स विश्वा भुव आभवः ५ २८२३

॥ २६३ ॥ (१०।१६०।१-५) (२८२४-२८२८) पूरणो वैश्वामित्रः। त्रिष्टुप्।

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः १
तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वास--स्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् २ २८२५
य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ३
अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम्।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ४
अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ५ २८२८

॥ २६४ ॥ (ऋ० १०।१६७।१-२, ४) (२८२९-२८३१) विश्वामित्र-जमदग्नी। जगती।

तुभ्येदमिन्द्र परि षिच्यते मधु त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि।
त्वं रयिं पुरुवीरामु नस्कृधि त्वं तपः परितप्याजयः स्वः १
स्वर्जितं महि मन्दानमन्धसो हवामहे परि शक्रं सुताँ उप।
इमं नो यज्ञमिह बोध्या गहि स्पृधो जयन्तं मघवानमीमहे २ २८३०
प्रसूतो भक्षमकरं चरावपि स्तोमं चेमं प्रथमः सूरिरुन्मृजे।
सुते सातेन यद्यागमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे ४ २८३१

॥ २६५ ॥ (ऋ० १०।१७१।१-४) (२८३२-२८३५) इटो भार्गवः। गायत्री।

त्वं त्यमिटतो रथ--मिन्द्र प्रावः सुतावतः। अशृणोः सोमिनो हवम् १
त्वं मखस्य दोधतः शिरोऽव त्वचो भरः। अगच्छः सोमिनो गृहम् २
त्वं त्यमिंद्र मर्त्य--मास्त्रबुध्नाय वेन्यम्। मुहुः श्रथ्ना मनस्यवे ३
त्वं त्यमिंद्र सूर्यं पश्चा संतं पुरस्कृधि। देवानां चित् तिरो वशम् ४ २८३५

॥ २६६ ॥ (ऋ० १०।१७९।१-३)

(२८३६-२८३८) क्रमेण शिबिरौशीनरः, काशिराजः प्रतर्दनः, रौहिदश्वो वसुमनाः। त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप्।

उत् तिष्ठतावं पश्यते--न्द्रस्य भागमृत्वियम्।
यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन १
श्रातं हविरो ष्विंद्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम्।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरंतम् २

श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुश्रातं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन् पुरुकृज्जुषाणः ३ १८३८

॥ २६७ ॥ (ऋ० १०।१८०।१-३) (१८३९-१८४१) जय ऐन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रू ञ्ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।
इंद्रा भर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् १
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताळ्हि वि मृधो नुदस्व २ १८४०
इंद्र क्षत्रमभि वाममोजो ऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रयन्त मुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ३ १८४१

॥ २६८ ॥ (ऋ० १०।४७।१-८) (१८४२-१८४९) सप्तगुरांगिरस. । [वैकुण्ठ इंद्रः] ।

जगृभ्मा ते दक्षिणमिंद्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोना मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः १
स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवार मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः २
सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्त मुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र ।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाह मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ३
सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्य मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ४ १८४५
अश्वावंतं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र ।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षा मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ५
प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति ।
य आङ्गिरसो नमसोपसद्यो ऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ६
वनीवानो मम दूतास इंद्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः ।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ७
यत् त्वा यामि दद्धि तन्न इंद्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम् ।
अभि तद् द्यावापृथिवी गृणीता मस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ८ १८४९

॥ २६९ ॥ (ऋ० १०।११९।१-१३)
(१८५०-१८६२) ऐन्द्रो लबः । [आत्मा (इन्द्रः)] । गायत्री ।

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति । कुवित सोमस्यापामिति १ १८५०

प्र वाता इव दोधत उन्मा पीता अयंसत । कुवित् सोमस्यापामिति २
उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः । कुवित् सोमस्यापामिति ३
उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम् । कुवित् सोमस्यापामिति ४
अहं तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् । कुवित सोमस्यापामिति ५
नहि मे अक्षिपच्चना—ऽच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः । कुवित् सोमस्यापामिति ६ २८५५
नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति । कुवित सोमस्यापामिति ७
अभि द्यां महिना भुव—मभीऽमां पृथिवीं महीम् । कुवित् सोमस्यापामिति ८
हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा । कुवित सोमस्यापामिति ९
ओषमित् पृथिवीमहं जङ्घनानीह वेह वा । कुवित् सोमस्यापामिति १०
दिवि मे अन्यः पक्षोऽ ऽधो अन्यमचीकृषम् । कुवित् सोमस्यापामिति ११ २८६०
अहमस्मि महामहो ऽभिनभ्यमुदीषितः । कुवित् सोमस्यापामिति १२
गृहो याम्यरंकृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः । कुवित् सोमस्यापामिति १३ २८६२

॥ २७० ॥ (अथर्व० २।५।१-४)

(२८६३-२८६६) भृगुराथर्वणः। १ उपरिष्टान्निचृद्बृहती, २ उपरिष्टाद् विराड्बृहती, ३ विराट्पथ्या बृहती, ४ जगती पुरोविराट् ।

इंद्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिभ्याम् ।
पिबा सुतस्य मतेरिह मधोश्चकानश्चारुर्मदाय १
इंद्र जठरं नव्यो न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्व१र्णोप त्वा मदाः सुवाचो अगुः २
इंद्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न ।
बिभेद वलं भृगुर्न ससहे शत्रून्मदे सोमस्य ३ २८६५
आ त्वा विशन्तु सुतास इंद्र पृणस्व कुक्षी विड्ढि शक्र धियेह्या नः ।
श्रुधी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय ४ + २८६६

॥ २७१ ॥ (अथर्व० ४।२४।१-७)

(२८६७-२८७३) मृगारः । त्रिष्टुप्, १ शाक्करीगर्भा पुरःशाक्करी ।

इंद्रस्य मन्महे शश्वदिदस्य मन्महे वृत्रघ्न स्तोमा उप मेम आगुः ।
यो दाशुषः सुकृतो हवमेति स नो मुञ्चत्वंहसः १
य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययु—र्यो दानवानां बलमारुरोज ।
येन जिताः सिंधवो येन गावः स नो मुञ्चत्वंहसः २

+ अथर्व० २।५।५-७, ऋ० १।३२।१-३; दै०सं० [इन्द्रः] ७१५-७१७, [२८६३-६६] अश्व० श्रौ०सू०पूर्व० ६।३

यश्चर्षणिप्रो वृषभः स्वर्विद् यस्मै ग्रावाणः प्रवदन्ति नृम्णम् ।
यस्याध्वरः सप्तहोता मदिष्ठः स नो मुञ्चत्वंहसः ३
यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे ।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः ४ १८७०
यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते यं हवन्त इषुमन्तं गविष्टौ ।
यस्मिन्नर्कः शिश्रिये यस्मिन्नोजः स नो मुञ्चत्वंहसः ५
यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम् ।
येनोद्यतो वज्रोऽभ्यायताहिं स नो मुञ्चत्वंहसः ६
यः संग्रामान्नयति सं युधे वशी यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि ।
स्तौमीन्द्रं नाथितो जोहवीमि स नो मुञ्चत्वंहसः ७ १८७३

॥ २७२ ॥ (अथर्व० ५।२३।१-१३) (१८७४-१८८६) कण्वः। अनुष्टुप्, १३ विराट् ।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती । ओतौ म इंद्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति १
अस्येंद्र कुमारस्य क्रिमीन्धनपते जहि । हता विश्वा अरातय उग्रेण वचसा मम २ १८७५
यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति । दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि ३
सरूपौ द्वौ विरूपौ द्वौ कृष्णौ द्वौ रोहितौ द्वौ । बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च गृध्रः कोकश्च ते हताः ४
ये क्रिमयः शितिकक्षा ये कृष्णाः शितिबाहवः । ये के च विश्वरूपा—स्तान्क्रिमीन्जम्भयामसि ५
उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा । दृष्टांश्च घ्नन्नदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणन्क्रिमीन् + ६
येवाषासः कष्कषास एजत्काः शिपवित्नुकाः । दृष्टश्च हन्यतां क्रिमि—रुतादृष्टश्च हन्यताम् ७ १८८०
हतो येवाषः क्रिमीणां हतो नदनिमोत । सर्वान्नि मष्मषाकरं दृषदा खल्वाँ इव ८
त्रिशीर्षाणं त्रिककुदं क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम् । शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ९
अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् । अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् १०
हतो राजा क्रिमीणा—मुतैषां स्थपतिर्हतः । हतो हतमाता क्रिमि—र्हतभ्राता हतस्वसा ११
हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः। अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः १२ १८८५
सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां च क्रिमीणाम्। भिनद्म्यश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम् १३ १८८६

॥ २७३ ॥ (अथर्व० ६।३३।१-३) (१८८७-१८८९) जाटिकायनः। गायत्री, २ अनुष्टुप् ।

यस्येदमा रजो युज—स्तुजे जना वनं स्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् १
नाधृष आ दधृषते धृषाणो धृषितः शवः। पुरा यथा व्यथिः श्रव इन्द्रस्य नाधृषे शवः २
स नो ददातु तां रयि—मुरुं पिशङ्गसंदृशम् । इन्द्रः पतिस्तुविष्टमो जनेष्वा ३ १८८९

+ ऋ० १।१९१।८

॥ २७४ ॥ (अथर्व० ६।६६।१-३) (२८९०-२८९१) अथर्वा । अनुष्टुप्, १ त्रिष्टुप् ।

निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान् ।
समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः १ २८९०
आतन्वाना आयच्छन्तो ऽस्यन्तो ये च धावथ ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थने न्द्रो वोऽद्य पराशरीत् २
निर्हस्ताः सन्तु शत्रवो ऽङ्गैषां म्लापयामसि ।
अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहै ३

॥ २७५ ॥ (अथर्व० ६।६७।१-३) अनुष्टुप् ।

परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः । मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम् १
मूढा अमित्राश्चरता शीर्षाण इवाहयः । तेषां वो अग्निमूढाना मिन्द्रो हन्तु वरंवरम् २
ऐषु नह्य वृषाजिनं हरिणस्या भियं कृधि । पराङमित्र एषत्वर्वाची गौरुपेषतु ३ २८९५

॥ २७६ ॥ (अथर्व० ६।७५।१-३) (२८९६-२८९८) कबन्ध । अनुष्टुप्, ३ षट्पदा जगती ।

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति । नैर्बाध्येन हविषे न्द्र एनं पराशरीत् १
परमां तं परावत मिन्द्रो नुदतु वृत्रहा । यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः २
एतु तिस्रः परावत एतु पञ्च जनाँ अति ।
एतु तिस्रोऽति रोचना यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यो यावत्सूर्यो असद्दिवि ३ २८९८

॥ २७७ ॥ (अथर्व० ६।८२।१-३) (२८९९-२९०१) भग । अनुष्टुप् ।

आगच्छत आगतस्य नाम गृह्णाम्यायतः । इन्द्रस्य वृत्रघ्नो वन्वे वासवस्य शतक्रतोः १
येन सूर्यां सावित्री मश्विनोहतुः पथा । तेन मामब्रवीद्भगो जायामा वहतादिति २ २९००
यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्निन्द्र हिरण्ययः । तेना जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते ३ २९०१

॥ २७८ ॥ (अथर्व० ६।९८।१-३) (२९०२-२९०४) अथर्वा । त्रिष्टुप्, २ बृहतीगर्भास्तारपङ्क्तिः ।

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै ।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चो पसद्यो नमस्यो भवेह १
त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्यु स्त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम् ।
त्वं दैवीर्विश इमा वि राजा ऽऽयुष्मत्क्षत्रमजरं ते अस्तु २
प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजो तोदीच्या दिशो वृत्रहञ्छत्रुहोऽसि ।
यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः ३ २९०४

॥ २७९ ॥ (अथर्व० ७।३१।१) (२९०५) भृग्वङ्गिराः । भुरिक् त्रिष्टुप् ।

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु १ २९०५

॥ २८० ॥ (अथर्व० ७।५०।१--३,५,८--९)

(२९०६ २९११) अङ्गिराः (कितववधकामः)। अनुष्टुप्, ३ त्रिष्टुप् ।

यथा वृक्षमशनि--र्विश्वाहा हन्त्यप्रति । एवाहमद्य कितवा--नक्षैर्बध्यासमप्रति १
तुराणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम् । समैतु विश्वतो भगो अन्तर्हस्तं कृतं मम २
ईडे अग्निं स्वावसुं नमोभि--रिह प्रसक्तो वि चयत्कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् ३ +
अजैषं त्वा संलिखित--मजैषमुत संरुधम् । अविं वृको यथा मथ--देवा मथ्नामि ते कृतम् ५
कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद्भूयासमश्वजि--द्धनंजयो हिरण्यजित् ८ २९१०
अक्षाः फलवतीं द्युवं दत्त गां क्षीरिणीमिव ।
सं मा कृतस्य धारया धनुः स्नाव्नेव नह्यत ९ २९११

॥ २८१ ॥ (अथर्व० ७।५५।१) (२९१२) भृगुः । विराट् परोष्णिक् ।

ये ते पन्थानोऽव दिवो येभिर्विश्वमैरयः । तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो १ २९१२

॥ २८२ ॥ (अथर्व० ७।९३।१) (२९१३) भृग्वङ्गिराः । गायत्री ।

इन्द्रेण मन्युना वय--मभि ष्याम पृतन्यतः । घ्नन्तो वृत्राण्यप्रति १ २९१३

॥ २८३ ॥ (अथर्व० १९।१३।१) (२९१४) अप्रतिरथः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्व१र्यत् १ × २९१४

॥ २८४ ॥ (अथर्व० १९।१५।२-३) (२९१५-२९१६) अथर्वा । त्रिष्टुप्, ३ पथ्यापङ्क्ति ।

इन्द्रं वयमनूराधं हवामहे ऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुप गु--र्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय २ ※ २९१५
इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः ।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात्स पुरस्तान्नो अस्तु ३ २९१६

॥ २८५ ॥ (अथर्व० २०।२।३) (२९१७) गृत्समदो मेधातिथिर्वा । आर्च्युष्णिक् ।

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात्सुष्टुभः स्वर्काद्दृतुना सोमं पिबतु ३ २९१७

+ अथर्व० ७।५०।४, ६-७, ऋ० १।१०२।४, १०।४२।९-१०, १०।४३-४४।१०, दै० [इन्द्रः] ८३०, २५५४-५५, २५६६, २५७७ ।

× अथर्व० १९।१३।२-७,९-११, ऋ०१०।१०३।१-३,५-११,१३, दै०[इन्द्र] २६९१-२७०१ ।

※ अथर्व० १९।१५।१,४; ऋ० ८।६१।१३, ६।४७।८; दै० [इन्द्रः] ५६०,२१०६ ।

॥ २८६ ॥ (वा० य० १।४)

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः ।
इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳ रक्ष　४　२९१८

॥ २८७ ॥ (वा० य० ३।४९-५०)

पूर्णा दर्वि परा पत　सुपूर्णा पुनरापत ।
वस्नेव विक्रीणावहा　ऽइषमूर्जꣳ शतक्रतो　४९ +
देहि मे ददामि ते　नि मे धेहि नि ते दधे ।
निहारं च हरासि मे　निहारं निहराणि ते स्वाहा　५०　२९२०

॥ २८८ ॥ (वा० य० ५।२८,३०)

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात ।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया　२८ ×
इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि । ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि　३०　२९२२

॥ २८९ ॥ (वा० य० ७।४,१४-१५,२५)

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यच्छ मघवन् पाहि सोमम् । उरुष्य राय ऽ एषो यजस्व　४
अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम ।
सा प्रथमा सꣳस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो ऽ अग्निः　१४
स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्मा ऽ इन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा ।
तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहायाडग्नीत्　१५　२९२५
ध्रुवं ध्रुवेण मनसा　वाचा सोममवनयामि ।
अथा न ऽ इन्द्र इद्विशो　ऽसपत्नाः समनसस्करत　२५ ❀ २९२६

॥ २९० ॥ (वा० य० ८।३२,३६)

मही द्यौः पृथिवी च न　इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः　३२ ::
यस्मान्न जातः परो ऽ अन्यो ऽ अस्ति　य ऽ आविवेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराण—स्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी　३६　२९२८

+ वा० य० ३।५१-५२; ऋ० १।८२।२-३; अथर्व० ३।७।१०; १८।४।६१; दै० स० [इन्द्रः] ९२६-२७ ।

× वा० य० ५।२९, ऋ० १।१०।१२; दै० स० [इन्द्र] ६९ ।

❀ वा० य० ७।२५; ऋ० १०।१७३।६, अथर्व० ७।९४।१ ।

:: वा० य० ८।३३-३५; ऋ० १।१०।३, १।८४।२-३; साम० १०२९-३०, १३४६; दै०सं० [इन्द्र] ६०,९३८-३९ ।

❀

॥ २९१ ॥ (वा० य० १२।६६)
निवेशनः संगमनो वसूनां विश्वा रूपाभिचष्टे शचीभिः ।
देव ऽ इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ६६ [] २९२९

॥ २९२ ॥ (वा० य० १३।१४)
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या ऽ अयम् । अपाᳬ रेताᳬसि जिन्वति १४ + २९३०

॥ २९३ ॥ (वा० १७।२३,३६,४४-४५,५१,६३)
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे ऽ अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद् विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा २३ ×
बृहस्पते परिदीया रथेन रक्षोहामित्राँ२ऽअपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ३६ ⁂
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकै रन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ४४
अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसᳬशिते । गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ४५
इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसद्वशी । समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदाऽअसत ५१ २९३५
वाजस्य मा प्रसव उद्ग्राभेणोदग्रभीत् । अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ२ अकः ६३ २९३६

॥ २९४ ॥ (वा० य० १९।३२,८०-९५)
सुरावन्तं बर्हिषदᳬ सुवीरं यज्ञᳬ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ३२ ::
सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति ।
अश्विना यज्ञᳬ सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं वरुणो भिषज्यन् ८०
तदस्य रूपममृतᳬ शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः सᳬरराणाः ।
लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य मांसमभवन्न लाजाः ८१
तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशो ऽ अन्तरम् ।
अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ८२ २९४०

[] ऋ० १०।१३९।३ अथर्व० १०।८।४२
+ ऋ० ८।४४।१६, साम० २७,१५३२, दै० स० [अग्नि.] १३५८ ।
× ऋ० १०।८१।७
⁂ वा० य० १७।३३-४५,५१,६३; ऋ० १०।१०३।१-१२, ६।७५।१६, साम०१८४९-१८६१,१८६३; अथर्व०३।१।५, १९।१३।८, ३।५।२, ६।३७।३, ८।५।२, १९।१३।२-११, दै० स० [इन्द्रः] २६९२-२७०१ ।
:: वा० य० १९।७१; ऋ० ८।१४।१३; साम० २११, अथर्व० २०।२९।३; दै० सं० [इन्द्रः] ३६६ ।

सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः।
रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ८३
पयसा शुक्रममृतं जनित्रꣳ सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः।
अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऊवध्यं वातꣳ सब्वं तदारात् ८४
इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान।
यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ८५
आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः।
श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभि॒रासन्दी नाभिरुदरं न माता ८६
कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभि॒र्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो ऽ अन्तः।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार ऽ उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ८७ २९४५
मुखꣳ सदस्य शिर ऽ इत सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती।
चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ८८
अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन।
पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ८९
अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था ऽ अमृतो ग्रहाभ्याम्।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ९०
इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याꣳ श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम्।
यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ९१
आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम।
केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिꣳहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ९२ २९५०
अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विना॒त्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती।
इन्द्रस्य रूपꣳ शतमानमायु॒श्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ९३
सरस्वती योन्यां गर्भमन्त॒रश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्ति।
अपाꣳ रसेन वरुणो न साम्ने॒न्द्रꣳ श्रियै जनयन्नप्सु राजा ९४
तेजः पशूनाꣳ हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु।
अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोम ऽ इन्दुः ९५ २९५३

॥२९५॥ (वा० य० २०।३१, ७१-७७, ८०, ९०)

अध्वर्यो ऽ अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र ऽ आ नय। पुनाहीन्द्राय पातवे ३१ +

+ वा० य० २०।२९; ऋ० ३।५२।१, ८।९१।२, सा० २१०, दे० स० [इन्द्रः] १४४६

सविता वरुणो दधद् यजमानाय दाशुषे । आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ७१ १९५५
वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् । सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ७२
अश्विना गोभिरिन्द्रिय मश्वेभिर्वीर्यं बलम् । हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्धयन् ७३
ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्तनी नरा । सरस्वती हविष्मती न्द्र कर्मसु नोऽवत ७४
ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती । स वृत्रहा शतक्रतु रिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ७५
युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपानाः सरस्वती न्द्रं कर्मस्वावत ७६ ❀ १९६०
पुत्रमिव पितरावश्विनो भेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳ सनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ७७
अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् । वाचेन्द्रो बलेने न्द्राय दधुरिन्द्रियम् ८०
अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा ।
इंद्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताꣳ सोम्यं मधु ९० । १९६३

॥ २९६ ॥ (वा० य० २६।४-५, १०)

इंद्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमꣳ शतक्रतो । विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम् ४
इंद्रा याहि वृत्रहन् पिबा सोमꣳ शतक्रतो । गोमद्भिर्ग्रावभिः सुतम् ५ १९६५
महाँ२ ऽ इंद्रो वज्रहस्तः षोडशी शर्म यच्छतु । हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि १० § १९६६

॥ २९७ ॥ (वा० य० २९।५७)

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरो ऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ५७ ‡ १९६७

॥ २९८ ॥ (वा० य० ३३।२७, ७८-७९, ९०)

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त ऽ इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते ऽ अस्मे २७ $
ब्रह्माणि मे मतयः शꣳ सुतासः शुष्म ऽ इयर्ति प्रभृतो मे ऽ अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो ऽ अच्छ ७८

❀ वा० य० २०।७६ ७७, ऋ० १०।१३१।४-५; अथर्व० २०।१२५।४-५ ।

। वा० य० २०।८७-८९, ऋ० १।३।४-६, साम० ११४६-४८, अथर्व० २०।८४।१-३, दै० सं० [इन्द्र.] १-३ ।

§ वा० य० २६।११।२३, ऋ० ८।८८।१, ३।३५।६; साम० २३६, ६८५, अथर्व० २०।९।१; ४९।४, दै० सं० [इन्द्र:] ८९४, १३१७ ।

‡ वा० य० २९।५७, ऋ० ६।४७।३१; अथर्व० ६।१२५।६ ।

$ वा० य० ३३।१८।२९; ऋ० १।९।१; १०२।१, १६५।३-४, ९; ३।३४।३; ३८,४, ७।२३।४;६६।४, ८।४५।१; ८।७२।१२-१३, १०।५९।१, ७४।४; साम० ११७, १८०, १३३९, १३५१, १४८०, १६०२; अथर्व० ४।८।३, ७ २३।४, २०।१।१।२, ७१।७; दै०सं० [इन्द्र:] ११८३; १३४८,२६०१,४४४,४८,१३०३,८१८,२६३७; दै०सं० [अग्नि]१४३५-३६

अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ२ ऽ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ७९ २९७०
चन्द्रमा ऽ अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहꣳ हरिरेति कनिक्रदत् ९० २९७१

॥ २९९ ॥ (वा० य० ३५।१८)

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत । देवेष्वक्रत श्रवः क ऽ इमाँ२ ऽ आ दधर्षति १८ × २९७२

॥ ३०० ॥ (वा० य० ३६।८)

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो ऽ अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ८ २९७३

॥ ३०१ ॥ (वा० य० ३८।२६)

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे ।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहं—मूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् २६ * २९७४

॥ ३०२ ॥ (साम० १९०)

२ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २ २ ३ १ ३ १ २
क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् । स नो वसून्या भरात् १९० २९७५

॥ ३०३ ॥ (साम० १९६)

१ २ ३ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २र ३२ २ ३ २ ३२उ ३ १ २
सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् । न देवो वृतः शूर इन्द्रः १९६ २९७६

॥ ३०४ ॥ (साम० २०९, २१२)

१२ २ १ २ ३ १ २ ३ १२ १२ ३ १२
अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः । अरं शक्र परमाणि २०९ २९७७
३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २
इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः । तेषां मत्स्व प्रभूवसो २१२ २९७८

॥ ३०५ ॥ (साम० २२६, २३१)

१ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः । हरिवान्त्सुतानां सखा २२६
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
एन्द्र पृक्षु कासु चि—न्नृम्णं तनूषु धेहि नः । सत्राजिदुग्र पौंस्यम् २३१ २९८०

॥ ३०६ ॥ (साम० २९४, २९८)

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।
१ २ ३१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः २९४

‖ वा० य० ३३।५९, ६३-६७, ९५-९६; ऋ० ३।३१।६; ४७४, ४।३२।१, ८।८९।२-३; ९९।५-६, साम० १८१, २५७, ३११, १६३७-३८, दै० सं० [इन्द्रः] १२६५, १४१७, १६४५, २३८०-८१, २३८५-८६, २६१३ ।

× वा० य० ३५।१८, ऋ० १०।१५५।५; अथर्व० ६.२८।२ ।

× वा० य० ३६।४-७, ऋ० ४।३१।१-३, ८।९३।१९; साम० १६९, ६८२-८४; १५८६; अथर्व० २०।१२४।१-३, दै० सं० [इन्द्रः] १६३०-३२, २४४८ ।

* वा० य० ३८।२६, अथर्व० ४।६।२

यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।
अस्माकमंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय २९८ २९८१

॥ ३०७ ॥ (साम० ३२७)

मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिरप्स्नुम् ।
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्यु—रिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ३२७ २९८३

॥ ३०८ ॥ (साम० ३३६,३३७)

यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा ।
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्रा—भी ष्याम वृषमणस्त्वोताः ३३६
यं वृत्रेषु क्षितिय स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।
यं शूरसातौ यमपामुपज्म—न्यं विप्रासो वाजयन्त स इन्द्रः ३३७ २९८५

॥ ३०९ ॥ (साम० ४३८,१७६८,४४४-४४६,११११-१५)

एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ४३८
उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ४४४
अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः ४४५
प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते ४४६ २९८९

॥ ३१० ॥ (साम० ४४९, ४५३, ४५६, १७७०)

भगो न चित्रो अग्नि—र्महोनां दधाति रत्नम् ४४९ २९९०
वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ४५३
इन्द्रो विश्वस्य राजति ४५६ २९९१

॥ ३११ ॥ (साम० ५८८)

यस्येदमा रजोयुज—स्तुजे जने वनं स्वः । इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ५८८ २९९३

॥ ३१२ ॥ (साम० ६२३-६२५)

हरी त इन्द्र श्मश्रू—ण्युतो ते हरितौ हरी ।
तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः ६२३

यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत।
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्च—स्तेन मा संसृजामसि ६२४
सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन्।
क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः ६२५ २९९६

॥ ३१३ ॥ (साम० ९५२-९५४)

इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह।
पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ९५२ २९९७
इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न।
अस्य सुतस्य स्वा३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ९५३
इन्द्रस्तुरापाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न।
बिभेद वलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ९५४ २९९९

॥ ३१४ ॥ (साम० १८६९)

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवाना—वनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ।
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् १८६९ ३०००

॥ ३१५ ॥ (साम० १८७१)

अन्धा अमित्रा भवता—शीर्षाणोऽहय इव।
तेषां वो अग्निनुन्नाना—मिन्द्रो हन्तु वरंवरम् १८७१ ३००१

इन्द्रसहचारी-देवगणः।

(१) इन्द्राग्नी।

॥ ३१६ ॥ (ऋ० १।२१।१-६)

(३००२-३००७) मेधातिथिः काण्वः। गायत्री।

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित् स्तोममुश्मसि। ता सोमं सोमपातमा १
ता यज्ञेषु प्र शंसते—न्द्राग्नी शुम्भता नरः। ता गायत्रेषु गायत २
ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे। सोमपा सोमपीतये ३
उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम्। इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ४ ३००५
ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम्। अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ५
तेन सत्येन जागृत—मधि प्रचेतुने पदे। इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ६ ३००७

॥ ३१६ ॥ (ऋ० १।१०८।१-१३)

(३००८-३०२०) कुत्स आंगिरसः । त्रिष्टुप् ।

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वा—मभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसा—था सोमस्य पिबतं सुतस्य १
यावदिदं भुवनं विश्वम—स्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अ—स्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् २
चक्राथे हि सध्र्यङ्नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ३ ३०१०
समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वा—गेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ४
यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ५
यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो३ ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यात—मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ६
यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यात—मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ७
यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यात—मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ८ ३०१५
यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः
अतः परि वृषणावा हि यात—मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ९
यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यात—मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य १०
यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत् पृथिव्यां यत् पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यात—मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ११
यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यात—मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य १२
एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिंधुः पृथिवी उत द्यौः १३ ३०२०

॥ ३१८ ॥ (ऋ० १।१०९।१-८)

वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत् प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् १
अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् २
मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ३
युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ४
युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ५ ३०२५
प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ६
आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ७
पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ८ ३०२८

॥ ३१९ ॥ (ऋ० १।१३९।९) (३०२९) परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः ।

दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः ।
तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः। तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा ९,३०२९

॥ ३२० ॥ (ऋ० ३।१२।१-९) (३०३०-३०३८) गाथिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता १ ३०३०
इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् २
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ३
तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ४
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ५
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ६ ३०३५
इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ७
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ८

❀

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद् वां चेति प्र वीर्यम् ९ ३०३८

॥ ३२१ ॥ (ऋ० ५।२७।६)

(३०३९) त्रैवृष्णस्त्र्यरुणः, पौरुकुत्सस्त्रसदस्युः, भारतोऽश्वमेधश्च राजानः(अत्रिर्भौम इति केचित्)। अनुष्टुप्।

इन्द्राग्नी शतदाव्न्य—श्वमेधे सुवीर्यम् । क्षत्रं धारयतं बृहद् दिवि सूर्यमिवाजरम् ६ ३०३९

॥ ३२२ ॥ (ऋ० ५।८६।१-६) (३०४०-३०४५) भौमोऽत्रिः । अनुष्टुप्, ६ विराट्पूर्वा ।

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् । दृळ्हा चित् स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः १ ३०४०
या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या । या पञ्च चर्षणीरभी—न्द्राग्नी ता हवामहे २
तयोरिदमवच्छव—स्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः । प्रति द्रुणा गभस्त्यो—र्गवां वृत्रघ्न एषते ३
ता वामेषे रथाना—मिन्द्राग्नी हवामहे । पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ४
ता वृधन्तावनु द्यून् मर्ताय देवावदभा । अर्हन्ता चित् पुरो दधे—ऽशेव देवावर्वते ५
एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद् रयिं गृणत्सु दिधृत—मिषं गृणत्सु दिधृतम् ६ ३०४५

॥ ३२३ ॥ (ऋ० ६।५९।१-१०) (३०४६-३०७०) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । बृहती, ७-१० अनुष्टुप् ।

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या३ यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् १
बळित्था महिमा वा—मिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा २
ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने ।
इन्द्रा न्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ३
य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत् तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ४
इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान् युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ५ ३०५०
इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पद्वतीभ्यः । हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत् त्रिंशत् पदा न्यक्रमीत् ६
इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः । मा नो अस्मिन् महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ७
इन्द्राग्नी तपन्ति मा—ऽघा अर्यो अरातयः । अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ८
इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा । आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ९
इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता । विश्वाभिर्गीर्भिरा गत—मस्य सोमस्य पीतये १० ३०५५

॥ ३२४ ॥ (ऋ० ६।६०।१-१५) गायत्री, १-३, १३ त्रिष्टुप्, १४ बृहती, १५ अनुष्टुप्।

श्नथंद् वृत्रमुत संनोति वाज—मिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात्।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता १
ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नून—मपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् २
आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मै—रिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक्।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्रा—ऽग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ३
ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ४
उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ५ ३०६०
हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती । हतो विश्वा अप द्विषः ६
इन्द्राग्नी युवामिमे३ ऽभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शंभुवा सुतम् ७
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ८
ताभिरा गच्छतं नरो—पेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ९
तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत्। कृष्णा कृणोति जिह्वया १० ३०६५
य इन्द्र आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ११
ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः । इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे १२
उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै।
उभा दातारविषां रयीणा—मुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् १३
आ नो गव्येभिरश्व्यै—र्वसव्यै३रुप गच्छतम्।
सखायौ देवौ सख्याय शंभुवे—न्द्राग्नी ता हवामहे १४
इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः । वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु १५ ३०७०

॥ ३२५ ॥ (ऋ० ७।९३।१-८) (३०७१-३०९०) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप्।

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्ये—न्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम्।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा १
ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः २
उपो ह यद् विदथं वाजिनो गु—र्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ३

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ४
सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ५ ३०७५
इमामु षु सोमसुतिमुप न एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्मा—ना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ६
सो अग्न एना नमसा समिद्धो ऽच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचेः ।
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळ तदर्यमादितिः शिश्रथन्तु ७
एता अग्न आशुषाणास इष्टी—र्युवोः सचाभ्यश्याम वाजान् ।
मेन्द्रो नो विष्णुर्मरुतः परि ख्यन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८

॥ ३२६ ॥ (ऋ० ७।९४।१-१२) गायत्री, १२ अनुष्टुप् ।

इयं वामस्य मन्मन इंद्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद् वृष्टिरिवाजनि १
शृणुतं जरितुर्हव—मिंद्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः २ ३०८०
मा पापत्वाय नो नरे—न्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ३
इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ४
ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये ५
ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वंतो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ६
इंद्राग्नी अवसा गत—मस्मभ्यं चर्षणीसहा । मा नो दुःशंस ईशत ७ ३०८५
मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ८
गोमद्धिरण्यवद् वसु यद् वामश्वावदीमहे । इंद्राग्नी तद् वनेमहि ९
यत् सोम आ सुते नर इंद्राग्नी अजोहवुः । सप्तीवन्ता सपर्यवः १०
उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा । आङ्गूषैराविवासतः ११
ताविद् दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम् । आभोगं हन्मना हत—मुदधिं हन्मना हतम् १२ ३०९०

॥ ३२७ ॥ (ऋ० ८।३८।१-१०) (३०९१-३१००) श्यावाश्व आत्रेयः । गायत्री ।

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इंद्राग्नी तस्य बोधतम् १
तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इंद्राग्नी तस्य बोधतम् २
इदं वां मदिरं मध्व—धुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इंद्राग्नी तस्य बोधतम् ३
जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती । इंद्राग्नी आ गतं नरा ४
इमा जुषेथां सवना येभिर्हव्यान्यूहथुः । इंद्राग्नी आ गतं नरा ५ ३०९५

इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम । इंद्राग्नी आ गतं नरा ६
प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू । इंद्राग्नी सोमपीतये ७
श्यावाश्वस्य सुन्वतो ऽत्रीणां शृणुतं हवम् । इंद्राग्नी सोमपीतये ८
एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः । इंद्राग्नी सोमपीतये ९
आहं सरस्वतीवतो- रिन्द्राग्न्योरवो वृणे । याभ्यां गायत्रमृच्यते १० ३१००

॥ ३२८ ॥ (ऋ० ८।४०।१-१२)

(३१०१-३११२) नाभाकः काण्वः । महापंक्तिः, २ शक्वरी, १२ त्रिष्टुप् ।

इंद्राग्नी युवं सु नः सहन्ता दासथो रयिम् ।
येन दृळ्हा समत्स्वा वीळु चित साहिषीमह्य- ग्निर्वनेव वात इ- न्नभन्तामन्यके समे १
नहि वां वव्रयामहे ऽथेन्द्रमिद् यजामहे शविष्ठं नृणां नरम् ।
स नः कदा चिदर्वता गमदा वाजसातये गमदा मेधसातये नभन्तामन्यके समे २
ता हि मध्यं भराणा- मिंद्राग्नी अधिक्षितः ।
ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते सं धीतमश्नुतं नरा नभन्तामन्यके समे ३
अभ्यर्च नभाकव- दिन्द्राग्नी यजसा गिरा ।
ययोर्विश्वमिदं जग- दियं द्यौः पृथिवी मह्यु१- पस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे ४
प्र ब्रह्माणि नभाकव- दिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत ।
या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मबारमपोर्णुत इंद्र ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे ५ ३१०५
अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पित- मोजो दासस्य दम्भय ।
वयं तदस्य संभृतं वस्विंद्रेण वि भजेमहि नभन्तामन्यके समे ६
यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा ।
अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतो नभन्तामन्यके समे ७
या नु श्वेताववो दिव उच्चरात उप द्युभिः ।
इंद्राग्न्योरनु व्रत- मुहाना यंति सिंधवो यान्त्सीं बंधादमुञ्चतां नभन्तामन्यके समे ८
पूर्वीष्ट इंद्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः ।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे ९
तं शिशीता सुवृक्तिभि- स्त्वेषं सत्वानमृग्मियम् ।
उतो नु चिद् य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति जेषत् स्वर्वतीरपो नभंतामन्यके समे १० ३११०
तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम् ।
उतो नु चिद् य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेद- त्यजैः स्वर्वतीरपो नभंतामन्यके समे ११

एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मंधातृवदङ्गिरस्वदवाचि ।
त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान् वयं स्याम पतयो रयीणाम् १२ ३११२

॥ ३२९ ॥ (ऋ० १०।१६१।१-५)

(३११३-३११७) प्राजापत्यो यक्ष्मनाशनः, राजयक्ष्मघ्नं वा । त्रिष्टुप्, ५ अनुष्टुप् ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् १
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय २
सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ३ ३११५
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ४
आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ५ ३११७

॥ ३३० ॥ (वा० य० १४।११)

इंद्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृंहतं युवम् । पृष्ठेन द्यावापृथिवी अंतरिक्षं च विबाधसे ११+३११८

॥ ३३१ ॥ (वा० य० १७।६४)

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् । अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ६४×३११९

॥ ३३२ ॥ (अथर्व० ७।९७।१-८)

(३१२०-३१२७) अथर्वा । त्रिष्टुप्, ५ त्रिपदार्षी भुरिग्गायत्री, ६ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती,
७ त्रिपदा साम्नी भुरिग्जगती, ८ उपरिष्टाद्बृहती ।

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वन्नवृणीमहीह ।
ध्रुवमयो ध्रुवमुता शविष्ठ प्रविद्वान् यज्ञमुप याहि सोमम् १ ३१२०
समिन्द्र नो मनसा नेष गोभिः सं सूरिभिर्हरिवन्त्सं स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् २
यानावह उशतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यस्मै धत्त वसवो वसूनि ३

+ वा० य० ३।१३; ७।३१, ऋ० ६।६०।१३; ३।१२।१, सा० ६६९, दै० सं० [इन्द्रः] ३०३३, ३०७१ ।
× वा० य० ३३।६१,७६,९३; ऋ० ६।५९।६; ६।६०।५; ७।९४।११; सा० ८५४,२८१; दै० सं० [इन्द्रः] ३०५४, ३०६३, ३०९२ ।

सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्म सवने मा जुषाणाः।
वहमाना भरमाणाः स्वा वसूनि वसुं घर्मं दिवमा रोहतानु ४
यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ। स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ५
एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः। सुवीर्यः स्वाहा ६ ३१२५
वषड्हुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः। देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ७
मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम्।
स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वाते धां स्वाहा ८ ३१२७

॥३३३॥ (अथर्व० ६।१०४।१-३) (३१२८-३१३०) प्रशोचनः। ३ सोम इन्द्रश्च। अनुष्टुप्।

आदानेन संदानेना॒ऽमित्राना द्यामसि। अपाना ये चैषां प्राणा असुनासून्त्समच्छिदन् १
इदमादानमकरं तपसेन्द्रेण संशितम्। अमित्रा येऽत्र नः सन्ति तानग्न आ द्या त्वम् २
ऐनान्द्यतामिन्द्राग्नी सोमो राजा च मेदिनौ।
इन्द्रो मरुत्वानादान॒ममित्रेभ्यः कृणोतु नः ३ ३१३०

॥३३४॥ (अथर्व० ७।११०।१-३) (३१३१-३१३३) भृगुः। १ गायत्री, २ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप्।

अग्न इन्द्रश्च दाशुषे हतो वृत्राण्यप्रति। उभा हि वृत्रहन्तमा १
याभ्यामजयन्त्स्व१रग्र एव यावातस्थतुर्भुवनानि विश्वा।
प्रचर्षणी वृषणा वज्रबाहू अग्निमिन्द्रं वृत्रहणा हुवेऽहम् २
उप त्वा देवो अग्रभी॒च्चमसेन बृहस्पतिः।
इन्द्र गीर्भिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते ३ ३१३३

(२) इन्द्रावरुणौ।

॥ ३३५ ॥ (ऋ० १।१७।१-९)।

(३१३४-३१४२) मेधातिथिः काण्वः। गायत्री, ४-५ पादनिचृत् (५ हसीयसी वा) गायत्री।

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे। ता नो मृळात ईदृशे १
गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः। धर्तारा चर्षणीनाम् २ ३१३५
अनुकामं तर्पयेथा॒मिन्द्रावरुण राय आ। ता वां नेदिष्ठमीमहे ३
युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम्। भूयाम वाजदाव्नाम् ४
इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम्। क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ५
तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि। स्यादुत प्ररेचनम् ६
इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे। अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ७ ३१४०

इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा । अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ८
प्र वामश्नोतु सुष्टुति—रिन्द्रावरुण यां हुवे । यामृधाथे सधस्तुतिम् ९ ३१४२

॥ ३३६ ॥ (ऋ० ३।६२।१-३)

(३१४३-३१४५) गाथिनो विश्वामित्रः । १-३ त्रिष्टुप् ।

इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन् ।
क्व१ त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः १
अयमु वां पुरुतमो रयीय—ञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति ।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भि—र्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे २
अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्या—दस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः ।
अस्मान् वरूत्रीः शरणैरव—न्त्वस्मान् होत्रा भारती दक्षिणाभिः ३ ३१४५

॥ ३३७ ॥ (ऋ० ४।४१।१-११)

(३१४६-३१५६) वामदेवो गौतमः । त्रिष्टुप् ।

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँ अमृतो न होता ।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् १
इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रू—नवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे २
इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठे—त्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ३
इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मि—न्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीति—स्तस्मिन् मिमाथामभिभूत्योजः ४
इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद् यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ५ ३१५०
तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्याता—मवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ६
युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शंभू ७
ता वां धियोऽवसे वाजयन्ती—राजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थु—रिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ८
इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ९

अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टे---र्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभि---रस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् १० ३१५५
आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद् दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीळान् तस्य वां स्याम सनितार आजेः ११ ३१५६

॥ ३३८ ॥ (ऋ० ४।४२।७-१०)

(३१५७-३१६०) त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः । त्रिष्टुप् ।

विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान् त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ७
अस्माकमत्र पितरस्त आसन् त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ८
पुरुकुत्सानी हि वामदाश---द्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ९
राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् १० ३१६०

॥३३९॥ (ऋ० ६।६८।१-११) (३५६१--३१७१) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप्, ९--१० जगती ।

श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद् वृक्तबर्हिषो यजध्यै ।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् १
ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना २
ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना ।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ३
ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः ।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ४
स इत् सुदानुः स्ववाँ ऋतावे---न्द्रा यो वां वरुण दाशति त्मन् ।
इषा स द्विषस्तरेद् दास्वान् वंसद् रयिं रयिवतश्च जनान् ५ ३१६५
यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात् प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ६
उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात् ।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान् प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ७

नू नं इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धो ऽपो न नावा दुरिता तरेम ८
प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रिय मर्च देवाय वरुणाय सप्रथः ।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ९
इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता ।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये १० ३१७०
इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ११ ३१७१

॥३४०॥ (ऋ० ७।८२।१-१०) (३१७२--३२०१) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । जगती ।

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः १
सम्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः २
अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनो ऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ३
युवामिद् युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ४ ३१७५
इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथु र्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ५
महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत् स्वम् ।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद् दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ६
न तमंहो न दुरितानि मर्त्य मिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन ।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ७
अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ८
अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा ।
यद् वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ९ ३१८०
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे १०

॥३४१॥ (ऋ० ७।८३।१-१०)

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् १
यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम् ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृश स्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् २
सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षते न्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयो ऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ३
इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम् ।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहितिः ४ ३१८५
इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथो ऽध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ५
युवां हवन्त उभयास आजिष्वि न्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ६
दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुति र्देवा एषामभवन् देवहूतिषु ७
दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ८
वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभि रस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ९ ३१९०
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे १०

॥ ३४२ ॥ (ऋ० ७।८४।१-५) त्रिष्टुप् ।

आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति १
युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौ र्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः ।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् २
कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ३
अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
प्र य आदित्यो अनृता मिना त्यमिता शूरो दयते वसूनि ४ ३१९५

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५

॥ ३४३ ॥ (ऋ० ७।८५।१-५)

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके १
स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान् हतं पराचः शर्वा विषूचः २
आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ३
स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान् ।
आववर्तदवसे वां हविष्मा-नसदित् स सुविताय प्रयस्वान् ४ ३२००
इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५ ३२०१

॥ ३४४ ॥ (ऋ० ८।५९।१-७)

(३२०२-३२०८) सुपर्णः काण्वः । जगती ।

इमानि वां भागधेयानि सिस्रत इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम् ।
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो यत् सुन्वते यजमानाय शिक्षथः १
निष्षिध्वरीरोषधीराप आस्ता-मिन्द्रावरुणा महिमानमाशत ।
या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते २
सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मिं दुहते सप्त वाणीः ।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति चित्तिभिः ३
घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य ।
या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुत-स्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम् ४ ३२०५
अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम् ।
अस्मान् त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुत-स्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती ५
इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे ।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम् ६
इन्द्रावरुणा सौमनसमदृप्तं रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम् ।
प्रजां पुष्टिं भूतिमस्मासु धत्तं दीर्घायुत्वाय प्र तिरतं न आयुः ७ ३२०८

॥ ३४५ ॥ (वा० य० ८।३७) त्रिष्टुप् यजुरन्ता ।

इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्रऽएतम् ।
तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥३७॥ ३२०९

(३) इन्द्र-वायू ।

॥३४६॥ (ऋ० १।२।४-६) (३२१०-३२१२) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् ।
इन्दवो वामुशन्ति हि ४ ३२१०
वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू ।
तावा यातमुप द्रवत् ५
वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम् ।
मक्ष्वित्था धिया नरा ६ ३२१२

॥३४७॥ (ऋ० १।२३।२-३) (३२१३-३२१४) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

उभा देवा दिविस्पृशे न्द्रवायू हवामहे ।
अस्य सोमस्य पीतये २ ३२१३
इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये ।
सहस्राक्षा धियस्पती ३ ३२१४

॥३४८॥ (ऋ०१।१३५ ४-८) (३२१५ ३२१९) परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः, ७-८ अष्टिः ।

आ वां रथो नियुत्वान् वक्षदवसे ऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसा गत मिन्द्रश्च राधसा गतम् ४ ३२१५
आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपे ममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिन माशुमत्यं न वाजिनम् ।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ५
इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहा ध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ६
अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
वि सूनृता ददृशे रीयते घृत मा पूर्णया नियुता याथो अध्वर मिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ७

अत्राह तद् वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः ।
साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ८ ३२१९

॥ ३४९ ॥ (ऋ० २।४१।३)

(३२२०) गृत्समदः शौनकः । गायत्री ।

शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः । आ यातं पिबतं नरा ३ ३२२०

॥ ३५० ॥ (ऋ० ४।४६।२-७)

(३२२१-३२२९) वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

शतेना नो अभिष्टिभि र्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः । वायो सुतस्य तृम्पतम् २
आ वां सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभि प्रयः । वहन्तु सोमपीतये ३
रथं हिरण्यवन्धुर मिन्द्रवायू स्वध्वरम् । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ४
रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम् । इन्द्रवायू इहा गतम् ५
इन्द्रवायू अयं सुत स्तं देवेभिः सजोषसा । पिबतं दाशुषो गृहे ६ ३२२५
इह प्रयाणमस्तु वा मिन्द्रवायू विमोचनम् । इह वां सोमपीतये ७

॥ ३५१ ॥ (ऋ० ४।४७।२-४) अनुष्टुप् ।

इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् २
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ३
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसे न्द्रवायू नि यच्छतम् ४ ३२२९

॥ ३५२ ॥ (ऋ० ५।५१।४, ६-७)

(३२३०-३२३२) स्वस्त्यात्रेयः । गायत्री, (६, ७) उष्णिक् ।

अयं सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते । प्रिय इन्द्राय वायवे ४ ३२३०
इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः । ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ६
सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः । निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ७ ३२३२

॥३५३॥ (ऋ० ७।९०।५-७) (३२३३-३२४२) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति ।
इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वा मीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ५ ३२३३
ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः ।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायु र्र्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ६

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७ ३२३५

॥ ३५४ ॥ (ऋ० ७।९१।२, ४-७)

उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः।
इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् २
यावत् तरस्तन्वो३ यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ४
नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक्।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्र— मध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ५
या वां शतं नियुतो याः सहस्र— मिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक् पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ६
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७ ३२४०

॥ ३५५ ॥ (ऋ० ७।९२।२,४)

प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात् सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै।
प्र यद् वां मध्वो अग्रियं भर— न्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः २
ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ४ ३२४२

॥ ३५६ ॥ (वा० य० ३३।८६)

इन्द्रवायू सुसन्दृशा सुहवेह हवामहे।
यथा नः सर्वऽइज्जनोऽनमीवः सङ्गमे सुमनाऽअसत् ॥ ८६ ॥ × ३२४३

॥ ३५७ ॥ (अथर्व० ३।२०।६) वसिष्ठः। पथ्यापङ्क्तिः।

इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद्दानकामश्च नो भुवत् ६ ३२४४

(४) इन्द्र--मरुतश्च।

॥ ३५८ ॥ (ऋ० १।६।५,७) (३२४५-३२४६) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। गायत्री।

वीळु चिदारुजत्नुभि— र्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु ५ ३२४५
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा ७ ३२४६

× [वा० य० ७।८; ३३, ५६, ८६, ऋ० १।२।४, १०।१४१।४, अथर्व० ३।२०।६,] दै० स० [इन्द्र.] ३२१५। दै० [इन्द्रः] २७

(५) मरुत्वानिन्द्रः ।

॥ ३५९ ॥ (ऋ० १।२३।७-९) (३२४७-३२४९) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये । सजूर्गणेन तृम्पतु ७
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम श्रुता हवम् ८
हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा । मा नो दुःशंस ईशत ९ ३२४९

॥ ३६० ॥ (ऋ० १।१६५।१-१५)
(३२५०-३२६४) इंद्रः, ३, ५, ७, ९, मरुतः; १३-१५ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एते ऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया १ ३२५०
कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम २
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः स न्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानै र्वोचेस्तन्नो हरिवो यत् ते अस्मे ३
ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थे मा हरी वहतस्ता नो अच्छ ४
अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः ।
महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ५
क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद् यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।
अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान् विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ६ ३२५५
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठे न्द्र क्रत्वा मरुतो यद् वशाम ७
वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ८
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ९
एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा ।
अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् १०
अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ११ ३२६०

एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् १२
को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीँरच्छा सखायः।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् १३
आ यद् दुवस्याद् दुवसे न कारु–रस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छे–मा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् १४
एष वः स्तोमो मरुत इयं गी–र्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् १५ ३२६४

॥ ३६१ ॥ (ऋ० १।१७१।३-६) (३२६५-३२६८) अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। त्रिष्टुप्।

स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तू–त स्तुतो मघवा शंभविष्ठः।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वना–न्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ३ ३२६५
अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद् भिया मरुतो रेजमानः।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन् तान्यारे चकृमा मृळता नः ४
येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम्।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ५
त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन् भवा मरुद्भिरवयातहेळाः।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ६ ३२६८

(६) इन्द्रामरुतौ।

॥ ३६२ ॥ (ऋ० ८।९६।१४)

(३२६९) तिरश्चीराङ्गिरसो, द्युतानो वा मारुतः। त्रिष्टुप्।

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्त–मुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांस–मिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ १४ ३२६९

(७) इन्द्रासोमौ।

॥ ३६३ ॥ (ऋ० २।३०।६) (३२७०) गृत्समदः शौनकः। त्रिष्टुप्।

प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्ट–मस्मिन् भयस्थे कृणुतमु लोकम् ६ ३२७०

॥ ३६४ ॥ (ऋ० ६।७२।१-५) (३२७१-३२७५) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। त्रिष्टुप्।

इन्द्रासोमा महि तद् वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्व१–र्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च १

❀

इन्द्रासोमा वासयथ उषास--मुत सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेना--ऽप्रथतं पृथिवीं मातरं वि २
इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत ।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीना--मा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ३
इंद्रासोमा पक्वमामास्वन्त--र्नि गवामिद् दधथुर्वक्षणासु ।
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ४
इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्र--मपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ५ ३२७५

॥ ३६५ ॥ (ऋ० १०।८९।५) (३२७६) रेणुर्वैश्वामित्रः । त्रिष्टुप् ।

आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी ।
सोमो विश्वान्यतसा वनानि नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः ५ ३२७६

॥ ३६६ ॥ (ऋ० १०।१२४।९) (३२७७) अग्निः (सोमेन्द्रौ) । त्रिष्टुप् ।

बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहु--रपां दिव्यानां सख्ये चरन्तम् ।
अनुष्टुभमनु चर्चूर्यमाण--मिन्द्रं नि चिक्युः कवयो मनीषा ९ ३२७७

॥ ३६७ ॥ (अथर्व० ८।४।१-२५)

(३२७८-३३०२) चातनः । जगती, ८-१४, १६-१७, १९, २२, २४ त्रिष्टुप्, २०; २३ भुरिक्, २५ अनुष्टुप् ।

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः १
इन्द्रासोमा समघशंसमभ्य१घं तपुर्ययस्तु चरुरग्निमाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने २
इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्त--रनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यतो नैषां पुनरेकश्चनोदयत तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ३ ३२८०
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत्तक्षतं स्वर्य१ पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ४
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्य--ग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्त्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ५
इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधये--मा ब्रह्माणि नृपती इव जिन्वतम् ६

प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवै–र्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्यो मा कदा चिदभिदासति द्रुहः ७
यो मा पाकेन मनसा चरन्त–मभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ८ ३२८५
ये पाकशंसं विहरन्त एवै–र्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ९
यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने अश्वानां गवां यस्तनूनाम् ।
रिपु स्तेन स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च १०
परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ११
सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीय–स्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् १२
न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्त–मुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते १३ ३२९०
यदि वाहमनृतदेवो अस्मि मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् १४
अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह १५
यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट १६
प्र या जिगाति खर्गलेव नक्त–मप द्रुहुस्तन्वं1 गूहमाना ।
ववमनन्तमव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः १७
वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वी३च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वा पतयन्ति नक्तभि–र्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे १८ ३२९५
प्र वर्तय दिवोऽश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तो३ऽभि जहि रक्षसः पर्वतेन १९
एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः २०

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्या३विवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एतु रक्षसः २१
उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र २२
मा नो रक्षो अभि नड्यातुमाव-दपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसो ऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् २३ ३३००
इन्द्र जहि पुमांसं यातुधान-मुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् २४
प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्र-श्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यत-मशनिं यातुमद्भ्यः २५ × ३३०१

(८) इन्द्राविष्णू ।

॥ ३६८ ॥ (ऋ० १।१५५।१-३)
(३३०३-३३०५) दीर्घतमा औचथ्यः । जगती ।

प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना १
त्वेषमित्था समरणं शिमीवतो-रिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित् कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः २
ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितु-र्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ३ ३३०५

॥ ३६९ ॥ (ऋ० ६।६९।१-८) (३३०६-३३१३) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमी-न्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्त-मरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता १
या विश्वासां जनितारा मतीना-मिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः २
इन्द्राविष्णू मदपती मदाना-मा सोमं यातं द्रविणो दधाना ।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ३
आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।
जुषेथां विश्वा हवना मतीना-मुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ४

× ऋ० ७।१०४।१-२५

इन्द्राविष्णू तत् पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयो ऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ५ ३३१०
इन्द्राविष्णू हविषा वावृधाना ऽग्राद्वाना नमसा रातहव्या।
घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः ६
इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम्।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ७
उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ८ ३३१३

॥ ३७० ॥ (ऋ० ७।९९।४-६) (३३१४-३३१६) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः त्रिष्टुप्।

उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम्।
दासस्य चिद् वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ४
इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम्
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ५
इयं मनीषा बृहती बृहन्तो रुक्रमा तवसा वर्धयन्ती।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ६ ३३१६

(९) इन्द्राबृहस्पती।

॥ ३७१ ॥ (ऋ० ४।४९।१-६) (३३१७ ३३२४) वामदेवो गौतमः। गायत्री।

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती। उक्थं मदश्च शस्यते १
अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती। चारुर्मदाय पीतये २
आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम्। सोमपा सोमपीतये ३
अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम्। अश्वावन्तं सहस्रिणम् ४ ३३२०
इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे। अस्य सोमस्य पीतये ५
सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे। मादयेथां तदोकसा ६

॥ ३७२ ॥ (४।५०।१०-११) त्रिष्टुप्, १० जगती।

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते ऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवो ऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् १०
बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ११ ३३२४

॥ ३७३ ॥ (ऋ० ७।९७-९८।१०, ७) (३३२५) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७ ३३२५

॥ ३७४ ॥ (ऋ० ८।९६।१५)
(३३२६) तिरश्चीराङ्गिरसो, द्युतानो वा मारुतः । त्रिष्टुप् ।

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थे ऽधारयत तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्ती र्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे १५ ३३२६

(१०) देव-भूमि-बृहस्पतीन्द्राः ।

॥ ३७५ ॥ (ऋ० ६।४७।२०) (३३२७) गर्गो भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टा वित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् २० ३३२७

॥ ३७६ ॥ (अथर्व- ७।५१।१) (३३२८) अङ्गिराः । त्रिष्टुप् ।

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चा दुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इंद्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु १ ३३२८

॥ ३७७ ॥ (अथर्व० २०।१३।१) (३३२९) जगती ।

इंद्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते ऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् १ ३३२९

(११) इन्द्रापूषणौ ।

॥ ३७८ ॥ (ऋ० ६।५७।१-६) (३३३०-३३३५) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । गायत्री ।

इंद्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये १ ३३३०
सोममन्य उपासदत् पातवे चम्वोः सुतम् । करम्भमन्य इच्छति २
अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य संभृता । ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ३
यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभवत् सचा ४
तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव । इंद्रस्य चा रभामहे ५
उत पूषणं युवामहे ऽभीशूँरिव सारथिः । मह्या इंद्रं स्वस्तये ६ ३३३५

॥३७९॥ (अथर्व० ६।३।१) (३३३६) अथर्वा । पथ्या बृहती ।

पातं न इंद्रापूषणा ऽदितिः पान्तु मरुतः । अपां नपात्सिंधवः सप्त पातन पातु नो विष्णुरुत द्यौः १ ३३३६

(१२) ऋणंचयेन्द्रौ।

॥३८०॥ (ऋ० ५।३०।१२-१५) (३३३७-३३४०) बभ्रुरात्रेयः। त्रिष्टुप्।

भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन् गवां चत्वारि ददतः सहस्रा।
ऋणंचयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् १२
सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने।
तीव्रा इंद्रमममन्दुः सुतासो ऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः १३
औच्छत् सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणंचये राजनि रुशमानाम्।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत् सहस्रा १४
चतुः सहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने।
घर्मश्चित् तप्तः प्रवृजे य आसी—दयस्मयस्तम्वादाम विप्राः १५ ३३४०

(१३) इन्द्र ऋभवश्च।

॥३८१॥ (ऋ० ३।६०।५-७) (३३४१-३३४३) विश्वामित्रो गाथिनः। जगती।

इंद्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गभस्त्योः।
धियेषितो मघवन् दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः ५
इंद्र ऋभुमान् वाजवान् मत्स्वेह नो ऽस्मिन् त्सवने शच्या पुरुष्टुत।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ६
इंद्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुप याहि यज्ञियम्।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ७ ३३४३

॥३८२॥ (ऋ० ८।९३।३४) (३३४४) सुकक्ष आङ्गिरसः। गायत्री।

इंद्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम्। वाजी ददातु वाजिनम् ३४ ३३४४

(१४) इन्द्रोषसौ।

॥३८३॥ (ऋ० ४।३०।९-११) (३३४५-३३४७) वामदेवो गौतमः। गायत्री।

दिवश्चिद् घा दुहितरं महान् महीयमानाम्। उषासमिन्द्र सं पिणक् ९ ३३४५
अपोषा अनसः सरत् संपिष्टादह बिभ्युषी। नि यत् सीं शिश्नथद् वृषा १०
एतदस्या अनः शये सुसंपिष्टं विपाश्या। ससार सीं परावतः ११ ३३४७

(१५) इन्द्राश्वौ।

॥३८४॥ (ऋ० ४।३२।२३-२४) (३३४८-३३४९) वामदेवो गौतमः। गायत्री।

कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके। बभ्रू यामेषु शोभेते २३
अरं म उस्रयाम्णे ऽरमनुस्रयाम्णे। बभ्रू यामेष्वस्रिधा २४ ३३४९

(१६) इन्द्रस्त्वष्टा।

॥३८५॥ (ऋ० २।३२।२-३) (३३५०-३३५१) गृत्समदः शौनकः। जगती।

मा नो गुह्या रिप आयोरहन् दभन् मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः।
मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत् त्वेमहे २ ३३५०
अहेळता मनसा श्रुष्टिमा वह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम्।
पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ३ ३३५१

(१७) इन्द्रो गावश्च।

॥३८६॥ (ऋ० ६।२८।२,८) (३३५२-३३५३) भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। जगती, ८ अनुष्टुप्।

इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्ष—त्युपेद् ददाति न स्वं मुषायति।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धय—न्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् २
उपेदमुपपर्चन—मासु गोषूप पृच्यताम्। उप ऋषभस्य रेत—स्युपेन्द्र तव वीर्ये ८ ३३५३

(१८) इन्द्राकुत्सौ।

॥३८७॥ (ऋ० ५।३१।९) (३३५४) अवस्युरात्रेयः। त्रिष्टुप्।

इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना—ऽऽ वामत्या अपि कर्णे वहन्तु।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्था—न्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ९ ३३५४

(१९) इन्द्रद्यावापृथिव्यः।

॥३८८॥ (ऋ० १०।५९।१०) (३३५५) बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः। त्रिष्टुप् (पंक्त्युत्तरा)।

समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् १० ३३५५

(२०) इन्द्रापर्वतौ।

॥३८९॥ (ऋ० ३।५३।१) (३३५६) गाथिनो विश्वामित्रः। त्रिष्टुप्।

इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता १ ३३५६

(२१) इन्द्रः, सोमो, ब्रह्मणस्पतिर्दक्षिणा च।

॥३९०॥ (ऋ० १।१८।४-५) (३३५७-३३५८) मेधातिथिः काण्वः। गायत्री।

स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः। सोमो हिनोति मर्त्यम् ४
त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम्। दक्षिणा पात्वंहसः ५ ३३५८

(२२) इन्द्राब्रह्मणस्पती ।

॥३९१॥ (ऋ० २।२४।१२) (३३५९) गृत्समदः शौनकः । त्रिष्टुप् ।

विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदा- पश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नो ऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् १२ ३३५९

॥३९२॥ (ऋ० ७।९७।३,९) (३३६०–३३६१) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ३ ३३६०
इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्ति- र्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी- र्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ९ ३३६१

(२३) दुन्दुभीन्द्रौ ।

॥३९३॥ (ऋ० ६।४७।३१) (३३६२) गर्गो भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरो ऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ३१ ३३६२

(२४) इन्द्रसूर्यादयः ।

॥३९४॥ (अथर्व० १९।७०।१) (३३६३) ब्रह्मा । गायत्री ।

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् । सर्वमायुर्जीव्यासम् १ ३३६३

इन्द्रदेवता-पुनरुक्त-मन्त्रभागाः।

ऋग्वेदस्य प्रथमं मण्डलम्।

[३] १।३।६ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र)
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः।
सुते दधिष्व नश्चन ।
(२७०८) १०।१०४।६ (अष्टको वैश्वामित्र । इन्द्र)
उप ब्रह्माणि हरिवो हरिभ्यां सोमस्य याहि
पीतये सुतस्य ।
[४] १।४।१ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र)
सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि ।
(५१८) ८।५२ (वालखिल्य ४)।४ (आयु काण्व । इन्द्र)
सुदुघामिव गोदुहे जुहूमसि ।
[६] १।४।३ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र)
विद्याम सुमतीनाम् ।
(२६७८) १०।८९।१७ (रेणुर्वैश्वामित्र । इन्द्र)
विद्याम सुमतीना नवानाम् ।
[७] १।४।४ यस्ते सखिभ्य आ वरम् ।
९।४५।२ (अयास्य आङ्गिरस । पवमान सोम)
देवान्त्सखिभ्य आ वरम् ।
[९] १।४।६ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र)
स्यामदिन्द्रस्य शर्मणि ।
८।४७।५ (त्रित आप्त्य । आदित्या)
[११] १।४।८ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र)
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ।
(१०८९) १।१७६।५ (अगस्त्यो मैत्रावरुण । इन्द्र)
[१३] १।४।१० (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र)
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा।
तस्मा इन्द्राय गायत ।
(१९२) ८।३२।१३ (मेधातिथि काण्व । इन्द्र)
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वत सखा ।
तमिन्द्रमभि गायत ।
(१७) १।५।४ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र)
तस्मा इन्द्राय गायत ।
[१४] १।५।१ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र)
इन्द्रमभि प्र गायत ।
(२३९७) ८।९२।१ (श्रुतकक्ष सुकक्षो वा आङ्गिरसः। इन्द्र)

[१५] १।५।२ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र)
पुरूतम पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।
इन्द्र सोमे सचा सुते ।
(२०८८) ६।४५।२९ (शंयुर्बार्हस्पत्य । इन्द्र)
पुरूतम पुरूणा ।
१।२४।३ (शुनःशेप आजीगर्ति कृत्रिमो देवरातो
वैश्वामित्रो वा । सविता)
ईशान वार्याणाम् ।
(अग्नि १४२१) ८।७१।१३ (सुदीति-पुरुमीळ्हावाङ्गि-
रसौ, तयोर्वान्यतर । अग्नि)
ईशे यो वार्याणाम् ।
१०।९।५ (त्रिशिरास्त्वाष्ट्र सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वा। आपः)
ईशाना वार्याणां ।
(४७१) ८।४५।२९ (त्रिशोक काण्व । इन्द्रः)
इन्द्र सोमे सचा सुते ।
[१७] १।५।४ (१३) १।४।१०
[१८] १।५।५ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र)
सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये
सोमासो दध्याशिरः ।
(२४५१) ८।९३।२२ (सुकक्ष आङ्गिरस । इन्द्र)
सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये ।
१।१३७।२ (परुच्छेपो दैवोदासि । मित्रावरुणौ)
सोमासो दध्याशिरः ।
५।५१।७ (स्वस्त्यात्रेय । विश्वेदेवा)
सोमासो दध्याशिरः ।
(२२३८) ७।३२।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्र)
९।२२।३(असित काश्यपो देवलो वा। पवमान सोम)
९।६३।१५ (निध्रुवि काश्यप । पवमानः सोम)
९।१०१।१२ (मनु सावरण । पवमानः सोम)
[२१] १।५।८ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र)
त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था शतक्रतो ।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ।
(अग्नि १३६१) ८।४४।१९ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
त्वामग्ने मनीषिणस्त्वां हिन्वन्ति चित्तिभि ।
त्वां वर्धन्तु नो गिर ।

[२३] १।५।१० (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र)
ईशानो यवया वधम् ।
(२८१८) १०।१५२।५ (शासो भारद्वाज । इन्द्र)
वरीयो यवया वधम् ।
[३०] १।७।३ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः)
आ सूर्यं रोहयद्दिवि ।
... **ऐरयत् ।**
(२३९०) ८।८९।७ (नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ । इन्द्रः)
ऐरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
९।१०७।७ (सप्तर्षयः । पवमान सोमः)
आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
(अग्निः १७०६) १०।१५६।४ (केतुराग्नेयः । अग्नि)
आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
[३१] १।७।४ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्रः)
उग्र उग्राभिरूतिभिः ।
(१००४) १।१२९।५ (परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्र)
उग्राभिरुग्रोतिभिः ।
[३५] १।७।८ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः)
ईशानो अप्रतिष्कुतः ।
(९४३) १।८४।७ (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
ईशानो अप्रतिष्कुतः ।
[३६] १।७।९ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः)
य एकश्चर्षणीनां ।
(१०८६) १।१७६।२ (अगस्त्यो मैत्रावरुणः । इन्द्र)
[३७] १।७।१० (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्र)
हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवल ।
(अग्नि १९१५) १।१३।१० (मेधातिथि काण्व । त्वष्टा)
ह्वये ।
अस्माकमस्तु केवलः ।
[४१] १।८।४ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्रः)
सासह्याम पृतन्यतः ।
(३१०७) ८।४०।७ (नाभाकः काण्व । इन्द्राग्नी)
सासह्याम पृतन्यतो ।
९।६१।२९ (अमहीयुराङ्गिरसः । पवमान सोम)
[४२] १।८।५ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र. । इन्द्रः)
द्यौर्न प्रथिना शव ।
(५४४) ८।५६। (वालखिल्यं ८)।१ (पृषध्रः काण्व । इन्द्रः)
[४४] १।८।७ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः)
समुद्र इव पिन्वते ।

(२९१) ८।१२।५ (पर्वतः काण्वः । इन्द्रः)
[५०] १।९।३ **स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे ।**
(अग्निः ८६५) ५।१४।६ (सुतंभर आत्रेय । अग्नि)
स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् ।
[५३] १।९।६ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्रः)
राये रमस्वत. ।
तुविद्युम्न यशस्वत ।
(अग्नि ५९१) ३।१६।६ (उत्कीलः कात्य । अग्नि.)
सं **राया** भूयसा सृज मयोभुना **तुविद्युम्न यशस्वता ।**
[५५] १।९।८ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः)
अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ।
(अग्निः ८७) १।४४।२ (प्रस्कण्व काण्व । अग्नि अश्विना, उषा)
(६०९) ८।६५।९ (प्रगाथ काण्व । इन्द्र)
[५७] १।९।१० (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्रः)
इन्द्राय शूषमर्चति ।
१०।९६।२ (बरुराङ्गिरसः सर्वहरिर्वा ऐन्द्र । हरि)
इन्द्राय शूषं हरिवन्त**मर्चत ।**
(२७७८) १०।१३३।१ (सुदाः पैजवन । इन्द्र)
[६१] १।१०।४ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्र.)
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र **यज्ञं च वर्धय ।**
१०।१४१।६ (अग्निस्तापसः । विश्वेदेवाः)
ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
[६३] १।१०।५ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र. । इन्द्र)
उक्थमिन्द्राय शस्य ।
(१७६४) ५।३९।५ (अत्रिभौम । इन्द्र)
[६४] १।१०।७ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र)
इन्द्र त्वादातमिद्यशः ।
कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
(१३६९) ३।४०।६ (विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्रः)
इन्द्र त्वादातमिद्यशः ।
(५८९) ८।६४।१ (प्रगाथ काण्व । इन्द्र)
कृणुष्व . . ।
[६५] १।१०।८ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्रः)
ऋघायमाणमिन्वतः ।
जेष स्वर्वतीरपः ।
(१०८५) १।१७६।१ (अगस्त्यो मैत्रावरुण । इन्द्र)
ऋघायमाण इन्वसि ।
(३११०) ८।४०।१० (नाभाकः काण्व । इन्द्राग्नी)
तं शिशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं **सत्वानमृग्मियम् ।**

उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति

जेषत्स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥

(३१११) ८।४०।११ (नाभाकः काण्वः । इन्द्राग्नी)

तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम् ।

उतो नु चिद्य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेदत्यजैः

स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥

[६७] १।१०।१० (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः)

वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं ।

(१७३८) ५।३५।३ (प्रभूवसुराङ्गिरसः । इन्द्रः)

वृषन्तमस्य हूमहे ।

[७०] १।११।१ (जेता माधुच्छन्दसः । इन्द्रः)

रथीतमं रथीनां ।

(४४९) ८।४५।७ (त्रिशोकः काण्वः । इन्द्रः)

रथीतमो रथीनाम् ।

[७१] १।११।२ (जेता माधुच्छन्दसः । इन्द्रः)

जेतारमपराजितम् ।

(अग्निः ९१६) ५।२५।६ (वसूयव आत्रेयाः । अग्निः)

१।११।८ (जेता माधुच्छन्दसः । इन्द्रः)

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।

(६२८) ८।७६।१ (कुरुसुतिः काण्वः । इन्द्रः)

इन्द्रमीशानमोजसा ।

(३०६२) ६।६०।७ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्राग्नी)

युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत ।

१।१५।१ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः [ऋतुदेवता])

त्वा विशन्त्विन्दवः ।

(२४१८) ८।९२।२२ (श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः । इन्द्रः)

आ त्वा ... ।

[८०] १।१६।३ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः)

इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्र सोमस्य पीतये ।

(१६०) ८।३।५ (मेध्यातिथिः काण्वः । इन्द्रः)

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ।

(१३८५) ३।४२।४ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः)

इन्द्र सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे ।

(४०८) ८।१७।१५ (इरिम्बिठिः काण्वः । इन्द्रः)

इन्द्र सोमस्य पीतये ।

(२४०१) ८।९२।५ (श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः । इन्द्रः)

इन्द्र सोमस्य पीतये ।

(९८६) ८।९७।११ (रेभः काश्यपः । इन्द्रः)

इन्द्र सोमस्य पीतये ।

९।१२।२ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)

इन्द्र सोमस्य पीतये ।

[८१] १।१६।४ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः)

उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र ।

(१३८२) ३।४२।१ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः)

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् ।

हरिभ्यां ।

५।७१।३ (बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ)

उप नः सुतमा गतं ।

[८२] १।१६।५ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः)

आ गह्युपेदं सवनं सुतम् ।

(३००५) १।२१।४ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्राग्नी)

उपेदं सवनं सुतम् ।

इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ।

(३०६४) ६।६०।९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्राग्नी)

आ गच्छतं नरेमेदं सवनं सुतम् ।

इन्द्राग्नी ।

[८३] १।१६।६ इमे सोमास इन्दवः ।

९।४६।३ (अयास्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)

एते सोमास इन्दवः ।

[८५] १।१६।८ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः)

वृत्रहा सोमपीतये ।

(२४४९) ८।९३।२० (सुकक्ष आङ्गिरसः । इन्द्रः)

[८६] १।१६।९ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः)

सेमं नः काममा पृण ।

(५९४) ८।६४।६ (प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः)

अस्माकं काममा पृण ।

[६८८-६९१] १।२८।१-४ शुनःशेप आजीगर्तिः स कृत्रिमो विश्वामित्रो देवरातः । इन्द्रः)

उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ।

[६९२] १।२९।१ (शुनःशेप आजीगर्तिः । इन्द्रः)

अनाशस्ताइव स्मसि ।

आ तू न इन्द्र शंसय ।

२।४१।१६ (गृत्समदः शौनकः । सरस्वती)

अप्रशस्ताइव स्मसि प्रशस्तिम् ।

[६९३] १।२९।२ (शुनःशेप आजीगर्तिः । इन्द्रः)

शिप्रिन् वाजानां पते ।

आ तू न इन्द्र शंसय ।

(२०६९) ६।४५।१० (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
इन्द्र वाजानां पते ।
[७०५] १।३०।७ (शुनःशेप आजीगर्तिः । इन्द्रः)
सखाय इन्द्रमूतये ।
(४२७) ८।२१।९ (सोभरिः काण्वः । इन्द्रः)
[७०६] १।३०।८ (शुनःशेप आजीगर्तिः । इन्द्रः)
सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
(२७८८) १०।१३४।४ (पूर्वार्धः) मान्धाता यौवनाश्वः । इन्द्रः)
[७०७] १।३०।९ (शुनःशेप आजीगर्तिः । इन्द्रः)
अनु प्रत्नस्यौकसो । य ते पूर्वं ॥
(२३२०) ८।६९।१८ (प्रियमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः)
अनु प्रत्नस्यौकसः । पूर्वां ।
[७०८] १।३०।१० (शुनःशेप आजीगर्तिः । इन्द्रः)
सखे वसो जरितृभ्यः ।
(१४३९) ३।५१।६ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः)
सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ।
(अग्नि १४१७) ८।७१।९ (सुदीति-पुरुमीळ्हावाङ्गिरसौ तयोर्वान्यतरः । अग्निः)
[७१५] १।३२।१ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । इन्द्रः)
इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं ।
(१२१९) २।२१।३ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ।
[७१७] १।३२।३ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । इन्द्रः)
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
अहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ।
(११६२) २।१५।१ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ।
[७१८] १।३२।४ आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं ।
(१९७२) ६।३०।५ साकं सूर्यं --- ।
[७१९] १।३२।५ अहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ।
(२६७५) १०।८९।१४ पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ।
[७२६] १।३२।१२ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । इन्द्रः)
अवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
(११३३) २।१२।१२ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
अवासृजत् सर्तवे--- ।
[७२९] १।३२।१५ अरान्न नेमिः परि ता बभूव ।
(अग्निः ३१३) १।१४१।९ (दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः)
अरान्न नेमिः परिभूरजायथा ।
[७३४] १।३३।५ प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र ।
(१९९५) ६।४१।३ एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र ।
[७४१] १।३३।१२ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । इन्द्रः)
यावत्तरो मघवन् यावदोजो ।
(३३३७) ७।९१।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रवायू)
यावत्तरस्तन्वो३ यावदोजो ।
[७४३] १।३३।१४ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । इन्द्रः)
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
(१०७३) १।१७४।५ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् ।
(१९५०) ६।२६।४ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
आवो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
[७४७] १।५१।३ (सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः)
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोत ।
९।८६।२३ (पृश्नयोऽजाः । पवमानः सोमः)
सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप ।
[७५०] १।५१।६ अरन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
(१०१७) १।१३०।७ अतिथिग्वाय शम्बरम् ।
[७५२] १।५१।८ शाकी भव यजमानस्य चोदिता ।
(२५९०) १०।४९।१ (वैकुण्ठ इन्द्रः । इन्द्रः)
अहं भुवं यजमानस्य चोदिता ।
[७५७] १।५१।१३ (सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः)
-- सुन्वते ।
विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ।
(९९६) ८।१००।६ (नेमो भार्गवः । इन्द्रः)
विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या . सुन्वते ।
१०।३९।४ (घोषा काक्षीवती । अश्विनौ)
विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रवाच्या ।
[७६०] १।५२।१ इन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ।
१।१६८।१ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः)
मह ववृत्यामवसे--- ।
[७६१] १।५२।२ इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतम् ।
(३१३) ८।१२।२६ यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधी ।
[७६४,७७३] १।५२।५,१४ अभि (१४ नीत) स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो ।
[७७४] १।५२।१५ (सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः)
विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
(८४५) १।१०३।७ (कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्रः)
[७८५] १।५३।११ (सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः)
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।

(अग्नि १६७३।१०।११५।८ (उपस्तुतो वार्ष्टिहव्य । अग्नि)
[७८८] १।५४।३ **स्वक्षत्रं** यस्य धृष्णतो **धृषन्मनः** ।
(१७३९। ५।३५।४ **स्वक्षत्रं** ते **धृषन्मनः** ।
[७८९] १।५४।४ (सव्य आङ्गिरस । इन्द्र.)
त्वं दिवो **बृहतः** सानु कोपयो ऽव **त्मना धृषता**
शम्बरं भिनत् ।
(२१३८) ७।१८।२० (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । इन्द्र.)
आव त्मना **बृहतः शम्बरं भेत्** ।
[७९६] १।५४।११ (सव्य आङ्गिरसः । इन्द्र)
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन् राये ।
१०।६१।२२ (नाभानेदिष्ठो मानवः । विश्वेदेवा)
— **सूरीन्** ।
[७९८] १।५५।२ (सव्य आङ्गिरस. । इन्द्र)
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते ।
(७९९) ८।१२।१२ (पर्वत काण्व । इन्द्र.)
इन्द्र. सोमस्य पीतये ।
[८०३] १।५६।२ (सव्य आङ्गिरस । इन्द्र.)
समुद्रं न सचरणे सनिष्यवः ।
४।५५।६ (वामदेवो गौतम. । विश्वेदेवा.)
[८०८] १।५६।४ इन्द्र **सिषक्त्युषसं न सूर्यः** ।
९।८४।२ (प्रजापतिर्वाच्य. । पवमान सोम.)
इन्दुः **सिषक्त्युषसं न सूर्यः** ।
[८०९] १।५६।५ (सव्य आङ्गिरसः । इन्द्र.)
अहन् **वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम्** ।
१।८५।९ (गोतमो राहूगणः । मरुतः)
अहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ।
[८६०] १।६१।५ अस्मा इदु **सप्तिमिव श्रवस्या** ।
९।९६।१६ (प्रतर्दनो दैवोदासि । पवमानः सोमः)
अभि वाज **सप्तिरिव श्रवस्या** ।
[८७३] १।६२।२ (नोधा गौतमः । इन्द्र)
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो
गा अविन्दन ।
९।९७।३९ (पराशर शाक्त्यः । पवमान सोम.)
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि
गा अद्रिमुष्णन ।
[८७४] १।६२।३ (नोधा गौतमः । इन्द्रः)
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः ।
१०।६८।११ (अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पति)
[८८३] १।६२।१२ (नोधा गौतमः । इन्द्रः)
शिक्षा शचीवस्तव नः शचीवभिः ।

(१३०) ८।२।१५ (मेधातिथिः काण्वः
प्रियमेधश्चाङ्गिरसः । इन्द्र)
शिक्षा शचीवः शचीभिः ।
[८९१] १।६३।७ (नोधा गौतमः । इन्द्र.)
यद्ध राजन **वरिवः पूरवे कः** ।
(१५५३) ४।२१।१० (वामदेवो गौतमः । इन्द्रः)
सम्राडदन्ता वृत्र **वरिवः पूरवे कः** ।
[९००-९१६] १।८०।१–१६ **अर्चन्ननु स्वराज्यम्** ।
[९०५] १।८०।६ (गोतमो राहूगणः । इन्द्र.)
जिघ्नते **वज्रेण शतपर्वणा** ।
(२४८) ८।६।६ (वत्स. काण्व. । इन्द्र)
वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद ॥
(६२९) ८।७६।२ (कुरुसुति. काण्व. । इन्द्र)
आभिर्नाच्छर. ।
वज्रेण शतपर्वणा ।
(२३८६) ८।८९।३ (नृमेध–पुरुमेधावाङ्गिरसा । इन्द्रः)
वृत्र **हनति** वृत्रहा शतक्रतुर्**वज्रेण शतपर्वणा** ।
[९०७] १।८०।८ महत्त **इन्द्र वीर्यं** ।
(५३९) ८।५५। (वाल० ७)१ भूरीदिन्**द्रस्य वीर्यम्** ।
[९०८] १।८०।९ (गोतमो राहूगण. । इन्द्रः)
इन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ।
(२३१२) ८।६९।९ (प्रियमेध आङ्गिरस । इन्द्र)
[९०९] १।८०।१० **महत्तदस्य पौंस्य** ।
(५८०) ८।६३।३ (प्रगाथः काण्व. । इन्द्रः)
स्तुषे **तदस्य पौंस्यम्** ।
[ ] १।८०।१० (गोतमो राहूगण । इन्द्र.)
वृत्रं जघन्वाँ असृजद् ।
(१५१५) ४।१८।७ (वामदेवो गौतमः अदितिः
ऋषिका । इन्द्र, वामदेवः)
...**असृजद्धि सिन्धून्** ।
(१५२९) ४।१९।८ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रः)
[९२०] १।८१।५ **आ पप्रौ पार्थिवं रजो** ।
६।६१।११ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । सरस्वती)
आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् ।
[ ] १।८१।५ (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यते ।
(२२५७) ७।३२।२३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्र)
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो **न** पार्थिवो **न जातो**
न जनिष्यते ।

[९२०] १।८१।५ अति विश्वं ववक्षिथ ।
(८३५) १।१०२।८ अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथ ।
[९२३] १।८१।८ अथा नोऽविता भव ।
१।९१।९ (गोतमो राहूगणः । सोमः)
ताभिर्नोऽविता भव ।
[९२४] १।८१।९ (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ।
(अग्निः ८०६) ५।६।६ (वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः)
विश्व —
(२७७९) १०।१३३।२ (सुदाः पैजवनः । इन्द्रः)
विश्वं पुष्यसि वार्यं ।
(४५७) ८।४५।१५ (त्रिशोकः काण्वः । इन्द्रः)
अदाशुरि ... ।
तस्य नो वेद आ भर ।
[९२५-२९] १।८२।१-५ योजा न्विन्द्र ते हरी ।
[९२६] १।८२।२ (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
विप्रा नविष्ठया मती ।
८।२५।२४ (विश्वमना वैयश्वः । मित्रावरुणौ)
[९२७] १।८२।३ (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
सुसंदृशं त्वा वयं ।
१०।१५८।५ (चक्षुः सौर्यः । सूर्यः)
[९३१] १।८३।१ अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति ।
२।२५।४ (गृत्समदः शौनकः । ब्रह्मणस्पतिः)
स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति ।
[९३८] १।८४।२ ऋषीणां च स्तुतीरुप ।
(३९७) ८।१७।४ (इरिम्बिठिः काण्वः । इन्द्रः)
अस्माकं सुष्टुतीरुप ।
[९३९] १।८४।३ (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ।
(१३३५) ३।३७।२ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः)
अर्वाचीनं सु ते मन ।
इन्द्र कृण्वन्तु ... ।
[९४०] १।८४।४ (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
इममिन्द्र सुतं पिब ।
(२७८) ८।६।३६ (वत्सः काण्वः । इन्द्रः)
[९४३] १।८४।७ (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
वसु मर्ताय दाशुषे ।
९।९८।४ (अम्बरीषो वार्षागिरः ऋजिश्वा भारद्वाजश्च । पवमानः सोमः)

[९४३] १।८४।७ ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ।
(३५) १।७।८ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः)
ईशानो अप्रतिष्कुतः ।
[९४५] १।८४।९ (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
सुतावाँ आविवासति ।
(९७९) ८।९७।४ (रेभः काश्यपः । इन्द्रः)
सुतावाँ आ विवासति ।
[९४६ ९४८] १।८४।१०-१२ वस्वीरनु स्वराज्यम् ।
[९४७] १।८४।११ (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
(२३०६) ८।६९।३ (प्रियमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः)
ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
[९४९] १।८४।१३ जघान नवतीर्नव ।
९।६१।१ (अमहीयुराङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
अवाहन्नवतीर्नव ।
[९५०] १।८४।१४ (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
पर्वतेष्वपश्रितम् ।
५।६१।१९ (श्यावाश्व आत्रेयः । रथवीतिर्दार्भ्यः)
[९५५] १।८४।१९ न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डिता ।
(६२५) ८।६६।१३ (कलिः प्रागाथः । इन्द्रः)
नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता ।
[९५७-९७१] १।१००।१-१५ (वार्षागिराः ऋज्राश्वाम्बरीष-सहदेव-भयमान-सुराधसः । इन्द्रः)
मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ।
[९६७] १।१००।११ (ऋज्राश्वाऽम्बरीष० । इन्द्रः)
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे ।
(२०५३) ६।४४।१८ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
[९६८] १।१००।१२ (ऋज्राश्वाऽम्बरीष० । इन्द्रः)
सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
(अग्निः १६३१) १०।६९।७ (सुमित्रो वाध्र्यश्वः । अग्निः)
सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा ।
[९७१] १।१००।१५ आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
१।१६७।९ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः)
आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
[९७१] १।१००।१९ (ऋज्राश्वाऽम्बरीष० । इन्द्रः)
(८३८) १।१०२।११ (कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्रः)
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः
सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः
पृथिवी उत द्यौः ॥

[८२३] १।१०१।१-७ मरुत्वन्त सख्याय हवामहे ।

[८२४ २५] १।१०१।८-९ त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ।
(९ ब्रह्मवाहः)

[८३१] १।१०२।४ (कुत्स आङ्गिरस । इन्द्र.)
अस्मभ्यमिन्द्र वरिव. सुगं कृधि प्र शत्रूणा
मघवन् वृष्ण्या रुज ।

(२०५३) ६।४४।१८ (शयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्र.)
मघवन्निन्द्र वृष्ण्या स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।

[८३५] १।१०२।८ अतीद विश्व भुवन ववक्षिथ ।
(९२०) १।८१।५ (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
अति विश्वं ववक्षिथ ।

['] १।१०२।८ (कुत्स आङ्गिरस । इन्द्रः)
अशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
(४११) ८।२१।१३ (सोभरि काण्वः । इन्द्र.)
अनापिरिन्द्र— ।
(२७७९) १०।१३३।२ (सुदाः पजवनः । इन्द्र.)
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे ।

[८३८] १।१०२।११ = (९७५) १।१००।१९

[८४०] १।१०३।२ (कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्रः)
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च ।
(११६३) २।१५।२ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्र.)

[८४५] १।१०३।७=(७७४) १।५१।१५

[८४७] १।१०४।१ (कुत्स आङ्गिरस. । इन्द्र.)
योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा ।
(२१८६) ७।२४।१ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्रः)
—इन्द्र सदने अकारि तमा ।

[८५४] १।१०४।८ (कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्रः)
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा ।
७।४६।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । रुद्रः)
मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ।

[८५५] १।१०४।९ उरुव्यचा जठर आ वृषस्व ।
१०।९६।१३ (बरुराङ्गिरसः, सर्वहरिर्वा ऐन्द्रः । हरि)
सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व

[१००१] १।१२९।२ पृक्षमत्यं न वाजिनम् ।
(३२१६) १।१३५।५ (परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रवायू)
आशुमत्य— ।

[१००२] १।१२९।३ (परुच्छेपो दैवोदासि । इंद्रः)
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथ. सुमृळीकाय
सप्रथः ।

१।१३६।६ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
मित्राय वोचं वरुणाय मीळहुषे सुमृळीकाय मीळहुषे ।

[१००४] १।१२९।५ उग्राभिरुग्रोतिभिः। पश्य-(३१)१।७ ४

[१००८] १।१२९।९ (परुच्छेपो दैवोदासिः । इंद्रः)
त्वं न इन्द्र राया परीणसा ।
अभिष्टिभि. सदा पाह्यभिष्टिभिः ।
(१६४१) ४।३१।१२ (वामदेवो गौतम. । इद्रः)
एन्द्र राया परीणसा ।
(९८१) ८।९७।६ (रेभः काश्यपः । इंद्रः)
१०।९३।११ (तान्वः पार्थ्यः । विश्वेदेवा)
अभिष्टये सदा पाह्यभिष्टये ।

[१०११] १।१३०।१ (परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रः)
मंहिष्ठ वाजसातये ।
८।४।१८ (देवातिथिः काण्व. । पूषा)
अस्माकं — भव मंहिष्ठो वाजसातये ।
(८९९) ८।८८।६ (नोधा गौतमः । इन्द्रः)

[१०१६] १।१३०।६ (परुच्छेपो दैवोदासि । इन्द्रः)
— वाच — रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः ।
(अग्निः ७७७) ५।२।११ (कुमार आत्रेय, वृषो वा
जान उभौ वा, २ वृशो जानः । अग्निः)
— स्तोमं — रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।
(१६८१) ५।२९।१५ (गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः)
ब्रह्म ।
रथं न धीर. स्वपा अतक्षम् ।

[१०१७] १।१३०।७ अतिथिग्वाय शम्बर ।
पश्य- (७५०) १।५१।६

[१०१८] १।१३०।८ (परुच्छेपो दैवोदासि । इन्द्रः)
न्यर्शसानमोषति ।
(२९६) ८।१२।९ (पर्वतः काण्व । इद्रः)

[१०१९] १।१३०।९ (परुच्छेपो दैवोदासिः । इंद्रः)
उशना यत् परावतो ।
८।७।२६ (पुनर्वत्सः काण्वः । मरुत)

[१०२१] १।१३१।१ = (३०९) ८।१२।२२
देवासो दधिरे पुरः ।
(अग्निः ८७१) ५।१६।१ (पुरुरात्रेयः । अग्निः)
मर्तासो दधिरे पुरः ।
(३११) ८।१२।२५ देवास्त्वा दधिरे पुरः ।

[१०२४] १।१३१।४ पुरो यदिंद्र शारदीरवातिरः । '
(१०७०) १।१७४।२= (१८९३) ६।२०।१०
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।

[१०२८] १।१३३।१ (परुच्छेपो दैवोदासि. । इंद्रः)
इंद्रत्वोता. सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः।
(३१०७) ८।४०।७ (नाभाकः काण्वः। इन्द्राग्नी)
सासह्याम—।
[१०३१] १।१३३।४ यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रजम्।
(७४७) १।५१।३ त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप।
[१०३२] १।१३३।५ (परुच्छेपो दैवोदासि । इद्रः)
धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः।
१।१३९।१ (परुच्छेपो दैवोदासिः। विश्वेदेवा)
[१०४०] १।१३३।७ (परुच्छेपो दैवोदासिः।इन्द्र)
सहस्रा वाज्यवृतः।
(१९७) ८।३२।१८ (मेधातिथिः काण्वः। इन्द्रः)
[१०४१] १।१३९।६ (परुच्छेपो दैवोदासि. । इंद्रः)
सुमृळीको न आ गहि ।
१।९१।११ (गोतमो राहूगण । सोमः)
सुमृळीको न आ विश ।
[१०४२] १।१६७।१ सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः।
(२२०२) ७।२६।५ —नो माहि वाजान्।
[१०४७] १।१६९।५ त्वे पु णो मरुतो मृळयन्तु।
(३२६५) १।१७१।३ (अगस्त्यो मैत्रावरुणः।
मरुत्वानिंद्रः)
स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तु।
[१०५५] १।१७०।५ (अगस्त्यो मैत्रावरुणः। इंद्र.)
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां।
(अग्निः १४१६) ८।७१।८ (सुदीति–पुरुमीळहावाङ्गिरसौ.
तयोर्वान्यतर·। अग्निः)
त्वमीशिषे वसूनाम्।
[१०७०] १।१७४।२ (अगस्त्यो मैत्रावरुण. । इंद्र.)
मृध्रवाच सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त।
(१८९३) ६।२०।१० (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रः)
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्दन् दासी. पुरुकुत्साय।
[१०७३] १।१७४।५ = (७४३) १।३३।१४
["] १।१७४।५ (अगस्त्यो मैत्रावरुणः। इन्द्रः)
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके।
(१४७८) ४।१६।१२ (वामदेवो गौतमः। इन्द्रः)
[१०७६] १।१७४।८ (अगस्त्यो मैत्रावरुणः। इन्द्र·)
ननमो वधरदेवस्य पीयोः।
(११०५) २।१९।७ (गृत्समदः शौनकः। इद्रः)
[१०७७] १।१७४।९ (अगस्त्यो मैत्रावरुणः। इंद्र)
(१८९५) ६।२०।१२ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य· । इंद्रः)

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवंतीः।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति॥
[१०८०] १।१७५।२ वृषा मदो वरेण्यः।
(१८२४) ८।४६।८ यस्ते मदो वरेण्य ।
[१०८१] १।१७५।३ (अगस्त्यो मैत्रावरुणः। इन्द्रः)
सहावान् दस्युमव्रतम्।
९।४१।२ (मेध्यातिथिः काण्व· । पवमानः सोमः)
साह्वांसो दस्युमव्रतम्।
[१०८३]१।१७५।५शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतु
(अग्निः २८०) १।१२७।९ (परुच्छेपो दैवोदासिः। अग्निः)
[१०८४] १।१७५।६ =
(१०९०)१।१७६।६ (अगस्त्यो मैत्रावरुण. । इन्द्रः)
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न
तृष्यते बभूथ। तामनु त्वा निविद जोहवीमि
विद्यामेष वृजनं जीरदानुम्॥
[१०८५] १।१७६।१ (अगस्त्यो मैत्रावरुणः। इन्द्रः।)
इन्द्रमिन्दो वृषा विश।
९।२।१ (मेधातिथि काण्व । पवमान. सोम)
["] १।१७६।१ ऋघायमाण इन्वसि।
(६५) १।१०।८ —मिन्वतः।
[१०८६] १।१७६।२ = (३६) १।७।९
["] १।१७६।२ (अगस्त्यो मैत्रावरुणः। इन्द्र)
यवं न चर्षकृद् वृषा।
१।२३।१५ (मेधातिथि. काण्वः। पूषा)
[१०८७] १।१७६।३ (अगस्त्यो मैत्रावरुण । इन्द्र·)
यस्य विश्वानि हस्तयोः।
(२०६७) ६।४५।८ (शयुर्बार्हस्पत्यः। इन्द्रः)
[१०८९] १।१७६।५ = (११) १।४।८
[१०९०] १।१७६।६ = (१०८४) १।१७५।६
[१०९१] १।१७७।१ (अगस्त्यो मैत्रावरुण. । इन्द्रः)
राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः।
(१४९१) ४।१७।५ (वामदेवो गौतम । इन्द्रः)
["] १।१७७।१ युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ्।
(१७६८) ५।४०।४ युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्।
[१०९३] १।१७७।३ (अगस्त्यो मैत्रावरुण. । इन्द्र)
सुतः सामः परिषिक्ता मधूनि।
(२१८७) ७।२४।२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । इन्द्र)
[१०९५] १।१७७।५ (अगस्त्यो मैत्रावरुणः। इन्द्र)
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो।

(१९४६) ६।२५।९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
एवा . ... इन्द्र ।
विश्याम ।

(२६७८) १०।८९।१७ (रेणुर्वैश्वामित्रः । इन्द्रः)
एवा इन्द्र ।
विद्याम . .. ।

ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलम् ।

[११००] २।११।२ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
सृजो महीरिन्द्र परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
(२२६३) ७।२१।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
[११०४-५] २।११।४-५ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥४॥
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु ॥५॥
(१३६०) ३।३९।६ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः)
गुहा हितं— ।
(२८६०) १०।१४८।२ (पृथुर्वैन्यः । इन्द्रः)
दासी— ।
गुहा— ।
[१११६] २।११।११ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं ।
(२४८०) १०।११२।१५ (विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुकः । इन्द्रः)
[ ] २।११।११ मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
१।१३४।२ (परुच्छेपो दैवोदासिः । वायुः)
मदन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवो ।
[११२१]२।११।२१-(११७१)२।१५।१०-(११८०)२।१६।९
-(११८९) २।१७।९ = (११९८) २।१८।९
-(१२०६) २।१९।९ = (१२१६) २।२०।९
(गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥
[११२४] २।१२।३ यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् ।
(१५९९) ४।२८।१=१०।६७।१२ (अयास्य आंगिरसः । बृहस्पतिः)
अहन्नहिम ।
[११३३] २।१२।१२ यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान् ।
(अग्निः १७६०) ४।५।३ (वामदेवो गौतमः । वैश्वानरोऽग्निः)
सप्तरेता वृषभस्तुविष्मान् ।
[ ] २।१२।१२ - (७२६) १।३२।१२

[११३५] २।१२।१४ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
पचन्तं यः शसन्तं यः शशमानमूती ।
(१२१०) २।२०।३ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
यः शसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं ।
[११३६] २।१२।१५ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः ।
८।४८।१४ (प्रगाथो घौरः काण्वः । सोमः)
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः ।
[ ] २।१२।१५ सुवीरासो विदथमा वदेम ।
१।११७।२५ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । अश्विनौ)
[११३८-४०] २।१३।२-४ यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ।
[११४५] २।१३।९ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
(१६७) ८।३।१२ (मेध्यातिथिः काण्वः । इन्द्रः)
यथा... नो अस्य यद्ध पौरमाविथ ।
[११४९] २।१३।१३ =
(११६१) २।१४।१२ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् । इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून् बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥
[११५०] २।१४।१ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोमम् ।
१०।३०।१५ (कवष ऐलूषः । आपः अपांनपाद्वा)
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोमम् ।
[११५१] २।१४।२ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
अध्वर्यवो —।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ ।
२।३७।१ (गृत्समदः शौनकः । द्रविणोदा ऋतवश्च)
— अध्वर्यवः— ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिः ।
[११५९] २।१४।१० (गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
—दित्सन्तम् ॥
(१९२६) ६।२३।९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
सोमे— । — सुविम् ॥

[११६१] २।१४।१२ = (११४९) २।१३।१३
[११६२] २।१५।१ = (७१७) १।३२।३
[११६३] २।१५।२ = (८४०) १।१०३।२
[११६३–७०] २।१५।२–९ सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार।
[११७१] २।१५।१० = (११११) २।११।२१
[११८०] २।१६।९ = (११११) २।११।२१
[११८४] २।१७।४ (गृत्समदः शौनकः । इन्द्र)
अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
रोदसी ।
९।११०।९ (त्र्यरुणत्रसदस्यू पारुकुत्स्य । पवमान सोम)
अध रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना।
[११८६] २।१७।६ = (११११) २।११।२१
[११९२] २।१८।३ (गृत्समद शौनक । इन्द्र)
हरी . ।
मो बहवो नि रीरमन् यजमानासो अन्ये ।
(१३१६) ३।३५।५ (विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्र)
मा हरी नि रीरमन् यजमानासो अन्ये ।
शश्वता ।
[११९६] २।१८।७ (गृत्समद शौनक । इन्द्र)
ब्रह्मा हरी ... ।
अस्मिन्शूर सवने मादयस्व ।

(२१८४) ७।२३।५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्र)
अस्मिन् ... ।
(२२१४) ७।२९।२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्र.)
ब्रह्मकृति हरिभिः ... ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि।
[११९८] २।१८।९ = (११११) २।११।२१
[१२०५] २।१९।७ = (११७६) २।१७।८
[१२०७] २।१९।९ = (११११) २।११।२१
[१२१०] २।२०।३ = (११३५) २।१२।१४
[१२१२] २।२०।५ (गृत्समद. शौनक । इन्द्र.)
अश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ।
(अग्नि ९७३) ६।४।३ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य. । अग्नि)
[१२१६] २।२०।९ = (११११) २।११।२१
[१२१८] २।२१।२ (गृत्समद शौनक. । इन्द्र)
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे।
७।४६।१ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । रुद्रः)
अषाळ्हाय— ।
[१२१९] २।२१।३ = (७१५) १।३२।१
[१२२३--२५] २।२२।१--३ सैनं सश्चद्देवो देव सत्यमिन्द्र सत्य इन्दुः ।
[१२२६] २।२२।४ दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
१।१०५।१६ (त्रित आप्त्यः,कुत्स आङ्गिरसो वा । विश्वेदेवा)
दिवि प्रवाच्य कृतः ।

ऋग्वेदस्य तृतीयं मण्डलम् ।

[१२३९] ३।३०।२ प्रियाय वृष्णे सवना कृतेमा।
(अग्नि ४६६) ३।१।२० (विश्वामित्रो गाथिन । अग्निः)
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा ।
[१२५०] ३।३०।१७ (विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्र)
इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
(१२८९) ३।३२।८ = (१३०६) ३।३४।६
[१२५४] ३।३०।१७ (विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्रः)
ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ।
६।५२।३ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवा.)
[१२५७] ३।३०।२० = (१४३२) ३।५०।४
(विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः)
इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ।

[१२५८] ३।३०।२१ (विश्वामित्रो गाथिन. । इन्द्रः)
अस्मभ्यं सु मघवन् बोधि गोदाः ।
(१२७३) ३।३१।१४ (कुशिक ऐषीरथिः विश्वामित्रो गाथिनो वा । इन्द्र.)
अस्माकं सु मघवन् बोधि गोपाः ।
(१५६४) ४।२२।१० (वामदेवो गौतमः । इन्द्र)
अस्माकं सु मघवन् बोधि गोदाः ।
[१२५९] ३।३०।२२ = (१२८१) ३।३१।२२ = (१२९८)
३।३२।१७ = (१३११) ३।३४।११ = (१३२२)
३।३५।११ = (१३३३) ३।३६।११ = (१३५४)
३।३८।१० = (१३६३) ३।३९।९ = (१३९८)
३।४३।८ = (१४२३) ३।४८।५ = (१४२८)
३।४९।५ = (१४३३) ३।५०।५ = (८६७९)
१०।८९।१८

=(२७१३)१०।१०४।११ (विश्वामित्रोः गाथिनः। इन्द्रः)
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्॥
[१२६७] ३।३१।८ (कुशिक ऐषीरथि. विश्वामित्रो गाथिनो वा। इन्द्रः)
प्रतिमानं विश्वावेद जनिमा हन्ति शुष्णम्।
(२७११) १०।१११।५ (अष्टादंष्ट्रो वैरूप। इन्द्र)
प्रतिमानं विश्वावेद भवना हन्ति शुष्णम्।
[१२६८] ३।३१।९=(अग्नि· २०३) १।७२।९
(पराशर शाक्त्यः। अग्नि)
[१२७३] ३।३१।१४ = (१२५८) ३।३०।११
[१२७५] ३।३१।१६ = (अग्निः ४५१) ३।१।५
(विश्वामित्रो गाथिन। अग्नि)
[१२७६] ३।३१।१७ (कुशिक ऐषीरथि विश्वामित्रो गाथिनो वा। इन्द्र)
अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते।
४।४८।३ (वामदेवो गौतम। वायु)
वसुधिती येमाते।
[१२७७] ३।३१।१८= (अग्नि ४६५) ३।१।१९
(विश्वामित्रो गाथिन। अग्नि)
[१२८०] ३।३१।२१ (कुशिक ऐषीरथिः विश्वामित्रो गाथिनो वा। इन्द्र)
गोपति।
दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः।
(२७७१) १०।१२०।८ (बृहद्दिव आथर्वण। इन्द्रः)
गोत्रस्य दुरश्च।
[१२८१] ३।३१।२२ = (१२५९) ३।३०।२२
[१२८५] ३।३२।४ अमर्मणो मन्यमानस्य मर्म।
(१७०९) ५।३२।५ अमर्मणो विदिदस्य मर्म।
[१२८८] ३।३२।७ (विश्वामित्रो गाथिनः। इन्द्रः)
इन्द्र बृहन्तमृष्वमजरं युवानम्।
(१८७२) ६।१९।२ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य। इन्द्रः)
इन्द्रं बृहन्त।
६।४९।१० (ऋजिश्वा भारद्वाज। विश्वेदेवाः)
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नम् —।
[१२८९] ३।३२।८ = (१२५०) ३।३०।१३
["] ३।३२।८ दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमाम्।
(१३०८) ३।३४।८ समान य।

[१२९२] ३।३२।११ (विश्वामित्रो गाथिन। इन्द्र)
अहन्नहिं परिशयानमर्णः।
(१५२३) ४।१९।२ (वामदेवो गौतमः। इन्द्र)
अवासृजन्त।
अहन्नहिं।
(१९७१) ६।३०।४ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रः)
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो।
[१२९८] ३।३२।१७ = (१२५९) ३।३०।२२
[१३०२] ३।३४।२=(अग्नि. १७१९) १।५९।५
(नोधा गौतम। अग्निर्वैश्वानर)
[१३०५] ३।३४।५= (अग्नि १९५) १।७२।१
(पराशर शाक्त्यः। अग्नि)
[१३०६] ३।३४।६ = (१२५०) ३।३०।१३
[१३०७] ३।३४।७ = (अग्नि १७२१) १।५९।५
[१३०८] ३।३४।८ = (अग्नि २५१) १।७९।८
(गौतमो राहूगणः। अग्नि)
["] ३।३४।८ = (१२८९) ३।३२।८
[१३११] ३।३४।११ = (१२५९) ३।३०।२२
[१३१२] ३।३५।१ (विश्वामित्रो गाथिन। इन्द्र)
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ।
... इन्द्र ...।
(२१८३) ७।२३।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रः)
इन्द्र।
याहि ...।
[१३१५] ३।३५।४ = (अग्निः ५७३) ३।२९।१६
(विश्वामित्रो गाथिनः। अग्नि)
[१३१६] ३।३५।५ = (११९२) २।१८।३
[१३१७] ३।३५।६ (विश्वामित्रो गाथिन। इन्द्रः)
अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या।
१०।१४।५ (यमो वैवस्वतः। यम)
... ... निषद्य।
[१३२२] ३।३५।११ = (१२५९) ३।३०।२२
[१३२४] ३।३६।२ (विश्वामित्रो गाथिन। इन्द्रः)
इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः।
(१३९७) ३।४३।७ (विश्वामित्रो गाथिनः। इन्द्रः)
[१३२९] ३।३६।७ (विश्वामित्रो गाथिनः। इन्द्रः)
समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः।
(१८७५) ६।१९।५ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य। इन्द्रः)
समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः।

१०।३०।१३ (कवष ऐलूषः । आपः अपानपात् वा)
इन्द्राय सोम सुषुतं भरन्ती. ।
[१३३३] ३।३६।११ = (१२५९) ३।३०।२२
[१३३५] ३।३७।२ = (९३९) १।८४।३
[१३३८] ३।३७।५ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्र)
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।
(३०९) ८।१२।२२ (पर्वत काण्वः । इन्द्र)
९।६१।२२ (अमहीयुराङ्गिरसः । पवमान सोमः)
[१३४१] ३।३७।८ पाहि । **इन्द्र सोमं शतक्रतो ।**
(६३४) ८।७६।७ इन्द्र ... पिबा **सोमं** ।
[१३४४] ३।३७।११ (विश्वामित्रो गाथिन. । इन्द्र)
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावत ।
इन्द्रेह तत आ गहि ।
(१३७१) ३।४०।८ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्र)
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् ।
(१३७२) ३।४०।९
परावतमर्वावतम् ।
इन्द्रेह तत आ गहि ।
[१३५२] ३।३८।८ **हिरण्ययीममति यामशिश्रेत् ।**
७।३८।१ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । सविता)
[१३५४] ३।३८।१० = (१२५९) ३।३०।२२
[१३६०] ३।३९।६ = (११०५) २।११।५
[१३६३] ३।३९।९ = (१२५९) ३।३०।२२
[१३६७] ३।४०।४ (विश्वामित्रो गाथिन. । इन्द्र.)
इन्द्र सोमा. सुता इमे ।
(१३८६) ३।४२।५ **इन्द्र सोमाः सुता इमे ।**
[१३६९] ३।४०।६ = (६४) १।१०।७
[१३७१] ३।४०।८ = (१३४४) ३।३७।११
[१३७२] ३।४०।९ = (१३४४) ३।३७।११
[१३७४] ३।४१।२ = (अग्नि. १९१०) १।१३।५
[१३७८] ३।४१।६ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्र) =
(२०८६) ६।४५।२७ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्र)
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे ।
न स्तोतारं निदे कर. ।
[१३७९] ३।४१।७ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्र.)
वयमिन्द्र त्वायवो । वसो ।
(२२६६) ७।३१।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
वयमिन्द्र त्वायवो । वसो ।
(२७८३) १०।१३३।६ (सुदाः पैजवन । इन्द्र.)
वयमिन्द्र त्वायवः . ।

[१३८१] ३।४१।९ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः)
वहतामिन्द्र केशिना ।
(३९५) ८।१७।२ (इरिम्बिठिः काण्वः । इन्द्रः)
[१३८२] ३।४२।१ = (८१) १।१६।४
[१३८५] ३।४२।४ = (८०) १।१६।३
[१३८६] ३।४२।५ = (१३६७) ३।४०।४
[१३८७] ३।४२।६ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्र.)
विद्मा हि त्वा धनजय ।
अधा ते सुम्नमीमहे ।
(४५५) ८।४५।१३ (त्रिशोक काण्वः । इन्द्र.)
विद्मा .. ।
(अग्निः १३८८) ८।७५।१६ (विरूप आङ्गिरस । अग्निः)
विद्मा हि.. ।
अधा ते सुम्नमीमहे ।
(१३७४) ८।९८।११ (नृमेध आङ्गिरसः । इन्द्र.)
[१३८९] ३।४२।८ (विश्वामित्रो गाथिन. । इन्द्र.)
सोम **चोदामि पीतये ।**
(२१९७) ८।६८।७ (प्रियमेध आङ्गिरसः। इन्द्रः)
इन्द्र **चोदामि पीतये ।**
[१३९३] ३।४३।३ इन्द्र देव **हरिभिर्याहि तूयम् ।**
(२२१४) ७।१९।२ अर्वाचीनो **हरिभि.— ।**
[१३९६] ३।४३।६ (विश्वामित्रो गाथिन. । इन्द्रः)
आ त्वा बृहन्तो **हरयो युजाना वहन्तु ।**
(२०५४) ६।४४।१९ (शंयुर्बार्हस्पत्य । इन्द्रः)
आ त्वा हरयो वृषणो **युजाना ।**
वहन्तु ।
[१३९७] ३।४३।७ = (१३२४) ३।३६।२
[१३९८] ३।४३।८ = (१२५९) ३।३०।२२
[१३९९] ३।४४।१ (विश्वामित्रो गाथिन. । इन्द्रः)
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न **आ गहि ।**
८।१३।१३ (नारद काण्व । इन्द्रः)
इन्द्र सप्तिभिर्न ।
[१४०१] ३।४४।४ = १।४९।४ (प्रस्कण्वः काण्वः । उषा)
[१४१०] ३।४६।२ (विश्वामित्रो गाथिन. । इन्द्रः)
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा जनान् ।
(२०३४) ६।३६।४ (नरो भारद्वाजः । इन्द्र)
जनानामेको— ।
[१४१५] ३।४७।२ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः)
सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा
शूर विद्वान् ।

(१४५२) ३।५२।७ अपपमाद्रि सगणो मरुद्भिः ।

[१४१६] ३।४७।३ (विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्रः)

पाहि सोममिन्द्र देवेभि सखिभि सुतं नः ।

(१४४१) ३।५१।८ पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः

सुत नः ।

[१४१८]३।४७।५ (विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्रः)=

(१८८१) ६।१९।११ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य. । इन्द्र.)

मरुत्वन्तं वृषभ वावृधानमकवारिं दिव्य शासमिन्द्रम् ।

विश्वासाहमवसे नूतनायोग्र सहोदामिह त हुवेम ॥

[१४२२] ३।४८।४ (विश्वामित्रो गाथिन. । इन्द्र)

यथावशं तन्व चक्र एषः ।

७।१०१।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. [आग्नेयः कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्य)

[१४२३] ३।४८।५ = (१२५९) ३।३०।२२

[१४२८] ३।४९।५ = (१२५९) ३।३०।२२

[१४३०] ३।५०।२ (विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्र.)

हरय. सुशिप्र पिबा त्वश्स्य सुषुतस्य चारोः।

(२२१३) ७।२९।१ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्र)

. हरिवः ।

पिबा ।

[१४३२] ३।५०।४ = (१२५७) ३।३०।२०

[१४३३] ३।५०।५ = (१२५९) ३।३०।२२

[१४३८] ३।५१।५ (विश्वामित्रो गाथिन. । इन्द्र)

पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु ।

(२०४६) ६।४४।११ (शंयुर्बार्हस्पत्य । इन्द्र)

पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु ।

[१४३९] ३।५१।६ = (७०८) १।३०।१०

[१४४१] ३।५१।८ = (१४१६) ३।४७।३

[१४४३] ३।५१।१० (विश्वामित्रो गाथिन. । इन्द्र)

सुतं . ।

पिबा त्वश्स्य गिर्वणः ।

(११२) ८।१।२६ (मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ । इन्द्र)

पिबा त्वश्स्य गिर्वणः सुतस्य ।

[१४४६] ३।५२।१ (विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्र)

धानावन्त करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ।

(१७८४) ८।९१।२ (अपाला आत्रेयी । इन्द्रः)

[१४४८] ३।५२।३ (विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्र)

(१६६०) ४।३२।१६ (वामदेवो गौतम । इन्द्र)

जोषयासे गिरश्च न । वधूयुरिव योषणाम् ।

३।६२।८ (विश्वामित्रो गाथिनः । पूषा)

जुषस्व गिरं । वधूयुरिव योषणाम् ।

[१४५२] ३।५२।७ = (१४१५) ३।४७।२

[१४५५] ३।५३।३ (विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्र)

एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदा ।

(१९२४) ६।२३।७ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । इन्द्र)

[१४५७-५८] ३।५३।५-६ यत्रा रथस्य बृहतो निधान ।

[१४५९] ३।५३।७ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्र.)

.. अंगिरसो ... दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीरा ।

ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयु ।

१०।६७।२ (अयास्य आंगिरस । बृहस्पति)

दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।

अंगिरसो

७।१०३।१० (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । मण्डूकाः। पर्जन्यस्तुति-महष्ट्या)

ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ।

[१४६४] ३।५३।१२ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्र.)

य इमे रोदसी उभे ।

(२५२) ८।६।१७ (वत्स काण्व । इन्द्र)

रोदसी मही ।

९।१८।५ (असित काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोम.)

रोदसी मही।

[१४६५] ३।५३।१३ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्र)

ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।

(१७९०) ८।२४।१ (विश्वमना वैयश्व । इन्द्र)

[ ] ३।५३।१३ (विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः)

करदिन्नः सुराधसः।

१।२३।६ (मेधातिथि काण्व । मित्रावरुणौ)

करतां न. सुराधस ।

ऋग्वेदस्य चतुर्थं मण्डलम् ।

[१४७१] ४।१६।५ (वामदेवो गौतम. । इन्द्र.)

उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।

३।५४।१५ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वेदेवाः)

[१४७२] ४।१६।६ विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वान् ।

(२१६४) ७।२१।४ अपांसि विश्वा ।

[ ] ४।१६।६ = (अग्निः ६४१) ४।१।१५

(वामदेवो गौतमः । अग्नि)

[१४७८] ४।१६।१२ = (१०७३) १।१७४।५
[१४८६] ४।१६।२० ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
१०।३९।१४ (घोषा काक्षीवता । अश्विनौ)
अतक्षाम भृगवो ... ।
[१४८७] ४।१६।२१ = (१५०८) ४।१७।२१
(वामदेवो गौतमः । इन्द्रः) =
(१५३२) ४।१९।११ = (१५४३) ४।२०।११ =
(१५५४) ४।२१।११ = (१५६५) ४।२२।११ =
(१५७६) ४।२३।११ = (१५८७) ४।२४।११
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इष जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ।
४।५६।४ (वामदेवो गौतमः । द्यावापृथिवी)
नू ।
धिया स्याम रथ्य सदासाः ।
[१४८८] ४।१७।१ (वामदेवो गौतम । इन्द्र)
सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान् ।
(२७३३) १०।१११।९ (अष्टादंष्ट्रो वैरूप. । इन्द्रः)
[१४९०] ४।१७।३ (वामदेवो गौतम. । इन्द्रः)
वधीद् वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।
(२५९७) १०।२८।७ (वसुक्र ऋषि. । इन्द्र)
वधी वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।
[१४९२] ४।१७।५ = (१०९१) १।१७७।१
[१४९४] ४।१७।७ त्वं प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण
मघवन् वि वृश्च ।
(१५२४) ४।१९।३ सत प्रति प्रवत आशयानमहिं
वज्रेण वि रिणा अपर्वन ।
[१५०१] ४।१७।१४ त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
(अग्नि. ६३७) ४।१।११ (वामदेवो गौतम. । अग्नि.)
महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
[१५०३] ४।१७।१६ (वामदेवो गौतम. । इन्द्रः)
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्त ।
(२७७५) १०।१३१।३ (सुकीर्तिः काक्षीवत । इन्द्रः)
[१५०८] ४।१७।२१ = (१४८७) ४।१६।२१
[१५११] ४।१८।४ नही न्वस्य प्रतिमानमस्ति ।
(१८६७) ६।१८।१२ नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति ।
[१५१३] ४।१८।५ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
(अग्निः ४८१) ३।६।२ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
[१५१५] ४।१८।७ = (९०९) १।८०।१०
[१५१९] ४।१८।११ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रः)
दै० [इन्द्रः] ३०

वृत्रमिन्द्रो.. हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ।
(९९९) ८।१००।१२ (नेमो भार्गव । इन्द्र)
सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ।
हनाव वृत्र... ।
[१५२३] ४।१९।२ = (१२९२) ३।३२।११
[१५२४] ४।१९।३ = (१४९४) ४।१७।७
[१५२६] ४।१९।५ (वामदेवो गौतम. । इन्द्र)
त्वं वृतो अरिणा इन्द्र सिन्धून् ।
(३१५७) ४।४२।७ (त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य । इन्द्रावरुणा)
[१५२९] ४।१९।८ = (९०९) १।८०।१०
[१५३२] ४।१९।११ = (१४८७) ४।१६।२१
[१५३५] ४।२०।३ (वामदेवो गौतम । इन्द्र.)
पुरो दधत सनिष्यसि क्रतुं न ।
(१७०२) ५।३१।११ (अवस्युरात्रेय. । इन्द्र)
[१५३८] ४।२०।६ उद्रेव कोश वसुना न्यृष्टम् ।
(२५४७) १०।४२।२ कोश न पूर्ण वसुना ।
[१५४३] ४।२०।११ = (१४८७) ४।१६।२१
[१५५३] ४।२१।१० = (८९१) १।६३।७
[ ] ४।२१।१० (वामदेवो गौतमः । इन्द्र)
भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ।
५।५७।७ (श्यावाश्व आत्रेय । मरुत.)
भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ।
[१५५४] ४।२१।११ = (१५४३) ४।२०।११
[१५५७] ४।२२।३ (वामदेवो गौतम. । इन्द्र)
महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
(२०१४) ६।३२।४ (सुहोत्रो भारद्वाज. । इन्द्र)
[१५५९] ४।२२।५ = (७५७) १।५१।१३
[१५६३] ४।२२।९ (वामदेवो गौतम. । इन्द्र)
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ।
(२१९४) ७।२५।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्र)
[१५६४] ४।२२।१० = (१२५८) ३।३०।२१
[१५६५] ४।२२।११ = (१४८७) ४।१६।२१
[१५६८] ४।२३।४ = (३२६२) १।१६५।१३
[१५७६] ४।२३।११ = (१४८७) ४।१६।२१
[१५७९] ४।२४।३ रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
(अग्नि १९९) १।७२।५ (पराशर शाक्त्य. । अग्नि.)
कृण्वत स्वाः ।
["] ४।२४।३ (वामदेवो गौतम । इन्द्रः)
वि ह्वयन्ते समीके ।
उभयासो नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ।

(३१८०) ७।८२।९ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रावरुणौ)
हवन्त उभये स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु।
[१५८७] ४।२४।११ = (१४८७) ४।१६।२१
[१५९१] ४।२५।४ (वामदेवो गौतम । इन्द्रः)
ज्योक्पश्यात् सूर्यमुच्चरन्तम्।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह।
६।५२।५ (ऋजिश्वा भारद्वाज. । विश्वेदेव.)
पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
(३३०१) ७।१०४।२४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । (रक्षोहणौ) इन्द्रासोमौ)
मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम्।
१०।५९।४ (बन्धु. श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गोपायना. । निर्ऋतिः सोमश्च)
पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
१०।५९।६ (बन्धु श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गोपायना । असुनीति.)
ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम्।
(१७५०) ५।३७।१ (अत्रिर्भौमः । इन्द्रः)
य इन्द्राय सुनवामेत्याह।
[१५९२] ४।२५।५ उरुष्मा अदितिः शर्म यंसत्।
१।१०७।२ (कुत्स आङ्गिरसः । विश्वेदेवा.)
आदित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत्।
[१५९७] ४।२६।२ मम देवासो अनु केतमायन्।
(अग्नि. १५२६) १०।६।७ (त्रित आप्त्यः । अग्निः)
न ते देवासो ।
[१६०४] ४।२९।१ (वामदेवो गौतम । इन्द्र)
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूणि।
(६२४) ८।६६।१२ (कलि प्रागाथ. । इन्द्र)
तिरश्चिदर्यः सवना वसो गहि।
[१६२५] ४।३०।२० (वामदेवो गौतम । इन्द्र)
शतमश्मन्मयीनां पुराम्...।
दिवोदासाय दाशुषे।
(अग्नि १०४६) ६।१६।५ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्निः)
दिवोदासाय सुन्वते।
... दाशुषे।
(२००९) ६।३१।४ (सुहोत्रो भारद्वाज । इन्द्रः)
शतानि .. पुरो.... ।
दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे।
[१६२६] ४।३०।२१ (वामदेवो गौतमः। इन्द्रः)
अस्वापयद्दभीतये... हथैः।

(२१४३) ७।१९।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्र)
अस्वापयो दभीतये सुहन्तु।
[१६२८] ४।३०।२३ करिष्या इन्द्र पौंस्यम्।
(१७५)८।३।२०=(१८२)८।३२।३ कृषे तदिन्द्र पौंस्यम्।
[१६३३] ४।३१।४ अभी न आ ववृत्स्व।
१०।८३।६ (मन्युस्तापस । मन्यु)
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व।
[१६४०] ४।३१।११ (वामदेवो गौतमः । इन्द्र)
सख्याय स्वस्तये।
(३३३०) ६।५७।१ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रापूषणौ)
[१६४१] ४।३१।१२ = (१००८) १।१२९।९
[१६४५] ४।३२।१ महान् महीभिरूतिभि ।
(अग्नि ४६५) ३।१।१९ (विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि)
[१६५२] ४।३२।८ (वामदेवो गौतम । इन्द्र)
न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम्।
स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः।
(३५७) ८।१४।४ (गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। इन्द्र)
न ते वर्तास्ति।
यद्दित्ससि स्तुतो मघम्।
(१८६) ८।३२।७ (मेधातिथि काण्व । इन्द्र)
स्तोतार इन्द्र गिर्वणः।
[१६५३] ४।३२।९ अभि त्वा गोतमा गिरा।
(अग्नि २३९)०१।७८।१ (गोतमो राहूगणः। अग्नि)
[१६५५] ४।३२।११ (वामदेवो गौतम । इन्द्र)
वेधसो ... ।
सुतेष्विन्द्र गिर्वण.।
(२३७७) ८।९९।२ (नृमेध आंगिरस । इन्द्र)
वेधसः ।
सुतेष्विन्द्र गिर्वणः।
[१६५६] ४।३२।१२ (वामदेवो गौतम । इन्द्र.)
ऐषु धा वीरवद्यशः।
५।७९।६ (सत्यश्रवा आत्रेय । उषा)
[१६५७] ४।३२।१३ (वामदेवो गौतम । इन्द्र)
(६०७) ८।६५।७ (प्रगाथ काण्व । इन्द्र)
यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम्।
तं त्वा वयं हवामहे।
(अग्निः १३३२) ८।४३।२३ (विरूप आङ्गिरस । अग्निः)
तं त्वा वयं हवामहे।
[१६६०] ४।३२।१६ = (१४४८) ३।५२।३

ऋग्वेदस्य पञ्चमं मण्डलम् ।

[१६६७] ५।२९।१ त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
२।२७।९ (कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । आदित्याः)
[१६६९] ५।२९।३ अहन्नहि पपिवाँ इन्द्रो अस्य ।
(१६९२) ५।३०।११ पुरंदरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य ।
[१६७१] ५।२९।१० (गौरिवीति शाक्त्य । इन्द्रः)
नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः ।
(१७१२) ५।३२।८ (गातुरात्रेयः । इन्द्रः)
—मृध्रवाचम् ।
[१६७८] ५ २९।१२ दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
६।५०।१५ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवाः)
भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
[१६७९] ५।२९।१३ वीर्या मघवन्या चकर्थ ।
(१६९८) ५।३१।६ प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
[१६८९] ५।३०।८ (बभ्रुरात्रेय । इन्द्र)
शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
(१८८९) ६।२०।६ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
[१६९२] ५।३०।११ = (१६६९) ५।२९।३
[३३३८] ५।३०।१३ (बभ्रुरात्रेय । ऋणचयेन्द्रौ)
अक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ।
(१९३६) ६।२४।९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
— परितक्म्यायाम् ।
[१६९५] ५।३१।३ = (अग्नि. ६३९) ४।१।१३
(वामदेवो गौतमः । अग्नि.)
[१६९६] ५।३१।४ अवर्धयन्नहये हन्तवा उ ।
(२३४९) ८।९६।५ मरुत्वन्तमहये हन्तवा उ ।
[१६९८] ५।३१।६ (अवस्युरात्रेय । इन्द्रः)
प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
(२२८३) ७।९८।५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
[१७०२] ५ ३१।११ = १।१२१।१३ (कक्षीवान् आंगिरो
दैर्घतमसः । विश्वेदेवा इन्द्रो वा)
["] ५।३१।११ = (१५३५) ४।२०।३
[१७०९] ५।३२।५ = (१२८५) ३।३२।४
[१७११] ५।३२।७ (गातुरात्रेयः । इन्द्रः)
इन्द्रो ..महते ..वधः ..। विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ।
(२२८६) ७ १०४।१६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
इन्द्रः... महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ।

[१७१२] ५।३२।८ = (१६७१) ५।२९।१०
[१७२१] ५।३३।५ (संवरणः प्राजापत्यः । इन्द्रः)
वय ते त इन्द्र ये च नरः ।
(२२२१) ७।३०।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्रः)
—ये च देव ।
[१७३३] ५।३४।७ वि दाशुषे भजति सूनरं वसु ।
१।४०।४ (कण्वो घोरः । ब्रह्मणस्पतिः)
[१७३६] ५।३५।१ (प्रभूवसुराङ्गिरस । इन्द्र)
यस्ते साधिष्ठोऽवस ।
अस्मभ्य चर्षणीसहम् ।
(५३१) ८।५३(वाल०)।७ (मेध्य काण्व । इन्द्र)
यस्ते साधिष्ठोऽवसे ।
(३०८५) ७।९४।७ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्राग्नी)
अस्मभ्य चर्षणीसहा ।
[१७३७] ५।३५।२ (प्रभूवसुराङ्गिरस । इन्द्र)
यदिन्द्र ।
यद्वा पञ्च क्षितीनाम् आ भर ।
(२०९६) ६।४६।७ (शयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्र)
यदिन्द्र ... ... ।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर ।
[१७३८] ५ ३५।३ = (६७) १।१०।१०
[१७३९] ५ ३५।४ = (७८८) १।५४।३
[१७४०] ५।३५।५ त्वं तमिन्द्र मर्त्यम् ।
(२८३४) १०।१७१।३ त्वं त्यमिन्द्र मर्त्यम् ।
[१७४१] ५।३५।६ (प्रभूवसुराङ्गिरस । इन्द्र)
त्वामिद् वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिष ।
हवन्ते वाजसातये ।
(२७९) ८।६।३७ (वत्स काण्व । इन्द्र)
त्वामिद् ।
हवन्ते ... ।
(४२८) ८।३४।४ (नीपातिथिः काण्व । इन्द्र)
हवन्ते ।
(३३३०) ६।५७।१ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । इन्द्रापूषणौ)
हुवेम वाजसातये ।
८।९।१३ (शशकर्णः काण्व । अश्विनौ)
हुवेय वाजसातये ।
["] ५।३५।६=३।५९।९ (विश्वामित्रो गाथिन । मित्र)

[१७४९] ५।३५।७ (प्रभूवसुराङ्गिरसः । इन्द्र)
पुरोयावानमाजिषु ।
वाजयन्तम् ।
(अग्नि १४६१) ८।८४।८ (उशना काव्य । अग्नि)
पुरो ।
... ...वाजिनम् ।
[१७५०] ५।३७।१= (१५९१) ४।२५।४
[१७५४] ५।३७।५ (अत्रिभौमः । इन्द्र)
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति ।
(अग्नि १५९८) १०।४५।१० (वत्सप्रिर्भालन्दनः। अग्निः)
प्रिय सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति ।
[१७५७]५।३८।३=१।२५।२० (शुन शेप आजीगर्ति । वरुणः)
[१७६२] ५।३९।३ आ वाज दर्षि सातये ।
९।६८।७ (वत्सप्रिर्भालन्दनः । पवमानः सोम.)
नृभिर्यतो वाजमा दर्षि ... ।
[१७६३] ५।३९।४ महिष्ठं वो मघोनां ।
८।१।३० (आसङ्ग प्लायोगिः । आसङ्ग)
मंहिष्ठासो मघोनाम् ।
[१७६४] ५।३९।४=(६२) १।१०।५
["] ५।३९।५=(अग्निः ९०२) ५।२२।४
(विश्वसामा आत्रेय । अग्नि)
[१७६५] ५।४०।१ (अत्रिभौम । इन्द्र)
आ याहि सोमं सोमपते पिब ।
(४११) ८।२१।३ (सोभरिः काण्वः । इन्द्रः)
आ याहीम ।
सोमं सोमपते पिब ।
["] ५।४०।१-३ वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ।
[१७६६-६७] ५।४०।२-३ (अत्रिभौमः । इन्द्रः)
वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ॥२॥
वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥३॥
(३५२-५३) ८।१३।३२-३३ (नारदः काण्वः । इन्द्र.)
वृषा ग्रावा ... ... ॥३२॥
वृषा त्वा ॥३३॥
[१७६८] ५।४०।४= (१०९१) १।१७७।१

ऋग्वेदस्य षष्ठं मण्डलम् ।

[१८५७] ६।१८।२ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्र)
स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा ।
(२१५३) ७।२०।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्र)
युध्मो अनर्वा खजकृत्समद्वा ।
[१८६७] ६।१८।१२ = (१५१२) ४।१८।४
[१८७१] ६।१९।१ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्र)
उरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ।
७।६२।१ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । सूर्य.)
क्रत्वा कृतः सुकृत कर्तृभिर्भूत् ।
[१८७२] ६।१९।२ = (१२८८) ३।३२।७
[१८७३] ६।१९।३ = ३।५४।२२ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वेदेवा)
[१८७५] ६।१९।५ = (१३२९) ३।३६।७
[१८७७] ६।१९।७ = (१५७९) ४।२४।३
[१८७८] ६।१९।८ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्र)
वृषणं ... धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून् ।
(२८४५) १०।४७।४ (सप्तगुराङ्गिरसः । इन्द्रो वैकुण्ठः)
धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
.. वृषणं ।
(अग्निः १४००) ८।६०।१२ (भर्ग. प्रागाथः। अग्निः)
येन वंसाम पृतनासु शर्धतः ।
[१८७९] ६।१९।९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
इन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ।
(२०२७) ६।३५।२ (नरो भरद्वाजः । इन्द्रः)
[१८८१] ६।१९।११ = (१४१८) ३।४७।५
[१८८८] ६।२०।५ = (१६००) ४।२८।२
[१८८९] ६।२०।६ = (१६८९) ५।३०।८
[१८९३] ६।२०।१० = (१०७०) १।१७४।२
[१८९५] ६।२०।१२ = (१०७७) १।१७४।९
[१९०५] ६।२१।१० जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
६।५०।१५ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवा)
भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
[१९०८] ६।२२।२ = (अग्निः ९७९) ६।५।१ (भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्नि)
[१९२०] ६।२३।३ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमम् ।
... ... कीरये ।
(२०५०) ६।४४।१५ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
पाता .. । ... कारुधायाः ।

[१९२०] ६।२३।३ दाता वसु **स्तुवते कीरये** चित् ।
(३३२५) ७।९७।१० धत्तं रयिं **स्तुवते कीरये** चित् ।
[१९२४] ६।२३।७ = (१४५५) ३।५३।३
[१९२६] ६।२३।९ = (११५९) २।१४।१०
[१९३६] ६।२४।९ = (३३३८) ५।३०।१३
[१९४१] ६।२५।४ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
तोके वा गोषु तनये यदप्सु ।
६।६६।८ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । मरुतः)
. यमप्सु ।
[१९४६] ६।२५।९ = (१०९५) १।१७७।५
["] ६।२५।९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्र)
एवा नः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा **उत त इन्द्र नूनम्** ।
(२६७८) १०।८९।१७ (रेणुर्वैश्वामित्रः । इन्द्र)
एवा ते ।
गृणन्तो विश्वामित्रा **उत** ... ।
[१९४८] ६।२६।२ = (अग्निः ९९९) ६।१०।६ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
[१९४९] ६।२६।३ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
अतिथिग्वाय शस्य करिष्यन् ।
(२१४७) ७।१९।८ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
[१९५०] ६।२६।४ = (७४३) १।३३।१४
[१९५५-५६] ६।२७।१-२ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्र)
किमस्य मदे किम्वस्य **पीताविन्द्रः** किमस्य **सख्ये चकार** ।
रणा वा ये निषदि किं ते **अस्य पुरा विविद्रे** किमु नूतनास ॥१
सदस्य सद्वस्य ... सदस्य ... ।
... सन् सदु ... ॥२॥
[१९५७] ६।२७।३ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
नहि **नु ते महिमनः समस्य** ।
(२६१०) १०।५४।३ (बृहदुक्थो वामदेव्यः । इन्द्रः)
क उ **नु ते महिमनः समस्य** ।
[१९६४] ६।२९।३ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्र)
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्व१र्ण नृतविषिरो बभूथ ।
१०।१२३।७ (वेनो भार्गवः । वेनः)
स्व१र्ण नाम जनत प्रियाणि ।
[१९७१] ६।३०।४=(१२९१) ३।३२।११
[१९७२] ६।३०।५ = (७१८) १।३२।४
[२००९] ६।३१।४ = (१६२५) ४।३०।२०
[२०११] ६।३२।१ मंहि **वीराय तवसे तुराय** ।
६।४९।१२ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवाः)
प्र **वीराय** प्र **तवसे तुराय** ।
[२०१४] ६।३२।४ = (१५५७) ४।२२।३
[२०१७] ६।३३।२ (शुनहोत्रो भारद्वाजः । इन्द्रः)
त्वोत **इत्सनिता वाजमर्वा** ।
७।५६।२३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मरुत)
मरुद्भिरि**त्सनिता वाजमर्वा** ।
[२०२०] ६।३३।५ (शुनहोत्रो भारद्वाज. । इन्द्रः)
नूनं न इन्द्रः . ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन् ।
(३१६८) ६।६८।८ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य. । इन्द्रावरुणौ)
नू न इन्द्र ... ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धो ।
[२०३४] ६।३६।४ = (१४१०) ३।४६।२
[१९९१] ६।४०।४ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । इन्द्रः)
याहि ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ।
(२२१४) ७।२९।२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । इन्द्र)
याहि ।
उप— ।
[१९९२] ६।४०।५ = ४।३४।७ (वामदेवो गौतमः । ऋभवः)
[१९९५] ६।४१।३ = (७३४) १।३३।५
[१९९९] ६।४२।१ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । इन्द्रः)
सोमेभिः सोमपातमम् ।
(३०७) ८।१२।२० (पर्वत. काण्वः । इन्द्र)
[२००१-०५] ६।४३।१-४ **अयं स सोम इन्द्र ते सुत. पिब** ।
[२०३६-३८] ६।४४।१-३ **सोमः सुत. स इन्द्र ते**ऽस्ति **स्वधापते मदः** ।
[२०४०] ६।४४।५ = (२०४३) ५।८६।४
["] ६।४४।५ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ।
(२४४१) ८।९३।१२ (सुकक्ष आङ्गिरसः । इन्द्रः)
देवी शुष्मं सपर्यतः ।
रोदसी ।
[२०४४] ६।४४।९ = १।११०।९ (कुत्स आङ्गिरसः । ऋभवः)
[२०४५] ६।४४।१० शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्र)
किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ।
(६६३) ८।८०।३ (एकद्यूर्नौधस. । इन्द्र)
किमङ्ग रध्रचोदनः ।
[२०४६] ६।४४।११ = (१४३८) ३।५१।५

[२०४९] ६।४४।१४ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
इन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान ।
सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ।
(२१८२) ७।२३।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
इन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ।
(२०३) ८।३२।२४ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः)
सोमं वीराय शिप्रिणे ।
[२०५०] ६।४४।१५ = (१९२०) ६।२३।३
["] ६।४४।१५ = (१४९०) ४।१७।३
[२०५१] ६।४४।१६ = २।३३।२ (गृत्समदः शौनक । रुद्रः)
[२०५२] ६।४४।१७ एना मन्दानो जहि शूर शत्रून् ।
(२७३५) १०।११६।१ हर्षस्व हन्तवे शूर शत्रून् ।
[२०५३] ६।४४।१८ = (८३१) १।१०२।४
["] ६।४४।१८ = (९६७) १।१००।११
[२०५४] ६।४४।१९ = (१३९६) ३।४३।६
[२०५५] ६।४४।२० घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः ।
१०।६८।१ (अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पतिः)
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तः ।
[२०५६] ६।४४।२१ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
. वराय ॥
(अग्निः १७९५) ७।५।२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वैश्वानरोऽग्निः)
नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
. . वरेण ।
[२०५८] ६।४४।२३ अयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
(२६१३) १०।५४।६ यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तः
[२०६२] ६।४५।३ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।
(३०८) ८।१२।२१ (पर्वतः काण्वः । इन्द्रः)
(३१०९) ८।४०।९ (नाभाकः काण्वः । इन्द्राग्नी)
पूर्वीरुतः प्रशस्तयः ।
[२०६७] ६।४५।८= (१०८७) १।१७६।३
[२०६९] ६।४५।१०= (६९३) १।२९।२
["] ६।४५।१० (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
तम् वाजानां पते ।
अहूमहि श्रवस्यवः ।
(१८०७) ८।२४।१८ (विश्वमना वैयश्वः । इन्द्रः)
तं ... वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।
[२०७६] ६।४५।१७ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
स त्वं न इन्द्र मृळय ।
(६६२) ८।८०।१ (एकद्यूर्नौधसः । इन्द्रः)
[२०७९] ६।४५।२०= (अग्निः १०६१) ६।१६।२०
(भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः)
[२०८१] ६।४५।२२ पुरुहूताय सत्वने ।
(४६३) ८।४५।२१ पुरुनृम्णाय सत्वने ।
[२०८४] ६।४५।२५ इमा उ त्वा शतक्रतो ।
(२४०८) ८।९२।१२ वयमु त्वा शतक्रतो ।
["] ६।४५।२५=(१३७७) ३।४१।५ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
... णोनुवुर्गिरः ।
इन्द्र वत्सं न मातरः ।
[२०८६] ६।४५।२७= (१३७८) ३।४१।६
[२०८७] ६।४५।२८ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
वत्सं गावो न धेनवः ।
९।१२।२ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
गावो वत्सं न मातरः ।
[२०८८] ६।४५।२९= (१५) १।५।२
[२०८९] ६।४५।३० (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
अस्माकं भूतु ..स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
८।५।१८ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
अस्माकं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
. भूतु ।
[२०९१] ६।४६।३ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
इन्द्र तं हूमहे वयम् ।
(५०९) ८।५१ (वाल० ३)।५ (श्रुष्टिगुः काण्वः । इन्द्रः)
["] ६।४६।३=(अग्निः ८३४) ५।९।७ (गय आत्रेयः । अग्निः)
[२०९३] ६।४६।४ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
बाधसे जनान् ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने ।
(२२५९) ७।३२।२५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
णुदस्व ... अमित्रान् ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने ।
[२०९६] ६।४६।७ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ कृष्टिषु ।
(२६६) ८।६।२४ (वत्सः काण्वः । इन्द्रः)
यदिन्द्र नाहुषीष्वा ।
... विक्षु ।
["] ६।४६।७ = (१७२७) ५।३५।२
[२०९८] ६।४६।९ छर्दियच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च ।
९।३२।६ (श्यावाश्व आत्रेयः । पवमानः सोमः)
मघवद्भ्यश्च मह्यं च ।

[११०५] ६।४७।७ (गर्गो भारद्वाजः । इन्द्रः)
प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
(अग्निः १५९७) १०।४५।९ (वत्सप्रिर्भालन्दनः । अग्निः)
प्र त नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
(अग्निः १४१४) ८।७१।६ सुदीतिः पुरुमीळ्हावाङ्गिरसौ। तयोर्वान्यतरः । अग्निः)
प्र णो नय वस्यो अच्छ ।
[१११०] ६।४७।११ (गर्गो भारद्वाजः । इन्द्रः)
(२७७६) १०।१३१।६ (सुकीर्तिः काक्षीवतः । इन्द्रः)
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥
[”] ६।४७।१२=(२७७६) १०।१३१।६=(अग्नि ६४६)
४।१।२० (वामदेवो गौतम अग्निः)
[”] ६।४७।१२ = (२७७६) १०।१३१।६ = ४।५१।१०
(वामदेवो गौतम. । उषाः)

[११११] ६।४७।१३=(२७७७)१०।१३१।७=(अग्निः ४६७)
३।१।२१ (विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः)
[”] ६।४७।१३ (गर्गो भारद्वाज. । इन्द्रः) =
(२७७७) १०।१३१।७ (सुकीर्ति. काक्षीवतः इन्द्रः)
तस्य वय सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इंद्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोत ।
७।५८।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मरुतः)
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत ।
१०।७७।६ (स्यूमरश्मिर्भार्गवः । मरुत)
आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोत ।
[११२७] ६।४७।२० = १।९१।२३ (गोतमो राहूगण. । सोमः)
६।४७।२८ (गर्गो भारद्वाजः । रथः)
देव रथ **प्रति हव्या गृभाय ।**
१।९१।४ (गोतमो राहूगण. । सोमः)

ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलम् ।

[११३०] ७।१८।१२ त्वायन्तो ये **अमदन्ननु त्वा ।**
(७७४) १।५१।१५ (सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः)
विश्वे देवासो **अमदन्ननु त्वा ।**
[११३८] ७।१८।२० = (७८९) १।५४।४
(८४५) १।१०३।७ (कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्रः)
[११४३] ७।१९।४ भूरीणि **वृत्रा हर्यश्व हंसि ।**
(११७२) ७।२२।२ येन **वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।**
[”] ७।१९।४ = (१६२६) ४।३०।२१
[११४७] ७।१९।८ = (११४९) ६।२६।३
[११५३] ७।२०।३ = (१८५७) ६।१८।२
[”] ७।२०।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
व्यास **इन्द्रः पृतनाः स्वोजा ।**
(२५२२) १०।२९।८ (वसुक्र ऐन्द्रः । इंद्रः)
व्यानळिन्द्रः **पृतनाः स्वोजाः ।**
[११६०] ७।२०।१० = (११७०) ७।२१।१० (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः
[११६३] ७।२१।३ = (११०२) २।११।२
[११६४] ७।२१।४ = (१४७२) ४।१६।६
[११७०] ७।२१।१० = (११६०) ७।२०।१०
[११७२] ७।२२।२ =(११४३) ७।१९।४

[११७९] ७।२२।९ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । इन्द्रः)
अस्मे त सन्तु सख्या शिवानि ।
(२४८७) १०।२३।७ (विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः । इन्द्र.)
[११८२] ७।२३।२ = (२०४९) ६।४४।१४
[११८३] ७।२३।४ = (१३१२) ३।३५।१
[११८४] ७।२३।५ = (११९६) २।१८।७
[११८५] ७।२३।६ **यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ।**
९।९७।३,६ (इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः । पवमानः सोम)
[”] ७।२३।६ = ६।५०।१५ (ऋजिश्वा भारद्वाज । विश्वेदेवाः)
[”] ७।२३।६ = १।१९०।८ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । बृहस्पतिः)
[११८६] ७।२४।१ = (८४७) १।१०४।१
[११८७] ७।२४।२ = (१०९३) १।१७७।३
[११८८] ७।२४।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन् ।
८।७९।४ (कृत्नुर्भार्गवः । सोम.)
दिव आ ।
[११८९] ७।२४।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । इन्द्र.)
आ नो विश्वाभिरूतिभिः ।
८।८।१ = ८।८।१८ (सध्वंसः काण्व. । अश्विनौ)
आ वां विश्वाभिरूतिभिः ।

८।८७।३ (कृष्ण आङ्गिरसो द्युम्नीको वा वासिष्ठः प्रियमेध आङ्गिरसो वा । अश्विनौ)
आवां विश्वाभिरूतिभिः ।
[२१९१] ७।२४।६ = (२१९७) ७।२५।६
(वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । इन्द्रः)
एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।
[२१९४] ७।२५।३ = (१५६३) ४।२२।९
[२१९७] ७।२५।६ = (२१९१) ७।२४।६
[२२०१] ७।२६।५ = (१०४१) १।६७।१
[२२१२] ७।२८।५ = (२२१७) ७।२९।५ =
(२२२२) ७।३०।५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । इन्द्रः)
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
[२२१३] ७।२९।१ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
अयं सोम इन्द्र तुभ्य सुन्वे ।
९।८८।१ (उशना काव्यः । पवमानः सोमः)
["] ७।२९।१ = (१४३०) ३।५०।२
[२२१४] ७।२९।२ = (१३९३) ३।४३।३
["] ७।२९।२ = (११९६) २।१८।७
["] ७।२९।२ = (१९९१) ६।४०।४
[२२१७] ७।२९।५ = (२२१२) ७।२८।५ = (२२२२) ७।३०।५
[२२२१] ७।३०।४ = (१७२१) ५।३३।५
[२२२२] ७।३०।५ = (२२१२) ७।२८।५ = (२२१७) ७।२९।५
[२२२६] ७।३१।४ = (१३७९) ३।४१।७
[२२३४] ७।३१।१२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
इन्द्र वाणीरनुत्तमन्युमेव ।
(३०९) ८।१२।२२ (पर्वतः काण्वः । इन्द्रः)
इन्द्र वाणीरनूषता समोजसे ।
[२२३६] ७।३२।२ इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा ।
(२६०७) १०।५०।७ ये ते विप्र ब्रह्मकृतः ... ।
[२२३८] ७।३२।४ = (१८) १।५।५
[२२४०] ७।३२।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
सुनोत्या च धावति ।
८।३१।५ (मनुर्वैवस्वतः । विश्वेदेवाः)
सुनुत आ च धावतः ।
[२२४२] ७।३२।८ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । इन्द्रः)
सुनोता ... सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
९।३०।६ (बिन्दुराङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
९।५१।२ (उचथ्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
... सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
. . . . सुनोता ... . ।
[२२४४] ७।३२।१० = १।८६।३ (गोतमो राहूगण । मरुतः)
[२२४५] ७।३२।११ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्र)
अस्माकं बोध्यविता रथानाम् ।
१०।१०३।४ (अप्रतिरथ ऐन्द्रः । बृहस्पतिः)
अस्माकमेध्यविता रथानाम् ।
[२२५६] ७।३२।२२ अभि त्वा शूर नोनुमः ।
.... इन्द्र ... ।
(१३०) ८।२२।५ अभि त्वां इन्द्र नोनुमः ।
[२२५७] ७।३२।२३ = (९२०) १।८१।५
[२२५९] ७।३२।२५ अमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
६।४८।१५ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । मरुतः)
करत्सुवेदा नो वसू करत् ।
[२२७८] ७।९७।१ नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
१।१५४।५ (दीर्घतमा औचथ्यः । विष्णुः)
नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
[२२७९] ७।९८।१ जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
(अग्निः १७११) १०।१८७।१ (वत्स आग्नेयः । अग्निः)
वृषभाय क्षितीनाम् ।
[२२८१] ७।९८।३ = (अग्निः १७२१) १।५९।५ (नोधा गौतमः वैश्वानरोऽग्निः)
[२२८३] ७।९८।५ = (१६९८) ५।३१।६
[३३२५] ७।९८।१० = (३३२५) ७।९७।१०
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्त रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।
[२२८६] ७।१०४।१६ = (१७११) ५।३२।७
[२२८७] ७।१०४।१९ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्ताद् ।
(अग्नि १८४८) १०।८७।२१ (पायुर्भारद्वाजः । रक्षोहाग्नि)
पश्चात्पुरस्तादधरादुदक्तात् ।
[२२८८, ३२९७] ७।१०४।२० नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ।
(३३०२) ७।१०४।२५ अशनिं यातुमद्भ्यः ।

ऋग्वेदस्याष्टमं मण्डलम् ।

[८९] ८।१।३ (मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ । इन्द्रः)
नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं .. ।
(३८०) ८।१५।१२ (गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्रः)
नाना ... अस्माकेभिः ..... स्वर्जय ।

(११९५) ८।६८।५ (प्रियमेध आङ्गिरसः ।इन्द्रः)
स्वर्मीळ्हेषु ।
नाना ... ।
[९०] ८।१।४ (मेधातिथि–मेध्यातिथी काण्वौ । इन्द्र)
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ।
(अग्निः १४०६) ८।६०।१८ (भर्गः प्रागाथः । अग्निः)
इषण्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं — ।
[९८] ८।१।११ (मेधातिथि–मेध्यातिथी काण्वौ इन्द्रः)
इष्कर्ता विहृतं पुनः ।
८।२०।२६ (सोभरिः काण्वः । मरुत)
[१०३] ८।१।१७ सोता हि सोममद्रिभिः ।
९।३४।३ (त्रित आप्त्य । पवमान सोम)
सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ।
[१०८] ८।१।२२ = (अग्नि. १०७) १।४५।८
(प्रस्कण्व काण्व । अग्नि)
[११०] ८।१।२४ = (३२२२) ४।४६।३ (वामदेवो गोतम ।
इन्द्रवायू)
[१११] ८।१।२५ (मेधातिथि–मेध्यातिथी काण्वौ । इन्द्र)
विवक्षणस्य पीतये ।
८।३५।२३ (श्यावाश्व आत्रेय । अश्विनौ)
[११२] ८।१।२६ = (१४४३) ३।५१।१०
[१३०] ८।२।१५ = (८८३) १।६२।१२
[१४७] ८।२।३२ (मेधातिथि काण्व , प्रियमेधश्चाङ्गिरसः। इन्द्र)
इन्द्रः पुरू पुरुहूतः ।
महान् महीभिः शचीभिः ।
(३८८) ८।१६।७ (इरिम्बिठिः काण्वः । इन्द्र)
[१५६] ८।३।१ (मेध्यातिथि काण्वः । इन्द्र)
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे ।
(५३५) ८।५४ (वाल० ६) । ५ (मातरिश्वा काण्वः ।
इन्द्र)
तेन नो बोधि— ।
[१५९] ८।३।४ समुद्र इव पप्रथे ।
१०।६२।९(नाभानेदिष्ठो मानव ।सावर्णेर्दानस्तुति)
वि सिन्धुरिव पप्रथे ।
[१६०] ८।३।५ = (८०) १।१६।३
[१६१] ८।३।६ इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे ।
(३१५-१७) ८।१२।२८-३० आदित्ते विश्वा– ।
९।८६।३० (पृश्नयोऽजा । पवमान. सोम)
तुभ्येमा विश्वा— ।
१०।५६।५ (बृहदुक्थो वामदेव्यः । विश्वेदेवाः)
तन्पु विश्वा भुवना नि येमिरे ।
[१६२] ८।३।७ = (अग्निः २४४६) १।१९।९
(मेधातिथि काण्व । अग्निर्मरुतश्च)
[’] ८।३।७ (मेध्यातिथिः काण्व. इन्द्र)
समीचीनास ऋभव समस्वरन् ।
(३२१) ८।१२।३२ (पर्वत. काण्व । इन्द्र)
समीचीनासो अस्वरन् ।
[१६३] ८।३।८ (मेध्यातिथिः काण्वः । इन्द्रः)
अनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
(३७४) ८।१५।६ (गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्र)
[१६७] ८।३।१२ = (११४५) २।१३।९
[१७०] ८।३।१५ (मेध्यातिथि. काण्व. । इन्द्र)
गिर. स्तोमास ईरते ।
वाजयन्तो रथाइव ।
(अग्निः १३१०) ८।४३।१ (विरूप आङ्गिरस । अग्नि)
गिरः— ।
९।६७।१७ (जमदग्निर्भार्गव. । पवमान सोम.)
वाजयन्तो— ।
[१७२] ८।३।१७ (मेध्यातिथि काण्व. । इन्द्र)
युक्ष्वा..... हरी . परावतः ।
उग्र ऋष्वेभिरा गहि ।
(४९१) ८।४९ (वाल० १)। ७ (प्रस्कण्व काण्व. । इन्द्र)
यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि ।
..महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ।
(५०१) ८।५० (वाल० २)।७ (पुष्टिगु काण्व । इन्द्र)
यद्ध नून परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि ।
युजान हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ।
[१७५] ८।३।२० (मेध्यातिथि. काण्व. । इन्द्रः)
कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ।
(२८१) ८।२२।३ (मेधातिथि काण्व. । इन्द्र)
[२२९] ८।४।१ (देवातिथिः काण्व । इन्द्र.)
यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
(६०१) ८।६५।१ (प्रगाथ काण्व. । इन्द्र)
[२३०] ८।४।२ इन्द्र मादयसे सचा ।
(५१५) ८।५२ (वाल० ४) । २ आयौ मादयसे सचा ।
[२४०] ८।४।१२ (देवातिथि. काण्वः । इन्द्रः)
यत्रा सोमस्य तृम्पसि ।
तस्येहि प्र द्रवा पिब ।
(५१८) ८।५३ (वाल० ५) । ४ (मेध्य. काण्वः । इन्द्र.)
यत्रा— ।

(५९८) ८।६४।१० (प्रगाथः काण्वः । इन्द्र)
तस्यहि— ।
[२४२]८।८।१४अर्वाञ्च त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप
१।४७।८ (प्रस्कण्वः काण्व. । अश्विनौ)
अर्वाञ्चा वा सप्तयोऽध्वरश्रियो ।
[२४३] ८।६।१ (वत्स काण्वः । इन्द्रः)
पर्जन्यो वृष्टिमाँइव ।
९।२।९ (मेधातिथि काण्व । पवमान. सोम)
[२४५] ८।६।३ = (अग्नि ९६) १।४४।११
(प्रस्कण्व काण्व. । अग्नि)
[२४६] ८।६।४ (वत्स काण्व । इन्द्र)
समुद्रायेव सिन्धवः ।
(अग्नि १३६७)८।४४।२५ (विरूप आङ्गिरसः । अग्नि)
[२४८] ८।६।६ = (९०५) १।८०।६
[२५१] ८।६।९ (वत्स काण्व. । इन्द्र)
रयिं गोमन्तमश्विनम् ।
९।६२।१२ (जमदग्निर्भार्गव । पवमान सोम)
९।६३।१२ (निध्रुवि काश्यप । पवमान. सोम)
[२५५] ८।६।१३ (वत्स काण्व । इन्द्र)
वृत्रं पर्वशो रुजन् ।
८।७।२३ (पुनर्वत्स काण्व. । मरुत)
वि वृत्रं पर्वशो ययु ।
[२५६] ८।६।१४ (वत्स काण्व । इन्द्र)
वृथा ह्युग्र शृण्विषे ।
(२१९) ८।३३।१० (मेधातिथि. काण्व. । इन्द्र)
वृथा ह्युग्र शृण्विषे परावति ।
[२५७] ८।६।१५ (वत्स काण्व. । इन्द्र)
यत्र नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।
विव्यचन्त. भूमय ।
(३११) ८।१२।२४ (पर्वत काण्व । इन्द्र)
विविक्तो रोदसा नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।
[२५९] ८।६।१७ = (१४६४) ३।५३।१२
[२६१] ८।६।१९ घृत दुहत आशिरम् ।
१।१३४।६ (परुच्छेपो दैवोदासि. । वायु)
घृत दुहत आशिरम् ।
[२६३] ८।६।२१ कण्वा उक्थेन वावृधु ।
(२८५) ८।६।४३ कण्वा उक्थेन. ।
[२६५] ८।६।२३ (वत्स काण्व. । इन्द्र)
आ न इन्द्र महीमिषम् ।

९।६५।१३ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा ।
पवमानः सोम)
आ न इन्दो महीमिषम् ।
[२६६] ८।६।२४ = (अग्नि ८१०) ५।६।१०
(वसुश्रुत आत्रेय । अग्नि)
["] ८।६।२४ = (२०९६) ६।४६।७
[२६७] ८।६।२५ (वत्सः काण्व । इन्द्र.)
यदिन्द्र मृळयासि न ।
(४७१) ८।४५।३३ (त्रिशोक काण्व. । इन्द्र)
[२६८] ८।६।२६ (वत्स काण्व. । इन्द्र)
यदङ्ग तविषीयस ।
८।७।२ (पुनर्वत्स. काण्व । मरुत)
यदङ्ग तविषीयवो ।
[२७१] ८।६।२९ चिकित्वाँ अव पश्यति ।
१।२५।११ (शुन शेप आजीगर्तिः । वरुण)
चिकित्वाँ अभि पश्यति ।
[२७४] ८।६।३२ इमा म इन्द्र सुष्टुतिम् ।
(३१८) ८।१२।३१ इमां त इन्द्र...।
[२७६] ८।६।३४ (वत्स काण्वः । इन्द्रः)
आपो न प्रवता यतीः ।
(३९८) ८।१३।८ (नारदः काण्व । इन्द्र)
९।२४।२ (असितः काश्यपो देवलो वा ।
पवमानः सोमः)
[२७७] ८।६।३५ (वत्सः काण्वः । इन्द्र)
इन्द्रमुक्थानि वावृधु समुद्रमिव सिन्धवः ।
(२३४१) ८।९५।६ (तिरश्चीराङ्गिरस । इन्द्र.)
इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
(२४१८) ८।९२।२२ (श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः ।
इन्द्र.)
समुद्रमिव सिन्धवः ।
९।१०८।१६ (शक्तिर्वासिष्ठः । पवमान सोमः)
समुद्रमिव सिन्धव. ।
[२७८] ८।६।३६ = (९४०) १।८४।४
[२७९] ८।६।३७ = (१७४१) ५।३५।६
["] ८।६।३७ = ३।५९।९ (विश्वामित्रो गाथिनः । मित्रः)
["] ८।६।३७ = (१७४१)५।३५।६ =
(४२८) ८।३४।४ हवन्ते वाजसातये ।
(३३३०) ६।५७।१ हुवेम वाजसातये ।
८।९।१३ (शशकर्णः काण्वः । अश्विनौ)
हुवेय वाजसातये ।

[२८०] ८।६।३८ (वत्सः काण्वः । इन्द्र)
अनु त्वा रोदसी उभे ।
(६३८) ८।७६।११ (कुरुसुतिः काण्वः । इन्द्र)
[२८१] ८।६।३९ मन्दस्वा सु स्वर्णरे ।
(६०१) ८।६५।२ मादयासे स्वर्णरे ।
(अग्निः२४४७) ८।१०३।१४ (सोभरिः काण्व । अग्नामरुतः)
मादयस्व स्वर्णरे ।
[२८३] ८।६।४१ ईशान ओजसा ।
(३१०५) ८।४०।५ इन्द्र ईशान ओजसा ।
[२८७] ८।६।४५ (वत्स काण्व । इन्द्र) =
(२०९) ८।३२।३० (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्र)
अर्वाञ्च त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी ।
सोमपेयाय वक्षतः ।
(३६५) ८।१४।१२ (गोषुक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्रः)
[२९१] ८।१२।४= (३०४५) ५।८६।६
[२९२] ८।१२।५=(४४) १।८।७
["] ८।१२।५ (पर्वत. काण्वः । इन्द्र)
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ।
(१९१) ८।३२।१२ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः)
इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
(५५२) ८।६१।५ (भर्गः प्रागाथः । इन्द्रः)
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
(२७८७) १०।१३४।३ (मान्धाता यौवनाश्वः । इन्द्र)
शचीभि शक्र इन्द्र विश्वाभिरूतिभि ।
[२९५] ८।१२।८ यदि प्रवृद्ध सत्पते ।
(२४३४) ८।९३।५ यद्वा प्रवृद्ध सत्पते ।
[२९६] ८।१२।९ = (१०१८) १।१३०।८
[२९७] ८।१२।१० इयं त ऋत्वियावती ।
(६६७) ८।८०।७ इयं धीर्ऋत्वियावती ।
[२९८] ८।१२।११ (पर्वत काण्वः । इन्द्र)
ऋतुं पुनीत आनुषक् ।
(५३०) ८।५३ (वाल० ५) ।६ (मे य. काण्व । इंद्र)
ऋतु पुनत आनुषक् ।
[२९९] ८।१२।१२=(७९८) १।५५।२
[३०१] ८।१२।१४ उत स्वराजे अदिति ।
७।६६।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । आदित्यः)
["] ८।१२।१४ (पर्वत काण्वः । इन्द्रः)
पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत ।
(अग्निः १४१८) ८।७१।१० (सुदीति-पुरुमीळ्हावाङ्गिरसौ तयोर्वान्यतरः । अग्निः)

... ... पुरुप्रशस्तमूतये ।
[३०६] ८।१२।१९ (पर्वत काण्व । इन्द्रः)
देवदेवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्र गृणीषणि ।
८।२७।१३ (मनुर्वैवस्वत । विश्वेदेवाः)
. वोऽवसे देव देवमभिष्टये ।
गृणन्तो ।
[३०७] ८।१२।२० = (१९०९) ६।४२।२
[३०८] ८।१२।२१ = (२०६२) ६।४५।२
[३०९] ८।१२।२२ = (१३३८) ३।३७।५
["] ८।१२।२२ = (१०२१) १।१३२।१
["] ८।१२।२२ = (२२३४) ७।३१।१२
[३१०] ८।१२।२३ = (३०५५) ६।५९।१०
[३११] ८।१२।२४ = (२५७) ८।६।१५
[३१२] ८।१२।२५ = (३०९) ८।१२।२२
[३१२-३१४] ८।१२।२५-२७ आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ।
[३१३] ८।१२।२६ = (७६१) १।५२।२
[३१४] ८।१२।२७ = १।२२।१८(मेधातिथि काण्वः । विष्णु)
त्रीणि पदा वि चक्रमे ।
[३१५] ८।१२ २८ (पर्वतः काण्वः । इन्द्र)
वावृधाते दिवेदिवे ।
(५२६) ८।५३ (वाल० ५) ।२ (मे य. काण्व । इन्द्र)
वावृधानो दिवेदिवे ।
[३१५-१७] ८।१२।२८-३० आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ।
[३१८] ८।१२।३१ = (२७४) ८।६।३२
[३१९] ८।१२।३२ = (१६२) ८।३।७
[३२०] ८।१२।३३ = (अग्नि १७५५) ३।२६।३ (विश्वामित्रो गाथिन । वैश्वानरोऽग्नि)
सुवीर्यं स्वश्व्यं ।
[३२१] ८।१३।१ = (२९८) ८।१२।११
[३२४] ८।१३।४ (नारदः काण्व । इन्द्र.)
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ।
(३७३) ८।१५।५ (गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्रः)
[३२६] ८।१३।६ = २।५।४
[३२७] ८।१३।७ = (३०८०) ७।९४।२
[३२८] ८।१३।८ = (२७६) ८।६।३४
[३३०] ८।१३।१० = ८।५।५ (ब्रह्मातिथि· काण्व· । अश्विनौ)
गन्तारा दाशुषो गृहम् ।
[३३१] ८ १३।११ (नारदः काण्वः । इन्द्र.)
अश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।

❀

८।८७।५ (कृष्ण आंगिरसो, द्युम्नीको वा वासिष्ठः प्रियमेध आङ्गिरसो वा। अश्विनौ)

[३३०] ८।१३।१२ (नारद काण्व । इन्द्रः)

इन्द्र शविष्ठ सत्पते।

(२२९१) ८।६८।१ (प्रियमेध आङ्गिरस.। इन्द्रः)

["] ८।१३।१२ (३०४५) ५।८६।६

["] ८।१३।१२ = ७।८१।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। उषा)

श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम्।

[३३३] ८।१३।१३ = (१३९८) ३।४४।१

[३३४] ८।१३।१४ (नारदः काण्वः। इन्द्र.)

मत्स्वा सुतस्य गोमतः।

(२४२६) ८।९२।३० (श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः। इन्द्रः)

["] ८।१३।१४ = (अग्नि १९१८) १।१४२।१ (दीर्घतमा औचथ्य.। आप्रीसूक्तं [इध्म. समिद्धोऽग्निर्वा])

तन्तु तनुष्व पूर्व्यं।

[३३५] ८।१३।१५ (नारदः काण्वः। इन्द्र)

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्।

(९७९) ८।९७।४ (रेभः काश्यपः। इन्द्रः)

[३३७] ८।१३।१८ तमिद्विप्रा **अवस्यवः।**

९।१७।७ (असितः काश्यपो देवलो वा। पवमान सोमः)

धीभिर्विप्रा अवस्यवः।

९।६३।२० (निध्रुवि काश्यपः। पवमानः सोम)

[३३८] ८।१३।१८ (नारदः काण्व.। इन्द्रः)

(२४१७) ८।९२।२१ (श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः। इन्द्रः)

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत।

तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम्।

९।६१।१४ (अमहीयुराङ्गिरसः पवमानः सोम)

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो।

[३३९] ८।१३।१९ **शुचिः पावक** उच्यते सो **अद्भुतः।**

(अग्निः १९२०) १।१४२।३ (दीर्घतमा औचथ्य। आप्रीसूक्तं [नराशंसः])

शुचिः पावको अद्भुतः।

[३४५] ८।१३।२५ **धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्।**

८।७।३ (पुनर्वत्स काण्वः। मरुत)

धुक्षन्त ...।

[३४७] ८।१३।२७ (नारद काण्वः। इन्द्रः)

इह त्या सधमाद्या।

(२०८) ८।३२।२९ (मेधातिथिः काण्वः। इन्द्रः)

(२४५३) ८।९३।२४ (**सुकक्ष** आङ्गिरस। इन्द्रः)

[३५१] ८।१३।३१ (नारद कण्वः। इन्द्रः)

वृषायमिन्द्र ते **रथ** उतो ते **वृषणा हरी।**

वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः।

(२२०) ८।३३।११ (मेध्यातिथिः काण्वः। इन्द्रः)

वृषा रथो मघवन् वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो।

[३५२] ८।१३।३२ = (१७६६) ५।४०।२

[३५३] ८।१३।३३ = (१७६७) ५।४०।३

[३५६] ८।१४।३ = (अग्नि ९२४) ५।२६।५ (वसूयव आत्रेयाः। अग्निः)

[३५७] ८।१४।४ = (१६५२) ४।३२।८

[३५९] ८।१४।६ (गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। इन्द्रः)

ते वय विश्वा धनानि जिग्युषः।

ऊतिमिन्द्रा **वृणीमहे।**

९।६५।९ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा। पवमान. सोमः)

ते.... वयं विश्वा धनानि जिग्युषः।

सखित्वमा **वृणीमहे।**

[३६०] ८।१४।७ (गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। इन्द्र.)

व्य१न्तरिक्षमतिरन्।

(९८११) १०।१५३।३ (देवजामय इन्द्रमातर.। इन्द्रः)

व्य१न्तरिक्षमतिरः।

[३६५] ८।१४।१२ = (२८७) ८।६।४५

[३६९] ८।१५।१ (गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। इन्द्रः)

तम्वभि प्र गायत **पुरुहूतं पुरुष्टुतं।**

इन्द्रं ......॥

(२४०१) ८।९२।५ (श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः। इन्द्रः)

तम्वभि प्रार्चतेन्द्रं ।

(२३९८) ८।९२।२ **पुरुहूतं पुरुष्टुतं ... ...।**

इन्द्र ...।

[३७१] ८।१५।३ एको **वृत्राणि जिघ्नसे।**

(२३४४) ८।९५।९ शुद्धो **वृत्राणि जिघ्नसे।**

[३७३] ८।१५।५= (३२४) ८।१३।४

[३७४] ८।१५।६= (१६३) ८।३।८

[३८०] ८।१५।१२= (८९) ८।१।३

[३८१] ८।१५।१३=७।५५।१ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। वास्तोष्पतिः)

विश्वा रूपाण्याविशन्।

["] ८।१५।१३ (गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। इन्द्रः)

इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम्।

९।१११।३ (अनानतः पारुच्छेपिः। पवमानः सोमः)

इन्द्रं जैत्राय हर्षयन्।

[३८१] ८।१६।१= (अग्निः ५०१) ३।१०।१
(विश्वामित्रो गाथिनः । अग्नि)
(२७८५) १०।१३४।१ (मान्धाता यौवनाश्व । इन्द्रः)
सम्राजं चर्षणीनाम् ।
[३८८] ८।१६।७= (१४७) ८।२।३२
[३९१] ८।१६।११ (इरिम्बिठिः काण्वः । इन्द्रः)
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
(२३१६) ८।६९।१४ (प्रियमेध आङ्गिरस । इन्द्र)
[३९४] ८।१७।१ **एदं बर्हि सदो मम ।**
(अग्निः ५२९) ३।२४।३ (विश्वामित्रो गाथिनः । अग्नि.)
[३९५] ८।१७।२= (१३८१) ३।४२।९
[३९६] ८।१७।३ (इरिम्बिठि काण्वः । इन्द्रः)
सुतावन्तो हवामहे ।
(५१०) ८।५१(वाल० ३)।६ (पुष्टिगुः काण्व । इन्द्र·)
(५६१) ८।६१।१४ (भर्गः प्रागाथ· । इन्द्रः)
(२४५९) ८।९३।३० (सुकक्ष आङ्गिरसः । इन्द्रः)
[३९७] ८।१७।४ अस्माकं **सुष्टुतीरुप ।**
(९३८) १।८४।२ ऋषीणां च **स्तुतीरुप ।**
[४०१] ८।१७।८= ६।५६।२ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । पूषा)
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ।
[४०३] ८।१७।१०= (३५६) ८।१४।३=
(अग्निः ९२४) ५।२६।५ (वसूयव आत्रेयाः । अग्निः)
(३०७०) ६।६०।१५ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इंद्राग्नी)
[४०४] ८।१७।११ (इरिम्बिठि काण्व । इन्द्रः)
एहीमस्य द्रवा पिब ।
(६००) ८।६४।१२ (प्रगाथ काण्व । इन्द्र)
एहीमिन्द्र द्रवा पिब ।
[४०८] ८।१७।१५=(८०) १।१६।३
इन्द्रं सोमस्य पीतये ।
[४११] ८।२१।३= (१७६५) ५।४०।१
[४१२] ८।२१।४= १।१४।१ (मेधातिथिः काण्वः । विश्वेदेवाः)
[४१३] ८।२१।५= (२२५६) ७।३२।२२
[४१७] ८।२१।९= (७०५) १।३०।७
[४१९] ८।२१।११ (सोभरि· काण्व । इन्द्रः)
त्वया ह स्विद्युजा वयं ।
(अग्निः १४६५) ८।१०२।३ (प्रयोगो भार्गव पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा गृहपति-यविष्ठौ सहसः पुत्रौऽन्यतरो वा । अग्निः)
[४२१] ८।२१।१३= (८३५) १।१०२।८
[१७९०] ८।२४।१= (१४६५) ३।५३।१३

[१७९२] ८।२४।३ = (अग्निः २०) १।१२।११
(मेधातिथि काण्व· । अग्निः)
[१७९७] ८।२४।८ (विश्वमना वैयश्वः । इन्द्रः)
विद्याम शूर नव्यसः ।
वसो· .. ... ।
(५०३) ८।५०(वाल० २)।९ (पुष्टिगु काण्वः । इन्द्र)
वसो विद्याम ... ... ।
[१८०१] ८।२४।१२ = (३०७०) ६।६०।१५
[१८०७] ८।२४।१८ = (२०६९) ६।४५।१०
[१८०८] ८।२४।१९ (विश्वमना वैयश्वः । इन्द्र)
एतो न्विन्द्रं स्तवाम ।
(६७३) ८।८१।४ (कुसीदी काण्व । इन्द्रः)
(२३४१) ८।९५।७ (तिरश्चीराङ्गिरस. । इन्द्र.)
[१८१] ८।३२।२ (मेधातिथि काण्व. । इन्द्र)
वधीदुग्रो रिणन्नपः ।
९।१०९।२२ (अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरा । पवमान सोमः)
श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ।
[१८२] ८।३२।३ = (१७५) ८।३।२०
[१८६] ८।३२।७ = (१६५२) ४।३२।८
[१९१] ८।३२।१२ = (२९२) ८।१२।५
[१९२] ८।३२।१३ = (१३) १।४।१०
["] ८।३२।१३ = (१३) १।४।१०= (१७) १।५।४
[१९७] ८।३२।१८ = (१०४०) १।१३३।७
[२०१] ८।३२।२२ **धेना इन्द्रावचाकशत् ।**
(२५६२) १०।४३।६ जनाना **धेना अवचाकशद् वृषा ।**
[२०२] ८।३२।२३ = (३२२७) ४।४७।२
(वामदेवो गौतमः । इन्द्रवायू)
[२०३] ८।३२।२४ = (२०४९) ६।४४।१४
(शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
[२०६] ८।३२।२७ = १।३७।४ (कण्वो घौरः । मरुतः)
[२०८] ८।३२।२९ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः) =
(२४५३) ८।९३।२४ (सुकक्ष आङ्गिरसः । इन्द्रः)
इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या ।
वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥
["] ८।३२।२९ = (२४५३) ८।९३।२४
= (३४७) ८।१३।२७
[२०९] ८।३२।३० = (२८७) ८।६।४५
["] ८।३२।३० = (२८७) ८।६।४५
=(३६५) ८।१४।१२

[२१२] ८।३३।३ (मेध्यातिथिः काण्वः । इन्द्रः)
मक्षू गोमन्तमीमहे ।
(८९५) ८।८८।२ (नोधाः गौतमः । इन्द्रः)
[२१९] ८।३३।१० (मेध्यातिथिः काण्वः । इन्द्रः)
सत्यमित्था वृषेदसि ।
९।६४।२ (कश्यपो मारीचः । पवमानः सोम.)
सत्य वृषन वृषेदसि ।
[२२०] ८।३३।११ = (३५१) ८।१३।३१
[२२४] ८।३३।१५ (मेध्यातिथि काण्वः । इन्द्रः)
मदाय द्युक्ष सोमपा. ।
(६१८) ८।६६।३ (कलिः प्रागाथ । इन्द्र.)
[४२५-३९] ८।३४।१-१५ दिवो अमुष्य शासतो दिव यय दिवावसो ।
[४२८] ८।३४।४ = (१७४१) ५।३५।६
[४३१] ८।३४।७ (नीपातिथि. काण्व । इन्द्रः)
सहस्रोते शतामघ ।
९।६२।१४ (जमदग्निर्भार्गवः । पवमानः सोम.)
सहस्रोतिः शतामघो ।
[४३२] ८।३४।८ आ त्वा होता मनुर्हितः ।
(अग्नि' १९०९) १।१३।४ (मेधातिथि. काण्वः । आप्रीसूक्तं [टळ])
अग्नि होता ।
१।१४।११ (मेधातिथि. काण्व । विश्वेदेवाः)
त्वं होता ...।
(अग्निः१०५०)६।१६।९ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य. । अग्नि)
[४३५] ८।३४।११ आ नो याह्युपश्रुति ... ।
८।८।५ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
आ नो यातमुपश्रुति ।
[४३७] ८।३४।१३ (नीपातिथिः काण्व । इन्द्रः)
समुद्रस्याधि विष्टप ।
(९८०) ८।९७।५ (रेभः काश्यपः । इन्द्रः)
......विष्टपि।
९।१२।६(असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोम)
. . विष्टपि ।
९।१०७।१४ (सप्तर्षयः । पवमानः सोमः)
...विष्टपि मनीषिणो ।
[१७६९-७४] ८।३६।१-६ पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो, यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहान. पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ।
[१७७२] ८।३६।४ (श्यावाश्व आत्रेय । इन्द्र)
जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
९।९६।५ (प्रतर्दनो दैवोदासिः । पवमान' सोमः)
[१७७५] ८।३६।७ = (१७८२) ८।३७।७
(श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्रः)
श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा [८।३७।७ रेभतस्तथा]
शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि ।
[८।३७।७ क्षत्राणि] वर्धयन् ।
(३०९८) ८।३८।८ (श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्राग्नी)
श्यावाश्वस्य सुन्वतो ।
[१७७६-८१] ८।३७।१-६ इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः । माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः।
[१७८२] ८।३७।७ = (१७७५) ८।३६।७
["] ८।३७।७ = (१७७५)८।३६।७
= (३०९८) ८।३८।८
[४४६] ८।४५।४ (त्रिशोक काण्वः । इन्द्र)
जात पृच्छद्वि मातरम् ।
क उग्राः के ह शृण्विरे ।
(६४०) ८।७७।१ (कुरुसुति. काण्वः । इन्द्रः)
जज्ञानो......वि पृच्छदिति मातरम् ।
क ।
[४४९] ८।४५।७ = (७०) १।११।१
[४५२] ८।४५।१० (त्रिशोकः काण्वः । इन्द्र')
अरं ते शक्र दावने ।
(२४२२) ८।९२।२६ (सुतकक्ष सुकक्षो वा आङ्गिरस । इन्द्रः)
[४५३] ८।४५।११ शनैश्चिद्यन्तो अद्रिवः ।
(५५१) ८।६१।४ मक्षू चिद्यन्तो...।
[४५५] ८।४५।१३ = (१३८७) ३।४२।६
[४५७] ८।४५।१५ = (९२४) १।८१।९
[४६३] ८।४५।२१ स्तोत्रमिन्द्राय गायत ।
(२३८४) ८।८९।१ बृहदिन्द्राय गायत ।
["] ८।४५।२१ = (२०८१) ६।४५।२२
[४७१] ८।४५।२९ = (१५) १।५।२
[४७५] ८।४५।३३ = (२६७) ८।६।२५
[४८२-८४] ८।४५।४०-४२ वसु स्पार्हं तदा भर ।
[१८१९] ८।४६।३ (वशोऽश्व्य. । इन्द्रः)
शतमूते शतक्रतो ।
गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ।
(२३८३) ८।९९।८ (नृमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः)
शतमूतिं शतक्रतुम् ।

(५३३) ८।५४ (वाल० ६)।१ (मातरिश्वा काण्व । इन्द्रः)
गीर्भिः . ... ।
[१८२२] ८।४६।६ = ६।५४।८ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। पूषा)
ईशान राय ईमहे ।
[१८२४] ८।४६।८ (वशोऽश्व्य । इन्द्रः)
यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः ।
९।६१।१९ (अमहीयुराङ्गिरसः। पवमानः सोम)
यस्ते मदो वरेण्य ।
(२४१३) ८।९२।१७ (श्रुतकक्ष सुकक्षो वा आङ्गिरसः। इन्द्रः)
यस्ते य इन्द्रवृत्रहन्तम ।
य मद ।
[१८२५] ८।४६।९ (वशोऽश्व्यः। इन्द्र)
गमेम गोमति व्रजे ।
(५०९) ८।५१ (वाल० ३)।५ (श्रुष्टिगु काण्व. । इन्द्रः)
[१८२९] ८।४६।१३ पुरः स्थाता मघवा वृत्रहा भुवत् ।
(२४८२) १०।२३।२ इन्द्रो मघैर्मघवा ।
[१८३६] ८।४६।२० = ८।२२।२ (सोभरिः काण्वः । अश्विनौ)
भुज्यु वाजेषु पूर्व्यम् ।
[४८५] ८।४९(वाल० १)।१ (प्रस्कण्व काण्व । इन्द्रः)
अभि प्र ... इन्द्रमर्च यथा विदे ।
(२३०७) ८।६९।४ (प्रियमेध आङ्गिरस । इन्द्र)
अभि प्र ...इन्द्रमर्च यथा विदे ।
[४८९] ८।४९(वाल० १)।५ (प्रस्कण्वः काण्व । इन्द्र)
आ न. धियानो अश्वो ।
यं ते स्वदावन्त्स्वदयन्ति धेनव ।
(४९९) ८।५०(वाल० २)।५ (पुष्टिगुः काण्व. । इन्द्र)
आ नः ..... इयानो अर्यो ।
यं ते स्वदावन्त्स्वदन्ति गूर्तय ।
[४९०] ८।४९।(वाल० १)।६ (प्रस्कण्वः काण्व । इन्द्र.)
उग्रं वीरं ... विभूतिम् ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते ।
(५००) ८।५०(वाल० २)।६ (पुष्टिगुः काण्व. । इन्द्रः)
वीरमुग्र ... . . विभूतिम् ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना ।
[४९१] ८।४९(वाल० १)।७ = (१७२) ८।३।१७
[४९३] ८।४९(वाल० १)।९ (प्रस्कण्व काण्व । इन्द्रः)
एतावतस्त ...... ।
यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथि यथा ।
(५०३) ८।५०(वाल० २)९ (पुष्टिगुः काण्व । इन्द्रः)
एतावतस्ते ... ।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा ।
[४९४] ८।४९(वाल० १)।१० (प्रस्कण्व. काण्वः । इन्द्र.)
यथा कण्वे मघवन् त्रसदस्यवि ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनि ... गोमद् ।
(५०४)८।५०।(वाल० २)।१० (पुष्टिगुः काण्वः। इन्द्र.)
यथा कण्वे मघवन् मेधे अध्वरे ।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो गोत्र ।
[४९९] ८।५०(वाल० २)।५ = (४८९) ८।४९(वाल० १)।५
[५००] ८।५०(वाल० २)।६ = (४९०) ८।४९(वाल० १)।६
[५०१] ८।५०(वाल० २)।७= (१७२) ८।३।१७
[५०३] ८।५० (वाल० २) । ९ = (१७९७) ८।२४।८
["] ८।५० (वाल० २) । ९=
(४९३) ८।४९ (वाल० १) । ९
[५०४] ८।५० (वाल० २) । १० =
(४९४) ८।४९ (वाल० १) । १०
[५०५] ८।५१ (वाल० ३) । १ (श्रुष्टिगु. काण्व. । इन्द्रः)
यथा मनौ सावरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम् ।
(५१५) ८।५२ (वाल० ४) । १ (आयुः काण्वः। इन्द्रः)
यथा मनौ विवस्वति सोम शक्रापिबः सुतम् ।
[५०९] ८।५१ (वाल० ३) । ५ = (२०९२) ६।४६।३
["] ८।५१ (वाल० ३) ५ = (१८२५) ८।४६।९
[५१०] ८।५१ (वाल० ३) । ६ (श्रुष्टिगु काण्वः । इन्द्रः)
यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ।
(५२०) ८।५२ (वाल० ४)। ६ (आयुः काण्वः । इन्द्रः)
यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति ।
(५६१) ८।६१।१४ (भर्गः प्रागाथः । इन्द्रः)
तं त्वा वयं......।
["] ८।५१ (वाल० ३) । ६ = (५६१)८।६१।१४
= (३९६) ८।१७।३
[५१५]८।५२(वा०ऽ० ४)।१यथा मनौ. .सोमं शक्रापिब सुतम्।
. .इन्द्र...सचा ।
(५०५) ८।५१ (वा०ऽ०३)।१ (श्रुष्टिगुः काण्वः। इन्द्रः)
यथा मनौ ..सोममिन्द्रापिबः सुतम् ।
मघवन् सचा ।
["] ८।५२ (वा०ऽ० ४) १ = (२३०) ८।४।१
[५१७] ८।५२ (वाल० ४)। ३

विष्णुस्त्रीणि पदा वि चक्रमे ।
१।२२।१८ (मेधातिथि काण्व । विष्णु)
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णु ।
[५१८] ८।५१।२ (वाल० ४)।४ जुहूमसि श्रवस्यवः ।
(४) १।४।१ जुहूमसि द्यविद्यवि ।
[५१९] ८।५२ (वाल० ४) । ५ (आयु: काण्वः । इन्द्र)
महाँ उग्र ईशानकृत् ।
(६०५) ८।६५।५ (प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः)
[५२०] ८।५२ (वाल० ४) । ६
यस्मै त्वं वसो दानाय महसे स रायस्पोषमिन्वति ।
(५१०) ८।५१ (वाल० ३) । ६
...दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते ।
["] ८।५२ (वाल० ४) । ६ (आयु. काण्व । इन्द्रः)
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ।
(५५७) ८।६१।१० (भर्गः प्रागाथः । इन्द्रः)
[५२४] ८।५२ (वाल० ४) । १० सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
८।७।२२ (पुनर्वत्स: काण्वः। मरुतः)
[५२५] ८।५३ (वाल० ५) । १ ईशानं राय ईमहे ।
६।५४।८ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । पूषा)
[५२६] ८।५३ (वाल० ५) । २ = (३१५) ८।१२।२८
["] ८।५३ (वाल० ५) । २ वाजयन्तो हवामहे ।
(अग्निः १२२२) ८।११।९ (वत्स. काण्वः । अग्निः)
[५२७] ८।५३(वाल० ५)।३ ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः ।
(२४३५) ८।९३।६ ये सोमास परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
९।६५।२२(भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमानः सोमः)
[५२८] ८।५३(वाल० ५)।४ = (२४०) ८।४।१२
यत्रा सोमस्य तृम्पसि ।
[५३०] ८।५३(वाल० ५)।६ = (२९८) ८।१२।११
क्रतुं पुन (नी) त आनुषक् ।
[५३१] ८।५३(वाल० ५)।७ = (१७३६) ५।३५।१
यस्ते साधिष्ठोऽवसे ।
[५३३] ८।५४(वाल० ६)।१ = (१८१९) ८।४६।३
गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ।
[५३५] ८।५४(वाल० ६)।५ = (१५६) ८।३।१
नो बोधि सधमाद्यो वृधे ।
[५३६] ८।५४ (वाल० ६)।६ ससवांसो वि शृण्विरे ।
(अग्निः ७०९) ४।८।६ (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
[५३७] ८।५४ (वाल०६) । ७ धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ।
८।७।३ (पुनर्वत्सः काण्वः । मरुत)
धुक्षन्त . ।
[५३८] ८।५४ (वाल० ६) ।८ वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम ।
(अग्निः ७९६) ५।४।७ (वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः)
वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम ।
(अग्निः ११६५) ७।१४।२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः)
वयं ते अग्ने समिधा विधेम ।
[५४४] ८।५६ (वाल० ८) । १ = (४२) १।८।५
द्यौर्न प्रथिना शवः ।
[५५१] ८।६१।४ मक्षू चिद् यन्तो अद्रिवः ।
(४५३) ८।४५।११ शनैश्चिद् यन्तो अद्रिव. ।
[५५२]८।६१।५ = (२९२)८।१२।५इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
[५५३] ८।६१।६ (भर्गः प्रागाथ । इन्द्रः)
उत्सो देव हिरण्ययः ।
९।१०७।४ (सप्तर्षय. पवमान सोमः)
[५५७] ८।६१।१० = (५२०) ८।५२ (वाल० ४) । ६
स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ।
[५६०] ८।६१।१३ (भर्गः प्रागाथ. । इन्द्रः)
वि द्विषो वि मृधो जहि ।
(२८१६) १०।१५२।३ (शासो भारद्वाज । इन्द्रः)
वि रक्षो वि मृधो जहि ।
[५६१] ८।६१।१४ = (३९६) ८।१७।३ सुतावन्तो हवामहे ।
[५६६-७७] ८।६२।१-१२ भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
[५६९] ८।६२।४ इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना ।
५।७३।१० (पौर आत्रेयः । अश्विनौ)
इमा ब्रह्माणि.. ।
[५७९] ८।६३।२ उक्था ब्रह्म च शंस्या ।
(४७) १।८।१० स्तोम उक्थं च शंस्या ।
[५८०] ८।६३।३ = (९०९) १।८०।१०
[५८३] ८।६३।६ कृतानि कर्त्वानि च ।
१।२५।११ (शुनः शेप आजीगर्तिः । वरुणः)
कृतानि या च कर्त्वा ।
[५८६] ८।६३।९ उरु क्रमिष्ट जीवसे ।
१।१५५।४ (दीर्घतमा औचथ्यः । विष्णुः)
[५८९] ८।६४।१ = (६४) १।१०।७
[५९२] ८।६४।४ ओभे पृणासि रोदसी ।
(अग्निः२६८५) १०।१४०।२ (पावकोऽग्नि । अग्निः)
पृणाक्षि रोदसी उभे ।
[५९४] ८।६४।६ = (८६) १।१६।९

[५९५] ८।६४।७ ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ।
८।७।२० (पुनर्वत्सः काण्व । मरुतः)
ब्रह्मा को वः सपर्यति ।
[५९८] ८।६४।१० = (२४०) ८।४।१२
[६००] ८।६४।१२ = (४०४) ८।१७।११
[६०१] ८।६५।१ = (२२९) ८।४।१
[६०२] ८।६५।२ (प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः)
नादयासे स्वर्णरे ।
(अग्निः २४४७) ८।१०३।१४ (सोभरिः काण्वः । अग्नामरुतः)
मादयस्व स्वर्णरे ।
[६०३] ८।६५।३ = (८०) १।२६।३
[६०५] ८।६५।५ = (५२१) ८।५२ (वाल० ४) ।५
[६०६] ८।६५।६ प्रयस्वन्तो हवामहे ।
(अग्नि ८९३) ५।२०।३ (प्रयस्वन्त आत्रेयाः । अग्निः)
["] ८।६५।६ इदं नो बर्हिरासदे ।
(अग्नि १९१२) १।१३।७ (मेधातिथि काण्व । आप्रीसूक्तं = [उषासानक्ता])
[६०७] ८।६५।७ = (१६५७) ४।३२।१३
तं त्वा वयं हवामहे ।
["] ८।६५।७ = (१६५७) ४।३२।१३ = (अग्नि १३३२) ८।४३।१३ (विरूप आंगिरस । अग्निः)
[६०८] ८।६५।८ इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।
(३०९३) ८।३८।३ (श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्राग्नी)
इदं वा मदिरं मध्वधुक्ष० ।
[६०९] ८।६५।९ = (५५) १।९।८
अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ।
[६११] ८।६५।११ (प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः)
श्रवो देवेष्वक्रत ।
१०।६२।७ (नाभानेदिष्ठो मानवः । विश्वेदेवाः)
[६१८] ८।६६।६ = (२२४) ८।३३।१५
मदाय द्युक्ष सोमपाः ।
[६२०] ८।६६।८ सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहि ।
(८२) १।१६।५ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः)
[६२४] ८।६६।१२ = (१६०४) ४।२९।१
[६२५] ८।६६।१३ = (९५५) १।८४।१९
[२२९१] ८।६८।१ = (३३२) ८।१३।१२
इन्द्र शविष्ठ सत्पते ।
[२२९५] ८।६८।५ = (८९) ८।१।२ नाना हवन्त ऊतये ।
[२२९७] ८।६८।७ = (१३८९) ३।४२।८

इन्द्रं (सोम) चोदामि पीतये ।
[२२९९] ८।६८।९ (प्रियमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः)
जयेम पृत्सु वज्रिवः ।
(२४०७) ८।९२।११ (श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरस । इन्द्र)
[२३०४] ८।६९।१ प्र वस्त्रिष्टुभमिष ।
८।७।१ (पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः)
प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं ।
[२३०६] ८।६९।३ = (९४७) १।८४।११
ता अस्य ... सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
["] ८।६९।३ त्रिष्वा रोचने दिवः ।
१।१०५।५ (त्रित आप्त्यः, कुत्स आंगिरसो वा । विश्वेदेवाः)
[२३०७] ८।६९।४ = (४८५) ८।४९ (वाल० १) ।१
इन्द्रमर्च यथा विदे ।
[२३०९] ८।६९।६ दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
८।७।१० (पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः)
[२३१०] ८।६९।७ = (३२१८) १।१३५।७ (परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रवायू)
[२३१२] ८।६९।९=(९०८) १।८०।९ इन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ।
[२३१३] ८।६९।१०=९।१।९ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । पवमानः सोमः)
सोममिन्द्राय पातवे ।
९।४।४ (हिरण्यस्तूप आंगिरस । पवमानः सोमः)
९।२४।३ (असित काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
सोमेन्द्राय पातवे ।
[२३१६] ८।६९।१४ = (३९२) ८।१६।११
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
[२३१७] ८।६९।१५ अर्भको न कुमारकः ।
८।३०।१ (मनुर्वैवस्वतः । विश्वेदेवाः)
[२३१८] ८।६९।१६ स्वस्तिगामनेहसम् ।
६।५१।१६ (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवाः)
[२३१९] ८।६९।१७ तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
(अग्नि ७४) १।३६।७ (कण्वो घौरः । अग्निः)
[२३२०] ८।६९।१८ = (७०७) १।३०।९ अनु प्रत्नस्यौकसः ।
[२३२३] ८।७०।३ न किष्टं कर्मणा नशत् ।
८।३१।१७ (मनुर्वैवस्वतः । दम्पत्याशिषः)
[६२८] ८।७६।१ = (७७) १।११।८ इन्द्रमीशानमोजसा ।
[६२९] ८।७६।२ = (९०५) १।८०।६ वज्रेण शतपर्वणा ।
[६३२] ८।७६।५ (कुरुसुतिः काण्व । इन्द्रः)
इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ।

(८९४) ८।८८।१ (नोधा गौतम । इन्द्रः)
इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ।
[६३३] ८।७६।६ मरुत्वन्तं हवामहे ।
(३२४७) १।२३।७ (मेधातिथिः काण्वः । मरुत्वानिन्द्रः)
[ ] ८।७६।६ = १।२२।१
[६३४] ८।७६।७ पिबा सोमं शतक्रतो ।
(१३४१) ३।३७।८ इन्द्र सोमं शतक्रतो !
[६३६] ८।७६।९ सुतं सोम दिविष्टिषु ।
१।८६।४ (गोतमो राहूगणः । मरुतः)
सुतः सोमो दिविष्टिषु ।
[,] ८।७६।९ (कुरुसुति काण्व । इन्द्रः)
वज्रं शिशान ओजसा ।
(२८२२) १०।१५३।४ (देवजामय इन्द्रमातरः । इन्द्रः)
[६३८] ८।७६।११=(२८०) ८।६।३८ अनु त्वा रोदसी उभे ।
[६४०] ८।७७।१=(४४६) ८।४५।४ क उग्रा के ह शृण्विरे ।
[६४७] ८।७७।८ तेन स्तोतृभ्य आ भर ।
(अग्निः८०१-१०) ५।६।१-१० (वसुश्रुत आत्रेयः। अग्निः)
इषं स्तोतृभ्य आ भर ।
[६५८] ८।७८।८ (कुरुसुति काण्वः । इन्द्रः)
विश्वा च सोम सौभगा ।
९।४।२ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
९।५५।१ (अवत्सार काश्यपः । पवमानः सोम)
सोम विश्वा च सौभगा ।
[६६१-६२] ८।८०।१-२ = (२०७६) ६।४५।१७
स त्वं न इन्द्र मृळय ।
[६६३] ८।८०।३ = (२०४५) ६।४४।१०
किमङ्ग रध्रचोदनः (०नं०) ।
[६६७] ८।८०।७ = (९९७) ८।१२।१०
इयं धीः (न) ऋत्वियावती ।
[६७३] ८।८१।४=(१८०८) ८।२४।१९ एतो न्विन्द्रं स्तवाम
[६८०] ८।८२।२ तीव्राः सोमास आ गहि ।
१।२३।१ (मेधातिथिः काण्वः । वायुः)
[६८१] ८।८२।३ भुवा त इन्द्र शं हृदे ।
(२६५४) १०।८६।१५ (इन्द्राणी । इन्द्रः)
मंथस्त इन्द्र शं हृदे ।
[६८३] ८।८२।५ तुभ्यायमद्रिभिः सुतो ।
१।१३५।२ (परुच्छेपो दैवोदासिः । वायुः)
तुभ्यायं सोम परिपूतो अद्रिभिः ।
[६८५-८७] ८।८२।७-९ पिबेदस्य त्वमीशिषे ।
[६८७] ८।८२।९ (कुसीदी काण्वः । इन्द्रः)
तिरो रजांस्यस्पृतम् ।
९।३।८ (शुनःशेप आजीगर्तिः, स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः । पवमानः सोम.)
तिरो रजांस्यस्पृतः ।
[८९४] ८।८८।१ अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
(अग्निः ३८६) २।२।२ (गृत्समदः शौनकः । अग्नि)
अग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
["] ८।८८।१ = (६३२)८।७६।५
इन्द्रं गीर्भिर्न (०हे) वामहे ।
[८९५] ८।८८।२ =(२१२) ८।३३।३ मक्षू गोमन्तमीमहे ।
[८९९] ८।८८।६ =(१०११) १।१३०।१
मंहिष्ठो (०ष्ठं) वाजसातये ।
[१३८४] ८।८९।१ =(४६३) ८।४५।२१
बृहदि (स्तोत्रमि) न्द्राय गायत ।
[१३८५] ८।८९।२ (नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ । इन्द्र)
देवास्त इंद्र सख्याय येमिरे ।
(२३६६) ८।९८।३ (नृमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः)
[१३८६] ८।८९।३ = (९०५) १।८०।६ वज्रेण शतपर्वणा ।
[१३९०] ८।८९।७ = (३०) १।७।३
आ सूर्यं रोहयो (रोहयद्) दिवि ।
[१३९५] ८।९०।५ त्वमिन्द्र यशा असि ।
(आग्नि १२९९) ८।२३।३०(विश्वमना वैयश्वः। आग्नि,)
अग्ने त्वं यशा असि ।
[१७८४] ८।९१।२ = (१४४६) ३।५२।१
धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ।
[१७८५] ८।९१।३ (अपाला आत्रेयी । इन्द्रः)
इन्द्रायेन्दो परि स्रव ।
९।१०६।४ (चक्षुर्मानवः । पवमानः सोम)
[१३९७] ८।९२।१ = (१४) १।५।१
इन्द्रमभि प्र गायत ।
(३६९) ८।१५।१ तम्वभि प्र गायत ।
[१३९८] ८।९२।२ = (३६९) ८।१५।१
पुरुहूतं पुरुष्टुतं ।
[१४०१] ८।९२।५ तम्वभि प्र गायत ।
(३६९) ८।१५।१ तम्वभि प्रार्चत ।
["] ८।९२।५ =(८०) १।१६।३
इन्द्रं सोमस्य पीतये ।
[१४०२] ८।९२।६ (श्रुतकक्षो सुकक्षो वा आङ्गिरसः । इन्द्रः)
अस्य पीत्वा मदानाम् ।

९।२३।७ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
[२४०७] ९।९२।११ =(२२९९) ८।६८।९
जयेम पृत्सु वज्रिवः ।
[२४०८] ८।९२।१२ = (२०८४) ६।४५।२६
वयमु (इमा उ) त्वा शतक्रतो ।
["] ८।९२।१२ गावो न यवसेष्वा ।
१।९१।१३ (गौतमो राहूगणः । सोम)
[२४१०,२४१८] ८।९२।१४,२२ न त्वामिन्द्राति रिच्यते ।
[२४१३] ८।९२।१७ = (१८२४) ८।४६।८
य इन्द्र वृत्रहन्तम ।
[२४१६] ८।९२।२० यस्मिन विश्वा अधि श्रियो ।
१।१३९।३ (परुच्छेपो दैवोदासि । अश्विनौ)
युवोर्विश्वा ।
[२४१७] ८।९२।२१ = (३३८) ८।१३।१८
त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः (सदावृधम्) ॥
९।६१।१४ (अमहीयुरांगिरसः । पवमानः सोमः)
[२४१८] ८।९२।२२ आ त्वा विशन्त्विन्दवः ।
१।१५।१ (मेधातिथिः काण्वः । ऋतव [इन्द्र])
["] ८।९२।२२ = (२७७) ८।६।३५ समुद्रमिव सिन्धवः ।
[२४२१] ८।९२।२५ (श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः । इन्द्र)
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ।
९।२४।५ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
[२४२२] ८।९२।२६(४५२) ८।४५।१० अरं ते शक्र दावने ।
[२४२६] ८।९२।३० = (३३४) ८।१३।१४
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ।
[२४३२] ८।९३।३ (सुकक्ष आंगिरस । इन्द्रः)
अश्वावद्गोमद्यवमत् ।
९।६९।८ (हिरण्यस्तूप आंगिरसः । पवमानः सोमः)
अश्वावद्गोमद्यवमत् सुवीर्यम् ।
[२४३४] ८।९३।५ यद्वा प्रवृद्ध सत्पते ।
(१९५) ८।१२।८ यदि प्रवृद्ध ... ।
[२४३५] ८।९३।६ (सुकक्ष आंगिरस । इन्द्रः)
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
९।६५।२२ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमानः सोमः)
[२४४०] ८।९३।११ न मिनन्ति स्वराज्यम् ।
५।८२।२ (श्यावाश्व आत्रेयः । सविता)
[२४४१] ८।९३।११ = (२०४०) ६।४४।५
देवी शुष्मं सपर्यतः ।
[२४४८] ८।९३।१९ कथा स्तोतृभ्य आ भर ।
(अग्नि. ८०१-१०) ५।६।१-१० (वसुश्रुत आत्रेय. । अग्निः)
[२४४९] ८।९३।२० = (८५) १।१६।८ वृत्रहा सोमपीतये ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ।
[२४५१] ८।९३।२२ उशन्तो यन्ति वीतये ।
(१८) १।५।५ शुचयो यन्ति ... ।
[२४५३] ८।९३।२४ = (२०८) ८।२२।२९
वोळ्हामभि प्रयो हितम् ।
["] ८।९३।२४=(२०८) ८।३२।२९=(३४७)८।१३।२७
इह त्वा सधमाद्या ।
[२४५४] ८।९३।२५ = (१३६७) ३।४०।४
तुभ्य(इन्द्र) सोमा सुता इमे ।
[२४५५] ८।९३।२६ दधद्रत्ना वि दाशुषे ।
(अग्नि ७५१) ४।१५।३ (वामदेवो गोतम. । अग्नि)
दधद्रत्नानि दाशुषे ।
९।३।६ (शुन.शेप आजीगर्ति. स देवरात. कृत्रिमो वैश्वामित्र. । पवमान सोम)
[२४५७-५९] ८।९३।२८-३० = (२६७) ८।६।२५
यदिन्द्र मृळयासि नः ।
[२४५८] ८।९३।२९ स नो विश्वान्या भर ।
(अग्निः १७१६) १०।१९१।१ (संवनन आंगिरस । अग्नि)
स नो वसून्या भर ।
[२४५९] ८।९३।३० = (३९६) ८।१७।३
सुतावन्तो हवामहे ।
[२४६०-६२] ८।९३।३१-३३ उप नो हरिभिः सुतम् ।
[२३३६] ८।९५।१ = (२०८४) ६।४५।२५ इन्द्र वत्सं न मातरः ।
[२३३७] ८।९५।२ सुतास इन्द्र गिर्वणः ।
(१६५५) ४।३२।११ सुतेष्विन्द्र... ।
[२३३८] ८।९५।३ (तिरश्चीरांगिरस. । इन्द्रः)
इन्द्र ... .. ।
त्वं हि शश्वतीनां पती ।
(२३६९) ८।९८।६ (नृमेध आंगिरसः । इन्द्र)
... शश्वतीनामिन्द्र ।
... पतिः ।
[२३४१] ८।९५।६ = (२७७) ८।६।३५ इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
["] ८।९५।६ (तिरश्चीरांगिरसः । इन्द्र)
सिषासन्तो वनामहे ।
९।६१।११ (अमहीयुरांगिरसः । पवमान सोम)
[२३४२] ८।९५।७ = (१८०८) ८।९४।१०

❀

[२३४३] ८।९५।८ शुद्धो रयिं नि धारय ।
१।३०।२२ (शुनःशेप आजीगर्तिः । उषा)
अस्मे रयिं . ।
[२३४४] ८।९५।९ = (३७१) ८।१५।३
शुद्धो (एको) वृत्राणि जिघ्नसे ।
["] ८।९५।९ शुद्धो वाजं सिषाससि ।
९।२३।६ (काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमानः सोमः)
इन्दो वाजं सिषाससि ।
[२३४९] ८।९६।५ = (१६९६) ५।३१।४ अहये हन्तवा उ ।
[२३५१] ८।९६।७ (तिरश्चीराङ्गिरसो, द्युतानो वा मारुतः । इन्द्रः)
अथेमा विश्वाः पृतना जयासि ।
१०।५२।५ (अग्निः सौचीकः । विश्वे देवाः)
... जयाति ।
[२३५६] ८।९६।१२ स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास ।
५।८३।१ (भौमोऽत्रिः । पर्जन्यः)
स्तुहि पर्जन्यं नमसाविवास ।
[२३६३] ८।९६।२१ (तिरश्चीराङ्गिरसो द्युतानो वा मारुतः । इन्द्रः)
सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूव ।
(अग्नि १५२६) १०।६।७ (त्रित आप्त्यः । अग्निः)
. . बभूथ ।
[९७९] ८।९७।४=(३३५) ८।१३।१५
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
["] ८।९७।४=(९४५) १।८४।९ सुतावाँ आ विवासति ।
[९८०] ८।९७।५=(४३७) ८।३४।१३
समुद्रस्याधि विष्टपि (०पः) ।
["] ८।९७।५ यदन्तरिक्ष आ गहि ।
५।७३।१ (पौर आत्रेयः । अश्विनौ)
... गतम् ।
[९८१] ८।९७।६=(१६४१)४।३१।१२=(१००८) १।१२९।९
त्वं न इन्द्र राया परीणसा ।
(१००९) १।१२९।१० त्वं न इन्द्र राया तरूषसा ।
[९८२] ८।९७।७,७ मा न इन्द्र परा वृणक् ।
[९८३] ८।९७।८ ८ अस्मे इन्द्र सचा सुते ।

[९८६] ८।९७।११=(८०) १।१६।३ इन्द्रं सोमस्य पीतये ।
[९९०] ८।९७।१५ कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ।
७।३७।५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वेदेवाः)
[२३६५] ८।९८।२ (नृमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः)
त्वमिन्द्राभिभूरसि ।
(२८२३) १०।१५३।५ (देवजामय इन्द्रमातरः । इन्द्रः)
["] ८।९८।२ त्वं सूर्यमरोचयः ।
९।६३।७ (निध्रुविः काश्यपः । पवमानः सोमः)
यथा सूर्यमरोचयः ।
[२३६६] ८।९८।३ (नृमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः)
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः ।
१०।१७०।४ (विभ्राट् सौर्यः । सूर्यः)
["] ८।९८।३ = (२३८५) ८।८९।२
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ।
[२३६९] ८।९८।६ = (२३३८) ८।९५।३
[२३७४] ८।९८।११ = (१३८७) ३।४२।६
अधा ते सुम्नमीमहे ।
[२३७५] ८।९८।१२ स नो रास्व सुवीर्यम् ।
(अग्निः ८५८) ५।१३।५ (सुतंभर आत्रेयः । अग्निः)
[२३७७] ८।९९।२ = (१६५५) ४।३२।११
सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ।
[२३८३] ८।९९।८ = (१८१९) ८।४६।३
[९९२] ८।१००।२ (नेमो भार्गवः । इन्द्रः)
मधुनो भक्षमग्रे ।
दक्षिणतः......मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
१०।८३।७ (मन्युस्तापसः । मन्युः)
दक्षिणतो भवा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
... मध्वो अग्रम् ।
[९९४] ८।१००।४ विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना ।
२।२८।१ (कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । वरुणः)
विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना ।
[९९९] ८।१००।१२ = (१५१९)४।१८।११
सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ।

ऋग्वेदस्य दशमं मण्डलम् ।

[२४६७] १०।२२।२ यशश्चक्रे असाम्या ।
१।२५।१५ (शुनःशेप आजीगर्तिः । वरुणः)
[२४७३] १०।२२।८ वधर्दासस्य दम्भय ।
(३१०६) ८।४०।६ (नाभाकः काण्वः । इन्द्राग्नी)
ओजो दासस्य दम्भय ।

[२४८०] १०।२२।१५ = (१११२) १।११।११
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं ।
["] १०।२२।१५ (विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्रः । इन्द्रः)
उत स्रायस्व गृणतो मघोनः ।

(१८१२) १०।१४८।४ (पृथुर्वैन्यः । इन्द्रः)
—गृणत उत स्तीन् ।
[२४८२] १०।२३।२ = (१८२९) ८।४६।१३
मघवा वृत्रहा भुवत् ।
[२४८४] १०।२३।४ वातो यथा वनम् ।
५।७८।८ (सप्तवध्रिरात्रेयः । अश्विनौ)
[२४८७] १०।२३।७= (२१७९) = ७।२२।९
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ।
[२४८८] १०।२४।१ = (३९४) ८।१७।१
इन्द्र सोमं (पिबा) इमं पिब ।
["] १०।२४।१ अस्मे रयिं नि धारय ।
१।३०।२२ (शुनः शेप आजीगर्तिः । उषा)
[२४८९] १०।२४।२ श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे ।
(अग्निः ६१९) ३।२१।२ (गाथी कौशिक । अग्नि.)
श्रेष्ठ नो धेहि वार्यम् ।
[२४९१] १०।२७।१ यत् सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
(३२०२) ८।५९ (वाल० ११) । १ (सुपर्णः काण्व. । इन्द्रावरुणौ) ...यजमानाय शिक्षथ ।
[२४९७] १०।२७।७ (वसुक्र ऐन्द्रः । इन्द्र)
यो अस्य पारे रजसो विवेष ।
(अग्नि १७१५)१०।१८७।५(वत्स आग्नेयः । अग्नि.)
... रजसः ।
[२५०३] १०।२७।१३ (वसुक्र ऐन्द्रः । इन्द्र)
न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम् ।
(अग्निः १६९४) १०।१४२।५ (मारिसृक्वः । अग्नि)
......न्वेषि भूमिम् ।
[२५०४] १०।२७।१४ अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ।
३।५५।१३(प्रजापतिर्वैश्वामित्र ,प्रजापतिर्वाच्यो वा । विश्वेदेवाः)
[२५११] १०।२७।२१ श्रव इदेना परो अन्यदस्ति ।
१०।३१।८ (कवष ऐलूषः । विश्वेदेवाः ।
नैतावदेना परो अन्यदस्ति ।
[२५२७] १०।२८।७ वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानो ।
(१४९०) ४।१७।३ वधीद् वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।
[२५१२] १०।२९।८ व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा ।
(२१५३) ७।२०।३ व्यास इन्द्रः ... ।
[२५३५] १०।३२।६ . प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वां अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥

(अग्नि ७७४) ५।२।८ (कुमार आत्रेयः, वृशो वा जानः, उभौ वा । अग्निः)
[२५३९] १०।३३।२ सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
१।१०५।८ [पूर्वार्धः] (त्रित आप्त्यः, कुत्स आंगिरसो वा । विश्वेदेवाः)
[२५४०] १०।३३।३ मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो ... ।
१।१०५।८ [उत्तरार्ध] (त्रित आप्त्यः, कुत्स आंगिरसो वा । विश्वेदेवाः)
[२५४१] १०।३८।१ रयमिन्द्र श्रवाय्यम् ।
९।६३।२३ (निध्रुविः काश्यप । पवमानः सोम)
रयिं सोम श्रवाय्यम् ।
[२५४४] १०।३८।४ अर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ।
८।२२।३ (सोभरिः काण्वः । अश्विनौ)
अर्वाचीना स्ववसे करामहे ।
[२५४७] १०।४२।२ कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टम् ।
(१५३५) ४।४०।६ उद्रेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ।
[२५५३] १०।४२।८ सुन्वते वहति भूरि वामम् ।
१।१२४।१२ (कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमस । उषा)
स ते वहसि भूरि वामम् ।
[२५५५] १०।४२।१० = (२५६६) १०।४३।१० = (२५७७) १०।४४।१० (कृष्ण आंगिरसः । इन्द्रः)
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभि प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजने ना जयेम ।
[२५५६] १०।४२।११ = (२५६७) १०।४३।११ = (२५७८) १०।४४।११ (कृष्ण आंगिरसः । इन्द्रः)
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ।
[२५६२] १०।४३।६ = (२०१) ८।३२।२२
धेना इन्द्रावचाकशत् ।
[२५६६-६७] १०।४३।१०-११ = (२५५५-५६) १०।४२।१०-११
[२५७७-७८] १०।४४।१०-११ = (२५५५-५६) १०।४२।१०-११
[२५८२] १०।४८।४ पुरू सहस्रा नि शिशामि ।
१०।२८।६ (इन्द्र ऋषिः । वसुक्रो देवता)
["] १०।४८।४ यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ।
४।४२।६ (त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य. । आत्मा)
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्था ।

[२५९०] १०।४९।१ अहं भुवं **यजमानस्य चोदिता।**
(७५२) १।५१।८ शाकी भव **यजमानस्य चोदिता।**
[२६०७] १०।५०।७ ये ते विप्र **ब्रह्मकृतः सुते सचा।**
(२२३६) ७।३२।२ इमे हि **ते ब्रह्मकृतः.** ।
["] १०।५०।७ मदे **सुतस्य सोम्यस्यान्धसः।**
१०।९४।८ (अर्बुद. काद्रवेयः सर्पः । ग्रावाणः)
त ऊ **सुतस्य** ... ।
[२६१०] १०।५४।३ = (१९५७) ६।२७।३
क उ (नहि) **नु ते महिमनः समस्य।**
[२६१३] १०।५४।६=(२०५८) ६।४४।२३
[२६१७] १०।५५।४ **महन्महत्या असुरत्वमेकम्।**
३।५५।१-२३ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा। विश्वेदेवा)
महद्देवानामसुरत्वमेकम्।
[२६३८] १०।७४।५ **शचीव...अनानतं दमयन्तं पृतन्यून्।**
(अग्निः१८०६)७।६।४(वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। वैश्वानरोऽग्निः)
["] १०।७४।५ ऋभुक्षणं **मघवानं सुवृक्तिं।**
(२७०९) १०।१०४।७ सुतरेण **मघवानं सुवृक्तिम्।**
[२६४०-६२] १०।८६।१-२३ **विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।**
[२६४४] १०।८६।५ **न सुगं दुष्कृते भुवं।**
(३२८४) ७।१०४।७ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । (राक्षोघ्न)। इन्द्रासोमौ)
[२६५४] १०।८६।१५=(६८१)८।८१।३
[२६५५-५६] १०।८६।१६-१७ **अन्तरा सक्थ्या३कपृत्।**
["] १०।८६।१६-१७ **निषेदुषो विजृम्भते।**
[२६६४] १०।८९।२ **कृष्णा तमांसि** त्विष्या **जघान।**
९।६६।२४ (शतं वैखानसाः । पवमानः सोम.)
कृष्णा तमांसि जङ्घनत्।
[२६६९] १०।८९।८ **प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम..**
मिनन्ति मित्रम्।
(अग्निः१७६१)४।५।४(वामदेवो गौतमः।वैश्वानरोऽग्नि)
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य ।
[२६७५] १०।८९।१४ = (७१९) १।३२।५
[२६७६] १०।८९।१५ शत्रूयन्तो **अभि ये न ततस्रे।**
४।५०।२ (वामदेवो गौतमः । बृहस्पति)
बृहस्पते **अभि** ... ।
["] १०।८९।१५ (रेणुर्वैश्वामित्रः । इन्द्रः)
अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्तां।
१०।१०३।१२ (अप्रतिरथ ऐन्द्रः । अप्वा देवी)
[२६७८] १०।८९।१७=(६) १।४।३ **विद्याम सुमतीनाम्।**

["] १०।८९।१७=(१९४६) ६।२५।९
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो।
[२६७९] १०।८९।१८ = (१२५९) ३।३०।२२
[२७०८] १०।१०४।६ **उप ब्रह्माणि हरिवः।**
१।४।६ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । विश्वेदेवाः)
["] १०।१०४।६ दाश्वाँ **अस्यध्वरस्य प्रकेतः।**
(अग्निः२२६६)७।११।१(वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्निः)
महाँ **अस्यध्वरस्य** ।
[२७०९] १०।१०४।७ = (२६३८) १०।७४।५
[२७१३] १०।१०४।११ = (१२५९) ३।३०।२२
[२७१८] १०।११।४ **इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य।**
१०।६७।१२ (अयास्य आङ्गिरस । बृहस्पति)
[२७२९] १०।१११।५ = (११६७) ३।३१।८
विश्वा वेद सवना (जनिमा) **हन्ति शुष्णम्।**
[२७३३] १०।१११।९ = (१४८८) ४।१७।१
सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानां (०नान्)
[२७३५] १०।११२।१ = (२०५२) ६।४४।१७
हन्तवे (जहि) **शूर शत्रून्।**
[२७४२] १०।११२।८ = (१६९८) ५।३१।६
[२७५९] १०।११६।५ **अवस्थिरा तनुहि यातुजूनाम्।**
......**शत्रून्** ... ।
(अग्नि १८१७) ४।४।५ (वामदेवो गौतमः। रक्षोहाऽग्निः)
[२७६१] १०।११६।७
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यं पक्वो३... पिब... ।
२।३६।५ (गृत्समदः शौनक. । ऋतुदेवता [इन्द्रोनभश्च])
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतः......पिब।
[२८५०-६२] १०।११९।१-३ **कुवित् सोमस्यापामिति।**
[२८५१-५२] १०।११९ २-३ **उन्मा पीता अयंसत।**
[२८६२] १०।११९।१३ **देवेभ्यो हव्यवाहनः।**
(अग्निः ५०५) ३।९।६(विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः)
देवेभ्यो हव्यवाहन।
(अग्निः १८५७) १०।११८।५ (उरुक्षय आमहीयवः। रक्षोहाऽग्नि)
(अग्निः१६९८)१०।१५०।१ (मृळीको वासिष्ठ.। अग्नि.)
[२७७५] १०।१३१।३ = (१५०३) ४।१७।१६
अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः।
[२७७६] १०।१३१।६ = (२११०) ६।४७।१२
["] १०।१३१।६ **सुमृळीको भवतु विश्व(जात) वेदाः।**
(अग्निः६४६) ४।१।२० (वामदेवो गौतम । अग्निः)

[२७७६] १०।१३१।६ सुवीर्यस्य पतयः स्याम ।
४।५१।१० (वामदेवो गौतमः । उषाः)
९।८९।७ (उशना काव्यः । पवमानः सोमः)
९।९५।५ (प्रस्कण्वः काण्व. । पवमानः सोमः)
[२७७७] १०।१३१।७ = (२१११) ६।४७।१३
["] १०।१३१।७ तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
(अग्नि:४६७) ३।१।२१ (विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः)
= ३।५९।४ (विश्वामित्रो गाथिन । मित्रः)
=१०।१४।६ (यमो वैवस्वतः । अङ्गिरः पित्रथर्वभृगुसोमा)
["] १०।१३१।७ = (२१११) ६।४७।१३
आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।
७।५८।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मरुतः)
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत ।
१०।७७।६ (स्यूमरश्मिर्भार्गवः । मरुतः)
[२७७८] १०।१३३।१ = (५७) १।९।१० =
१०.९६।१ (बरुराङ्गिरसः, सर्वहरिर्वा ऐन्द्रः । हरिः)
[२७७८-८३] १०।१३३।१-६ नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ।
[२७७९] १०।१३३।२=(८३५)१।१०२।८=(४२१)८।११।१३
["] १०।१३३।२ विश्वं पुष्यसि वार्यम् ।
(९२४) १।८१।९ विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
(अग्नि:८०६) ५।६।६ (वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः)
[२७८०] १०।१३३।३ अर्यो नशन्त नो धियः ।
९।७९।१ (कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
[२७८१] १०।१३३।४ (सुदा. पैजवनः । इन्द्रः)
यो न......आदिदेशति ।
अधस्पदं तमीं कृधि ।
(२७८६) १०।१३४।२ (मान्धाता यौवनाश्व. । इन्द्र)
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ आदिदेशति ।
[२७८३]१०।१३३।६=(१३७९)३।४१।७वयमिन्द्र त्वायवः।
["] १०।१३३।६ सखित्वमा रभामहे ।
९।६१।४ (अमहीयुराङ्गिरस. । पवमानः सोमः)
सखित्वमा वृणीमहे ।
९।६५।९(भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमानः सोमः)
[२७८४] १०।१३३।७ सहस्रधारा पयसा मही गौः ।
१०।१०१।९ (बुधः सौम्यः । विश्वेदेवा, ऋत्विग वा)
[२७८५] १०।१३४।१ = (अग्निः ५०९) ३।१०।१
(विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः)

[२७८५-९०] १०।१३४।१-६ देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।
[२७८६] १०।१३४।२ = (२७८१) १०।१३३।४
["] १०।१३४।२ यो अस्माँ आदिदेशति ।
९।५२।४ (उचथ्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
[२७८७]१०।१३४।३=(१९१)८।२१।५=(१९१)८।३२।१२=
(१७७६) ८।३७।१ = (५५१)८।६१।५
[२७८८] १०।१३४।४ = (७०६) १।३०।८
[२८०७] १०।१४७।४ मक्षू स वाजं भरते धना नृभिः ।
१।६४।१३ (नोधा गौतम. । मरुत.)
अर्वद्भिर्वाजं भरते... ।
२।२६।३ (गृत्समदः शौनकः । ब्रह्मणस्पतिः)
पुत्रैर्वाज भरते... ।
[२८१०] १०।१४८।२ = (११०४) २।११।४
दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ।
["] १०।१४८।२ = (११०५) २।११।५
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु ।
[२८१२] १०।१४८।४ = (२४८०) १०।२२।१५
उत त्रायस्व गृणत (०णतो) ।
[२८१६] १०।१५२।३ = (५६०) ८।६१।१३
वि रक्षो (द्विषो) वि मृधो जहि ।
[२८१८] १०।१५२।५ = (२३) १।५।१०
वरीयो (ईशानो) यवया वधम् ।
[२८२०] १०।१५३।२ = (२१९) ८।३३।१० =
९।६४।२ (कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः)
[२८२१] १०।१५३।३ = (३६०) ८।१४।७
व्य१न्तरिक्षमतिर (०मतिरन्) ।
[२८२२] १०।१५३।४ = (६३६) ८।७६।९
वज्रं शिशान ओजसा ।
[२८२३]१०।१५३।५=(२३६५)८।९८।२ त्वमिन्द्राभिभूरसि ।
[२८२४] १०।१६०।१ = (११९१) २।१८।३
[२८२८] १०।१६०।५ अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो ।
(१५०३) ४।१७।१६=(२७७५) १०।१३१।३
अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्त० ।
[२८३४] १०।१७१।३ त्वं त्यमिन्द्र मर्त्यम् ।
(१७४०) ५।३५।५ त्वं तमिन्द्र मर्त्यम् ।
[२८४०] १०।१८०।२ मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
१।१५४।२ (दीर्घतमा औचथ्यः । विष्णुः)
[३३५७] १।१८।४ सोमो हिनोति मर्त्यम् ।
(३३५८) सोम.. मर्त्यम् ।

[३३५८] १।१८।५ सोम **इन्द्रश्च मर्त्यम्।**
४।३७।६ (वामदेवो गौतमः । ऋभवः)
यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम्।
[३२४७] १।२३।७ (मेधातिथि काण्व । मरुत्वानिन्द्रः)
मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये।
(६३३) ८।७६।६ (कुरुसुतिः काण्वः । इन्द्रः)
इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना **मरुत्वन्तं हवामहे।**
अस्य **सोमस्य पीतये।**
[३२४८] १।२३।८ (मेधातिथि काण्व । मरुत्वानिन्द्र) =
२।४१।१५ (गृत्समद शौनक । विश्वेदेवा)
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः।
विश्वे मम श्रुता हवम्।
[३२४९] १।२३।९ (मेधातिथि काण्वः । मरुत्वानिन्द्र)
... युजा।
मा नो दुःशंस ईशत।
२।२३।१० (गृत्समद शौनक । बृहस्पतिः)
... युजा। मा नो दुशंसो अभिदिप्सुरीशत।
(३०८५) ७।९४।७ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्राग्नी)
मा नो दु.शंस ईशत।
१०।२५।७ (विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक । सोमः)
मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे।
[३१३४] १।१७।१ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रावरुणौ)
ता नो मृळात ईदृशे।
४।५७।१ (वामदेवो गौतमः । क्षेत्रपतिः)
स नो मृळातीदृशे।
(३०६०) ६।६०।५ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्राग्नी)
[३१३५] १।१७।२ हवं **विप्रस्य मावतः।**
(अग्निः १९१९) (दीर्घतमा औचथ्यः । आप्रीसूक्तं [तनूनपात्])
१।१४२।२ यज्ञं **विप्रस्य ...।**
["] १।१७।२ (मेधातिथिः काण्व । इन्द्रावरुणौ)
धर्तारा चर्षणीनाम्।
५।६७।२ (यजत आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
[३३०५] १।१५५।३ (दीर्घतमा औचथ्यः । इन्द्राविष्णू)
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः।
९।७५।२ (कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं १ नाम ...।
[१५७५] ४।२३।१० ऋताय **पृथ्वी बहुले गभीरे।**
१०।१७८।२ (अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः । तार्क्ष्यः)
उर्वी न **पृथ्वी बहुले गभीरे।**
[३००४] १।२१।३ (मेधातिथिः काण्व । इन्द्राग्नी)
इन्द्राग्नी ता हवामहे।
सोमपा सोमपीतये।
(३०४१) ५।८६।२ (अत्रिर्भौमः । इन्द्राग्नी)
इन्द्राग्नी ताहवामहे।
(३०६९) ६।६०।१४ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्राग्नी)
इन्द्राग्नी ता हवामहे।
(३३१९) ४।४९।३ (वामदेवो गौतमः। इन्द्राबृहस्पती)
सोमपा सोमपीतये।
[३००५] १।२१।४ = (८९) १।१६।५
उपेदं सवनं सुतम्।
[३००६] १।२१।५ इन्द्राग्नी **रक्ष उब्जतम्।**
७।१०४।१ इन्द्रासोमा तपतं **रक्ष उब्जत।**
[३००७] १।२१।६ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्राग्नी)
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम्।
(३०८६) ७।९४।८ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्राग्नी)
[३००८] १।१०८।१ (कुत्स आङ्गिरसः। इन्द्राग्नी)
अभि विश्वानि भुवनानि चष्टे।
७।६१।१ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । मित्रावरुणौ)
अभि यो **विश्वा भुवनानि चष्टे।**
[३००८] १।१०८।१ = (३०१३-१९)
१।१०८।६-१२ अथा **सोमस्य पिबतं सुतस्य।**
(३०१२) १।१०८।५ तेभिः **सोमस्य . ...।**
[३०१०] १।१०८।३ (कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्राग्नी)
वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम्।
(३१७१)६।६८।११ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य. । इन्द्रावरुणौ)
[३०११] १।१०८।४ (कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्राग्नी)
एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम्।
(३०७६) ७।९३।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्राग्नी)
[३०१४-१९]१।१०८।७-१२ **अतः परि वृषणावा हि यातम्।**
[३०१९] १।१०८।१२ (कुत्स आङ्गिरसः। इन्द्राग्नी)
मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे।
१०।१५।१४ (शङ्खो यामायनः। पितरः)
......स्वधया मादयन्ते।
[३११३] १।२३।२ **उभा देवा दिविस्पृशा।**
१।२२।२ (मेधातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
["] १।२३।२= १।२२।१ =(३३२१) ४।४९।५
=(३०५५) ६।५९।१०
=(६३३) ८।७६।६

अस्य सोमस्य पीतये।
१।२२।१ (मेधातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
५।७१।३ (बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
८।९४।१०-१२ (बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः। मरुतः)
[३२१५] १।१३५।४ (परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रवायू)
अभि प्रयांसि सुधितानि **वीतये** वायो हव्यानि **वीतये।**
(अग्निः १०८५) ६।१६।४४
(भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः)
अभि प्रयांसि वीतये।
["] १।१३५।४ **वायवा चन्द्रेण** राधसा गतम्।
४।४८।१-४ (वामदेवो गौतमः । वायुः ।)
वायवा चन्द्रेण रथेन।
[३२१६] १।१३५।५ **आशुमश्वं न वाजिनम्।**
(१००१) १।१२९।२ **पृक्षमश्वं** ...।
[३२१७] १।१३५।६ (परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रवायू)
तिरः पवित्रमाशवः।
९।६२।१ (जामदग्निर्भार्गवः । पवमानः सोम)
इन्दवस्तिरः......।
९।६७।७ (गोतमो राहूगणः । पवमानः सोमः)
इन्दवस्तिरः ...।
[३२१८] १।१३५।७ (परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रवायू)
गृहमिन्द्रश्च गच्छतम्।
(३३१९) ४।४९।३ (वामदेवो गौतमः। इन्द्राबृहस्पती)
(३३१०) ८।६९।७ (प्रियमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः)
गृहमिन्द्रश्च गन्वहि।
[१५९९] ४।२८।१ (वामदेवो। गौतमः । इन्द्रः इन्द्रासोमौ वा)
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धून्।
१०।६७।१२ (अयास्य आङ्गिरसः । बृहस्पतिः)
[१६००] ४।२८।२ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रः इन्द्रासोमौ वा)
महो द्रुहो अप विश्वायु धायि।
(१८८८) ६।२०।५ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
[३१५०] ४।४१।५ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रावरुणौ)
धियः.... ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः।
१०।१०१।९(बुधः सौम्यः । विश्वेदेवा, ऋत्विग वा)
धियम्.... ।
सा नो . ।
[३१५१] ४।४१।६ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रावरुणौ)
सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये।

१०।९२।७ (शार्याती मानवः । विश्वेदेवाः)
[३१५२] ४।४१।७ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रावरुणौ)
वृणीमहे सख्याय प्रियाय।
९।६६।१८ (शतं वैखानसाः। पवमानः सोमः)
वृणीमहे सख्याय।
[३१५५] ४।४१।१० (वामदेवो गौतमः । इन्द्रावरुणौ)
नित्यस्य रायः पतयः स्याम।
(अग्नि ११४०)७।४।७ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। अग्निः)
[३१५७] ४।४२।७=(१५२६) ४।१९।५
त्वं वृत्रौं अरिणा इन्द्र सिन्धून्।
[३१५९] ४।४२।९ **हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।**
१।१५३।१ (दीर्घतमा औचथ्य । मित्रावरुणौ)
हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः।
[३२२१] ४।४६।२ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रवायू)
नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः।
४।४८।२ (वामदेवो गौतमः । वायु)
[३२२२] ४।४६।३ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रवायू)
सहस्रं हरयः।
वहन्तु सोमपीतये।
(११०)८।१।२४ (मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ। इन्द्र)
सहस्रं ।
हरय वहन्तु सोमपीतये।
[३२२३] ४।४६।४ (वामदेवो गौतम । इन्द्रवायू)
रथं हिरण्यवन्धुरम्।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम्।
८।५।२८ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
रथं . ।
आ ... . ।
[३२२४] ४।४६।५ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रवायू)
रथेन पृथुपाजसा।
८।५।२ (ब्रह्मातिथिः काण्व । अश्विनौ)
["] ४।४६।५ **दाश्वांसमुप गच्छतम्।**
१।४७।३ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)
[३२२५] ४।४६।६ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रवायू)
पिबतं दाशुषो गृहे।
(३३२२) ४।४९।६ (वामदेवो गौतमः। इन्द्राबृहस्पती)
८।२२।८ (सोभरिः काण्वः । अश्विनौ)
[३२२७] ४।४७।२ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रवायू)
इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां **पीतिमर्हथः।**
निम्नमापो न सध्र्यक्।

(३२३१) ५।५१।६ (स्वस्त्यात्रेय । इन्द्रवायू)
इन्द्रश्च वायवेषां सुताना **पीतिमर्हथः ।**
(२०२) ८।३२।२३ (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः)
निम्नमापो न सध्र्यक् ।
[३२२८] ४।४७।३ (वामदेवो गौतमः । इन्द्रवायू)
आ यातं सोमपीतये ।
८।२२।८ (सोभरि. काण्वः । अश्विनौ)
[३२२९] ४।४७।४ (वामदेवो गौतम । इन्द्रवायू)
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
(३०६३) ६।६०।८ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्राग्नी)
[३२१७] ४।४९।१ **उक्थं मदश्च शस्यते ।**
१।८६।४ (गोतमो राहूगणः । मरुतः)
[३२१९] ४।४९।३= (३२१८) १।१३५।७
गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
["] ४।४९।३=(३००४) १।२१।३ **सोमपा सोमपीतये ।**
[३२२०] ४।४९।४ **रयिं धत्तं** वसुमन्तं **शतग्विनम् ।**
१।१५९।५ (दीर्घतमा औचथ्यः । द्यावापृथिवी)
[३२२१] ४।४९।५ = १।२२।१ (मेधातिथिः काण्व । अश्विनौ)
अस्य सोमस्य पीतये ।
[३२२२] ४।४९।६=(३२२५) ४ ४६।६ **पिबतं दाशुषो गृहे।**
८।२२।८ (सोभरिः काण्वः । अश्विनौ)
[३३२४] ४।५०।११ (वामदेवो गौतमः । इन्द्राबृहस्पती)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामराती ।
७।६४।५=७।६५।५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मित्रावरुणौ)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः ।
(३३६१) ७।९७।९ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्राब्रह्मणस्पती)
[३२३१] ५।५१।६ **सुतानां पीतिमर्हथः ।**
१।३४।६ (परुच्छेपो दैवोदासिः । वायु)
सोमानां प्रथमः **पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।**
(३२२७) ४।४७।२ **सोमानां पीतिमर्हथः ।**
[३२३२] ५।५१।७ (स्वस्त्यात्रेय । इन्द्रवायू)
सुता इन्द्राय वायवे ।
९।३३।३ (त्रित आप्त्यः । पवमानः सोम.)
सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
सोमा अर्षन्ति विष्णवे ।
९।३४।२ (त्रित आप्त्यः । पवमानः सोमः)
सुत.. ..।
सोमो अर्षति......।
९।६५।२०(भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा। पवमानः सोमः)
अग्मा **इन्द्राय. . ।**

सोमो.... ।
[३२३२] ५।५१।७ = **(१८)१।५।५ सोमासो दध्याशिरः ।**
[३०४१] ५।८६।१ (अत्रिर्भौमः । इन्द्राग्नी)
श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभि ।
(अग्निः ११७८) ७।१५।२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। अग्नि)
यः पञ्च चर्षणीरभि ।
९।१०१।९ (नहुषो मानवः । पवमानः सोमः)
... श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि ।
["]५।८६।२ = (३००४)१।२१।३ **इन्द्राग्नी ता हवामहे ।**
[३०४३] ५।८६।४ **ता वामेषे रथानाम् ।**
५।६६।३ (रातहव्य आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
["] ५।८६।४ (अत्रिर्भौम । इन्द्राग्नी)
इन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो ।
(३०६०) ६।६०।५ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य. । इन्द्राग्नी)
इन्द्राग्नी हवामहे ।
(२०४०) ६।४४।५ (शंयुर्बार्हस्पत्यः ।-इन्द्रः)
पतिं तुरस्य राधसः ।
[३०४५] ५।८६।६ (अत्रिर्भौमः । इन्द्राग्नी)
घृतं न पूतमद्रिभि. ।
सूरिषु श्रवो......रयिं गृणत्सु दिधृतम् ।
(२९१) ८।१२।४ (पर्वत काण्वः । इन्द्रः)
घृतं न पूतमद्रिवः ।
(३३२) ८।१३।१२ (नारदः काण्वः । इन्द्रः)
रयिं गृणत्सु धारय ।
श्रव. सूरिभ्यो ...।
[३३३०] ६।५७।१ **वयं सख्याय स्वस्तये ।**
(१६४०) ४।३१।११ **अस्मॉ......सख्याय स्वस्तये ।**
["] ६।५७।१ = **(१७४१)** ५।३५।६
हुवेम (हवन्ते) वाजसातये ।
[३०४८] ६।५९।३ **इन्द्रा न्व१ग्नी अवसे ।**
५।४५।४ (सदापृण आत्रेयः । विश्वेदेवाः)
[३०५१] ६।५९।७ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्राग्नी)
मा नो अस्मिन् महाधने परा वर्क्त गविष्टिषु ।
(अग्निः१३८४) ८।७५।१२ (विरूप आङ्गिरसः । अग्निः)
—परा वर्ग्भारभृद्यथा ।
[३०५३] ६।५९।८ **अघा अर्यो अरातयः ।**
६।४८।१६ (शंयुर्बार्हस्पत्यः [तृणपाणिः]। पूषा)

[३०५४] ६।५९।९ रयिं विश्वायुपोषसम् ।
(अग्निः २५१) १।७९।९(गोतमो राहूगणः । अग्निः)
[३०५५] ६।५९।१० (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्राग्नी)
स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
गीर्भिरा गतम् ।
८।८।७ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
आ . . गतम् ।
धिभिः......स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
(३१०) ८।१२।२३ (पर्वत काण्वः । इन्द्रः)
स्तोमेभिर्हवनश्रुतम् ।
["]६।५९।१० = १।१२।१ (मेधातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
[३०६०] ६।६०।५ = (३०४३) ५।८६।४
["] ६।६०।५ = (३१३४) १।१७।१
[३०६२] ६।६०।७ = (७७) १।११।८
[३०६३] ६।६०।८ = (३२२९) ४।४७।४
[३०६४] ६।६०।९ = (८१) १।१६।५
["] ६।६०।९ = (३०९७-९९) ८।३८।७-९
इन्द्राग्नी सोमपीतये ।
[३०६९] ६।६०।१४ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । इन्द्राग्नी)
आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यै३रुप गच्छतम् ।
८।७३।१४ (गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा । अश्विनौ)
आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम् ।
["] ६।६०।१४ = (३००४) १।११।३
[३०७०] ६।६०।१५ = ६।५४।६ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । पूषा)
["] ६।६०।१५ पिबतं सोम्यं मधु ।
७।७४।२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अश्विनौ)
८।५।११ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
८।८।१ (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
८।३५।२२ (श्यावाश्व आत्रेय । अश्विनौ)
(१८०२) ८।२४।१३ पिबाति सोम्यं मधु ।
[३१६२] ६।६८।२ शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ।
(३०७१) ७।९३।२ ता सानसी शवसाना हि भूतं ।
[३१६४] ६।६८।४ द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ।
१०।९३।१ (तान्वः पार्थ्यः । विश्वेदेवा)
महि द्यावापृथिवी भूतमुर्वी ।
[३१६६] ६।६८।६ = १।१५९।५ (दीर्घतमा औचथ्यः । द्यावापृथिवी)
[३१६८] ६।६८।८ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रावरुणौ)
अपो न नावा दुरिता तरेम ।
७।६५।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । मित्रावरुणौ)

[३१७१] ६।६८।११ = (३०१०) १।१०८।३
["] ६।६८।११ = ६।५२।१३ (ऋजिश्वा भारद्वाज । विश्वेदेवाः)
[३३०९,३३११] ६।६९।४,७ उप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो (७ हवं) मे ।
[३१७२] ६।७२।१ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रासोमौ)
उत्सूर्यं नयथो ।
... अप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ।
१०।६२।३ (नाभानेदिष्ठो मानवः । विश्वेदेवा)
सूर्यमारोहयन् . अप्रथन् पृथिवीं मातरं वि ।
[३१७४] ६।७२।४ इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्त. ।
२।४०।२ (गृत्समद शौनकः । सोमापूषणौ)
आस्यामिन्द्र पक्वमामास्वन्तः ।
[३१७५] अपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
१।११७।२३ (कक्षीवान औशिज दैर्घतमस । अश्विनौ)
रराथाम् ।
[३१७१] ७।८२।१ विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
(अग्निः २४७२) १।९३।८ (गोतमो राहूगण । अग्नीषोमौ)
[३१७८] ७।८२।७ न तमंहो न दुरितानि ... कुतश्चन ।
२।२३।५ (गृत्समदः शौनकः । ब्रह्मणस्पति)
[३१८०] ७।८२।९ = (१५७९) ४।२४।३
[३१८१] ७।८२।१० = (३१९१) ७।८३।१० (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्रावरुणौ)
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथ ।
अवध्र ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥
[३१९१] ७।८४।१ = १।१५३।१ (दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ)
["] ७।८४।१ दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ।
(अग्नि ८६९) ५।१५।४ (वरुण आंगिरसः । अग्नि.)
[३१९३] ७।८४।२ परि नो हेळो वरुणस्य वृज्याः ।
२।३३।१४ (गृत्समद शौनकः । रुद्र)
[३१९४] ७।८४।३=७।५८।३
(वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मरुतः)
[३१९५] ७।८४।४ = १।१५९।५ (दीर्घतमा औचथ्यः । द्यावापृथिवी)
[३१९६] ७।८४।५ = (३२०१) ७।८५।५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्रावरुणौ)
इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

[३१९६] ७।८४।५ **तोके तनये तूतुजाना ।**
७।६७।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अश्विनौ)
[३२३४] ७।९०।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रवायू)
गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः ।
१०।१०८।७ (पणयोऽसुराः । सरमा देवता)
गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः ।
[३२३५] ७।९०।७=(३२४०) ७।९१।७ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रवायू)
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः । वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
[३२३७] ७।९१।४ = (७४१) १।१३५।१२
[३२४०] ७।९१।७ = (३२३५) ७।९०।७
[३०७२] ७।९३।२ = (३१६२) ६।६८।२
[३०७६] ७।९३।६ = (३०११) १।१०८।४
[३०७७] ७।९३।७ = १।१७९।५ (अगस्त्यशिष्यः । रतिः)
[३०७८] ७।९३।८ = १।१६२।१ (दीर्घतमा औचथ्यः । अश्वः)
[३०८०] ७।९४।२ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्राग्नी)
शृणुत जरितुर्हवम् ।
(३२७) ८।१३।७ (नारद काण्व । इन्द्रः)
शृणुधी जरितुर्हवम् ।
८।८५।४ (कृष्ण आङ्गिरसः । आश्विनौ)
["] ७।९४।२ **ईशाना पिप्यतं धियः ।**
५।७१।२ (बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
[३०८१] ७।९४।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्राग्नी)
मा नो रीरधतं निदे ।
८।८।१३ (सध्वंस. काण्वः । अश्विनौ)
[३०८३] ७।९४।५= (अग्निः ८६२) ५।१४।३
(सुतंभर आत्रेयः । अग्निः)
["] ७।९४।५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्राग्नी)
सबाधो वाजसातये ।
(अग्निः१४५३) ८।७४।१२ (गोपवन आत्रेयः । अग्निः)
[३०८४] ७।९४।६ = (अग्नि ८९३) ५।२०।३
(प्रयस्वन्त आत्रेयाः । अग्निः)
[३०८५] ७।९४।७ = (१७३६) ५।३५।१
["] ७।९४।७ = (३२४९) १।२३।९
[३०८६] ७।९४।८=१।१८।३ (मेधातिथिः काण्वः । ब्रह्मणस्पतिः)
["] ७।९४।८ = (३००७) १।२१।६
[३३६१] ७।९७।९ = (३३२४) ४।५०।११
[३३२५] ७।९७।१० = (३३२५) ७।९८।७
(वसिष्ठो मैत्रावरुणि. । इन्द्राबृहस्पती)

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य । धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥
[३३२५] ७।९७।१० = (१९२०) ६।२३।३
[३३१४] ७।९९।४ **उरु यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ।**
(अग्निः२४७०) १।९३।६ (गोतमो राहूगण. । अग्नीषोमौ)
[३०९१-९३] ८।३८।१-३ **इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ।**
[३०९२] ८।३८।२ = (३०३३) ३।१२।४
[३०९३] ८।३८।३ (श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्राग्नी)
इदं वा मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।
(६०८) ८।६५।८ (प्रगाथ. काण्वः । इन्द्रः)
इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।
[३०९४] ८।३८।४ = ५।७२।३ (बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
[३०९४-९६] ८।३८।४-६ **इन्द्राग्नी आ गतं नरा ।**
[३०९७] ८।३८।७=५।५१।३ (स्वस्त्यात्रेय. । विश्वेदेवाः)
[३०९७-९९] ८।३८।७-९ = (३०६४) ६।६०।९
[३०९८] ८।३८।८ = (१७७५) ८।३६।७
[३०९९] ८।३८।९ (श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्राग्नी)
एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।
इन्द्राग्नी **सोमपीतये ।**
८।४२।६ (नाभाक काण्वः अर्चनाना आत्रेयो वा । अश्विनौ)
एवा ... .. ।
नासत्या **सोमपीतये ।**
[३१००] ८।३८।१० इन्द्राग्न्योर**वो वृणे ।**
८।९४।८ (बिन्दुः पूतदक्षो वा, आङ्गिरसः । मरुतः)
देवाना**मवो वृणे ।**
[३१०५] ८।४०।५ = (७७) १।२१।८
[३१०६] ८।४०।६ ओजो **दासस्य दम्भय ।**
[३१०७] ८।४०।७ = (१०) १।४।७
["] ८।४०।७ = (१०२८) १।१३२।१
[३१०९] ८।४०।९ = (२०६२) ६।४५।३
[३११०-११] ८।४०।१०-११
उतो न चिद्य ओजसा (११ ओहते)
[३११०] ८।४०।१० **शुष्णस्याण्डानि भेदति ।**
(३१११) ८।४०।११ **आण्डा शुष्णस्य भेदति ।**
["] ८।४०।१० = (६५) १।१०।८
[३११२] ८।४०।१२ **वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।**
४।५०।६ (वामदेवो गौतमः । बृहस्पतिः)
[५३९]८।५५(वाल०७)।१ (कृशः काण्वः । इन्द्रः प्रस्कण्वश्च)
राधस्ते दस्यवे वृक ।

(५४४)८।५६(वाल०८) । १ (पृषध्रः काण्वः । इन्द्रः)
प्रति ते दस्यवे वृक राधो ।
[३२०२]८।५९(वाल०११) । १ (सुपर्णः काण्व । इन्द्रावरुणौ)
यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षथः ।
(२४९१) १०।२७।१ (वसुक्र ऐन्द्रः । इन्द्र)
... शिक्षम् ।
[३२०३] ८।५९ (वाल०११) । २ = १।८५।२
(गोतमो राहूगणः । मरुतः)
[३२०४] ८।५९ (वाल०११) । ३ = १।४७।५
(प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ)
[३२०८] ८।५९ (वाल०११) । ७ (सुपर्णः काण्व । इन्द्रावरुणौ)
रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम् ।
१०।१७।९ (देवश्रवा यामायनः । सरस्वती)
.... धेहि ।
(अग्निः १६८२) १०।१२२।८ (चित्रमहा वासिष्ठ । अग्निः)
.. .. धारय ।

[३३४४] ८।९३।३४ ऋभुक्षणमृभुं रयिम् ।
४।३७।५ (वामदेवो गौतमः । ऋभवः)
ऋभुमृभुक्षणो रयिं ।
[३३२६] ८।९६।१५ विशो अदेवीरभ्या३ चरन्तीः ।
६।४९।५ (ऋजिश्वा भारद्वाज । विश्वेदेवाः)
विश आदेवीरभ्य१ श्नवाम ।
[२८४२-४९] १०।४७।१-८ अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ।
[२८४५] १०।४७।४ = (१८७८) ६।१९।७
[२६९१] १०।९९।१२ इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ।
(अग्नि. १५८०) १०।२०।१० (विमद ऐन्द्रः, प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुकः । अग्निः)
[२७७१] १०।१२०।८ = (१२८०) ३।३१।११
दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ।
[२७७२] १०।१२०।९ हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ।
(अग्निः ८४६) ५।११।५ (सुतंभर आत्रेयः । अग्निः)
पृणन्ति शवसा ।

सूचना

पुनरुक्त-मंत्रसूची को निम्नलिखित विधिसे देखना चाहिये—

(१) चतुष्कोण [ ] कंसमें जो अंक है वह मंत्रोंका 'क्रमांक' है। उसके साथके अंक ऋग्वेदादिके विभागोंके दर्शक हैं।

(२) गोल कंस ( ) में पूर्व आये मंत्रोंके क्रमांक हैं और उनके साथवाले अंक ऋग्वेदादिके दर्शक हैं।

(३) जहां तहां आवश्यक पुनरुक्त मंत्रभाग दिया है। एक वार दिया पुनः नहीं दिया है। पुनः पुनः पुनरुक्त मंत्रभाग नहीं दिया, केवल उसके स्थानका ही निर्देश किया है— जैसा— [२७७१] १०।१२०।८=(१२८०) ३।३१।११ इसका अर्थ यह है कि यह मंत्र क्रम "[१२८०] पृ० २३०" पर देखिये। इन दो मंत्रोंमें "...गोपति... दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः।". इतना मंत्रभाग पुनरुक्त हुआ है, पर दूसरे मंत्रमें 'गोत्र' शब्द है, 'गोपति' नहीं है। इस तरह सर्वत्र समझना चाहिये।

इन्द्रमन्त्रान्तर्गतानां उपमानां सूची ।

अंशं न प्रतिजानते ३,४५,४; १४०७ रयिं आभर ।
अंशा इव ५,८६,५; ३०४४ अहं पुरः दधे ।
अक्षः न चक्रयोः ६,२४,३, १९३० बृहन् मह्ना रोदस्यो ।
अक्षं न चक्र्योः १,३०,१४ ७१२ घ आ ऋणोः ।
अक्षं न शचीभिः १,३०,१५; ७१३ जरितृणां कामं आ ।
अक्षेण इव चक्रिया १०,८९,४; २६६६ शचीभिः विष्वक् ।
अग्निः न जम्भैः १०,११३,८; २७५२ तृषु अन्नं आवयत् ।
अग्निः वना इव ८,१२,९, २९६ अर्शसान नि ओषति ।
अग्निः न शुष्कमनम् ६,१८,१०, १८६५ हेतिः रक्षः ।
अभिमान् चरुः इव ७,१०४,२, अथ०८,४,२; ३२७९ तपु ।
अग्नौ इव हविः समिधाने २,१६,१; ११७२ ज्येष्ठ तमाय ।
अंकी इव वृक्षं पक्वं फलम् ३,४५,४; १४०७ सं पारणं वसु ।
अंकुशम् यथा हि दीर्घं १०,१३४,६; २७९० शक्तिं बिभर्षि ।
अंगिरस्वत् १,६२,१; ८७२ शूषं आंगूषं प्र मन्महे ।
   ” ८,४०,१२; ३११२ नवीयः अवाचि ।
अतथा इव १,८२,१; ९२५ मघवन् मा भूः ।
अत्कं न ४,१६,१३; १४७९ पुरः विदर्दः ।
अत्यः न ८,५०,५; ४९९ आ इयानः तोशते ।
   ” १०,१४४,१; २७९८ इन्दुः पत्यते ।
अत्यः न योषाम् १,५६,१, ८०५ पूर्वीः चत्रिष प्र अत्र ।
अत्यः न वाजी ५,३०,१४; ३३३९ रघुः अज्यमानः ।
अत्यः न ७,२४,५; २१९० वाजयन् अधायि ।
अत्यः न वाजी सुधुरः ३,३८,१; १३४५ जिहानः प्रियाणि ।
अत्यम् इव १,१३०,६; १०१६ शवसे सातये धना ।
अत्यम् न वाजम् १,५२,१; ७६० हवनस्यदं रथं ।
अत्यं न वाजिनम् १,१२९,२; १००१ पृक्षं वाजिनं इन्द्रं ।
अत्यं न वाजिनम् १,१३५,५; ३२१६ आशुं वाजिनं ।
अत्यान् इव आजौ ३,३२,६; १२८७ (अन्तरिक्षात् अपः)
अत्रेः यथा कृण्वतः ८,३६,७; १७७५ सुन्वतः श्यावाश्वस्य ।
   ” ८,३७,७, १७८१ रेभतः श्यावाश्वस्य ।
अदुग्धा इव धेनव. ७,३२,२२; २२५६ त्वा अभि नोनुमः ।
अद्भुतं न रजः १०,१०५,७; २७२० इन्द्रः अहतहनुः ।
अप्सरदः न ६,३०,३; १९७० पर्वता. नि सेदुः ।

अध्वनः न अन्ते ४,१६,२; १४६८ सवने नः अवस्य ।
अन्तरिक्षे न वातम् २,१४,३, ११५२ तस्मै सोमम् ... ।
अतिष्ठन्तं अमस्यं न सर्गम् १०,८९,२; २६६४ कृष्णा नमांसि ।
अपः न नावा ६,६८,८; ३१६८ दुरिता तरेम ।
अपाम् इव प्रवणे १,५७,१; ८११ बलं दुर्धरम् ।
अपाम् ऊर्मिः मदन् इव ८,१४,१०; ३६३ स्तोमः अजिरायते ।
अपाम् अवः न समुद्रे ८,१६,२; ३८३ यस्मिन् उक्थानि ।
अपी इव योषा जनिमानि ३,३८,८; १३५२ रोदसी आ वमे ।
अप्सः न ८,४५,५; ४४७ गिरौ योधिषत् ।
अभीवृता इव महापदेन १०,७३,२; २६२४ गर्भाः इत् ।
अभीशून् इव सारथिः ६,५७,६; ३३३५ इन्द्रं स्वस्तये ।
अभ्राणि इव सानयन् ६,४४,१२; २००७ इन्द्रः उत् इयर्ति ।
अमाजूः इव पित्रोः २,१७,७ ११८७ त्वाम् भगम् आ हुये ।
अयम् (अग्निः सोमः वा) न १,१३०,१; १०११ परावतः ।
अयसः न धाराम् ६,४७,१० २१०८ धियं चोदय ।
अया इव १०,११६,९; २७६३ देवाः परिचरन्ति ।
अरणा इव ८,१,१३; ९९ वयं मा भूम ।
अरान् न नेमिः १,३२,१५; ७२९ राजा(चर्षणीः)परिबभूव ।
अरान् इव खे खेदया ८,७७,३; ६४२ तान् इत् समखिदत् ।
अर्चा इव मासा दिवि ६,३४,४; २०२४ इन्द्रे सोमः मिमिक्षः ।
अर्णवः न १,५५,२; ७९८ नद्यः प्रति गृभ्णाति ।
अर्थम् न शूरः १०,२९,५; २५१९ नः पारं प्रेरय ।
अर्भकः न कुमारकः ८.६९,१५, २३१७ नवं रथम् ।
अर्वा न ३,४९,३, १४२६ पृत्सु सदावा तरणिः ।
अर्वन्तः न ७,९०,७; ३२३५ श्रवसः भिक्षमाणाः ।
   ” ७,९१,७; ३२४० ”
अर्वन्तः न काष्ठां ७,९३,३, ३०७३ नरः इन्द्राग्नी ।
अर्वतः न ५,३६,२; १७४५ त्वा अनु वयं गीर्भिः हिन्वन् ।
अर्वता इव साधुना १,१५५,१; ३३०३ महः तस्थतुः ।
अवते न कोशम् ४,१७,१६; १५०३ अक्षितोतिं आच्या वयामः ।
अवतासः न १,५५,८ ८०४ तनवः कर्तृभिः आवृतासः ।
अवतम् न १,१३०,२; १०१२ सिक्तं सोमं पिब ।
अवताम् इव मानुषः ८,६२,६, ५७१ ऋचीषमः अव चष्टे ।

अवस्यवः न वयुनानि २,१९,८; ११०६ गृत्समदाः मन्म ।
अविता यथा नः ७,२४,१; ११८६ एवा नः वसूनि ददः ।
अवीराम् इव १०,८६,९; २६४८ माम् अभिमन्यते ।
अशनिः न ६,८,१०; १८६५ भीमा हेतिः ।
अशनिः यथा अथ०७,५०,१; २९०६ कितवान् अप्रति ।
अशन्या इव वृक्षम् २,१४,२, ११५१ वृत्रं जघान ।
अशनिमान् इव द्यौः ४,१७,१३; १५०० समोहं रेणुं इयर्ति ।
अशीर्षाणः इव अथ. ६,६७,२; २८९४ अमित्रा. अहयः
अशीर्षाणः अहयः साम १८७१; ३००१ अमित्राः अन्धाः।
अश्मा इव २,३०,४; ११३० वीरान् तपुषा विध्य ।
अश्मा इव १०,८९,१२, २६७३ द्रोघ मित्रान् आविध्य ।
अश्मना इव पूर्वीः २,१४,६; ११५५ शम्बरस्य पुरः बिभेद ।
अश्वः न निक्तः ८,२,२, ११७ धूत सोमः वारैः परिपूतः ।
अश्वः न हियानः ८,४९,५, ४७९ स्तोमम् उप आ द्रवत् ।
अश्वा इव वाजिना ७,१०४,६; अथ. ८,४,६;३२८३ मतिः।
अश्वासः न ८,५५,४; ५४१ यूयम् चङ्क्रमत ।
अश्वः क्रन्दत्(लुप्तोपमा) १,१७३,३,१०५८ अग्नि. क्रन्दति ।
अश्वीर इव जामाता ८.२,१०; १३५अस्तत् आरे सायं ।
असिः न पर्व १०,८९,८, २६६९ त्वम् वृजिना शृणासि ।
अस्ता इव ४,३१,१३; १६४२ व्रजान् अपा वृधि ।
अस्ता इव ६,२०,९; १८९२ हरी अधि तिष्ठत् ।
अस्ता इव १०,४२,१; २५४६ सु प्रतरं लायं अस्यन् ।
अह इव ८,९६,१९; २३६१ रेवान् ।
अहा विश्वा इव सूर्यम् १,१३०,२; १०१२ ते मदाय त्वा ।
अहोभिः इव द्यौः १,१३०,१०; १०२० दिवोदासेभिः ।
आजिं न अश्वाः ६,२४,६; १९३३ गिर्वाहः त्वा जग्मुः ।
आजिम् न ४,४१,८; ३१५३ युवयूः धियः वां जग्मुः ।
आपः न १,६३,८; ८९२ ऋषं परिज्मन् पीपयः ।
आपः न ८,३३,१; २१० वृक्तबर्हिष ।
आपः न अनु ओक्यं सर ८,४९,३, ४८७ राधसे पृणन्ति ।
आपः न तृष्यते १,१७५,६;१०८४जरितृभ्यः मय इव बभूथ ।
" १,१७६,६;१०९० " "
आपः न देवीः १,८३,२; ९३२ होत्रियं देवासः उप यन्ति ।
आपः न द्वीपम् १,१६९,३; १०४५ प्रयांसि दधाति ।
आपः न निम्नम् ४,४७,१; ३२२७ इन्दवः युवाम् ।
आपः न निम्नम् ८,३२,२३, २०२ मे गिरः त्वा यच्छन्तु ।
आपः निम्नेव १,५७,२; ८१२ हविष्मन्तः सवनासं वाजन्ते ।
आपः न पर्वतस्य पृष्ठात् ६,२४,६, १९३३ उक्थेभिः यज्ञैः ।
आपः न प्रवताः ८,६,३४; २७६ इन्द्रं वनन्वती मतिः ।
आपः न प्रवता ८,१३,८; ३२८ सूनृताः यतीः क्रीळन्ति ।

आप. न सिन्धुम् १०,४३,७; २५६३ सोमासः इन्द्रम् ।
आपः न सृष्टाः ७,१८,१५; २१३३ तृत्सवः नीचीः ।
आपः न उर्वीः काकुदः १,८,७, ४४ एवा इन्द्रस्य ।
आपः इव काशिना ७,१०४,८, २२८५ असतः वक्ता असन्
संगृभीता अथ. ८,४,८,३२८५ अस्तु ।
आपः न धायि ८,५०,३, ४९७ सवनं मे आ वसो ।
आशु न रश्मिम् ४,२२,८; १५६२ शुशुचानस्य ।

इन्द्रम् न ४,४२,८; ३१५८ वृत्रतुरम् आ अयजन्त ।
इन्द्रं न चितयन्तः १,१३१,२, १०२२ आयवः यज्ञैः ।
इषम् न १०,४८,८, २५८६ वृत्रतुरम् विक्षु धारयम् ।

उग्रं न वीरम् ८,४९,६; ४९० विभूतिं उपसेदिम ।

उत्सम् न २,१६,७; ११७८ वयं इन्द्रं सिचामहे ।
उदा इव यन्ता । ८,९८.७, २३७० उप त्वा कामान् ।
उद्ना इव कोशम् ४,२०,६; १५३८ वसुनान्यूष्टं वज्रं ।
उदभिः नवाजिनम् २,१३,५; ११४१ देवाः देवं स्तोमेभिः ।
उदधीन् इव गर्भारान् ३,४५,३; १४०६ त्वं क्रतुं पुष्यसि ।
उद्री इव ८,४९,६; ४९० अवतः न सिञ्चते ।
उद्री इव अवतः ८,५०,६; ५०० वसुत्वना सदा पीपेथ ।
उप इव दिवि ८.३,२१; १७६ धावमानम् विश्वेषां त्मना ।
उरा न वृकः ८,३४,३; ४१७ नेमिः एषां विधूनुते ।
उरुधारा इव ८,९३,३; २४३२ इन्द्रः नः दोहते ।
उशती इव ५,३२,१०; १७१४ गातुः इन्द्राय येमे ।
उशतीः इव १०,१११,१०, २७३४ सध्रीचीः सिन्धुम् आयन् ।
उशनाः इव ४,१६,२, १४६८ वेधाः असुर्याय मन्मशंसति ।
उषा. इव १०.१३४,१, २७८५ रोदसी आपप्राथ ।
उषसम् न ७,८५,१, ३१९७ घृतप्रतीकां देवीम् ।
उषसम् न सूर्यः १,५६,४;८०८ इन्द्रं देवी तविषी सिषक्ति ।
उषसः न ७,१८,२०; २१३८ रायः सुमतयः न संचक्षे ।
उषसः न केतुः १०,८९,१२; २६७३ हेतिः असिन्वा वर्तताम् ।
उस्रा इव राशयः ८,९६,८; २३५१ मरुतः त्वा वावृधानाः ।

ऊधः न ८,२,१२; १२७ नग्नाः जरन्ते ।
ऊधः गोः पयसा यथा २,१४,१०; ११५९ इन्द्रं सोमेभिः ।
ऊर्जं न विश्वध क्षरध्यै १,६३,८, ८९२ यया त्मनम् असश्चं ।
ऊर्दरम् न यवेन २,१४,११;११६० इन्द्रं सोमेभि. आपृणीत ।
ऊर्वः इव ३,३०,१९; १२५६ अस्मे कामः पप्रथे ।

ऋणावानं न १,१६९,७; १०४९ पृतनायन्तं सर्गैः पतयन्त ।
ऋभुः न १०,१०५,६; २७१९ क्रतुभिः मातरिश्वा ।
ऋश्यः न तृष्यन् ८,४,१०; २३८ अप पानम् आ गहि ।

ओकः न ४,१६,१५; १४८१ रण्वः ।
ओकः न जानती १,१०४,५, ८५१ दस्योः सदनं अच्छा गात्।
ओपशम् इव १,१७३,६; १०६१ इन्द्रः द्याम् भर्ति ।
कण्वाः इव ८,३,१६; १७१ इन्द्रं स्तोमेभिः महयन्ते ।
कनीनका इव ४,३२,२३; ३३४८ कमनीया ।
कविः न निण्यम् ४,१६,३, १४६९ विदथानि साधन् ।
कारं न ५,२९,८;१६७४ इन्द्राय भरं अह्वन्त ।
कारुः उकथ्यः [इव] १८३,६; ९३६ यत्र ग्रावा वदति ।
किरणाः न १,६३,१; ८८५ गिरयः अभ्वा दळहासः ऐरयन्।
कुलपाः न व्राजपतिम् १०,१७९,१; २८३७ सखायः चरन्तं।
कुल्याः इव ह्रदम् ३,४५,३;१४०६ सोमाः त्वाम् प्र आशत।
" " " १०,४३,७; २५६३ सोमासः इन्द्रं अभि ।
कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने १०,४३,५, २५६१ संवर्गं यत् मघवा।
कोशं न पूर्णं वसुना १०,४२,२; २५४७ न्यृष्टं इन्द्रं ।
क्रिविम् यथा १,३०,१; ६९९ इन्द्रं इन्दुभिः आसिञ्चे।
क्षप्र इव १,१३०,४; १०१४ इन्द्रः वज्रं संश्यत् ।
क्षाः न १,१३३,६; १०३९ द्यौः भीषान् शुशोच ।
क्षुद्रम् इव १,१२९,६; १००५ अवशंसं अवतरं अव सवेत्।
क्षुम्पम् इव १,८४ ८, ९४४ मर्तं पदा अस्फुरत् ।
क्षुल्लकाः इव अथर्व० ५,२३,११, २८८५ क्रिमयः हताः ।
क्षोणयः यथा १०,२२,९; २४७४ पूर्तयः त्वां पुरुत्रा वि ।
क्षोणीः इव १,५७,४; ८१४ त्वं नः वचः हर्य ।
खले न पर्षान् १०,४८,७, २५८५ अहम् भूरि प्रति हन्मि।
खर्गला इव ७,१०४,१७; ३२९४ तन्वं गूहमाना।
अथ०८,४,१७;
गृधम् यथा ८,४५,१३; ४५५ तथा त्वां वयं विद्म ।
गर्भं न माता ३,४६,५; १४१३ सोमं द्यावापृथिवी ।
गर्भधिम् इव कपोतः १,३०,४; ७०२ अयम् उ ते समतसि ।
गवे न शाकिने ६,४५,२२; २०८१ पुरुहूताय शम् गाय ।
गवां व्रजम् इव १,१३०,३; १०१३ वज्री सोमं अविन्दत्।
गवाम् इव स्तुतयः ६,२४,४; १९३१ ते शाकाः संचरणीः।
गावः न यवसात् ७,१८,१०; २११८ चितासः मित्रम् ।
गावः न यूथम् ८,४६,३०; १८३८ वध्रयः मा उप यन्ति ।
गावः न यवसेषु ८,९२,१२; २४०८ त्वा उकथेषु ।
गाम् न ८,१,२; ९० इन्द्रं शंसत ।
गाम् इव भोजसे ८,६५,३; ६०३ सोमस्य त्वा आ हुवे ।
गाम् न दोहसे ६,४५,७ २०६६ सखायं गीर्भिः हुवे ।
गाम् क्षीरिणीम् इव अथ०७,५०,९; २९११ फलवतीं युवं।
गाः न १,६१,१०; ८६५ इन्द्रः अवनीः अमुञ्चत् ।
गाः इव सुगोपाः ३ ४५,३; १४०६ त्वम् क्रतुं पुष्यसि ।
गावः न ६,४१,१; १९९३ त्वम् ओकः अच्छ आ गहि ।
गावः न धेनवः वत्सम् । ६,४५,२८; २०८७ गिरः सुते ।
गिरिः न ४,२०,६; १५३८ स्वतवान् ऋष्वः इन्द्रः ।
गिरिः न भुज्म ८,५०,२; ४९६ मघवत्सु पिन्वते ।
गिरिः न विश्वतस्पतिः ८,९८,४ २३६७ विश्वतस्पृथुः ।
गिरिम् न ८,८८,२; ८९५ इंद्रं ईमहे ।
गिरिं न वेनाः १,५६,२; ८०६ विदथस्य नू सदः ।
गिरेः इव ८,४९,२; ४८६ अस्य रसाः प्र पिन्विरे ।
गोभिः इव व्रजम् ८,२४,६; १७९५ त्वा गीर्भिः आ वृणोमि।
गोः न १,६१,१२; ८६७ पर्व तिरश्चा वि रद ।
गौः इवत् (लुप्तोपमा) १,१७३,३; १०५८ (अग्निः) ।
गौः इव ८,३३,६, २१५ पुरुष्टुतः क्रत्वा शाकिनः ।
गौरः न १,१६,५; ८१ तृषितः (सोमं) पिब ।
गौरः यथा ८,४५,२४; ४६६ तथा सरः पिब ।
गौरः यथा अपा कृतं ८,४,३, २३१ तथा आपित्वे नः प्रपित्वे।
ग्रावा इव ५,३६,४; १७४७ जरिता ते वाचं इयर्ति ।
घनेन इव १,६३,५; ८८९ अमित्रान् अथिहि ।
घर्मम् न सामन् ८,८९,७; २३९० शुष्मम् बृहत् तपत ।
घृणात् न १,१३३,६; १०३९ द्यौः भीषाँ शुशोच ।
घृतम् न ८,१२,४; २९१ इमं स्तोत्रं अभिष्टये ।
घृतं न ८,१२,१३; ३०० ऋतस्य आसनि पिप्ये ।
घृतं न पूतं अद्रिभिः ५,८६,६; ३०४५ इन्द्राग्निभ्यां हव्यं।
घृतप्रुषः न ऊर्मयः ६,४४,२०; २०५५ वृषणः द्रोणं ।
चक्रं न वृत्तम् ४,३१,४; १६३३ अर्वतः नः चर्षणीनाम् ।
" " ५,३६,३; १७४६ मे मनः भिया वेपते ।
चक्रं न वर्ति एतशम् ८,६,३८, १८० रोदसी त्वा अनु ।
विश्वा चक्रा इव ४,३०,२; १६१० कृष्टयः ते अनु सत्रा ।
चक्रिया इव ४,३०,८; १६८९ मरुत्वः रोदसी ।
चन्द्रमा इव अप्सु ८,८२,८; ६८६ सोमः चमूषु ददृशे ।
चक्रीषः न १,१००,१२; ९६८ शवसा पाञ्चजन्यः ।
चर्म इव ८,६,५; २४७ रोदसी समवर्तयत् ।
जघना इव द्रौ १,२८,२; ६८९ अधिषवण्या कृता ।
जघन्थ यथा धृषता १,३०,४; ११३० अस्माकं शत्रुं जहि।
जनं न धन्वन् अभि ६,३४,४; २०१४ सत्रा वावृधुः ।
जनयः न १,६२,१०, ८८९ स्वसारः पत्नीः दुवस्यन्ति ।
जनयः न गर्भम् ४,१९,५; १५२६ अद्रयः अभि प्र ववृधुः।
जनयः यथा पतिम् १०,४३,१; २५५७ मघवानं मतयः ।

जनीः इव ८,१७,७; ५१० सोम त्वा अभि संवृतः।
जनीः इव एकः पतिः ७,२६,३; २२०० सर्वाः पुरः सुसमानः।
जनिधा इव १०,२९,५, २५१९ अस्य कामं गमन्।
जामिवत् १०,२३,७; २४८७ ते प्रमति विद्मा हि।
जिह्मयः न ४,१९,१; १५२३ देवा. त्वां अवासृजन्त।
जुष्टां न श्येनः वसतिम् १,३३,२; ७३१ इन्द्र उत् इत।
जूः न वक्षैः २,१४,३; ११५२ इन्द्रं सोमैः आ ऊर्णुत।
जेन्यम् यथा १,१३०,६; १०१६ वाजिनं शुम्भन्त।
जोष्टारः इव वस्व ४,४१,९; ३१५४ मनीषां इन्द्रं वरुणं।
ज्योतिः न ८,२४,१; १८१० दक्षिणा विश्वं अभि।
तष्टा इव ३,३८,१; १३४५ मनीषां अभि दीधय।
,, १,६१,४; ८५९ अहं स्तोमं सं हिनोमि।
तष्टा इव सुद्र्वंनेमिम् ७,३२,२०; २२५४ इन्द्रं गिरा।
तष्टा इव बन्धुरम् १०,११९,५; २९५४ अहं मतिं पर्यचामि।
तीर्थे न अर्य. १,१६९,६; १०४८ पृथुबुध्नासः एता।
तीर्थे न तातृषाणम् ओकः १,१७३,११; १०६६ यज्ञ. ऋन्धन्।
तुजये न १०,४९,४; २५९३ यजमानाय प्रिया प्र भरे।
तूर्णाशं न गिरेः अधि ८,३२,४; १८३ हुवे सुशिप्रम्।
त्वष्टा न वृक्षं वनिनः १,१३०,४; १०१४ शवसा (शत्रून्)।
दक्षिणया इव ओजिष्ठया १,१६९,४, १०४६ वयं रातिं।
दस्मः न सद्मन् ७,१८,११; ११८९ इन्द्र सर्गं अकृणात्।
दिवः न १,१००,३; ९५९ इन्द्रस्य पन्थासः दुघानाः।
दिवः न १,१००,१३; ९६९ त्वेष शिमीवान् रवथः।
दिवः न ६,२०,२; १८८५ असुर्यं विश्व तुभ्यम् अनु।
दिवः ,, अथर्व. २,५,२, २८६४ मघोः पृणस्व।
दिवः ,, साम. ९५३; २९९८ ,, ,,
दिवः न वृष्टिम् ८,१२,६; २९३ प्रथयन् ववक्षिथ।
दिवे न सूर्यः ८,७०,२, २३२२ दर्शतः हस्ताय वज्रः।
दिवि इव ७,२४,५; २१९० द्याम् अधि नः श्रोमतं धा।
दिवि इव सूर्यं दृशे १०,६०,५; २६२२ असमातिषु क्षत्र।
दिवि तारः न ८,५५,२; ५४० श्वेतासः उक्षण रोचन्ते।
दिव्या इव अशनिः १,१७६,३; १०८७ यः असाधुकृ तं।
दीर्घः न अध्वा मिथ्र १,१७३,११, १०६६ यज्ञः जुहुराणः।
दुघा इव ८,५०,३; ४९७ दाशुषे उप।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वान् ४,२८,३; १६०१ यातां सहस्रा।
दुर्मदासः न सुरायाम् ८,२,१२; १२७ हृत्सु पीतासः।
दुर्यः न यूपः १,५१,१४; ७५८ पज्रेषु स्तोम।
दूतः न १,१७३,३; १०५८ रोदसी अन्तः चरत्।
दूर्वायाः इव तन्तवः १,१३४,५; २७८९ दिद्यवः विश्वक्।

दृषदा इव ७,१०४,२१; अथ०८,४,२१; ३२९९ रसः प्रमृण।
देव इव सविता वा०य०१२,६६; २९१९ सत्यधर्मा इन्द्रः।
द्यौः न १,८,५; ४२ शव प्रथिना [युवप्रताम्।]
द्यौः न ४,२१,१; १५४४ अभिभूति क्षत्रं पुष्यात्।
द्यौ न ६,२०,१, १८८४ यः अभि भूम।
द्यौः न ६,३६,५; २०३५ दुवोयुः अर्यः रायः अभिद्युम।
द्यौ न८,५६,१; ५४४ शव. प्रथिना।
द्यावः न १,५१,१, ७४५ (कर्माणि) मानुषा विचरन्ति।
द्यावः न द्युम्नैः ४,१६,१९, १४०५ वयम् अर्यः मदेम।
द्याम् इव उपरि वर्षिष्ठम् ४,३१,१५, १६४४ देवेषु अस्माकं।
द्रुणा न पारं नदीनाम् ८,९६,११;२३५५ उक्थ वाहसे विभ्रे।
धनं न जिग्युषः ७,३२,१२, २२९६ अस्य अंश उत् रिच्यते।
धनं न स्पन्द्रम् १०,४२,५; २५५० सोमान् बहुलं आ सुनोति।
धन्वा इव ३,४५,१, १४०४ तान् अति इहि।
धन्वचर न वंसगः ५,३६,१;१७४४ रयीणां दामन आगमन्।
धर्मे इव सूर्यम् ८,६,२०; २६२ प्रस्व त्वा गर्भं अचक्रिरन्।
धानानाम् न ८,७०,११; २३३२ आसां हस्ते नः दात्रने।
धिषणा इव ३,४९,४, १४२७ भागं वाजं विभक्त।
धुरि इव ७,२४,५; २१९० एष स्तोमः उग्राय अधायि।
धेनु न वत्सं यवसस्य पिप्युषी २,१६,८,११७९ सं बाधात्।
धेनवः यथा यवसम् ३,४५,३, १४०६ तथा त्वं सोमान्।
धेनवः संपृक्ता मध्वा सारघेण८,४,८,२३६ न सोमा वर्तन्ते।
धेनुं न सूयवसे ७,१८,४, २१८२ ब्रह्माणि त्वा उप ससृजे।
धेनूः इव मनवे १,१३०,५; १०१५ अस्मद्र्यं समानं।
धेनूनां न [पयः] १०,२२,१३; २४७८ [स्तुतीनां] भुजः।
नदं न भिन्नम् १,३२,८, ७२२ शयानं आपः अति यन्ति।
नद्यः न ४,१६,२१, १४८७ जरित्रे इषं पीपे।
,, ४,२४,११-१५८७ ,,
(सूक्तान्ते अष्टवारं पुनरुक्तः) १४८७-१५८७
नभ न ८,९६,१४; ३२६९ कृष्णं अवतस्थिवांसं इष्यामि।
नभन्वान् वक्काः ४,१९,७,१५२८ ध्वस्राः युवती प्र अपिन्वत्।
नरां न शंसैः १,१७३,९; १०६४ स्वभिष्टयः वयं असाम।
नरां न विष्पर्धासः १,१७३,१०; १०६५ अस्माक शंसैः।
नवं इत न कुम्भम् १०,८९,७; २६६८ गिरिं बिभेद।
नव्यः न। अथ० २,५,२, २८६४ इन्द्र जठरं पृणस्व।
नव्यं न। साम० ९५३, २९९८ जठरं पृणस्व।
नावम् न पर्षणिम् १,१३१,२, १०२२ इन्द्रं श्रुवस्य धुरि।
नावम् न समने २,१६,७; ११७८ वचस्युवं सवनेषु।
नावा इव यान्तम् ३,३२,१४; ११९५ इन्द्रं उभये हवन्ते।

महान् इव युवजानिः ८,२,१९; १३४ अस्मान् मा अभि।
मही इव ८,९०,६; १३९६ ते कृत्तिः शरणा।
मही इव द्यौः १०,१३३,५; २७८१ तस्य बलं अव तिर।
मातुः न सीम् ६,२०,८; १८९१ उप सृज इयध्यै।
मासा इव सूर्यः १०,१३८,४, २७९५ पुर्य वसु आ ददे।
मित्रः न १०,२२,१; २४६६ इन्द्रः जने श्रूयते।
मित्रः न १०,२२,२; २४६७ इन्द्रः जनेषु असाम्या।
मित्रः न १०,२९,४; २५१८ नः कत् आगन्।
मित्रः न। साम. ९५४, २९९९ इन्द्रः वृत्रं जघान।
मित्रायुवः न पूर्वतिम् १,१७३,१०; १०६५ मध्यायुवः।
मूषः न शिश्ना १०,३३,३, २५४० ते स्तोतारं मा आध्यः।
मृगः न १,१७३,२; १०५७ अक्ष. (सन्) अति।
मृगः न कुचर. १०,१८०,२; २८४० इन्द्र. भीमः।
मृगः न वारणः दाना (नि) ८,३३,८; ३१७ त्वं पुरुत्रा।
मृगः न हस्ती ४,१६,१४, १४८० तविषीं उशाणः भीमः।
मृगं न व्राः ८,२,६; १२१ यत् ईम् अस्वत् अन्ये मृगयन्ते।
मृगं न ८,१,२०, १०६ अहं गिरा भूर्णिं त्वा मा चुक्रुधम्।

यथा मेधिरा आहुवन्त ८,३८,९; ३०२९ एवावाम्।
यजमानः न होता ४,१७,१५; १५०२ कृष्णः ईम् आजिघर्ति।
यतिः न। साम० ९५४; २९९९ इन्द्र वृत्रं जघान।
यतीः न। अथ० २,५,३; २८६५ " " "
यवम् न १,१७६,२; १०८६ इन्द्रः वृषा चर्कृषत्।
यवं न पश्वः आ ददे ८,६३,९; ५८६ अस्य वृष्णः ओदने।
यवं न वृष्टिः १०,४३,७; २५६३ विप्राः अस्य महः।
यवं यथा गोभिः श्रीणन्तः ८,२,३; ११८ वयं तथा तं।
यवमन्तः यवं चित् यथा १०,१३१,२; २७७४ इह एषां।
युजं न १०,८९,८; २६६९ जना मित्रं प्र मिनन्ति।
युजा इव वाजिना अक्तं २,२४,१२; ३३५२ नः हविः।
यूथा इव वंसगः १,७,८; ३५ वृषा कृष्टीः ओजसा इयर्ति।
यूथा इव पश्वः ५,३१,१, १६९३ इन्द्र (शत्रुसैन्यानि)।
यूथा इव पश्वः पशुपा. ६,१९,३, १८७३ दमूना वाजौ।
यूथा इव अप्सु ६,२९,५; १९६६ समीजमानः ऊती।

युवतीः इव प्रवणे १,५२,५; ७६४ ऊतयः स्ववृष्टिं।

रथीः इव अवसः ४,४१,९; ३१५४ प्रविणं इच्छमानाः।
रजी न १०,१०५,२; २७१५ यस्य हरी केशिना।
रथः न ३,४९,४; १४३७ वायुः रजस्स्पृष्ट ऊर्ध्व.।
रथः न महे ६,३४,२; २०२२ इन्द्रः अनुमाद्यः।
रथाः इव ४,१९,५; १५२६ अद्रयः साकं प्र ययुः।
रथाः इव वाजयन्तः ८,३,१५; १७० अक्षितोतयः।

रथं न १,६१,४; ८५९ अस्मै सोमं सं हिनोमि।
रथं न ५,२९,१५, १६८१ स्वपाः भद्रा सुकृता अतक्षम्।
रथं न पृतनासु १०,२९,८. २५३२ अस्मान् आतिष्ठ।
रथं न धीरः १,१३०,६; १०१६ आयवः ते इमां वाचं।
रथम् यथा ८,६८,१; २२९१ तथा त्वाम् सुम्नाय आवर्त -।
रथम् इव अश्वाः १०,११९,३, २८५२पीताः उत् मा अयं।
रथान् इव १,१३०,५; १०१५ नद्यः समुद्रं असृजः।
रथान् इव ८,१२,३, २९० येन सिन्धुम् प्रचोदयः।
रथान् इव वाजयतः १,१३०,५; १०१५ नद्यः समुद्रं अच्छ।
रथैः इव। अथ. ७,५०,३; २९०८ वाजयद्भिः प्र भर सोमम्।
रथे न पादम् ७,३२,२; २२३६ जरितारः इन्द्रे कामं वधुः।
रथीः इव ८,९५,१; २३३६ सुतेषु आ त्वा गिरः अस्थुः।
रथ्यः न धेनाः ७ २१,३; २१६३ रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि।
रथ्या इव ३,३६,६; १३२८ आपः समुद्रं जग्मुः।
रथ्या चक्रा इव १०,८९,२; २६६४ सूर्यः वर्तांसि उह।
रम्भं न जिव्रयः ८ ४५,२०, ४६२ वय त्वा आ रम्भमा।
रयिम् न १०,१३४,४; २७८८ सुन्वते सचा ऊतिभि।
रयिम् इव पृष्ठं प्रथवन्तं २,१३,४, ११४० पुष्टिं प्रजाभ्यः।
रश्मीन् यमितवा इव १,२८,४; ६९ यत्र मन्थां विबध्नते।
राजा इव १०,४३,२; २५५८ बर्हिषि अधि निषद्।
राजा इव जनिभिः ७,१८,२; २१२० शुभि. त्वं क्षेषि।
राजा इव सत्पतिः १,१३०,१; १०११ विदथानि अच्छ।
रिष्टं न यामन् १,१३१,७, १०२७ विश्वा दुर्मतिः अप भूतु।

वंशम् इव १,१०,१; ५८ ब्रह्माणः त्वा उद् येमिरे।
वंसगः न १,५५,१; ७९७ इन्द्रः वज्रं शिशीते।
वंसगः तातृषाणः न १,१३०,२; १०१२ इन्द्र सोमं पिब।
वज्रः न संभृतः ८,९३,९, २४३८ सबलः अनपच्युतः।
वत्सं न मातरः ३,४१,५; १३७७ मतयः इन्द्रं रिहन्ति।
वत्सं न मातरः ६,४५,२५,२०८४ गिरः त्वा अभि प्र णोनुमः।
वत्सं न मातरः ८,९५,१; २३३६ गिरः त्वा समनूषत।
वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ८,८८,१; ८९४ इन्द्रं गीर्भिः।
वत्सानां न तन्तयः ६,२४,४; १९३१ ते दामन्वन्त।
वधूयुः इव ३,५२,३; १४४८ नः गिरः जोषयासे।
वधूयुः इव योषणाम् ४,३२,१६; १६६० "
वना इव सुधितेभिः ६,३३,३; २०१८ एषु अत्कैः वधीः।
वना इव अग्निः ८,४०,१; ३१०१ येन दृळ्हा समत्सु।
वना इव स्वधितिः १०,८९,७, २६६८ इन्द्रः वृत्रं जघान।
वनानि न ८,१,१३; ९९ प्रजहितानि अमन्महि।
वने न वायो न्यधायि १०,२९,१; २५१५ वां स्तोमः शुचिः।
वयः न स्वसराणि २,१९,२; ११०० नदीनां प्रयांसि।

❀

वयः न वर्वृतति आमिषि ६,४६,१४, २१०३ बाह्वोः गवि।
वयः न अस्तम् ८,३,२३; १७८ वह्नयः तुग्र्यं धुरं ।
वयः यथा ८,२१,५, ४१३ तथा वयं मधौ सीदन्तः ।
वय· न वृक्षं १०,४३,४, २५६० सोमासः इन्द्रं ।
वया इव ८,१३,१७; ३३७ इन्द्र क्षोणीः अवर्धयन् ।
वयाः इव ८,१३,६, ३२६ गिरः अनु रोहते ।
वयाम् इव वृक्षस्य ६,५७,५, ३३३४ इन्द्रस्य सुमतिं ।
वराः इव १,८३,२, ९३२ देवास. ब्रह्मप्रियं जोषयन्ति ।
वरुणः न १०,९९,१०, २६८९ दस्मः मायी ।
वरुणः न १०,१४७,५, २८०९ दस्मः त्वं मायी ।
वस्त्रा इव ५,२९,१५; १६८१ अहं भद्रा सुकृता अतक्षम्।
वस्त्रा इव गव्या ८,१,१७; १०३ वासयन्तः नरः ।
वहतुं न धेनवः १०,३२,४; २५३३ सधस्थं अभिचारु ।
वाचं न वेधसाम् १,१२९,१, १००० अस्माकं (हविः)।
वाजम् न जिग्युषे ६,४६,२; २०९१ रथ्य अश्व सं किर ।
वाजं न गव्यम् ४,१६,११; १४७७ ऋज्रा ।
वाजयुः न रथम् २,२०,१, ११०८ ते वयः प्र भरामहे ।
वाणीः इव त्रितः ५,८६,१, ३०४० स दृळहा चित् द्युम्ना ।
वातः न जूतः स्तनयद्भिः ४,१७,१२;१४९९ सः अस्य शुष्मं।
वातः यथा वनं १०,२३,४; १४८४ इन्द्रः सुते मधु उत् ।
वाताः इव ८,४९,८, ४९२ प्रसक्षिणः हरयः ।
वाताः इव प्रदोधतः १०,११९,२; २८५१ उत् मा पीता· ।
वायुः न नियुतः ३,३५,१; १३१२ रथे युज्यमाना हरी ।
वायुः न नियुतः ७,२३,४; २१८३ नः अच्छा आ याहि ।
वार् न वातः तविषीभिः ४,१९,४;१५२५ इन्द्र. शवसा ।
वाशी इव प्राची सुन्वते ८,१२,१२, २९९ सनिः मित्रस्य ।
वाश्राः इव धेनवः १,३२,२;७१६ आपः समुद्रं अव जग्मुः।
वाश्रा पुत्र इव प्रियम् १०,११९,४;२८५३ मतिः मा उप।
विम् न पाशिन. ३,४५,१; १४०४ त्वां केचित् मा ।
वितत यथा रजः १,८३,२; ९३२ देवासः अव पश्यन्ति ।
विदथ्यः न सम्राट् ४,२१,२; १५४५ क्रतुः कृष्टीः अभ्यस्ति ।
विदे यथा ८,४९,१; ४८५ सुराधसम् इन्द्रम् अर्च ।
विः इव १०,८६,७, २६४६ (मेपिता) हृष्यति ।
विषः नः ६,४४,६; २०४१ यस्य ऊतय. ।
वी इव आजन्तः ७,५५,२; ३२७१ ऋष्टयः उप स्रक्वेषु ।
वृकः यथा अविम् । अथ. ७,५०,५; २९१० एव ते कृतं ।
वृक्षः न पक्वः ४,२०,५, १५३० नवेभिः ऋषिभिः ।
वृक्षस्य नु वयाः ६,२४,३; १९३० ते ऊतयः वि रुरुहुः ।
वृक्षाः इव ८,४,५; २३३ ते पृतनायवः नि येमिरे ।
वृजनम् न १,१७३,६; १०६१ इन्द्रः भूमा संविव्ये ।

वृत्रः इव दासम् १०,४९,६; २५९५ अहम् वृहद्रथं ।
वृषभः न भीमः तिग्मशृङ्गः ७,१९,१; २१४० एकः विश्वाः।
वृषभः न १०,१०३;१; २६८२ भीम. इन्द्रः ।
वृषभः न तिग्मशृङ्गः १०,८६,१५; २६५४ मन्थः ते इन्द्र ।
वृषभा इव धेनोः ४,४१,५; ३१५० अस्याः धियः युवां ।
वृषभा इव ६,६४,४; २०९३ मन्युना मनुष्यान् बाधसे ।
वृषभं यथा अवक्रक्षिणम् ८,१,२, ९० तथा इन्द्रं शंसत ।
वृषा न क्रुद्धः १०,४३,८; २५६४ इन्द्रः रज सु आपतयत् ।
वृष्णे न ८,३४,५; ४२९ सुतानां ते पूर्वपाय्य दधामि ।
वृषायुधः न वध्रयः १,३३,६;७३५ निरष्टाः इन्द्रात् प्रवद्भिः।
वृष्टिः इव अभ्रात् ७,९४,१; ३०७९ पूर्व्यस्तुतिः मन्मनः।
वेः न १०,३३,२, २५३९ अमतिः नग्नता नि बाधते ।
वेः न गर्भम् १,१३०,३; १०१३ इन्द्रः गुहा निहितं ।
वेनः न ८,३,१८; १७३ हवं शृणु धी ।
व्रजं न गावः ५,३३,१०, १७२६ रायः प्रयता अपि ग्मन्।
व्रततेः इव पुराणवत् ८,४०,६; ३१०६ अपि वृश्च गुष्पितम्।
व्यथिः यथा। अथ. ६,३३,२; २८८८ इन्द्रस्य श्रवः नाद्दधे।

शची इव १०,७४,५, २६३८ इन्द्रं अवसे कृणुध्वम् ।
शतानीका इव ८,४९,२; ४८६ धृष्णुया प्र जिगाति ।
शवः ते यथा अपरीतम् ८,२४,९;१७९८ तथा दाशुषे राति ।
शसने न गावः १०,८९,१४; २६७५ पृथिव्या· आपृक् ।
शाखा न पक्का १,८,८; ४५ अस्य दाशुषे सूनृता ।
शार्याते सुतस्य यथा अपिब. ३,५१,७; १४४० तथा इह ।
शिशुम् न मातरा ८,९९,६; २३८१ क्षोणी तुरयन्तं अनु ।
शुन्ध्युः परिपदाम् ८,२४,२४, १८१३ निर्ऋतीनां परिवृजं ।
शोचि न अग्ने ८,६,७, २४९ दिद्युतः धीतयः विपाम् ।
श्मशा (लुप्तोपमा) १०,१०५,१; २७१४ (अवरुध्यच)क्रद।
श्येतः न १,३२,१४, ७२८ स्रवन्तीः रजांसि अतिरः ।
श्येनान् इव श्रवस्यतः ६,४६,१३; २१०२ महाधने सर्गे ।
श्येनान् इव अन्तरिक्षे १,१६५,२; ३२५१ महा मनसा ।
श्रायन्तः इव सूर्यम् ८,९९,३; २३७८ विश्वा इत् इन्द्रस्य।
श्रियेन गावः सोमम् ४,४१,८; ३१५३ मे मनीषाः इन्द्रं ।
श्वघ्नी इव ३,१२,४; ११२५ [इन्द्रः] लक्षं जिगीवान् ।
श्वघ्नी इव ४,२०,३; १५३५ धनानां सनये आजिं जयेम।
श्वघ्नी इव निवताचरन् ८,४५,३८; ४८० एवारे वृषभा ।

सत्पतिः इव १,१३०,१; १०११ इन्द्र विदथानि आ याहि।
सदसो न भूम ४,१७,४; १४९१ य ईम् जजान अनपच्युतम्।
सद्म इव मानैः २,१५,३; ११६४ इन्द्रः प्राचः वि मिमाय।
सपत्नीः इव १०,३३,२; २५३९ पर्शवः माम् अभितः ।

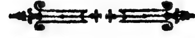
सस्निम् इव १,६१,५; ८६० अस्मै अवस्या जुह्वा समञ्जे ।
सस्नी इव आदने ६,५९,३; ३०४८ ओकिवांसा सुते सचा।
समना इव केतुः १,१०३,१; ८३९ अस्य अन्यत् इदम् ।
समना इव वपुष्यतः ८,६२,९;५७४ कृणवन् मानुषा युगा।
समुद्रः न १,३०,३; ७०१ अस्य उदरे व्यचः दधे।
समुद्रः इव १,८,७, ४४ अस्य सूनृता दाशुषे ।
समुद्रः इव ८,३,४, १५९ सहस्कृतः अयं पप्रथे ।
" " ८,१२,५, २९२ पिन्वते इमं जुषस्व ।
समुद्रं न सिन्धवः ६,३६,३, २०३३ उक्थ शुष्मा गिरः ।
समुद्रम् इव सिन्धवः ८,६,३५; २७६ उक्थानि इन्द्रं ।
" " " ८,९२,२२, २४१८ त्वा इन्दवः ।
समुद्रं न स्रवत ३,४६,४, १४१२ सोमासः इन्द्रं आविशन्ति।
समुद्रं न सुभ्वः स्वाः १,५२,४;७६३ सद्म बर्हिषः दिवि यम्।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः १,५६,२, ८०६ गूर्तय परीणसः।
समुद्राय इव सिन्धव ८,६,४; २४६ अस्य मन्यवे विशः।
समुद्रे न सिन्धवः ६,१९,५; १८७५ अस्मिन् पथ्याः रायः।
सरः न ८,१,२३, १०९ सोमेभिः उरु स्फिरं आ प्रासि ।
ससताम् इव १,५३,१; ७७५ इन्द्रः नू चित् रत्नं अवियत्।
सहवत्सा न धेनुः १,३२,९; ७२३ उत्तरा सू अधरः पुत्रः।
सिंहः न १,१७४,३; १०७१ अपांसि वस्तो. रक्षः ।
सिंहः न ४,१६,१४; १४८० आयुधानि बिभ्रत् भीमः त्वम्।
सिन्धवः न २,११,१; ११०१ वसूयव. त्वाम् ऊर्ज ।
सिन्धुं यथा आपः अभितः १,८३,१; ९३१ भवीयसा वसुना ।
सिन्धून् इव प्रवणे ६,४६,१४; २१०३ आशुया यत. यदि।
सिन्धौ इव नावम् १०,११६,९; २७६३ [अहम् इन्द्राग्नी]।
सीराः न स्रवन्तीः १,१७४,९; १०७७ धुनिः त्वं धुनिमतीः।
" " ६,२०,२; १८९५ " "
सुतेषु यथा १,१०,५; ६२ तथा नः सख्येषु सुतेषु च ।
सुदुघाम् इव गोदुहे १,४,१; ४ सुरूपकृत्नं ऊतये जुहूमसि।
सुदुघाम् इव गोदुहः ८,५२,४; ५१८ तं त्वा वयम् ।
सुदृशी इव पुष्टिः ४,१६,१५; १४८१ रण्वः (भवसि)।
सुयतः न अर्वा ७,२२,१; २१७१ सोतुः बाहुभ्यां यं ते।
सूनुभिः न १,१००,५; ९६१ रुद्रेभिः ऋभ्वास इन्द्रः ।
सूरिः न धातवे अजाम् ८,७०,१५;२३३५ मघवा वत्सं नः।
सूर्यः न २,११,२०; ११२० इन्द्र चक्रं अवर्तयत् ।
" " ८,१२,७; २९४ इन्द्रः रोदसी अवर्धयत् ।

सूर्यः इव ८,६,१०, २६२ अहम् अजनि ।
सूर्यः रश्मिम् यथा ८,३२,२३, २०२ तथा मे गिरः त्वा ।
सूर्यम् इव दिवि ५,२७,६, ३०३९ शतदाम्नि अश्वमेधे ।
सूर्यस्य इव १,१००,२; ९५८ इन्द्रस्य यामः अनाप्तः ।
" " १०,४८,३, २५८१ मम अनीकं दुस्तरम् ।
सूर्याः इव ८,३,१६; १७१ भृगवः स्तोमेभिः महयन्ते ।
" " ८,३४,१७, ४४१ रघुष्यदः भ्राजन्ते ।
सृण्यः न जेता ४,२०,५, १५३७ यः ऋषिभिः विररप्शे ।
सेक्ता इव कोशम् ३,३२,१५; १२९६ सिसिचे पिबध्यै ।
सोमः न पीतः ८,९६,२१; २३६३ नर्या अपांसि कृण्वन् ।
सोमः न पृष्ठे पर्वतस्य ५,३६,२. १७४५ ते हनू शिप्रे ।
स्कन्धांसि इव कुलिशेन १,३२,५, ७१९ इन्द्रः वज्रेण वृत्रं ।
स्तनं न मध्वः १,१६९,४. १०४६ त्वां वाजैः पीपयन्त ।
स्तर्यः न गावः ७,२३,४. २१८३ आप चित् पिप्युः ।
स्थिरा इव धन्वनः १०,११६,६. २७६० अभिमातीः ओजः ।
स्थूरं न कच्चित् ८,२१,१: ४०९ वयं त्वां वाजे चित्रं ।
स्नाम्ना इव धनु । अथ०७,५०,९. २९११ कृतस्य धारया ।
स्त्रक्ती इव वंसग ८,३३,२, २११ सुतं तृषाणः ओकः ।
स्वर् न ४,२३,६, १५७१ गो चित्रतमं वपुः आ इषे ।
स्वर् न ६,२९,३: १९६४ दृशे कं नृतो इषिरः बभूथ ।
स्वर् न १०,४३,९. २५६५ शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ।
स्वर् न । अथ०२,५,२,२८६४ उप त्वा मदाः सुवाचः अगुः ।
स्वर् न । साम०९५३;२९९८ उप त्वा मदाः सुवाचः अस्थुः ।
स्वर् मीळ्हे न च ४,१६,१५. १४८१ रावने चकानाः ।
स्त्रानः न अर्वा १,१०४,१, ८४७ तम् (योनिम्) ।
स्वेदा. इव १०,१३४,५, २७८९ दिद्यवः विष्वक् अभितः ।
हंसा इव ३,५३,१०; १४६२ हे कुशिकाः श्लोकं कृणुथ ।
हरितः न १,५७,३, ८१३ यस्य ज्योतिः श्रवसे अकारि ।
हरितः न सूर्यम् १,१३०,२, १०१२ त्वा (अश्वाः) आ ।
हर्म्यम् यथा इदं ७,५५,६. २२७५ तथा तेषां अक्षाणि ।
हव्यः न १,१२९,६, १००५ इषवान् मन्म रेजति ।
हिन्वानं न वाजयुम् ८,१,१९. १०५ शक्र एनं विश्व ।
होता इव ८,१२,३३; ३२० पूर्वं चित्तये प्राध्वरे ।
होता न अमृतः ४,४१,१, ३१४६ वां सुम्नम् कः स्तोमाः ।
हृदा. इव ३,२६,८; १३३० सोमधानाः कुक्षयः ।
हृदं न ऊर्मयः १,५२,७; ७६६ ब्रह्माणि त्वां न्यूषन्ति ।



दैवत-संहितान्तर्गत--

इन्द्रमन्त्राणां सूची ।



❀

दैवत-संहितान्तर्गत--इन्द्रदेवतायाः

गुणबोधक-पदानां सूची ।

❀

४,७, २३५। ६,१४,१८,२५६,२६०। ११,२; ४१०। २४,७; १७९६। ३२,२,२७; १८१,२०६। ३३,९; २१८। ३३,१०, २१९। ३७,२;१७७७। ४५,३५,४७७। ४६,२०,१८३६। ४९,७; ४९१। ५०,६, ५००। ५२,५,५, ५१९,५१९। ६१,१२;५५९। ६५,५; ६०५। ६८,६,२२९६। ७०,४, २३२४। ९६,१०; २३५४। ९७,१०,१३; ९८५,९८८। १०,२९,३; २५१७। ४४,३, २५७०। ७३,१, २६२३। ८९,१८; २६७९। १०३,५, २६९५। १०४,११; २७१३। ११३,३,६; २७४७,२७५०। ११६,५; २७५९। १२०,१, २७६४। ४७,३; २८४४। ७,८२,५, ३१७६। साम० २३१;२९८०। [इन्द्राग्नी] १,२१,४,३००५। ऋ०६,६०,५, ३०६०। [इन्द्रः] ऋ० १,१६५,६,१०, ३२५५,३२५९। १,१७१,५; ३२६७। [इन्द्रासोमौ] ६,७२,५, ३२७५

उग्रः जनुषा ३ ४६,२, १४१०

उग्रधन्वा १०,१०३,३; २६९४

उग्रबाहुः ८,६१,१०; ५५७। अ० ४,२४,२, २८६८

उग्राः [मरुतः] १,१७१,५; ३२६७

उत्तरः ८,१४,१५, ३६८

उत्तरः विश्वस्मात् १०,८६,१,२३, २६४०,२६६२

उत्सः हिरण्यय ८,६१,६; ५५३

उद्यन्ता गिरः १,१७८,३; १०९८

उद्वा-द्रु-वृषाणः ४,२०,७, १५३९। २९,३; १६०६

उपद्धानः आशून् धुरि ४,२९,४, १६०७

उपमः मघोनाम् ८,५३,१; ५२५

उपमानां प्रथमः ८,६१,२; ५४९

उपसद्य। अथर्व० ६,९८,१; २९०२

उपस्तभायन् ४,२१,५, १५४८

उभयस्य राजा ६,४७,१६; २११४

उभयाविन्-वी ८,१,२, ८८

उराणः समत्सु सताम् १,१७३,७; १०६२

उरुः २,१३,७; ११४३। २२,१, १२?३। ३,४१,५, १३७७। ४६,४; १४१२। ६,१९,१; १८७१। ८,६५,३, ६०३। १०,४७,३, २८४४

उरुक्रमः ८,७७,१०; ६४९। [इन्द्राविष्णू] ७,९९,६, ३३१६

उरुगायः १०,२९,४; २५१८

उरुज्रयाः ८,६,२७, २६९

उरुधारा ८,१,१०; ९६

उरुव्यचस्-चाः १,१०४,९, ८५५। ६,३६,३; २०३३। ७,३१,११; २२३३। ८,२,५, ११०। ३,५०,१, १४२९

उरुशंसः ४,१६,१८; १४८४

उर्वराजित् २,२१,१; ११९७

उर्वरापतिः ८,२१,३, ४११

उर्वी [भूमिः] ६,४७ २०; ३३२७

उर्व्यूतिः ६,२४,२. १९२९

उशन् १,१०१,१०; ८२६। ३,४३,७; १३९७। ४,२०,४, १५३६

उशन् सोमम् सोमान् ४,२४,६, १५८२। ७,९८,२; २२८०

उशधक् ३,३४,३, १३०३

ऊर्ध्वः रथः न ३,४९,४, १४२७

ऊर्ध्वसानः द्रुह्वणे मनुषे १०,९९,७; २६८६

ऋग्मी ऋग्मिभिः १,१००,४; ९६०

ऋग्मियः १,९,९, ५६। ५१,१, ७९५। ६२,१; ८७२। ६,४५,७. २०६६। ८,४०,१०, ३११०

ऋघायन् १०,११३,६, २७५०

ऋघायमाण: १,१०,८,६५। ६१,१३;८६८। १७६,१,१०८५

ऋघावान् ३,३०,३; १२४०। ४,२४,८; १५८४

ऋचीषमः १,६१,१;८५६। ६,४६,४;२०९३। ८,३२,२६; २०५। ६२,६,५७१। ६८,६; २२९६। ९०,१; २३९१। ९२,९; २४०५। १०,२२,२; २४६७

ऋजीषः १,३२,६, ७२०

ऋजीषिन्-षी ३,३२,१; १२८२। ३६,१०; १३३२। ४३,५; १३९५। ४६,३, १४११। ५०,३; १४३१। ४,१६,१,५; १४६७,१४७१। ५,४०,४, १७६८

ऋजीषिन् ६,१७,२,१०, १८४२,५०। १८,२; १८५७। २०,२, १८८५। २४,१; १९२८। ४२,२, १९९९। ७,२४,३; २१८८। ८,३२,१; १८०। ३३,१२; २२१। ७६,५, ६३२। ८,९०,५; २३९५। ९६,९, २३५३। [सोम] १०,८९,५; ३२७६

ऋजुक्रतुः १,८१,७, ९२२

ऋञ्जसानः ४,२१,५, १५४८

ऋणकातिः ८,६१,१२, ५५९

ऋणयाः ४,२३,७; १५७२

ऋतम् ४,२३,८,९,१०; १५७३ ७४-७५। ८,६,१०, २५२

ऋतं कृण्वन् २,३०,१; १२२७

ऋतपाः ७,२०,६; २१५६

ऋतस्य प्रजा ८,६,२; २४४

ऋतयुः ८,७०,१०; २३३०

ऋतावत्-वा ३,५३,८; १४६०

ऋतावृधा (द्यौ) [इन्द्राग्नी] ६,५९,४; ३०४९। [सविता] ७,८२.१०; ३१८१। ७,८३,१०; ३१९१

पृतनाषाट् १,१७५,२; १०८०। ६,१९,७, १८७७। ४५,८, २०६७। १०,१०३,७, २६९७
पृतनासु सासहि. ८,७०,४; २३२४
पृथिव्या जनिता ८,३६,४, १७७२
पृथिव्याः पति. [अग्नि] वा० य० १३,१४, २९३०
पृथु २,२१,४, १२२० । ६,१९,१, १८७१
पृथुज्रयाः ३,४९,२, १४२५
पृथुबुध्न १०,४७,३, २८४४
पृदाकुसानु ८,१७,१५, ४०८
पृष्ट ३,४९,४, १४२७
पौर अश्वस्य ८,६१,६, ५५३
प्रकेत अध्वरस्य १०,१०४,६, २७०८
प्रखादः १,१७८,४ १०९८
प्रचर्षणी [इन्द्राग्नी] अथ० ७,११०,२, ३१३२
प्रचेता. ७,३१,१० २२३२। ८,९०,६, २३९६
प्रजा ऋतस्य ८,६,२; २४४
प्रजानन् ३,३५,४,८; १३१५,१३१९
प्रणेता ३,३०,१८,१२५५। ८,२४,७,१७९६। ४६,१;१८१७
प्रणेता वस्य. अच्छ ८,१६,१०; ३९१
प्रणेनीः ६,२३,३ १०२०
प्रतिमानम् ओजस. १,१०२,८ ८३५
प्रतिमानम् सत. सत. ३,३१,८, १२६७
प्रत्नः १,६२,२, ८५७। ३,४१,९, १३९०। ६,२२,७, १९१३। ३९,५ १९८७। ४५,१९. २०७८। ८,६,३०;२७१
प्रत्वक्षाण -क्षसम् [द्वि०] १०,४४,१,२५६८। ४४,३,२५७०
प्रथम. ५,३१,१; १६९३
प्रथम उपमानाम् ८,६१,२, ५४९
प्रथमः जातः एव २,१२,१; ११२२
प्रथमः दाता ८,९०,२, २३९२
प्रथमः ब्रह्मणे १,१०१,५, ८२१
प्रथमः यज्ञियानाम् ६ ४१,१; १९९३
प्रथम जायमानः ४,१७,७, १४३४
प्रदिव. १,५४,२, ७७६। ३,५१,४, १४३७। ६,२३,५; १९२२। ४४,१२; २०४७
प्रदिशमानः ऋतेन ३,३१,२१; १२८०
प्रपान्थितमः १,१७३,७, १०६२
प्रब्राणः जनेषु बलानि १०,५४,२; २६०९
प्रभङ्गः दुर्मतीनाम् ८,४६,१९; १८३५
प्रभङ्गी ८,६१,१८, ५६५
प्रभञ्जन् सेनाः [बृहस्पतिः] वा० य० १७,३६; २९३१
प्रभर्ता १,१७८,३, १०९८। ८,२,३५; १५०
प्रभूवसुः १,५८,४; ८१४। ८,४५,३६; ४७८। साम० ११२, २९७८
प्रमतिः ४,१६,१८, १४८४। ६,४५,४; २०६३। ७,२९, ४; २२१६
प्रमथिन् ६.३१.५; २०१०
प्रमरः १०,२७,२०; २५१०
प्रमिनानः १०,२७,१९; २५०९
प्रमृण्णन् ओजसा १०,१०३,६ २६९६
प्रयज्युः ६,२१,१०, १९०५। २२,११; १९१७
प्रयन्ता ८,९२,२१, २४५०
प्रया[य] वयन् अन्यान् ३,४८,३; १४२१
प्ररिक्ता क्षमः दिवः च १,१००,१५; ९७१
प्रवयाः २,१७,४, ११८४
प्रविद्वान् अथर्व० ७,९७,१; ३११०
प्रवीरः १०,१०३,५, २६९५
प्रवृद्धः १,३३,३, ७३२। ८,६,३३; २७५। १२,८; २९५। ७७,३, ६४२। ९३,५; २४२४। ९६,२; २३४६। वा० य० ३३.७९; २९७०। ऋ० १,१६५,९; ३२५८
प्रवेपनी ५.३४,८; १७३४
प्रशर्धः ८,४,१, २२९
प्रसक्षिन् ८,३२,२७; २७६
प्रसाहः ६,१७,४; १८४४
प्रहावान् समिथेषु ४,२०,८; १५४०
प्रहेतृ-ता ८ ९९,७, २३८२
प्राचामन्युः ८,६१.९ ५५६
प्राविता ८,९६.१०; २३६२
प्राशुषाट् ४,२५,६; १५९३
प्रासहः १,१२९,४.४; १००३,१००३। १०,७४,६;२६३९। ८ ४६,२०; १८३६
प्रिय ८,५०,३; ४९७। ९८ ४; २३६७
प्रेतारा (रौ) धिय. [इन्द्रावरुणौ] ४.४१,५; ३१५०
प्रीणाना [इन्द्रवायू] ७,९१,५; ३१३८
बन्धुमान् ८,२१,४; ४११
बभ्रिः वज्रम् ६,२३,४; १९२१
बभ्रू [इन्द्राग्नी] ४.३२,२३-२४; ३३४८-४९
बर्हणा १,५५,३, ७८८। ५७,५; ८०९
बर्हिः ओका: [तदोका] ३,३५ ७, १३१८
बलविज्ञायः १०,१०३,५; २६९५
बहुलाभिमानः १०,७३,१; २६२३

❀

३०,३,७, १६८४,८८। ३१,१,६; १६९३,९८। ३४,२-३;
१७२८ २९। ३६,३ ४, १७४६-१७४७। ६, १९, १,
१८७१। २१,६; १९०२।२३,१ १९१८। २४,१;१९१८।
२७,३,१९५७।४४,१०,१७,१८,२०४५,५२,५३।४६,८,१०,
२०९७,९९। ४७ ९,११,१५, २१०७,९,१३। ७,१८,२,
२१२०। १९,८,९, २१४७-४८। २०,९;२१५९।२२,३,६;
२१७३,७३।२६,१,२ २१९८-९९।२७,२,२,४;२२०४,४,६।
२८,५, २२१२। २९ १,३,४,५.२२१३,१५,१६,१७।३०,५,
२२२२। ३२,७,१४,१५,२२४१,४८,४९।३२,१९,२१,२३,
२४,२५,२२५३,५५,५७,५८,५९।९८,५,२२८३।१०४,१०;
२२८७। ८,१,४,१२,९०,९८।२,१३;११८। ३,१४,१७,१८
१६९,७२,७३। ४,४,१०,२३२,३८। २१,१०,४१८। २४,१०,
९१; १७९९,१८००। ३२,८, १८७। ३३,३,९,११,१३,
२१२,१८,२०,२२। ३६,२ १७७०। ४५,६ ४४८।
४६,११,१३ १८२७,२९। ४[illegible] १,९,१०, ४८५,९३,९४।
५०,१० ५०४। ५१,१,६,७ ५०५,१०,११। ५२,५,८;
५१९ २२। ५३,१, ५२५। ५४,७; ५३७। ६१,१,४,७,
१३,१४,१८,५४८ ५१,५४,६०,६२,६५। ६९,१०; ५७५।
६५,१०; ६२०। ६६,१३; ६२५। ७०,६,९,१५; २३२६,
२९,३५। ७८,१०;६६०। ८८,६,८१९। ८९,५,२३८८,
९०,४; २३९४। ९३,१०; २४३९। ९६,२० २३६२।
९७,१,८,१३, ९७३,८३,८८। १००,६; ९९६। १०,२३,
२,३, २४८२-८३। २८,३, २५२४। ५; २५२६ ३३,३;
२५४०। ४२,३,८; २५४८,५३। ४३,१,३,५,५,६ ८;
२५५७,५९,६१,६१,६२,६४। ४४,९,९; २५७६-७६।
४९ ११, २६०० ५४,१,४,५; २६०८,११,१२। ५५,१,
२६१४। ७४,५; २६३८। ८९,१८; २६७९। १०३,१०;
२७००। १०४,७,११; २७०९,१३। १११,६; २७३०।
११२, ९, १०; २७४३, २७४४। ११३, २, २७४६।
११६,७,७, २७६१, २७६१। १३४, ६; २७९०।
१०,१४७,३; २८०६। १४७,४,५. २८०७-८। १६०,४,
२८२७। १६७,२; २८३०। अथ० ७,३१,१, २९०५।
वा० य० ७,४ २९२३। २०,७७; २९६१। ३३,७९;
२९७०। साम० २९८, २९८२। ऋ० ५ ८६,३; ३०४२।
१,१६५ ९; ३२५८। १,१७१,३, ३२६५। अथर्व० ८,४,
१९, ३२९६। ऋ० ३,६०,५, ३३४१। [इन्द्राब्रह्मण-
स्पती] २,२४ १२, ३३५९
मघवत्तम ८,५४ ५. ५३५
मघानां विभक्ता ७,२६ ४, २२०१
मघानि दाता ४,१७,८. ४९५
मघोनां उपम ८,५३,१, ५२५
मघोनां महिष्ठ. ५,३९ ४. १७६३
मतिः (ते- संबो०) ८,६८,२; २२९२
मत्वः ३,३४,२, १३०२
मथायन् नमुचेः शिर ५,३०,८; १६८९
मदः शुष्मिन्तमः ते १,१७५,५. १०८३
मदच्युत् १,५१,२; ७४६
मदपती मदानाम् [इन्द्राविष्णू] ६,६९,३; ३३०८
मदवृद्धः १,५२,३, ७६२
मदिन्तमः ८,१३,२३; ३४३
मदे हित ८,९३ ८, २४३७
मद्य ८,२,२५, १४०
मद्वने (चतुर्थी) ८,९२,१०, २४१५
मनस्वान् २,१२,१; ११२२
मनुर्हितः [अग्नि] ८,३४,८, ४३२
मनोजुवः वा० य० १७,२३; २९३१। [इन्द्रवायू]
ऋ० १,२३,३, ३२१४
मनोः वृधः ८,९८,६, २३६९
मन्तुमत् (मः- सं) १०,१३४,६, २७९०
मन्त्रः १०,५०,४; २६०४
मन्दद्वीरः ८,६९,१; २३०४
मन्दमान १०,५०,१, २६०१। ७३,५, २६२७। ११२,
२; २७३६
मन्दसानः १,१०,११; ६८। १००,१४; ९७०। १३१,४;
१०२४।२,११,३,१५,१७,११०३,१५,१७।३०,५;१२३१।
४,२६,३; १५१८।२९,१, १६०४। ४,३२,१०; १६५४।
५,२९,२; १६६८। ६,२६,६; १९५२। ४,१७.३;१४९०।
६,१७,५, १८४१। ६,४४,१५, २०५०। ८,४९,४
४८८। ९३,२१, २४५०। [इन्द्राबृहस्पती] ४,५०,१०;
३३२३। अथ० २०,१३,१, ३३२९
मन्दमान सुस्वनिभिः ४,२९,२; १६०५
मन्द्रानः १,८०,६; ९०५।८२,४, ९२९।२,१९,२,११२००।
३,५०,३, १४३१। ५ ३२,६, १७१०। ८,१३,४; ३२४।
१५,५; ३७३। ३२,५, १८४। ३३,७; २१६। ८८,१;
८९४। ४५,३१; ४७३। १९,१६७,२; २८३०। ७,९४,
११, ३०८९
मन्दू [इन्द्रामरुतः] १,६,७ ३२४६
मन्दिन्-न्दी १,९,२, ४९
मन्दिष्ठः साम० २२६; २९७९
मन्द्र. १०,७३,१, २६०३

मित्रस्य: सनि: ८,१२,१२; ११९
मिमान ओज. २,१७.२; ११८१
मिमिक्षु: ३,५०.३, १४३१
मीढ्वस्-ढ्वान् ८,४६,१७, १८३३ । ७६,७ ६३४
मुनीनां सखा ८,१७ १४, ४०७
मुष्कयो: बद्ध: १०,३८,५; २५४५
मूर्धा दिव -[अग्नि] वा० य० १३,१४; २९३०
मृक्ष: ८,६६,३, ६१५
मृळीक ६,३३.९; २०२०
मेडि: साम० ३२७, २९८३
मेधिर: १,६१,४; ८५९ । ६,४२,३; २०००
मेष: १,५१,१, ७४५ । ५२,१, ७६० । ८,९७,१२, ९८७
मेष: भूत: ८,२,४०, १५१
मेहनावान् ३,४९;३. १४२६
म्रक्षकृत्वा ८,६१,१०, ५५७
यजत: २,१६ ४, ११७५।२१,१ १२१७।८.१७,१५;४०८
यजत्र: १,१२९,७, १००६ । ३,३५,१०; १३२१ । ६,२५, ८; १९४५
यज्ञवाहस्-हा:८,१२,२०,३०७।[इन्द्रवायू]४,४७,४:३२२९
यज्ञवृद्ध: ६,२१,२; १८९८
यज्ञिय: ३,३२,७,१२, १२८८,१२९३ । ६,४७,१३, २१११ । ८,९७,१३, ९८८
यज्ञिय विश्वेषु सवनेषु १०,५० ४, २६०४
यज्ञियानां यज्ञिय: ८,९६ ४, २३४८
यज्वन वृध: ८,३२,१८; १९७
यतंकर: ५,३४,४; १७३०
यतस्रुचा (चौ) [इन्द्राग्नी] १,१०८,४; ३०११
यम: ८,२४,२२; १८११
यमी [इन्द्राग्नी] ६.५९,२, ३०४७
यश: ५,३२,११;१७१५ । ८,६१,५,५५२ । १०,५,२३९५
यह्व: ८,१३,२४; ३४४
यातयन् ऋतुथा ५,३२,१२, १७१६
याता रथेभि: ८.७०,१, २३२१
यादमान: शश्वत् शश्वत् ऊतिभि: ३,३६,१; १३२३
युगा मानुषा कृण्वन् ८,६२,९; ५७४
युज· १,७,५; ३२ । १२९,४,४; १००३,१००३
युजम् रथीनाम् (द्वि०) ६,४५.१९; २०७८
युजान: अश्वा १०,२२,४; २४६९
युजान हरिभि: ८,५०,७; ५०१
युजान: हरित. रथे ६ ४७,१९; २११७
युज् (जा-तृती०) १,२३,९, ३२४९
युत्कार १०,१०३,१; २६९३
युध: १०,१०३,३; २६९४
युध्म: २,११,३, ११११ । ३,४६,१; १४०९ । ६,१८,२; १८५७ । ७,२०,३,२१५३ । ८,१,७,९३ । ९१,८;२४०४
युवा १,११,४; ७३ । २,१६,१; ११७२ । २०,३; ११९० । ३.३२,७, १२८८ । ४६,१, १४०९ । ६,१९,२. १८७२ । ४५,१; २०६० । ७,२०,१, २१५२ । ८,४५,१.२,३; ४४३-४४-४५ । ६४,७; ५९५ । साम० ४४५; २९८८ ।
[मरुत·] १,१६५,२. ३२५१
योद्धा क्रत्वा ८,८८,४, ८९७
योद्धा शवसा ८,८८,४, ८९७
योधीयान् प्रतीचश्चित् १,१७३,५; १०६०
योयुवतीनां नद· ८,६९,२; २३०५
रक्षिता चरमत. मध्यत: पश्चात् पुरस्तात् अथ० १९,१५,३; २९१६
रक्षोहा [बृहस्पति:] वा० य० १७,३६; २९३२
रणकृत् १०,११२,१०; २७४४
रणिता ८,९६,१९; २३६१
रथ: १,५५,३ ७८८
रथयावाना [इन्द्राग्नी] ८,३८,२; ३०९१
रथयु: १,५१,१४, ४५८
रथिन्-थी १०,४७.५; २८४६
रथिर· ३,३१ २०; १२७९
रथीतम: ६,४५,१५ २०७४ । ८,६१,१२;५५९ । ८,९९,७; २३८२
रथीतम: रथीनाम् १,११,१; ७० । ८,४५,७; ४४९
रथेभि: याता ८,७०,१; २३२१
रथेष्ठा: १,१७३,४,५, १०५९-६० । ६,२१,१, १८९७ । २२.५; १९११ । २९ १; १९६३ । ८,४,१३; २४१ । ३३,१४; २२३
रथोळ्हा १०,१४८,२, २०११
रध्य: हरीणाम् विव्रतानाम् १०,२३,१; २४९०
रदावसु: ७,३२,१८; २२५१
रध्रचोद: २,२१,४; १२२०
रध्रचोदन: ६,४४,१०; २०४५ । ८,८०,३; ६६३ । १०,३८,५. २५४५
रध्रस्य चोदिता १०,२४,३; २४९०
रभस: ३,३१,१२; १२७१
रयिपति: ६,३१,१; २००६

❀

(१) रथे-ष्ठाः। [इन्द्रस्य रथः।]

(२) वज्र-बाहुः। [इन्द्रस्य वज्रम्।]

हर्यतः १,५७,१, ८११
हिरण्ययः १,५७,१, ८११ । ८,६८,३, २२०३ ।
अथर्व० ६,८२,३, २९०१
हेतिम् (तपुषिम्) ३,३०,१७, १२५४

(३) वज्र-बाहुः। [इन्द्रस्य बाहू।]

अनाधृष्यौ साम० १८६९; ३०००
अमत्यौ साम० १८६९, ३०००
उपाकौ १,८१,४, ९१९
चित्रौ अथर्व० १९,१३,१; २९१४
गोजिता १,१०२,६, ८३३
पारयिष्णू अथर्व० १९ १३,१; २९१४
युवानौ साम० १८६९ ३०००
वृषभौ अथर्व० १९,१३,१; २९१४
वृषाणौ अथर्व० १९,१३,१; २९१४
सुप्रतीकौ साम० १८६९; ३०००
स्थविरौ अथ० १९,१३,१, २९१४। साम० १८६९;३०००
सव्येन यमति व्राधतश्चित् दक्षिणे सगृभीता कृतानि १, १००,९; ९६५

(४) हर्यश्वः।[इन्द्रस्य अश्वौ।]

अजिरा ३,३५,२, १३१३
अत्याः १,१७७,१; १०९१
अध्वरश्रियः ८,४ १४, २४१
अन्तमा. १,१६५,५, ३२५४
अभिमातिषाहः ६,६९,४; ३३०९
अर्वन्तः ८,९१,११; २४०७।१०,७४,१; २६३४। १०५,२; २७१५
अर्वाञ्चः १,५५,७; ८०३ । ७,१८,१; २२०८
अशीतिः २,१८,६; ११९५
अश्रमासः ६,२२,११; १९०६
अश्वासः ६,२९,२, १९६३ । ८,१,९, ९५
अष्टौ २,१८,४, ११९३
असमन्ना: १०,४४,३; २५७०
असमन्राञ्चः ६,४४,१९; २०५४
आशवः २ १६,३; ११७४ । ३,३५,४, १३१५ । ४,२९,४; १६०७ । १०.४९,७; २५९६
आसस्नाणासः ६,३७,३; १९७५
इन्द्रवाहा (द्विव०) ८,९८,९; २३७१
उग्रासः १०,४४,३, २५७०
उरवः ६.२२,११, १९०६
ऋजुयन्तः ६,३७,२; १९७४
ऋज्रा [द्विवचनम्] १,१७४,५; १०७३
ऋतयुजः ६,३९,४; १९८६
एतग्वा [द्विव०] ८,७०,७; २३२७
एतशा [द्विव०] ८,७० ७, २३२७
काम्या [द्विव०] १,६,२, २५
केता [द्विव०] १,५५,७, ८०३
केतू सूर्यस्य २,११,६; ११०६
केशवन्ता [द्विव०] १०,१०५,५, २७१८
केशिनः १,८२,६; ९३० । ८,१,२४; ११०।१०,१०५,२, २७१५
गभस्त्योः रश्मय ६,२९,२; १९६३
गावौ [द्विव०] १०,२७,२०; २५१०
घृतस्नू [द्विव०] ३,४१,९; १३८१
चत्वारः २,१८,४. ११९३
चत्वारिंशत् २,१८,५; ११९४
जूजुवानास ५,२९,९; १६७५
तपुष्पा [पुःपा] ३,३५,३; १३१४
तविषासः १०,४४,३, २५७०
तौलाभिः [तृ० स्त्री०] ६,४४,७; २०४१
त्रिंशत् २,१८,५; ११९४
दश २,१३,९; ११४५ । १८,४; ११९३
दशग्विनः ८,१,९; ९५
दुर्युजः १०.४४,७, २५७४
द्युक्षा [द्विव०] १,१००,१६; ९७२

द्वौ २,१८,४; ११९३
धुनी (वातस्य) १०,२२,४, २४६९
धृष्णू [द्विव०] १,६,२, २५
धौतरीभि. [स्त्री० तृ०] ६,४४,७; २०४२
नद्यौ १०,१०५,४; २७१७
नवतिः २,१८,६· ११९५
नियुतः ६,२२,११, १९१७। ३६,३, २०३७। ४५,२१, २०८० । ७.१८,१०; २१२८ । ९१,५,६; ३२३८-३२३९। ४,४७,४; ३२२९
नृमणः वातस्य १,५१,१०, ७५४
नृवाहसा [द्विव०] १,६,२; २५
पञ्चाशत् २,१८,५, ११९४
पर्णिना [द्विव०] ८,१,११, ९७
पुनानासः ६,३७,२; १९७४
पुरुस्पृहः ४,४७.४; ३२२९
पृश्निगावः ७,१८,१०; २१२८
पृश्निनिप्रेषितासः ७,१८,१०; २१२८
प्रिया [द्विव०] ३,४३,१; १३९१ । १० ११२,४; २७३८
प्रियमेधस्तुता [द्विव०] ८,६,४५; २८७। ३२,३०, २०९
प्रैतशाः १०,४९,७; २५९६
बभ्रू [द्विव०] ४,३२,२२, १६६२
बृहन्तः ३,४३,६, १३९६
ब्रह्मणायुक्ता [द्विव०] १,८४.३; ९३९
ब्रह्मयुजा १,१७७,२; १०९२ । ३,३५,४; १३१५। ८,१,२४; ११० । २.२७; १४२
मदच्युता [द्विव०] १,८१,३; ९१८
मनोयुज· १,५१.१०, ७५४
मन्द्रा १,१००,१६; ९७२ । ३,४५,१, १४०४
मयूररोमाणः-मभिः [तृ०]३,४५,१, १४०४
मयूरशेप्या ८,१,२५; १११
मरुतः सखायः ५.३१,१०; १७०१
मूराः वृषभस्य ३,४३,६; १३९६
युक्ता ब्रह्मणा [द्विव०] १,८४.३, ९३९
युक्तासः ३,५३,४; १४५६। ४,३१,१७; १६६१ । ६, २३,१; १९१८ । ६,३७,१; १९७३ । ७,२८,१; २२०८। १०,२७,२०; २५१० । ११२.४; २७३८
युजानाः १,१७७,२; १०९२। ३,४३,६; १३९६ । ६, २९,२; १९६३ । ४४,१९; २०५४
रघू [द्विव०] १०,४९,२; २५९१
रघुद्रुवः ८,१,९; ९५
रजी (न) (महान्तौ) १०,१०५,२; २७१५
रथ्यास ६,३७,३; १९७५
रन्तयः ७,१८,१०; २१२८
रयिमन्तः १०,७४.१; २६३४
रश्मयः गभस्त्योः ६,२९,२; १९६३
रासभः ३,५३,५. १४५७
रोहितः १,१००,१६; ९७२ । ५,३६,६ १७४९
ललामीः [स्त्री०] १,१००,१६ ९७२
वंकू [द्विव०] १,५१,११; ७५५ । ८,१,११; ९७
वंकूतरा [द्विव०] १,५१,११, ७५५
वचोयुजा [द्विव०] ६,२०,९; १८९२ । ८.९८,९; २३७२
वहिष्ठाः ६,२१,१२; १९०६ । ४०,३; १९९० । ४७,९; २१०७
वाजाः ३,५३,५-६; १४५७-५८ । ५,३६,६; १७४९ । ६, ४५,२१, २०८० । ८,२४,१८; १८०७
वातस्य (समानवे गौ) १,१७४,५, १०७३
वातस्य धुनी १०,२२,४; २४६९
वातस्य नृमणः १,५१,१०; ७५४
वातस्य पर्णिना ८,१,११; ९७
वातस्य युक्ताः ५,३१.१०; १७०१
वावाता ८,४,१४, २४२
वाहः ३,५०,४; १४३२ । ५३,३, १४५५
विंशतिः २.१८,५; ११९४
विप्रता (द्विव०) १,६३,२; ८८६ । १०,२३,१, २४८१ । ४९.२, २५९१ । १०५,२,४; २७१५,२७१७
विश्वा २,१८,७; ११९६
विश्ववाराः ६,२२,११; १९१७ । ७,९१.६; ३२३९
वीतपृष्ठा. ८,६,४२; २८४ । ३,३५,५; १३१६
वृषणा (द्विव०) १,१७७,१,३, १०९१,१०९३ । २,१६, ६; ११७७ । ३,३५.३,५; १३१४,१६ । ४३,४, १३९४। ५,३६,५, १७४८ । ६,२९.२, १९६३ । ४४,१९,१९; २०५४,५४ । ७ १९,६; २१४५ । ८,१,९; ९५ । ३३,११; २२० । ४,११, १४; २३९,२४२ । १०,४९,२,२५९१ । ११२,२, २७३६
वृषभासः १,१७७,२; १०९२
वृषभस्य (मूराः) ३,४३,६; १३९६
वृषरथासः १,१७७,२; १०९२ । ६,४४,१९; २०५४
वृषरश्मयः ६,४४,१९; २०५४
व्यचस्वन्ता १०,१०५,५; २७१८

(५) इन्द्राणी । [इन्द्रपत्नी।]

इन्द्र-देवतायाः विभिन्नरूपत्वम् ।

इन्द्रदेवताया गुणबोधक-सामासिक-पदानां उत्तरपद-सूची ।

दीर्घ – आयुः ८,७०,७; २३२७
वृद्ध – आयुः १,१०,१२; ६९
तिग्म – आयुधः २,३०,३; ११११
सु – आयुधः ६,१७,१३, १८५३
प्र – आशुषाट् ४,१५,६, १५९३
अन् – आभयी ८,२,१; ११६
चक्रम् – आरूज ५,३४,६; १७३२
घृत – आसुती ६,६९,६; ३३११
भूरि – आसुतिः ८,९३,१८; २४४०
अ -- प्रति-इतः १,३३,२; ७३१
वेद -- इष्ठः [वेदिष्ठ.] ८,२,२४; १३९
शची -- इष्ठः [शचिष्ठ] ४,२०,९, १५४१
शवस् -- इष्ठः [शविष्ठः] १,८०,१; ९००
शम्भू -- इष्ठः [शम्भविष्ठः] १,१७१,३; ३२६५
सहस् -- इष्ठः [सहिष्ठः] ६,१८,४, १८५९
प्रशस्य -- ईयस् [ज्यायस्-यान्] ३,३८,५; १३४९
वृद्ध -- ईयस् [ज्यायस्-यान्] " "
तवस् -- ईयस् [तवीयस्-यान्] ६,२०,३; १८८६
वेद -- ईयस् [वेद्रीयस्-यान्] ७,९८,१, २२७९
सहस् – ईयस् [सहीयस्-यान्] १,६१,७; ८६२
वन -- इष्ठः [वनिष्ठः] ७,१८,१, १८१९
वर -- इष्ठः [वरिष्ठः] ८,९७,१०, ९८५
बृहद् -- उक्थः ८,३२,१०; १८९
वपा – उदरः ८,१७,८; ४०१
अक्षित -- ऊति. १,५,९; २२
उर्वी -- ऊतिः ६,२४,२, १९२९
शतम् -- ऊति १,१०२,६; ८३३
सहस्र -- ऊति. ८,३४,७; ४३१
सहस्रम् -- ऊतिः १,५२,२; ७६१
अन् -- ऊनः ६,१७,४; १८४४
अन् – ऊर्मिः ८,२४,२२; १८११
अन् – ऋतुपाः ३,५३,८; १४६०
श्रुत – ऋषिः १०,४७,३; २८४४
नि – ऋष्टः १०,४२,२; २५४७
पुरस् – एता ६,२१,१२; १९०६
तत् – (बर्हिः)-ओकस् ३,३५,७; १३१८
नि – ओकस् १,९,१०; ५७
अभिभूति – ओजस् ३,३४,६; १३०६
अमित – ओजस् १,११,४; ७३
असमाति – ओजस् ६,१९,६; १९६७

ऋष्व – ओजस् १०,१०५,६, २७१९
धृष्णु – ओजस् ८,७०,३; २३२३
बाहु -- ओजस् १०,१११,६, २७३०
विश्व -- ओजस् १०,५५.८; २६११
सु -- ओजस् ६.२२,६, १९१९
स्वभूति – ओजस् १,५२,१२; ७७१
दूर् – ओषस् ४,२१,६; १५४०
रथ – ओळ्हा. १०,१४८,३, २८११
वृषा – कपिः १०,८६,१, २६४०
अभयम् – करः ८,१,२. ८८
खजम् – करः १,१०२,६, ८३३
यतम् – करः ५,३४,४, १७३०
सत्रा – करः १,१७८,४, १०९९
सुप्र – करस्त ८,३२,१०, १८९
आश्रुत – कर्ण १,१०,९, ६६
श्रुत् – कर्णः ७,३२,५; २२३९। ८,४५,१७, ४५९
भूरि – कर्मन् [र्मा] ३,१०३,५, ८४३
विश्व – कर्मन् [र्मा] ८,९८,२, २३६५
वृष – कर्मन् (र्मा) १,६३,४, ८८८
अकाम – कर्शनः १,५४,२; ७७६
अ – कल्प. १,१०२,६; ८३३
अ – कवारि ३,४७,५; १४१८
अ – कामकर्शनः १,५४,२; ७७६
ऋण – कातिः ८,६१,१२, ५५९
तत् – (=सोम) – काम २,१४,१; ११५०
श्रवस् – कामः ८,२,३८, १५३
सोम – कामः १,१०४,९, ८५५
युत् – कारः १०,१०३,१; २६९३
आ – काव्यः ४,२९,५; १६०८
अ-समष्ट – काव्यः २,२१,४; ११२०
अप्रति – कुतः [अप्रतिष्कुत.] १,७,६, ३३
तुवि – कूर्मिः ३,३०,३; १२४०
तुवि – कूर्मितमः ६,३७,४; १९७६
अभिष्टि – कृत् ४,२०,१, १५३३
अरम् – कृत् ८ १,११; ९६
आजि -- कृत् ८,४५,७, ४४९
ईशान -- कृत् १,६१,११; ८६६
व्रज – कृत् ६,१८,२, १८५७
धर्म -- कृत् ८,९८,१; २३६४
पथि -- कृत् ६,२१,१२; १९०६

अप् -- तुरः ३,५१,३, १४३६
आजि -- तुर ८,५३,६; ५३०
निस् -- तुरः [निष्टुरः] ८,३२,२७; २०६
अ -- तूर्तः ८,५,७; २३८७
पुरु -- त्मा ८,२,३८; १५३
भम -- त्रः ३,३६,४; १३२६
तरु -- त्रः १,१७४.१, १०६९
यज -- त्रः १,१२९,७, १००६
देव - त्रा ८,३४,८; ४३२
पुरु -- त्रा ८,३३,८; २१७
सु -- त्रामन् ६,४७,१२, २११०
वि -- त्वक्षण: ५,३४,६, १७३२
प्र -- त्वक्षाणः १०,४४,१; २५६८
सु -- दंसाः १,६२,७; ८७८
सु -- दक्ष १,१०१,९, ८२५
वज्र -- दाक्षिणः १,१०१,१; ८१७
सु -- दक्षिणः ७,३२,३, २२३७
गो -- दत्रः ८,२१,१६. ४२४
पुरु -- दत्रः ६,१८,९, १८६४
पर -- आ दर्दि १,८१,२; ९१७
उप -- दधानः ४,२९,४, १६०७
अ -- दब्ध ८,७८,६; ६५६
अ -- दभा [भौ] ५,८६,५, ३०४४
अ -- दयः १०,१०३,७, २६९७
वि -- दयमान ३,३४,१, १३०१
पुरम् -- दर. १,१०२,७, ३४
गो -- दा ३,३०,२१, १२५८
धन -- दा. १,३३,२, ७३१
भूरि -- दाः ४,३२.१९, १६९३
वसु -- दाः ८,९३ ४; २३७९
वाज -- दा १,१३५,५; ३११६
सहस् -- दाः १,१७४,१, १०६९
सु -- दा ८,७८,१०; ६५४
स्वस्ति -- दाः १०,११६,२; २७५६
भूरि -- दात्रः ३,३४,१; १३११
जीर -- दानु ८,६२,३, ५६८
सु -- दानुः ६,३८,१; १९७८
नक्षत् -- दाभः ६,२२,२; १९०८
अ -- दाभ्यः ७,१०४,२०; २२८८
सु -- दामन् ६,२०,७; १८९०

वाज -- दावन् ८,२,३४; १४९
सत्रा -- दावन् १,१७,६; ३३
स्त्र -- दावन् ८,५०,५; ४९९
प्र -- दिवः १,५४,२; ७७६
बृहत् -- दिवः ४,२९,५; १६०८
स -- दिवः २,१९,६; १२०४
प्र -- दिशमानः ३,३१,११; ११८०
स्मत् -- दिष्टिः ३,४५,५; १४०८
अ -- वि -- दीधयुः ४,३१,७; १६३६
सबर् -- दुघः ८,१,१०; ९६
सु -- दुघा ८,१,१०; ९६
भा -- दुरिः ४,३०,२४; १६२९
सु -- दृक् ४,२३,६; १५७१
स्वर् -- दृक् ७,३२,२२, २२५६
विश्व -- देवः ८,९८,२, २३६५
तुवि -- देष्णः ८,८१,२; ६७१
तुवि -- द्युम्नः १,९,६; ५३
अ -- द्रोघः ३,३२,९; १२९०
अ -- द्रोघवाक् ६ २२,२, १९०८
पृधमान -- द्विट् ६,४७,१६, २११४
तरत् -- द्वेष १,१००,३; ९५९
वि -- द्वेषणः ८,१,२; ८८
उग्र -- धन्वा १०,१०३.३; २६९४
वि -- धर्ता ८,७०,२; २३२२
वयस् -- धाः ३,३१,१८; ११७७
सम् -- धाता ८,१,१२; ९८
कारु -- धायाः ३,३२,१०; १२९१
उरु -- धार ८,१,१०; ९६
विश्वतम् -- धीः ८,३४,६; ४३०
अव -- धून्वानः ६,४७,१७; २११५
चर्षणी -- धृत् ३,३७,४; १३३७
अ -- धृष्ट. ८,६१,३; ५५०
अन्-आ-- धृष्य. ४,१८,१०, १५१८
अ -- ध्वर ८,६३,६; ५८३
दुर् -- नशः (दूणाशः) ७,३२,७; २२४१
अन् -- आ -- नतः ६,४५,९; २०६८
भृगवृषो -- नपात् ८,१७,१३; ४०६
विश्व [श्वा] -- नरः १०,५०,१; २६०१
शिक्षा -- नरः १,५४,२; ७७६
पुरु -- णा [णा] मन् ८,९३,१७; २४४६

अनुत्त — मन्युः ७ ३१,१२; २२३४
आपान्त — मन्युः १०,८९ ५, ३२७६
प्राचा — मन्यु ८,६१,९; ५५६
शत — मन्युः१०,१०३,७; २६९७
सतीन — मन्युः १०,११२,८, २७४१
प्र — मरः १०,२७,२०; २५१०
अ — मर्त्यः १,११९,१०; १००९
स — मर्यः ५,३३,१, १७१७
महा — महः ८,२४,१०; १७९९
वृद्ध — महाः ६,२०,३; १८८६
स — मह. ८,७०,१४; २३३४
अभि — मातिषाहं १०,४७,३; २८४४
अभि — मातिहन्-हा ३,५१,३; १४३६
परस् — मात्रः ८,६८,६; २२९६
तुवि — मात्रः ८,८१,२, ६७१
अनु — माद्यः ६,३४,२; २०१२
सध — माद्यः ८,३,१; १५६
प्रति — मानम् १,१०२,८; ८३५
अनि — मान ६,२२,७; १९१३
पुरु — मायः ३,५१,४; १४३७
अ — मित्रक्रतुः १,१०२,६; ८३३
अ — मितौजाः १,११,४; ७३
अ — मित्रखादः १०.१५२,१; २८१४
अ — मित्रहन्-हा ६,४५,१४; २०७३
अ — मिनः १०,११६,१४; २७५८
प्र — मिनानः १०,२७,१९; २५०९
विश्व — मिन्व ७,२८,१; २२०८
सम् — मिश्लः ८,६१,१८; ५६५
मन्यु — मी १,१००,६, ९६१
सहस्र — मुष्कः ६,४६,३: २०९२
अ — मृक्तः ८,९,३१; १४६
तुवि — मृक्षः ६,१८,२, १८५७
प्र — मृणन् १०,१०३,६; २६९६
अ — मृतः ५,३१,१३; १७०४
अ — मृध्र. ८,८०,२, ६६२
वि — मृधः १.१५२,२, २८१५
सु — मृळीकः १,१२९,६; १०४१
सु — यज्ञः २,२१,४, १२२०
प्र — यज्युः ६,२१,१०; १९०५
उद् — यन्ता १,१७८,३; १०९८

प्र — यन्ता ८,९३,२१; २४५०
प्र — य [या] वयन् ३,४८,३; १४११
स्व — यशस्तरः ३,४५,५; १४०८
ऋण — या ४,२३,७; १५७२
अव — याता १,१२९,११; १०१०
अ — यामन् ८,५२,५; ५१९
पूर्व — यावा ३,३४.२; १३०१
रथ — यावाना ८.३८,२; ३०९१
अ — यास्यः १,६२,७; ८७८
अवस् — युः ४,१६,११; १४७७
अश्व — युः १,५१,१४; ७५८
अस्म — युः १,१३१,७, १०२७
ऋत — यु. ८,७०,१०; २३३४
गिर्वणस् — युः १०,१११,१; २७२५
गो [गव्] — युः १,५१,१४; ७५८
रथ — युः १,५१ १४; ७५८
वसु [सू] — युः १,५१,१४, ७५८
वाज — युः ७,३१,३; २२२५
विश्व [श्वा] — युः १,१२९.४; १००३
वीर — युः ८,९२,२८; २४२४
श्रवस् — यु १,५६,६; ८०१
स्व — युः ३,४५,५; १४०८
सु अश्व — यु ८,४५,७; ४४९
हिरण्य — युः ७,३०,३; २२२५
अ — युजः ८,६२,२; ५६७
पुरस् — युधः १,१३२,६, १०३३
अ — युद्धसेनः १०,१३८.५; २७९६
अ — युध्यः १०,१०३,७, २६९७
सत्य — योनिः ४,१९,२; १५१३
पुरस् — योधः ७,३१,६; २२२८
सुते — रणः १०,१०४ ७; २७०९
वृष — रथ ५,३६,५, १७४८
सुख — रथः ५.३०,१; १६८१
अ — रध्रः ६,१८,४; १८५९
वि — रप्शिन् ३,३६,४; १३२६
सम् — रराणः ८,३२,८; १८७
सह — रश्मिः १,१२,११; ११३३
एक — राज् — ट् ८.३७,३; १७७८
सम् — राज् — ट् ४,१९,१; १५१३



दैवत-संहिता ।

(३)

सोमदेवता ।



सम्पादक

भट्टाचार्य श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)



संवत १९९९, शाके १८६४, सन् १९४१



मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवलेकर, B. A
स्वाध्याय-मण्डल, भारतमुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)

सोमदेवता का परिचय।



अमरकोश में सोम।

सोम के नाम अमरकोश में निम्नलिखित दिये हैं-

हिमांशुः चन्द्रमाः चन्द्रः इन्दुः कुमुदबान्धवः १३
विधुः सुधांशुः शुभ्रांशुः ओषधीशः निशापतिः।
अब्जः जैवातृकः सोमः ग्लौः मृगांक कलानिधिः १४
द्विजराजः शशधरः नक्षत्रेशः क्षपाकरः।
(अमरकोश १।३)

ये बीस नाम सोम के अर्थात् 'चांद' के दिये हैं। तथा इसी कोश में 'वत्सादिनी, छिन्नरुहा, गुडूची, तंत्रिका, अमृता, जीवंतिका, सोमवल्ली, विशल्या, मधुपर्णी' (अमर० २।४।८३) ये नौ नाम सोमवल्ली के दिये हैं। पर ये गुडूची नामक वल्ली जो वृक्षोंपर उगती और बढती है, उस वल्ली के हैं। इसको मराठी में 'गुळवेल' और हिंदी में 'गुडच' बोलते हैं।

इन नामों में 'जीवंतिका, अमृता' ये नाम इसमें जीवनीय गुण हैं, इस बात के सूचक हैं। यह गुण सोम में है, इसलिये सोम के और इन के अर्थ समान हैं। सोम के ऊपर दिये नामोंमें 'जैवातृकः' में दीर्घ जीवन का भाव है और 'सुधांशु' (सुधा-अंशु) अमृत किरणवाला इसमें अमृत का भाव है। इस तरह गुडच के ये नाम और सोम के- चांद के ये नाम सदृशार्थक हैं।

इन नामों में अमरकोश में दिये नाम चन्द्रमा के (चांद के) हैं, सोम औषधि के नहीं, तथा जो सोमवल्ली के नाम अमरकोश में हैं, वे भी सोम औषधि के नहीं। अर्थात् अमरकोश के समय सोम औषधि का कोई महत्व नहीं रहा था। अथवा वह सोमवल्ली मिलती नहीं होगी। सोम का महत्त्व चरक सुश्रुत के समय था। क्योंकि चरक सुश्रुत में सोम औषधिका अच्छा वर्णन है, पर उस वल्ली के लिये अमरकोश में स्थान भी नहीं है।

जो चन्द्रमा के नाम (चांद के नाम) अमरकोश में हैं, वे साक्षात् अथवा भावार्थ से वेद में आये सोमवल्ली के नामों के समान ही अर्थवाले है। यह एक बडा भारी विचार करनेयोग्य विषय है, जिसे हम यहां संक्षेप से देते हैं। अमरकोश में दिये चांद के नाम वेद मे सोमवल्ली के लिये प्रयुक्त हुए नाम ही हैं-

१ सोम- यह नाम वेद में सोम औषधि के लिये है जैसा-

'सोमो वीरुधामधिपतिः।'
(अथर्व. ५।२४।७)

'अपाम सोमं०'। (ऋ. ८।४८।३)

२ इन्दुः- यह नाम वेद में सोमवल्लीका है, जैसा-

'इन्द्राय इन्दो परिस्रव।'
(ऋ० ९।११२-११३)

'इन्दुः पुनानः।' (ऋ० ९।१०९।३)

'सोम' और 'इन्दु' ये दो नाम अनेक वार सोमवर्णन में वेद में प्रयुक्त हुए हैं। वैसे अन्य नाम नही, पर अन्य नाम भी अर्थ के द्वारा वेद में है-

३. द्विजराजः- 'सोमराजानो ब्राह्मणाः।
(तै० ब्रा० १।७।४।२; १।७।६।७)

'सोमो अस्माकं ब्राह्मणानां राजा।'
(वा. यजु. ९।१०; १०।१८; श ब्रा ५।४।२।३)

ब्राह्मणों का (द्विजों का) राजा सोम है। इस तरह द्विजराज शब्द यजुर्वेद वाज० संहिता के तथा ब्राह्मणों के वर्णन से सिद्ध होता है।

४. अंशु- उक्त शब्दों में 'हिमांशु, सुधांशु, शुभ्रांशुः' में 'अंशुः' शब्द है, वेद मे यह 'अंशु' पद सोम औषधि का वाचक है। उदाहरण- 'अंशुं दुहन्ति' (ऋ० ५।७२।६) 'अंशुं दुहन्ति उक्षणं गिरिष्ठा'
(ऋ० ०।०७।४)

५ चन्द्रः- ऋग्वेद में 'पवमानस्य जंघतो हरेः चन्द्रा असृक्षत' (ऋ० ९।६६।२५) में 'चन्द्र' पद सोमवाचक है। (पवमानस्य हरेः) छानने जानेवाले हरे रंग के सोम के (चन्द्राः) चमकनेवाले प्रवाह प्रवाहित होते हैं। यह सोम का वर्णन है। सोम की धाराएं चमकती हैं, यह वर्णन सोम का है और वह 'चन्द्र' शब्द से हुआ है।

६. ओषधीशः- ऋग्वेद में ९।११४।२ में इस अर्थ का वर्णन है। 'सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिः। यहां के 'वीरुधांपतिः' और 'ओषधीश' का अर्थ एक ही है। 'वीरुधां अधिपतिः' (अथर्व० ५।२४।७)

७. अब्जः- ऋ. ९।६१।७ में सोमको 'सिंधुमातर' कहा है। सिन्धु के 'जल से उत्पन्न' यह इसका अर्थ है और वही 'अब्ज' पद का अर्थ है। ऋ० ९।६२।४ में 'अप्सु दक्षो गिरिष्ठाः' कहा है। पर्वत पर जलस्थान में बलवर्धक सोम रहता है, ऐसा वर्णन है। तथा ऋ० ९।८५।१० में 'अप्सु द्रप्सं वावृधानं' अर्थात् 'जलोंमें बढनेवाला सोम है' ऐसा कहा है। इस तरह का वर्णन 'अब्ज' पद का भाव ही बताता है।

८ जैवातृकः- इस पद का अर्थ 'जीवनवर्धक' है। जो दीर्घ जीवन बनाता है। यह भाव 'जीवसे' शब्द से सोम के वर्णन में वेद में है- (ऋ. ९।६६।३० में) 'यस्य ते द्युम्नवम् पयः पवमान आभृतं दिवः। तेन नो मृड जीवसे॥' सोमका तेजस्वी रस स्वर्ग से (आकाश से, पहाड की चोटी से) लाया है, उससे (नः जीवसे) हमारा दीर्घ जीवन कर और हमें (मृड) सुखी कर।' यहां सोम का जीवनीय गुण बताया है। ऋ. ९।११०।११ में 'इन्दुः वयोधाः' सोमरस दीर्घ आयु देनेवाला है, ऐसा कहा है। इस वर्णन में जीवनीय भाव स्पष्ट है।

९. कलानिधिः- यह भाव 'इन्दु' का (ऋ. ९।११२) सूक्त के चारों मंत्रों में है। यह बात इसी भूमिका के अन्त में बतायी है। वहां पाठक अवश्य देखें।

१०. सुधांशुः- 'सुधा' का अर्थ 'अमृत' है। यह अमृत शब्द वेद में सोम के लिये आता है। 'दिवः पीयूषं सोमं' (ऋ. ९।५१।२, ९।११०।८) यहां पीयूष शब्द सोमके लिये आया है, जो अमृत और सुधा का वाचक है। ऋ. ९।९७।३२ में 'शुक्रो भासि अमृतस्य धाम' मंत्र में सोम को 'अमृत का धाम' कहा है। 'अमृत' सुधावाचक ही पद है, वैसा ही 'पीयूष' भी है।

११. शुभ्रांशुः- ऋ ९।६६।२६में 'पवमानः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः' कहा है। ऋ. ९।६३।२६ में 'शुभ्राः असृग्रमिन्दवः' तथा ऋ. ९।६२।५ में 'शुभ्रं अन्धः' ये सोम के वर्णन हैं। इनमें यह सोम 'शुभ्र' है, ऐसा ही कहा है। वही भाव 'शुभ्रांशु' पद का है।

१२ मृगांकः- सोम को मृग की उपमा ऋग्वेद ९।३२।४ में मृगो न तक्तो' और ९।९२।६ में 'मृगो न महिषो वनेषु।' इन मंत्रों में दी है। मृग के साथ साम्य यहां बताया है। वही साम्य चन्द्र पर के मृगचिह्न में है।

इस तरह अमरकोश के लौकिक संस्कृतमें आये 'चांद' वाचक बीस नामों में से तीन नाम तो स्पष्ट ही वेद में सोमऔषधिवाचक हैं और नौ नाम अर्थ की अथवा उपमा की दृष्टि से आये हैं, यह बात ऊपर बतायी है।

शेष नामों में 'हिम, कुमुदबांधव, विधु, निशापति, द्वौ, शशधर, नक्षत्रेश, क्षपाकर' इन आठ नामों का

सम्बन्ध वेद में देखने में हमें अभीतक सफलता नहीं हुई। तथापि इन में से चारपांच नामों का सम्बन्ध वेद में दीख सकता है, ऐसी हमें आशा है। अब अन्यान्य कोशों मे चान्द के अन्यान्य जो नाम आते हैं, उनका विचार करते है–

शशी, हिमद्युतिः (शब्दार्णव) ये नाम अधिक है, पर इन का भाव पूर्व नामों में है। तथा संस्कृत भाषा की रचना ऐसी है कि, और भी नाम बनाये जा सकते हैं। अतः इस तरह बनाये जानेवाले नामों का विचार करने की यहां आवश्यकता नहीं है।

निघण्टु में सोम।

निघण्टु में 'पद' नामों में (४-२ में) सोमो अक्षाः, (४-३ में) सोमानम्, (५-५ में) सोमः, ये तीन नाम दिए है। 'पद' नामों में ये नाम रखे गए हैं, इसलिए निघण्टुकार इन का अर्थ कुछ भी नहीं देते हैं। अत निघण्टु में 'सोम' का अर्थ निश्चित नही है। निघण्टु के इन पदों के अर्थ निरुक्त में दिए है, अतः हम अब इनका निरुक्त देखते हैं। निरुक्तकार इस तरह कहते हैं–

निरुक्तमें सोम।

'आ तु षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः॥ (ऋ० १०।१०१।१०)

'आसिञ्च हरिं द्रोरुपस्थे द्रुममयस्य। हरिः सोमो हरितवर्णः। अयमपीतरो हरिरेतस्मादेव। वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः, वाशीभिरश्ममयीभिरिति वा, वाग्भिरिति वा।'

(निरु० नै० ४।३।१९)

'(ईं हरिं) इस सोम को (द्रो. उपस्थे आसिञ्च) लकडी के बर्तन में सिञ्चित करो, (अश्मन्मयीभि वाशीभिः तक्षत) और पाषाण से निर्मित खरल से उसको कूटो।'

यहां हरि पद सोम औषधि का वाचक है, क्योंकि यह औषधि हरे रंग की होती है। इस तरह निरुक्तकार सोम का नाम 'हरि' है, ऐसा कहकर, वह औषधि हरे रंगकी है, ऐसा भी कहते हैं। वह सोम वनस्पति लकडी के फट्टेपर रखकर पत्थरों से कूटी जाती है, ऐसा भी यहा कहा है। और भी देखिए–

'न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः।' (ऋ० १०।८९।६)
अश्नोतेरित्येवमेके। 'अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः। सोमो दुग्धाभिरक्षाः।' (ऋ० ९।१०७।९)
क्षियतिनिगमः पूर्व, क्षरतिनिगम उत्तर इत्येके। अनूपे गोमान् गोभिर्यदा क्षियत्यथ सोमो दुग्धाभ्यः क्षरति। सर्वे क्षियतिनिगमा इति शाकपूणिः॥ (निरु० ५।१।३)

'जिसके पास द्युलोक, पृथ्वी, मरुदेश, अन्तरिक्ष अथवा पर्वत नहीं पहुच सकते, पर सोम ही (अक्षाः) पहुंचता है। यहां 'अक्षाः' रूप 'अश् (अश्नोति)' का है, ऐसा कई कहते हैं। (अनूपे) उत्तम जलवाले देश में (गोमान् गोभिः अक्षाः) गौओका स्वामी गौओंके साथ जाकर निवास करता है और (सोम) सोमरस (दुग्धाभिः अक्षाः) दुही हुई गौओ के दूध के साथ मिला दिया जाता है। यहां पहिली 'अक्षाः' क्रिया 'क्षि (निवासे)' इस धातु से बनी है और दूसरी 'क्षर (सचलने)' धातु से बनी है। जलपूर्ण देश में गौरक्षक जब रहता है, तब सोम गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है। शाकपूणि ऋषिके मत से 'अक्षाः' क्रियाका सर्वत्र अर्थ निवास करना ही है।

यहां गोदुग्ध के साथ साथ सोम मिलाया जाता है, यह बात कही है। और देखिए–

'सोमानं' का अर्थ 'सोतारं' अर्थात् 'सोमका रस निकालनेवाला' बताया है। (निरुक्त० नै० ६।३।१०) आगे निरुक्त मे

'ओषधिः सोमः सुनोतेः यदेनमभिषुण्वंति।'

(निरु० ११।२।२)

'सोम औषधि है, जिस का रस निकाला जाता है। निरुक्त में सोम का इतना ही आशय दिया है। सोम का अर्थ चन्द्र आदि जो निरुक्त ने बताया है, वह अन्यत्र भी है। निघण्टु में जो सोमवाचक तीन पद दिए हैं, उन के अर्थ जो निरुक्तकारने दिये हैं, वे ये हैं। अब हम ब्राह्मण-ग्रंथों में दिए सोम के अर्थ देखते है–

ब्राह्मण-ग्रन्थों में सोम।

स्वा वै म एषेति तस्मात्सोमो नाम।

(श० ब्रा० ३।९।४।२२)

ज्योतिः सोमः।
(श ब्रा. ५।१।२।१०, ५।१।५।२८)
श्रीर्वै सोम। (श. ब्रा ४।१।३।९)
सोम राज्यं। (श ब्रा. ११।४।३।३)
राजा वै सोमः। (श. ब्रा १४।१।३।१२)
सोमो राजा राजपति। (तै ब्रा. २।५।७।३)
सोमो राजा चंद्रमाः॥ (कौ. ब्रा. ४।४; ७।१०. श ब्रा १०।४।२।१)
वृत्रो वै सोम आसीत्। (श. ब्रा. ३।४।३।१३; ३।९।४।२, ४।२।५।१५)
पितृलोकः सोमः। (कौ. ब्रा. १६।५)
पितृदेवत्यो वै सोम। (श. ब्रा. २।४।२।१२; ३।२।३।१७, ४।४।२।२)
संवत्सरो वै सोमः पितृमान्। (तै ब्रा १।६।८।२; १।६।९।५)
संवत्सरो वै सोमो राजा। (कौ ब्रा ७।१०)
ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरः।
(ऐ ब्रा १।१३)
सोमो हि प्रजापतिः। (श ब्रा ५।१।५।२६; ५।१।३।७)
श्येनोऽसीति सोमं आह। (गो पू. ५।१२)
सोमो राजा अप्सरसो विशः।
(श ब्रा. १३।४।३।८)
विष्णु. सोमः। (श ब्रा. ३।३।४।२१, ३।६।३।१९)
वायुः...सोमः। (श. ब्रा ७।३।१।१)
सम्राडसीति सोमं...आह। (गो पू ५।१३)
सोमः सर्वा देवताः। (श. ब्रा १।६।३।२१; ऐ. ब्रा २।३)
सोमो वा इन्दु.। (श ब्रा. २।२।३।२३; ७।५।२।११)
सोमो रात्रि। (श ब्रा ३।४।४।१५)
सोमो वै पर्णः। (श ब्रा ६।५।१।१)
सोमो वै पलाशः। (कौ ब्रा २।२; श ब्रा. ६।६।३।७)
पशु. वै...सोम.। (श ब्रा. ५।१।३।७; १२।७।२।२)
सोमो वै दधि। (कौ. ब्रा ८।९)
स्वरोऽसीति सोमं आह। (गो पू. ५।१४)

यजमानः... सोमः। (तै. ब्रा. १।३।३।५)
वर्चः सोमः। (श. ब्रा ५।२।५।१०-११)
सोमो वै भ्राट्। (श. ब्रा ३।२।४।९)
क्षत्रं सोम। (ऐ ब्रा. २।३८, कौ. ब्रा. ७,१०, ९।५; १०।५, १२।८; श ब्रा. ३।४।१।१०, ३।९।३।३७; ५।३।५।८)
यशो वै सोम। (श. ब्रा ४।२।४।९, ऐ. ब्रा. १।१३; तै. ब्रा. २।२।८।८)
यशो वै सोमो राजा अन्नाद्यम्। (कौ ९।६)
प्रजापतेर्वा एते अन्धसी यत्सोमश्च सुरा च।
(श ब्रा ५।१।२।१०)
अन्नं सोम। कौ. ब्रा ९।६, श. ब्रा. ३।३।४।२८; तां ब्रा ६।६।१; श ब्रा ३।९।१।८ ७।२।२।११, तै ब्रा १।३।३।२)
हविर्वै देवानां सोमः। (श ब्रा ३।५।३।२)
हरिः...सोम। (श. ब्रा. १२।८।२।१२)
प्राण. सोम। (श. ब्रा. ७।३।१।२, ४५. तां. ब्रा. ९।९।१-५, कौ ब्रा ९।६)
रेत सोम। (कौ ब्रा १३।७; तै ब्रा २।७।४।१, श ब्रा. ३।३।२।१, ३।३।४।२८; ३।४।३।११)
सोमस्य प्रिया तनू. सुवर्णं।
(तै. ब्रा. १।४।७।४-५)
शत्रु सोमः। (तां. ब्रा. ६।६।९)
सोम इव गंधेन (भूयासं)। (म ब्रा. २।४।१४)
रसः सोम। (श. ब्रा. ७।३।१।३)
सर्वं हि सोमः। (श. ब्रा. ५।५।४।११)
गिरिषु हि सोमः। (श ब्रा. ३।३।४।७)
सोमो वै राजौषधीनाम्। (कौ. ब्रा. ४।१२; तै. ब्रा ३।९।१७।१)
सोमराजानो ब्राह्मणा। (तै. १।७।४।२; १।७।६।७)
सोमो वै ब्राह्मणः। (तां ब्रा. २३।१६।५)
प्रतीची दिक्। सोमो देवता। (तै ब्रा. ३।११।५।२)
उत्तरा ह वै सोमो राजा। (ऐ ब्रा. १।८)
सोमः पयः। (श. ब्रा. १२।७।३।१३)
आप सोमः सुतः। (श ब्रा ७।१।१।२२)

आपो हि...सोमस्य लोकः (श ब्रा. ४।४।५।२१)
वैराजः सोमः। (कौ. ब्रा. ९।६; श ब्रा ३।३।२।१७
१।९।४।१९)
पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा। (तै ब्रा १।३।३।४)
सौमायनो बुध। (ता ब्रा. २४।१८।६)
प्रजापति सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत्
सूर्यां सावित्रीम्। (ऐ ब्रा ४७)
दीक्षा सोमस्य राज्ञः पत्नी। (गो. उ २।९)

पूर्वलिखित ब्राह्मणग्रंथो के वचनों से सोम के ये अर्थ दीखते हैं- ज्योति, श्री, राज्य, राजा, राजपति, चन्द्रमा, वृत्र, पितृलोक, पितृदेवता, संवत्सर, प्रजापति, श्येन, विष्णु, वायु, सम्राट्, सर्पदेवता, इन्दु, रात्री, पर्ण (पत्ता), पलाश, पशु, दही, स्वर, यजमान, वर्च (तेज), भ्राट् (तेज, प्रकाश), क्षत्र, यश, अन्न, हवि, प्राण, रेत, सुवर्ण, शुक्र, रस, सर्व (सब कुछ), ब्राह्मण, दूध, जल ये इतने सोम के अर्थ हैं।

इसके अतिरिक्त सोमके विषय में निम्नलिखित बातें उक्त वचनों में कहीं है- (१) ऋतु सोम के भाई है, (२) सोम राजा है और उसकी प्रजाएं अप्सराएं है, (३) सोम ओषधियोंका राजा है, (४) ब्राह्मणों का राजा सोम है, (५) सोम ब्राह्मण ही है, (६) आप् (जल) सोम का स्थान है, (७) सोम और सुरा भाईबहिन हैं, (८) बुध सोम का पुत्र है, (९) प्रजापतिने सोम-राजा को अपनी पुत्री सूर्यासावित्री दी थी, (१०) सोम की पत्नी दीक्षा है। (११) उत्तर दिशा का सोम राजा है, (१२) पश्चिम दिशा सोम की दिशा है। (१३) सोम का राज्य वैराज्य है। इत्यादि बातें यहां कही है। इन का संबध और आशय ब्राह्मणग्रंथों को देखकर और विचार कर ढूंढकर निकालना चाहिए।

सोम का अर्थ ' स + उमा ' (उमया ब्रह्मविद्यया सहितः सोमः) विद्या, ब्रह्मविद्या से जो युक्त, इन विद्याओं में जो प्रवीण है, वह सोम कहलाता है। यह भी एक सोम है। इस सोम का ज्ञानरस विद्यार्थी या ब्रह्मचारी प्राप्त करते और वे ही सेवन करते है।

सोम परमात्मा है, उससे अमृतरस प्राप्त होता है, जो जीवन्मुक्त अथवा मुक्त होते हैं, वे इस सोमरसका सेवन करते है।

इस तरह अन्यान्य अर्थ विचार करनेवाले पाठक स्वयं जान सकते है, इन अर्थों का बतानेवाला मत्रभाग सोम के इन मत्रो में पाठक देख सकते है।

उक्त सब अर्थों में मुख्य अर्थ और गौण अर्थ इस तरह भेद करना चाहिए। सोमरस अन्न है, वह वीर्यवर्धक, रेत बढानेवाला, बल, ओज, तेज की वृद्धि करनेवाला है, इस तरह इनकी सगति लगायी जा सकती है। दूध और दहीके साथ मिलाकर यह सोम पिया जा सकता है, इत्यादि बातें इस सगति से मालूम होंगीं।

सोम के उत्पत्तिस्थान।

पर्वतो पर के जलयुक्त स्थलो मे शायद सोम की पैदाइश होती होगी। इसी कारण से उसे ' पर्वतावृध, गिरिष्ठा ' कहते थे। मौजवत्, शर्यणावत, आर्जीकीया, सुषोमा तथा सिन्धु स्थानों में सोम की उत्पत्ति होती थी।

साधारण रूप से यो उल्लेख पाया जाता है कि, उपरि-निर्दिष्ट स्थलोंमें सोम का जन्म हुआ करता है, परन्तु यद्यपि सभी स्थानो के बारे मे निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है, तो भी निस्सन्देह बहुतसी जगह पर्वतों एवं नदियो से निगडित है। हिमालय का ही एक विभाग ' मूजवान् ' नाम से विश्रुत है और तैत्तिरीय आरण्यक मे दी हुई ' शर्यणावत ' की चहारदीवारी से ज्ञात होता है कि, हिमालय की तराई में तथा कुरुक्षेत्र के ऊपरी विभाग मे शर्यणावत् नामक एक झील विद्यमान था। ' आर्जीकीया ' तथा ' सुषोमा ' तो स्पष्टतया नदियाँ है। ये भी पंजाब के पार्वतीय प्रान्त मे ही थीं। कह नहीं सकते कि, वर्तमानकाल में ये नदियाँ किस नाम से विख्यात है।

द्युलोक तथा सोम।

द्युलोक से पर्जन्यद्वारा सोम भूलोकपर आता है, ऐसा वर्णन बहुधा दीख पडता है और इस का अर्थ अनेक स्थलोपर यों किया जाता है कि, ऊंची जगह लटका कर रखी हुई छलनी से सोम धाराप्रवाही रूप में नीचे आ गिरता है। सोम के विषय में कहा है कि, प्रारभ में वह द्युलोक में था और पश्चात् वह भूमिपर उतर आया (९-

६१-१०) दिव पुत्र- दिवः शिशुः नाम उसे दिया गया है । एक जगह उसे पर्जन्यपुत्र कहा है (९-८२-३)। सच पूछा जाय, तो सोम का द्युलोक से संबंध उस का पर्वत की चोटीपर होना सिद्ध करता है। पर्वत की चोटी आकाश में होती है, वहां से यह लाया जाता है।

सोम का स्थान।

सोम पर्वतपर होता है, यह बात निम्नलिखित मंत्र में कही है-

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः ।

(ऋ० ९।१८।१)

' (गिरि-स्था.) पर्वतपर रहनेवाले सोमका रस छाननेके के लिए (पवित्र) छाननीपर रखा है । '

यहां ' गिरि-स्थाः ' यह सोम का विशेषण बताता है कि सोम पर्वतपर रहता है। हिमवान् के मौजवान् पर्वतपर सोमवल्ली उगती है, इसलिए ' मौंजवान् सोम ' कहते है ।

एतं उ त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिंधुमातरं ॥

(ऋ० ९।६१।७)

'उस (सिन्धु-मातरं) सिंधुनदी के पुत्र सोम को दश अंगुलियां पीस कर रस निकालती हैं।' इस मन्त्र से पता लगता है कि, सिंधु के पास सोमवल्ली का स्थान है।

असावि अंशुः मदाय अप्सु दक्षो गिरिष्ठाः।

(ऋ ९।६२।४)

' पर्वतपर रहनेवाला सोम (दक्ष) बलवर्धक है, वह (अप्सु) जलस्थान में भी होता है, यह (मदाय) हर्ष बढाता है। इस (अंशु) सोम का (असावि) रस निकालते है। ' तथा--

परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं। (ऋ ९।७१।४)

'यहां सोम को (पर्वत-वृधं) पर्वत पर उगनेवाला और (द्यु-क्षं) आकाश में रहनेवाला कहा है।' अर्थात् उंची से ऊंची पहाड की चोटी पर जो सोम उगता है, वह श्रेष्ठ है। हिमालय की १६०००फीट से ऊंचे स्थान पर जो सोम मिलता है, वह उत्तम है, १२०००फीट से ऊंचे स्थान पर जो मिलता है, वह मध्यम और इससे कम ऊंचाई पर मिलनेवाला कनिष्ठ समझा जाता है। आज भी यह सोम मिलता है, इसकी इसी तरह उत्कृष्टता समझी जाती है।

राजा सिन्धूनां अवसिष्ट वासः। (ऋ. ९।८९।२)

' सिन्धुओं का वस्त्र (राजा) सोम राजाने परिधान किया है। ' यहां सपूर्ण सिन्धुसरितों के मध्य प्रदेश में अर्थात् पहाडों पर सोम होता है, ऐसा आशय कदाचित् होना संभव है।

शर्यणावति सोमं इन्द्रः पिबतु वृत्रहा ॥ १ ॥
आर्जीकात् सोम मीढ्व' ॥ २ ॥

(ऋ. ९।११३।१-२)

शर्यणावती नदी के पास, तथा ऋजीक के स्थान के पास ' सोम ' होता है। यहां विचार करना चाहिये कि, क्या सोम के स्थान का निर्णय करने के लिये ये दो पद सहायक हो सकते है?

उदीची दिक् सोमोऽधिपति.। (अथर्व. ३।२७।४)

' उत्तरदिशा का अधिपति सोम है ' इससे सोम उत्तर दिशा में है, ऐसा प्रतीत होता है। उत्तरदिशा में हिमालय में सोम है।

पर्वत पर सोम।

यह सोम पहाड पर होता है, इस विषयमें कहा है—

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमः।

(ऋ ९।१८।१)

असावि अंशुर्मदाय अप्सु दक्षो गिरिष्ठाः।

(ऋ. ९।६२।४)

वेना दुहन्ति उक्षणं गिरिष्ठां। अप्सु द्रप्सं ॥

(ऋ. ९।८५।१०)

अंशुं दुहंति उक्षणं गिरिष्ठां। (ऋ. ९।९५।४)

यह सोमवल्ली (गिरि-स्थः) पहाडों पर होती है, उसको पर्वत से लाकर उसका रस निकालते हैं, तथा—

पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे। (ऋ. ९।८२।३)

'इस (महिषस्य पर्णिनः) पत्तोंवाले बलशाली सोम का पिता पर्जन्य है और (गिरिषु क्षयं) पर्वतों पर इस का निवास है।' इससे सोम पर्वतों पर होता है, यह सिद्ध है और इसको ' दिव्य ' कहा है, इसलिये कि यह ऊंचे पर्वतों के शिखरों पर होता है।

पत्तों के साथ सोम।

सोमवल्ली पत्तों के साथ होती है, ऐसा वर्णन कई मंत्रों में दीखता है-

सोमो वीरुधां अधिपति । (अथर्व ५।२४।७)
दिव्याः सुपर्णाः मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः
परि कोशमासते। (ऋ. ९।८६।१)
दिवः सुपर्णो अव्यथिर्भरत् ॥ (ऋ. ९।४८।३)
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः (ऋ. ९।७१।९,
नाके सुपर्ण उपपप्तिवांसं ॥ (ऋ ९।८५।११)
युजान इन्दो हरित. सुपर्ण्य. ॥ (ऋ ९।८६।३७)
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम ॥ (ऋ. ९।९७।३३)
सोमस्य पर्ण सह उग्रं आगन्। (अथर्व. ३।५।४)

इतने मंत्रों में यह (सोमः इन्दुः) सोमवल्ली (हरित. सुपर्ण) हरे रंगवाली सुन्दर पत्तोंवाली होती है, तथा यह (दिव्यः= दिवि भव) पहाडकी चोटीपर, जैसी कि स्वर्ग में होने के समान उच्च गिरिशिखरपर, होती है, ऐसा कहा है।

सोम का वर्ण।

कुछ कुछ हरा, तनिक साँवला और लालिमायुक्त ऐसा भाँति भाँति का वर्णन किया हुआ है, तथा इसे सुपर्ण नाम भी दिया गया है, जिस से अनुमान किया जा सकता है कि, वह अच्छे पत्तों से युक्त होगा। उसी प्रकार ऐसा भी बखान किया है कि, वह तिनकों से पूर्ण रहता है। हरित शब्द से बहुधा उस के रंग का वर्णन किया हुआ है।

सोम में विद्यमान गुण।

सोम की सराहना करते समय बतलाया है कि, उस में भाँति भाँति के गुण छिपे पडे है। इन सब गुणों में उत्साह एवं उमंग बढाने की उस की शक्ति प्रमुखतया प्रेक्षणीय है। युद्धों में अनिवार्यतया उस का उपयोग किया जाता था। एक बार सोमरस का सेवन कर चुकनेपर इन्द्र को किसी से भी परास्त होने की संभावना नहीं रहा करती थी। अन्य देवतागण भी यथोचित सोमरस का पान करते थे। साधारणतया वर्णन पढने से प्रतीत होता है कि सोमरस का पान करना, वैदिक समय अतिसामान्य बात थी। विशेषतया युद्ध के अवसरपर आवेश एवं जोशीला भाव पैदा करने के लिए सोम का प्रमुख उपयोग किया जाता था। सोमरस में बुद्धि बढाने की भी क्षमता थी, इस का यत्रतत्र वर्णन किया हुआ पाया जाता है। सोम का पान कर लेनेपर उमग एवं उत्साह की मात्रा बढ जाती थी और प्रतिभा का नवनवोन्मेष प्रतिपल प्रस्फुटित हुआ करता था। वक्तृता एवं स्तुतिपाठ मे मानो बाढसी आती थी। अनेक स्थानोंपर कहा है कि, सोम आनन्द बढाने मे सर्वोपरि है। 'कुवित्सोमस्यापामिति' (ऋ० १०-११९) आदि सूक्त पढने से पता लगता है कि, सोम में उत्साहकता का अंश कहाँतक था। इसके अतिरिक्त ऐसा भी दर्शाया है कि, वैदिक देवता तथा ऋषि सोम के बारे में अतीव लोलुप थे।

उसी प्रकार उस में साधारण रोग हटाने की भी योग्यता होगी। परन्तु उसके प्रमुख आलोचनीय गुण बुद्धि बढाना और उत्साहित कर देना है, क्योंकि ऐसी प्रभावशालिता के न रहते उस विषयमें इतनी आसक्ति होना असभव है।

स्वर्गीय अमृत।

दिवः पीयूषं उत्तमं सोमं इन्द्राय पातवे।
सुनोता मधुमत्तमम्। (ऋ ९।५१।२)
दिव पीयूषं पूर्व्यं। (ऋ. ९।११०।८)

'इन्द्र के पान करने के लिये मधुर सोमरस निकाल दें। यह (दिवः उत्तम पीयूषं) स्वर्ग का उत्तम अमृत-रस है।' तथा—

त्वां देवासो अमृताय कं पपुः।
(ऋ. ९।१०६।८)

'सब देव (अमृताय) अमृतलाभ के लिये आनन्द से (पपुः) पीते है।

वीर्यवर्धक सोम।

(सोम) प्रजावत् रेत आभर। (ऋ ९।६०।४)

'हे सोम! तू (प्रजावत् रेत.) जिमसे प्रजा उत्पन्न हो सकती है, जिमसे सतान उत्पन्न हो सकता है, ऐसा वीर्य हमारे शरीरमें (आ भर) भर दे।'

इस वर्णन में सोम का वीर्यवर्धक गुण बताया है।

महां असि सोम ज्येष्ठ उग्राणां इन्द्र ओजिष्ठः।
(ऋ ९।६६।१६)

'हे सोम ! तू वीरोंमें श्रेष्ठ और बडा बलवान् वीर है।'

सोमरस पीनेसे वीर्य बढता है, यह बात निम्नलिखित मंत्र में कही है-

(सोमाः) वर्धन्तो अस्य वीर्यम्। (ऋ ९।८।१)

सोम तारुण्य देता है।

सोम तारुण्य (जवानी) देता है, इस विषय में कहा है-

महे युवानं आ दधु । इन्दुं० (ऋ ९।९।५)

'(इन्दु) सोम (युवान) तारुण्य देनेवाला है, इसलिये (महे आ दधु) बडे कार्य के लिये उस सोम का हम धारण करते है।'

बल की वृद्धि।

सोम बल की वृद्धि करता है, इस विषय में कहा है-

सहो न सोम पृत्सु धाः। (ऋ. ९।८।८)

'हे सोम ! तू (पृत्सु) युद्धप्रसंगों मे (न) हमारे अन्दर का (सहः धा.) सामर्थ्य बढाओ।'

सोम का विद्युत्तेज।

आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः। आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन् दैव्यं जनम्॥
(ऋ ९।८४।३)

'(यः) जो सोम (गोभिः) गोदुग्धके साथ (ओषधीषु आ सृज्यते) औषधियों के रसों में उण्डेला जाता है, जो (उपावसुः) धन के साथ देवों को सुख देता है तथा (इन्द्र) इन्द्र को और (दैव्य जन) दिव्य मानव को (मादयन्) हर्षयुक्त करता है, वह (सुतः) सोमरस (विद्युता धारया) बिजली जैसी चमकीली धारा से (आ पवते) छाना जाता है, शुद्ध किया जाता है।'

सोमरस की धारा अंधेरे में बिजली के समान चमकती है। यह इस रस की विशेषता है। अनेक ओषधिरसों से इसका मिश्रण भी करते हैं, इसी को मसालेदार सोमरस बोलते हैं। गोदुग्ध तो इस में मिलाया जाता है।

सोम से सबको लाभ।

स न पवस्व, शं गवे, शं जनाय, शं अर्वते। शं राजन् ओषधीभ्यः॥ (ऋ. ९।११।३)

'सोमरस से हमारा, गौओं का, लोगों का, घोडों का और ओषधियों का (शं) कल्याण होता है।' अर्थात् सोम से औषधियां वीर्यवती होती हैं, मनुष्य हृष्टपुष्ट होते है तथा गौवे और घोडे भी आरोग्यसंपन्न होते हैं।

यहां गौओ के खाने में सोम आता था, यह बात स्पष्ट है। जो गौ सोम खाती है, उसके दूध में सोमरस के गुण आते हैं, यह बात स्मरण रखनेयोग्य है। इस तरह सोम का सेवन बडा लाभदायी है।

सोम की रुचि।

साधारण ढग से सोम जिह्वा को कैसे लगता था, इसका स्पष्ट बखान करना अति कठिन जान पडता है। कारण यही है कि, इस भाँति की वस्तुओं की साधारण रुचि नहीं बतलायी जाती है, अपितु उस वस्तु की ओर जो अति तीव्र आकर्षण अपने अतस्तल में उत्पन्न होता है, उसी के अनुसार वर्णन का सिलसिला प्रचलित होता है!

सोम का वर्णन यो किया है कि-

'स्वादुः किलायं मधुमानुतायं तीव्रः किलायं'
(ऋ० ६-४७-१)

तो भी यह कुछ कुछ तीखी, स्वादवाली वस्तु हो। उस में दूध, शहद आदि चीजों की मिलावट करके ही विशेष ढग की मधुरिमा से युक्त कर देते थे।

सोम तथा सुरा।

ऋग्वेदकाल में भी सोम सुरा से सुतरां विभिन्न वस्तु थी, ऐसा प्रतिपादन करने के लिए पर्याप्त आधार है।

हृत्सु पीतासो युध्यंते दुर्मदासो न सुरायां।
(ऋ० ८।२।१२)

यहाँपर सेवन की हुई सुरा से दुर्मद होते हैं, ऐसा वर्णन है और कहा है कि, मद्यसेवन से जो नशा मालूम पडता है, वह दुर्मद है।

सुरा मन्युर्विभीदको अचित्ति॥ (ऋ० ७-८६-६)

'मद्य, क्रोध तथा द्यूतक्रीडा के साधन पाप की ओर ले

चलनेवाले हैं।' जैसे वर्णन सुराका यहाँपर किया गया है, वैसे सोम का बखान कहीं भी नहीं किया है, उलटे सभी जगह इस के विपरीत चित्रण किया है।

अतः ऐसा कह सकते है कि, उस समय सोम तथा सुरा दोनों ही अत्यत विभिन्न वस्तुएं थी और मद्य के द्वारा उत्पादित मतवालेपन में बहुत ही बुरे गुण थे। इस के सिवा, आगे चलकर वाङ्मय में एवं सौत्रामणियाग में मद्य की विभिन्न प्रणाली बतलाई है। अतः ऐसा कहने में कोई आपत्ति नहो उठाई जा सकती है कि, सोम सुरासे विभिन्न एवं पृथक् अन्य कोई आनददायक वस्तु थी।

सोम तैयार करने की प्रणाली।

प्रारम्भ में ब्राह्मण से यज्ञशाला के बाहर सोमवल्ली खरीद लेनी चाहिए और उसे यज्ञशाला ले जाकर उस पर पानी का छिडकाव कर चुकने पर ठीक प्रकार से रखना चाहिए, ताकि वह सूखने न पाय। इस के पश्चात् फलक पर सोम रखा जाय। सोम कूटने के दो तख्ते, जो कि ३६ अंगुलियाँ लम्बाई में और १८ अगुल चौडाई में रहे, 'अभिषवण फलक' नाम से ज्ञात हैं, अर्थात् यदि दोनो समीप समीप रखे जॉय, तो 'समभुज चतुष्कोण' की निर्मिति होती है, जिसकी प्रत्येक रेखा ३६ अगुलियों से परिमित हो जाती है। उस पर सोमवल्ली रखी जाय। पश्चात् ग्रावासे उसे कूटना प्रारम्भ करे। यह ग्रावा पत्थर की बनी रहती है और इस का ऊपरी हिस्सा पतला तथा निम्नविभाग मोटा रहता है। कूटते समय मंत्र पढते पढते कुछ थोडा जल डालना पडता है। तदुपरान्त कूटी हुई वह सोमवल्ली आधवनीय नामक बर्तन में, जो अनुकूलता के अनुसार मिट्टी का या धात का बनाया जाता है, डालनी चाहिए। यथेष्ट जल डाल कर उसे अच्छी तरह रगड कर जलमें मिला दे। पानी मे जब सोमवल्ली का रस मिश्रित हो जाय, तब निचोडकर अवशिष्ट अशको बाहर निकाल दे, जिसे ऋजीष नाम दिया गया है। अब छानने के लिए अधिषवण पर रँगरेज के यहाँ की तिपाई जैसे एक चौकी रख कर उस पर 'दशापवित्र' नामक एक छानने का वस्त्र बाँधकर रखना चाहिए, यही छाननी है। जलमिश्रित सोम अब आधवनीय पात्र में से उस पर उँडेलना चाहिए। पवित्र के नीचे एक छोटासा छेद बनाकर उसमें से ऊनी धागा इस तरह डाला जाय कि, पतली धारा गिरने लगे। अब सोम टपकने लगता है, जिसे पात्र मे ले लिया जाय। 'ग्रह, चमस' ये नाम पात्रों के है। उस सोम को विभिन्न देवताओं को लक्ष्यमें रखकर अग्निमें आहुति के रूप में डाल चुकने पर, सभामण्डप में होम करनेवाले एव वषट्कार कहनेवाले, उद्गाता, यजमान, ब्रह्मा तथा अन्य सदस्य क्रमश सोमरस का पान करे।

इस सोमरस मे देवताभेद के अनुसार दुग्ध, दधि, स्वर्णधूलि एव घृत डालकर अर्पण करने की प्रथा है।

आश्वलायन श्रौतसूत्र ६-८-५ में कहा है कि, सोमवल्ली न मिलने की दशामे 'पूतिक' अथवा 'फाल्गुन' नामक वनस्पति का उपयोग करना चाहिए। 'अनधिगमे पूतिकान् फाल्गुनानि।'

वर्तमानकाल में कहीं कहीं होनेवाले सोमयाग के सोम की यह दशा या कृति है।

हिरण्यकेशीय श्रौतसूत्र में भी लगभग इसी तरह की प्रणाली बखानी गयी है, (देखिए ८-३-४)। सोम कूटते समय ग्रावा से कितने आघात दिये जांय, फलक कैसे रखा जाय, आदि बातें भी बारीकी से बतलायी गई हैं।

छलनी कैसे रहे?

'दशापवित्र' या 'पवित्र' शब्द से सोम का विशुद्ध करना सर्वत्र निर्दिष्ट किया हुआ है। अवि, अव्य, अविमय जैसे विशेषणोंसे ज्ञात होता है कि, वह छलनी भेड के ऊन से बनायी जाती थी। निश्चित रूप से कह नहीं सकते कि, वह बुनी गयी थी या नहीं, परन्तु एक स्थान पर कहा गया है कि, उस का वर्ण श्वेत था। आधुनिक सोमयाग मे ऊन की बनायी छलनी नहीं रहती है, केवल स्वच्छ, सुफेद कपडा रहता है, जिस पर तनिक ऊन केवल शास्त्रविधि के लिए लगाया जाता है। 'ह्वरांसि' पद से दीख पडता है, उस के अंचल लटकते थे।

सोमरस की छाननी।

सोमरस छानने की छाननी बकरी के ऊनकी की जाति थी। इस का नाम 'पवित्र' होता था। इस का वर्णन ऐसा आता है-

अव्यो वारे महीयते। सोमो यः सुक्रतुः कविः॥
(ऋ. ९।१२।४)

रसो। अव्यो वारं वि पवमान धावति।
(ऋ. ९।७४।९)

'(अव्य वारे) बकरी के ऊनकी छाननी पर सोम महत्त्व का स्थान प्राप्त करता है।' यह सोम यज्ञको सफल करनेवाला और काव्य की स्फूर्ति बढ़ाता है।

वि वारं अव्यं आशवः। (ऋ. ९।१३।६)

'(अव्यं वार) बकरी के ऊनकी छाननीसे (आशवः) शीघ्र प्रवाहित होनेवाले सोमरस नीचे चूते है, नीचे के पात्र में प्रवाहित होते है।' तथा-

वि वारं अव्यं अर्षति। (ऋ ९।६१।१७)

' बकरी के ऊनकी छाननी पर सोम रखते है।'

(असितः काश्यपो देवलः। गायत्री।)

ऋभुर्न रथ्यं नवं दधाता केतं आदिशे।
शुक्राः पवध्वं अर्णसा॥ (ऋ ९।२१।६)

'(ऋभु) कारीगर जैसा नवीन (रथ्यं) रथको जोतनेवाले घोडे को सिखाता है, वैसा (आदिशे केतं दधात) धर्म का आदेश देने के लिये ज्ञान दीजिये और हे सोमकी रसधाराओं ! तुम बडे वेगसे स्वच्छ हो।' अर्थात् छाननी से शुद्ध हो।

शुम्भमान ऋतायुभिः मृज्यमानो गभस्त्योः।
पवते वारे अव्यये। (ऋ ९।३६।४; ९।६४।५)
असृग्रं वारे अव्यये॥ (ऋ ९।६६।११)

'(ऋत-आयुभि.) सत्य धर्म पालन करनेवाले याजकोने शुद्ध किया, किरणों से पवित्र बना (अव्यये वारे) बकरी की छाननी से (पवते) अर्थात् पवित्र होता है, छाना जाता है।'

स न ऊर्जे वि अव्ययं पवित्रं धाव धारया।
(ऋ. ९।४९।४)

प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम्।
(ऋ. ९।६६।२८)

पवित्रं अति गाहते। रक्षोहा वारं अव्ययम्।
(ऋ. ९।६७।२०)

पवस्व सोम अव्यो वारे परिधाव। (ऋ. ९।८६।४८)

' यह सोमरस (अव्यय पवित्र) बकरी के ऊनसे बनी छाननी के पास (धारया विधाव) रस की धारा के साथ जाता है।'

रोमाण्यव्या समया वि धावति। (ऋ. ९।७५।४)
सो अर्ष इंद्राय पीतये तिरो रोमाणि अव्यया।
(ऋ. ९।६२।८)

अर्षति तिरो वाराण्यव्यया। (ऋ. ९।६५।४)

' इन्द्र के पीने के लिये उस रस को छानने के लिये (अव्यया) बकरी के (रोमाणि तिरः) बाल तिरछे रखने चाहिये और उस छाननी से रस छानना चाहिये।'

ऊन एक दूसरे पर ऐसी रखना चाहिये, जिस से वह छाननीसी बने। अथवा ऊन का बुना कपडा कम्बल जैसा लेना चाहिये। तिरछे बाल हों, ऐसी छाननी बने।

तीन छाननियाँ।

सोम छानने के लिये एक के ऊपर एक ऐसी कुल तीन छाननियां होती थीं, ऐसा निम्न लिखित मंत्र से दीखता है—

सं त्री पवित्रा विततानि एषि अनु एकं धावसि
पूयमानः। (ऋ. ९।९७।५५)

'(त्री पवित्रा विततानि) तीन छाननियां फैली रखी हैं, उनमें से क्रमपूर्वक (एकं अनु धावसि) एक के पीछे एक पर सोम दौडता है,' अर्थात् तीनों में से क्रमपूर्वक छाना जाता है।

ये तीन छाननियां एक दर्भ की, एक ऊनकी और तीसरी (दशा-पवित्र) कंबल की होगी, ऐसा हमारा अनुमान है, अथवा तीनों ऊनकी ही होंगी। इस विषय में निश्चय करने के लिये अधिक खोज की आवश्यकता है।

अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि।
(ऋ. ९।१०१।१६)

अव्यो वारेभिः पवते। (ऋ. ९।१०८।५)

' सोमरस (गव्ये त्वचि अधि) गौके चर्म पर (अव्यः वारेभि) बकरी के ऊनकी छाननियों से (पवते) छाना जाता है।

नूनं पुनानो अविभिः परिस्रव अदब्धः सुरभितरः।
सुते चित् त्वा अप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो
गोभिरुत्तरम्। (ऋ. ९।१०७।२)

' सोमरस को (अविभि. पुनानः) बकरी के ऊनकी छाननी से छानते हैं, तब वह (सुरभिंतरः) अधिक सुवास-से पूर्ण बनता है। रस (सुते) निकालते ही (अप्सु) पानी में स्वच्छ करते हैं, (उत्तरं) पश्चात् (गोभि श्रीणन्तः) गौके दूध के साथ मिलाते है। इस (अन्धसा मदाम) अन्न से हम आनंदित होते हैं।'

यहां 'अवि' शब्द बकरी के ऊनकी छाननी के लिये और 'गो' पद दूध के लिये आया है।

(असितः काश्यपो देवलो वा। गायत्री।)

यं अत्यं इव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश।
वने क्रीळन्तं अत्यविम्॥ (ऋ ९।६।५)

' (वने) वन के काष्ठ से निर्मित पात्र में (अत्यवि क्रीळन्त) छाननी से खेलनेवाले जैसे सोम को (अत्यं वाजिन इव) घुडदौड के घोडे की सेवा करने के समान (दश योषण.) दस स्त्रियां अर्थात् दस अंगुलियां (मृजन्ति) शुद्ध करती हैं।'

दस अंगुलियां सोमरस निकालती हैं और उसको छाननी पर रख कर स्वच्छ करती हैं। यहां (वाजिन दश योषणः मृजन्ति) किसी घुडसवार-अश्ववीर-को दस स्त्रियां स्नानादि से सेवा करती है, वैसे सोम की सेवा दस अंगुलियां करती हैं, यह उपमा है।

गौका चर्म।

एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः॥२९॥
यस्य ते द्युम्नवत्पय पवमानाभृतं दिवः ॥३०॥
(ऋ ९।६६)

द्युमन्तं शुष्मं उत्तमं। (ऋ ३।६७।३)

' यह सोम (गवां त्वचि) गौके चमडे पर (अद्रिभिः क्रीडति) पत्थरों के साथ खेलता है। इस सोम का तेजस्वी चमकीला दूध जैसा रस स्वर्ग से ही लाया है, ऐसा प्रतीत होता है।'

गौके अथवा बैल के किंवा गवे के चमडे पर फलक रखकर, उस फलक पर सोमवल्ली पत्थरो से कूट कर रस निकालते हैं। और वह कूटा हुआ सोम दस अंगुलियो से, दोनों हाथों से निचोडकर उनकी छाननी से छाना जाता है। यह रस स्वयं (द्युमन्त) चमकीला श्वेतसा रहता है। यह वनस्पति भी रात में चमकती है। इस से अनुमान होता है कि, इसमें कुछ विशेषता है। तथा-

आ योनिः सोमः सुकृतं निषीदति
गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी॥ (ऋ ९।७०।७)

' सोम अपने स्थान पर रहता है, अर्थात् छाना जानेके समय छाननी पर बैठता है। वहां (गव्ययी त्वक्) गवय का चर्म तथा (अव्ययी) बकरी का चर्म उसके ढक्कन होते है।' तथा-

अद्रयस्त्वा वप्सति गोरधि त्वचि अप्सु त्वा
हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः॥ (ऋ ९।७९।४)

' सोम को हाथों से (अप्सु) पानी में रखकर हिला-कर धोते हैं, और (गो त्वचि अधि) गाय के चर्म पर रखकर (अद्रय) पत्थर कूटते है।'

इससे स्पष्ट हो जाता है कि, सोमवल्ली लाते ही पर्याप्त जल में वह रखकर हिला हिलाकर अच्छी तरह धोते है। इसके बाद चमडे पर फलक रखकर उस पर वह सोम-वल्ली रखकर पत्थरो से कूटते हैं। रस निचोडने योग्य होते ही ऊनकी छाननी पर रखकर दसो अंगुलियों से दबाते हैं, जिस से सब रस बर्तन में इकट्ठा होता है।

सोम के साथ मिलानेयोग्य वस्तुएँ।

सोम तैयार करते समय उसमें दूध, दधि, घृत, मधु, जल एवं भूने सत्तु या गेहूं का आटा डालते थे। इसीलिए उसे ' यवाशिर, गवाशिर, दध्याशिर ' आदि नाम प्राप्त हुए। संभवत. इस भाँति मिलावट होने के फलस्वरूप उसमें अतिरिक्त मिठास पैदा होती होगी। कई स्थानों पर सोम को मधु, मधुवत्, पीयूप संबोधित किया गया है।

सोम में दूध आदि मिलाया जाता था, इसका वर्णन पाठक निम्नलिखित मंत्रों में देख सकते है-

सोम में दूध मिला दो।

(असितः काश्यपो देवलो वा। गायत्री।)

तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये।
सुतं भराय सं सृज॥ (ऋ ९।६।६)

' वह सोमरस (मदाय) हर्ष उत्पन्न करनेवाला बनने के लिये (देववीतये) देवो के अर्पण के लिये तथा (भराय) पोषक अन्न बनने के लिये (गोभि. सं सृज)

गौओं के दूध के साथ मिला दो, जिस से वह (वृषण) वीर्यवर्धक, बलवर्धक बनेगा। '

' यहां (गोभिः सृज) गौओंके साथ इसे छोड दो, ' ऐसा कहा है। इसका अर्थ ' गौका दूध सोममें मिलाओ ' ऐसा है। यह लुप्तनद्धित प्रक्रिया पाठक अवश्य देखें।

' गौ ' का ही अर्थ दूध, दही, मक्खन, घृत, छाछ आदि गोविकार है। इन मे से दूध, दही और घी सोमरस में मिलाते हैं।

(असितः काश्यपो देवलो वा। गायत्री।)

राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिः अञ्जते।
(ऋ. ९।१०।३)

आ यो गोभिः सृज्यते ओषधीषु। (ऋ. ९।८४।३)

' राजालोग जैसे (प्रशस्तिभिः) स्तुतियों से उत्साहित होते है, वैसा ही (सोमासः) सोमरस (गोभिः) गौओं के दूधसे (अञ्जते) शोभित होते है। '

यहां ' गो ' का अर्थ ' गोदुग्ध ' है। तथा-

अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रियुः।
देवं देवाय देवयु ॥ (ऋ. ९।११।२)

' (अथर्वाणः) अथर्वविधि से यज्ञ करनेवाले याजक एक (देव) ईश्वर की प्राप्ति की इच्छा से (मधुना) मधुर सोमरस के साथ (पयः) गौका दूध (अभि अशिश्रियुः) मिला देते है। '

यहां सोमरस के साथ, दूध और मधु-शहद मिलाने की विधि है।

सोमरस में शहद मिलाओ।

सोमरस के साथ शहद मिलाने के विषय मे निम्नलिखित मंत्र देखो-

हस्तच्युतेभिः अद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन।
मधौ आ धावता मधु ॥ ५ ॥
नमसेत् उप सीदत दध्नेत् अभि श्रीणीतन ॥ ६ ॥
(ऋ. ९।११)

' हाथोंसे पत्थरोंद्वारा कूट कर सोमरस निकाल कर उस को (पुनीतन) छानो। उस में (मधु) शहद (आ धावता) मिलाओ। तथा (दध्ना इत्) दही के साथ (अभि श्रीणीतन) मिला दो। '

जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम्। (ऋ. ९।१२।६)

' शहद से युक्त रस का खजाना सोमरस है। '

अस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत।
यदी गोभिर्वसायते ॥ (ऋ. ९।१४।३)
यद् गोभिर्वासयिष्यसे (ऋ. ९।६६।१३)

' (शुष्मिणः रसे) बल बढानेवाले सोमरस में जब (गोभिः वसायते) गौओं का दूध मिलाया जाता है, तब वह पेय सब देवों को आनन्द देनेवाला बनता है। '

गा कृण्वानो निर्णिजम्। (ऋ. ९।१४।५)

' गौका दूध उस सोमरस को (निर्णिज) उत्तम सुंदर रूप देता है। ' तथा-

अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगाति अण्व्या।
(ऋ. ९।१४।६)

' (अण्व्या) सूक्ष्म छिद्रवाली छाननी से (तिरश्चता) तिरछा होकर (गव्या जिगाति) गौके दूध के साथ मिश्रित होने के लिये जाता है। ' अर्थात् छाना जाने के बाद उस मे गौदुग्ध मिलाया जाता है।

सोममें दहि मिला दो।

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः।
विपा व्यानशुः धिया ॥ (ऋ. ९।२२।३)

' ये पवित्र शुद्ध हुए सोमरस (दधि-आशिर) दही के साथ मिलाये जाते है। ज्ञान के साथ बुद्धिको बढाते है। ' यहां सोमरसका दही के साथ मिश्रण बताया है।

अभि गावो अधन्विषुः। पुनानाः० ॥ २ ॥
इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि ॥ ५ ॥
शुचिः पावक उच्यसे सोमः सुतस्य मध्वः।
देवावीः अघशंसहा ॥ ७ ॥ (ऋ. ९।२४)

' सोमरस छाना जानेके बाद (गावः) गौका दूध उस में मिलाते है। पहिले पत्थरों से कूट कर रस निकालते हैं, पश्चात् छानते है। यह रस (देवावी) देवत्व देनेवाला और (अघ-शंस-हा) पापप्रवृत्ति का विनाशक है। '

अत्यो न गोभिः अज्यते। (ऋ. ९।३२।३)

' जिस तरह घोडा घुडदौडमें जाता है, उस तरह सोमरस (गोभिः अज्यते) गौओं के साथ अर्थात् गोदुग्ध के साथ जाता है, अर्थात् मिलता है। ' यथा-

अभि गावो अनूषत योषा जारं इव प्रियम्।
अगन् आजिं यथा हितम् ॥ (ऋ. ९।३२।५)

'जिस तरह (योषा) स्त्री (प्रिय जारं) प्रिय के पास जाने की इच्छा करती है, अथवा जिस तरह (हितं आजि) हितकारी युद्ध में वीर योद्धा (अगन्) जाते है, उस तरह सोमरस के पास (गाव. अभि अनूषत) गौवें अर्थात् गोदुग्ध जाता है। '

योऽत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः ॥
(ऋ ९।४३।१)

' जो सोम (अत्य. इव) चपल घोडे के समान वेगसे (गोभि·) गौओं के साथ (मृज्यते) मिलाया जाता है, शुद्ध करके मिश्रित किया जाता है। ' तथा–

आ धावत सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना ।
गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ॥ (ऋ ९।४६।४)

'(सुहस्त्य.) कुशल लोग यहां आवें, मन्थनपात्र मे सोमरस को रखे और उस के साथ (गोभि. श्रीणीत) गोदुग्ध मिला दे। '

स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभि. ।
(ऋ ९।५०।५)

'वह हर्षवर्धक सोमरस (गोभि. अञ्जान) गौके दूध के साथ मिलता है, मिश्रित होता है। '

यहां ' गौ ' पद का अर्थ ' दूध, दहि, घी ' आदि हैं, यह बात भूलना नहीं चाहिये।

उपो षु जातं अप्तुरम् । गोभिर्भंगं परिष्कृतम् ।
(ऋ. ९।६१।१३)

'(अप्तुरं) जल के पास त्वरा से जानेवाला सोमरस (गोभिः भंगं) गौओं के दूध के साथ मिलाया जाता है और वह (परिष्कृतं) परिशुद्ध किया गया है। '

यहां गोदुग्ध के साथ सोमका मिलान होनेका वर्णन है और उसके पूर्व जलके साथ मिलनेका भी है, अर्थात् सोम के साथ प्रथम जल मिलाकर छाना जाता है और पश्चात् दूध मिलाकर पिया जाता है।

शुभ्रं अन्धः देववातं अप्सु धूतः नृभि सुतः ।
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ (ऋ० ९।६२।५)

'देवोंके लिए प्रिय यह सोमरस (शुभ्रं अन्ध) शुभ्रवर्ण का अन्न है। (अप्सु धूतः) जलों से प्रथम धोकर रस निकालते हैं और पश्चात् (गाव पयोभिः स्वदन्ति) गौवें अपने दूध से उस का स्वाद बढा देती है। '

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षति ।
(ऋ. ९।६२।२३)

' सोमरस (गव्यानि वीतये) गौके दूध, दही आदि गौसे उत्पन्न पदार्थों के साथ मिलकर पौरुष बढाता हुआ, स्वयं पवित्र हुआ प्रवाहित होता है। '

यहां ' गव्यानि ' शब्द है । गौ से उत्पन्न दूध, दही, छाछ, मखन, घृत आदि पदार्थ गव्य कहलाते हैं। ये सोमरस के साथ मिलाए जाते है। मखन मिलाने का उल्लेख किसी जगह नहीं है। ' गवाशिरः ' और ' दध्याशिरः ' इन शब्दों से दूध और दही के साथ सोम मिलाया जाता था, यह बात स्पष्ट हो जाती है।

सोमा· शुक्रा गवाशिर· । (ऋ० ९।६४।४८)

' सोमरस वीर्यवर्धक है, जब वह गौके दूध के साथ पिया जाता है। '

अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुत । पुनान इंदुः० ॥
(ऋ० ९।६७।९)

'(अद्रिभिः सुत·) पत्थरों से कूट कर निकाला हुआ (सुत इन्दुः) सोमरस (पुनानः) पवित्र बनता हुआ, छाननी से छाना जाकर (अद्भि)जलों से तथा (गोभिः) गौओंके दूध से मिश्रित किया जाता है। '

त्रिः अस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यां आशिरं ।
(ऋ० ९।७०।१)

अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते ।
(ऋ० ९।८६।२१)

' इक्कीस गौओंका दूध इस सोमके लिए निकाला जाता है। ' इक्कीस गौओंका दूध कितने सोम में मिलाया जाता था, इस का पता नहीं चलता। पर यज्ञ में १८ ऋत्विज, ३३ देव और कुछ सदस्य इतने पीनेवाले हैं। इक्कीस गौओं का दूध २०० सेर होगा। इस में कितना सोम होगा, इस का प्रमाण निश्चित नहीं है। अन्य वचनों के विचार से इस विषय में निर्णय करना चाहिए।

परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिंचन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम् । आ यस्मिन् गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्ति अग्रियं वरीमभिः ॥
(ऋ० ९।७१।४)

'(द्यु-क्षं पर्वता-वृध) द्युलोकमें रहनेवाला, पहाडोंपर उगनेवाला (सहसः मध्वः) बलवर्धक मधु जिसमें मिला है, उस सोममें (सुहुतादः गाव) उत्तम भक्ष्य खानेवाली गौवे (ऊधनि) अपने दुग्धाशयमें स्थित दूधसे (श्रीणन्ति) मिश्रण करती है, अर्थात् सोममें दूध मिलाया जाता है। '

यहां सोममे दूध मिलाने का वर्णन स्पष्ट है।

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभि कलशे
सोमो अज्यते ॥ (ऋ० ९।७२।१)

'(हरिं) हरे रग का सोम कूटकर उसका रस निकाला जाता है और (कलशे सोम) बर्तन में वह सोमरस रखकर (धेनुभि सं अज्यते) गौओंके दूध से मिश्रण किया जाता है। '

प्र सोमस्य पवमानस्य ऊर्मयः इन्द्रस्य यन्ति
जठरं सुपेशसः। दध्ना यदी उन्नीता यशसा
गवां दानाय शूरं उदमन्दिषु सुताः॥
(ऋ० ९।८१।१)

' सोमरस की छानीं जानेवालीं लहरियां सुन्दर इन्द्रके पेटमें (जठरं यन्ति) जाती हैं। जब (गवां दध्ना) गौवों के दही से सोमरस मिश्रित होता है, तब वह रस शूर को अधिक उत्तेजित करता है। ' तथा-

अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणंति।
(ऋ० ९।८४।५)

'(गाव) गौवे उस (पयोवृध सोम) दूध से बढाये जानेवाले सोमरस को (अभि श्रीणन्ति) अच्छी तरह मिला देती है। '

सोमरस के साथ दूध अच्छी तरह मिलाया जाता है, पश्चात् हवन करते और नतर पीते है।

रसाय्यः पयसा पिन्वमानः ईरयन्नेषि मधुमन्तं अंशुम्। (ऋ ९।९७।१४)

' रसवाला सोम दूध के साथ मिला हुआ मधुर बनता है।' तथा-

अभिश्रीणन् पयः पयसाभि गोनां।
(ऋ ९।९७।४३)

' सोम का (पयः) दूध अर्थात् रस (गोनां पयसा) गौओं के दूध के साथ मिलाया जाता है। '

एते सोमा विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः।
(ऋ ९।१०१।१२)

' यह सोमरस दहीं के साथ मिलाया है। '

गोभिष्टे वर्णं अभि वासयामसि। (ऋ. ९।१०४।४)

'(गोभि) गौके दूध से सोम के रंग का पोषण करते है।' यहां (Dressing) अन्न सिद्ध करना यह अर्थ 'अभिवासयामसि ' का है। मसाले वगैरह डालकर सिद्ध करते हैं।

मदासो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिः उत्तरं ॥ २ ॥
अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः, सोमो दुग्धाभिरक्षाः ९
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविः
अच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ १२ ॥
अपो वसानः परि गोभिः उत्तरः ॥ १८ ॥
देवानां सोम पवमान निष्कृतं
गोभिः अञ्जानो अर्षसि ॥ २२ ॥
गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥ २६ ॥
(ऋ. ९।१०७)

गौके दूध के साथ सोमरस का मिलान होता है। यह भाव इन सब मंत्रों में है। यहां ' गौ ' शब्द ही ' दूध ' के लिये आया है।

पिबन्ति अस्य विश्वेदेवासो गोभिः श्रितस्य
नृभिः सुतस्य। अद्भिः मृजानः गोभि श्रीणानः।
(ऋ. ९।१०९।१५-१६)

' सब देव सोम ऐसा पीते हैं कि, जो अच्छी तरह छाना है और दूध के साथ मिलाया है। ' सोम ' उग्र ' (ऋ. ९।१०९।२२) है, इसलिये दूध के साथ मिलाकर उसकी उग्रता कम की जाती है। उसकी उग्रता के कारण सोमरस दूध, दही की मिलावट के विना पिया नहीं जा सकता।

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः।
(ऋ. ९।९१।१८)

' सोमरस के साथ दूध मिल जावे, तथा (वाजा.) अन्न भी मिलाया जावे। ' सत्तू का आटा अथवा अन्य कोई खाद्य हो, वह सोम के साथ मिलाकर खाया जावे।

अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम्। धनंजयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥ (ऋ ९।८४।५)

(त्यं पयोवृधं) उस दूध से बढाये जानेवाले और (मतिभिः स्वर्विदं) बुद्धियों से स्वर्ग को प्राप्त करनेवाले (सोमं) सोम को (गावः पयसा अभिश्रीणन्ति) गौवें दूध के साथ मिला देती है। वह (रसः) सोमरस धन को जीतनेवाला, (कृत्व्यः) कर्म की शक्ति बढानेवाला, ज्ञान बढानेवाला, काव्य की स्फूर्ति देनेवाला (स्वर्चनाः) अपने प्रकाशको (पवते) छाना जाने के समय बढाता है।

सोमरस दूध से बढाया जाता है। इस से बुद्धि बढती है, उत्साह बढता है। और कर्मशक्ति भी बढती है। जो कहते हैं कि सोम मद्य है, वे यहां देखे कि, सोम का रस छाना जाने के बाद ही उसमें दूध मिलाया जाता है और हवन होते ही पीया जाता है। इसलिये इसका मद्य बन जाने की संभावना ही नही है।

(मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। गायत्री।)

इमं अघ्न्या श्रीणन्ति धेनवः सोमम्। (ऋ ९।१।९)

'इस सोम के साथ अवश्य गौवे (अपने दूध को) मिलाती हैं।' यहां 'धेनु' शब्द का ही अर्थ 'धेनु का दूध' है। यह वेद की भाषा की पद्धति है। इसी तरह गोवाचक शब्द गौसे उत्पन्न दूध, दही आदि के लिये प्रयुक्त होते है। लौकिक संस्कृत में ऐसे प्रयोग नहीं होते, यह बात ध्यान में धारण के योग्य है।

(मेधातिथिः काण्वः। गायत्री।)

महान्तं त्वा महीनां आपो अर्षन्ति सिंधवः।
यद् गोभिः वासयिष्यसे ॥ (ऋ. ९।२।४)

'(यत्) जब (गोभिः) गौके दूध के साथ (वासयिष्यसे) मिलाया जाता है, तब हे सोम! (त्वा) तेरे साथ (सिंधवः आपः) नदियों के जल (अर्षन्ति) मिलते हैं।' अर्थात् सोम के साथ जल भी मिलाया जाता है और दूध भी मिलाते हैं। यह दूध गौका ही दूध है।

सोम औषधि से रस निकालने के समय थोडा पानी उसमें मिलाते हैं, जिस से अच्छा रस निकल आता है। जब रस निकल आता है तब उस के साथ गौओं का दूध मिलाया जाता है। तब वह पीनेयोग्य होता है।

इतने मंत्रों के विचार से निश्चित होता है कि, सोम रस में किन वस्तुओं का मिलान होता है?

वैद्यशास्त्र में सोम।

वैद्यशास्त्र की अत्यन्त प्राचीन मानी हुई सुश्रुत संहिता मे सोमरसायन के विषय में एक अध्याय पाया जाता है। इस में सोमवल्ली का वर्णन किया है। ईसा के पूर्व पांच से ले, दसवी शताब्दी तक के काल में सुश्रुत का अस्तित्व माना गया है। इतने प्राचीन काल के ग्रंथ मे सोम का जो वर्णन दिया गया है, उस के सहारे उस काल मे भी सोम की जानकारी कितनी विद्यमान थी, इस का स्पष्टीकरण बहुत कुछ हो सकता है।

ब्रह्मादयोऽसृजन् पूर्वममृतं सोमसंज्ञितम्।
जरामृत्युविनाशाय विधानं तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥
एक एव खलु भगवान् सोमः स्थाननामाकृतिवीर्यविशेषैश्चतुर्विंशतिधा भिद्यते ॥ ४ ॥

"बुढापा और मौत को नष्ट करने के लिए पहले ब्रह्मा आदिकोने अमृत बना डाला, जिसे सोम कहते है। इसी के बारे में अब कहा जायगा।"

"यद्यपि सोम एक ही है, तो भी जगह, नाम, शकल सूरत एवं विशिष्ट शक्तियों में विभिन्नता होने से २४ प्रकारों में विभक्त हुआ, ऐसा प्रतीत होता है।"

१ २ ३ ४
अंशुमान् मुञ्जवांश्चैव चन्द्रमा रजतप्रभः।
५ ६ ७ ८
दूर्वासोमः कनीयांश्च श्वेताक्षः कनकप्रभः ॥५॥
९ १० ११ १२
प्रतानवान् तालवृन्तः करवीरोंऽशवानपि।
१३ १४ १५
स्वयंप्रभो महासोमो यश्चापि गरुडाहृतः ॥ ६ ॥
१६ १७ १८ १९ २०
गायत्र्यस्त्रैष्टुभः पाङ्क्तो जागतः शांकरस्तथा।
२१ २२
अग्निष्टोमो रैवतश्च यथोक्त इति संज्ञितः ॥७॥
२३ २४
गायत्र्या त्रिपदा युक्तो यश्चोडुपतिरुच्यते।
एते सोमाः समाख्याता वेदोक्तैर्नामभिः शुभैः॥८

सर्वेषामेव चैतेषामेको विधिरुपासने।
सर्वे तुल्यगुणाश्चैव विधानं तेषु वक्ष्यते ॥९॥

" अंशुमान से ले, उडुपति तक के सोम वेद में कहे हुए अच्छे नामों से विख्यात है। इन सबों के गुण समान है और तैयार करने का ढंग भी एकसा है।"

अतोऽन्यतमं सोममुपयुयुक्षुः सर्वोपकरण परिचारकोपेतः प्रशस्तदेशे त्रिवृतमागारं कारयित्वा हृतदोषः प्रतिसंसृष्टभक्तः प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रेषु अंशुमन्तमादाया-ध्वरकल्पेनाहृतमभिषुतमभिहुतं, चान्तरागारे कृतमंगलः सोमकंदं सुवर्णसूच्या विदार्य, पयो गृह्णीयात् सौवर्णे पात्रेऽञ्जलि मात्रं, ततः सकृदेवोपयुञ्जीत......... ॥१०॥

पश्चात् इस के परिणाम का वर्णन किया है और सोम का लक्षण कहा है।

सर्वेषामेव सोमानां पत्राणि दश पंच च।
तानि शुक्ले च कृष्णे च जायन्ते निपतन्ति च॥
एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तदा।
शुक्लस्य पौर्णमास्यां तु भवेत् पंचदशच्छदः ॥२१॥
शीर्यते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः।
कृष्णपक्षक्षये चापि लता भवति केवला ॥२२॥

१ २ ३ ४
अंशुमानाज्यगन्धस्तु कन्दवान् रजतप्रभः।
५ ६ ७
कदल्याकारकन्दस्तु मुंजवांल्लशुनच्छदः ॥२३॥
८ ९
चन्द्रमाः कनकाभासो जले चरति सर्वदा।
१० ११
गरुडाहृतनामा च श्वेताक्षश्चापि पाण्डुरौ ॥२४॥
सर्पनिर्मोकसदृशौ तौ वृक्षाग्रावलंबिनौ।
तथान्यैर्मण्डलैश्चित्रैश्चित्रिता इव भान्ति ते।
सर्वे एव तु विज्ञेया सोमाः पंचदशच्छदाः।
क्षीरकन्दलतावन्तः पत्रैर्नानाविधैः स्मृताः ॥२६॥

(सुश्रुतस० अ० २९)

" सभी सोमों के पंद्रह पत्तियाँ होती हैं, जो शुक्लपक्षमें बढकर कृष्णपक्ष में गिर जाती है। गिर चुकने पर प्रति दिन एक एक पत्ता उत्पन्न होता है और पूर्णिमा के दिन सोमलता पंद्रह पत्तियों से युक्त होती है। पश्चात् प्रतिदिन एक एक पत्ती झडने लगती है और अमावास्या के दिन निरी लता ही शेष रहती है। ये सभी सोम भाँति भाँति के रहने पर भी १५ पत्तियों से युक्त रहते हैं और सभी में दूधसा रस, कन्द, लता और विविध पत्तियाँ पाई जाती हैं।"

सोम की उत्पत्ति के स्थानों का भी वर्णन वहाँ पर किया है।

हिमवत्यर्बुदे सह्ये महेन्द्रमलये तथा।
श्रीपर्वते देवगिरौ गिरौ देवसहे तथा ॥२७॥
पारियात्रे च विन्ध्ये देवसुन्दे-ह्रदे तथा।
उत्तरेण वितस्तायाः प्रवृद्धा ये महीधराः ॥२८॥
पंच तेषामधो मध्ये सिन्धुनामा महानदः।
हठवत् प्लवते तत्र चन्द्रमाः सोमसत्तमः ॥२९॥
तस्योद्देशेषु चाप्यस्ति मुंजवानंशुमानपि।
काश्मीरेषु सरो दिव्यं नाम्ना क्षुद्रकमानसं ॥३०॥
गायत्र्यस्त्रैष्टुभ पांक्तो जागतः शांकरस्तथा।
अत्र सन्त्यपरे चापि सोमाः सोमसमप्रभाः ॥३१॥

(सुश्रुतसंहिता अ० २९)

" नीचे लिखे हुए स्थलों में सोम की उत्पत्ति होती है- हिमवान्, अर्बुद, सह्य, महेन्द्र, मलय, श्रीपर्वत देवगिरी, देवसह, पारियात्र, विन्ध्य, देवसुन्द तालाब, वितस्ता नदी के उत्तर में जो बडेबडे पहाड है। सिन्धुनद में और काश्मीर में जो क्षुद्रक मानस नामक सुन्दर झील है, वहाँ पर अन्य कई सोम जो चाँद के समान चमकीले है, पाये जाते है।

यहाँ पर सोम के चौबीस प्रकार होते हैं, ऐसा कह कर वे सभी नाम वेदविहित हैं, ऐसा प्रतिपादन किया है, पर स्वयं ऋग्वेद में ही वास्तव में दो और पर्याय के ढंग से पांच नाम पाये जाते हैं।

ध्यान में रखनेयोग्य विशेष उल्लेख है कि, सोम कन्द के रूप में पाया जाता है, और केले के कन्दवत् कन्दस्वरूप सोम यह वर्णन नया और सोम के स्वरूप को समझने के लिए अधिक उपयुक्त है।

उसी प्रकार सभी सोमवल्लियों को पद्रह पत्तियाँ रहती हैं और चंद्र की क्षयवृद्धिके समान एक एक पत्ती क्रम से घटती और बढती जाती है। प्रत्येक प्रकार का सोम पद्रह पत्तियों से युक्त रहता है और वह गोंद, कन्द तथा वल्लिके रूप में प्रकट होता है।

सोम के जन्मस्थानों का वर्णन करते समय सभी प्रांतों के स्थलों का उल्लेख किया है। पानीपर तैरनेवाला, वृक्षसे लटकनेवाले और भूमिपर उगनेवाला सोम बतलाया है।

सुश्रुतसंहिता में यह कल्पना कि, चन्द्रमा की कलाओं के समान ही घटबढनेवाली पत्तियों से युक्त सोमवल्ली रहती है, इसमें देखने मिलती है। सोमरस के लिए सुवर्ण का बर्तन और सोमकद को फोडने के लिए सोने की सूई ये बातें भी ऋग्वेद में सोम तथा सुवर्ण का जो संबंध प्रस्थापित हुआ, पाया जाता है, उस पर प्रकाश डालनेवाली हैं। इससे शका होती है कि, उन दिनों में भी क्या सोम इतनी दुर्लभ वस्तु थी। हां, ऋग्वेद मे कई जगह सोमलता का स्पष्ट निर्देश किया गया है। सोमलता के सभी विशेष गुण चन्द्रमा में पाये जाते हैं। चन्द्रमा की बदौलत मन हर्षित हो उठता है, उमंग की मात्रा बढ जाती है, समुद्र के जल की तरग कीसी उठान होती है, विषयवासना उद्दीप्त हो जाती है, निद्रा अच्छी तरह आती है, वनस्पतियाँ बढने लगती है, मानव के दिल को हराभरा कर वह उसे युद्धादि कार्यों को अधिक सुचारु रूप से निभाने में प्रवृत्त करता है। चन्द्रमा एव सोमलता में उपर्युक्त सभी बातें समान रूप से पाई जाती है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर चन्द्रमा तथा सोमवनस्पति के मध्य अभिन्न एकता मानने की ओर प्रवृत्त होना अत्यंत स्वाभाविक जान पडता है।

स्वर्ग से जब श्येन सोम को ले आ रहा था, तब धनुर्धारी कृशानु नामक एक गन्धर्व ने उसे एक बाण मारा। (ऋ० ४-२७)

पुराणों में अमृत लाने के सबंध में कथा पाई जाती है, ऋग्वेद में अनेक जगह उल्लेख मिलता है कि, श्येन अर्थात् बाजपक्षी स्वर्गसे सोम को भूमिपर लाया। (देखो ऋग्वेद ३-४३-७,४-२६-६;८-९५-३)

कुछ स्थानोंपर ऋग्वेद में सोम को श्येनाभृत भी कहा है (ऋ० १-८०-२,८-९५-३)। पर काव्यमय भाषामे अग्नि एव इन्द्र के लिए भी श्येन शब्द प्रयुक्त हुआ है।

चन्द्रमा तथा सोम।

अर्वाचीन साहित्य में सोम से चन्द्रमा का बोध हुआ करता है, परन्तु ऋग्वेद में सोम का अर्थ चन्द्रमा करनेके लिये बहुत उपयुक्त स्थान पाये जाते है। चन्द्रमा प्रतिदिन घटता जाता है और देवतागण उसकी कलाओं का भक्षण करते है। पश्चात् वह फिर बढता है, जब कि उसे सूर्य की सहायता प्राप्त होती है। छान्दोग्य उपनिषद् (५।१०।१), ऐतरेय ब्राह्मण (७।११) तथा शतपथ ब्राह्मण (१।६।४।५) में सोम का अर्थ किया है चन्द्र। कौषीतकी ब्राह्मण के कथनानुसार (७।४०।४।४) यज्ञ में जिस लता या रस का ग्रहण करना हो, वह चन्द्रदेवता का प्रतीक है, ऐसा समझना चाहिए। ब्राह्मणग्रथों में सभी जगह यों कहा है कि, पितर एव देवतागण भक्षण करने में प्रवृत्त होते है, इसलिए चन्द्रमा का क्षय या घटाव होता है। ऋग्वेद के सूर्याविवाहसूक्त (१०।८५) से स्पष्ट है, सोम तथा चन्द्रमा की अभिन्नता से लोग परिचित थे और इसी सूक्त में उल्लेख पाया जाता है, नक्षत्रों के मध्य में सोम बैठा हुआ है। आगे चलकर कहा है कि, जो सोम ब्राह्मणों को ज्ञात है, उसे कोई नही खाता है और जिसे वे निचोडते है, वह अन्य ही है। चन्द्रमा का सोमत्व केवल ब्राह्मणों को ही ज्ञात है, इससे ज्ञात होता है, यह धारणा उन दिनों रूढ नही थी।

इस के सिवा ऐसा भी उल्लेख पाया जाता है कि, सोम के कारण समुद्रमें जल चढ आता है। उसी के कारण रात्रियों का निर्माण होता है। इस से ज्ञात होता है, सोमलता एव चन्द्रमा की अभिन्नता चित्रित की गयी हो।

ब्राह्मणसदृश ग्रन्थों में और आगे दी हुई सहितांतर्गत आख्यायिका में सोम का अर्थ स्पष्टतया चन्द्रमा ऐसा किया है।

ऋग्वेद के अष्टम मंडल के ९१ सूक्त में वृद्ध कुमारी अपाला के जो मन्त्र हैं, उन से प्रतीत होता है, इन्द्र सोम को पाने के लिए कितना लालायित रहा करता था।

❀

सोम किस समय विनष्ट हुआ होगा?

अब यह एक जटिल समस्या उठ खडी होती है कि, यह इतना सुपरिचित सोम कब और कैसे विलुप्त हुआ होगा? जिस सोम का सदैव उपयोग किया जाता था, जो हिमालयके मूजवत् पर्वतशिखर पर उत्पन्न होता था, तथा हिमाचल की तराइयों मे विद्यमान शर्यणावत झील मे पैदा होता था, वही सुतरां अलभ्य हो, यहाँ तक कि, उस के सम्बन्ध में सामान्य कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, इतना ही नही, अपितु ब्राह्मणग्रथों में उस के प्रतिनिधि की योजना करनी पडी। यह अत्यन्त आश्चर्य-जनक एवं विचारणीय घटना है।

शतपथ ब्राह्मण में (४-५-१०,१ से ६) स्पष्ट शब्दों में सोम के प्रतिनिधि का निर्देश किया हुआ है। परन्तु ऐतरेय ब्राह्मण (३५-३७) तथा तैत्तिरीय संहिता में उस के अलभ्यपन की सूचना मिलती है। सोम मोल लेने के अवसरपर उसे पाने के लिए छीनाझपटी करनी पडती थी, आदि बातों से साफ साफ पता चलता है कि, ब्राह्मणकाल में ही सोम दुर्लभ एवं अप्राप्य बन बैठा था।

यज्ञ के अतिरिक्त सोम का पान न किया जाय, यदि यज्ञ में सोम की त्रुटि प्रतीयमान हो, तो क्या किया जाय, उस के चुरा लेने पर क्या करना चाहिए, इत्यादि तैत्तिरीय ब्राह्मण मे जो चर्चा की गयी है, उस से पता चलता है कि, सोम उस काल में प्रचुर मात्रा में नही उपलब्ध होता था।

यद्यपि ऋग्वेद में उल्लेख पाया जाता है कि, प्रतिदिन तीन बार सोम का विपुलतया उपयोग किया जाता था।

सोम के सम्बन्ध में विविध कल्पनाएँ।

अर्वाचीन युग में सोम के बारे में भाँतिभाँति की धारणाएँ प्रचलित हैं। तैत्तिरीय संहिता के आंग्लभाषानुवाद में ए. बी कीथ महोदय सोम को सुरासदृश पदार्थ समझते हैं। वाट महोदय के कथनानुसार अफगानिस्थान के दाख का आसव ही सोमरस है। रायस की धारणा है कि, गन्ने का रसही सोमरस है। हिल ब्रण्डट् कहता है, सोम एक तरह का शहद है। मधुरता के लिए जैसे अमृत, सुन्दरता का ज्यों कामदेव और सुखका प्रतीक जिसप्रकार स्वर्ग माना जाता है, उसी प्रकार सर्वोपरि पीनेयोग्य वस्तु का प्रतीक सोम है, ऐसी कुछ लोगों की राय है।

शतपथ ब्राह्मण में सोमके प्रतिनिधिके रूपमें दूर्वादलका उल्लेख किया है, (४. ५. १० १ से ६) पर सुश्रुतसंहिता में उसे सोमके ही एक प्रकार के रूप में निर्दिष्ट किया है।

सोम तैयार करते समय उसमें सुवर्ण की धूलि डालते हैं। नवम मडल में भी सोम एव कांचन का संबंध प्रदर्शित किया है। सायणाचार्यजीने उसका विभिन्न अर्थ प्रस्तुत कर दिखाया है- हिरण्मये कोशे, तस्य हिरण्मयत्वं हिरण्यपाणिरभिषुणोति इति हिरण्यसंबंधात् ' (९-१-२, ९-७५-३)। सुश्रुत-संहितामें सोमविषयक जो अवतरण दिया जा चुका है, उस में सोम कन्द को तोडने के लिए सोने की सूई और सोमरस को रखने के लिए सुवर्ण का बना हुआ बर्तन सूचित किया है।

पञ्चजनों को प्रिय सोम।

गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः।
परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम्॥ (ऋ ९।१४।२)

(सबन्धवः) आपस में भाई भाई के समान बर्तनेवाले (पंच व्राताः) चार वर्ण और पांचवां निषाद ये पांच प्रकार के लोग (धर्णसि) सब के धारक सोम को (गिरा परिष्कृण्वन्ति) स्तुति से शोभित करते हैं।

(मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । गायत्री)

रक्षोहा विश्वचर्षणिः अभि योनिं अयोहतं।
द्रुणा सधस्थं आसदत्॥ (ऋ ९।१।२)

यह सोम (रक्षो-हा) राक्षसों का नाश करनेवाला, (विश्व-चर्षणिः) सब मानवों का हितकारी है। वह सोम (अयोहत) लोहे की कूटनी से कूटने के अथवा (द्रुणा) लकडी के दण्डे से कूटने के (सधस्थं योनिं) अपने निज स्थान के पास अथवा अपने खरल में (अभि-आ-सदत्) प्राप्त हुआ है।

यहां सोम को ' रक्षो-हा ' कहा है। सोम औषधि है। औषधि से जिन राक्षसों का नाश होता है, वे राक्षस रोगो के उत्पादक कृमि हैं। इस विषय में ' वैदिक चिकित्साशास्त्र ' नामक पुस्तक में तथा ' औषधि '

देवता के मंत्रों के विवरण में पाठक विस्तार से देख सकते हैं।

यह सोम ' विश्व-चर्षणि ' है, सब मानवों का हितकारी है। क्योंकि रोगनिवारण और बलवर्धन करके दीर्घायु और उत्साह बढाने के गुण इस औषधि में है और सब मानवो का हित करनेवाले है।

यह खरल में रखकर प्रथम लोहे की कुटणी से अथवा लकडी के दण्डे से कूटा जाता है। यहां ' अय. ' का अर्थ ' सुवर्ण ' मान कर कई लोग सुवर्ण से कूटा हुआ सोम अर्थात् सुवर्ण के आभूषण हाथ में धारण करके कूटा हुआ सोम ऐसा इसका अर्थ करते है। इसी तरह ' द्रुणा ' का अर्थ भी दूसरा ही करते है, पर वह दूर का सम्बन्ध होता है।

यह सोम रोगोत्पादक कृमियो का नाशक है, यह चिकित्सा की बात यहां स्पष्ट कही है।

वीर सोम।

(अवत्सारः काश्यपः । गायत्री)

यो जिनाति, न जीयते हन्ति शत्रुं अभीत्य।
स पवस्व सहस्रजित्॥ (ऋ. ९।५५।४)

जो सोम शत्रु को जीतता है, पर कभी शत्रुओं से पराभूत नहीं होता, यह सोम शत्रु का नाश करता है, वह सहस्रों शत्रुओं को जीतनेवाला है, वह स्वय पवित्र होता है।

यहां सोम की ' वीर ' विभूति का वर्णन है, तथा-

पवस्व गोजित् अश्वजित् विश्वजित् सोम रण्यजित्। प्रजावत रत्न आ भर॥ (ऋ. ९।५९।१)

हे सोम वीर ! तू गौंको, घोडों को, सब शत्रु को, युद्ध को जीतनेवाला है। तू विजय करके प्रजा के साथ रत्न हमें ला दे।

(गोतमो राहूगणः । त्रिष्टुप्)

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तं आशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति। सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशत् अस्मै॥ २०॥

अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम्। भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम॥ २१॥

(ऋ १।९१)

सोम गौ, चपल घोडे, वीर और (कर्मण्यं) पुरुषार्थी (सादन्य) घर का यश बढानेवाले, (विदथ्यं) युद्ध में प्रवीण, (सभेय) सभा में संमान प्राप्त करनेयोग्य, (पितृ-श्रवण) पिता की कीर्ति बढानेवाले पुत्र को (ददाति) देता है।

(अ-साळ्ह) युद्ध में अजिक्य, (पृतनासु पप्रि) सग्रामों मे से पार पहुंचानेवाला, (स्वर्षां अप्सां) जलों को प्राप्त करनेवाला, (वृजनस्य गोपां) पाप से बचानेवाला (भरेषुजां) सपत्तियों में उत्पन्न हुआ (सु-क्षितिं) उत्तम घरो से युक्त, (सुश्रवस) यशस्वी (जयन्तं) विजयी तुझ को देखकर, हे सोम ! हम आनन्दित होंगे।

सर्वविजयी।

गोजिन्नः सोमो रथजित् हिरण्यजित् स्वर्जिद् ब्जित् पवते सहस्रजित्। यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्सं अरुणं मयोभुवम्॥

(ऋ ९।७८।४)

यह सोम गौ, रथ, सुवर्ण, स्वर्ग, जल और सहस्रों पदार्थों को जीतनेवाला है, यह सोम (पवते) छाना जा रहा है। इस स्वादु (मद) आनदवर्धक (अरुण मयोभुव) लाल वर्णवाले सुखकारक (द्रप्सं) प्रवाही पेय को देवोंने (पीतये) पीने के लिये अपना पेय बनाया। इस तरह का यह उत्तम पेय है।

प्रभावी वीर।

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि। तिग्मायुध· क्षिप्रधन्वा समत्सु अषाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून्॥

(ऋ ९।९०।३)

(शूरग्राम) शूरो के संघों का चालक, (सर्ववीरः) सर्व वीरों को पास रखनेवाला, (सहावान्) शक्तिमान्, (जेता) विजयी, (धनानि सनिता) धनों को जीत कर

बांटनेवाला, (तिग्म-आयुधः) तीक्ष्ण शस्त्रों को पास रखनेवाला, (क्षिप्र-धन्वा) धनुष्य को शीघ्र सज्ज करनेवाला (समत्सु असाळ्हः) युद्धों में शत्रु को असह्य होनेवाला (साह्वान्) शत्रु के हमले होने पर अपने स्थान को न छोडनेवाला यह वीर है।

सोमरस का सेवन करनेवाला वीर कैसा प्रभावी होता है, यह इस मंत्र में कहा है।

शूर वीर।

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते
अस्य सेना। भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान् सखिभ्य
आ सोमो वस्त्रा रभसानि धत्ते ॥ (ऋ० ९।९६।१)

(सेनानीः शूरः) सेना चलानेवाला शूर वीर (गव्यन्) गौवों की प्राप्ति की इच्छा करके (रथानां अग्रे प्र एति) रथों के अग्रभाग में जाता है, तब (अस्य सेना हर्षते) इसकी सेना आनंदित होती है। (सखिभ्यः) अपने मित्रों के लिए (भद्रान् कृण्वन्) कल्याणकारक कर्म करता हुआ यह वीर (रभसानि वस्त्राणि आ धत्ते) पक्के रंगके वस्त्र धारण करता है।

जो वीर सेनाके आगे चलता है, उसपर सैनिक संतुष्ट रहते हैं। यह अपने लोगों को आनंद देता है और पक्के वस्त्र धारण करता है।

(अमहीयुरांगिरस । गायत्री)

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा।
अवाहन् नवतीर्नव ॥ (ऋ० ९।६१।१)

हे सोम! तू इस तरह प्रवाहयुक्त (परिस्रव) हो। तेरे आनन्द से आनंदित होकर इन्द्रने असुरोंके (नवती नव) न्यानवे नगर तोड डाले (अर्थात् असुरों के कीलों का नाश किया।

(असितः काश्यपः । गायत्री)

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदसि।
यदीं ऋण्वन्ति वेधसः (ऋ० ९।७।५)

'(पवमानः) शुद्ध होनेवाला सोम (विशः राजा इव) प्रजाओं में जैसा राजा बैठता है, वैसा अपने (स्पृधः) स्पर्धा करनेवालों के ऊपर (अभि सीदसि) बैठता है, जब (वेधसः) ज्ञानी लोग (ऋण्वन्ति) उसे ऊपर लाते हैं।'

जिस तरह राजा उच्च स्थानपर विराजता है और अन्य लोग नीचे बैठते हैं, और शत्रुओं को भगाया जाता है, उस तरह सोम छाननी के ऊपर विराजता है और उस का रस नीचे जाता है।

(हिरण्यस्तूप आंगिरस । गायत्री)

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रव ॥०॥ १
सना ज्योतिः सना स्वः विश्वा च सोम
सौभगा ॥ ० ॥ २

सना दक्षं उत क्रतुं अप सोम मृधो जहि ॥०
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३॥ (ऋ० ९।४।१-३)

'हे सोम! हमारे लिए (महिश्रवः) बडा यश (जेषि) जय करके प्राप्त कराओ। हमें प्रकाश, आत्मबल, और (विश्वा सौभगा) सब प्रकार के सौभाग्य दो। तथा हमें (दक्षं) चातुर्य, (क्रतु) कर्तृत्व दो और (मृधः अप जहि) शत्रुओं का नाश कर हमें (वस्यसः कृधि) श्रेय से युक्त कर।

(अजीगर्तिः शुनःशेपः । गायत्री)

एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः।
पवमानः सिषासति ॥ (ऋ० ९।३।४)

'(शूरः सत्वभि यन् इव) वीर अपने सैनिकों के साथ शत्रुपर हमला करने के लिए जाने के समान यह (पवमानः) शुद्ध होनेवाला सोम (विश्वानि वार्या) सब स्वीकार करनेयोग्य धन (सिषासति) जीत कर प्राप्त करता है।

(मेधातिथिः काण्व । गायत्री।)

गोषा इन्दो नृषा असि अश्वसा वाजसा उत।
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ (ऋ० ९।२।१०)

'हे (इन्दो) सोम! तू (पूर्व्यः यज्ञस्य आत्मा) तू यज्ञ का पुरातन आत्मा है, वह तू (गो-षा) गौ देनेवाला, (नृ-षा) वीर पुरुष देनेवाला, (अश्व-सा) घोडे देनेवाला और (वाज-सा) अन्न अथवा बल देनेवाला है।'

शत्रुनाश।

सोम राक्षसों, असुरों, द्वेषियों और शत्रुओं को दूर करता है, इस विषय में कहा है–

जहि विश्वा अप द्विषः। इन्दो ! (ऋ ९ ८-७)
' हे सोम ! तू सब द्वेषियों का नाश कर। '

पवमान ! विश्वा अप द्विषो जहि।
(ऋ. ९-१३-७)

उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रुषु।
पवमान विदा रयिम् ॥ ६ ॥
नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुष्मं नि वयः तिर।
दूरे वा सतो अन्ति वा ॥७॥ (ऋ. ९-१९)

(अप-तस्थुषः) जो दूर है, वे हमारे (उपशिक्ष) पास आ जाय, हमारे मित्र बने, शत्रुओं में (भियस आ धेहि) भय बढे, क्योंकि हे सोम ! तू (रयि विद) धन देनेवाला, विजय देनेवाला तू ही है। (शत्रोः वृष्ण्यं) शत्रु का बल घटाओ, (शुष्म नि) शत्रु सामर्थ्य नष्ट कर, (वय नितिर) शत्रु का आयु तथा उत्साह दूर कर, फिर वे शत्रु हम से दूर हों वा पास हो।

सोम पवित्रे अर्षति
निघ्नन् रक्षांसि देवयुः। (ऋ. ९-१७-३; ९-५६-१)

सोम (पवित्रे) छाननी पर पहुंचता है और (रक्षांसि) राक्षसों का (निघ्नन्) नाश करता है और (देव-युः) देवता के साथ सम्बन्ध जोडता है। तथा-

यत् ते शुष्मासः अस्थू रक्षो भिन्दन्तः अद्रिवः।
नुदस्व या परिस्पृधः। (ऋ. ९-५३-१)

जो सोम के (शुष्मास) बल है, वे (रक्षः भिन्दन्तः) राक्षसों का नाश करते हैं और (परि-स्पृध) स्पर्धा करनेवाले शत्रुओं को (नुदस्व) दूर भगाते हैं।

अपघ्नन् पवते मृधो अप सोमो अराव्णः।
(ऋ. ९-६१-२५)

यह सोम (मृधः) शत्रुओं का और (अ-राव्णः) खानेवालों का, दूसरों को न देते हुए स्वयं भोगियों का नाश करता है।

वेति द्रुहो, रक्षसः पाति, जागृविः।
(ऋ. ९-७१-१)

' द्रोही शत्रुओं को भगाता है और राक्षसों से रक्षा करता है, ऐसा प्रभाववान् जागृत सोम यह है।

सोमः सुषुतः परिस्रव अप अमीवा भवतु रक्षसा सह॥
(ऋ. ९-८५-१)

' सोमरस निकाला है। यह (अमीवा) आमजन्य रोगबीज (रक्षसा सह अप) रोगकृमियों के साथ दूर करता है।

यहां ' रक्षस ' का अर्थ ' रोगबीजरूप सूक्ष्म कृमि ' यह निश्चित हुआ, क्योंकि ये राक्षस (अमीवा) आमसे उत्पन्न हुए रोगबीजों के साथ दूर होते है। इसलिये आमजन्य रोगबीज और रोगकृमिरूप राक्षस साथ रहनेवाले रोगोत्पादक सूक्ष्म बीज है।

रुजा दृळहा चित् रक्षस सदांसि।
(ऋ. ९९१-४)

" राक्षसों के सुदृढ स्थानो का नाश कर " यह वर्णन चिकित्सा की दृष्टि से स्थायी रोगबीजों के नाश का भाव बताता है।

सनेमि कृध्यस्मदा रक्षसं कंचिदत्रिणम्।
अपादेवं द्वयुं अंहो युयोधि नः (ऋ. ९।१०४-६)
सनेमि त्वमस्मादां अदेवं कंचिदत्रिणम्।
साह्वां इन्दो परिवाधो अप द्वयुम् ॥
(ऋ. ९-१०५-६)

(अत्रिण रक्षसं) खानेवाले राक्षस अर्थात् रोगबीज को (अ-देवं) इंद्रियों के घातक (द्वयु अंहः) शत्रु की सहायक होनेवाले पापी को (नः युयोधि) हम से दूर कर। सोम यह सब करता है।

यहां ' अत्रिन् ' का अर्थ रुधिर अथवा मांस खानेवाले रोगबीजरूपी कृमि है, ' रक्षस् ' भी वैसे ही रोग बढानेवाले है, (अ-देवं) देव इद्रियां हैं, उन की क्षीणता करनेवाले रोगबीज हैं, (अंहः) पाप से होनेवाले रोगबीज है, (द्वयुः) दोनों घातक साधनों का समान प्रयोग करनेवाले रोगबीज हैं। इन का नाश सोमरस करता है।

(दृढच्युत. आगस्त्यः गायत्री)

विश्वा रूपाणि आविशन् पुनानः याति हर्यतः।
यत्र अमृतास आसते ॥ (ऋ. ९-२५-४)

यह सोम (पुनानः) छाना जाने के बाद अनेक रूपों में प्रविष्ट होता है, जहां अमर देव रहते हैं।

अमर देवताओं के अंश सब अवयवों और इन्द्रिय-स्थानों में रहते हैं। सोमरस पीने के बाद वह उन इंद्रियों में पहुंचता है और उनको उत्तेजित करता है। यही भाव निम्नलिखित मंत्र में है—

एष सूर्यमरोचयत् पवमानो विचर्षणिः।
विश्वा धामानि विश्ववित्॥ (९-२८-५)

यह सोमरस विशेष स्फूर्ति देनेवाला है, उसने सूर्य को प्रकाशित किया और सब धामों को उत्तेजित किया है। देवों के जो जो स्थान-इंद्रियस्थान हमारे शरीर मे है, वहां जाकर यह उत्तेजना देता है। शरीर में सूर्य नेत्रस्थान में है। उसे इस की उत्तेजना मिलती है।

सोमरस वज्र जैसा है।

आत् सोम इंद्रियो रसः वज्रः सहस्रसा भुवत्॥
(ऋ. ९-४७-३)

यह सोमरस (इंद्रियः) इंद्र के लिये अथवा इंद्रियों की शक्ति बढाने के लिये है, यह सहस्र शक्तिवाले वज्र जैसा सामर्थ्य बढानेवाला है।

कलावान् सोम।

नानानं वा उ नो धियो, वि व्रतानि जनानाम्।
तक्षा रिष्टं, रुतं भिषक्, ब्रह्मा सुन्वन्तं इच्छति०॥१
जरतीभिः ओषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम्।
कर्मारो अश्मभिः द्युभिः, हिरण्यवन्तं इच्छति० ॥२॥
कारुः अहं, ततो भिषक्, उपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवो, अनु गा इव तस्थिम० ॥३॥
अश्वो वोळ्हा सुखं रथं, हसनां उपमन्त्रिणः।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ, वार इन्मण्डूक इच्छति।
इन्द्राय इन्दो परिस्रव॥ ४॥ (ऋ. ९-११२)

(नः धियः नानानं) हमारी बुद्धियां विविध हैं, तथा (जनानां व्रतानि वि) लोगों के कर्म भी विभिन्न हैं। (तक्षा रिष्टं) तरखाण साफ लकडी चाहता है, (भिषक् रुतं) वैद्य रोगी को ढूंढता है, (ब्रह्मा सुन्वन्तं इच्छति) याजक यज्ञकर्ता की इच्छा करता है॥१॥ (जरतीभिः ओषधीभिः) परिपक्क औषधियों के साथ वैद्य, (शकुनानां पर्णेभिः) पक्षियों के विविध रंगों के पंखों के साथ कारीगर, (द्युभिः अश्मभिः कर्मारः) चमकीले रत्नों के साथ सुनार (हिरण्यवन्तं इच्छति) धनिक को चाहता है॥२॥ मै स्वयं (कारुः अहं) कारीगर हूं, (ततः भिषक्) मेरा पिता वैद्य है, (नना उपलप्रक्षिणी) मेरी माता चक्की पीसती है, हम सब (नानाधियः) विविध प्रकार की बुद्धियों से युक्त हैं, पर सब (वसूयवः) धन कमाने के इच्छुक है, (गाः इव अनुतस्थिम) गौवों के समान अनुकूलता से इकट्ठे रहते है और अपने काम का अनुष्ठान करते है॥३॥ (वोळ्हा अश्वः) रथ खींचनेवाला घोडा (सुखं रथं) सुख से खींचा जानेवाला रथ चाहता है, (उपमंत्रिण हसनां) साथ काम करनेवाले हंसी खेल करना चाहते हैं, (शेपः रोमण्वन्तौ भेदौ) तरुण तरुणी को चाहता है, (मण्डूकः वार इच्छति) मेंडक जल चाहता है। हे (सोम) कलावान् पुरुष! (इंद्राय) परम ऐश्वर्यवान् के लिये ही (परि स्रव) चारों ओर से अपने कलारस का प्रवाह पहुचाओ।

'सोम, इन्दु' का पर्याय '**कलानिधि, कलावान्**' है। जो कलाओं से (Arts & Crafts से) युक्त होता है, वह कलावान् अर्थात् कारीगर कहलाता है। सोम का यह कलावान् (Artist) अर्थ यहां लेना चाहिये। हे इंदो, सोम=कलानिधे) कारीगर! तू (इन्द्राय) इंद्र के लिये अर्थात् (इदि परमैश्वर्ये) परम ऐश्वर्यवान् के लिये उस परम धनी के उपयोग में आनेवाले पदार्थ निर्माण करने के हेतु से अपनी कला का प्रवाह (परिस्रव) प्रवाहित करो।

इस अर्थ को लेकर पूर्वोक्त चारों मंत्रों का अर्थ किया जाय, तो अर्थ की ठीक संगति लगती है। सब युरोपीयन पंडित लिखते हैं कि, यह मत्रभाग 'इन्द्रायेन्दो परिस्रव' यह इन चार मंत्रों में अप्रासंगिक है। देखिये—

The hymn appears to be an old popular song transformed into an address to soma, by attaching to each stanza a refrain which has no connection with the subject of the song. (R. T. H. Griffith, RigVeda Vol. II, Page 380)

इसी तरह मराठी अनुवादकर्ता श्री सिद्धेश्वरशास्त्री

चित्रावजीने भी यह मन्त्रभाग प्रसंगहीन है, ऐसा लिखा है। ये सब विद्वान इन चार मंत्रों के इस मन्त्रभाग को अप्रासंगिक कहते है। पर हमारा विश्वास है कि, 'सोम' के श्लेष अर्थ से यह मन्त्रभाग यहां सुसंगत है। तखाण, सुनार, लुहार, वैद्य, विद्वान्, तथा अन्यान्य लोग अपनी कारीगरी का प्रवाह ऐश्वर्यवान् के पास पहुंचा देवे।

जब 'कारीगर' ही सोम होगा, तो उसका सोमरस कारीगरी अथवा 'कुशलता' होगी, ब्रह्म जब सोम कहलायेगा, तब उसका सोमरस 'ब्रह्मज्ञान' होगा। जब वैद्य सोम होगा, तब उसका सोमरस 'चिकित्सा' होगा। इस तरह अन्यान्य श्लेषार्थों के विषय में जानना चाहिये।

आशा है कि, पाठक इस तरह इन सोमसूक्तो में जो अन्यान्य श्लेषादि अर्थ है, उनका विचार करे और ज्ञान प्राप्त करे।

पुरातन पिता।

पवित्रवन्तः परिवाचं आसते पितैषां प्रत्नो अभिरक्षति व्रतम्। महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इत् छेकुर्धरुणेष्वारभम्॥

(ऋ. ९।७३।३)

(पवित्रवन्त वाचं परि आसते) सोम को छाननेवाले स्तुति करते हुए बैठते है, इस समय (एषां प्रत्नः पिता) इनका पुरातन पिता (व्रत अभिरक्षति) यज्ञ की रक्षा करता है। (वरुण) वरुणने (मह समुद्र तिरो दधे) बडे अन्तरिक्षरूपी महासागर को ढांक दिया है, अर्थात् उसने सब आकाश व्याप लिया है, (धीराः इत् शेकु) बुद्धिमान् ज्ञानीहि समर्थ हुए और उन्हों ने (धरुणेषु आरभं) आधारों पर सोमरस छानने का कार्य किया है।

यज्ञ में ऋत्विज सोमरस छानते हैं, वेदमंत्रों से स्तुति होती रहती है। सर्वव्यापक ईश्वर की भक्ति चलती है। ऐसे समय सोमरस छाना जाकर तैयार होता है।

प्रभु के गुप्त दूत।

सहस्रधारेऽव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः। अस्य स्पशो न निमिषन्ति भूर्णय॰ पदे पदे पाशिनः सन्ति सेतव॥

(ऋ. ९।७३।४)

(ते असश्चत. मधुजिह्वाः) वे रस पृथक् होकर तथा मधुर बनकर (सहस्रधारे अव समस्वरन्) हजारों धाराओं द्वारा नाद करते हुए नीचे चूते थे। (अस्य भूर्णयः स्पश) इसके पार्थिव सेवक (न निमिषन्ति) कभी आंख बंद करके चुप नहीं रहते, प्रत्युत (पदे पदे) प्रतिपद में (पाशिनः) हाथ में पाश लिये (सेतवः सन्ति) मर्यादा बांधकर रहते है।

सोमरस की धाराएं छाननी के नीचे सहस्रों धाराओं से गिरती है। मानो ये परमेश्वर की मधुर जिह्वायें ही हैं। इसी प्रभु के हजारों गुप्त दूत हाथ में पाश लिये, दुष्टों को पकडने के लिये, आंख न बंद करते हुए चारों ओर पद-पद में खडे है, इन्होने अपनी मर्यादा निश्चित की है, उसके बाहर जो जाता है, उसे वे अपने पाशों से बांध देते हैं।

तप का महत्त्व।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वत। अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद् वहन्तस्तत् समासत॥ (ऋ ९।८३।१)

हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञान के स्वामिन्! (ते पवित्र वितत) तेरा पवित्रता का साधन फैला है। तू सब का (प्रभु) स्वामी, प्रभु, होकर (गात्राणि विश्वत. परि एषि) सब अवयवों, सब वस्तुओं में व्यापक होता है। (अ-तप्त-तनू॰) जिसने तप नहीं किया, वे (तत् आमः न अश्नुते) उस सुख को प्राप्त नहीं कर सकते, पर (शृतासः इत्) जो परिपक्व हुए है, वे सत्पुरुष (वहन्तः तत्) उसे धारण करते हुए (स आसत) मिलकर बैठते है, अर्थात् वे ही आनन्द लाभ करते है।

प्रभु परमेश्वर सर्वत्र है, उसका पवित्रता का साधन सर्वत्र है। पर जो तप नहीं करते, वे उसे प्राप्त नहीं कर सकते, जो तप करके परिपक्व बनते हैं, वे उसको अच्छी तरह धारण करते हैं।

त्रिभुवनों का अधिष्ठाता।

आ य तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति।
कृण्वन् संचृतं विचृतं अभिष्टय इन्दुः सिषक्ति उषसं न सूर्य॥ (ऋ. ९।८४।२)

(य. सोम) जो सोम (विश्वानि भुवनानि) सब भुवनों का (आ तस्थौ) अधिष्ठाता हुआ है, वह (अमर्त्यः) अमर सोम (तानि परि अर्षति) उन भुवनों के चारों ओर रहता है। यह प्रभु सब के (आभिष्टये) हित के लिये (सचतं विचृतं कृण्वन्) संयोग और वियोग करता है, वही जैसा सूर्य उषाके साथ आता है, वैसा वह भी सब के साथ रहता है।

यहां सर्वव्यापक प्रभुको सोम कहा है, क्योंकि जैसा इस सोमवल्ली के रस पीने से आनन्द प्राप्त होता है, उसी तरह प्रभुका भक्तिरस पीनेसे परम आनन्द प्राप्त होता है।

देवों के गुह्य नाम।

हरिः सृजानः पथ्यां ऋतस्य इयर्ति वाचं अरितेव नावम्।
देवो देवानां गुह्यानि नामा आविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥ (ऋ. ९-९५-२)

(अरिता नाव इव) मल्लाह नौका को चलाता है, वैसा (हरिः सृजान) हरे रंग के पत्तोंवाला सोम (ऋतस्य पथ्यां) सत्य के मार्ग को प्रेरित करनेवाले (वाच इयर्ति) सन्देशवाणी को चलाता है। यह देवो के सब गुप्त नामों को (बर्हिषि प्रवाचे) यज्ञ में प्रवक्ता के लिये (आविष्कृणोति) प्रकट करता है।

सोम से सोमयाग सिद्ध होता है, जो सत्यधर्म का प्रवर्तक है। देवों की गुह्य शक्तियां उन के नामों से प्रकट कर के वह सोम इस यज्ञद्वारा गुप्त ज्ञान का आविष्कार करता है।

उन्नति की इच्छा।

अजीतये अहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते। तदुशन्ति विश्व इमे सखायः तदहं वश्मि पवमान सोम ॥ ४ ॥ (ऋ ९।९६)

(अ-जीतये) पराभव न होने के लिये अर्थात् विजय के लिये (अ-हतये) अमरपन के लिये, (स्वस्तये) कल्याण के लिये, (सर्वतातये) सर्वत्र फैलने के लिये (बृहते) महत्व के लिये (इमे विश्वे सखायः) ये सब मित्र (उशन्ति) इच्छा करते हैं, (तत् अहं वश्मि) मै भी यही चाहता हू।

सब लोग अपना विजय, अमरपन, कल्याण, विस्तार और महत्व चाहे। कभी इस के विपरीत, हीन अवस्था न चाहे।

सहस्रों का नेता।

ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम्। तृतीयं धाम महिषः सिषासन् त्सोमो विराजं अनु राजति ष्टुप् ॥
(ऋ. ९-९६-१८)

(ऋषि-मनाः) ऋषि के समान मनवाला, (ऋषिकृत्) ऋषियों का निर्माण करनेवाला, (स्वर्षा) तेजस्वी (सहस्र-नीथः) हजारों का नेता, (कवीनां पद-वी) कवियों का मार्गदर्शक है, वह (तृतीयं धाम सिषासन्) तृतीय धाम में विराजने की इच्छा करता हुआ (महिषः) महनीय होकर वह सोमवीर (विराजं अनुराजति) विशेष तेजस्वी होने के लिये प्रकाशता है।

सरलता, सत्य और श्रद्धा।

ऋतं वदन् ऋतद्युम्न सत्यं वदन् सत्यकर्मन्।
श्रद्धां वदन् सोम राजन् धात्रा सोम परिष्कृतः॥
(ऋ. ९-११३-४)

हे (ऋत-द्युम्न) सत्य के तेज से युक्त ! तू सरल बोलता है, (हे सत्य-कर्मन्) सत्य कर्म करनेवाले ! तू सत्य बोलता है, हे सोम राजन् ! तू श्रद्धायुक्त भाषण करता है, हे सोम ! (धात्रा) धाताने तुझे (परिष्कृतः) सुसंस्कृत बनाया है।

इस मंत्रमें सरलता, सत्य और श्रद्धा का महत्व कहा है।

यम का राज्य।

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः।
यत्रामूर्यह्वतीरापः तत्र माममृतं कृधि ॥
(ऋ ९-११३-८)

जहां विवस्वान का पुत्र (यम) राज्य करता है, जहां (दिवः अवरोधनं) द्युलोक का न दीखनेवाला स्थान है, जहां ये पानी के प्रवाह चलते है, वहां (मां अमृतं कृधि) मुझे अमर कर।

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तः तत्र माममृतं कृधि ॥
(ऋ. ९।११३।९)

(दिवः त्रिनाके त्रिदिवे) द्युलोक के तीसरे विभाग में (यत्र) जहां (अनुकामं चरणं) इच्छा के अनुसार गमन किया जा सकता है, जहां (ज्योतिष्मन्त. लोका॰) तेजस्वी लोक हैं, वहां मुझे अमर कर।

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्।
स्वधा यत्र च तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधि ॥
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामाः तत्रमाममृतं कृधि ॥
(ऋ. ९।११३।१०-११)

(यत्र) जहां (कामा निकामाः) सकाम कर्म करनेवाले और निष्काम कर्म करनेवाले, (यत्र ब्रध्नस्य विष्टपं) जहां मूल आधार का स्थान है, जहां (स्वधा) अपनी धारक शक्ति और अपनी तृप्ति प्रकट होती है, वहां मुझे अमर कर।

जहां आनन्द, उल्हास, हर्ष और प्रमोद होते हैं, जहां (कामस्य कामाः आप्ताः) वासना के भी सब काम सफल होते हैं, वहां मुझे अमर कर।

अनेक सूर्य हैं।

सप्त दिशो नाना सूर्याः सप्त होतारो ऋत्विज॰।
देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष नः।
(ऋ. ९।११४।२)

(सप्त दिशः) सातों दिशाओं में नाना सूर्य हैं, यज्ञ में सात ऋत्विज हैं, आदित्य देव भी सात हैं, हे सोम! तुम सब से हमारी रक्षा कर।

(प्रगाथो घौरः। त्रिष्टुप्।)

अपाम सोमं अमृता अभूम अगन्म ज्योति॰
अविदाम देवान्। किं नूनमस्मान् कृणवदरातिः
किमु धूर्ति॰ अमृत मर्त्यस्य॥ (ऋ. ८।४८।३)

(सोमं अपाम) हमने सोमरस पीया है, (अमृता अभूम) हम अमर हुए हैं, (ज्योतिः अगन्म) हमने प्रकाश प्राप्त किया है, (देवान् अविदाम) हमने देवों को जान लिया है, अब (अराति किं नु कृणवत्) शत्रु हमारा क्या करेगा? (धूर्ति किं उ) धूर्त भी हमारा क्या करेगा?

सोमकी कथाएँ।

सोम के संबंध में कुछ कथाएँ नीचे बानगी के तौरपर दी जाती हैं-

(१) सोम का क्षय से पीडित होना।

तैत्तिरीय संहिता में निम्नलिखित प्रकार यह कथा दीखती है-

प्रजापतेस्त्रयस्त्रिंशद् दुहितर आसन्, ताः सोमाय राज्ञेऽददात्, तासां रोहिणीमुपैत्, ता ईर्ष्यन्तीः पुनरगच्छन्, ता अन्वैत्, ता पुनर-याचत, ता अस्मै न पुनरदात्, सोऽब्रवीत्, ऋतममीष्व यथा समवच्छ, उपैष्यामि, अथ ते पुनः दास्यामि इति, स ऋतमामीत्, ता अस्मै पुनरदात्, तासां रोहिणीमेवोपैत्, तं यक्ष्म आर्च्छत्, राजानं यक्ष्म आरदिति, तद्राजयक्ष्म-स्य जन्म। . वरं वृणामहै, समावच्छ एव न उपाय इति, तस्मा एतमादित्यं चरुं निरवपन् तेनैवैनं पापात् स्रामादमुञ्चन्० ।(तै० सं० २।३.५)

प्रजापति की तैतीस कन्याओं का ब्याह सोमराजा से निष्पन्न हुआ, पर सोम रोहिणी से अधिक प्रेम करने लगे, जिस के फलस्वरूप अन्य बहनें क्रुद्ध हो, पिता के निकट चली गयीं। जब सोम शपथ खा चुका कि, मैं अब सब पर समान रूप से प्रेम करूंगा, तभी प्रजापति ने उन्हें सोमके निकट लौट जाने दिया। सोम का स्वभाव ज्यों का त्यों रहा और अतिविषयलंपटता के कारण राजयक्ष्मा नामक दुर्धर रोग से वह पीडित हो गया। अब सोम अन्य स्त्रियों से क्षमा की याचना करने लगा। उन्हों ने उसे प्रणबद्ध करा के रोग हटाने के लिए आदित्य को आहुतियाँ दे दीं जिस पर आदित्य ने उसे रोगमुक्त कर दिया।

(२) शंड, मर्क एवं सोम।

बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीत्, शण्डामर्कौ असुराणां, ब्रह्मण्वन्तो देवा आसन्, ब्रह्मण्वन्तो असुराः, ते अन्योन्यं नाशक्नुवन्नभिभवितुं, ते देवाः शण्डामर्कावुपामन्त्रयन्त, तावब्रूतां, वरं वृणावहै, ग्रहावेव नावत्रापि गृह्येतामिति, ताभ्यामेतौ शुक्रामन्थिनौ अगृह्णन्, ततो देवा अभवन् पराऽसुरा॥ (तै सं. ६।४।१०)

जिस प्रकार देवताओं के बृहस्पति उसी प्रकार असुरों के बुद्धिमान् पुरोहित शंड एवं मर्क नामक थे। जब दोनों दलों मे एक भी परास्त न हो रहा था, तो देवताओं ने

सोम का प्रलोभन देकर शड तथा मर्क को अपने दल में मिला लिया। अब असुरों की हार हुई। आगे चलकर जब देवों ने यज्ञ का प्रारम्भ किया, तब पूर्ववचनानुसार शुक्र तथा मांथी नामक बर्तनों में रखा हुआ सोमरस पीने को मिलेगा, इस आशा से शट तथा मर्क उस यज्ञ भूमि में आ उपस्थित हुए। पर जो देव उन विश्वासघातियों को प्रवेश देने के विरुद्ध थे, उन्हों ने दोनों को अपमानित कर वहाँ से हटाया। (तै स ६-४-१०)

(३) सावित्री का सोम से ब्याह।

सोम को पैदा कर चुकने पर प्रजापति ने तीनों वेदों का सृजन किया, पर सोमने वे वेद अपनी हथेलीमें ढक दिये। प्रजापति की दुहिता सावित्री चाहती थी कि, सोम उसका पति बने। पर सोम श्रद्धानामक प्रजापति की अन्य कन्या पर मुग्ध हुआ। अपने पिता के निकट चले जाकर सावित्री ने सोम से पाणिग्रहण करने की अपनी अभिलाषा व्यक्त कर दी। प्रजापति भली भाँति जानते थे कि, सोम किस पर आसक्त है। अतः उसने वशीकरणप्रयोग करने की इच्छा से स्थागरवनस्पति के सौरभपूर्ण चूर्ण को अभिमन्त्रित कर उसके माथे पर तिलक के रूप में अंकित किया। सावित्री के सोम के निकट चले जाने पर उसे देख कर सोम मंत्रमुग्ध हो, उससे चाटुकारिता की बातें करने लगा। सोम के सच्चे प्रेम की ठीक ठीक जाँच करवाने के हेतु उसने सोम से कहा कि, यदि वह एकनिष्ठ रहेगा और अपनी मुष्टि में छिपायी वस्तु को उसे साफ साफ बतलायेगा, तो ही वह उसके निकट आयेगी। सोम प्रेम मे पागल बन चुका था, इसलिए ये सारी बातें उसने चुपचाप मान लीं और अपने हाथ में विद्यमान तीनों वेद सहर्ष उसे प्रदान किये। दोनों का विवाह पूर्ण हुआ और वे सुखपूर्वक जीवन बिताने लगे। जो स्त्रियाँ चतुर हों, उनकी दशा सावित्री जैसे हुआ करती है। (तै. ब्राह्मण २-३-११)

(४) गायत्री सोम लायी थी।

सोमो वै राजा गन्धर्वेषु आसीत्, तं देवाश्च ऋषयश्चाभ्यध्यायन्, कथमयमस्मान्त्सोमो राजागच्छेदिति ? सा वागब्रवीत्, स्त्रीकामा वै गंधर्वा, मयैव स्त्रीभूतया पणध्वमिति। नेति देवा अब्रुवन्, कथं वयं त्वदृते स्यामेति ? सात्रवीत्क्रीणीतैव, यर्हि वाव वो मयार्थो भविता, तर्ह्येव वोऽहं पुनरागन्तास्मीति, तथेति। गन्धर्वेषु हि तर्हि वाग्भवति.... ०॥

(ऐ ब्रा १।२७)

सभी देवता तथा ऋषि आदि सोचने लगे कि, किस भाँति सोम अपने यज्ञमें उपस्थित किया जाय, क्योंकि वह गन्धर्वों में रहता था। सोमरस पाने के लिए देवता अत्यधिक लालायित हो उठे थे, अतः वे खूब प्रयत्न करने लगे। उन्हें विदित हुआ कि गन्धर्व नारियों को बहुत चाहते हैं। उन्होने वाणी को गन्धर्वों के निकट भेज दिया। वह गायत्रीसदृश छन्दों के रूप में पहुँचकर और पंछी का रूप धारण कर वहाँ से सोम लायी। श्येनपंछी पैर में रख सोम लाया आदि कथाएँ, इसी तरह की है। अत सोमाहरणविषयक सूक्तों को सौपर्णसूक्त कहने की प्रणाली है। (ऐतरेय ब्रा० १.२७;३ २५,२-२५;१.१२)

(५) सोम के लिए घुडदौड।

देवा वै सोमस्य राज्ञोऽग्रपेये न समपादयन्, अहं प्रथमः पिबेयं, अहं प्रथमः पिबेयं, इत्येवाकामयन्त। ते संपादयन्तोऽब्रुवन्, हन्ताजिमयाम, स यो न उज्जेष्यति, स प्रथमः सोमस्य पास्यतीति, तथेति। त आजिमयुः, तेषामाजिं यतामभिसृष्टानां वायुर्मुखं प्रथमः प्रत्यपद्यत, अथेन्द्रो,ऽथ मित्रावरुणावश्विनौ। सो वेदिन्द्रो वायुमुद्वेजयतीति, तमनुपरापतत्, ... ते एषामेते यथोजितं भक्षा इन्द्रवाय्योः प्रथमोऽथ मित्रावरुणयोरथाश्विनो स एष इन्द्रतुरीयो ग्रहो गृह्यते०

(ऐ० ब्रा० २।२५)

एक समय यज्ञमें सोमरसके सेवनार्थ देवतागणमें प्रतिद्वन्द्विता होने लगी। उन्होंने ठान लिया कि, घुडदौड में जिसे सफलता मिलेगी, वही सोमपान करे। अन्तमें इन्द्र एवं वायु प्रथम श्रेणीमें आये, पश्चात् मित्रावरुण इत्यादि वर्णन है। ईशान्य दिशा सोमापहरण के लिए अच्छी, क्योंकि उसी दिशा में देवतागण असुरोंपर विजयी हुआ।

(ऐ० ब्रा० २-२५)

(६) विश्वन्तर का सोमयज्ञ।

ऐतरेय ब्राह्मण में (३५-३७) सोम के बारेमें एक

चमत्कृतिजनक कथा है, जिसमें चार वर्णोंके लिए चार विभिन्न सोमों का प्रतिपादन किया है। संक्षेप में वह यों है-

विश्वंतरो ह सौषद्मनः श्यापर्णान् परिचक्षाणो विश्यापर्णं यज्ञमाजन्हे, तद्धानुबुध्य श्यापर्णास्तं यज्ञमाजग्मुस्ते ह तदन्तर्वेद्यासां चक्रिरे। तान्ह दृष्ट्वोवाच, पापस्य वा इमे कर्मणः कर्तार आसतेऽपूतायै वाचो वदितारो यच्छ्यापर्णा इमानुत्थापयतेमे मेऽन्तर्वेदिमासिषतेति, तथेति, तानुत्थापयांचक्रुस्ते होथाप्यमाना रुरुविरे; ये तेभ्यो भूतवीरेभ्य .. कश्चित्सोऽस्माकास्ति वीरो य इमं सोमपीथमभिजेष्यतीति, अयमहमस्मि वो वीर इति होवाच रामो भार्गवेयो तेषां होत्तिष्ठतामुवाचापि नु राजन्नित्थं विदं वेदेरुत्थापयन्तीति यस्त्वं कथं वेत्थ ब्रह्मबन्धविति ॥

यत्रेन्द्रं देवताः पर्यवृञ्जन् .. तत्रेन्द्रः सोमपीथेन व्याध्यत, इन्द्रस्यानु क्षत्रं सोमपीथेन व्यार्धत.. तद्व्यृद्धमेवाद्यापि क्षत्रं सोमपीथेन, स यस्तं भक्षं विद्याद्यः क्षत्रस्य सोमपीथेन व्युद्धस्य, येन क्षत्रं समृध्यते, कथं तं वेदेरुत्थापयन्तीति, वेत्थ ब्राह्मण त्वं तं भक्षाम्। वेद्हीति तं वै नो ब्राह्मण ब्रूहीति तस्मै वै ते राजन्निति होवाच। यदि सोमं ब्राह्मणानां स भक्षो ब्राह्मणांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि ब्राह्मणकल्पस्ते प्रजायामाजनिष्यत आदाय्यापाय्यावसायी यथाकामप्रयाप्यो यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति.. ईश्वरो हास्माद्वितीयो वा

अथ यदि दधि वैश्यानां स भक्षो वैश्यांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि, . यद्यपः शूद्राणां स भक्षः शूद्रांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि... अथास्यैष स्वो भक्षो न्यग्रोधस्यावरोधाश्च फलानि चौदुम्बराण्याश्वत्थानि... श्यापर्ण उ मे यज्ञ इति एतमु हैव प्रोवाच ॥

(ऐ० ब्रा० ७।२७-३४)

यज्ञमें श्यापर्णों की ओर ध्यान न देकर विश्वन्तरने विश्यापर्णों को बुलवाया, पर यज्ञ का समाचार पाकर श्यापर्ण भी अनाहूत होते हुए भी वहाँ जा बैठे। जब नरेश उन्हें हटाने लगा, तो खलबली मचने लगी। श्यापर्ण ने प्रश्न उठाया, क्या कोई उनमें शूर वीर नहीं, जो राजाको अपने अधीन कर लेगा। राम भार्गवेय नामक एक नवयुवक आगे बढकर राजा से पूछने लगा-

" क्या तू मुझ जैसे ज्ञानी का भी तिरस्कार करता है?

" अरे पागल! भला तू क्या जानता है?

" लेकिन क्या तू सुननेयोग्य दशा में है?

" सुननेयोग्य कौनसी बात तुम्हारे समीप है?

" बिना सुने कैसे वह समझ में आयेगी?

" क्या तू जानता है, इन्द्र को सोम देना निषिद्ध हुआ है?

" नहींजी। इन्द्र को सोम देना क्यों रोक दिया?

" उसने पॉच अपराध किये हैं इसलिए।

" यदि इन्द्रको सोम नहीं, तो उसके अनुयायी-क्षत्रियोंको वह कैसे भला मिल सकता है?

" हाँ, बिलकुल ठीक। अब आगे किसी को सोम नहीं।

" पर इन्द्र जैसा वीर बिना सोम पिये कैसे रहेगा? वह यज्ञ में बलात् घुसकर सोम पी जाता है।

" महाराज! हम क्षत्रिय भला उस योग्यता को क्या जाने?

" पर बिना सोम के क्षत्रियों को स्फूर्ति कैसे आयेगी?

" क्षत्रियों के बल को बढानेवाला सोम मुझे विदित है।

" कहिए श्रीमन्! हम क्षत्रियों का उद्धार कीजिए।

" सोमवल्ली केवल ब्राह्मणों के उपयोग के लिए ही है। यदि तुम सोमवल्ली का उपयोग करने लगोगे, तो तुम्हारी प्रजा ब्राह्मणों के समान दानप्रतिग्रह लेनेवाली, घूमनेवाली, गरीब तथा युद्धकार्य के लिए अत्यंत निरुपयुक्त बन जायगी।

" फिर क्षत्रियों का बडप्पन अक्षुण्ण कैसे रहेगा?

" वैश्यों का सोम दधि है। उसे खाने से क्या वैश्य जैसी सन्तान होगी?

" इस भाँति दुर्बलता, परमात्मा करे, हमारी संतान को कभी न आ जाय।

" शूद्र जाति के लिए जल ही सोम है। उस का उपयोग करनेपर दासमनोवृत्ति एवं चाटुकारिता से पूर्ण

प्रजा का उत्पादन होगा।

" छी छी । ऐसा पतन हमारा कभी न होवे!!!

" यदि सच्चा क्षत्रिय उत्पन्न हो, ससारपर उसे अपनी धाक जमाकर बैठानी हो, तो बडकी शाखाएं, औदुंबर, पिप्पल या प्लक्ष पेडों से यज्ञ किया जाय। आया समझ में?

" महाराज! यह कहकर आपने क्षत्रियजातिपर बडा भारी उपकार किया है। अब आप श्यापर्णसहित मेरे यज्ञ में आ जाएँ और उसे यथावत् पूरा कर लेवें।

पश्चात् श्यापर्ण यज्ञ में आए और उन्होंने यज्ञकी पूर्णता निष्पन्न कर दी।

इस कथा से भी सोम के बारे में उस समय क्या दशा थी, इसपर अच्छा प्रकाश पडता है।

सोम की कथाओं का मनन।

ऊपर सोम की छः कथाएं दी है। पर ये सब सोम-वल्ली की नहीं हैं। पहिली कथा सोम की अर्थात् चन्द्रमा की है। यह एक लाक्षणिक कथा है। बहु स्त्रीसेवन से क्षयरोग होने की सम्भावना होती है। इत्यादि भाव इस कथा से मिलता है। सूर्यप्रकाश क्षयरोग का निवारण करता है, यह भी इस मे तात्पर्य है। अर्थात् यह कथा सोमवल्ली की नहीं है।

दूसरी ' शण्ड-मर्क ' की कथा है। असुरों में जब तक ब्रह्मविद्या थी, (ब्रह्मण्वन्तः) तबतक वे परास्त नहीं हुए, जब असुरोंने ब्रह्मविद्या-वेदविद्या का त्याग किया, यज्ञ करना छोड दिया, तब देवोंने असुरों को परास्त किया। इस से ब्रह्मविद्या, वेदविद्या, यज्ञविद्या, और सोमविद्या से विजय प्राप्त हो सकता है, यह सिद्ध किया है।

इन विद्याओं में विजय की बाते हैं, इनको यथावत् जानने से और योग्य अनुष्ठान से विजय प्राप्त हो सकता है। विजय के इच्छुक इस का अवश्य विचार करें।

तीसरी कथा सावित्री के विवाह की है। सावित्री सविता की पुत्री सोम से अर्थात् चन्द्रमा से ब्याही है। यह सूर्यासावित्री के विवाह का कथाभाग ऋ० १०।८५ और अथर्व. १४।१ में है। पर इसमें और इस तै० ब्रा० की कथा में थोडासा हेरफेर है। वास्तव में यह कथा केवल रूपकात्मक है। प्रेमपूर्वक विवाह किस तरह करना चाहिये, इस का उपदेश इस कथा से मिलता है। यह सोम चन्द्रमा है और इस सोम का सोम-औषधि से कोई सम्बन्ध नहीं है।

चतुर्थ कथा गायत्री सोम लायी, यह है। यहां गायत्री छंद के मंत्र सोमको यज्ञशाला में लाने के समय पढे जाते हैं, इस विधि पर यह कथा रची है। यत्न कर के धार्मिक इष्ट की प्राप्ति करनी चाहिये, यही उपदेश इस कथा से मिलता है।

पांचवी कथा घुडदौड में प्रथम आनेवालों को सोम पीने के लिये दिया जाता है। इस भाव की है। बडे परिश्रम होने पर पीनेयोग्य सोमपान है, यह इस से सिद्ध होता है। श्रमपरिहार करनेवाला पेय सोमपान है।

छठी कथा में क्षत्रियों की उन्नति का विचार किया है। ब्राह्मणों जैसे नरम मनवाले क्षत्रिय न हों, प्रत्युत क्षत्रिय वीरवृत्तिवाले स्वराज्य बढानेवाले बनें। यह इस कथा का आशय स्पष्ट है। सोमपान ऐसे क्षत्रिय करें कि, जो वीर क्षत्रिय है। उक्त कथाओंमें इससे अधिक कुछ उपदेश होंगे, तो उस का आविष्कार खोजपूर्वक करना चाहिये। सोमसावित्री के विवाह का मूल वेद में हमें मिला है। अन्य कथाओं का मूल वेद के मंत्रभाग में कहां है और उस का वहां आशय क्या, यह देखना चाहिये। अन्य कथाओं का मूल संहिता के मंत्रों में आवश्य होगा, ऐसा हमारा ख्याल है। यह एक खोज करनेयोग्य विषय है।

आगे का कर्तव्य।

सोम के विषय में ये सहिता के मंत्र हमने पाठकों के सामने रखे हैं। भूमिका में कुछ वक्तव्य जो इस समय रखनेयोग्य प्रतीत हुआ, वह इस लेखद्वारा पाठकों के सन्मुख रख दिया है।

मत्रों के अर्थों की परिपूर्ण संगति लगाने के बाद और जो वक्तव्य होगा, वह विस्तारपूर्वक पाठकों के सन्मुख रखा जायगा। वेदका विषय बहुत ही खोज होनेके बाद सुव्यवस्था से पाठकों के सन्मुख प्रकट होगा, तब तक जितना व्यक्त हो रहा है, उतना ही हम प्रकट कर रहे है।

यहां जो वेदविद्या के विषय में प्रेम रखते है, उन पर एक बडी भारी जिम्मेवारी है, वह यह है कि, वे एक ४।५ औषधिविद्याविशारद विद्वानों का मण्डल कायम करें कि, जो सोम की खोज करें। यह खोज घर में बैठते हुए नहीं हो सकती है। इस के लिये कई वर्ष हिमालय में गुजारने होंगे। मूंजवान् आदि पर्वतशिखरों पर जाकर सुश्रुत में

कहे चिन्हों से युक्त २४ प्रकार के सोम का पता लगाना चाहिये। कई क्षुद्र सोम तो अन्य पर्वतों पर भी मिल सकते हैं। जो मुख्य और श्रेष्ठ सोम है, वह हिमालय की ऊंची से ऊंची चोटीपर प्राप्त होगा। इस कार्य के लिये सहस्रों रु० का व्यय हो जाय, तो कोई अधिक नहीं है। हमने इस व्यय का अदाजा लगाया नहीं है, पर पांच औषधिशास्त्रज्ञ अच्छे उत्साही पुरुष पांच वर्ष खोज करते रहे और अविरत परिश्रम करते रहे, तो दस हजार रु. से कम व्यय नहीं होगा। सभव है कि, प्रथम वर्ष ही इस औषधि का पता लगे और अधिक व्यय करना न पडे। पर करना पडे तो उस व्यय के प्रबध का विचार पहिले से ही करके रखना चाहिये।

वेद की मुख्य वस्तु ' **सोम औषधि** ' है। यह शत-पथ, ऐतरेय के समय से दुष्प्राप्य हुई थी। तब से इतने राजा, महाराजा सनातनधर्म में हुए, पर किसी ने दस-बीस हजार रु. इस खोज के लिये खर्च नहीं किये। इस समय बडे बडे धुरंधर वैद्य भारत में विद्यमान है, वे आर्य-वैद्यक के औषध बनाते और लाखों रु. कमाते भी है। पर आर्यवैद्यक में जो जीवनीय औषध है, उनमें से बहुत से औषध दुष्प्राप्य मानकर ही वे च्यवनप्राश आदि पाक बनाते हैं और भोले लोग उन का सेवन करते है। पर सामूहिक रूप से उक्त औषधियों को प्राप्त करने का यत्न ये वैद्य नहीं करते। यदि करेंगे, तो हिमालय उक्त औषधियां उनको अवश्य प्रदान करेगा।

सोम औषधि के कई प्रकार है। सुश्रुत ने तो २४ प्रकार के सोम बताये है। पत्तों का रस और कंद का रस या दुग्ध लेने की विधि ऊपर बताई है। सोमरस में सुवर्ण का वर्ख या बारीक चूर्ण जो रस के साथ मिल सकता है, सेवन करने की विधि पूर्वस्थान में बताई है। सोम कूटनेके समय कूटनीके नीचे लोहेकी कूटनी पर सोने का आवरण होना चाहिये, ऐसा प्रतीत होता है। यह विधि अन्वेष्टव्य है, पर इतनी बात सत्य है कि, सोमरस के साथ अल्प अंश से सुवर्ण का सेवन होता था।

सोम के कन्द का रस निकालने के लिये सोने की सुई लेनी है और उस से कन्द में सुराख निकाल कर वह दूध या रस सुवर्ण के पात्र में लेने का है। यह दूध के साथ तथा शहद के साथ सेवन करना होता है। यहां सुवर्ण का प्रयोग विशेष महत्व का है। निरर्थक नहीं।

यह सोमरस दीर्घायु, बल, आरोग्य, ओज, उत्साह, रोगदूरीकरण की शक्ति, वीर्यवृद्धि, शुक्र-शोणित वृद्धि करके नवजीवन देनेवाला है। वेद जो कई नई बातें बताता है, उनमें से सोम औषधि का स्थान बडा प्रमुख है। इस सोम पर इतना बडा काव्य वेद में मिलता है, वेदमंत्रों की पूर्ण सख्या के करीब दसवा भाग अकेले सोमदेवता के लिये वेद में रखा है। वेद की दृष्टि से इस का इतना महत्व है। अत. इस औषधि की खोज होना अत्यत आवश्यक है।

इस खोज के लिये जो भी धन लगे, वैदिकधर्मियों को लगाना चाहिये और सोम वनस्पति की प्राप्ति अवश्य करनी चाहिये। हिमालयमें तथा जहां जहां सोम मिलता है, ऐसा आर्षग्रथोंमें लिखा है, वहां जाकर खोज करनेसे पांच-दस वर्षोंके यत्नसे निःसंदेह यह औषधि प्राप्त होगी।

इस समय जर्मनों ने तथा अन्यान्य खोजकर्ताओं ने एक प्रकार की सोम करके वनस्पति प्राप्त की है और वह सैकडों मन प्रतिवर्ष हिमालय से युरोप में जाती भी है। इसका सत् निकाल कर वह बाजारों में बहुत ही मूल्य से बिकता है। इस विषय में हम चाहते है कि, निश्चित रूप से हमे ज्ञान हो, पर इस समय वह हमें नहीं मिल सकता, जब उस ज्ञान की प्राप्ति होनेयोग्य समय आवेगा, उस समय हम इस संबंध का संपूर्ण ज्ञान पाठकोंके सम्मुख रखेंगे। यह यूरोप में भेजी जानेवाली वनस्पति काश्मीर से लेकर ब्रह्मदेश तक व्यापनेवाले हिमालय की चोटी से प्राप्त होती है और इसका गुण भी नवतारुण्य देना है, अर्थात् जीवनीय गुण इसमें है।

यदि युरोपीयन लोग ऐसी वनस्पतियों की खोज हिमालय में कर सकते हैं, तो वेद को अपना धर्मग्रंथ माननेवाले भारतीय विद्वान् क्यों नहीं कर सकते? यह उत्तरदायित्व भारतीयों पर है, इतना पाठकों से निवेदन करके इस भूमिका की समाप्ति करते हैं।

औंध, (जि. सातारा) निवेदनकर्ता

ता २२।७।४२. **श्रीपाद दामोदर सातवलेकर,**

अध्यक्ष– स्वाध्याय–मडल, **औंध**



सोम-देवता का परिचय।

सोम-देवता के मंत्र।

सोमदेवता–मंत्रों की ऋषिसूची।

मधुच्छंदा वैश्वामित्रः। १-१०।
रेणुर्वैश्वामित्र। ६२०-२९। ऋषभो वैश्वामित्रः। ६३०-३८।
प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा। ९५६-५९।
विश्वामित्रो गाथिनः। ५८०-८२; ११२४-२६।
विश्वामित्र-जमदग्नी। १२३९। मेधातिथिः काण्वः। ११-२०।
मेध्यातिथिः काण्वः। २९०-३०७।
कण्वो घौरः। ८२३-२७; १०९८-११००।
प्रगाथो घौर काण्व। ११३५ ४९। प्रस्कण्वः काण्व ८२८-३२।
पर्वतनारदौ काण्वौ। ९७४-८५।
शुनःशेप आजीगर्तिः, कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। २१-३०।
हिरण्यस्तूप आंगिरस। ३१ ४०। ६१०-१९।
नृमेध आंगिरसः। २०६-११; २१८-२३।
प्रियमेध आंगिरस। २१२-१७। बिंदुरांगिरसः। २२४-२९।
प्रभूवसुरांगिरसः। २५४-६५। रहूगण आंगिरस। २६६-७७।
बृहन्मतिरांगिरसः। २७८-८९। अयास्य आंगिरसः ३०८-३२५।
उचथ्य आंगिरसः। ३४१-५५। अमहीयुरांगिरसः। ३८८-४१७।
पवित्र आंगिरसः। ५८९-९९, ६४८ ५६; ७०६-१०।
हरिमंत आंगिरस। ६३९-४७। कुत्स आंगिरसः। ९०१-१४।
उरुरांगिरसः। १०२९-३०। ऊर्ध्वसद्मा आंगिरसः। १०३३-३४।
कृतयशा आंगिरसः। १०३५-३६। शिशुरांगिरसः। १०७९-८९।
गृत्समद आंगिरसः। १२१७-२२।
असित काश्यपो देवलो वा। ४१-१९३।
दृळ्हच्युत आगस्त्यः। १९४-९९।
इध्मवाहो दार्ढच्युत। २००-२०५।
गोतमो राहूगणः। २३०-३५; ५७४-७६; ११०१-२३।
श्यावाश्व आत्रेयः। २३६-४१।
त्रित आप्त्य। २४२-५३; ९६०-६७।
द्वित ,,। ९६८-७३।
कविर्भार्गवः। ३२६-४०; ६६६-९०।
जमदग्निर्भार्गवः। ४१८-४७, ५८३-८५, ११५९।
वेनो भार्गवः। ७१६-२७। कृत्नुर्भार्गवः। ११५०-५८।
अवत्सारः काश्यपः। ३५६-८७। निध्रुविः काश्यपः। ४४८-६७।
कश्यपो मारीचः। ४७८-५०७, ५७१-७३; ८०६-१७।
१०८३-९७। रेभसूनू काश्यपौ। ९२७-४३।
भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा। ५०८-३७।
सिकता वैखानसा। ५३८-५५, ५५९-६७।
अग्निः पवमानः। ५५६-५८। अत्रिर्भौमः। ५७७-७९।
भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। ५६८-७०, १२१३-२६।

वासिष्ठो मैत्रावरुणिः। ५८६ ८८; ८००-८०५, ८५७-५९; ११३२-३४, १२२९। वासिष्ठ इंद्रप्रमतिः। ८६०-६२।
वासिष्ठो वृषगणः। ८६३-६५। वासिष्ठो मन्युः। ८६६-६८।
वासिष्ठ उपमन्यु। ८६९-७१। वासिष्ठो व्याघ्रपाद् ८७२–७४।
वासिष्ठः शक्तिः ८७५-७७; १०२८; १०३९-४१।
वासिष्ठः कर्णश्रुद्। ८७८-८०। वासिष्ठो मृळीक। ८८१-८३।
वासिष्ठो वसुक्र। ८८४-८६। वत्सप्रिर्भालन्दनः। ६००-६०९।
कक्षीवान्दैर्घतमस.। ६५७-६५। वसुर्भारद्वाजः। ६९१-७०५।
ऋजिश्वा भारद्वाजः। १०३१-३२। गर्गो भारद्वाजः। ११२७-३१।
पायुर्भारद्वाजः। १२२७-२८। वाच्यः प्रजापतिः। ७११-१५।
अकृष्टा माषा। ७२८-७३७। अकृष्टामाषादयस्त्रयः। ७५८-६७।
सिकता निवावरी। ७३८-४७। पृश्नयोऽजा। ७४८-५७।
भौमोऽत्रिः। ७६८-७२। गृत्समदः शौनकः ७७३-७५।
उशना काव्यः। ७७६ ९९। नोधा गौतम। ८१८-२२।
दैवोदासिः प्रतर्दन। ८३३-५६। दैवोदासि परुच्छेपः। १२१६।
पराशरः शाक्त्य। ८८७ ९००। गौरवीतिः शाक्त्य. १०२६-२७।
अम्बरीषो वार्षागिरः, ऋजिश्वा भारद्वाजश्च। ९१५-२६।
अन्धीगुः श्यावाश्वि। ९४४-४६।
ययातिर्नाहुषः। ९४७-४९। नहुषो मानवः। ९५०-५२।
चक्षुर्मानवः। ९८९-९१। मनुः सांवरणः। ९५३-५५।
मनुराप्सव.। ९९२-९९४।
अग्निश्चाक्षुषः। ९८६-८८, ९९५-९९।
सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीच, ३ गोतमो राहूगणः, ४ भौमोऽत्रिः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः) १०००-१०२५।
ऋणंचयो राजर्षिः। १०३७-३८।
अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरयः। १०४२-६३।
त्र्यरुणस्त्रैवृष्ण. त्रसदस्यु पौरुकुत्स्यः। १०६४-७५।
अनानतः पारुच्छेपिः। १०७६-७८। ब्रह्मा ११८९।
ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा। ११६०-७०।
सूर्या सावित्री ऋषिका। ११७१-७५; १२३८।
अथर्वा। ११७६-८६; ११९०; १२४४-६०।
बृहद्दिवोऽथर्वा। ११८७। शुक्र। ११८८। बृहच्छुक्रः १२६१।
वैवस्वतो यमः। १२३०। देवश्रवा यामायन। १२३१।
मथितो यामायनः, भृगुर्वारुणिर्वा, भार्गवश्च्यवनो वा। १२३४। पतिवेदन। १२३५, १२४३।
बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायना.। १२३६-३७।
चातनः। १२४०–४१। भृग्वंगिराः। १२४२।



दैवत-संहिता ।

[ऋग्यजुःसामाथर्वणां संहितानां सर्वान् मन्त्रान् दैवतानुसारेण संगृह्य निर्मिता ।]

३ सोमदेवता ।

॥ १ ॥ (ऋ ९ । १ । १-१०)

(१—१०) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः १
रक्षोहा विश्वचर्षणि—रभि योनिमयोहतम् । द्रुणा सधस्थमासदत् २
वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ३
अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा । अभि वाजमुत श्रवः ४
त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे । इन्दो त्वे न आशसः ५ ५
पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ६
तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश । स्वसारः पार्ये दिवि ७
तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् । त्रिधातु वारणं मधु ८
अभीऽममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम् । सोममिन्द्राय पातवे ९
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा विश्वा वृत्राणि जिघ्नते । शूरो मघा च मंहते १० १०

॥ २ ॥ (ऋ ९ । २ । १—१०)

(११-२०) मेधातिथिः काण्व ।

पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या । इन्द्रमिन्दो वृषा विश १
आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः । आ योनिं धर्णसिः सदः २
अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः । अपो वसिष्ट सुक्रतुः ३
महान्तं त्वा महीर—न्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ४
समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ५ १५
अचिक्रदद् वृषा हरि—र्महान् मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण रोचते ६
गिरस्त इन्दु ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ७ १७

तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तयो महीः ८
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयु — र्मध्वः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ९
गोपा इन्दो नृपा अ — स्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः १० २०

॥ ३ ॥ (ऋ ९ । ३ । १—१०)

(२१—३०) आजीगर्तिः शुनःशेपः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः ।

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति । अभि द्रोणान्यासदम् १
एष देवो विपा कृतो ऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः २
एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ३
एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ४
एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ५ २५
एष विप्रैरभिष्टुतो ऽपो देवो वि गाहते । दधद् रत्नानि दाशुषे ६
एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ७
एष दिवं व्यासरत् तिरो रजांस्यस्पृतः । पवमानः स्वध्वरः ८
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ९
एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः १० ३०

॥ ४ ॥ (ऋ ९ । ४ । १—१०)

(३१—४०) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः ।

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि १
सना ज्योतिः सना स्व१ — र्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि २
सना दक्षमुत क्रतु — मप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ३
पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ४
त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ५ ३५
तव क्रत्वा तवोतिभि — र्ज्योक् पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ६
अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ७
अभ्य१र्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ८
त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ९
रयिं नश्चित्रमश्विन — मिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि १० ४०

॥ ५ ॥ (ऋ ९। ६। १—९)

(४१—४९) असित काश्यपो देवलो वा।

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अव्यो वारेष्वस्मयुः १
अभि त्यं मद्यं मद—मिन्दविन्द्र इति क्षर । अभि वाजिनो अर्वतः २
अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ । अभि वाजमुत श्रवः ३
अनु द्रप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन् । पुनाना इन्द्रमाशत ४
यमत्यमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश । वने क्रीळन्तमत्यविम् ५ ४५
तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये । सुतं भराय सं सृज ६
देवो देवाय धारये—न्द्राय पवते सुतः । पयो यदस्य पीपयत् ७
आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः । प्रत्नं नि पाति काव्यम् ८
एवा पुनान इन्द्रयु—र्मदं मदिष्ठ वीतये । गुहा चिद् दधिषे गिरः ९

॥ ६ ॥ (ऋ ९। ७। १—९)

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः । विदाना अस्य योजनम् १ ५०
प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविष्षु वन्द्यः २
प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद् वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ३
परि यत् काव्या कवि—र्नृम्णा वसानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ४
पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ५
अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ६ ५५
स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मभिः ७
आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ८
अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि सं जितम् ९

॥ ७ ॥ (ऋ ९। ८। १—९)

एते सोमा अभि प्रिय—मिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् १
पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धान्तु सुवीर्यम् २ ६०
इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । ऋतस्य योनिमासदम् ३
मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ४
देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः । सं गोभिर्वासयामसि ५ ६३

*

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ६
मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्दो सखायमा विश ७ ६५
वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि । सहो नः सोम पृत्सु धाः ८
नृचक्षसं त्वा वय—मिन्द्रपीतं स्वर्विदम् । भक्षीमहि प्रजामिषम् ९

॥ ८ ॥ (ऋ ९ । ९ । १—९)

परि प्रिया दिवः कवि—र्वयांसि नप्त्योर्हितः । सुवानो याति कविक्रतुः १
प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे । वीत्यर्ष चनिष्ठया २
स सूनुर्मातरा शुचि—र्जातो जाते अरोचयत् । महान् मही ऋतावृधा ३ ७०
स सप्त धीतिभिर्हितो नद्यो अजिन्वदद्रुहः । या एकमक्षि वावृधुः ४
ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः । इन्दुमिन्द्र तव व्रते ५
अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः । क्रिविर्देवीरतर्पयत् ६
अवा कल्पेषु नः पुम—स्तमांसि सोम योध्या । तानि पुनान जङ्घनः ७
नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः । प्रत्नवद् रोचया रुचः ८ ७५
पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् । सना मेधां सना स्वः ९

॥ ९ ॥ (ऋ ९ । १० । १—९]

प्र स्वानासो रथा इवा—ऽर्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः १
हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामिव २
राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ३
परि सुवानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । सुता अर्षन्ति धारया ४ ८०
आपानासो विवस्वतो जनन्त उषसो भगम् । सूरा अण्वं वि तन्वते ५
अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ६
समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः । पदमेकस्य पिप्रतः ७
नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित् सूर्ये सचा । कवेरपत्यमा दुहे ८
अभि प्रिया दिवस्पद—मध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ९ ८५

॥ १० ॥ (ऋ ९ । ११ । १—९)

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते १
अभि ते मधुना पयो ऽथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु २
स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ३ ८८

बभ्रवे नु स्वतवसे ऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ४
हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ५ ९०
नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ६
अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ७
इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ८
पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः । इन्दविन्द्रेण नो युजा ९

॥ ११ ॥ (ऋ ९ । १२ । १—९)

सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य सादने । इन्द्राय मधुमत्तमाः १ ९५
अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः । इन्द्रं सोमस्य पीतये २
मदच्युत् क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ३
दिवो नाभा विचक्षणो ऽव्यो वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ४
यः सोमः कलशेष्वाँ अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि षस्वजे ५
प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ६ १००
नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः । हिन्वानो मानुषा युगा ७
अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति । विप्रस्य धारया कविः ८
आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ९

॥ १२ ॥ (ऋ ९ । १३ । १—९)

सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् १
पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये २ १०५
पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ३
उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ४
ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् । सुवाना देवास इन्दवः ५
अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये । वि वारमव्यमाशवः ६
वाश्रा अर्षन्तीन्दवो ऽभि वत्सं न धेनवः । दधन्विरे गभस्त्योः ७ ११०
जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् । विश्वा अप द्विषो जहि ८
अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः । योनावृतस्य सीदत ९

॥ १३ ॥ (ऋ ९ । १४ । १-८)

परि प्रासिष्यदत् कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः । कारं बिभ्रत् पुरुस्पृहम् १
गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः । परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् २ ११४

आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत । यदी गोभिर्वसायते ३ ११५
निरिणानो वि धावति जहच्छर्याणि तान्वा । अत्रा सं जिघ्नते युजा ४
नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा । गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ५
अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगात्यण्व्या । वग्नुमियर्ति यं विदे ६
अभि क्षिपः समग्मत मर्जयन्तीरिषस्पतिम् । पृष्ठा गृभ्णत वाजिनः ७
परि दिव्यानि मर्मृशद् विश्वानि सोम पार्थिवा । वसूनि याह्यस्मयुः ८ १२०

॥ १४ ॥ (ऋ ९ । १५ । १-८)

एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् १
एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आसते २
एष हितो वि नीयते ऽन्तः शुभ्रावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ३
एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ४
एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ५ १२५
एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति । अव शादेषु गच्छति ६
एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ७
एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः । स्वायुधं मदिन्तमम् ८

॥ १५ ॥ (ऋ ९ । १६ । १-८)

प्र ते सोतार ओण्यो३ रसं मदाय घृष्वये । सर्गो न तक्त्येतशः १
ऋत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा । गोषामण्वेषु सश्चिम २ १३०
अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज । पुनीहीन्द्राय पातवे ३
प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति । क्रत्वा सधस्थमासदत् ४
प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत । महे भराय कारिणः ५
पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । शूरो न गोषु तिष्ठति ६
दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः । वृथा पवित्रे अर्षति ७ १३५
त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु । अव्यो वारं वि धावसि ८

॥ १६ ॥ (ऋ. ९ । १७ । १-८)

प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः । सोमा असृग्रमाशवः १
अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव । इन्द्रं सोमासो अक्षरन् २ १३८

अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ३
आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ४ १४०
अति त्री सोम रोचना रोहन् न भ्राजसे दिवम् । इष्णन्त्सूर्यं न चोदयः ५
अभि विप्रा अनूषत मूर्धन् यज्ञस्य कारवः । दधानाश्चक्षसि प्रियम् ६
तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः । मृजन्ति देववीतये ७
मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः । चारुर्ऋताय पीतये ८

॥ १७ ॥ (ऋ ९ । १८ । १-७)

परि सुवानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षाः । मदेषु सर्वधा असि १ १४५
त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः । मदेषु सर्वधा असि २
तव विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत । मदेषु सर्वधा असि ३
आ यो विश्वानि वार्या वसूनि हस्तयोर्दधे । मदेषु सर्वधा असि ४
य इमे रोदसी मही सं मातरेव दोहते । मदेषु सर्वधा असि ५
परि यो रोदसी उभे सद्यो वाजेभिरर्षति । मदेषु सर्वधा असि ६ १५०
स शुष्मी कलशेष्वा पुनानो अचिक्रदत् । मदेषु सर्वधा असि ७

॥ १८ ॥ (ऋ ९ । १९ । १—७)

यत् सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर १
युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः २
वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि बर्हिषि । हरिः सन् योनिमासदत् ३
अवावशन्त धीतयो वृषभस्याधि रेतसि । सूनोर्वत्सस्य मातरः ४ १५५
कुविद् वृषण्यन्तीभ्यः पुनानो गर्भमादधत् । याः शुक्रं दुहते पयः ५
उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रुषु । पवमान विदा रयिम् ६
नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुष्मं नि वयस्तिर । दूरे वा सतो अन्ति वा ७

॥ १९ ॥ (ऋ ९ । २० । १-७)

प्र कविर्देववीतयेऽव्यो वारेभिरर्षति । साह्वान् विश्वा अभि स्पृधः १
स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् २ १६०
परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ३
अभ्यर्ष बृहद् यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् । इषं स्तोतृभ्य आ भर ४ १६२

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ५
स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ६
क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ७ १६५

॥ २० ॥ (ऋ ९ । २१ । १-७)

एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः । मत्सरासः स्वर्विदः १
प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः । स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः २
वृथा क्रीळन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित् । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ३
एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत । हिता न सप्तयो रथे ४
आस्मिन् पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे । यो अस्मभ्यमरावा ५ १७०
ऋभुर्न रथ्यं नवं दधाता केतमादिशे । शुक्राः पवध्वमर्णसा ६
एत उ त्ये अवीवशन् काष्ठां वाजिनो अक्रत । सतः प्रासाविषुर्मतिम् ७

॥ २१ ॥ (ऋ ९ । २२ । १-७)

एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिनः । सर्गाः सृष्टा अहेषत १
एते वाता इवोरवः पर्जन्यस्येव वृष्टयः । अग्नेरिव भ्रमा वृथा २
एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः । विपा व्यानशुर्धियः ३ १७५
एते मृष्टा अमर्त्याः ससृवांसो न शश्रमुः । इयक्षन्तः पथो रजः ४
एते पृष्ठानि रोदसो– विप्रयन्तो व्यानशुः । उतेदमुत्तमं रजः ५
तन्तुं तन्वानमुत्तम–मनु प्रवत आशत । उतेदमुत्तमाय्यम् ६
त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः । ततं तन्तुमचिक्रदः ७

॥ २२ ॥ (ऋ. ९ । २३ । १-७)

सोमा असृग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया । अभि विश्वानि काव्या १ १८०
अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् २
आ पवमान नो भरा–ऽर्यो अदाशुषो गयम् । कृधि प्रजावतीरिषः ३
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् । अभि कोशं मधुश्चुतम् ४
सोमो अर्षति धर्णसि–र्दधान इन्द्रियं रसम् । सुवीरो अभिशस्तिपाः ५
इन्द्राय सोम पवसे देवेभ्यः सधमाद्यः । इन्दो वाजं सिषाससि ६ १८५
अस्य पीत्वा मदाना–मिन्द्रो वृत्राण्यप्रति । जघान जघनच्च नु ७ १८६

॥ २३ ॥ (ऋ ९ । २४ । १—७)

प्र सोमा॑सो अधन्विषुः पव॑मानास॒ इन्द॑वः । श्रीणाना अ॒प्सु मृ॑ञ्जत १
अ॒भि गावो॑ अधन्विषु॒—रापो॒ न प्र॒वता॑ य॒तीः । पु॒नाना इन्द्र॑माशत २
प्र प॑वमान धन्वसि॒ सोमे॒न्द्राय॒ पात॑वे । नृभि॒र्यतो॒ वि नी॑यसे ३
त्वं सो॑म नृ॒माद॑नः पव॑स्व चर्षणी॒सहे॑ । सस्नि॒र्यो अ॑नु॒माद्यः॑ ४ १९०
इन्दो॒ यदद्रि॑भिः सु॒तः प॒वित्रं॑ परि॒धाव॑सि । अर॒मिन्द्र॑स्य॒ धाम्ने॑ ५
पव॑स्व वृत्रहन्तमो॒—क्थेभि॑रनु॒माद्यः॑ । शुचिः॑ पाव॒को अद्भु॑तः ६
शुचिः॑ पाव॒क उ॑च्यते॒ सोमः॑ सु॒तस्य॒ मध्वः॑ । दे॒वा॒वीर॑घशंस॒हा ७ १९३

॥ २४ ॥ (ऋ ९ । २५ । १—६) (१९४—१९९) दृळ्हच्युत आगस्त्यः ।

पव॑स्व द॒क्षसाध॑नो दे॒वेभ्यः॑ पी॒तये॑ हरे । म॒रुद्भ्यो॑ वा॒यवे॒ मदः॑ १
पव॑मान धि॒या हि॒तो३॒॑ऽभि योनिं॒ कनि॑क्रदत् । धर्म॑णा वा॒युमा वि॑श २ १९५
सं दे॒वैः शो॑भते॒ वृषा॑ क॒विर्योना॒वधि॑ प्रि॒यः । वृ॒त्र॒हा दे॑व॒वीत॑मः ३
विश्वा॑ रू॒पाण्या॑वि॒शन् पु॑ना॒नो या॑ति हर्य॒तः । यत्रा॒मृता॑स॒ आस॑ते ४
अ॒रु॒षो ज॒नय॒न् गिरः॒ सोमः॑ पवत आयु॒षक् । इन्द्रं॒ गच्छ॑न् क॒विक्र॑तुः ५
आ प॑वस्व मदिन्तम प॒वित्रं॒ धार॑या कवे । अ॒र्कस्य॒ योनि॑मा॒सद॑म् ६ १९९

॥ २५ ॥ (ऋ ९ । २६ । १-६) (२००-२०५) इध्मवाहो दार्ढच्युतः ।

तम॑मृक्षन्त वा॒जिन॑—मु॒पस्थे॒ अदि॑ते॒रधि॑ । विप्रा॑सो॒ अण्व्या॑ धि॒या १ २००
तं गावो॑ अ॒भ्य॑नूषत स॒हस्र॑धार॒मक्षि॑तम् । इन्दुं॑ ध॒र्तार॒मा दि॒वः २
तं वे॒धां मे॒धया॑ह्यन् पव॑मान॒मधि॒ द्यवि॑ । ध॒र्ण॒सिं भूरि॑धायसम् ३
तम॑ह्यन् भु॒रिजो॑र्धि॒या संव॑सानं॒ विव॑स्वतः । पतिं॑ वा॒चो अदा॑भ्यम् ४
तं सान॒ावधि॑ जा॒मयो॒ हरिं॑ हिन्व॒न्त्यद्रि॑भिः । ह॒र्य॒तं भूरि॑चक्षसम् ५
तं त्वा॑ हिन्वन्ति वे॒धसः॒ पव॑मान गिरा॒वृध॑म् । इन्दु॒मिन्द्रा॑य मत्स॒रम् ६ २०५

॥ २६ ॥ (ऋ ९ । २७ । १-६) (२०६—२११) नृमेध आङ्गिरसः ।

ए॒ष क॒विर॒भिष्टु॑तः प॒वित्रे॒ अधि॑ तोशते । पु॒ना॒नो घ्नन्नप॒ स्रिधः॑ १
ए॒ष इन्द्रा॑य वा॒यवे॑ स्व॒र्जित् परि॑ षिच्यते । प॒वित्रे॑ द॒क्षसाध॑नः २
ए॒ष नृभि॒र्वि नी॑यते दि॒वो मू॒र्धा वृषा॑ सु॒तः । सोमो॒ वने॑षु विश्व॒वित् ३
ए॒ष ग॒व्युर॑चिक्रदत् पव॑मानो हिरण्य॒युः । इन्दुः॑ सत्रा॒जिदस्तृ॑तः ४ २०९

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि । पवित्रे मत्सरो मदः ५ २१०
एष शुष्म्यसिष्यद—दन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ६ २११

॥ २७ ॥ (ऋ ९ । २८ । १—६) (२१२—२१७) प्रियमेध आङ्गिरसः ।

एष वाजी हितो नृभि—र्विश्वविन्मनसस्पतिः । अव्यो वारं वि धावति १
एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् २
एष देवः शुभायते ऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ३
एष वृषा कनिक्रदद् दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ४ २१५
एष सूर्यमरोचयत् पवमानो विचर्षणिः । विश्वा धामानि विश्ववित् ५
एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरघशंसहा ६ २१७

॥ २८ ॥ (ऋ ९ । २९ । १—६) (२१८—२२३) नृमेध आङ्गिरस ।

प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यौजसा । देवाँ अनु प्रभूषतः १
सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् २
सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ३ २२०
विश्वा वसूनि संजयन् पवस्व सोम धारया । इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ४
रक्षा सु नो अररुषः स्वनात् समस्य कस्य चित् । निदो यत्र मुमुच्महे ५
एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया । द्युमन्तं शुष्ममा भर ६ २२३

॥ २९ ॥ (ऋ. ९ । ३० । १—६) (२२४—२२९) बिन्दुराङ्गिरसः ।

प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् । पुनानो वाचमिष्यति १
इन्दुर्हियानः सोतृभि—र्मृज्यमानः कनिक्रदत् । इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम् २ २२५
आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम् । पवस्व सोम धारया ३
प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् । अभि द्रोणान्यासदम् ४
अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दविन्द्राय पीतये ५
सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । चारुं शर्धाय मत्सरम् ६ २२९

॥ ३० ॥ (ऋ ९ । ३१ । १—६) (२३०—२३५) गोतमो राहूगण ।

प्र सोमासः स्वाध्यः पवमानासो अक्रमुः । रयिं कृण्वन्ति चेतनम् १ २३०
दिवस्पृथिव्या अधि भवेन्दो द्युम्नवर्धनः । भवा वाजानां पतिः २
तुभ्यं वाता अभिप्रिय—स्तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः । सोम वर्धन्ति ते महः ३ २३१

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे ४
तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम् । वर्षिष्ठे अधि सानवि ५
स्वायुधस्य ते सतो भुवनस्य पते वयम् । इन्दो सखित्वमुश्मसि ६ २३५

॥ ३१ ॥ (ऋ ९।३२।१-६) (२३६—२४१) श्यावाश्व आत्रेयः।

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनः । सुता विदथे अक्रमुः १
आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये २
आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् । अत्यो न गोभिरज्यते ३
उभे सोमावचाकशन् मृगो न तक्तो अर्षसि । सीदन्नृतस्य योनिमा ४
अभि गावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम् । अगन्नाजिं यथा हितम् ५ २४०
अस्मे धेहि द्युमद् यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च । सनिं मेधामुत श्रवः ६ २४१

॥ ३२ ॥ (ऋ ९।३३।१-६) (२४२-२५३) त्रित आप्त्यः।

प्र सोमासो विपश्चितो ऽपां न यन्त्यूर्मयः । वनानि महिषा इव १
अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् २
सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्ति विष्णवे ३
तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ४ २४५
अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः । मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ५
रायः समुद्रांश्चतुरो ऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणः ६

॥ ३३ ॥ (ऋ ९।३४।१-६)

प्र सुवानो धारया तने न्दुर्हिन्वानो अर्षति । रुजद् दृळ्हा व्योजसा १
सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे २
वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः । दुहन्ति शक्मना पयः ३ २५०
भुवत् त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः । सं रूपैरज्यते हरिः ४
अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः । चारु प्रियतमं हविः ५
समेनमह्रुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः । धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ६ २५३

॥ ३४ ॥ (ऋ ९।३५।१-६) (२५४—२६५) प्रभूवसुराङ्गिरसः ।

आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम् । यया ज्योतिर्विदासि नः १
इन्दो समुद्रमीङ्खय पवस्व विश्वमेजय । रायो धर्ता न ओजसा २ २५५

*

त्वया वीरेण वीरवो ऽभि ष्याम पृतन्यतः । क्षरा णो अभि वार्यम् ३
प्र वाजमिन्दुरिष्यति सिषासन् वाजसा ऋषिः । व्रता विदान आयुधा ४
तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं पुनानं वासयामसि । सोमं जनस्य गोपतिम् ५
विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः । पुनानस्य प्रभूवसोः ६

॥ ३५ ॥ (ऋ ९ । ३६ । १—६)

असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः । कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत् १ २६०
स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति । अभि कोशं मधुश्चुतम् २
स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ३
शुम्भमान ऋतायुभि—र्मृज्यमानो गभस्त्योः । पवते वारे अव्यये ४
स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा । पवतामान्तरिक्ष्या ५
आ दिवस्पृष्ठमश्वयु—र्गव्ययुः सोम रोहसि । वीरयुः शवसस्पते ६ २६५

॥ ३६ ॥ (ऋ ९ । ३७ । १—६) (२६६—२७७) रहूगण आङ्गिरसः ।

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन् रक्षांसि देवयुः १
स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः । अभि योनिं कनिक्रदत् २
स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ३
स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः सूर्यं सह ४
स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ५ २७०
स देवः कविनेषितो३ ऽभि द्रोणानि धावति । इन्दुरिन्द्राय मंहना ६

॥ ३७ ॥ (ऋ. ९ । ३८ । १—६)

एष उ स्य वृषा रथो ऽव्यो वारेभिरर्षति । गच्छन् वाजं सहस्रिणम् १
एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये २
एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ३
एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति । गच्छञ्जारो न योषितम् ४ २७५
एष स्य मद्यो रसो ऽव चष्टे दिवः शिशुः । य इन्दुर्वारमाविशत् ५
एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः । क्रन्दन् योनिमभि प्रियम् ६ २७७

॥ ३८ ॥ (ऋ ९ । ३९ । १—६) (२७८—२८९) बृहन्मतिराङ्गिरस ।

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना । यत्र देवा इति ब्रवन् १
परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः । वृष्टिं दिवः परि स्रव २ २७९

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा । विचक्षाणो विरोचयन् ३ २८०
अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ४
आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ५
समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । योनावृतस्य सीदत ६

॥ ३९ ॥ (ऋ. ९ । ४० । १—६)

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः १
आ योनिमरुणो रुहद् गमदिन्द्रं वृषा सुतः । ध्रुवे सदसि सीदति २ २८५
नू नो रयिं महामिन्दो ऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ३
विश्वा सोम पवमान द्युम्नानीन्दवा भर । विदाः सहस्रिणीरिषः ४
स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यम् । जरितुर्वर्धया गिरः ५
पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् । वृषन्निन्दो न उक्थ्यम् ६ २८९

॥ ४० ॥ (ऋ ९ । ४१ । १—६) (२९०—३०७) मेध्यातिथि काण्व ।

प्र ये गावो न भूर्णय—स्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् १ २९०
सुवितस्य मनामहे ऽति सेतुं दुराव्यम् । साह्वांसो दस्युमव्रतम् २
शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ३
आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्वावद् वाजवत् सुतः ४
स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण । उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ५
परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः । सरा रसेव विष्टपम् ६ २९५

॥ ४१ ॥ (ऋ ९ । ४२ । १—६)

जनयन् रोचना दिवो जनयन्नप्सु सूर्यम् । वसानो गा अपो हरिः १
एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । धारया पवते सुतः २
वावृधानाय तूर्वये पवन्त वाजसातये । सोमाः सहस्रपाजसः ३
दुहानः प्रत्नमित् पयः पवित्रे परि षिच्यते । क्रन्दन् देवाँ अजीजनत् ४
अभि विश्वानि वार्या ऽभि देवाँ ऋतावृधः । सोमः पुनानो अर्षति ५ ३००
गोमन्नः सोम वीरव—दश्वावद् वाजवत् सुतः । पवस्व बृहतीरिषः ६

॥ ४२ ॥ (ऋ ९ । ४३ । १—६)

यो अत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः । तं गीर्भिर्वासयामसि १
तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा । इन्दुमिन्द्राय पीतये २ ३०३

पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः । विप्रस्य मेध्यातिथेः ३
पवमान विदा रयि–मस्मभ्यं सोम सुश्रियम् । इन्दो सहस्रवर्चसम् ४ ३०५
इन्दुरत्यो न वाजसृत् कनिक्रन्ति पवित्र आ । यदक्षारति देवयुः ५
पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे । सोम रास्व सुवीर्यम् ६ ३०७

॥ ४३ ॥ (ऋ ९ । ४४ । १—६) (३०८-३१५) अयास्य आङ्गिरस ।

प्र ण इन्दो महे तन ऊर्मि न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः १
मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति । विप्रस्य धारया कविः २
अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ । सोमो याति विचर्षणिः ३ ३१०
स नः पवस्व वाजयु–श्चक्राणश्चारुमध्वरम् । बर्हिष्माँ आ विवासति ४
स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः । सोमो देवेष्वा यमत् ५
स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद् गातुवित्तमः । वाजं जेषि श्रवो बृहत ६

॥ ४४ ॥ (ऋ ९ । ४५ । १—६)

स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये । इन्दविन्द्राय पीतये १
स नो अर्षाभि दूत्यं१ त्वमिन्द्राय तोशसे । देवान्त्सखिभ्य आ वरम् २ ३१५
उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम् । वि नो राये दुरो वृधि ३
अत्यू पवित्रमक्रमीद् वाजी धुरं न यामनि । इन्दुर्देवेषु पत्यते ४
समी सखायो अस्वरन् वने क्रीळन्तमत्यविम् । इन्दुं नावा अनूषत ५
तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे । इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ६

॥ ४५ ॥ (ऋ ९ । ४६ । १—६)

असृग्रन् देववीतये ऽत्यासः कृत्व्या इव । क्षरन्तः पर्वतावृधः १ ३२०
परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती । वायुं सोमा असृक्षत २
एते सोमास इन्दवः प्रयस्वन्तश्चमू सुताः । इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः ३
आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना । गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ४
स पवस्व धनंजय प्रयन्ता राधसो महः । अस्मभ्यं सोम गातुवित् ५
एतं मृजन्ति मर्ज्यं पवमानं दश क्षिपः । इन्द्राय मत्सरं मदम् ६ ३२५

॥ ४६ ॥ (ऋ ९ । ४७ । १—५) (३२६—३४०) कविर्भार्गवः ।

अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत । मन्दान उद् वृषायते १
कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा । ऋणा च धृष्णुश्चयते २ ३२७

आत् सोम॑ इन्द्रियो रसो॒ वज्र॑: सहस्र॒सा भु॑वत् । उ॒क्थं यद॑स्य॒ जाय॑ते ३
स्वयं॑ कृ॒विर्वि॑ध॒र्तरि॒ विप्रा॑य॒ रत्न॑मिच्छति । यदी॑ मर्मृ॒ज्यते॒ धिय॑: ४
सि॒षा॒सतू॑ र॒यी॒णां वाजे॒ष्वर्व॑तामिव । भरे॑षु जि॒ग्युषा॑मसि ५ ३३०

॥ ४७ ॥ (ऋ. ९ । ४८ । १-५)

तं त्वा॑ नृ॒म्णानि॒ बिभ्र॑तं स॒धस्थे॑षु म॒हो दि॒वः । चारुं॑ सुकृ॒त्यये॑महे १
संवृ॑क्तधृष्णुमु॒क्थ्यं॑ म॒हाम॑हिव्रतं॒ मद॑म् । श॒तं पुरो॑ रुरु॒क्षणि॑म् २
अत॑स्त्वा र॒यिम॒भि राजा॑नं सुक्रतो दि॒वः । सु॒प॒र्णो अ॑व्य॒थिर्भ॑रत् ३
विश्व॑स्मा॒ इत् स्व॑र्दृ॒शे साधा॑रणं र॒ज॒स्तुर॑म् । गो॒पामृ॒तस्य॒ विर्भ॑रत् ४
अधा॑ हिन्वा॒न इ॑न्द्रि॒यं ज्याया॑ महि॒त्वमा॑नशे । अ॒भि॒ष्टि॒कृद् विच॑र्षणिः ५ ३३५

॥ ४८ ॥ (ऋ. ९ । ४९ । १-५)

पव॑स्व वृ॒ष्टिमा सु नो॒ ऽपामू॒र्मिं दि॒वस्परि॑ । अ॒य॒क्ष्मा बृ॑ह॒तीरिष॑: १
तया॑ पवस्व॒ धार॑या॒ यया॒ गाव॑ इ॒हाग॑मन् । जन्या॑स॒ उप॑ नो गृ॒हम् २
घृ॒तं प॑वस्व॒ धार॑या य॒ज्ञेषु॑ देव॒वीत॑मः । अ॒स्मभ्यं॑ वृ॒ष्टिमा प॑व ३
स न॑ ऊ॒र्जे व्य१॒॑व्ययं॑ प॒वित्रं॑ धाव॒ धार॑या । दे॒वास॑: शृ॒णव॒न् हि क॑म् ४
पव॑मानो असिष्यद॒द् रक्षां॑स्यप॒जङ्घ॑नत् । प्र॒त्न॒वद् रो॒चय॒न् रुच॑: ५ ३४०

॥ ४९ ॥ (ऋ. ९ । ५० । १-५) (३४१-३५५) उचथ्य आङ्गिरसः ।

उत् ते॒ शुष्मा॑स ईरते॒ सिन्धो॑रू॒र्मेरि॑व स्व॒नः । वा॒णस्य॑ चोदया प॒विम् १
प्र॒स॒वे त॒ उदी॑रते ति॒स्रो वाचो॑ मख॒स्युव॑: । यदव्य॒ एषि॒ सान॑वि २
अव्यो॒ वारे॒ परि॑ प्रि॒यं हरिं॑ हिन्व॒न्त्यद्रि॑भिः । पव॑मानं मधु॒श्चुत॑म् ३
आ प॑वस्व मदिन्तम प॒वित्रं॒ धार॑या कवे । अ॒र्कस्य॒ योनि॑मा॒सद॑म् ४
स प॑वस्व मदिन्तम॒ गोभि॑रञ्जा॒नो अ॒क्तुभि॑: । इन्दु॒विन्द्रा॑य पी॒तये॑ ५ ३४५

॥ ५० ॥ (ऋ. ९ । ५१ । १-५)

अध्व॑र्यो॒ अद्रि॑भिः सु॒तं सोमं॑ प॒वित्र॒ आ सृ॑ज । पु॒नी॒हीन्द्रा॑य॒ पात॑वे १
दि॒वः पी॒यूष॑मुत्त॒मं सोम॒मिन्द्रा॑य व॒ज्रिणे॑ । सु॒नोता॒ मधु॑मत्तमम् २
तव॒ त्य इ॑न्दो॒ अन्ध॑सो दे॒वा मधो॒र्व्य॑श्नते । पव॑मानस्य म॒रुत॑: ३
त्वं हि सो॑म व॒र्धय॑न्त्सु॒तो मदा॑य॒ भूर्ण॑ये । वृष॑न्त्स्तो॒तार॑मू॒तये॑ ४
अ॒भ्य॑र्ष विचक्षण प॒वित्रं॒ धार॑या सु॒तः । अ॒भि वाज॑मु॒त श्रव॑: ५ ३५०

॥ ५१ ॥ (ऋ ९ । ५१ । १—५)

परि द्युक्षः सनद्रयि—र्भरद्वाजं नो अन्धसा । सुवानो अर्ष पवित्र आ १
तव प्रत्नेभिरध्वभि—रव्यो वारे परि प्रियः । सहस्रधारो यात् तना २
चरुर्न यस्तमीङ्खये—न्दो न दानमीङ्खय । वधैर्वधस्नवीङ्खय ३
नि शुष्ममिन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् । यो अस्माँ आदिदेशति ४
शतं न इन्द ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम् । पवस्व मंहयद्रयिः ५ ३५५

॥ ५२ ॥ (ऋ ९ । ५३ । १—४) (३५६—३८७) अवत्सारः काश्यपः ।

उत् ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः १
अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा २
अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ३
तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ४

॥ ५३ ॥ (ऋ ९ । ५४ । १—४)

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् १ ३६०
अयं सूर्य इवोपदृ—गयं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् २
अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ३
परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः । पुनान इन्दविन्द्रयुः ४

॥ ५४ ॥ (ऋ ९ । ५५ । १—४)

यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव । सोम विश्वा च सौभगा १
इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः । नि बर्हिषि प्रिये सदः २ ३६५
उत नो गोविदश्ववित् पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभिः ३
यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ४

॥ ५५ ॥ (ऋ. ९ । ५६ । १—४)

परि सोम ऋतं बृह—दाशुः पवित्रे अर्षति । विघ्नन् रक्षांसि देवयुः १
यत् सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः । इन्द्रस्य सख्यमाविशन् २
अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत । मृज्यसे सोम सातये ३ ३७०
त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्दो परि स्रव । नॄन्स्तोतॄन् पाह्यंहसः ४ ३७१

॥ ५६ ॥ (ऋ. ९ । ५७ । १—४)

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः । अच्छा वाजं सहस्रिणम् १
अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति । हरिस्तुञ्जान आयुधा २
स मर्मृजान आयुभि-रिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ३
स नो विश्वा दिवो वसू-तो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ४ ३७५

॥ ५७ ॥ (ऋ. ९ । ५८ । १—४)

तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत् स मन्दी धावति १
उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । तरत् स मन्दी धावति २
ध्वस्रयोः पुरुषन्त्यो-रा सहस्राणि दद्महे । तरत् स मन्दी धावति ३
आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । तरत् स मन्दी धावति ४

॥ ५८ ॥ (ऋ ९ । ५९ । १—४)

पवस्व गोजिदश्वजिद् विश्वजित् सोम रण्यजित् । प्रजावद् रत्नमा भर १ ३८०
पवस्वाद्भ्यो अदाभ्यः पवस्वौषधीभ्यः । पवस्व धिषणाभ्यः २
त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरिता तर । कविः सीद नि बर्हिषि ३
पवमान स्वर्विदो जायमानोऽभवो महान् । इन्दो विश्वाँ अभीदसि ४

॥ ५९ ॥ (ऋ ९ । ६० । १—४) गायत्री, ३ पुरउष्णिक् ।

प्र गायत्रेण गायत पवमानं विचर्षणिम् । इन्दुं सहस्रचक्षसम् १
तं त्वा सहस्रचक्षस-मथो सहस्रभर्णसम् । अति वारमपाविषुः २ ३८५
अति वारान् पवमानो असिष्यदत् कलशाँ अभि धावति । इन्द्रस्य हार्द्याविशन् ३
इन्द्रस्य सोम राधसे शं पवस्व विचर्षणे । प्रजावद् रेत आ भर ४ ३८७

॥ ६० ॥ (ऋ ९ । ६१ । १—३०) (३८८—४१७) अमहीयुराङ्गिरसः ।

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन् नवतीर्नव १
पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् २
परि णो अश्वमश्वविद् गोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ३ ३९०
पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ४
ये ते पवित्रमूर्मयो ऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृळय ५
स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ६
एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिरख्यत ७ ३९४

समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ८ ३९५
स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुर्मित्रे वरुणे च ९
उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः १०
एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ११
स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित् परि स्रव १२
उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः १३ ४००
तामिद् वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदंसनिः १४
अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् १५
पवमानो अजीजनद् दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् १६
पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति १७
पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे १८ ४०५
यस्ते मदो वरेण्य—स्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा १९
जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे । गोषा उ अश्वसा असि २०
संमिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदञ्छ्येनो न योनिमा २१
स पवस्व य आविथे—न्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः २२
सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः । पुनानो वर्ध नो गिरः २३ ४१०
त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः । सोम व्रतेषु जागृहि २४
अपघ्नन् पवते मृधो ऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् २५
महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद् यशः २६
न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् । यत् पुनानो मखस्यसे २७
पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि २८ ४१५
अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे । सासह्याम पृतन्यतः २९
या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ३० ४१७

॥ ६२ ॥ (ऋ ९ । ६२ । १-३०) (४१८-४७) जमदग्निर्भार्गवः ।

एते असृग्रमिन्दव—स्तिरः पवित्रमाशवः । विश्वान्यभि सौभगा १
विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । तना कृण्वन्तो अर्वते २
कृण्वन्तो वरिवो गवे ऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् । इळामस्मभ्यं संयतम् ३ ४२०
असाव्यंशुर्मदाया—ऽप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ४ ४२१

शुभ्रमन्धो देववात—मप्सु धूतो नृभिः सुतः । स्वदन्ति गावः पयोभिः ५
आदीमश्वं न हेतारो ऽशूशुभन्नमृताय । मध्वो रसं सधमादे ६
यास्ते धारा मधुश्चुतो ऽसृग्रमिन्द ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ७
सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया । सीदन् योनावनेष्वा ८ ४२५
त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । वरिवोविद् घृतं पयः ९
अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् १०
एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा । करद् वसूनि दाशुषे ११
आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् । पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् १२
एष स्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः । उरुगायः कविक्रतुः १३ ४३०
सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः । इन्द्राय पवते मदः १४
गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते । विर्योना वसताविव १५
पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत् । चमूषु शक्मनासदम् १६
तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे । ऋषीणां सप्त धीतिभिः १७
तं सोतारो धनस्पृत—माशुं वाजाय यातवे । हरिं हिनोत वाजिनम् १८ ४३५
आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । शूरो न गोषु तिष्ठति १९
आ त इन्दो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः । देवा देवेभ्यो मधु २०
आ नः सोम पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम् । देवेभ्यो देवश्रुत्तमम् २१
एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे । मदिन्तमस्य धारया २२
अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव २३ ४४०
उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना २४
पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः । अभि विश्वानि काव्या २५
त्वं समुद्रिया अपो ऽग्रियो वाच ईरयन् । पवस्व विश्वमेजय २६
तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे । तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः २७
प्र ते दिवो न वृष्टयो धारा यन्त्यसश्चतः । अभि शुक्रामुपस्तिरम् २८ ४४५
इन्द्रायेन्दुं पुनीतनो—ग्रं दक्षाय साधनम् । ईशानं वीतिराधसम् २९
पवमान ऋतः कविः सोमः पवित्रमासदत् । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ३० ४४७

॥ ६१ ॥ (ऋ. ९ । ६३ । १-३०) (४४८—४७७) निध्रुविः काश्यपः ।

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्यम् । अस्मे श्रवांसि धारय १
इषमूर्जं च पिन्वस इन्द्राय मत्सरिन्तमः । चमूष्वा नि षीदसि २
सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत् । मधुमाँ अस्तु वायवे ३
एते असृग्रमाशवो ऽति ह्वरांसि बभ्रवः । सोमा ऋतस्य धारया ४
इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तो अराव्णः ५
सुता अनु स्वमा रजो ऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः । इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः ६
अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः । हिन्वानो मानुषीरपः ७
अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ८
उत त्या हरितो दश सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ९
परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम् । अव्यो वारेषु सिञ्चत १०
पवमान विदा रयि—मस्मभ्यं सोम दुष्टरम् । यो दूणाशो वनुष्यता ११
अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् । अभि वाजमुत श्रवः १२
सोमो देवो न सूर्यो ऽद्रिभिः पवते सुतः । दधानः कलशे रसम् १३
एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् १४
सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः । पवित्रमत्यक्षरन् १५
प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ । मदो यो देववीतमः १६
तमी मृजन्त्यायवो हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् १७
आ पवस्व हिरण्यव—दश्वावत् सोम वीरवत् । वाजं गोमन्तमा भर १८
परि वाजे न वाजयु—मव्यो वारेषु सिञ्चत । इन्द्राय मधुमत्तमम् १९
कविं मृजन्ति मर्ज्यं धीभिर्विप्रा अवस्यवः । वृषा कनिक्रदर्षति २०
वृषणं धीभिरप्तुरं सोममृतस्य धारया । मती विप्राः समस्वरन् २१
पवस्व देवायुष—गिन्द्रं गच्छतु ते मदः । वायुमा रोह धर्मणा २२
पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम् । प्रियः समुद्रमा विश २३
अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः । नुदस्वादेवयुं जनम् २४
पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः । अभि विश्वानि काव्या २५
पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः । घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः २६
पवमाना दिवस्प—र्यन्तरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सानवि २७

पुनानः सोम धारये-न्दो विश्वा अप स्रिधः । जहि रक्षांसि सुक्रतो २८ ४७५
अपघ्नन्त्सोम रक्षसो ऽभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् २९
अस्मे वसूनि धारय सोम दिव्यानि पार्थिवा । इन्दो विश्वानि वार्या ३० ४७७

॥ ६३ ॥ (ऋ ९ । ६४ । १-३०) (४७८—५०७) कश्यपो मारीचः ।

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे १
वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः । सत्यं वृषन् वृषेदसि २
अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ३ ४८०
असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ४
शुम्भमाना ऋतायुभि-र्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवन्ते वारे अव्यये ५
ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ६
पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ७
केतुं कृण्वन् दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ८ ४८५
हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । अक्रान् देवो न सूर्यः ९
इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती । सृजदश्वं रथीरिव १०
ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देववीः पर्यक्षरत् । सीदन्नृतस्य योनिमा ११
स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः । इन्दविन्द्राय पीतये १२
इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि १३ ४९०
पुनानो वरिवस्कृध्यू-र्जं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् १४
पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्यतः १५
प्र हिन्वानास इन्दवो ऽच्छा समुद्रमाशवः । धिया जूता असृक्षत १६
मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा १७
परि णो याह्यस्मयु-र्विश्वा वसून्योजसा । पाहि नः शर्म वीरवत् १८ ४९५
मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः । प्र यत् समुद्र आहितः १९
आ यद् योनिं हिरण्यय-माशुर्ऋतस्य सीदति । जहात्यप्रचेतसः २०
अभि वेना अनूषते-यक्षन्ति प्रचेतसः । मज्जन्त्यविचेतसः २१
इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । ऋतस्य योनिमासदम् २२
तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः । सं त्वा मृजन्त्यायवः २३ ५००

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः २४
त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि । इन्दो सहस्रभर्णसम् २५
उतो सहस्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युवम् । पुनान इन्दवा भर २६
पुनान इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् । प्रियः समुद्रमा विश २७
दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवाशिरः २८ ५०५
हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत् । सीदन्तो वनुषो यथा २९
ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः । पवस्व सूर्यो दृशे ३० ५०७

॥ ६४ ॥ (ऋ ९ । ६५ । १—३०) (५०८—५३७) भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा ।

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः १
पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि । विश्वा वसून्या विश २
आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतम् ३ ५१०
वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वाध्यः ४
आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ५
यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः । द्रुणा सधस्थमश्नुषे ६
प्र सोमाय व्यश्ववत् पवमानाय गायत । महे सहस्रचक्षसे ७
यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ८ ५१५
तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । सखित्वमा वृणीमहे ९
वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा १०
तं त्वा धर्तारमोण्यो३ः पवमान स्वर्दृशम् । हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ११
अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया । युजं वाजेषु चोदय १२
आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः । अस्मभ्यं सोम गातुवित् १३ ५२०
आ कलशा अनूषतेन्दो धाराभिरोजसा । एन्द्रस्य पीतये विश १४
यस्य ते मद्यं रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः । स पवस्वाभिमातिहा १५
राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे १६
आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् । वहा भगत्तिमूतये १७
आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये १८ ५२५
अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदञ्छ्येनो न योनिमा १९ ५२६

अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे २०
इषं तोकाय नो दध-दस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् २१
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति २२
य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु २३ ५३०
ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् । सुवाना देवास इन्दवः २४
पवते हर्यतो हरि-र्गृणानो जमदग्निना । हिन्वानो गोरधि त्वचि २५
प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः । श्रीणाना अप्सु मृञ्जत २६
तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये । स पवस्वानया रुचा २७
आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् २८ ५३५
आ मन्द्रमा वरेण्य-मा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् २९
आ रयिमा सुचेतुन-मा सुक्रतो तनूष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ३० ५३७

॥ ६५ ॥ (ऋ ९ । ६६ । १—३०)

(५३८-५६७) शत वैखाना ऋ० । १९-२१ अग्निः पवमानः । गायत्री, १८ अनुष्टुप् ।

पवस्व विश्वचर्षणे ऽभि विश्वानि काव्या । सखा सखिभ्य ईड्यः १
ताभ्यां विश्वस्य राजसि ये पवमान धामनी । प्रतीची सोम तस्थतुः २
परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः । पवमान ऋतुभिः कवे ३ ५४०
पवस्व जनयन्निषो ऽभि विश्वानि वार्या । सखा सखिभ्य ऊतये ४
तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते । पवित्रं सोम धामभिः ५
तवेमे सप्त सिन्धवः प्रशिषं सोम सिस्रते । तुभ्यं धावन्ति धेनवः ६
प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः । दधानो अक्षिति श्रवः ७
समु त्वा धीभिरस्वरन् हिन्वतीः सप्त जामयः । विप्रमाजा विवस्वतः ८ ५४५
मृजन्ति त्वा समग्रुवो ऽव्ये जीरावधि ष्वणि । रेभो यदज्यसे वने ९
पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत । अर्वन्तो न श्रवस्यवः १०
अच्छा कोशं मधुश्चुत-मसृग्रं वारे अव्यये । अवावशन्त धीतयः ११
अच्छा समुद्रमिन्दवो ऽस्तं गावो न धेनवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा १२
प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः । यद् गोभिर्वासयिष्यसे १३ ५५०
अस्य ते सख्ये वय-मियक्षन्तस्त्वोतयः । इन्दो सखित्वमुश्मसि १४
आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे । एन्द्रस्य जठरे विश १५ ५५२

महाँ असि सोम ज्येष्ठ उग्राणामिन्दु ओजिष्ठः। युध्वा सञ्छश्वज्जिगेथ १६
य उग्रेभ्यश्चिदोजीया ञ्छूरेभ्यश्चिच्छूरतरः । भूरिदाभ्यश्चिन्मंहीयान् १७
त्वं सोम सूर एष स्तोकस्य साता तनूनाम् । वृणीमहे सख्याय वृणीमहे युज्याय ५५५
अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् १९
अग्निरृषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् २०
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद् रयिं मयि पोषम् २१
पवमानो अति स्रिधो ऽभ्यर्षति सुष्टुतिम् । सूरो न विश्वदर्शतः २२
स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान् प्रयसे हितः। इन्दुरत्यो विचक्षणः २३ ५६०
पवमान ऋतं बृह च्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् । कृष्णा तमांसि जङ्घनत् २४
पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः २५
पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः २६
पवमानो व्यश्नवद् रश्मिभिर्वाजसातमः । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् २७
प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् । पुनान इन्दुरिन्द्रमा २८ ५६५
एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः। इन्द्रं मदाय जोहुवत् २९
यस्य ते द्युम्नवत् पयः पवमानाभृतं दिवः । तेन नो मृळ जीवसे ३० ५६७

॥ ६६ ॥ (ऋ. ९ । ६७ । १—३०)

(५६८—५९९) १ - ३ भरद्वाजो बार्हस्पत्य , ४-६ कश्यपो मारीचः, ७-९ गोतमो राहूगणः, १०-१२ आत्रिर्भौमः, १३-१५ विश्वामित्रो गाथिन , १६—१८ जमदग्निर्भार्गवः, १९-२१ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, २२—३२ पवित्र आङ्गिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा। पवमानः सोमः, १०—१२ पवमानः पूषा वा, २३—२७ पवमानोऽग्निः, २५ पवमानः सविता वा, २६ पवमानाग्निसवितारः, २७ विश्वे देवा वा, ३१—३२ पावमान्यध्येता । गायत्री, १६ —१८ नित्यद्विपदा गायत्री, ३० पुरउष्णिक्, २७, ३१, ३२, अनुष्टुप् ।

त्वं सोमासि धारयु र्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मंहयद्रयिः १
त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान् मत्सरिन्तमः । इन्द्राय सूरिरन्धसा २
त्वं सुष्वाणो अद्रिभि रभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ३ ५७०
इन्दुर्हिन्वानो अर्षति तिरो वाराण्यव्यया । हरिर्वाजमचिक्रदत् ४
इन्दो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा । वि वाजान्त्सोम गोमतः ५
आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम् । भरा सोम सहस्रिणम् ६
पवमानास इन्दव स्तिरः पवित्रमाशवः । इन्द्रं यामेभिराशत ७ ५७४

ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः । आयुः पवत आयवे ८ ५७५
हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम् । अभि गिरा समस्वरन् ९
अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि । आ भक्षत् कन्यासु नः १०
अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु । आ भक्षत् कन्यासु नः ११
अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि । आ भक्षत् कन्यासु नः १२
वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया । देवेषु रत्नधा असि १३ ५८०
आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते । अभि द्रोणा कनिक्रदत् १४
परि प्र सोम ते रसो ऽसर्जि कलशे सुतः । श्येनो न तक्तो अर्षति १५
पवस्व सोम मन्दय न्निन्द्राय मधुमत्तमः १६
असृग्रन् देववीतये वाजयन्तो रथा इव १७
ते सुतासो मदिन्तमाः शुक्रा वायुमसृक्षत १८ ५८५
ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् १९
एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते । रक्षोहा वारमव्ययम् २०
यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह । पवमान वि तज्जहि २१
पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु नः २२
यत् ते पवित्रमर्चिष्य ग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनीहि नः २३ ५९०
यत् ते पवित्रमर्चिव दग्ने तेन पुनीहि नः । ब्रह्मसवैः पुनीहि नः २४
उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि विश्वतः २५
त्रिभिष्ट्वं देव सवित र्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः । अग्ने दक्षैः पुनीहि नः २६
पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया ।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा २७
प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः । देवेभ्य उत्तमं हविः २८ ५९५
उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् । अगन्म बिभ्रतो नमः २९
अलाय्यस्य परशुर्ननाश त मा पवस्व देव सोम । आखुं चिदेव देव सोम ३०
यः पावमानीरध्ये त्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ३१ ५९८

पावमानीर्यो अध्ये—त्यृषिभिः संभृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ३२ ५९९

॥ ६७ ॥ (ऋ ९ । ६८ । १—१०) (६००—६०९) वत्सप्रिर्भालन्दनः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।
प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवो ऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः ।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे १ ६००
स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रद—दुपारुहः श्रथयन्त्स्वादते हरिः ।
तिरः पवित्रं परियन्नुरु ज्रयो नि शर्याणि दधते देव आ वरम् २
वि यो ममे यम्या संयती मदः साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता ।
मही अपारे रजसी विवेविद—दभिव्रजन्नक्षितं पाज आ ददे ३
स मातरा विचरन् वाजयन्नपः प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते पदम् ।
अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ४
सं दक्षेण मनसा जायते कवि—र्ऋतस्य गर्भो निहितो यमा परः ।
यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतु—र्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम् ५
मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदन्धो अभरत् परावतः ।
तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम् ६ ६०५
त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम् ।
अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभि—र्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ७
परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः ।
यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ८
अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ।
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवो विदत् प्रियम् ९
एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधच्चित्रतमं पवस्व ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् १० ६०९

॥ ६८ ॥ (ऋ ९।६९।१—१०) (६१०—६१९) हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । जगती, ९-१० त्रिष्टुप् ।
इषुर्न धन्वन् प्रति धीयते मति—र्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आय—त्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते १ ६१०
उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति २ ६११

अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते ।
हरिरक्रान् यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ३
उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्यय—मत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ४
अमृक्तेन रुशता वाससा हरि—रमर्त्यो निर्णिजानः परि व्यत ।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतो—पस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम् ५
सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ६ ६१५
सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत ।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदे ऽस्मे वाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ७
आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यव—दश्वावद् गोमद् यवमत् सुवीर्यम् ।
यूयं हि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ८
एते सोमाः पवमानास इन्द्रं रथा इव प्र ययुः सातिमच्छ ।
सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ ९
इन्दविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः ।
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः १० ६१९

॥ ६१ ॥ (ऋ ९ । ७० । १-१०) (६२०—६२९) रेणुर्वैश्वामित्रः । जगती, १० त्रिष्टुप् ।

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत १ ६२०
स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः २
ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवो ऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद् राजानं मनना अगृभ्णत ३
स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा ।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ४
स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः ।
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मती—रादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ५ ६२४

स मातरा न ददृशान उस्रियो नानददेति मरुतामिव स्वनः ।
जानन्नृतं प्रथमं यत् स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ६ ६२५
रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः ।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग् भवति निर्णिगव्ययी ७
शुचिः पुनानस्तन्वमरेपस—मव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ८
पवस्व सोम देववीतये वृषे—न्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश
पुरा नो बाधाद् दुरितातिं पारय क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते ९
हितो न सप्तिरभि वाजमर्षे—न्द्रस्येन्दो जठरमा पवस्व
नावा न सिन्धुमति पर्षि विद्वा—ञ्छूरो न युध्यन्नव नो निदः स्पः १० ६२९

॥ ७० ॥ (ऋ ९ । ७१ । १—९) (६३०—६३८) ऋषभो वैश्वामित्रः । जगती, ९ त्रिष्टुप् ।

आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्या३सदं वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः ।
हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्वो३र्ब्रह्म निर्णिजे १ ६३०
प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुव—दसुर्यं१ वर्णं नि रिणीते अस्य तम् ।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृत—मुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना २
अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्यो—र्वृषायते नभसा वेपते मती ।
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ३
परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम् ।
आ यस्मिन् गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ४
समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ५
श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति ।
ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिरा ऽश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ६ ६३५
परा व्यक्तो अरुषो दिवः कवि—र्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ७
त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत् समृता सेधति स्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ८ ६३७

उक्षेव यूथा परियन्नरावी—दधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ९ ६३८

॥ ७१ ॥ (ऋ ९ । ७२ । १—९) (६३९—६४७) हरिमन्त आङ्गिरस । जगती ।

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद् वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित् परिप्रियः १
साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।
यदी मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु २ ६४०
अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद् विनंगृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ३
नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः ।
पुरंधिवान् मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ४
नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतो ऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून्त्समजैरध्वरे मती—र्वेर्न द्रुषच्चम्वोरासदद्धरिः ५
अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ६
नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो ऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः ।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ७ ६४५
स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो ।
मा नो निर्भाग् वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि ८
आ तू न इन्दो शतदात्वश्व्यं सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत् ।
उप मास्व बृहती रेवतीरिषो ऽधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि ९ ६४७

॥ ७२ ॥ (ऋ. ९ । ७३ । १-९) (६४८-६५६) पवित्र आङ्गिरसः ।

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वर—न्नृतस्य योना समरन्त नाभयः ।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् १
सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्माविधि वेना अवीविपन् ।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित् प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् २ ६४९

पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम् ।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ३ ६५०
सहस्रधारेऽव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ४
पितुर्मातुरध्या ये समस्वर—न्नृचा शोचन्तः संदहन्तो अव्रतान् ।
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ५
प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वर—ञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः ।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ६
सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ७
ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतु—स्त्री ष पवित्रा हृद्य१न्तरा दधे ।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्य—त्यवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान् ८ ६५५
ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया ।
धीराश्चित् तत् समिनक्षन्त आशता—ऽत्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ९ ६५६

॥ ७३ ॥ (ऋ ९ । ७४ । १—९) (६५७—६६५) कक्षीवान् दैर्घतमस । जगती, ८ त्रिष्टुप् ।

शिशुर्न जातोऽव चक्रदद् वने स्व१र्यद् वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः १
दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः २
महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधू—र्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते ।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषा ऽपां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः ३
आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते ।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ४ ६६०
अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं१ मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ५
सहस्रधारेऽव ता असश्चत—स्तृतीये सन्तु रजसि प्रजावतीः ।
चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवो हविर्भरन्त्यमृतं घृतश्चुतः ६ ६६१

श्वेतं रूपं कृणुते यत् सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः ।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद् दिवस्कवन्धमव दर्षदुद्रिणम् ७
अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत् ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ८
अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसोऽव्यो वारं वि पवमान धावति ।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तम स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये ९ ६६५

॥ ७४ ॥ (ऋ ९ । ७५ । १-५)(६६६-६७०) कविर्भार्गवः । जगती ।

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद् विचक्षणः १
ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं नाम तृतीयमधि रोचने दिवः २
अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये ।
अभीमृतस्य दोहना अनूषताऽधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ३
अद्रिभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन् रोदसी मातरा शुचिः ।
रोमाण्यव्या समया वि धावति मधोर्धारा पिन्वमाना दिवेदिवे ४
परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभिः पुनानो अभि वासयाशिरम् ।
ये ते मदा आहनसो विहायसस्तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम् ५ ६७०

॥ ७५ ॥ (ऋ ९ । ७६ । १—५)

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा १
शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन् रथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः २
इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया न वाजाँ उप मासि शश्वतः ३
विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृश ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत् ।
यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः ४
वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत् ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः ५ ६७५

॥ ७६ ॥ (ऋ ९ । ७७ । १—५)

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रद—दिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः ।
अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः १
स पूर्व्यः पवते यं दिवस्परि श्येनो मथायदिषितस्तिरो रजः ।
स मध्व आ युवते वेविजान इत् कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा २
ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते ।
ईक्षेण्यासो अह्यो न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ३
अयं नो विद्वान् वनवद् वनुष्यत इन्दुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः ।
इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ४
चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते ।
असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियो ऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ५ ६८०

॥ ७७ ॥ (ऋ ९ । ७८ । १—५)

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यद—दपो वसानो अभि गा इयक्षति ।
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् १
इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभि—र्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने ।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः २
समुद्रिया अप्सरसो मनीषिण—मासीना अन्तरभि सोममक्षरन् ।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ३
गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित् स्वर्जिदब्जित् पवते सहस्रजित् ।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ४
एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन् द्रविणान्यर्षसि ।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वीं गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ५ ६८१

॥ ७८ ॥ (ऋ ९ । ७९ । १—५)

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः ।
वि च नशन् न इषो अरातयो ऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः १
प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि ।
तिरो मर्तस्य कस्य चित् परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि २ ६८२

उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः ।
धन्वन् न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ३
दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्य१प्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ४
एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः ।
निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ५ ६९०

॥ ७९ ॥ (ऋ ९ । ८० । १—५) (६९१—७०५) वसुर्भारद्वाजः ।

सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान् हवते दिवस्परि ।
बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो न सवनानि विव्यचुः १
यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषता ऽयोहतं योनिमा रोहसि द्युमान् ।
मघोनामायुः प्रतिरन् महि श्रव इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः २
एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमङ्गलः ।
प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन् हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ३
तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः
नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः सुतो विश्वान् देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित् ४
तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रिभि र्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः ।
इन्द्रं सोम मादयन् दैव्यं जनं सिन्धोरिवोर्मिः पवमानो अर्षसि ५ ६९५

॥ ८० ॥ (ऋ. ९ । ८१ । १—५) जगती, ५ त्रिष्टुप् ।

प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः ।
दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः १
अच्छा हि सोमः कलशाँ असिष्यद दत्यो न वोळ्हा रघुवर्तनिर्वृषा ।
अथा देवानामुभयस्य जन्मनो विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत् २
आ नः सोम पवमानः किरा व स्विन्दो भव मघवा राधसो महः ।
शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना मा नो गयमारे अस्मत् परा सिचः ३
आ नः पूषा पवमानः सुरातयो मित्रो गच्छन्तु वरुणः सजोषसः ।
बृहस्पतिर्मरुतो वायुरश्विना त्वष्टा सविता सुयमा सरस्वती ४
उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे अर्यमा देवो अदितिर्विधाता ।
भगो नृशंस उर्व१न्तरिक्षं विश्वे देवाः पवमानं जुषन्त ५ ७००

॥ ८१ ॥ (ऋ ९ । ८२ । १—५) जगती ।

असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारं पर्येत्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदम् १
कविर्वेधस्या पर्येषि माहिन—मत्यो न मृष्टो अभि वाजमर्षसि ।
अपसेधन् दुरिता सोम मृळय घृतं वसानः परि यासि निर्णिजम् २
पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उतासरन् त्सं ग्रावभिर्नसते वीते अध्वरे ३
जायेव पत्यावधि शेव मंहसे पज्राया गर्भ शृणुहि ब्रवीमि ते ।
अन्तर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसेऽनिन्द्यो वृजने सोम जागृहि ४
यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो ।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते ५ ७०५

॥ ८२ ॥ (ऋ. ९।८३।१—५) (७०६—७१०) पवित्र आङ्गिरसः ।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद् वहन्तस्तत् समाशत १
तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा २
अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ३
गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः ।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ४
हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम् ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ५ ७१०

॥ ८३ ॥ (ऋ ९ । ८४ । १-५) (७११-७१५) वाच्य प्रजापतिः ।

पवस्व देवमादनो विचर्षणि—रप्सा इन्द्राय वरुणाय वायवे ।
कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिम—दुरुक्षितौ गृणीहि दैव्यं जनम् १
आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति ।
कृण्वन्त्संचृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः २ ७१२

आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः ।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन् दैव्यं जनम् ३
एष स्य सोमः पवते सहस्रजि—द्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम् ।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभि—रेन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति ४
अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम् ।
धनंजयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ५ ७२५

॥ ८४ ॥ (ऋ ९ । ८५ । १—१२) (७२६— ७३७) वेनो भार्गवः । जगती, ११—१२ त्रिष्टुप् ।

इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवा—ऽपामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः १
अस्मान्त्समर्ये पवमान चोदय दक्षो देवानामसि हि प्रियो मदः ।
जहि शत्रूँरभ्या भन्दनायतः पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि २
अदब्ध इन्दो पवसे मदिन्तम आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तमः ।
अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते ३
सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु ।
जयन् क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ४
कनिक्रदत् कलशे गोभिरज्यसे व्य१व्ययं समया वारमर्षसि ।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसि—रिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ५ ७३०
स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने ।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ६
अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते ।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुति—मेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः ७
पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्य—मुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः ।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशते—न्दो जयेम त्वया धनंधनम् ८
अधि द्यामस्थाद् वृषभो विचक्षणो ऽरूरुचद् वि दिवो रोचना कविः ।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद् दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ९
दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ १० ७३५

*

नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः ।
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ११
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद् विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत् प्रारूरुचद् रोदसी मातरा शुचिः १२ ७२७

॥ ८५ ॥ (ऋ ९ । ८६ । १—४८)

(७२८—७७५) १—१० अकृष्टा माषाः, ११—२० सिकता निवावरी, २१—३० पृश्नयोऽजाः, ३१-४० अकृष्टामाषादयस्त्रयः, ४१—४५ भौमोऽत्रिः, ४६—४८ गृत्समदः शौनकः । जगती ।

प्र त आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना ।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते १
प्र ते मदासो मदिरास आशवो ऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक् ।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिण मिन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः २
अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष स्वर्वित् कोशं दिवो अद्रिमातरम् ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे ३ ७३०
प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवो दिव्या असृग्रन् पयसा धरीमणि ।
प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ४
विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ५
उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ६
यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतम् ।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ७
राजा समुद्रं नद्यो वि गाहते ऽपामूर्मिं सचते सिन्धुषु श्रितः ।
अध्यस्थात् सानु पवमानो अव्ययं नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ८ ७३५
दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदद् द्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः ।
इन्द्रस्य सख्यं पवते विवेविदत् सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ९
ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः १० ७३७

अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ११
अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्ष—त्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छति ।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा १२
अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितो ऽव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा ।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते १३ ७४०
द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृश—मन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः ।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत् प्रत्नमस्य पितरमा विवासति १४
सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे ।
पदं यदस्य परमे व्योमन् यतो विश्वा अभि सं याति संयतः १५
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा १६
प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः ।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभो ऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः १७
आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिष—मिन्दो पवस्व पवमानो अस्रिधम् ।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद् वाजवन्मधुमत् सुवीर्यम् १८ ७४५
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः ।
क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवश—दिन्द्रस्य हार्द्याविशन् मनीषिभिः १९
मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कवि—र्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत् ।
त्रितस्य नाम जनयन् मधु क्षर—दिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे २०
अयं पुनान उषसो वि रोचय—दयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः २१
पवस्व सोम दिव्येषु धामसु सृजान इन्दो कलशे पवित्र आ ।
सीदन्निन्द्रस्य जठरे कनिक्रद—न्नृभिर्यतः सूर्यमारोहयो दिवि २२
अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन् ।
त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप २३ ७५०

त्वां सोम पवमानं स्वाध्यो ऽनु विप्रासो अमदन्नवस्यवः ।
त्वां सुपर्ण आभरद् दिवस्परी—न्दो विश्वाभिर्मतिभिः परिष्कृतम् २४
अव्ये पुनानं परि वार ऊर्मिणा हरिं नवन्ते अभि सप्त धेनवः ।
अपामुपस्थे अध्यायवः कवि—मृतस्य योना महिषा अहेषत २५
इन्दुः पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन्त्सुपथानि यज्यवे ।
गाः कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कवि—रत्यो न क्रीळन् परि वारमर्षति २६
असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः ।
क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः २७
तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतस—स्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्दो प्रथमो धामधा असि २८ ७५५
त्वं समुद्रो असि विश्ववित् कवे तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः २९
त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे ।
त्वामुशिजः प्रथमा अगृभ्णत तुभ्येमा विश्वा भुवनानि येमिरे ३०
प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम् ३१
स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ३२
राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत् ।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ३३ ७६०
पवमान मह्यर्णो वि धावसि सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया ।
गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो महे वाजाय धन्याय धन्वसि ३४
इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।
इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो दिवो विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ३५
सप्त स्वसारो अभि मातरः शिशुं नवं जज्ञानं जेन्यं विपश्चितम् ।
अपां गन्धर्वं दिव्यं नृचक्षसं सोमं विश्वस्य भुवनस्य राजसे ३६
ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः ।
तास्ते क्षरन्तु मधुमद् घृतं पय—स्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ३७ ७६१

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः   पवमान वृषभ ता वि धावसि।
स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्   वयं स्याम भुवनेषु जीवसे   ३८   ७६५
गोवित् पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्   रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्   तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते   ३९
उन्मध्व ऊर्मिर्वननो अतिष्ठिप—दपो वसानो महिषो वि गाहते।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत्   सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत्   ४०
स भन्दना उदियर्ति प्रजावती—र्विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि।
ब्रह्म प्रजावद् रयिमश्वपस्त्यं   पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात्   ४१
सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः   प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः।
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते   नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि   ४२
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते   क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं   हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते   ४३   ७७०
विपश्चिते पवमानाय गायत   मही न धारात्यन्धो अर्षति।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वच—मत्यो न क्रीळन्नसरद् वृषा हरिः   ४४
अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते   विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो   ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः   ४५
असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मदः   परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं   गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः   ४६
प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः   पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः।
यद् गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ   सुवानः सोम कलशेषु सीदसि   ४७
पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्यो ऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियम्।
जहि विश्वान् रक्षस इन्दो अत्रिणो   बृहद् वदेम विदथे सुवीराः   ४८   ७७५

॥ ८६ ॥ (ऋ ९। ८७। १-९) (७७६—७९९) उशना काव्यः। त्रिष्टुप्।

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद   नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तो ऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति   १
स्वायुधः पवते देव इन्दु—रशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो   विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः   २   ७७७

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनाना–मृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद् विवेद निहितं यदासा–मपीच्यं गुह्यं नाम गोनाम् ३
एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ४
एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्र–ञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ५ ७८०
परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद् भोजना पूयमानः ।
अथा भर श्येनभृत प्रयांसि रयिं तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ६
एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ७
एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित् सतीरूर्वे गा विवेद ।
दिवो न विद्युत् स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा ८
उत स्म राशिं परि यासि गोना–मिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः ।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ९

॥ ८७ ॥ (ऋ ९ । ८८ । १—८)

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् १ ७८१
स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त २
वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शंभविष्ठः ।
विश्ववारो द्रविणोदा इव त्मन् पूषेव धीजवनोऽसि सोम ३
इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रि–र्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित् ।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ४
अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु ।
जनो न युध्वा महत उपब्दि–रियर्ति सोमः पवमान ऊर्मिम् ५
एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः ।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन् ६ ७९०

शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वा—ऽनभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ७
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ८

॥ ८८ ॥ (ऋ ९ । ८९ । १—७)

प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान् दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारो असदन्न्य१स्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः १
राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास ऋतस्य नावमारुहद् रजिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम् २
सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ३ ७९५
मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम् ।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ४
चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः ।
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनाना—स्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ५
विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य ।
असत् त उत्सो गृणते नियुत्वान् मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ६
वन्वन्नवातो अभि देववीति—मिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व ।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ७ ७९९

॥ ८९ ॥ (ऋ ९ । ९० । १—६) (८००—८०५) वासिष्ठो मैत्रावरुणिः ।

प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः १ ८००
अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधा—माङ्गूषाणामवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून् वि रत्नधा दयते वार्याणि २
शूरग्रामः सर्ववीरः सहावा—ञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्व—षाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ३
उरुगव्यूतिरभयानि कृण्व—न्त्समीचीने आ पवस्वा पुरंधी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्व१र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ४ ८०३

मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम् ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय ५
एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद् दुरिता पवस्व ।
इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६ ८०५

॥ ९० ॥ (ऋ ९ । ९१ । १-६) (८०६—८११) कश्यपो मारीचः ।

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये ऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ १
वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यै- रधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभि- र्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः २
वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः ।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोवि- दध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ३
रुजा दृळ्हा चिद् रक्षसः सदांसि पुनान इन्द ऊर्णुहि वि वाजान् ।
वृश्चोपरिष्टात् तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम् ४
स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुष्षहासो वनुषा बृहन्त- स्तांस्ते अश्याम पुरुकृत् पुरुक्षो ५ ८१०
एवा पुनानो अपः स्वर्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि ।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ्नः सूर्यं दृशये रिरीहि ६

॥ ९१ ॥ (ऋ ९ । ९२ । १—६)

परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न सर्जि सनये हियानः ।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति देवाँ अजुषत प्रयोभिः १
अच्छा नृचक्षा असरत् पवित्रे नाम दधानः कविरस्य योनौ ।
सीदन् होतेव सदने चमूषू- पेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः २
प्र सुमेधा गातुविद् विश्वदेवः सोमः पुनानः सद एति नित्यम् ।
भुवद् विश्वेषु काव्येषु रन्ता ऽनु जनान् यतते पञ्च धीराः ३
तव त्ये सोम पवमान निण्ये विश्वे देवास्त्रय एकादशासः ।
दश स्वधाभिरधि सानो अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त यह्वीः ४ ८१५
तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारवः संनसन्त ।
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोकं प्रावन्मनुं दस्यवे करभीकम् ५ ८१६

परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः ।
सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत् सीदन् मृगो न महिषो वनेषु ६ ८१७

॥ ९२ ॥ (ऋ. ९ । ९३ । १-५) (८१८-८२२) नोधा गौतमः ।

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी १
सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः २
उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ३ ८२०
स नो देवेभिः पवमान रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः ।
रथिरायतामुशती पुरंधिरस्मद्र्यगा दावने वसूनाम् ४
नू नो रयिमुप मास्व नृवन्तं पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम् ।
प्र वन्दितुरिन्दो तार्यायुः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ५ ८२२

॥ ९३ ॥ (ऋ ९ । ९४ । १-५) (८२३-८२७) कण्वो घौरः ।

अधि यदस्मिन् वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयन् व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म १
द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् २
परि यत् कविः काव्या भरते शूरो न रथो भुवनानि विश्वा ।
देवेषु यशो मर्ताय भूषन् दक्षाय रायः पुरुभूषु नव्यः ३ ८२५
श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो दधाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायन् भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ ४
इषमूर्जमभ्यर्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ५ ८२७

॥ ९४ ॥ (ऋ ९ । ९५ । १-५) (८२८-८३२) प्रस्कण्वः काण्वः ।

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन् वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः १ ८२८

*

हरिः सृजानः पथ्यामृतस्ये—यर्ति वाचमरितेव नावम् ।
देवो देवानां गुह्यानि नामा—ऽऽविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे २
अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चा ऽऽ च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ३ ८३०
तं मर्मृजानं महिषं न सानौ—वंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ४
इष्यन् वाचमुपवक्तेव होतुः पुनान इन्दो वि ष्या मनीषाम्
इन्द्रश्च यत् क्षयथः सौभगाय सुवीर्यस्य पतयः स्याम ५ ८३२

॥ ९५ ॥ (ऋ. ९।९६।१—२४) (८३३—८५६) दैवोदासिः प्रतर्दनः ।

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते १
समस्य हरिं हरयो मृजन्त्य—श्वहयैरनिशितं नमोभिः ।
आ तिष्ठति रथमिन्द्रस्य सखा विद्वाँ एना सुमतिं यात्यच्छ २
स नो देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इन्द्रपानः ।
कृण्वन्नपो वर्षयन् द्यामुतेमा—मुरोरा नो वरिवस्या पुनानः ३ ८३५
अजीतयेऽहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।
तदुशन्ति विश्व इमे सखाय—स्तदहं वश्मि पवमान सोम ४
सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ५
ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीना—मृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ६
प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धु—र्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन् वृजनेमावरा—ण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ७
स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष ।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनी—ष्यंशोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ८ ८४०
परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दु—र्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ९ ८४१

स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद् गातुं ब्रह्मणे पूयमानः १०
त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ११
यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि १२
पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावा ऽपो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवान्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः १३ ८४५
वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ ।
सं सिन्धुभिः कलशे वावशानः समुस्रियाभिः प्रतिरन् न आयुः १४
एष स्य सोमो मतिभिः पुनानो ऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः ।
पयो न दुग्धमदितेरिषिर—मुर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा १५
स्वायुधः सोतृभिः पूयमानो ऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्या ऽभि वायुमभि गा देव सोम १६
शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन् त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् १७
ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन् त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् १८ ८५०
चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति १९
मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानो ऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् ।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन् कनिक्रदच्चम्वो३रा विवेश २०
पवस्वेन्दो पवमानो महोभिः कनिक्रदत् परि वाराण्यर्ष ।
क्रीळञ्चम्वो३रा विश पूयमान इन्द्रं ते रसो मदिरो ममत्तु २१
प्रास्य धारा बृहतीरसृग्र—न्नक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश ।
साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित् क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् २२
अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून् प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः ।
सीदन् वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता २३ ८५५

आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्व—चिक्रदत् कलशे देवयूनाम् २४ ८५६

॥ ९६ ॥ (ऋ ९ । ९७ । १—५८)

(८५७—९१४) १—३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, ४-६ वासिष्ठ इन्द्रप्रमति , ७—९वासिष्ठो वृषगणः, १०—१२ वासिष्ठो मन्युः,१३-१५ वासिष्ट उपमन्युः, १६-१८ वासिष्ठो व्याघ्रपाद्, १९-२१ वासिष्ठः शक्तिः, २२—२४ वासिष्ठः कर्णश्रुद्, २५—२७ वासिष्ठो मृळीकः, २८—३० वासिष्ठो वसुक्रः, ३१—४४ पराशर शाक्त्यः, ४५—५८ कुत्स आङ्गिरसः।

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमान्ति होता १
भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ २
समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३
प्र गायताभ्यर्चाम देवान् त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवाते अति वारमव्य—मा सीदाति कलशं देवयुर्नः ४ ८६०
इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन् त्सहस्रधारः पवते मदाय ।
नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्व—मगन्निन्द्रं महते सौभगाय ५
स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इन्द्रं मदो गच्छतु ते भराय ।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६
प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ७
प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छा—मादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आङ्गूष्यं१ पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम् ८
स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ९ ८६५
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन् मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यराती—र्वरिवः कृण्वन् वृजनस्य राजा १०
अध धारया मध्वा पृचान—स्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ११ ८६७

अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये १२
वृषा शोणो अभिकनिक्रदद् गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम् १३
रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमानः संतनिमेषि कृण्व—न्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः १४ ८७०
एवा पवस्व मदिरो मदायो—दग्राभस्य नमयन् वधस्नैः ।
परि वर्ण भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः १५
जुष्टी न इन्दो सुपथा सुगा—न्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।
घनेव विष्वग् दुरितानि विघ्न—न्नधि ष्णुना धन्व सानो अव्ये १६
वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नु—मिळावतीं शंगयीं जीरदानुम् ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन् बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून् १७
ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् १८
जुष्टो मदाय देवतात इन्दो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ।
सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये १९ ८७५
अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न ससृजानास आजौ ।
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै २०
एवा न इन्दो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु ।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् २१
तक्षद् यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदीमायन् वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् २२
प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद् वृजन्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम २३
पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम् ।
द्विता भुवद् रयिपती रयीणा—मृतं भरत् सुभृतं चार्विन्दुः २४ ८८०
अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छे—न्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित् पुनानः २५ ८८१

देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः क्षयं सुवीरं धन्वन्तु सोमाः ।
आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा होतारो न दिवियजो मन्द्रतमाः २६
एवा देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरसे देवपानः ।
महश्चिद्धि ष्मसि हिताः समर्ये कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः २७
अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो २८
शतं धारा देवजाता असृग्रन् त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुरएतासि महतो धनस्य २९ ८८५
दिवो न सर्गा अससृग्रमह्नां राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम् ३०
प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन् वारान् यत् पूतो अत्येष्यव्यान् ।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ३१
कनिक्रददनु पन्थामृतस्य शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान् हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम् ३२
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम पिन्वन् धाराः कर्मणा देववीतौ ।
एन्दो विश कलशं सोमधानं क्रन्दन्निहि सूर्यस्योप रश्मिम् ३३
तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ३४ ८९०
सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।
सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ३५
एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ३६
आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ३७
स पुनान उप सूरे न धातोभे अप्रा रोदसी वि ष आवः ।
प्रिया चिद् यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ३८
स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ३९ ८९५

अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्म—ञ्जनयन् प्रजा भुवनस्य राजा ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत् सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ४०
महत् तत् सोमो महिषश्चकारा—ऽपां यद् गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजो ऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ४१
मत्सि वायुमिष्टये राधसे च मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ४२
ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्ता ऽपामीवां बाधमानो मृधश्च ।
अभिश्रीणन् पयः पयसाभि गोना—मिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ४३
मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च ।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ४४ १००
सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।
आ योनिं वन्यमसदत् पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत् समद्भिः ४५
एष स्य ते पवत इन्द्र सोम—श्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ४६
एष प्रत्नेन वयसा पुनान—स्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ४७
नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ४८
अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठा—मभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ४९ १०५
अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षा—ऽभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्या ऽभ्यश्वान् रथिनो देव सोम ५०
अभी नो अर्ष दिव्या वसू—न्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः
अभि येन द्रविणमश्नवामा—ऽभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ५१
अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित् तकवे नरं दात् ५२
उत न एना पवया पवस्वा—ऽधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद् रणाय ५३ १०९

महीमे अस्य वृषनाम शूषे माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे ।
अस्वापयन्निगुतः स्नेहयच्चाऽपामित्राँ अपाचितो अचेतः ५४ ९१०
सं त्री पवित्रा विततान्येष्यन्वेकं धावसि पूयमानः ।
असि भगो असि दात्रस्य दाताऽसि मघवा मघवद्भ्य इन्दो ५५
एष विश्ववित् पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
द्रप्साँ ईरयन् विदथेष्विन्दुर्वि वारमव्यं समयाति याति ५६
इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ५७
त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ५८ ९१४

॥ ९७ ॥ (ऋ ९ । ९८ । १-१२)

(९१५-९२६) अम्बरीषो वार्षागिरः, ऋजिश्वा भारद्वाजश्च । अनुष्टुप्, ११ बृहती ।

अभि नो वाजसातमं रयिमर्ष पुरुस्पृहम् । इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभ्वासहम् १ ९१५
परि ष्य सुवानो अव्ययं रथे न वर्माव्यत । इन्दुरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षाः २
परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः । धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ३
स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे । इन्दो सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि ४
वयं ते अस्य वृत्रहन् वसो वस्वः पुरुस्पृहः । नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो ५
द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम् । प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम् ६ ९२०
परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण । यो देवान् विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति ७
अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम् । यः सूरिषु श्रवो बृहद् दधे स्वर्ण हर्यतः ८
स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी । देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन् तं तुविष्वणि ९
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे । नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे १०
ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन् । अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ११ ९२५
तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः । अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् १२ ९२६

॥ ९८ ॥ (ऋ ९ । ९९ । १-८) (९२७-९३४) रेभसूनू काश्यपौ । अनुष्टुप्, १ बृहती ।

आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम् । शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः १
अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते । यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे २
तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः । यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ३
तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत । उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ४ ९३०

तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम् । दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ५
स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति । पशौ न रेत आदधत् पतिर्वचस्यते धियः ६
स मृज्यते सुकर्मभि- र्देवो देवेभ्यः सुतः । विदे यदासु संददि- र्महीरपो वि गाहते ७
सुत इन्दो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे । इन्द्राय मत्सरिन्तम- श्चमूष्वा नि षीदसि ८ ९३४

॥ ९९ ॥ (ऋ. ९ । १०० । १—९) (९३५—९४३) रेभसूनू काश्यपौ । अनुष्टुप् ।

अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः १ ९३५
पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् । त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे २
त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः । त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ३
परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति । रंहमाणा व्यव्ययं वारं वाजीव सानसिः ४
क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ५
पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः । इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ६ ९४०
त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः । वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ७
पवमान महि श्रव- श्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः । शर्धन् तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ८
त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे । प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ९ ९४३

॥ १०० ॥ (ऋ ९ । १०१ । १—१६)

(९४४—९५९) १—३ अन्धीगुः श्यावाश्वि , ४-६ ययातिर्नाहुषः, ७—९ नहुषो मानवः, १०—१२ मनुः सांवरणः, १३-१६ वैश्वामित्रो वाच्यो वा प्रजापति । अनुष्टुप्, १—३ गायत्री ।

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे । अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् १
यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः । इन्दुरश्वो न कृत्व्यः २ ९४५
तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया । यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः ३
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः । पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ४
इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् । वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ५
सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः । सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ६
अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति । पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद् रोदसी उभे ७ ९५०
समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः । सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ८
य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् । यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ९
सोमाः पवन्त इन्दवो ऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः । मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः १०
सुष्वाणासो व्यद्रिभि- श्चिताना गोरधि त्वचि । इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः ११ ९५४

*

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः । सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते १२ ९५५
प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद् वचः । अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः १३
आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः । सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् १४
स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी । हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् १५
अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि । कनिक्रदद् वृषा हरि—रिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ९५९

॥ १०१ ॥ (ऋ ९ । १०२ । १—८) (९६०—९६७) त्रित आप्त्यः उष्णिक् ।

क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् । विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता १ ९६०
उप त्रितस्य पाष्योरभक्त यद् गुहा पदम् । यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् २
त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम् । मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ३
जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये । अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ४
अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः । स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ५
यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन् । कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ६ ९६५
समीचीने अभि त्मना यह्वी ऋतस्य मातरा । तन्वाना यज्ञमानुषग् यदञ्जते ७
क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभि—र्ऋणोरप व्रजं दिवः । हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ८ ९६७

॥ १०२ ॥ (ऋ ९ । १०३ । १—६) (९६८—९७३) द्वित आप्त्यः ।

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम् । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते १
परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति । त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः २
परि कोशं मधुश्चुत—मव्यये वारे अर्षति । अभि वाणीरृषीणां सप्त नूषत ३ ९७०
परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः । सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः ४
परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम् । पुनानो वाघद् वाघद्भिरमर्त्यः ५
परि सप्तिर्न वाजयु—र्देवो देवेभ्यः सुतः । व्यानशिः पवमानो वि धावति ६ ९७३

॥१०३॥ (ऋ ९।१०४।१-६) (९७४—९८५) पर्वतनारदौ काण्वौ, काश्यपौ शिखण्डिन्यावप्सरसौ वा ।

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये १
समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् । देवाव्यं मदमभि द्विशवसम् २ ९७५
पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये । यथा मित्राय वरुणाय शंतमः ३
अस्मभ्यं त्वा वसुविद—मभि वाणीरनूषत । गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ४
स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि । सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ५
सनेमि कृध्यस्मदा रक्षसं कं चिदत्रिणम् । अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ६ ९७९

॥ १०४ ॥ (ऋ ९ । १०५ । १—६)

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः १ ९८०
सं वत्स इव मातृभि रिन्दुर्हिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः २
अयं दक्षाय साधनो ऽयं शर्धाय वीतये । अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ३
गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धन्व । शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ४
स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः । सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ५
सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कं चिदत्रिणम् । साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ६ ९८५

॥१०५॥(ऋ ९।१०६।१-१४) (९८६-९९९)१-३,१०-१४अग्निश्चाक्षुषः,४-६चक्षुर्मानव ७-९मनुराप्सव ।

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः १
अयं भराय सानसि रिन्द्राय पवते सुतः । सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे २
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम् । वज्रं च वृषणं भरत् समप्सुजित् ३
प्र धन्वा सोम जागृवि रिन्द्रायेन्दो परि स्रव । द्युमन्तं शुष्ममा भरा स्वर्विदम् ४
इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः । सहस्रयामा पथिकृद् विचक्षणः ५ ९९०
अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः । सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत् ६
पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ७
तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः । त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ८
आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् । वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ९
सोमः पुनान ऊर्मिणा ऽव्यो वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् १० ९९५
धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम् । अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ११
असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः । पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् १२
पवते हर्यतो हरि रति ह्वरांसि रंह्या । अभ्यर्षन्त्स्तोतृभ्यो वीरवद् यशः १३
अया पवस्व देवयु र्मधोर्धारा असृक्षत । रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः १४ ९९९

॥ १०६ ॥ (ऋ ९।१०७।१—२६)

(१०००—१०२५) सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगण, ४ भौमोऽत्रि, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः) । प्रगाथः =(१, ४, ६, ८—१०, १२, १४, १७ बृहती, २, ५, ७, ११, १३, १५, १८ सतोबृहती); ३, १६ द्विपदा विराट्, १९—२६ प्रगाथः =, विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्व१न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः १ १०००

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवा ऽदब्धः सुरभिंतरः ।
सुते चित् त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् २
परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ३
पुनानः सोम धारया ऽपो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीद स्युत्सो देव हिरण्ययः ४
दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ५
पुनानः सोम जागृवि रव्यो वारे परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ६ १००५
सोमो मीढ्वान् पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ७
सोम उ षुवाणः सोतृभि रधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ८
अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन् मन्दी मदाय तोशते ९
आ सोम सुवानो अद्रिभि स्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे १०
स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ११ १०१०
प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृवि रच्छा कोशं मधुश्चुतम् १२
आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः १३
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः १४
तरत् समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् १५
नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रियः १६ १०१५

इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः १७
पुनानश्चमू जनयन् मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।
अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन् वनेष्वव्यत १८
तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधींरति ताँ इहि १९
उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम २०
मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि २१ १०२०
मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि २२
पवस्व वाजसातयेऽभि विश्वानि काव्या ।
त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारयो देवेभ्यः सोम मत्सरः २३
स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्मभिः ।
त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः २४
पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च २५
अपो वसानः परि कोशमर्षतीन्दुर्हियानः सोतृभिः ।
जनयञ्ज्योतिर्मन्दना अवीवशद् गाः कृण्वानो न निर्णिजम् २६ १०२५

॥ १०७ ॥ (ऋ. ९ । १०८ । १—१६)

(१०२६—१०४१) १—२ गौरिवीति शाक्त्यः, ३, १४-१६ शक्तिर्वासिष्ठ, ४-५ ऊरुराङ्गिरस, ६—७ ऋजिश्वा भारद्वाजः, ८-९ ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरस, १०—११ कृतयशा आङ्गिरसः, १२—१३ ऋणंचयो राजर्षिः । काकुभः प्रगाथः = (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती), १३ यवमध्या गायत्री ।

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः । महि द्युक्षतमो मदः १
यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीता स्वर्विदः ।
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः २
त्वं ह्यङ्ग दैव्या पवमान जनिमानि द्युमत्तमः । अमृतत्वाय घोषयः ३ १०२८

येना नवग्वो दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्यानशुः ४
एष स्य धारया सुतो ऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः । क्रीळन्नूर्मिरपामिव ५ १०३०
य उस्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ६
आ सोता परि षिञ्चता ऽश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् । वनक्रक्षमुदप्रुतम् ७
सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ८
अभि द्युम्नं बृहद् यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुः । वि कोशं मध्यमं युव ९
आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः १० १०३५
एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः । विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ११
वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा १२
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् १३
यस्य न इन्द्रः पिबाद् यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे १४
इन्द्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तमः । पवस्व मधुमत्तमः १५ १०४०
इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः १६ १०४१

॥ १०८ ॥ (ऋ. ९ । १०९ । १—२२) (१०४२–१०६३) अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरय । द्विपदा विराट् ।

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय १
इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥१॥ २
एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ३
पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥२॥ ४ १०४५
शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै ५
दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् वाजी पवस्व ॥३॥ ६
पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ७ १०४८

नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद् विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥४॥ ८
इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद् विश्वानि द्रविणानि नः ९ १०५०
पवस्व सोम क्रत्वे दक्षाया ऽश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥५॥१०
तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ११
शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥६॥१२
इन्दुः पविष्ट चारुर्मदाया ऽपामुपस्थे कविर्भगाय १३
बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥७॥१४ १०५५
पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य १५
प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधार स्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥८॥१६
स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः १७
प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥९॥१८
असर्जि वाजी तिरः पवित्र मिन्द्राय सोमः सहस्रधारः १९ १०६०
अञ्जन्त्येनं मध्वो रसेने न्द्राय वृष्ण इन्दुं मदाय ॥१०॥२०
देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसे ऽपो वसानं हरिं मृजन्ति २१
इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥११॥२२ १०६३

॥ १०९ ॥ (ऋ ९ । ११० । १—१२)

(१०६४ – १०७५) त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः। १—३ पिपीलिकमध्या अनुष्टुप्,
४-९ ऊर्ध्वबृहती, १०-१२ विराट्।

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे १
अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे २ १०६५
अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः।
गोजीरया रंहमाणः पुरंध्या ३
अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ४
अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथो त्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम्।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ५ १०६८

आर्द्रां के चित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत।
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ६

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ७ १०७०

दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद् दिव आ निरधुक्षत।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ८

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना।
यूथे न निःष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ९

सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन् पवमानो अक्षाः।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुः १०

एष पुनानो मधुमाँ ऋतावे-न्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः।
वाजसनिर्वरिवोविद् वयोधाः ११

स पवस्व सहमानः पृतन्यून् त्सेधन् रक्षांस्यप दुर्गहाणि।
स्वायुधः सासह्वान्त्सोम शत्रून् १२ १०७५

॥ ११० ॥ (ऋ ९ । १११ । १—३) (१०७६—१०७८ अनानत पारुच्छेपिः । अत्यष्टिः ।

अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः।
धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः।
विश्वा यद् रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः १

त्वं त्यत् पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे।
परावतो न साम तद् यत्रा रणन्ति धीतयः।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे २

पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत् सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्ये-न्द्रं जैत्राय हर्षयन्।
वज्रश्च यद् भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ३ १०७८

॥ १११ ॥ (ऋ ९ । ११२ । १-४) (१०७९—१०८२) शिशुराङ्गिरसः । पङ्क्तिः ।

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम्।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग् ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छती-न्द्रायेन्दो परि स्रव १ १०७९

जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम्।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभि-र्हिरण्यवन्तमिच्छती-न्द्रायेन्दो परि स्रव २ १०८०
कारुरहं ततो भिष-गुपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवो ऽनु गा इव तस्थिमे-न्द्रायेन्दो परि स्रव ३
अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छती-न्द्रायेन्दो परि स्रव ४ १०८१
॥ ११२ ॥ (ऋ ९। ११३। १—११) (१०८३-१०९७) कश्यपो मारीचः।
शर्यणावति सोम-मिन्द्रः पिबतु वृत्रहा।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन् वीर्यं मह-दिन्द्रायेन्दो परि स्रव १
आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात् सोम मीढ्वः।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव २
पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत्।
तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन् तं सोमे रसमादधु-रिन्द्रायेन्दो परि स्रव ३ १०८५
ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन्।
श्रद्धां वदन्त्सोम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ४
सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्रवन्ति संस्रवाः।
सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परि स्रव ५
यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां३ वाचं वदन्।
ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनय-न्निन्द्रायेन्दो परि स्रव ६
यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम्।
तस्मिन् मां धेहि पवमाना-ऽमृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ७
यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः।
यत्रामूर्यह्वतीराप-स्तत्र माममृतं कृधी-न्द्रायेन्दो परि स्रव ८ १०९०
यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्त-स्तत्र माममृतं कृधी-न्द्रायेन्दो परि स्रव ९
यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधी-न्द्रायेन्दो परि स्रव १०
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामा-स्तत्र माममृतं कृधी-न्द्रायेन्दो परि स्रव ११ १०९३

*

॥ ११३ ॥ (ऋ. ९ । ११४ । १-४)

य इन्दोः पर्वमानस्या—ऽनु धामान्यक्रमीत् ।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव १
ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पति—रिन्द्रायेन्दो परि स्रव २ १०९५
सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।
देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ३
यत् ते राजञ्छृतं हवि—स्तेन सोमाभि रक्ष नः ।
अरातीवा मा नस्तारी—न्मो च नः किं चनाममु—दिन्द्रायेन्दो परि स्रव ४ १०९७

॥ ११४ ॥ (ऋ १ । ४३ । ७—९)

(१०९८—११००) कण्वो घौरः । गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।

अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् । महि श्रवस्तुविनृम्णम् ७
मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त । आ न इन्दो वाजे भज ८
यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ९ ११००

॥ ११५ ॥ (ऋ १ । ९१ । १—२३)

(११०१—११२३) गोतमो राहूगणः । त्रिष्टुप्; ५—१६ गायत्री; १७ उष्णिक् ।

त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः १
त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भू—स्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः २
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद् गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ३
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन् राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ४
त्वं सोमासि सत्पति—स्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ५ ११०५
त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ६ ११०६

त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते । दक्षं दधासि जीवसे ७
त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत् त्वावतः सखा ८
सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ९
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव १० १११०
सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृळीको न आ विश ११
गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव १२
सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य इव स्व ओक्ये १३
यः सोम सख्ये तव रारणद् देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः १४
उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः । सखा सुशेव एधि नः १५ १११५
आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे १६
आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः । भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे १७
सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व १८
या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् १९
सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै २० ११२०
अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम २१
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ २२
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ २३ ११२३

॥ ११६ ॥ (ऋ ३।६२।१३—१५)

(११२४—११२६) गाथिनो विश्वामित्रः । गायत्री ।

सोमो जिगाति गातुविद् देवानामेति निष्कृतम् । ऋतस्य योनिमासदम् १३
सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे । अनमीवा इषस्करत् १४ ११२५
अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः । सोमः सधस्थमासदत् १५ ११२६

॥ ११७ ॥ (ऋ ६ । ४७ । १—५)
(११२७-११३१) गर्गो भारद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु १
अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो हन् २
अयं मे पीत उदियर्ति वाच- मयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ३
अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ४ ११३०
अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान् महता स्कम्भने- नोद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान् ५ ११३१

॥ ११८ ॥ (ऋ ७ । १०४ । ९, १२-१३)
(११३२—११३४) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठ ।

ये पाकशंसं विहरन्त एवै- र्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ९
सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीय- स्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत् १२
न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्त- मुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते १३ ११३४

॥ ११९ ॥ (ऋ ८ । ४८ । १—१५)
(११३५—११४९) प्रगाथो घौरः काण्वः । त्रिष्टुप, ५ जगती ।

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधा स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य ।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि संचरन्ति १ ११३५
अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्य- वयाता हरसो दैव्यस्य ।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः २
अपाम सोममृता अभूमा- गन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान् कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ३ ११३७

शं नो भव हृद आ पीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ४
इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु ।
ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रा—दुत मा स्रामाद् यवयन्त्विन्दवः ५
अग्निं न मा मथितं सं दिदीपः प्र चक्षय कृणुहि वस्यसो नः ।
अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवाँ इव प्र चरा पुष्टिमच्छ ६ ११४०
इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।
सोम राजन् प्र ण आयूंषि तारी—रहानीव सूर्यो वासराणि ७
सोम राजन् मृळया नः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्या३स्तस्य विद्धि ।
अलर्ति दक्ष उत मन्युरिन्दो मा नो अर्यो अनुकामं परा दाः ८ ११४२
त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा गात्रेगात्रे निषसत्था नृचक्षाः ।
यत् ते वयं प्रमिनाम व्रतानि स नो मृळ सुषखा देव वस्यः ९
ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः १०
अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा निरत्रसन् तमिषीचीरभैषुः ।
आ सोमो अस्माँ अरुहद् विहाया अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ११ ११४५
यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतो ऽमर्त्यो मर्त्याँ आविवेश ।
तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृळीके अस्य सुमतौ स्याम १२
त्वं सोम पितृभिः संविदानो ऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् १३
त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः ।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम १४
त्वं नः सोम विश्वतो वयोधा—स्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः ।
त्वं न इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् १५ ११४९

॥ १२० ॥ (ऋ ८ । ७९ । १—९)

(११५०—११५८) कृत्नुर्भार्गवः । गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।

अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित् सोमः। ऋषिर्विप्रः काव्येन १ ११५०
अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत् तुरम् । प्रेमन्धः ख्यान्निः श्रोणो भूत् २ ११५१

त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः। उरु यन्तासि वरूथम् ३
त्वं चित्ती तव दक्षै-र्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन् । यावीरघस्य चिद् द्वेषः ४
अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद् ददुषो रातिम् । ववृज्युस्तृष्यतः कामम् ५
विदद् यत् पूर्व्यं नष्ट-मुदीमृतायुमीरयत् । प्रेमायुस्तारीदतीर्णम् ६ ११५५
सुशेवो नो मृळयाकु-रदृप्तक्रतुरवातः । भवा नः सोम शं हृदे ७
मा नः सोम सं वीविजो मा वि बीभिषथा राजन् । मा नो हार्दि त्विषा वधीः ८
अव यत् स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे ।
राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्रिधः सेध ९ ११५८

॥ १२१ ॥ (ऋ. ८ । १०१ । १४)

(११५९) जमदग्निर्भार्गवः । त्रिष्टुप् ।

प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयु-र्न्यन्या अर्कमभितो विविश्रे ।
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश १ ११५९

॥ १२२ ॥ (ऋ. १० । २५ । १-११)

(११६०-११७०) ऐन्द्रो विमद, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । आस्तारपङ्क्तिः।

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन् गावो न यवसे विवक्षसे १ ११६०
हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे वि तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे २
उत व्रतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।
अधा पितेव सूनवे वि वो मदे मृळा नो अभि चिद् वधाद् विवक्षसे ३
समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँ इव ।
क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ४
तव त्ये सोम शक्तिभि-र्निकामासो व्यृण्विरे ।
गृत्सस्य धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ५
पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत् ।
समाकृणोषि जीवसे वि वो मदे विश्वा संपश्यन् भुवना विवक्षसे ६ ११६५
त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव ।
सेध राजन्नप स्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ७ ११६६

त्वं नः सोम सुक्रतु—र्वयोधेयाय जागृहि ।
क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ८
त्वं नो वृत्रहन्तमे—न्द्रस्येन्दो शिवः सखा ।
यत् सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे ९
अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।
अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद् विवक्षसे १०
अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः ।
अयं सप्तभ्य आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद् विवक्षसे ११ ११७०

॥ १२३ ॥ (ऋ. १० । ८५ । १-५)

(११७१—११७५) सूर्या सावित्री ऋषिका । अनुष्टुप् ।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः १
सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषा—मुपस्थे सोम आहितः २
सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदु—र्न तस्याश्नाति कश्चन ३
आच्छद् विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ४
यत् त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ५ ११७५

॥ १२४ ॥ (अथर्व० ३ । ५ । १-८)

(११७६--११८६) अथर्वा । अनुष्टुप्, १ पुरोऽनुष्टुप्त्रिष्टुप्, ४ त्रिष्टुप्, ८ विराडुरोबृहती ।

आयमगन् पर्णमणिर्बली बलेन प्रमृणन्त्सपत्नान् ।
ओजो देवानां पय ओषधीनां वर्चसा मा जिन्वत्वप्रयावन् १
मयि क्षत्रं पर्णमणे मयि धारयताद् रयिम् ।
अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः २
यं निदधुर्वनस्पतौ गुह्यं देवाः प्रियं मणिम् ।
तमस्मभ्यं सहायुषा देवा ददतु भर्तवे ३ ११७८

सोमस्य पर्णः सह उग्रमाग — न्निन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः ।
तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ४

आ मारुक्षत् पर्णमणि — र्मह्या अरिष्टतातये ।
यथाहमुत्तरोऽसा — न्यर्यम्ण उत संविदः ५ ११८०

ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः ।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ६

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये ।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान् ७

पर्णोऽसि तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया ।
संवत्सरस्य तेजसा तेन बध्नामि त्वा मणे ८ ११८३

॥ १२५ ॥ (अथर्व० ५ । २४ । ७) अतिशाकरी ।

सोमो वीरुधामधिपतिः स मावतु ।
अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां
चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ७ ११८४

॥ १२६ ॥ (अथर्व० ६ । ६ । २—३) अनुष्टुप् ।

यो नः सोम सुशंसिनो दुःशंस आदिदेशति ।
वज्रेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति २ ११८५

यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अप तस्य बलं तिर महीव द्यौर्वधत्मना ४ ११८६

॥ १२७ ॥ (अथर्व० ५ । ३ । ७) (११८७) बृहद्दिवोऽथर्वा । त्रिष्टुप् ।

तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत प्रजायै नस्तन्वे३ यच्च पुष्टम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभि — र्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ७ ११८७

॥ १२८ ॥ (अथर्व० ४ । ४० । ४) (११८८) शुक्रः । त्रिष्टुप् ।

य उत्तरतो जुह्वति जातवेद उदीच्या दिशोऽभिदासन्त्यस्मान् ।
सोममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि ४ ११८८

॥ १२९ ॥ (अथर्व० ५ । २६ । १०) (११८९) ब्रह्मा । द्विपदा प्राजापत्या बृहती ।

सोमो युनक्तु बहुधा पयां — स्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा १० ११८९

॥ १३० ॥ (अथर्व० ६ । ८९ । १) (११९०) अथर्वा । अनुष्टुप् ।

इदं यत् प्रेण्यः शिरो दत्तं सोमेन वृष्ण्यम् ।
ततः परि प्रजातेन हार्दिं ते शोचयामसि १ ११९०

॥ १३१ ॥ (११९१--११९३) (वा० यजु० ४ । १६ उत्तरार्धं, २४, २७)

रास्वेयत् सोमा भूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् १६
एष ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भाग इति मे सोमाय
ब्रूतादेष ते जागतो भाग इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाꣳ साम्राज्यं गच्छेति
मे सोमाय ब्रूतादास्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा विचिन्वन्तु २४
मित्रो न एहि सुमित्रध इन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्तꣳ स्योनः स्योनम् ।
स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान्
रक्षध्वं मा वो दभन् २७ ११९३

॥ १३२ ॥ (११९४) (वा० यजु० ५ । ७)

अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे ।
आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व ।
आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय ।
एष्टा रायः प्रेषे भगाय ऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ७ ११९४

॥ १३३ ॥ (११९५—१२००) (वा० यजु० ६ । २५--२६, ३२--३३, ३५-३६)

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा ।
ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ २५ ११९५
सोम राजन् विश्वास्त्वं प्रजा उपावरोह विश्वास्त्वां प्रजा उपावरोहन्तु ।
शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः ।
श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳ शृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा २६
इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत इन्द्राय त्वादित्यवत इन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने ।
श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ३२
यत् ते सोम दिवि ज्योतिर्यत् पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे ।
तेनास्मै यजमानायोरु राये कृध्यधि दात्रे वोचः ३३
मा भेर्मा संविक्था ऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम् ।
पाप्मा हतो न सोमः ३५ ११९९

*

प्रागपागुदगधराक् सर्वतस्त्वा दिश आधावन्तु ।
अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ३६ ११००

॥ १३४ ॥ (११०१) (वा० यजु० ७ । १४)

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम ।
सा प्रथमा सँस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः १४ ११०१

॥ १३५ ॥ (११०२—११०८) (वा० य० ८ । १, ९, २५-२६, ४८—५०)

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा ।
विष्ण उरुगायैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् १
उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम त
इन्दोरिन्द्रियावतः पत्नीवतो ग्रहाँ२ ऋध्यासम् ।
अहं परस्तादहमवस्ताद् यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत् ।
अहꣳ सूर्यमुभयतो ददर्शाऽहं देवानां परमं गुहा यत् ९
समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा २५
देवीराप एष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतं बिभृत ।
देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छं च वक्ष्व परि च वक्ष्व २६ ११०५
त्रेशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि कुकूननानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि भन्दनानां त्वा
पत्मन्नाधूनोमि मदिन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि मधुन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि
शुक्रं त्वा शुक्र आधूनोम्यह्नो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु ४८
ककुभꣳ रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः ।
यत् ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥४९
उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपी-
ह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि ५० ११०८

॥ १३६ ॥ (११०९) (वा० य० १९ । ७२)

सोमो राजामृतꣳ सुत ऋजीषेणाजहान्मृत्युम् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ७२ ११०९

॥ १३७ ॥ (१२१०) (वा० य० २० । १९)

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः ।
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि
यं च वयं द्विष्मः　　१९　१२१०

॥ १३८ ॥ (१२११-१२१४) (साम० १३००-१३०३)

पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः।
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम् ॥ ३ ॥　　१३००
पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥ ४ ॥　　१३०१
येन देवाः पवित्रेणा—ऽऽत्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण—पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥　　१३०२
पावमानीः स्वस्त्ययनी—स्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षय—त्यमृतत्वं च गच्छति ॥ ६ ॥　　१३०३　१२१४

॥ १३९ ॥ (ऋ १० । १२४ । ६) (१२१५) अग्नि-वरुण-सोमाः । त्रिष्टुप् ।

इदं स्वरिदमिदास वाम—मयं प्रकाश उर्व१न्तरिक्षम् ।
हनाव वृत्रं निरेहि सोम हविष्ट्वा सन्तं हविषा यजाम　　६　१२१५

सोमसहचारी देवगणः ।

(१) सूर्यरोदसीमित्रवरुणरुद्रेंद्राग्न्यर्यमभगसोमाः ।

॥ १४० ॥ (ऋ १ । १३६ । ६) (१२१६) परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टि ।

नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग् जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि　　६　१२१६

(२) सोमापूषणौ, ६ (अन्त्योऽर्धर्चस्य) अदितिः ।

॥ १४१ ॥ (ऋ २ । ४० । १-६)

(१२१७-१२२२) गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गव शौनकः । त्रिष्टुप् ।

सोमा॑पूषणा॒ जन॑ना रयी॒णां जन॑ना दि॒वो जन॑ना पृथि॒व्याः ।
जा॒तौ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पौ दे॒वा अ॑कृण्वन्न॒मृत॑स्य॒ नाभि॑म् १

इ॒मौ दे॒वौ जाय॑मानौ जुषन्ते॒मौ तमां॑सि गूहता॒मजु॑ष्टा ।
आ॒भ्यामिन्द्रः॑ प॒क्वमा॒मास्व॒न्तः सो॑मापू॒षभ्यां॑ जनदु॒स्रिया॑सु २

सोमा॑पूषणा॒ रज॑सो वि॒मानं॑ स॒प्तच॑क्रं॒ रथ॒मवि॑श्वमिन्वम् ।
वि॒षू॒वृतं॒ मन॑सा यु॒ज्यमा॑नं॒ तं जि॑न्वथो वृषणा॒ पञ्च॑रश्मिम् ३

दि॒व्य१॒॑न्यः सद॑नं च॒क्र उ॒च्चा पृ॑थि॒व्याम॒न्यो अध्य॒न्तरि॑क्षे ।
ताव॒स्मभ्यं॑ पुरु॒वारं॑ पुरु॒क्षुं रा॒यस्पोषं॒ वि ष्य॑तां॒ नाभि॑म॒स्मे ४ १२२०

विश्वा॑न्य॒न्यो भुव॑ना ज॒जान॒ विश्व॑म॒न्यो अ॑भि॒चक्षा॑ण एति ।
सोमा॑पूषणा॒वव॑तं॒ धियं॑ मे यु॒वाभ्यां॒ विश्वाः॒ पृत॑ना जयेम ५

धियं॑ पू॒षा जि॑न्वतु विश्व॒मिन्वो॑ र॒यिं सोमो॑ र॒यिप॑ति॒र्द॑धातु ।
अव॑तु दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वा बृ॒हद् व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ६ १२२२

(३) सोमारुद्रौ ।

॥ १४२ ॥ (ऋ. ६ । ७४ । १—४)

(१२२३-२६) भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । त्रिष्टुप् ।

सोमा॑रुद्रा धा॒रये॑थामसु॒र्य१॒॑ प्र वा॑मि॒ष्टयोऽर॑मश्नुवन्तु ।
दमे॑दमे स॒प्त रत्ना॒ दधा॑ना॒ शं नो॑ भूतं द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे १

सोमा॑रुद्रा॒ वि वृ॑हतं॒ विषू॑ची॒ममी॑वा॒ या नो॒ गय॑मावि॒वेश॑ ।
आ॒रे बा॑धेथां॒ निर्ऋ॑तिं परा॒चैर॒स्मे भ॒द्रा सौ॑श्रव॒सानि॑ सन्तु २

सोमा॑रुद्रा यु॒वमे॒तान्य॒स्मे विश्वा॑ त॒नूषु॑ भेष॒जानि॑ धत्तम् ।
अव॑ स्यतं मु॒ञ्चतं॒ यन्नो॒ अस्ति॑ त॒नूषु॑ ब॒द्धं कृ॒तमेनो॑ अ॒स्मत् ३ १२२५

ति॒ग्मायु॑धौ ति॒ग्महे॑ती सु॒शेवौ॒ सोमा॑रुद्रावि॒ह सु मृ॑ळतं नः ।
प्र नो॑ मुञ्चतं॒ वरु॑णस्य॒ पाशा॑द् गोपा॒यतं॑ नः सुमन॒स्यमा॑ना ४ १२२६

(४) ब्राह्मण-पितृ-सोम-द्यावापृथिवी-पूषाणः।

॥ १४३ ॥ (ऋ ६।७५।१०)

(१२२७) पायुर्भारद्वाजः। जगती।

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत १० १२२७

(५) वर्म-सोम-वरुणाः।

॥ १४४ ॥ (१२२८) (ऋ० ६।७५।१८) पायुर्भारद्वाज। त्रिष्टुप्।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु १८ १२२८

(६) अग्नींद्रमित्रावरुणाश्विभगपूषब्रह्मणस्पतिसोमरुद्राः।

॥ १४५ ॥ (ऋ० ७।४१।१)

(१२२९) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। जगती।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम १ १२२९

(७) अङ्गिरःपित्रथर्वभृगुसोमाः।

॥ १४६ ॥ (ऋ. १०।१४।६)

(१२३०) वैवस्वतो यम। त्रिष्टुप्।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियाना—मपि भद्रे सौमनसे स्याम ६ १२३०

(८) आपः सोमो वा।

॥ १४७ ॥ (ऋ. १०।१७।११-१३)

(१२३१-१२३३) देवश्रवा यामायनः। त्रिष्टुप् १३ अनुष्टुप् पुरस्ताद्बृहती वा।

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यू—निमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ११ १२३१

यस्ते॑ द्र॒प्सः स्कन्द॑ति॒ यस्ते॑ अं॒शु—र्बा॒हुच्यु॑तो धि॒षणा॑या उ॒पस्था॑त् ।
अ॒ध्व॒र्योर्वा॒ परि॑ वा॒ यः प॒वित्रा॒त् तं ते॑ जुहोमि॒ मन॑सा॒ वष॑ट्कृतम् १२
यस्ते॑ द्र॒प्सः स्क॒न्नो यस्ते॑ अं॒शु—र॒वश्च॒ यः प॒रः स्रु॒चा ।
अ॒यं दे॒वो बृ॒हस्पति॒ः सं तं सि॑ञ्चतु॒ राध॑से १३ १२३३

(९) अग्नीषोमौ ।

॥ १४८ ॥ (ऋ० १० । १९ । १ उत्तरार्धः)
(१२३४) मथितो यामायनः, भृगुर्वारुणिर्वा, भार्गवश्च्यवनो वा । अनुष्टुप् ।
अग्नी॑षोमा॒ पुन॑र्वसू अ॒स्मे धा॑रयतं र॒यिम् । १ १२३४

॥ १४९ ॥ (अथर्व २ । ३६ । ३)
(१२३५) पतिवेदनः । त्रिष्टुप् ।
इ॒यम॑ग्ने॒ नारी॒ पति॑ं विदेष्ट॒ सोमो॒ हि राजा॑ सु॒भगां॑ कृ॒णोति॑ ।
सु॒वा॒ना पु॒त्रान् महि॑षी भवाति ग॒त्वा पति॑ं सु॒भगा॒ वि रा॑जतु २ १२३५

(१०) निर्ऋतिसोमौ ।

॥ १५० ॥ (ऋ १० । ५९ । ४)
(१२३६) बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः । त्रिष्टुप् ।
मो षु णः॑ सोम मृ॒त्यवे॒ परा॑ दाः॒ पश्ये॑म॒ नु सूर्य॑मु॒च्चर॑न्तम् ।
द्यु॒भिर्हि॒तो ज॑रि॒मा सू नो॑ अस्तु परात॒रं सु निर्ऋ॑ति॒र्जिहीताम् ३ १२३६

(११) पृथिवीद्व्यन्तरिक्षसोमपूषपथ्यास्वस्तयः ।

॥ १५१ ॥ (ऋ १० । ५९ । ७)
(१२३७) बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायना । त्रिष्टुप् ।
पुन॑र्नो॒ असु॑ं पृथि॒वी द॑दातु॒ पुन॒र्द्यौर्दे॒वी पुन॑र॒न्तरि॑क्षम् ।
पुन॑र्न॒ः सोम॑स्त॒न्वं॑ ददातु॒ पुन॑ः पू॒षा प॒थ्यां३ या स्व॒स्तिः ७ १२३७

(१२) सोमार्कौ ।

॥ १५२ ॥ (ऋ १० । ८५ । १८)
(१२३८) सूर्या सावित्री ऋषिका । जगती ।
पू॒र्वा॒प॒रं च॑रतो मा॒ययै॒तौ शिशू॒ क्रीळ॑न्तौ॒ परि॑ यातो अध्व॒रम् ।
विश्वा॑न्य॒न्यो भुव॑नाभि॒चष्ट॑ ऋ॒तूँर॒न्यो वि॒दध॑ज्जायते॒ पुन॑ः १८ १२३८

(१३) सोम-वरुण-बृहस्पति-अनुमति-मघवत्-धातृ-विधातारः।

॥ १५३ ॥ (ऋ. १० । १६७ । ३)

(१२३९) विश्वामित्र-जमदग्नी। जगती।

सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्मणि बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि।
तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ धातर्विधातः कलशाँ अभक्षयम् ३ १२३९

(१४) बृहस्पतिः, अग्नीषोमौ च।

॥ १५४ ॥ (अथर्व० १ । ८ । १-२)

(१२४०-१२४१) चातनः। अनुष्टुप्।

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत्।
य इदं स्त्री पुमानक रिह स स्तुवतां जनः १ १२४०
अयं स्तुवान आगम दिमं स्म प्रति हर्यत।
बृहस्पते वशे लब्ध्वा ऽग्नीषोमा वि विध्यतम् २ १२४१

(१५) अग्निः, आपः, ओषधयः, सोमः।

॥ १५५ ॥ (अथर्व० २ । १० । २)

(१२४२) भृग्वङ्गिराः। सप्तपदाष्टिः।

शं ते अग्निः सहाद्भिरस्तु शं सोमः सहौषधीभिः।
एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात्।
अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥२॥ १२४२

(१६) सोमः, अर्यमा, धाता।

॥ १५६ ॥ (अथर्व० २।३६।२)

(१२४३) पतिवेदनः। अनुष्टुप्।

सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्ट मर्यम्णा संभृतं भगम्।
धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम् २ १२४३

(१७) वरुणः, सोमः, इन्द्रः ।

॥ १५७ ॥ (अथर्व० ३।३।३)

(१२४४-१२६०) अथर्वा । चतुष्पदा भुरिक्पङ्क्तिः ।

अद्भ्यस्त्वा राजा वरुणो ह्वयतु सोमस्त्वा ह्वयतु पर्वतेभ्यः ।
इन्द्रस्त्वा ह्वयतु विड्भ्य आभ्यः श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः ३ १२४४

(१८) सोमः, सविता, आदित्यः, अग्निः ।

॥ १५८ ॥

(१२४५) (अथर्व० ३ । ८ । ३) त्रिष्टुप् ।

हुवे सोमं सवितारं नमोभि— र्विश्वानादित्याँ अहमुत्तरत्वे ।
अयमग्निर्दीदायद् दीर्घमेव सजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवद्भिः ३ १२४५

(१९) सोमः, स्वजः, अशनिः ।

॥ १५९ ॥

(१२४६) (अथर्व० ३।२७।४) पञ्चपदा ककुम्मतीगर्भाऽष्टिः ।

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ४ १२४६

(२०) आपः, सोमः ।

॥ १६० ॥ (१२४७) (अथर्व० ४ । ४ । ५) अनुष्टुप् ।

अपां रसः प्रथमजो ऽथो वनस्पतीनाम् ।
उत सोमस्य भ्राता— ऽस्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ५ १२४७

(२१) सोमः, वनस्पतिः ।

॥ १६१ ॥ (१२४८-१२४९) (अथर्व० ६ । २ । १-२) परोष्णिक् ।

इन्द्राय सोममृत्विजः सुनोता च धावत ।
स्तोतुर्यो वचः शृणवद्धवं च मे १
आ यं विशन्तीन्दवो वयो न वृक्षमन्धसः ।
विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः २ १२४९

(२२) द्यावापृथिवी, ग्रावा, सोमः, सरस्वती, अग्निः।

॥१६२॥ (१२५०) (अथर्व० ६।३।२) जगती।

पातां नो द्यावापृथिवी अभिष्टये पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः।
पातु नो देवी सुभगा सरस्वती पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः २ १२५०

(२३) सोमः, अदितिः।

॥१६३॥ (१२५१-१२५२) (अथर्व० ६।७।१-२) १ निचृत्, २ गायत्री।

येन सोमादितिः पथा मित्रा वा यन्त्यद्रुहः।
तेना नोऽवसा गहि १
येन सोम साहन्त्यासुरान् रन्धयासि नः।
तेना नो अधि वोचत २ १२५२

(२४) द्यावापृथिवी, सोमः, सविता, अन्तरिक्षं, सप्तऋषयः।

॥१६४॥ (१२५३) (अथर्व० ६।४०।१) जगती।

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु।
अभयं नोऽस्तूर्वन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु १ १२५३

(२५) अग्निः, इन्द्रः, सोमः।

॥ १६५ ॥ (१२५४) (अथर्व० ६।५८।३)। अनुष्टुप्।

यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत।
यशा विश्वस्य भूतस्याऽहमस्मि यशस्तमः ३ १२५४

(२६) सविता, सोमः, वरुणः।

॥ १६६ ॥ (१२५५) (अथर्व० ६।६८।३) अतिजगतीगर्भा त्रिष्टुप्।

येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्
तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्य गोमानश्ववानयमस्तु प्रजावान् ३ १२५५

(२७) सांमनस्यम्, वरुणसोमोऽग्निबृहस्पतिवसवः ।

॥१६७॥ (१२५६—१२५७) (अथर्व० ६ । ७३ । १—२) १ भुरिक् २ त्रिष्टुप् ।

एह यातु वरुणः सोमो अग्नि—र्बृहस्पतिर्वसुभिरेह यातु ।
अस्य श्रियमुपसंयात सर्व उग्रस्य चेत्तुः संमनसः सजाताः १
यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तरा—ऽऽकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा ।
तान्त्सीवयामि हविषा घृतेन मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु २ १२५७

(२८) इन्द्रः, सोमः, सविता च ।

॥१६८॥ (१२५८—१२६०) (अथर्व० ६ । ९९ । १-३) अनुष्टुप्, ३ भुरिग्बृहती ।

अभि त्वेन्द्र वरिमतः पुरा त्वांहूरणाद्धुवे ।
ह्वयाम्युग्रं चेत्तारं पुरुणामानमेकजम् १
यो अद्य सेन्यो वधो जिघांसन्न उदीरते ।
इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः २
परि दद्म इन्द्रस्य बाहू समन्तं त्रातुस्त्रायतां नः ।
देव सवितः सोम राजन्त्सुमनसं मा कृणु स्वस्तये ३ १२६०

(२९) द्यौः, पृथिवी, शुक्रः, सोमः, अग्निः, वायुः, सविता ।

॥१६९॥ (१२६१) (अथर्व० ६ । ५३ । १) बृहच्छुक्रः । जगती ।

द्यौश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणया पिपर्तु ।
अनु स्वधा चिकितां सोमो अग्नि—र्वायुर्नः पातु सविता भगश्च १ १२६१

सोमदेवता-पुनरुक्त-मन्त्रभागाः ।



ऋग्वेदस्य नवमं मण्डलम् ।

[१] ९।१।१ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । पवमानः सोमः)
पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ।
(२२१)९।२९।४ (नृमेध आङ्गिरस । पवमानः सोम.)
पवस्व ।
(२२६)९।३०।३ (बिन्दुराङ्गिरस । पवमानः सोमः)
पवस्व... ।
(५८०)९।६७।१३ (विश्वामित्रो गाथिनः। पवमानः सोम)
पवस्व... ।
(९३९)९।१००।५ (रेभसून काश्यपौ । पवमानः सोमः)
इन्द्राय ।

[३]९।१।३ =(अग्निः १२६३)८।१०३।७
पर्षि राधो मघोनाम् ।

[४]९।१।४ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। पवमान सोम)
अभ्यर्ष...।
अभि वाजमुत श्रवः ।
(४३)९।६।३(असितः काश्यपो देवलो वा। पवमान सोम)
अभि ·अर्ष।
अभि ।
(३५०)९।५१।५ (उचथ्य आङ्गिरस । पवमान सोम)
अभ्यर्ष...।
अभि ।
(४५९)९।६३।१२ (निध्रुविः काश्यपः । पवमानः सोम)
अभ्यर्ष ।अभि... ।

[१०]९।१।१० (मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । पवमान सोमः)
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ।
(९८८)९।१०६।३ (अग्निश्चाक्षुषः । पवमानः सोमः)

[११]९।२।१ (मेधातिथि काण्व ; पवमान सोमः)
पवस्व देववीरति ।
(२६१)९।३६।२ (प्रभूवसुराङ्गिरसः। पवमान सोम)

[,,]९।२।१ = (इन्द्र १०८५) १।१७६।१
(अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।

[१३]९।२।३ (मेधातिथि काण्वः । पवमान सोमः)
धारा सुतस्य वेधसः ।
(१३५)९।१६।७ (असित काश्यपो देवलो वा । पवमान सोम)

[१४]९।२।४ (मेधातिथिः काण्वः । पवमानः सोम)
आपो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद्गोभिर्वासयिष्यसे ।
(५५०)९।६६।१३ (शतं वैखानसा । पवमानः सोमः)

[१६]९।२।६ **अचिक्रदद् वृषा हरिः ।**
(९५९)९।१०१।१६ **कनिक्रदद् वृषा हरिः।**

[,,]९।२।६ **सं सूर्येण रोचते ।**
८।९।१८ (शशकर्ण काण्वः । अश्विनौ)

[१७]९।२।७ (मेधातिथि काण्वः । पवमानः सोमः)
मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भसे ।
(२७४)९।३८।३ (रहूगण आङ्गिरसः । पवमान सोमः)
मर्मृ ।
शुम्भते ।

[१९]९।२।९ = (इन्द्र २४३) ८।६।१
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ।

[२०]९।२।१० अस्यश्वसा **वाजसा उत ।**
६।५३।१० (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । पूषा)
धियमश्वसां **वाजसामुत ।**

[,,] ९।२।१० आत्मा **यज्ञस्य पूर्व्यः ।**
(अग्निः ५२०) ३।११।३ केतुर्**यज्ञस्य पूर्व्यः।**

[२१] ९।३।१ (शुनः शेप आजीगर्तिः, स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः । पवमानः सोम)

अभि द्रोणान्यासदम् ।
(२२७) ९।३०।४ (बिन्दुराङ्गिरसः । पवमानः सोम)
[२६] ९।३।६ = (अग्निः ७११) ४।१५।३
दधद्रत्नानि दाशुषे ।
[२७] ९।३।७ (शुनःशेप आजीगर्तिः, स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः । पवमानः सोमः)
पवमानः कनिक्रदन् ।
(१११) ९।१३।८ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
[२८] ९।३।८ व्यासरत्तिरो रजांस्यस्पृतः ।
(इन्द्रः ६८७) ८।८२।९ पदाभरत्तिरो रजांस्यस्पृतम् ।
[२९] ९।३।९ (शुनःशेप आजीगर्तिः, स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः । पवमानः सोम)
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
(२९७) ९।४२।२ (मेध्यातिथिः काण्वः । पवमानः सोम)
एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि ।
(९३३)९।९९।७ (रेभसून् काश्यपौ । पवमानः सोमः)
देवो देवेभ्यः सुतः ।
(९७३)९।१०३।६ (द्वित आप्त्यः । पवमानः सोमः)
देवो देवेभ्यः सुतः ।
[३०]९।३।१० (शुनःशेप आजीगर्तिः, स देवरातः कृत्रिमो वैश्वामित्रः । पवमानः सोमः)
धारया पवते सुतः ।
(२९७)९।४२।२ (मेध्यातिथिः काण्वः । पवमानः सोम)
[३१]९।४।१ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
सना . पवमान महि श्रवः ।
(७६)९।९।९ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
पवमान ।
सना ।
(९४२)९।१००।८ (रेभसून् काश्यपौ । पवमानः सोम)
पवमान... ।
३१-४०]९।४।१-१० अथा नो वस्यसस्कृधि ।
३२]९।४।२ सना ज्योतिः सना स्वः ।
(७६)९।९।९ सना मेधं सना स्वः ।
,,]९।४।२ = (इन्द्रः ६५८) ८।७८।८
विश्वा च सोम सौभगा ।

[३३]९।४।३ सना दक्षमुत क्रतुम् ।
(११६०)१०।२५।१ मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
[३४]९।४।४ = (९)९।१।९ सोममिन्द्राय पातवे ।
[३५-३६]९।४।५-६ तव क्रत्वा तवोतिभिः ।
[३७]९।४।७ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
(२८९)९।४०।६ (बृहन्मतिराङ्गिरसः । पवमानः सोम)
(९३६)९।१००।२ (रेभसून् काश्यपौ । पवमानः सोम)
[३९]९।४।९ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
पवमान विधर्मणि ।
(४८६)९।६४।९ (काश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः)
(९४१)९।१००।७ (रेभसून् काश्यपौ । पवमानः सोमः)
(अग्निः१९८३ ९।५।३ रयिर्वि राजति द्युमान् ।
(४०५)९।६१।१८ दक्षो वि राजति द्युमान् ।
(अग्नि १९८४)९।५।४ =(अग्निः१९३४)१।१८८।४
(अग्निः१९८८)९।५।८ = (अग्निः१९७०)५।५।७
[४२-४३]९।६।२-३ अभि त्यं मद्यं (३पूर्व्यं) मदम् ।
[४३]९।६।३ = (४)९।१।४ अभि वाजमुत श्रवः ।
[,,]९।६।३ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
सुवानो अर्ष पवित्र आ ।
(३५१)९।५२।१ (उचथ्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
[४४]९।६।४ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
आपो न प्रवतासरन् ।
पुनाना इन्द्रमाशत ।
(१८८)९।२४।२ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
आपो न प्रवता यतीः ।
पुनाना . ।
[४५]९।६।५ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
वने क्रीळन्तमत्यविम् ।
(३१८)९।४५।५ (अयास्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
अस्वरन् वने ।
(९९६)९।१०६।११ (अग्निश्चाक्षुषः । पवमान सोमः)
वने... ।
अस्वरन् . ।
[४७]९।६।७ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
इन्द्राय पवते सुतः ।

(४३१)९।६२।१४ (जमदग्निर्भार्गवः। पवमान सोमः)
.. मद ।
(९८७)९।१०६।२ (अग्निश्चाक्षुषः। पवमान सोम.)
(१०१६)९।१०७।१७ (सप्तर्षय । पवमान सोमः)
...मद ।
[५१]९।७।२ (असित. काश्यपो देवलो वा। पवमानः सोम)
महीरपो वि गाहते ।
(९३३)९।९९।७ (रेभसूनू काश्यपो । पवमान सोमः)
[५२]९।७।३ (असित काश्यपो देवलो वा। पवमानः सोम.)
वृषाव चक्रदद् वने ।
(१०२१)९।१०७।२२ (सप्तर्षयः। पवमान सोम)
...चक्रदो वने ।
[५३,९।७।४ (असित. काश्यपो देवलो वा। पवमान. सोम)
नृम्णा वसानो अर्षति ।
स्वर्वाजी **सिषासति।**
(४४०)९।६२।२३ (जमदग्निर्भार्गव । पवमान सोमः)
नृम्णा पुनानो अर्षसि ।
(६५७)९।७४।१ (कक्षीवान्दैर्घतमस । पवमान सोमः)
स्व१र्यद्वाज्यरुष **सिषासति ।**
[५५]९।७।६ (असित काश्यपो देवलो वा। पवमान सोम)
अव्यो वारे परि प्रियो ।
(३४३)९।५०।३ (उचथ्य आङ्गिरस । पवमान सोम)
प्रियम् ।
(३५१)९।५२।२ (उचथ्य आङ्गिरसः। पवमान सोम)
(१००५)९।१०७।६ (सप्तर्षय । पवमान सोम)
[६१,९।८।३ (असित. काश्यपो देवलो वा। पवमान सोम.)
इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो ।
(३८७,९।६०।४ (अवत्सार कश्यप । पवमान सोम)
राधसे पवस्व।
[,,]९।८।३=(११२४)३।६२।१३ **ऋतस्य योनिमासदम्।**
[६७]९।८।९ = ७।९६।६ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । सरस्वान)
[७६]९।९।९ = (३१)९।४।१ **भक्षीमहि प्रजामिषम् ।**
[,,]९।९।९ =(३१)९।४।२
[७७,९।१०।१ (असित काश्यपो देवलो वा। पवमान सोम)
अर्वन्तो न श्रवस्यव.।
(५४७)९।६६।१० (शतं वैखानसा । पवमानः सोम)
[७८]९।१०।२ (असितः काश्यपो देवलो वा। पवमानः सोम)
दधन्विरे गभस्त्यो ।

(११०)९।१३।७ (असित काश्यपो देवलो वा।
पवमानः सोम·)
[९३]९।११।८ (असित काश्यपो देवलो वा। पवमान सोम)
इन्द्राय सोम पातवे परि षिच्यसे।
(९२४)९।९८।१० (अम्बरीषो वार्षागिर , ऋजिश्वा भारद्वाजश्च। पवमानः सोमः)
(१०४०)९।१०८।१५ (ऊर्ध्वसद्मा०। पवमान. सोमः)
[,,]९।११।८ मनीषिन्**मनसस्पतिः।**
(२११)९।२८।१ विश्वविन्**मनसस्पतिः**
९५]९।१२।१ (असितः काश्यपो देवलो वा। पवमानः सोमः)
इन्द्राय मधुमत्तमाः।
(४६६)९।६३।१९ (निध्रुविः काश्यपः। पवमानः सोमः)
..मधुमत्तमम्।
(५८३,९।६७।१६ (जमदग्निर्भार्गवः। पवमान. सोमः)
..मधुमत्तमः।
[९६]९।१२।२ = (इन्द्र २०८४)६।४५।२५
=(इन्द्र १३७७)३।४१।५
गावो वत्सं न मातर ।
(इन्द्र २०८७)६।४५।२८ **वत्सं गावो न** धेनव ।
[,,]९।१२।२ = (इन्द्र ८०)१।१६।३=(इन्द्र.१३८५)३।४२।४
= (इन्द्र.४०८)८।१७।१५ = (इन्द्र २४०१)८।९२।५
= (इन्द्र.९८६)८।९७।११
इन्द्रं सोमस्य पीतये ।
[१००]९।१२।६ (असित काश्यपो देवलो वा। पवमानः सोम)
प्र वाचमिन्दुरिष्यति ।
(२५७)९।३५।४ (प्रभूवसुराङ्गिरस । पवमान. सोमः)
प्र वाजमिन्दुरिष्यति ।
[,,]९।१२।६(इन्द्र ४३७)८।३४।१३
समुद्रस्याधि विष्टपि (०प.)।
[१०१]९।१२।७ = (११०६)१।९१।६
नित्य (प्रिय०) **स्तोत्रो वनस्पति ।**
[१०२]९।१२।८(असित काश्यपो देवलो वा। पवमान. सोम)
सोमो हिन्वानो अर्षति।
विप्रस्य धारया कविः।
(३०९)९।४४।२ (अयास्य आङ्गिरसः। पवमान. सोम)
सोमो हिन्वे परावति। **विप्रस्य ।**
[१०४]९।१३।१(असित काश्यपो देवलो वा। पवमान. सोम.)
सोम. पुनानो अर्षति।

(२१७)९।२८।६ (प्रियमेध आङ्गिरस ।
पवमानः साम.)
(३००)९।४२।५ (मेध्यातिथिः काण्वः । पवमान सोमः)
(९५०)९।१०१।७ (नहुषो मानव । पवमान गोम)
[१०५]९।१३।२ सुष्वाणं देववीतये ।
(५२५)९।६५।१८ सुष्वाणो देववीतये ।
[१०६]९।१३।३ (असित काश्यपो देवलो वा ।
पवमान सोमः)
पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः।
(२९८)९।४२।३ (मेध्यातिथि काण्व । पवमान सोम)
पवन्ते वाजसातये ।
सोमा ... ।
(३०७)९।४३।६ (मेध्यातिथि काण्वः । पवमान सोम)
पवस्व वाजसातये।
(९४०)९।१००।६ (रेभसूनू काश्यपो । पवमान सोमः)
पवस्व वाजसातम ।
(१०२२)९।१०७।२३ (सप्तर्षय. । पवमान गोम)
पवस्व वाजसातये ।
[१०७]९।१३।४ (असित काश्यपो देवलो वा । पवमान सोम)
पवस्व बृहतीरिष । सुवीर्यम्।
(३०१)९।४२।६ (मेध्यातिथि काण्वः । पवमान. सोम.)
पवस्व ।
[११०]९।१३।७ =(इन्द्र २०८४) ६।४५।२५
=(इन्द्र १३७७) ३।४१।५
अभि (इन्द्र) **वत्सं न** धेनव (मातर) ।
[,,]९।१३।७ = (७८) ९।१०।२ **दधन्विरे गभस्त्यो** ।
[१११]९।१३।८ = (२७) ९।३।७
पवमान(०नः) कनिक्रदत् ।
[,,]९।१३।८ (असित काश्यपो देवलो वा ।
पवमानः सोम)
विश्वा अप द्विषो जहि ।
(३८९)९।६१।२८ (अमहीयुराङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
[११२]९।१३।९ (असित काश्यपो देवलो वा ।
पवमानः सोमः)
अपघ्नन्तो अराव्णः ।
योनावृतस्य सीदत ।

(४५२)९।६३।५ (निध्रुवि. काश्यप. । पवमानः सोम)
अपघ्नन्तो अराव्णः ।
(९८३)९।३९।६ (बृहन्मतिराङ्गिरसः । पवमान सोम)
योनावृतस्य सीदत ।
[११५]९।१४।३ = (इन्द्र २३१४)८।६९।११
विश्वे देवा अमत्सत ।
[११७]९।१४।५ (असित. काश्यपो देवलो वा। पवमान. सोम)
गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ।
(७१३)९।८६।२६ (पृश्नयोऽजा । पवमान सोमः)
गाः कृण्वानो निर्णिजं न ।
(१०२५)९।१०७।२६ (सप्तर्षय. । पवमान सोम)
गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ।
[१२१]९।१५।१ (असितः काश्यपो देवलो वा। पवमानः सोमः)
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ।
(४१२)९।६१।२५ (अमहीयुराङ्गिरस । पवमान सोम)
[१२३]९।१५।३ **एष** हितो **वि नीयते** ।
(२०८)९।२७।३ **एष** नृभिर्वि **नीयते ।**
[१२७]९।१५।७(असितः काश्यपो देवलो वा। पवमान. सोम.)
एतं मृजन्ति मर्ज्यम् ।
(३२५)९।४६।६ (अयास्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
[१२८]९।१५।८(असित काश्यपो देवलो वा। पवमानः सोमः)
एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति ।
(३९४)९।६१।७ (अमहीयुराङ्गिरस. । पवमान. सोम)
[१३१]९।१६।३=१।१८।९ (शुन शेप आजिगर्तिः। प्रजापतिः
हरिश्चन्द्र. चर्म सोमो वा)
सोमं पवित्र आ सृज ।
[,,]९।१६।३ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
सोमं पवित्र आ सृज ।
पुनीहीन्द्राय पातवे ।
(३४६)९।५१।१ (उचथ्य आङ्गिरस । पवमान सोम)
सोमं... ।
पुनीही ।
[१३२]९।१६।४ (असितः काश्यपो देवलो वा। पवमान सोम.)
सोमः पवित्रे अर्षति ।
(१३९)९।१७।३(असित कश्यपो देवलो वा। पवमानः सोमः)
सोमः... । विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ।

(२६६) ९।३७।१ (रहूगण आङ्गिरसः। पवमान सोमः)
सोमः— ।
विघ्न— ।
[१३४] ९।१६।६ (असितः काश्यपो देवलो वा। पवमानः सोमः)
विश्वा अर्षन्नभि श्रिय ।
शूरो न गोषु तिष्ठति ।
(४३६) ९।६२।१९ (जमदग्निर्भार्गवः। पवमान सोम)
[१३५] ९।१६।७ = (१३) ९।२।३ धारा सुतस्य वेधस ।
[१३६] ९।१६।८ (असितः काश्यपो देवलो वा। पवमान सोम.)
त्वं सोम विपश्चित पुनान ।
अव्यो वारं वि धावसि ।
(५०२) ९।६४।२५ (कश्यपो मारीच.। पवमानः सोम.)
त्व सोम विपश्चितं पुनानो ।
(२१२) ९।२८।१ (प्रियमेध आङ्गिरस.। पवमान. सोम)
अव्यो वार वि धावति ।
(९९५) ९।१०६।१० (अग्निश्चाक्षुष.। पवमान सोमः)
पुनान अव्यो वारं वि धावति ।
(६६५) ९।७४।९ (कक्षीवान्दैर्घतमसः। पवमानः सोमः)
अव्यो वारं वि पवमान धावति ।
[१३७] ९।१७।१ (असित काश्यपो देवलो वा। पवमानः सोमः)
सोमा असृग्रमाशवः ।
(१८०) ९।२३।१ (असितःकाश्यपो देवलो वा। पवमानः सोमः)
[१३९] ९।१७।२ = (१३२) ९।१६।४ सोमः पवित्र अर्षति ।
["] ९।१७।३ (असितः काश्यपो देवलो वा। पवमान सोम)
सोमः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ।
(२६६) ९।३७।१ (रहूगण आङ्गिरस । पवमान सोमः)
(३६८) ९।५६।१ (अवत्सारः काश्यपः। पवमानः सोमः)
आशुः पवित्रे अर्षति ।
विघ्नन्— ।
[१४०] ९।१७।४ (असितः काश्यपो देवलो वा। पवमान सोम)
आ कलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते ।
(५८१) ९।६७।१४ (विश्वामित्रो गाथिनः। पवमानः सोमः)
— धावति ।
(२९९) ९।४२।४ (मेध्यातिथिः काण्वः। पवमान. सोम)
पवित्रे परि षिच्यते ।
[१४३] ९।१७।७ (असित. काश्यपो देवलो वा। पवमानः सोमः)
धीभिर्विप्रा अवस्यव ।
मृजान्ति. ... ।

(४६७) ९।६३।२० (निध्रुवि काश्यपः। पवमानः सोम)
मृजान्ति.. .धीभिर्विप्रा अवस्यव ।
[१४४] ९।१७।८ = १।१३७।२ (परुच्छेपो दैवोदासिः। मित्रावरुणौ)
चारुऋताय पीतये ।
[१४५-५१] ९।१८।१-७ मदेषु सर्वधा असि ।
[१४९] ९।१८।५ = (इन्द्र १४६४) ३।५३।१२
(विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्रः)
य इमे रोदसी मही (उभे) ।
[१५२] ९।१९।१ तन्न. पुनान आ भर ।
(अग्नि. २०) १।१२।११ स नः स्तवान आ भर ।
[१५३] ९।१९।२=५।७१।२ (बाहुवृक्त आत्रेय । मित्रावरुणौ)
ईशाना पिप्यतं धिय ।
[१५५] ९।१९।४ (असित. काश्यपो देवलो वा। पवमान. सोमः)
अवावशन्त धीतयो ।
(५४८) ९।६६।११ (शतं वैखानसा । पवमानः सोमः)
[१५७] ९।१९।६ (असित काश्यपो देवलो वा। पवमान सोम)
पवमान विदा रयिम् ।
(३०५) ९।४३।४ (मेध्यातिथि काण्व । पवमान सोम)
(४५८) ९।६३।११ (निध्रुवि काश्यप.। पवमान. सोम)
[१५९] ९।२०।१ (असितः काश्यपो देवलो वा। पवमान. सोम)
अव्यो वारेभिरर्षति ।
(२७१) ९।३८।१ (रहूगण आङ्गिरसः। पवमानः सोम)
[१६४] ९।२०।६ (असितः काश्यपो देवलो वा। पवमान सोम)
मृज्यमानो गभस्त्यो ।
सोमश्चमूषु सीदति ।
(२६३) ९।३६।४ (प्रभूवसुराङ्गिरसः। पवमान सोम)
मृज्यमानो— ।
(४८९) ९।६४।५ (कश्यपो मारीचः। पवमानः सोम.)
मृज्यमाना गभस्त्योः ।
(५१३) ९।६५।६ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा।
पवमानः सोमः)
(९३१) ९।९९।६ (रेभसूनू काश्यपा। पवमान सोम
सोमश्चमूषु सीदति ।
[१६५] ९।२०।७ (असितः काश्यपो देवलो वा। पवमान. सोम)
पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ।
(५८६) ९।६७।१९ (वसिष्ठो मैत्रावरुणि । पवमान. सो.)
(४४७) ९।६२।३० (जमदग्निर्भार्गव । पवमान सोमः)
सोमः पवित्रम् ।
दधत्— ।

(५६४) ९।६६।२७ (शतं वैखानसा । पवमानः सोम)
दधत् ।
[१६६]९।२१।१ (असित काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोम)
मत्सरास: स्वर्विद: ।
(१०१३) ९।१०७।१४ (सप्तर्षयः । पवमान सोमः)
[१७५] ९।२२।३ (असित काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
एते पूता विपश्चित: सोमासो दध्याशिरः ।
(९५५) ९।१०१।१२ (मनु सावरण: । पवमानः सोमः)
["]९।२२ ३=(इन्द्र १८)१।५।५=(इन्द्रः२२३८ ७.३२।४
= १।१३७।२ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
= ५।५१।७ (स्वस्त्यात्रेयः । विश्वे देवाः)
सोमासो दध्याशिरः ।
[१८०] ९ २३।१ = (१३७)९।१७।१ सोमा असृग्रमाशव ।
["] ९.२३.१ (असित. काश्यपो देवलो वा । पवमान. सोमः)
अभि विश्वानि काव्या ।
(४४२ । ९।६२।२५। जमदग्निर्भार्गवः । पवमानः सोम)
(७१) ९ ६३।२५ (निध्रुवि काश्यपः । पवमानः सोम)
(५३८। ९।६६।१ (शतं वैखानसा । पवमान. सोमः)
[१८३]९।२३।४ (असित. काश्यपो देवलो वा । पवमान सोम)
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्य मदम् ।
अभि कोश मधुश्चुतम् ।
(१०१३) ९।१०७।१४ (सप्तर्षयः । पवमानः सोमः)
अभि सोमास ...।
(२६१) ९।३६।२ (प्रभूवसुराङ्गिरस । पवमानः सोमः)
अभि कोश मधुश्चुतम् ।
[१८४] ९।२३ ५ सोमो अर्षति धर्णसिः ।
(२६७ ९।३७।२=(२७७ ९।३८।६ हरिरर्षति ।
[१८५] ९।२३।६ = (इंद्र २३४४) ८।९५।९
इन्दो (शुद्धो) वाजं सिषासति ।
[१८६] ९।२३।७ = (इन्द्र २४०२) ८।९२।६
अस्य पीत्वा मदाना ।
[१८७]९।२४।१ (असित काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोम)
प्र पवमानास इन्दवः ।
श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ।
(५७४) ९।६७।७, गोतमो राहूगणः । पवमानः सोम)
पवमानास इन्दव. ।
(९५१) ९।१०१।८ (नहुषो मानव. । पवमानः सोम)
पवमानास इन्दवः ।
(५३३) ९।६५।२६ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा ।
पवमानः सोमः)

प्र.. ......।
श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ।
[१८८]९।२४।२=(इन्द्रः२७६)८।६।३४=(इन्द्र.३१८)८।१३।८
आपो न प्रवता यतीः ।
["] ९।२४।२ = (४४ । ९।६।४ पुनाना इन्द्रमाशत ।
[१८९] ९।२४।३ (असितः काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोमः)
नृभिर्यतो वि नीयसे ।
(९३४) ९।९९।८ (रेभसूनू काश्यपौ । पवमानः सोम)
[१९१]९।२४।५=(इन्द्र २४२१)८।९२।२५ अरमिन्द्रस्य धाम्ने।
[१९२] ९।२४।६ = (अग्नि १९२०) १।१४२।३
शुचि पावको अद्भुतः ।
[१९३] ९।२४।७=(१९२)९।२४।६ शुचिः पावक उच्यते।
["] ९।२४।७ (असित काश्यपो देवलो वा । पवमानः सोम ।
देवावीरघशंसहा ।
(२१७) ९।२८।६ (प्रियमेध आङ्गिरस । पवमानः सोमः)
(४०६) ९ ६१।१९ (अमहीयुराङ्गिरस । पवमान. सोम.)
[१९५] ९।२५।१ (दृळ्हच्युत आगस्त्यः । पवमानः सोम.)
अभि योनिं कनिक्रदत् ।
(२६७) ९।३७ २(रहूगण आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
[१९६] ९।२५।३ (दृळ्हच्युत आगस्त्यः । पवमानः सोमः)
शोभते ...योनावधि ।
वृत्रहा देववीतमः ।
(२१४) ९।२८।३ (प्रियमेध आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
शुभायतेऽधि योनौ ।
वृत्रहा देववीतमः ।
[१९७] ९।२५।४=७।५५।१(वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वास्तोष्पतिः)
विश्वा रूपाण्याविशन् ।
["] ९।२५।४ (दृळ्हच्युत आगस्त्यः । पवमानः सोमः)
पुनानो याति हर्यतः ।
(३०४) ९।४३।३ (मेध्यातिथिः काण्वः । पवमानः सोमः)
पुनानो याति हर्यतः ।
[१९९] ९।२५।६ (दृळ्हच्युत आगस्त्यः । पवमानः सोम)
=(३४४ ९।५०।४ (उचथ्य आङ्गिरसः। पवमानः सोमः)
आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।
अर्कस्य योनिमासदम् ।
[२०४] ९।२६.५ (इध्मवाहो दार्ढच्युतः । पवमान. सोमः)
हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
(२२८) ९।३०।५ (बिन्दुराङ्गिरसः पवमानः सोमः)
(२३७) ९।३२।२ (श्यावाश्व आत्रेयः । पवमानः सोमः)

(२७३) ९।३८।२ (रहूगण आङ्गिरसः। पवमानः सोमः)
(२८३) ९।३९।६ (बृहन्मतिराङ्गिरसः। पवमानः सोम)
(३४३) ९।५०।३ (उचथ्य आङ्गिरस। पवमानः सोमः)
(५१५) ९।६५।८ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा। पवमानः सोमः)
[२०५] ९।२६।६ (इध्मवाहो दार्ढच्युतः। पवमान सोमः)
तं हिन्वन्ति।
इन्द्रविन्द्राय मत्सरम्।
(३५९) ९।५३।४ (अवत्सारः काश्यप। पवमानः सोमः)
तं हिन्वान्ति ..।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम्।
(४६४) ९।६३।१७ (निध्रुविः काश्यपः। पवमानः सोमः)
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम्।
[२०८] ९।२७।३ = (१२३) ९।१५।३ एष नृभि (र्हितो) र्वि नीयते।
[२११] ९।२७।६ (नृमेध आङ्गिरस। पवमानः सोम)
पुनान इन्दुरिन्द्रमा।
(५६५) ९।६६।२८ (शत वैखानसाः। पवमान सोमः)
[२१२] ९।२८।१ = (१३६) ९।१६।८ अत्यो वार वि धावति।
[२१३] ९।२८।२ = (२९) ९।३।९ सोमो (देवो) देवेभ्यः सुतः।
[२१४] ९।२८।३ = (१९६) ९।२५।३ वृत्रहा देववीतमः।
[२१५] ९।२८।४ (प्रियमेध आङ्गिरसः। पवमान सोमः)
अभि द्रोणानि धावति।
(२७१) ९।३७।६ (रहूगण आङ्गिरस। पवमान सोमः)
[२१६] ९।२८।५ (प्रियमेध आङ्गिरसः। पवमान सोम)
पवमानो विचर्षणि।
(३८४) ९।६०।१ (अवत्सार. काश्यपः। पवमानः सोम)
पवमानं विचर्षणिम्।
[२१७] ९।२८।६ = (१०४) ९।१३।१ सोमः पुनानो अर्षति।
["] ९।२८।६ = (१९२) ९।२४।७ देवावीरघशंसहा।
[२२०] ९।२९।३ (नृमेध आङ्गिरस.। पवमानः सोम)
पुनानाय प्रभूवसो।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम्।
(२५९) ९।३५।६ (प्रभूवसुराङ्गिरसः। पवमान. सोम)
पुनानस्य प्रभूवसोः।
(४०२) ९।६१।१५ (अमहीयुराङ्गिरस। पवमानः सोम)
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम्।
[२२१] ९।२९।४ = (१) ९।१।१ पवस्व सोम धारया।
[२२३] ९।२९।६ (नृमेध आङ्गिरस। पवमानः सोम.)
द्युमन्त शुष्ममा भर।
(९८९) ९।१०६।४ (चक्षुर्मानव। पवमानः सोमः)

द्युमन्तं शुष्ममा भरा स्वर्विदम्।
[२२४] ९।३०।१ (बिन्दुराङ्गिरसः। पवमान. सोम)
पुनानो वाचमिष्यति।
(५०२) ९।६४।२५ (कश्यपो मारीचः। पवमान. सोम)
पुनानो वाचमिष्यसि।
[२२५] ९।३०।२ (बिन्दुराङ्गिरस.। पवमान सोमः)
इन्दुर्हियान सोतृभिः।
(१०२५) ९।१०७।२६ (सप्तर्षय. पवमानः सोम)
[२२६] ९।३०।३ = (१) ९।१।१ पवस्व सोम धारया।
[२२७] ९।३०।४ (बिन्दुराङ्गिरसः। पवमान सोमः)
पवमानो असिष्यदन्।
(३४०) ९।४९।५ (कविर्भार्गव.। पवमान सोमः)
["] ९।३०।४ = (२१) ९।३।१ अभि द्रोणान्यासदम्।
[२२८] ९।३०।५ = (२०५) ९।२६।५
["] (बिन्दुराङ्गिरस। पवमानः सोम)
इन्द्रविन्द्राय पीतये।
(३१४) ९।४५।१ (अयास्य आङ्गिरसः। पवमान सोम)
(३४१) ९।५०।५ (उचथ्य आङ्गिरस। पवमान. सोमः)
(४८९) ९।६४।१२ (कश्यपो मारीच। पवमानः सोम)
[२२९] ९।३०।६ (बिन्दुराङ्गिरसः। पवमान सोमः)
सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे।
(३४७) ९।५१।२ (उचथ्य आङ्गिरसः। पवमान सोम.)
सोममिन्द्राय वज्रिणे।
सुनोता मधुमत्तमम्।
(इन्द्र २२४२) ७।३२।८ सुनोता सोमपाने।
सोममिन्द्राय वज्रिणे।
[२३२] ९।३१।३ (गोतमो राहूगणः। पवमान. सोम)
तुभ्य तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः।
(४४४) ९।६२।२७ (जमदग्निर्भार्गव। पवमानः सोम)
तुभ्येमा ।
तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः।
[२३३] ९।३१।४ = (११२६) १।९१।१६
[२३५] ९।३१।६ (गोतमो राहूगण.। पवमान. सोमः)
इन्दो सखित्वमुश्मसि।
(५५१) ९।६६।१४ (शतं वैखानसा.। पवमान सोम.)
[२३७] ९।३२।२ = (२०४) ९।२६।५
["] ९।३२।२ (श्यावाश्व आत्रेय.। पवमानः सोमः)
(२७३) ९।३८।२ (रहूगण आङ्गिरस। पवमानः सोम)
एतं (९।३२।२ आदौ) त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।

इन्दुमिन्द्राय पीतये ।
(३०३) ९।४३।२ (मेध्यातिथिः काण्व. । पवमानः सोम॰)
इन्दु——— ।
(५९५) ९।६५।८ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमानः सोमः)
हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय ।
[२३०] ९।३२।४ = (अग्निः १०७६) ६।१६।३५
सीदन्नृतस्य योनिमा ।
[२४०] ९।३२।५ अभि गावो अनूषत ।
(२४६) ९।३३।५ अभि ब्रह्मीरनूषत ।
[२४१] ९।३२।६ = (इन्द्रः २०९८) ६।४६।९
मघवद्भ्यश्च मह्यं च ।
[२४३] ९।३३।२ (त्रित आप्त्यः । पवमानः सोम)
शुक्रा ऋतस्य धारया ।
वाजं गोमन्तमक्षरन् ।
(४६१) ९।६३।१४ (निध्रुवि काश्यप. । पवमान सोमः)
[२४४] ९।३३।३ = (इन्द्र ३२३२) ५।५१।७
(स्वस्त्यात्रेयः । इन्द्रवायू)
सुता इन्द्राय वायवे ।
[''] ९।३३।३ = ८।४१।१ (नाभाक. काण्व । वरुण.)
वरुणाय मरुद्भ्यः ।
[२४६] ९।३३।५ = (२४०) ९।३२।५
[''] ९।३३।५ = (अग्नि. १९२४) १।१४२।७
= (अग्निः १९६९) ५।५।६
= १०।५९।८ (बन्धुः श्रुतबन्धुः० । द्यावापृथिवी)
[२४७] ९।३३।६ (त्रित आप्त्यः । पवमान. सोम)
राय अस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणः ।
(२८६) ९।४०।३ (बृहन्मतिराङ्गिरस. । पवमान सोम.)
रयिं . अस्मभ्यं ... ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ।
(४२९) ९।६२।१२ (जमदग्निर्भार्गव । पवमानः सोम.)
आ पवस्व सहस्रिणं रयिम् ।
(४४८) ९।६३।१ (निध्रुवि काश्यप. । पवमानः सोमः)
आ पवस्व सहस्रिण रयिम् ।
(५९८) ९।६५।२१ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमानः सोमः)

अस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ।
[२४८] ९।३४।१ (त्रित आप्त्य । पवमानः सोमः)
इन्दुर्हिन्वानो अर्षति ।
(५७१) ९।६७।४ (कश्यपो मारीचः । पवमान. सोम.)
[२४९] ९।३४।२ = (इन्द्र. ३२३२) ५।५१।७
(स्वस्त्यात्रेय । इन्द्रवायू)
[''] ९।३४।२ = ८।४१।१ (नाभाक काण्व. । वरुणः)
[२५०] ९।३४।३ सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ।
(इन्द्र १०३) ८।१।१७ सोता हि सोममद्रिभिः ।
[२५५] ९।३५।२ इन्दो समुद्रमीङ्खय ।
(३५३) ९।५२।४ इन्दो न दानमीङ्खय ।
[''] ९।३५।२ (प्रभूवसुराङ्गिरस । पवमानः सोम)
समुद्रमीङ्खय पवस्व विश्वमेजय ।
(४४३) ९।६२।२६ (जमदग्निर्भार्गवः । पवमान सोमः)
समुद्रिया.. .. ईरयन् ।
पवस्व विश्वमेजय ।
[२५६] =९।३५।३(अग्नि ४०२)२।८।६ अभि ष्याम पृतन्यतः ।
[२५७] ९।३५।४ = (१००) ९।१२।६
प्र वाज (च) मिन्दुरिष्यति ।
[२५९] ९।३५।६ = (२२०) ९।२९।३
[२६१] ९।३६।२ = (११) ९।२।१ पवस्व देववीरति ।
[''] ९।३६।२ = (१८३)९।२३।४ अभि कोशं मधुश्चुतम् ।
[२६३] ९।३६।४ (प्रभूवसुराङ्गिरस. । पवमानः सोमः)
शुम्भमान ऋतायुभिर्मृज्यमानो गभस्त्योः ।
पवते वारे अव्यये ।
(४८०) ९।६४।५ (कश्यपो मारीचः । पवमानः सोम.)
शुम्भमानो ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्यो॰ ।
पवन्ते वारे अव्यये ।
[''] ९।३६।४ = (१६४) ९।२०।६ मृज्यमानो गभस्त्योः ।
[२६४] ९।३६।५ (प्रभूवसुराङ्गिरस । पवमानः सोमः)
स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा ।
पवतामान्तरिक्ष्या ।
(४८३) ९।६४।६ (कश्यपो मारीचः । पवमानः सोम)
ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।
पवन्तामान्तरिक्ष्या ।
[२६६] ९।३७।१ = (१३२) ९।१६।४ = (१३९) ९।१७।३
सोमः पवित्रे अर्षति ।
[२६७] ९।३७।२ (रहूगण आङ्गिरसः । पवमानः सोम॰)

हरिरर्षति धर्णसिः ।
अभि योनिं कनिक्रदत ।
(२७७) ९।३८।६ (रहूगण आङ्गिरस । पवमान सोम)
हरि— ।
क्रन्दन योनिमभि ।
[२६७] ९।३७।२ = (१९५) ९।२५।२
[२६८] ९।३७।३ (रहूगण आङ्गिरसः । पवमान. सोमः)
पवमानो वि धावति ।
(०७३) ९।१०३।६ (द्रित आप्त्य । पवमानः सोम)
व्यानशिः पवमानो— ।
[२७०] ९।३७।५ (रहूगण आङ्गिरसः । पवमानः सोम)
सोमो वाजमिवासरत् ।
(४३३) ९।६२।१६ (जमदग्निर्भार्गवः । पवमान सोम)
[२७१] ९।३७।६ = (२१५)९।२८।४ अभि द्रोणानि धावति ।
[२७२] ९।३८।१ = (१५९) ९।२०।१ अव्यो वारेभिरर्षति ।
["] ९।३८।१ गच्छन वाज सहस्रिणम् ।
(३७२) ९।५७।१ अच्छा वाज सहस्रिणम् ।
[२७३] ९।३८।२ = (२३७) ९।३२।२
["] ९।३८।२ = (२०४) ९।२६।५
[२७४] ९।३८।३ = (१७) ९।२।७
[२७५] ९।३८।४ (रहूगण आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
श्येनो न विक्षु सीदति ।
(३७४) ९।५७।३ (अवत्सार काश्यपः । पवमानः सोमः)
श्येनो न वंसु षीदति ।
(७६२) ९।८६।३५
(अकृष्टामाषादयस्त्रयः । पवमान. सोम)
श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।
[२८०] ९।३९।३ (बृहन्मतिराङ्गिरसः । पवमान सोमः)
सुत एति पवित्र आ ।
(३१०) ९।४४।३ (अयास्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
(३९५) ९।६१।८ (अमहीयुराङ्गिरसः । पवमानः सोम)
[२८३] ९।३९।६ = (२०४) ९।२६।५
["] ९।३९।६ = (११२) ९।१३।९
[२८६] ९।४०।३ = (२४७) ९।३३।६
[२८७] ९।४०।४ विदाः सहस्रिणीरिषः ।
(३९०) ९।६१।३ क्षरा सहस्रिणीरिष ।
[२८८] ९।४०।५ = (अग्निः २०) १।१२।११
स नः पुमान (स्तवान) आ भर ।
[२८९] ९।४०।६ (बृहन्मतिराङ्गिरसः । पवमान. सोमः)
पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
(३७५) ९।५७।४ (अवत्सारः काश्यपः । पवमानः सोमः)
पुनान इन्दवा भर ।
(५०३) ९।६४।२६ (कश्यपो मारीच । पवमानः सोमः)
पुनान इन्दवा भर ।
(९३६) ९।१००।२ (रेभसून काश्यपौ । पवमानः सोमः)
["] ९।४०।६ = (३७) ९।४।७
सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
[२९१] ९।४१।२ साह्वांसो दस्युमव्रतम् ।
(इन्द्रः १०८१) १।१७५।३ सहावान दस्युमव्रतम् ।
[२९३] ९।४१।४ (मेध्यातिथिः काण्वः । पवमान सोमः)
पवस्व मर्हीमिष गोमदिन्दो हिरण्यवत ।
अश्वावद्वाजवत् सुत ।
(३९०) ९।६१।३ (अमहीयुराङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
गोमदिन्दो हिरण्यवत् । सहस्रिणीरिषः ।
(३०१) ९।४२।६ (मेध्यातिथिः काण्व । पवमानः सोम)
गोमन्नः सोम अश्वावद्वाजवत सुतः ।
पवस्व बृहतीरिषः ।
[२९७] ९।४२।२ = (२०--३०) ९।३।९--१०
[२९८] ९।४२।३ = (१०६) ९।१३।३
पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।
[२९९] ९।४२।४ = (१४०) ९।१७।४
पवित्रे परि षिच्यते ।
[३००] ९।४२।५ (मेध्यातिथि. काण्वः । पवमानः सोम.)
अभि विश्वानि वार्या ।
(५४१) ९।६६।४ (शतं वैखानसा । पवमानः सोमः)
पवस्व अभि विश्वानि वार्या ।
["] ९।४२।५ = (१०४) ९।१३।१
[३०१] ९।४२।६ = (२९३)९।४१।४ अश्वावद् वाजवत् सुत ।
["] ९।४२।६ = (१०७) ९।१३।४ पवस्व बृहतीरिषः ।
[३०३] ९।४३।२ = (२३७) ९।३२।२
["] ९।४३।३ = (३०४) ९।२५।४
[३०५] ९।४३।४ = (१५७) ९।१९।६
["] ९।४३।४ (मेध्यातिथि काण्वः । पवमानः सोमः)
पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् ।
(४५८) ९।६३।११ (निध्रुविः काश्यपः । पवमान सोम)
सोम दुष्टरम् ।
["] ९।४३।४ इन्दो सहस्रवर्चसम् ।
(५०२)९।६४।२५ = (९१५)९।९८।१इन्दो सहस्रभर्णसम् ।
[३०७] ९।४३।६ = (१०६) ९।१३।३
["]९।४३।६ = (अग्नि ८५८)५।१३।५

(इन्द्रः २३७५)८।९८।१२ = (अग्निः १२८१)८।२३।१२
[३०८] ९।४४।१ प्र ण इन्दो महे तने ।
(५५०) ९।६६।१३ महे रणे ।
[३०९] ९।४४।२ = (१०२) ९।१२।८ विप्रस्य धारया कविः ।
[३१०] ९।४४।३ = (२८०) ९।३९।३
[३१२] ९।४४।५ (अयास्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
स नो भगाय वायवे ।
(३९६) ९।६१।९ (अमहीयुराङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
[३१४] ९।४५।१ = (२२८) ९।३०।५
[३१५] ९।४५।२ = (इन्द्र ७) १।४।४
देवान (यस्ते) सखिभ्य आ वरम् ।
[३१६] ९।४५।३ (अयास्य आङ्गिरसः । पवमानः सोम)
वि नो राये दुरो वृधि ।
(४८०) ९।६४।३ (कश्यपो मारीच । पवमानः सोमः)
[३१७] ९।४५।४ (अग्नि. १४७१) ८।१०२।९
[३१८] ९।४५।५ = (४५) ९।६।५
[३१९] ९।४५।६ (अयास्य आङ्गिरसः । पवमान. सोमः)
तया पवस्व धारया यया ।
(३३७) ९।४९।२ (कविर्भार्गव । पवमानः सोमः)
[३२०] ९।४६।१ (अयास्य आङ्गिरस । पवमानः सोमः)
असृग्रन् देववीतये ।
(५८४) ९।६७।१७ (जमदग्निर्भार्गवः । पवमान. सोमः)
[३२२]९।४६।३ = (इन्द्रः८३)१।१६।६एते इमे सोमास इन्दवः ।
[३२४] ९।४६।५ (अयास्य आङ्गिरसः । पवमान सोमः)
पवस्व .. महः ।
अस्मभ्य सोम गातुवित् ।
(५२०) ९।६५।१३ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा ।
पवमानः सोमः)
महीम् पवस्व ।
अस्मभ्यं ।
[३२५] ९।४६।६ = (१२७) ९।१५।७ एतं मृजन्ति मर्ज्यम् ।
[३३७] ९।४९।१ = (३१९) ९।४५।६
[३४०] ९।४९।५ = (२२७) ९।३०।४
[३४३] ९।५०।३ = (५५) ९।७।६
["] ९।५०।३ = (२०४) ९।२६।५
["] ९।५०।३ (उचथ्य आङ्गिरसः । पवमानः सोम.)
हिन्वन्ति ।
पवमानं मधुश्चुतम् ।
(५७६) ९।६७।९ (गोतमो राहूगणः । पवमानः सोमः)

[३४४] ९।५०।४ = (१९९) ९।२५।६
[३४५] ९।५०।५ (उचथ्य आङ्गिरसः । पवमान. सोमः)
स पवस्व मदिन्तम ।
(९३२) ९।९९।६ (रेभसूनू काश्यपौ । पवमानः सोमः)
स पुनानो मदिन्तम ।
["] ९।५०।५ = (२२८) ९।३०।५
[३४६] ९।५१।१ = (१३१) ९।१६।३ = १।२८।९
(शुनःशेप आजीगर्ति । प्रजापति हरिश्चन्द्रः
चर्म सोमो वा)
[३४७] ९।५१।२ = (२२९) ९।३०।६
= (इन्द्रः २२४२) ७।३२।८
[३४८] ९।५१।३ (उचथ्य आङ्गिरसः । पवमान सोमः)
पवमानस्य मरुत ।
(५०१) ९।६४।२४ (कश्यपो मारीचः । पवमानः सोम)
[३५०] ९।५१।५ = (४) ९।१।४
[३५१] ९।५२।१ = (४३) ९।६।३
[३५२] ९।५२।२ = (५५) ९।७।६
[३५३] ९।५२।३ = (२५५) ९।३५।२
[३५४] ९।५२।४ (उचथ्य आङ्गिरसः । पवमानः सोम.)
इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् ।
यो अस्माँ आदिदेशति ।
(५०४) ९।६४।२७ (कश्यपो मारीचः । पवमानः सोम)
एषां पुरुहूत जनानाम् ।
(इन्द्रः २७८६) १०।१३४।२ (मान्धाता यौवनाश्वः। इन्द्रः)
यो अस्माँ आदिदेशति ।
[३५५] ९।५२।५ (उचथ्य आङ्गिरस. । पवमानः सोमः)
पवस्व महयद्रयिः ।
(५६८) ९।६७।१ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । पवमानः सोमः)
[३५९] ९।५३।४ = (४६४) ९।६३।१७
हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ।
["] ९।५३।४ = (२०५) ९।२६।६
[३६२] ९।५४।३ (अवत्सारः काश्यपः । पवमानः सोमः)
सोमो देवो न सूर्यः ।
(४६०) ९।६३।१३ (निध्रुविः काश्यपः । पवमानः सोमः)
[३६४] ९।५५।१ = (३२) ९।४।२ = (इन्द्र ६५८) ८।७८।८
[३६८] ९।५६।१ = (१३२) ९।१६।४
["] ९।५६।१ = (१३९) ९।१७।३
[३७१] ९।५६।४ = (९८९) ९।१०६।४
= (इन्द्रः १७८५) ८।९१।३
[३७२] ९।५७।१ (अवत्सार. काश्यपः । पवमानः सोमः)

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टय. ।
(५६५) ९।६२।२८ (जमदग्निर्भार्गव । पवमानः सोमः)
प्र ते दिवो न वृष्टयो धारा यन्त्यसश्चत: ।
[३७४] ९।५७।३ (अवत्सार: काश्यपः । पवमानः सोमः)
स मर्मृजान आयुभिः ।
(५६०) ९।६६।२३ (शत वैखानसाः । पवमान सोम.)
["] ९।५७।३ =(२७५) ९।३८।४
[३७५] ९।५७।४ =(२८९) ९।४०।६
[३७६ ७९] ९।५८।१, १–४ **तरत् स मन्दी धावति** ।
[३८४] ९।६०।१ =(२१६) ९।२८।५
[३८५] ९।६०।२ अथो **सहस्रभर्णसम्** ।
(५०३) ९।६४।२६ उतो **सहस्रभर्णसम्** ।
[३८६] ९।६०।३ (अवत्सारः काश्यपः । पवमानः सोम.)
कलशाँ । इन्द्रस्य हार्दाविशन् ।
(७४६) ९।८६।१९ (सिकता निवारी । पवमान सोम)
कलशाँ .. इन्द्रस्य हार्द्याविशन् मनीषिभि: ।
[३८८] ९।६१।१ = (इन्द्रः ९४९) १।८४।१३
[३९०] ९।६१।३ = (२८७)९।४०।४ = (२९३) ९।४१।४
[३९१] ९।६१।४ (अमहीयुराङ्गिरस. । पवमान. सोम)
सखित्वमा वृणीमहे ।
(५१६) ९।६५।९ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमान. सोमः)
(इन्द्रः२७८३) १०।१३३।६ (सुदाः पैजवनः । इन्द्र)
सखित्वमा रभामहे ।
[३९३] ९।६१।६ =(२८८) ९।४०।५
=(अग्नि २०) १।१२।११ =(इन्द्रः १७९२) ८।२४।३
[३९४] ९।६१।७ =(१२८) ९।१५।८
[३९५] ९।६१।८ =(२८०) ९।३९।३
[३९६] ९।६१।९ = (३१२) ९।४४।५
[३९८] ९।६१।११ एना **विश्वान्यर्य आ** ।
(अग्निः १७१६) १०।१९१।१ अग्ने **विश्वान्यर्य आ** ।
["] ९।६१।११ =(इन्द्रः २३४१) ८।२५।६
[३९९] ९।६१।१२ =८।४१।१ (नाभाकः काण्वः । वरुण)
[४०१]९।६१।१४ =(इन्द्रः३३८)८।१३।१८
=(इन्द्र २४१७) ८।९२।२१ =८।६९।११ उत्तरार्धः
(प्रियमेध आङिगरसः । विश्वे देवा)
[४०२] ९।६१।१५ =(इन्द्र ५३७) ८।५४ (वाल०६) । ७
=(मरुत् ४८) ८।७ ३ (पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः)
["] ९।६१।१५ =(२२०) ९।२९।३
[४०५] ९।६१।१८ =(अग्नि. १९८३)
(असितः काश्यपो देवलो वा । आप्रीसूक्तं [इळ.])
[४०६] ९।६१।१९ =(इन्द्रः १८२४) ८।४६।८
=(इन्द्र २४१३) ८।९२।१७
["] ९।६१।१९ =(१९३) ९।२४।७
[४०८] ९।६१।२१ (अमहीयुराङ्गिरसः । पवमान: सोमः)
सीदञ्छ्येनो न योनिमा ।
(५१६) ९।६५।१९ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमान. सोमः)
[४०९] ९।६१।२२ =(इन्द्र १३३८) ३।३७।५
(विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्र.)
[४१२] ९।६१।२५ (अमहीयुराङ्गिरसः । पवमान सोमः)
अपघ्नन् पवते मृधो ।
(४७१) ९।६३।२४ (निध्रुवि काश्यप । पवमानः सोम)
अपघ्नन् पवसे मृध ।
["] ९।६१।२५ =(१२१) ९।१५।१
[४१५] ९।६१।२८ =(१११) ९।१३।८
[४१६] ९।६१।२९ (अमहीयुराङ्गिरसः । पवमान. सोमः)
अस्य ते सख्ये वय ।
(५५१) ९।६६।१४ (शत वैखानसाः । पवमान: सोम)
["] ९।६१।२९ =(इन्द्रः४१) १।८।४
=(इन्द्र ३१०७) ८।४०।७ (नाभाक काण्वः । इन्द्राग्नी)
[४१८] ९।६२।१ =(५७४) ९।६७।७
=(इन्द्र ३११७) १।१३५।६
[४२०] ९।६२।३ (जमदग्निर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
(५५९) ९।६६।२२ (शतं वैखानसाः । पवमानः सोमः)
पवमानो ...अभ्यर्षति सुष्टुतिम् ।
(७२२) ९।८५।७ (वेनो भार्गवः । पवमानः सोमः)
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
[४२१] ९।६२।४ (जमदग्निर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
असाव्यंशुः ।
श्येनो न योनिमासदत् ।
(७०१) ९।८२।१ (वसुर्भारद्वाजः। पवमानः सोमः)
असावि सोमो . ।
श्येनो न योनिं घृतवन्त**मासदम्** ।
[४२५] ९।६२।८ **तिरो** रोमा**ण्यव्यया** ।
(५७१) ९।६७।४ =(१००९) ९।१०७.१०
तिरो वारा**ण्यव्यया** ।
[४२६] ९।६२।९=(इन्द्रः१७८५)८ ९३।३=(९८९)९।१०६।४
[४२९] ९।६२।१२ =(२४७) ९।३३।६

[४२९] ९।६२।१२ = (२५१) ८।६।९ = (४५९) ९।६३।१२
[४३०] ९।६२।१३ = (३७४) ९।५७।३
[४३१] ९।६२।१४ = (इन्द्रः ४३१) ८।३४।७
["] ९।६२।१४ = (४७) ९।६।७
[४३३] ९।६२।१६ = (२७०) ९।३७।५
[४३५] ९।६२।१८ हरिं हिनोत वाजिनम् ।
(अग्नि. १८६३) ०।१८८।१ (श्येन आग्नेय.।जातवेदा अग्नि)
अश्वं हिनोत वाजिनम् ।
[४३६] ९।६२।१९ = (१३४) ९।१६।६
[४४०] ९।६२।२३ = (५३) ९।७।४
[४४१] ९।६२।२४ = ५।७९।८ (सत्यश्रवा आत्रेयः । उषाः)
[४४२] ९।६२।२५ = (१८०) ९।२३।१
[४४३] ९।६२।२६ = (२५५) ९।३५।२
[४४४] ९।६२।२७ = (२३२) ९।३१।३
तुभ्यमर्षन्ति सिन्धवः ।
[४४५] ९।६२।२८ = (३७२) ९।५७।१
[४४७] ९।६२।३० = (१६५) ९।२०।७
[४४८] ९।६३।१ = (२४७) ९।३३।६
[४४९] ९।६३।२ (निध्रुविः काश्यपः । पवमानः सोमः)
इन्द्राय मत्सरिन्तमः । चमूष्वा नि षीदसि ।
(९३४) ९।९९।८ (रेभसूनू काश्यपौ । पवमानः सोमः)
इन्द्राय मत्सरिन्तमश्चमूष्वा नि षीदसि ।
[४५१] ९।६३।४ = (१३७) ९।१७।१
["] ९।६३।४ = (२४३) ९।३३।२
[४५२] ९।६३।५ = (११२) ९।१३।९
[४५४] ९।६३।७ = (इन्द्र २३६५) ८।९८।२
[४५५] ९।६३।८ (निध्रुविः काश्यपः । पवमानः सोमः)
पवमानो मनावधि । अन्तरिक्षेण यातवे ।
(५२३) ९।६५।१६ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमानः सोमः)
[४५७] ९।६३।१० = (२०५) ९।२६।६
[४५८] ९।६३।११ = (१५७) ९।१९।६
["] ९।६३।११ = (३०५) ९।४३।४
[४५९] ९।६३।१२ = (इन्द्रः २५१) ८।६।९ = (४२९) ९।६२।१२
["] ९।६३।१२ = (४) ९।१।४
[४६०] ९।६३।१३ = (३६२) ९।५४।३
[४६१] ९।६३।१४ = (२३७) ९।३२।२
[४६२] ९।६३।१५ = (इन्द्रः १८) १।५।५ = (१७५) ९।२२।३
= (४६२) ९।६३।१५ = (९५५) ९।१०१।१२
= १।१३७।२ (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
= ५।५१।७ (स्वस्त्यात्रेयः । विश्वे देवा)
= (इन्द्र. २२३८) ७।३२।४
[४६३] ९।६३।१६ (निध्रुविः काश्यपः । पवमानः सोमः)
राये अर्ष पवित्र आ । मदो यो देववीतमः ।
(४८९) ९।६४।१२ (कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः)
स नो अर्ष — ।
[४६४] ९।६३।१७ (निध्रुविः काश्यपः । पवमानः सोमः)
तमी मृजन्त्यायवः ।
(१०१६) ९।१०७।१७ (सप्तर्षयः । पवमानः सोमः)
["] ९।६३।१७ = (३५९) ९।५३।४ = (२०५) ९।२६।६
[४६६] ९।६३।१९ = (९५) ९।१२।१
[४६७] ९।६३।२० = (१२७) ९।१५।७
["] ९।६३।२० = (१४३) ९।१७।७
[४७०] ९।६३।२३ (निध्रुविः काश्यपः । पवमानः सोमः)
प्रियः समुद्रमा विश ।
(५०४) ९।६४।२७ (कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः)
[४७१] ९।६३।२४ = (४१२) ९।६१।२५
[४७२] ९।६३।२५ (निध्रुविः काश्यपः । पवमानः सोमः)
पवमाना असृक्षत ।
(१०२४) ९।१०७।२५ (सप्तर्षयः । पवमानः सोमः)
["] ९।६३।२५ = (१८०) ९।२३।१
[४७५] ९।६३।२८ (निध्रुविः काश्यपः । पवमानः सोमः)
पुनानः सोम धारय ।
(१००३) ९।१०७।४ (सप्तर्षयः । पवमानः सोमः)
["] ९।६३।२८ = (अग्निः १०७०) ६।१६।२९
(भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः)
[४७६] ९।६३।२९ (निध्रुविः काश्यपः । पवमानः सोमः)
अभ्यर्ष कनिक्रदत् ।
द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ।
(५७०) ९।६७।३ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । पवमानः सोमः)
[४७७] ९।६३।३० = (२६४) ९।३६।५
[४७९] ९।६४।२ = (इन्द्र. २१९) ८।३३।१०
[४८०] ९।६४।३ = (३१६) ९।४५।३
[४८१] ९।६४।५ = (२६३) ९।३६।४
["] ९।६४।५ = (१६४) ९।२०।६
[४८३] ९।६४।६ = (२६४) ९।३६।५
[४८६] ९।६४।९ = (३९) ९।४।९
["] ९।६४।९ = (३६२) ९।५४।३
[४८८] ९।६४।११ = (अग्निः १०७६) ६।१६।३५
= (२३९) ९।३२।४

[४८९] ९।६४।१९ = (४६३) ९।६३।१६
["] ९।६४।१९ = (११८) ९।३०।५
[४९४] ९।६४।१७ (कश्यपो मारीचः । पवमानः सोम)
वृथा समुद्रमिन्दवः ।
अग्मन्नृतस्य योनिमा ।
(५४९) ९।६६।१२ (शत वैखानसाः । पवमान. सोम.)
अच्छा समुद्र ।
अग्मन् ।
[४९९] ९।६४।२२ (कश्यपो मारीच. । पवमानः सोम)
इन्द्रायेन्दो ... पवस्व मधुमत्तम ।
(१०२६) ९।१०८।१ (गौरिवीति शाक्त्यः । पवमान. सोम.)
पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम ।
(१०४०) ९।१०८।१५ (गौरिवीति. शाक्त्यः । पवमान सोम)
इन्द्राय सोम ।
पवस्व मधुमत्तमः ।
["] ९।६४।२२ = (११२४) ३।६२।१३
(विश्वामित्रो गाथिनः । सोम)
[५०१] ९।६४।२४ = (३४८) ९।५१।३
[५०२] ९।६४।२५ = (१३६) ९।१६।८ = (२२४) ९।३०।१
["] ९।६४।२५ (कश्यपो मारीच । पवमानः सोमः)
इन्दो सहस्रभर्णसम् ।
(९१५) ९।९८।१ (अम्बरीषो वार्षागिरः, ऋजिष्वा भारद्वाजश्च । पवमानः सोमः)
[५०३] ९।६४।२६ उतो सहस्रभर्णसम् ।
["] ९।६४।२६ = (२८९) ९।४०।६
[५०४] ९।६४।२७ = (३५४) ९।५२।४ = (४७०) ९।६३।२३
[५०५] ९।६४।२८ = १।१३७।१
(परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
सोमाः शुक्रा गवाशिरः ।
[५०६] ९।६४।२९ = (अग्नि ३१) १।२६।४
(शुन शेप आजीगर्ति. । अग्नि.)
[५०८] ९।६५।१ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमान सोम)
हिन्वन्ति सूरमुस्रयः ।
(५७६) ९।६७।९ (गोतमो राहूगण । पवमानः सोम.)
[५०९] ९।६५।२ = (२९७) ९।४२।२
[५१३] ९।६५।६ = (१६४) ९।२०.६
[५१४] ९।६५।७ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमान सोम)
पवमानाय गायत ।
(७७१) ९।८६।४४ (अत्रिर्भौमः । पवमानः सोमः)
विपश्चिते पवमानाय गायत ।

[५१५] ९।६५।८ = (२०४) ९।२६।५ = (२३७) ९।३२।२
[५१८] ९।६५।९ = (३९१) ९।६१।४
= (इन्द्र. ३५९) ८।६४।६
[५२०] ९।६५।१३ = (इन्द्र. २६५) ८।६।१३ (वत्स. काण्वः । इन्द्र.)
["] ९।६५।१३ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा पवमान सोमः ।
पवस्व विश्वदर्शतः ।
(९९०) ९।१०६।५ (चक्षुर्मानव. । पवमान सोम)
["] ९।६५।१३ = (३२४) ९।४६।५
[५२१] ९।६५।१४ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमानः सोम)
आ कलशा इन्दो धाराभिरोजसा ।
(९९२) ९।१०६।७ (मनुराप्सवः । पवमान सोम)
इन्दो धाराभिरोजसा ।
आ कलशं ।
[५२२] ९।६५।१५ = १।१३७।२ (परुच्छेपो दैवोदासि । मित्रावरुणा)
[५२३] ९।६५।१६ = (४५५) ९।६३।८
[५२४] ९।६५।१७ = (अग्नि २४६६) १।९३।१
(गोतमो राहूगणः । अग्नीषोमा)
[५२५] ९।६५।१८ = (१०५) ९।१३।२
[५२६] ९।६५।१९ = (४०८) ९।६१।२१
[५२७] ९।६५।२० = (इन्द्रः ३२३२) ५।५१।७ (स्वस्त्यात्रेय. । इन्द्रवायू)
["] ९।६५।२० = ८।४१।१ (नाभाक.. काण्वः । वरुण)
[५२८] ९।६५।२१ = (२४७) ९।३३।६
[५२९] ९।६५।२२ = (इन्द्र २४३५) ८।९३।६
[५३१] ९।६५।२४ = (अग्निः ४३७) ३।६।५
["] ९।६५।२४ = (१०८) ९।१३।५
[५३२] ९।६५।२५ (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमानः सोमः)
पवते हर्यतो हरि ।
(९९८) ९।१०६।१३ (अग्निश्चाक्षुष. । पवमान सोमः)
["] ९।६५।२५ = ३।६२।१८ (विश्वामित्रो गाथिन, जमदग्निर्वा । मित्रावरुणौ)
गृणाना जमदग्निना ।
[५३३] ९।६५।२६ = (१८७) ९।२४।१
[५३५-३७] ९।६५।२८ ३० पान्तमा पुरुस्पृहम् ।
[५३८] ९।६६।१ = (१८०) ९।२३।१

[५३८] ९।६६।१ = (अग्नि. २२७) १।७५।४ (गोतमो राहूगण. । अग्नि)
[५४१] ९।६६।४ = (३००) ९।४०।५
[५४४] ९।६६।७ = १।४०।४ (कण्वो घौर. । ब्रह्मणस्पति)
[५४७] ९।६६।१० = (७७) ९।१०।१
दधानो (दक्षे) अक्षिति. श्रवः ।
[५४८] ९।६६।११ (शत वैखानसाः । पवमान सोम)
अच्छा कोश मधुश्चुतम् ।
(१०११) ९।१०७।१२ (सप्तर्षयः । पवमान सोम)
[५४८] ९।६६।११ = (१५५) ९।१९।४
[५४९] ९।६६।१२ = (४९४) ९।६४।१७
[५५०] ९।६६।१३ = (३०८) ९।४४।१
प्र ण इन्दो महे रण (तन) ।
["] ९।६६।१३ = (१४) ९।२।४ आपो अर्षन्ति सिन्धव. ।
[५५१] ९।६६।१४ = (४१६) ९।६१।२९
अस्य ते सख्ये वयम् ।
["] ९।६६।१४ = (२३५)९।३१।६ इन्दो सखित्वमुश्मसि ।
[५५५] ९।६६।१८ = (इन्द्र.३१५२) ४।४१।७
[५५९] ९।६६।२२ = (४२०) ९।६२।३
[५६०] ९।६६।२३ = (३७४)९।५७।३ स मर्मृजान आयुभिः ।
[५६१] ९।६६।२४ (शत वैखानसा. । पवमान. सोम)
कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ।
(इन्द्र २६६४) १०।८९।२ (रेणुर्वैश्वामित्र । इन्द्रः)
—तमांसि त्विष्या जघान ।
[५६४] ९।६६।२७ = (१६५) ९।२०।७
[५६५] ९।६६।२८ = (२११) ९।२७।६
[५६८] ९।६७।१ = (३५५) ९।५२।५
[५७०] ९।६७।३ = (४७६) ९।६३।२९
[५७१] ९।६७।४ = (२४८) ९।३४।१
["] ९।६७।४ (कश्यपो मारीचः । पवमानः सोम)
तिरो वाराण्यव्यया ।
हरिः ।
(१००९) ९।१०७।१० (सप्तर्षय । पवमान. सोम.)
[५७४] ९।६७।७ = (१८७) ९।२४।१
["] ९।६७।७=(इन्द्र ३२१७)१।१३५।६-(४१८)९।६२।१
[५७६] ९।६७।९ = (५०८) ९।६५।१
["] ९।६७।९ = (३४३) ९।५०।३
[५७७ ७९] ९।६७।१०-१२ आ भक्षत् कन्यासु नः ।
[५८०] ९।६७।१३ = (१) ९।१।१
[५८१] ९।६७।१४ = (१४०) ९।१७।४
[५८३] ९।६७।१६ = (९५) ९।१२।१
[५८४] ९।६७।१७ = (३२०) ९।४६।१
["] ९।६७।१७ = (इन्द्र.१७०) ८।३।१५
(मेध्यातिथिः काण्वः । इन्द्र.)
[५८६] ९।६७।१९ = (१६५) ९।२०।७
[५९५] ९।६७।२८ = (११२७) १।९१।१७
[५९६] ९।६७।२९ (पवित्र आङ्गिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । पवमानः सोमः)
अगन्म बिभ्रतो नमः ।
१०।६०।१ (बधुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गोपायना । असमाति)
[५९८] ९।६७।३१ यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
(५९९) ९।६७।३२ पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः— ।
[६०६] ९।६८।७ = (इन्द्र.१७६१) ५।३२।३
[६०७] ९।६८।८ (वत्सप्रिर्भालन्दनः । पवमानः सोमः)
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभ. ।
(७४४) ९।८६।१७ (सिकता निवावरी । पवमानः सोम)
[६०८] ९।६८।९ (वत्सप्रिर्भालन्दनः । पवमानः सोमः)
सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ।
(७३६) ९।८६।९ (अकृष्टा माषाः । पवमान सोमः)
[६०९] ९।६८।१० (वत्सप्रिर्भालन्दनः । पवमानः सोमः)
एवा नः सोम परिषिच्यमानो ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ।
(८९२) ९।९७।३६ (पराशरः शाक्त्यः । पवमान सोमः)
एवा— ।
(अग्निः१६००) १०।४५।१२ (वत्सप्रिर्भालन्दनः । अग्नि.)
अद्वेषे— ।
[६१७] ९।६९।८ (हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद् ।
(७६५) ९।८६।३८ (अकृष्टामाषादयस्त्रयः । पवमान सोमः)
स नः— ।
["] ९।६९।८ = (इन्द्रः२४३२) ८।९३।३
(सुकक्ष आङ्गिरसः । इन्द्र.)
[६१९] ९।६९।१० =(अग्निः५७) १।३१।८
(हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । अग्निः)
[६२२] ९।७०।३ =(अग्निः३८८) २।२।४
(गृत्समदः शौनकः । अग्निः)
[६२३] ९।७०।४ स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः ।
(९३३) ९।९९।७ स मृज्यते सुकर्मभिः ।
[६२४] ९।७०।५ स मर्मृजान इन्द्रियाय धायसे ।
(७३०) ९।८६।३ सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे ।

[६२७] ९।७०।८ = (१०४१) ९।१०८।१६
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे ।
[६२८] ९।७०।९ (रेणुर्वैश्वामित्रः । पवमानः सोमः)
इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश ।
(१०४१) ९।१०८।१६ (शक्तिर्वासिष्ठः । पवमानः सोमः)
[६२९] ९।७०।१० (रेणुर्वैश्वामित्रः । पवमानः सोमः)
हितो न सप्तिरभि वाजमर्ष ।
(७३०) ९।८६।३ (अकृष्टा माषाः । पवमानः सोमः)
अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष ।
[६३७] ९।७१।८ = (अग्निः १८७५) १।९५।८
(कुत्स आङ्गिरसः । अग्निः औषसोऽग्निर्वा)
[६४१] ९।७२।४ (हरिमन्त आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ।
(७४०) ९।८६।१३ (सिकता निवावरी । पवमानः सोमः)
[६४४] ९।७२।६ = (मरुतः ११३) १।६४।६
(नोधा गोतमः । मरुतः)
[६४५] ९।७२।७ (हरिमन्त आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवोऽपामूर्मौ सिन्धुषु ।
सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ।
(७३५) ९।८६।८ (अकृष्टा माषाः । पवमानः सोमः)
अपामूर्मिं ... सिन्धुषु ।
नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ।
(७४८) ९।८६।२१ (पृश्नयोऽजाः । पवमानः सोमः)
सोमो हृदे ... ।
[६४६] ९।७२।८ (हरिमन्त आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः। रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि ।
(१०२३) ९।१०७।२४ (सप्तर्षयः । पवमानः सोमः)
स तू ।
(१०२०) ९।१०७।२१ रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं ।
[६५१] ९।७३।४ (पवित्र आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
(७२५) ९।८५।१० (वेनो भार्गवः । पवमानः सोमः)
[६५७] ९।७४।१ = (५३) ९।७।४
[६६१] ९।७४।५ = १।९२।१३ (गोतमो राहूगणः । उषाः)
[६६५] ९।७४।९ = (१३६) ९।१६।८
["] ९।७४।९ (कक्षीवान् दैर्घतमसः । पवमानः सोमः)
स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये ।
(९००) ९।९७।४४ (पराशरः शाक्त्यः । पवमानः सोमः)
... पवमान इन्दो ।
[६६७] ९।७५।२ = (इन्द्र ३३०५) १।१५५।३

(दीर्घतमा औचथ्यः । इन्द्राविष्णू)
[६६९] ९।७५।४ (कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
प्ररोचयन् रोदसी मातरा शुचिः ।
(७२७) ९।८५।१२ (वेनो भार्गवः । पवमानः सोमः)
प्रारूरुचद् रोदसी मातरा शुचिः ।
[६७१] ९।७६।१ (कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसः । अत्यो न ।
(६८०) ९।७७।५ (कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
चक्रिर्दिवः —। अत्यो न ।
[६७५] ९।७६।५ (कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
वृषेव यूथा परि कोशमर्षसि . कनिक्रदत् ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमः ।
(८५२) ९।९६।२० (प्रतर्दनो दैवोदासिः । पवमानः सोमः)
— — परि कोशमर्षन् कनिक्रदत् ।
(८८८) ९।९७।३२ (सप्तर्षयः । पवमानः सोमः)
कनिक्रदत् ।
— — मत्सरवान् ।
[६७६] ९।७७।१ (कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।
१०।७५।४ (सिन्धुक्षित्प्रैयमेधः । नद्यः)
[६८१] ९।७८।१ प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यदत् ।
(७६०) ९।८६।३३ = (९९७) ९।१०६।१२
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ।
(९।८६।३३ उपावसुः)
["] ९।७८।१ अपो देवानामुप याति निष्कृतम् ।
(७३४) ९।८६।७ सोमो देवानामुप ।
[६८५] ९।७८।५ = ७।७७।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । उषाः)
[६८६] ९।७९।१ अर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः ।
(इन्द्र २७८०) १०।१३३।३ अर्यो नशन्त नो धियः ।
[७०५] ९।८०।५ (वसुर्भारद्वाजः । पवमानः सोमः)
इन्द्रं सोम मादयन् दैव्यं जनं ।
(७१३) ९।८४।३ (प्रजापतिर्वाच्यः । पवमानः सोमः)
इन्द्रं सोमो मादयन् ।
[७०९] ९।८२।१ = (४११) ९।६२।४
[७१०] ९।८३।५ (पवित्र आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
नभो वसानः ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ।
(७६७) ९।८६।४० (अकृष्टामाषादयश्च । पवमानः सोमः)
अपो वसानो ।
वाजमारुहत् सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ।

[७११] ९।८४।१ = (इन्द्र ३३३२) ५।५१।७ (स्वस्त्यात्रेयः । इन्द्रवायू)
= (२४४) ९।३३।२ = (२४९) ९।३४।२
(त्रित आप्त्य । पवमानः सोम)
[७१२] ९।८४।२ = (इन्द्रः ८०८) १।५६।४ (सव्य आङ्गिरस । इन्द्र)
[७१३] ९।८४।३ = (६९५) ९।८०।५
[७१५] ९।८४।५ = (६७१) ९।७६।१
[७२०] ९।८५।५ स्वायुधस्त्वयं समया वारमर्षसि ।
(९६२) ९।९७।५६ वि वारमव्यं समयाति याति ।
[७२२] ९।८५।७ = (४२०) ९।६२।३
[७२४] ९।८५।९ = (अग्नि १७७९) ६।७।७ (भरद्वाजो बार्हस्पत्य । वैश्वानरोऽग्निः)
[''] ९।८५।९ राजा पवित्रमत्येति रोरुवत् ।
(७३४) ९।८६।७ वृषा पवित्रमत्येति ।
[७२५] ९।८५।१० = (६५१) ९।७३।४
[''] ९।८५।१० वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
(८३१) ९।९५।४ अंशुं दुहन्त्युक्षण ।
[७२६] ९।८५।११ (वेनो भार्गवः । पवमानः सोम)
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं ।
(७५८) ९।८६।३१ (अकृष्टामाषादयस्त्रयः । पवमानः सोम)
[७२७] ९।८५।१२ (वेनो भार्गवः । पवमान सोम)
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत् ।
१०।१२३।७ (वेनो भार्गवः । वेनः)
ऊर्ध्वो ।
१०।१२३।८ (वेनो भार्गवः । वेनः)
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानः ।
[''] ९।८५।१२ = (६६९) ९।७५।४
[७३०] ९।८६।३ = (६०९) ९।७०।१०
[''] ९।८६।३ (अकृष्टा माषाः । पवमानः सोम)
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये ।
(८९६) ९।९७।४० (पराशर शाक्त्य । पवमानः सोम)
सानो अव्ये ।
[७३०] ९।८६।३ = (६२४) ९।७०।५
[७३४] ९।८६।७ = (६८१) ९।७८।१
[''] ९।८६।७ = (७२४) ९।८५।९
[७३५] ९।८६।८ = (६४५) ९।७२।७
[७३६] ९।८६।९ = (अग्निः १११) १।५८।२

[''] ९।८६।९ = (६०८) ९।६८।९
[७४०] ९।८६।१३ = (६४२) ९।७२।४
[७४४] ९।८६।१७ = (६०७) ९।६८।८
[७४६] ९।८६।१९ = (३८६) ९।६०।३
[७४८] ९।८६।२१ = (६४५) ९।७२।७
[७५३] ९।८६।२६ = (११७) ९।१४।५
[७५६] ९।८६।२९ (पृश्नयोऽजाः । पवमानः सोमः)
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
(९४३) ९।१००।९ (रेभसूनू काश्यपौ । पवमान सोम)
[७५७] ९।८६।३० = (इन्द्र.१६१) ८।३।६
[७५८] ९।८६।३१ = (७२६) ९।८५।११
[७६०] ९।८६।३३ (अकृष्टामाषादयस्त्रयः । पवमान सोमः)
पुनानो वाचं जनयन्नुपावसु ।
(९९७) ९।१०६।१२ (अग्निश्चाक्षुष । पवमानः सोमः)
—जनयन्नसिष्यदत् ।
[७६२] ९।८६।३५ = (२७५) ९।३८।४
[''] ९।८६।३५ (अकृष्टामाषादयस्त्रयः । पवमानः सोमः)
दिवो विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ।
(१०३३) ९।१०८।१६ (शक्तिर्वासिष्ठः । पवमानः सोम)
दिवो विष्टम्भ उत्तमः ।
[७६५] ९।८६।३८ = (६१७) ९।६९।८
[७६७] ९।८६।४० = (७१०) ९।८३।५
[७७१] ९।८६।४४ = (५१४) ९।६५।७
[७७३] ९।८६।४६ = (७२६) ९।८५।११
[७८४] ९।८७।९ = (अग्नि ९५०) ६।१।१२
(भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्नि)
[७८५] ९।८८।१ = (इन्द्र २२१३) ७।२९।१
(वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
[७९२] ९।८८।८ = (११०३) १।९१।३
[७९९] ९।८९।७ = ४।५१।१० (वामदेवो गौतमः । उषाः)
[८०२] ९।९०।३ = (इन्द्र १८७८) ६।१९।८
(भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्र)
[८०४] ९।९०।५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । पवमानः सोमः)
मत्सि वरुणं मत्सि मित्रं मत्सि ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि ।
(८९८) ९।९७।४२ (पराशर शाक्त्यः । पवमान सोमः)
मत्सि मत्सि मित्रावरुणा ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि ।
[८०६] ९।९१।१ दश स्वसारो अधि सानो अव्ये ।
(८१५) ९।९२।४ दश स्वपाभिरधि सानो अव्ये ।

[८१५] ९।९२।४ = ८।५७(वाल०९)२ (मेध्यः काण्वः । अश्विनौ)
["] ९।९२।४ = (८०६) ९।९१।१
[८१७] ९।९२।६ परि सद्मेव पशुमान्ति होता ।
(८५७) ९।९७।१ मितेव सद्म पशुमान्ति होता ।
[८२९] ९।९५।२ = २।४२।१ (गृत्समदः शौनकः । शकुन्तः)
[८३१] ९।९५।४ = (७२५) ९।८५।१०
[८३२] ९।९५।५ = ४।५१।१० (वामदेवो गौतमः । उषा)
[८३५] ९।९६।३ (प्रतर्दनो दैवोदासिः । पवमानः सोमः)
स नो देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इन्द्रपानः ।
पुनानः ।
(८८३) ९।९७।२७ (मृळीको वासिष्ठः । पवमानः सोमः)
एवा देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरसे देवपानः ।
... पुनानः ।
[८३७] ९।९६।५ = (इन्द्रः१७७२) ८।३६।४
(श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्रः)
[८३८,८४९] ९।९६।६,१७ सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ।
[८४१] ९।९६।९ (प्रतर्दनो दैवोदासिः । पवमानः सोमः)
सहस्रधारः शतवाज इन्दुः ।
(१०७३) ९।११०।१० (त्र्यरुणत्रसदस्यू पौरुकुत्स्यः । पवमानः सोमः)
[८४८] ९।९६।१६ = (इन्द्रः८६०) १।६१।५
[८४९] ९।९६।१७ (प्रतर्दनो दैवोदासिः । पवमानः सोमः)
शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति ।
(१०७५) ९।१०९।१२ (अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः । पवमानः सोमः)
—जज्ञानं हरिं मृजन्ति ।
[८५२] ९।९६।२० = (६७५) ९।७६।५
[८५५] ९।९६।२३ = (६०८) ९।६८।९
[८५७] ९।९७।१ = (८१७) ९।९२।६
[८६१] ९।९७।५ = ४।३३।२ (वामदेवो गौतमः । ऋभवः)
["] ९।९७।५ सहस्रधारः पवते मदाय ।
(९४९) ९।१०१।६ सहस्रधारः पवते ।
[८६७] ९।९७।११ = (११३६) ८।४८।२
[८७१,८७५] ९।९७।१६,१९
अभि (१९ परि) ष्णुना धन्व सानो अव्ये ।
[८८०] ९।९७।२४ = (अग्निः १११) १।६०।४
(नोधा गौतमः । अग्निः)
[८८३] ९।९७।२७ = (८३५) ९।९६।३
[८८६] ९।९७।३० = (अग्निः १६१) १।६८।९
(पराशरः शाक्त्यः । अग्निः)
[८८८] ९।९७।३२ = (६७५) ९।७६।५
[८९२] ९।९७।३६ = (६०९) ९।६८।१०
[८९५] ९।९७।३९ = (इन्द्र ८७३) १।६२।२
(नोधा गौतमः । इन्द्रः)
[८९६] ९।९७।४० = (७३०) ९।८६।३
[८९८,९०५] ९।९७।४२,४९ मत्सि (९।९७।४९ अभि)
मित्रावरुणा पूयमानः ।
[८९८] ९।९७।४२ = (८०४) ९।९०।५
[९००] ९।९७।४४ = (६६५) ९।७४।९
[९०२] ९।९७।४६ = १।१९०।२
(अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । बृहस्पतिः)
[९०४] ९।९७।४८ = (अग्नि २०६) १।७३।२
(पराशरः शाक्त्यः । अग्निः)
[९०५] ९।९७।४९ = (इन्द्रः२१८५) ७।२३।६
(वसिष्ठो मैत्रावरुणि । इन्द्रः)
[९१२] ९।९७।५६ = (इन्द्र १४१०) ३।४६।२
(विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः)
["] ९।९७।५६ = (७२०) ९।८५।५
[९१५] ९।९८।१ = (५०२) ९।६४।२५
[९१८] ९।९८।४ = (इन्द्र ९४३) १।८४।७
(गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
[९२०] ९।९८।६ = १।१८।६ (मेधातिथि काण्वः । सदसस्पतिः)
[९२४] ९।९८।१० = (९३) ९।११।८
[९३२] ९।९९।६ = (३४५) ९।५०।५
["] ९।९९।६ = (१६४) ९।२०।६
[९३३] ९।९९।७ = (६२३) ९।७०।४
["] ९।९९।७ = (२९) ९।३।९
["] ९।९९।७ = (५१) ९।७।२
[९३४] ९।९९।८ = (१८९) ९।२४।३
["] ९।९९।८ = (४४९) ९।६३।२
[९३५] ९।१००।१ = १।१८।६(मेधातिथिः काण्वः । सदसस्पतिः)
[९३६] ९।१००।२ = (२८९) ९।४०।६
["] ९।१००।२ = (३७) ९।४।७
[" ९४२] ९।१००।२,८ विश्वानि दाशुषो गृहे ।
[९४५] ९।१००।५ = (१) ९।१।१
["] ९।१००।५ (रेभसूनू काश्यपौ । पवमानः सोमः)
मित्राय वरुणाय च ।
१०।८५।१७ (सूर्या सावित्री ऋषिका । देवाः)
[९४०] ९।१००।६ = (१०६) ९।१३।३
["] ९।१००।६ = (९९१) ९।१०६।६ देवेभ्यो मधुमत्तमः ।

[९४१] ९।१००।७=(इन्द्रः२०८७) ६।४५।२८
(शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
[”] ९।१००।७=(३९) ९।४।९
[९४२] ९।१००।८=(३१) ९।४।१
[”] ९।१००।८=(अग्निः१३३१) ८।४३।२३
[९४३] ९।१००।९=(७५६) ९।८६।२०
[९४९] ९।१०१।६=(८६१) ९।९७।५
[९५०] ९।१०१।७=८।३१।११ (मनुर्वैवस्वत । दम्पत्याशिष)
[”] ९।१०१।७=(१०४) ९।१३।१
[९५१] ९।१०१।८=(१८७) ९।२४।१
[९५२] ९।१०१।९=(इन्द्रः३०४१) ५।८६।२
(अत्रिर्भौमः । इन्द्राग्नी)
[९५३] ९।१०१।१० (मनुः सावरणः । पवमानः सोमः)
अस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
(९९१) ९।१०६।६ (चक्षुर्मानवः । पवमानः सोमः)
अस्मभ्यं गातुवित्तमः ।
[९५५] ९।१०१।१२=(१७५) ९।२२।३
[”] ९।१०१।१२=(इन्द्रः१८) १।५।५
[९५८] ९।१०१।१५=७।८६।१ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वरुण)
[९५९] ९।१०१।१६ (प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा । पवमानः सोमः)
अव्यो वारेभिः पवते ।
(१०३०) ९।१०८।५ (ऊरुराङ्गिरस । पवमान सोम)
[”] ९।१०१।१६=(१६) ९।२।६
[९६४] ९।१०२।५=(अग्नि २४४०) १।१९।३
(मेधातिथिः काण्वः । अग्निर्मरुतश्च)
[९६६] ९।१०२।७=(अग्निः१९२४) १।१४२।७
(दीर्घतमा औचथ्यः । आप्रीसूक्तं [उषासानक्ता])
[९६९] ९।१०३।२=(५७१) ९।६७।४
[”] ९।१०३।२ (द्वित आप्त्य । पवमान सोमः)
वारागव्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति ।
(१०११) ९।१०७।२२ (सप्तर्षयः । पवमानः सोम)
वारे . **अव्यये** ।
गोभिरञ्जानो अर्षसि ।
[९७०] ९।१०३।३=(१८३) ९।२३।४
[९७३] ९।१०३।६=(२९) ९।३।९
[”] ९।१०३।६=(२६८) ९।३७।३
[९७४] ९।१०४।१=१।२२।८ (मेधातिथिः काण्वः । सविता)
[९७५] ९।१०४।२ (पर्वतनारदौ काण्वौ, शिखण्डिन्यावप्सरसौ काश्यपौ वा । पवमानः सोम)
समी **वत्सं न मातृभिः** ।
देवाव्यं१ मदम् ।
(९८१) ९।१०५।२ (पर्वतनारदौ काण्वौ । पवमानः सोम)
सं **वत्स इव मातृभिः** ।
देवावीर्मदो ।
[९७६] ९।१०४।३=१।१३६।४
(परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
[९७९] ९।१०४।६ रक्षसं कं **चिदत्रिणम् ।**
(९८५) ९।१०५।६ अदेवं **कं** ।
[९८१] ९।१०५।२=(९७५) ९।१०४।२
[९८७] ९।१०६।२=(४७) ९।६।७
[९८८] ९।१०६।३=(७७) ९।१०।१
[९८९] ९।१०६।४=(इन्द्रः १७८५) ८।९१।३
(अपाला आत्रेयी । इन्द्र)
[”] ९।१०६।४=(२२३) ९।२९।६
[९९०] ९।१०६।५=(५२०) ९।६५।१३
[९९१] ९।१०६।६=(९५३) ९।१०१।१०
[”] ९।१०६।६=(९४०) ९।१००।६
[९९२] ९।१०६।७=(५११) ९।६५।१४
[९९५] ९।१०६।१०=(१३६) ९।१६।८
[”] ९।१०६।१०=(२७) ९।३।७
[९९६] ९।१०६।११=(४५) ९।६।५
[९९७] ९।१०६।१२ (अग्निश्चाक्षुषः । पवमानः सोम)
मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
(१०१०) ९।१०७।११ (सप्तर्षयः । पवमानः सोमः)
[९९७] ९।१०६।१२=(७६०) ९।८६।३३
[९९८] ९।१०६।१३=(५३२) ९।६५।२५
[१०००] ९।१०७।१=४।४५।५ (वामदेवो गौतमः । अश्विनौ)
[१००३] ९।१०७।४=(४७५) ९।६३।२८
[”] ९।१०७।४=(इन्द्रः ५५३) ८।६१।६
(भर्गः प्रागाथः । इन्द्र)
[१००५] ९।१०७।६=(५५) ९।७।६
[१००६] ९।१०७।७=(इन्द्रः ३०) १।७।३
(मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः)
[१००९] ९।१०७।१०=(५७१) ९।६७।४
[१०१०] ९।१०७।११=(९९७) ९।१०६।१२
[१०११] ९।१०७।१२=(५४८) ९।६६।११
[१०१३] ९।१०७।१४=(१८३) ९।२३।४
[”] ९।१०७।१४=(इन्द्रः ४३७) ८।३४।१३
(नीपातिथिः काण्वः । इन्द्र)

[१०१३] ९।१०७।१४ = (१६६) ९।२१।१
[१०१४] ९।१०७।१५ (सप्तर्षयः । पवमानः सोमः)
राजा देव ऋतं बृहत् ।
(१०३३)९।१०८।८(ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरस । पवमानः सोम)
[१०१६] ९।१०७।१७ = (४७) ९।६।७
[”] ९।१०७।१७ = (४६४) ९।६३।१७
[१०२०] ९।१०७।२१ = (६४६) ९।७२।८
[१०२१] ९।१०७।२२ = (५२) ९।७।३
[”] ९।१०७।२२ = (९६९) ९।१०३।२
[१०२२] ९।१०७।२३ = (१०६) ९।१३।३
[१०२३] ९।१०७।२४ = (६४६) ९।७२।८
[१०२४] ९।१०७।२५ = (४७२) ९।६३।२५
[१०२५] ९।१०७।२६ = (२२५) ९।३०।२
[”] ९।१०७।२६ = (११७) ९।१४।५
[१०२६] ९।१०८।१ = (४९९) ९।६४।२२
[१०३०] ९।१०८।५ = (९५९) ९।१०१।१६
[१०३१] ९।१०८।६ = ८।७३।१८
(गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा । अश्विनौ)
[१०३३] ९।१०८।८ = (१०१४) ९।१०७।१५
[१०४०] ९।१०८।१५ = (९३) ९।११।८
[”] ९।१०८।१५ = (४९९) ९।६४।२२
[१०४१] ९।१०८।१६ = (६२८) ९।७०।९
[”] ९।१०८।१६ = (इन्द्र ७७७) ८।६।३५
(वत्स. काण्वः । इन्द्रः)
[”] ९।१०८।१६ = (६२७) ९।७०।८
[”] ९।१०८।१६ = (७६२) ९।८६।३५
[१०५३] ९।१०९।११ = (८४९) ९।९६।१७
[१०६३] ९।१०९।२१ = (इन्द्र १८१) ८।३२।२
(मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः)
[१०७२] ९।११०।९ = (इन्द्रः ११८४) २।१७।४
(गृत्समदः शौनकः । इन्द्रः)
[१०७३] ९।११०।१० = (८४१) ९।९६।९
[१०७८] ९।१११।३ = ८।१५।१३
[१०७९-८२] ९।११२।१-४=(१०८३-९३)९।११३।१-११=
(१०९४-९८) ९।११४।१-४ इन्द्रायेन्दो परि स्रव ।
[१०९०-९३] ९।११३।८-११ तत्र माममृतं कृधि ।
[१०९७] ९।११४।४ (कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः)
मो च नः कि चनाममद् ।
१०।५९।८-९ (बन्धु श्रुतबन्धु० । द्यावापृथिवी)
मो षु ते कि चनाममत् ।
(इन्द्रः३३५५) १०।५९।१० (बन्धु श्रुतबन्धुविप्रबन्धु-
गौपायनाः । इन्द्रद्यावापृथिव्यः ।

दैवत-संहितान्तर्गत

सोमदेवता-मंत्राणां उपमासूची ।

(अस्यां सूच्यां मंत्रक्रमाङ्क १०९७ पर्यन्त ऋग्वेदस्य नवमं मण्डलं वर्तते । तस्य निर्देशः कृतो नास्ति ।)

अग्निः न वने ८८,५, ७८९ आसृज्यमान. पाजांसि ।
अग्नि न मथितम् ८,४८,६, ११४० सं दिदीपः ।
अग्ने. इव २२,२, १७४ अमाः वृथा ।
अत्कं न निक्तम् ६९,४; ६१३ परि सोम. अव्यत ।
अत्याः हियानाः न १३,६, १०९ असृग्रं वाजसातये ।
अत्यः न ३२,३; २३८ गोभिः अज्यते ।
अत्यः इव ४३,१; ३०२ मृज्यते ।
अत्यः न वाजसृत् ४३,५; ३०६ इन्दु कनिक्रन्ति ।
अत्यः न सत्वभिः ७६,१; ६७१ वृथा पाजांसि कृणुते ।
अत्यः न यूथे ७७,५; ६८० वृषयु. कनिक्रदत् ।
अत्यः न ८१,२; ६९७ वीळहा वृषा ।
अत्यः न ८२,२, ७०२ मृष्टः ।
अत्यः न ८५,५ ७२० सानसिः ।
अत्यः न हियानः ८६,३, ७३० अभि वाजम् अर्ष ।
अत्यः न ८६,२६; ७५३ क्रीळन् परिवार अर्षति ।
अत्यः न ८६,४४; ७७१ क्रीळन् हरिः असरत् ।
अत्यः न ९३,१, ८१८ वाजी द्रोणं ननक्षे ।
अत्यः न वाजी ९६,१५, ८४७ अराती. तरतीत ।
अत्यः न ९६,२०; ८५२ सृत्वा ।
अत्यः न ९७.१८; ८७४ क्रद ।
अत्यः न ९७,४५, ९०१ हित्वा ।
अत्यासः न ससृजानासः ९७,२०; ८७६ शुक्रास धन्वन्ति ।
अत्यम् इव वाजिनम ६,५, ४५ मृजन्ति योषणः दश ।
अन्धस यथा ते जातम् ५५,२ ३६५ नि बर्हिषि सद ।
अपसः यथा रथम् १०७,१३; १०१२ तम् ईम् नदीषु ।
अपां न ऊर्मयः ३३,१, २४१ सोमासः प्रयन्ति ।
अपाम् इव ऊर्मय ९५,३, ८३० तर्तुराणाः मनीषा ।
अभ्रा इव विद्युत् ७६,३, ६७३ रोदसी प्र पिन्व ।
अरिता इव नावम् ९५,२ ८२९ पथ्यां वाचम् इयर्ति ।
अरुषः न ७२,१; ६३९ युज्यते ।
अर्यमा इव ८८,८, ७९२ दक्षाय्य. ।
अर्यमा इव १,९१,३. ११०३ दक्षाय्यः ।
अर्वान् इव ९७,२५; ८८१ श्रवसे सातिम् अच्छा ।
अर्वन्त न १०,१; ७७ श्रवस्यवः ।
अर्वन्तः न श्रवस्यवः ६६,१०, ५४७ सर्गाः असृक्षत ।
अर्वताम् इव वाजेषु ४७,५; ३३० भरेषु जिग्युषाम् असि ।
अर्वताम् इव सर्गासः १०,२५,४, ११६३ समु प्रयन्ति ।
अश्व. न ६४,३; ४८० चक्रद्. वृषा ।
अश्वः न ७१,६; ६३५ यज्ञिय. देवान् अपेति ।
अश्व न ९७,२८, ८८४ क्रदः ।
अश्व. न १०१,२. ९४५ कृत्व्य. ।
अश्व न १०९,१०, १०५१ निक्तः सोमः ।
अश्व न हेतार. ६२,६, ४२३ अमृताय ईम् आशुशुभन् ।
अश्वं न ८७,१; ७७६ वाजिनं मर्जयन्त. ।
अश्व न १०८,७; १०३२ अप्तुरम् रजस्तुरम् ।
अश्वया इव १०७,८; १००७ हरिता याति धारया ।
अहानि इव सूर्यः वासराणि ८,४८,७; ११४१ न आयूंषि ।
अहि न ८६,४४, ७७१ जूर्णाम् अति सर्पति त्वचम् ।
अद्युः न ईक्षेण्यास ७७,३; ६७८ चारवः ।
आजिम् यथा ३२,६, २४० एवं हितम् अगन् ।
आपः न प्रवता ६,४; ४४ इन्दव. अन्वसरन् ।
आपः न प्रवताः २४,२, १८८ अभि गावः अधन्विषुः ।
आप न ८८,७, ७९१ सुमतिः भव ।
इन्द्रः न ८८,४, ७८८ महा कर्माणि चक्रिः ।
इन्द्रस्य इव आजौ ९७,१३, ८६९ वग्नुः आ शृण्वे ।
इषुः न धन्वन् ६९,१, ६१० मतिः प्रति धीयते ।
उक्षा इव यूथा ७१,९; ६३८ परियन् अरावीत् ।
उत्स न कंचित् जनपानम् ११०,५, १०६८ अभि अभि हि ।
उपवक्ता इव होतुः ९५,५; ८३२ वाचम् इष्यन् ।
उरु इव ९६,१५, ८४७ गातुः ।
उशना इव काव्यम् ९७,७. ८६३ देवः देवानां जनिमा ।
उषसः न सूर्य ८४,२; ७१२ इन्दु सिषक्ति ।
उषा सूर्यः न रश्मिभिः ४१,५; २९४ मही रोदसी आपृण ।
ऊर्मिः इव अपाम् १०८,५; १०३० क्रीळन् पवते ।
ऊर्मि न सिन्धुः ९६,७; ८३९ सोमः गिरः आवीविपत् ।
ऊर्मे. इव सिन्धोः ५०,१, ३४१ ते स्वन उदीरते ।
ऋभुः न रथ्यं नवम् २१,६, १७१ दधाता केतम् आदिशे ।

कवयः न गृध्राः ९७,५७; ९१३ अदब्धाः पदे रेभन्ति ।
काम न ९७,४६; ९०२ य देवयतां असर्जि ।
कारिणे न ९७,३८, ८९४ धनं प्र यंसत् ।
कारिणाम् इव भरासः १०,२, ७८ गभस्त्योः दधन्विरे ।
कृत्या इव अत्यासः ४६,१; ३२० देववीतये असृग्रन् ।
कृष्टिहा इव ७१,२, ६३१ शूषः रोरुवत् प्र एति ।
गावः न ४१,१; २९० भूर्णय. ।
गावः यन्ति गोपतिम् ९७,३४, ८९० पृच्छमानाः सोम ।
गावः अस्त न धेनव ६६,१२; ५४९ इन्दव. समुद्रम् ।
गावः न धेनवः ६८,१, ६०० इन्दवः प्र असिष्यदन्त ।
गावः न यवसेषु १,९१,१३; ११९३ नः हृदि रारन्धि ।
गावः न यवसे १०,२५,१, ११६० ते सख्ये वय रणन् ।
गावः वत्सं न मातरः १२,२; ९६ इन्द्र विप्राः अभ्यनूषत ।
गाः इव ११२,३; १०८१ नानाधियः अनुतस्थिम ।
ग्रन्थिम् न ९७,१८, ८७४ ग्रथित माम् वि ष्य ।
घना इव ९७,१६, ८७२ विष्वक् दुरितानि विघ्नन् ।
घृतं न पवते मधु ६७,११, ५७८ अयं सोमः कपर्दिने ।
घृत न पवते शुचि ६७,१२, ५७९ अयं ते आघृणे सुतः ।
चमसाम् इव १०,२५,४; ११६३ त्वम् विवक्षसे ।
चरुः न ५२,३; ३५३ तम् ईङ्खय ।
चित्रम् न दिवः ६१,१६; ४०३ ज्योतिः बृहत् ।
जनः न पुरि १०७,१०, १००९ हरि. चम्वोः सदः विशत ।
जन न युध्वा ८८,५, ७८९ महत उपब्दिः ।
जमदग्निवत् ९७,५१, ९०७ नः आर्षेयं द्रविणं अभ्ययश्नवाम ।
जाया इव पत्यौ ८२,४, ७०४ अधिशेव महसे ।
जारः न योषितम् ३८,४; २७५ मानुषीषु आ सीदति ।
जारः न योषणाम् १०१,१४, ९५७ सरत् योनिम् आसदत् ।
जारम् इव योषा प्रियम् ३२,५; २४० प्रिय त्वा गावः ।
जारम् न कन्या ५६,३, ३७० दश योषणः त्वा अभ्यनूषत ।
दिवः न विद्युत् ८७,८, ७८३ सोमस्य धारा पवते ।
दिवः न वृष्टिः ८९,१; ७९३ पवमान अक्षाः ।
दिवः न वृष्टय ५७,१. ३७२ ते धाराः प्रयन्ति ।
दिवः न वृष्टय. ६२,२८, ४४५ असश्चतः ते धाराः प्रयन्ति ।
दिवः न सर्गाः ९७,३०; ८८६ अससृग्रम् अह्नाम् ।
दिवः न सानु १६,७; १३५ धारा पवित्रे वृथा अर्षति ।
दिवः न सानु ८६,९, ७३६ स्तनयन् अचिक्रदत् ।
दिव्याः न कोशासः ८८,६; ७९० सोमासः अभ्रवर्षाः ।
दिव्या विट् यथा ८८,७; ७९१ अनभिशस्ता तथा ।
दूतम् न ९९,५; ९३१ पूर्वचित्तय. तम् आशासते ।

देवः न सूर्य. ५४,३; ३६१ सोम भुवनोपरि तिष्ठति ।
देवः न सूर्यः ६४,९, ४८६ अक्रान् ।
देवः न ६३,१३; ४६० सूर्यः ।
देवः न ९७,४८, ९०४ सविता सत्यमन्मा ।
द्रविणोदाः इव ८८,३; ७८७ रमन् विश्ववारः ।
धन्वन् न तृष्णा ७९,३; ६८८ समरीत तान् अभि ।
धारा इव उरु दुहे ६९,१, ६१० मतिः अस्य अग्रे आयती ।
धुर वाजी न यामनि ४५,४, ३१७ पवित्र अत्यक्रमीत् ।
धेनुः न वत्सम् ८६,२; ७२९ पयसाभि वज्रिणम् इन्दव ।
नदी फेनम् इव अथ० १,८,१, १२४० हविः यातुधानान् ।
नावा न सिन्धुम् ७०,१०, ६२९ वि अति पर्षि विद्वान् ।
नासत्या इव ८८,३, ७८७ हवे आ शंभविष्ठ ।
निम्नेन इव सिन्धवः १७,१; १३७ घ्नतः वृत्राणि भूर्णयः ।
पय न ९६,१५; ८४७ दुग्धम् ।
पयसा इव धेनवः ७७,१, ६७६ वाश्राः आभि अर्षन्ति ।
परावतः न साम १११,२; १०७७ धीतय यत्र आरणन्ति ।
पर्जन्यः वृष्टिमान् इव २,९; १९ मन्द्रा धारया पवस्व ।
पर्जन्यस्य इव २२,२, १७४ वृष्टय ।
पर्णवीः इव ४३,१, २१ एषः दीयति ।
पशौ न रेत: ९९,६; ८३२ सोमः चमूषु सीदति ।
पिता इव सूनवे १०,२५,३; ११६२ न मृळ ।
पिता इव सूनवे ८,४८,४, ११३८ सुशेव नः शं भव ।
पितु न पुत्र ९७,३०; ८८६ क्रतुभि यतानः त्वम् ।
पित्र्यस्य इव रायः ८,४८,७; ११४१ सुतस्य ते भक्षीमहि ।
पूषा इव ८८,३, ७८७ धीजवनः ।
पृतनाषाट् न ८८,७, ७९१ त्वं यज्ञः ।
पैद्व न ८८,४, ७८८ त्वं अहि हन्ता ।
प्रघ्नताम् इव सतनिः ६९,२; ६११ पवमानः परिवारम् अर्षति
प्रिय. न मित्र ८८,८, ७९२ शुचिः त्वम् असि ।
प्रियः न मित्रः १,९१,३; ११०३ शुचिः ।
प्रियाम् न जारः ९६,२३, ८५५ शत्रून् अपघ्नन् एषि ।
भुजे न पुत्रः ओण्यो १०१,१४, ९५७ जामिः अत्के अव्यत
भृतिम् न १०३,१, ९६८ उद्यतं वचः आभर ।
मख. न २०,७, १६५ क्रीळुः मंहयुः ।
मखम् न भृगव १०१,१३, ९५६ अराधस श्वानम् अपहत ।
मनवे यथा आपवथाः वयोधाः ९६,१२, ८४४ एवा पवस्व ।
मरुताम् इव स्वनः ७०,६; ६२५ नानदत् एति ।
मर्य इव स्व ओक्ये १,९१,१३, ११९३ नः हृदि रारन्धि ।
मर्यः न योषाम् ९३,२; ८१९ अभि निष्कृतं यन् ।

मर्यः न शुभ्र ९६,२०, ८५२ तन्व मृजानः ।
महिष. न ६९,३; ६१९ नृम्ण. शिशान शोभते ।
महिष. न शृङ्ग ८७,७, ७८२ तिग्मे शिशानः अदधावत् ।
महिषाः इव वनानि ३३,१, २४२ सोमास प्र यन्ति ।
मर्मृजान महिष न ९५,४, ८३१ मानौ अंशु दुहन्ति ।
मही इव द्यौ। अथ० ६,६,३, ११८६ वधत्मना तस्य बल ।
मही न धारा ८६,४४, ७७१ अति अन्ध अर्षति ।
मातरा इव १८,५; १४९ मही रोदसी स दोहते ।
मातरा न ददशान ७०,६, ६२५ उस्रियः नानदत् एति ।
मातृभि न शिशु. ९३,२, ८१९ वावशान. ।
मिता इव सद्म ९७,१; ८५७ सुतः पवित्र पर्येति रेभन् ।
मित्र' न २,६, १६ दर्शत ।
मृग न ३२,४, २३९ तक्त ।
मृग न महिष. ९२,६ ८१७ वनेषु मीदन् अयासीत् ।
यज्ञ न स्प्त धातृभि १०,३ ७९ सोमास गोभि अञ्जते ।
यूथे न नि'ष्टा वृषभ. ११०,९, १०७२ विश्वा भुवना वितिष्ठसे
योषा इव पिव्यावती ४६,२, ३२१ वायुम् असृक्षत ।
योषा इव सुदुघा ९६,२४, ८५६ सुधाराः आ यन्ति ।
रघुजा इव ८६,१, ७०८ त्मना मदा' अर्षन्ति ।
रथ. न ८८,२, ७८६ भूरिपाट् ।
रथः न ९०,१; ८०० वाजं सनिष्यन् अयासीत् ।
रथः न ९२,१, ८१२ सर्जि सनये हियानः ।
रथाः इव १०,१; ७७ प्रस्वानास अक्रमुः ।
रथाः इव १०,२, ७८ हिन्वानासः दधन्विरे ।
रथा इव प्र वाजिन २२,१; १७३ सर्गाः सृष्टाः अहेषत ।
रथाः इव वाजयन्त ६७,१७; ५८४ असृग्रन् देववीतये ।
रथाः इव सातिम् अच्छ ६९,९, ६१८ सोमाः इन्द्रं प्र ययुः ।
रथम् न ७१,५, ६३४ भुरिजोः सम् ईं अहेषत ।
रथ न गाव समनाह ८,४८,५, ११३९ सोमाः मां पर्वसु ।
रथे न वर्म ९८,२, ९१६ सुवानः अव्ययम् अव्यत ।
रथाः इव अश्व ६४,१०; ४८७ इन्दु. पविष्ट सृजत् ।
रथ्यः यथा ३६,१; २६० सुतः पवित्रे असर्जि ।
रथ्ये आजौ यथा ९१,१; ८०६ धिया सचेताः असर्जि ।
रथ्यासः यथा ८६,१, ७२९ एवा ते प्रमदास: पृथक् आशवः।
रसा इव विष्टपम् ४१,६, २९५ सोम विश्वतः परिसर ।
राजा इव विश ७,५; ५४ पवमानः स्पृध. अधि सीदति ।
राजा इव २०,५; १६३ सुव्रतः ।
राजा इव इभः ५७,३; ३७४ सुव्रतः ।
राजा इव ८२,१, ७०१ दस्म ।
राजा इव ९०,६, ८०४ क्रतुमान् ।
राजा न ९७,३०; ८८६ मित्रम् ।
राजा न ९२,६; ८१७ समिती. इयान ।
राजान न प्रशस्तिभि. १०,३, ७९ सोमासः गोभिः अञ्जते।
रेभ न ७१,७; ६३६ पूर्वीः उषसः विराजति ।
वत्स न मातु ऊधनि ६९,१; ६१० मति उपसर्जि ।
वत्स. इव मातृभि १०५,२; ९८१ इन्दु हिन्वानः समज्यते ।
वत्सम् न धेनव. १३,७, ११० वाश्रा अभि अर्षन्ति ।
वत्स जात न धेनवः १००,७, ९४१ मातर त्वां रिहन्ति ।
वत्स न मातृभिः १०४,२, ९७५ गय साधनं ससृजत ।
वत्स सशिश्वरीः इव ६१,१४, ४०१ तम् इत् गिरः ।
वत्स न पूर्वे आयुनि १००,१; ९३५ जात रिहन्ति मातर ।
वनुषः यशा सीदन्तः ६४,२९; ५०६ वाजी अक्रमीत् ।
वयो न वृक्षम् अथ० ६,२,२, ११४९ आ य विशन्तीन्दवः ।
वरः न योषणाम् १०१,१४, ९५७ सरत् योनिम् आसदम् ।
वरुण न सिन्धून् ९०,२, १२ वना वसाना ।
वर्मी इव १०८,६, १०३१ धृष्णो आ रुज ।
वसुभिः नानिक्तै ९३,३; ८२० गाव. पयसा अभि ।
वाजम् इव ३७,५; २७० सोम. असरत् ।
वाजम् इव ६२,१६, ४३३ सोमः असरत् ।
वाज न एतशः अच्छा १०८,२, १०२८ सः इषः ।
वाजे न वाजयुम् ६३,१९; ४६६ अव्यः वारेषु सिञ्चत ।
वाजी न सप्ति. ९६,९, ८४१ समना जिगाति ।
वाजी इव सानसिः १००,४; ९३८ वारं रहमाणा ।
वाजिनि इव शुभः ९४,१, ८२३ अस्मिन् धियः स्पर्धन्ते ।
वात न ९७,५२, ९०८ जूतः ।
वाताः इव २२,२; १७४ उरव ।
वायुः न नियुत्वान् ८८,३; ७८७ इष्टयामा त्वम् ।
विः योना वसतौ इव ६२,१५; ४३२ इन्दुः इह धीयते ।
विदुष न यज्ञम् यजु० ६,२६; ११९६ शृणोति देवः ।
विश्पतिः न १०८,१०, १०३५ वह्नि ।
वृक्षम् न पक्वम् ९७,५३, ९०९ धूनवत् वसूनि ।
वृषा इव यूथा ७६,५; ६७५ परि कोशम् अर्षसि ।
वृषा इव यूथा ९६,२०; ८५२ परि कोशम् अर्षन् ।
वृषा अभि कनिक्रदत् गाः ९७,१३, ८६९ शोण नदयन् ।
वृष्टयः पृथिवीम् इव १७,२; १३८ इन्द्र सोमासः अक्षरन् ।
वृष्टि न तन्यतुः १००,३, ९३७ मनोयुजं धियम् आ सृज ।
वृष्टेः इव ४१,३, २९२ स्वनः शृण्वे ।
वेः न द्रुषद् ७२,५, ६४३ चम्वोः आसदत् हरि ।
वेधाः न योनिम् १०१,१५, ९५८ हरिः पवित्रे अव्यतः ।
व्रजम् न पशुवर्धनाय ९४,१, ८१३ कनीयन् मन्म पवते ।

शकुनः न पत्वा वनेषु ९६,२३; ८५५ सोम कलशेषु सत्ता।
शकुना इव १०७,२०, १०१९ सूर्यम् अति पप्तिम्।
शर्धः न मारुतम् ८८,७, ७९१ त्व पवस्व।
शर्यहा इव शुरुधः ७०,५, ६२४ दुर्मतीः आदेदिशानः।
शर्याभिः न भरमाणः ११०,५, १०६८ अभ्यभि हि श्रवसा।
शिशुः न क्रीळन् ११०,१०; १०७३ पवमान अक्षाः।
शिशुः न जात ७४,१, ६५७ अवचक्रदत् वने।
शिशु जज्ञानम् (न) ९६,१७; ८४९ हर्यतं मृजन्ति।
शिशुम् न १०४,१; ९७४ यज्ञैः परि भूषत श्रिये।
शिशुम् न १०५,१; ९८० यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः।
शुभ्र न १४,५; ११७ ममृजे युवा।
शूरः न ७६,२, ६७२ आयुधा धत्ते।
शूरः न सत्वा गाः गव्यन् अभि ८७,७, ७८२ अदधावत्।
शूरः न १६,६, १३४। ६२,१९, ४३६ गोषु तिष्ठति।
शूर यन्निव सत्वभिः ३,४; २४ सिषासति।
शूरः न युध्यन् ७०,१०, ६२९ अव न निदः स्य.।
शूरः न रथः ९४,३; २५ कविः काव्या भरते।
श्येन न ३८,४; २७५ विक्षु सीदति।
श्येनः न ५७,३; ३७४ वंसु सीदति।
श्येनः न ६१,२१; ४०८ योनिम् आसीद।
श्येनः न ६२,४, ४११ योनिम् आसदत्।
श्येनः न ६५,१९; ५२६ योनिम् आसीदन्।
श्येन न योनिम् ७१,६, ६३५ सदनम् एषति।
श्येनः न ८२,१, ७०१ योनिं घृतवन्त आसदम्।
श्येन न वंसु ८६,३५, ७६२ कलशेषु सीदसि।
श्येनः न तक्त. ६७,१५; ५८२ ते रसः अर्षति।
श्येनः वर्म वि गाहते ६७,१४, ५८१ कलशेषु आ धावति।
श्रवस्यव न पृतनाज ८७,५; ७८० पवित्रेभिः पवमानाः।
श्रौष्टी इव धुरम् ८,४८,२ ११३६ राये अनु ऋध्या.।
सखा इव सख्ये १०४,५, ९७८ न गातुवित्तम भव।
सखा इव सख्ये १०५,५, ९८४ नर्यः रुचे भव।
सखा इव सख्ये ८,४८,४, ११३८ न श भव।
सखा सख्युः न ८६,१६, ७४३ प्र मिनाति सङ्गिरम्।
सख्युः न जामिम् ९६,२२; ८५४ क्रन्दन् एति।
सद्म इव ९२,६; ८१७ पशुमान्ति होता।
सप्तिः इव ९६,१६, ८४८ श्रवस्य।
सप्तिः न १०३,६, ९७३ वाजयुः।
सप्ति न वाजयु १०६,१२, ९९७ असर्जि कलशान् अभि।
सप्ति न वाजयुः मीळ्हे १०७,११, १०१० तिरः अण्वानि।
समुद्रासः न ८०,१, ६९१ सवनानि वि विव्यचुः।
समुद्रम् न १०७,९, १००८ सवरणानि अग्मन्।
समुद्रम् इव सिन्धवः १०८,१६, १०४१ धामन् आ विश।
सिन्धवः न नीची ८८,६ ७९१ सुतासः कलशान् अभि।
सर्गः न तक्ति १६,१; १२९ एतश।
सर्गः न सृष्ट ८७,७, ७८२ अर्वा अदधावत्।
सिंह न ९७,२८; ८८४ भीम।
सिन्धु न निम्नम् ९७,४५; ९०१ अभि वाजि अक्षा।
सिन्धु न १०७,१२, १०११ पिप्ये अर्णसा।
सिन्धोः इव ऊर्मि ८०,५, ६९५ पवमान अर्षसि।
सिन्धोः इव प्रवणे ६९,७, ६१६ तृपच्युता मदास।
सुयम न ९६,१५, ८४७ वोळ्हा
सूनु न १०७,१३. १०१२ प्रिय. सोमः मर्त्यः।
सूपस्थाभि न धेनुभि ६१,२१; ४०८ समिक्ष अरणः।
सूरः न ६६,२२, ५५९ विश्वदर्शतः।
सूरः न ८६,२४, ७११ चित्रः।
सूर न स्वयुग्भि १११,१, १०७६ हरिण्या रुचा पुनानः।
सूरं न उप ९७,३८, ८९४ उभे रोदसी वि आवः।
सूर्यः इव ५४,२, ३६१ उपदृक।
सूर्यः इव ५४,२; ३६१ सरांसि धावति।
सूर्यास न १०१,१२; ९५५ दर्शतासः।
सूर्यस्य इव न रश्मय ६४,७, ४८४ प्र ते सर्गाः असृक्षत।
सूर्यस्य इव रश्मय ६९,६, ६१५ द्रावयित्नव.।
सूर्ये न विश. ९४,१, ८२३ अस्मिन् धिय स्पर्धन्ते।
स्तर. तव यथा ५५,२, ३६५ तथा प्रिये बर्हिषि नि सद।
स्तुका इव ९७,१७, ८७३ वीता।
स्रश. न ७३,४, ६५१ नि मिषन्ति भूर्णय।
स्वर न ९८,८; ९२२ हर्यत.।
स्वसरं न गावः ९४,२, ८२४ धियः पिन्वाना अभि वावश्रे।
हंसः यथा ३२,३. २३८ गणम् आवीविशत।
हित न सप्ति ७०,१०, ६२९ वाजम् अभि अर्ष।
हिताः न सप्तयः रथे २१,४; १६९ पवमानासः वार्या आशत।
हिन्वानास न सप्तय ६५,२६,५३३ श्रीणाना. अप्सु मृञ्जत।
होता इव ९७,४७; ९०३ याति समनेषु रेभन्।
होता इव सदने ९२,२, ८१३ चमूषु सीदन्।
होतार. न ९७,२६; ८८२ दिवियज. मन्द्रतमा.।

दैवत-संहितान्तर्गत--

सोममंत्राणां वर्णानुक्रमसूची।

दैवत-संहितान्तर्गत--सोमदेवताया

गुणबोधक-पदानां सूची।

[सोमदेवतायाः 'सोमः' इति 'सोमास.' इति च एकानेकवचनत्वेन निर्देशकारणाद्गुणबोधकपदानामपि तथाविधत्वमेव।]

(अस्यां सूच्यां १०९७ पर्यन्त मन्त्राः ऋग्वेदस्य नवममण्डलस्था विद्यन्ते। तेषा मण्डलक्रमाङ्क '९' इत्यत्र न निर्दिष्ट.।)



सोम-देवता-संहितान्तर्गत-

निपातदेवतानां वर्णानुक्रमसूची ।

(नवममण्डलस्थ-सूक्तानि)

ऋग्वेदीय-सर्वानुक्रमण्यनुक्त-देवता-तद्विशेष-सूची।

अग्निरक्षोहा [बृ० दे०] ७३,७ सहस्रधारे वितते पवित्र०।
अश्विनौ ९७,४९ ('नर धीजवन. रथेष्ठा:= अश्विनौ)
अभि वायु वीत्यर्षा गृणानो३ ऽभि०।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामेभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥
इन्द्रः १०,५ आपानासो भगम्। सूरा वि तन्वते॥
इन्द्रः ४०,२ गमदिन्द्रं वृषा सुतः।
इन्द्रः ६१,२२ य आविथ इन्द्रं वृत्राय हन्तवे।
इन्द्र ६६,२८ पुनान इन्दुरिन्द्रमा।
इन्द्रः ६९,६ नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन।
इन्द्रः ६९,९ एते सोमाः पवमानास इन्द्रम्।
इन्द्र ७२,२ इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहु.।
इन्द्रः ७६,२ इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्।
इन्द्रः ७६,३ इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा।
इन्द्रः ७६,५ स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमः।
इन्द्रः ८४,४ एन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति।
इन्द्रः ८५,२ पिबेन्द्र सोममव नो मृधो जहि।
इन्द्रः ८५,३ आत्मेन्द्रस्य भवसि धासिरुत्तम।
इन्द्रः ८७,८ सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा।
इन्द्र ९७,१० इन्द्रे सोमः सह इन्वन् मदाय।
इन्द्रः ९७,११ इन्दुरिन्द्रस्य सख्य जुषाणः।
इन्द्रः ९७,१२ अभि प्रियाणि पवते पुनानो०।
इन्द्रः ९७,४३ इन्द्रस्य त्वं तव वय सखायः।
इन्द्रः ९७,४१ अदधादिन्द्रे पवमान ओजः।
इन्द्रः १००,१ अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
इन्द्रः १०१,६ सखेन्द्रस्य दिवे दिवे।
इन्द्रः १०९,२२ इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते।
इन्द्रधाम ६९,६ नेन्द्रादृते पवते धाम किंचन।
दक्षिणावान् ना ९८,१० नरे च दक्षिणावते।
दिव्यं जन्म [देवाः] ८५,६ स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने।
देवाः ११,७ देवेभ्यः अनुकामकृत्।
देवाः २५,२ पवमान धिया कनिक्रदत्। धर्मणा विश॥
देवाः २५,३ सं देवैः शोभते वृषा।
देवाः २५,६ आ पवस्व कवे। अर्कस्य... योनिमासदम्॥
देवाः २८,२ सोमो देवेभ्य सुतः।
देवाः ३९,१ यत्र देवा इति ब्रवन्।
देवाः ४५,४ इन्दुर्देवेषु पत्यते।
देवाः ४९,४ देवास श्टणवन् हि कम्।
देवा. ६५,२ देवो देवेभ्यस्परि।
देवा ८६,३० देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे।
देवाः ९७,४१ अपां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्।
देवा. १०९,२१ देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसे।
देवास ७८,४ यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदम्।
प्रजा १०९,५ दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै।
मरुत ५१,३ पवमानस्य मरुतः।
मित्रः ६१,९ चारुर्मित्रे वरुणे च।
वायुः १३,१ वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम्।
वायु· २५,२ धर्मणा वायुमा विश।
वायुः ४६,२ वायुं सोमा असृक्षत।
वायु ६३,३ मधुमाँ अस्तु वायवे।
वायुः ६३,१० परीतो वायवे सुतम्।
वायुः ६३,२२ वायुमा रोह धर्मणा।
वायुः ६७,१८ शुक्रा वायुमसृक्षत।
वायु ८४,१ अप्सा इन्द्राय वरुणाय वायवे।
विष्णुः ६३,३ सुत इन्द्राय विष्णवे।
विश्वे देवा. ९२,४ तव त्ये सोम पवमान निण्ये विश्वे देवा.।
सदनासद् देवः ९८,१० देवाय सदनासदे।
सरस्वती ६७,३२ तस्मै सरस्वती दुहे।
सविता ११०,६ वारं न देवः सविता व्यूर्णुते।
सूर्यः ९७,४१ अजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः।
सूर्यः ६४,३० पवस्व सूर्यो दृशे।



दैवत-संहिता ।

(४)

मरुद्देवता ।



सम्पादक

भट्टाचार्य श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)



संवत् १९९९; शके १८६४; सन् १९४२

मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवलेकर, B. A.
स्वाध्याय-मण्डल, भारतमुद्रणालय, औंध (जि० सातारा)



मरुत् देवता का परिचय।





मरुतों के विषय में कोशोंमें (wind, air, breeze) वायु, हवा, पवन, (vital air or breath, life-wind) प्राण, (the god of wind) वायु का देवता, (a kind of plant) मरुवक, मरुत्तक, ग्रंथपर्णी वनस्पति, (storm-gods) आंधी, प्रचंड वायु, आंधी का देवता इतने अर्थ दिये हैं।

वैद्यक कोशों में 'मरुत् अथवा मरुतः' का अर्थ 'घण्टापाटला, मरुत्तक वृक्ष, मरुत्तक वनस्पति, ग्रंथिपर्णी वनस्पति, पृक्का नामक साग (पिडिंग साग) [हिंदी भाषा में इस का नाम 'पुरी' है] इतने अर्थ मरुत् के लिखे हैं। 'मरवा' नामक सुगंध पौधा। मरुत् का यह अर्थ वैद्यकसंबंधी है।

मरुत् का अर्थ विश्व में 'वायु' और शरीर में 'प्राण' है और ये वनस्पतियां प्राणधारण में सहायक होती है, प्राण का बल बढाती हैं। इस तरह इनकी संगति होना संभव है।

निघण्टु में 'मरुत्' शब्द का पाठ निम्नलिखित गणो में किया है-

१. 'मरुत्' शब्दका पाठ 'हिरण्य' नामोंमें (निघंटु० १।२ में) किया है, अतः 'मरुत्' का अर्थ 'हिरण्य' अर्थात् 'सुवर्ण' है।

२. 'मरुत्' पदका पाठ 'रूप' नामों में (निघंटु० ३।७ में) किया है, इसलिये इस का अर्थ 'रूप' अथवा 'सुन्दरता' होता है।

३. 'मरुत्' पद का पाठ 'ऋत्विक्' नामों में (निघंटु. ३।१८ में) किया है, इसलिये इस का अर्थ ऋत्विज् अथवा याजक होता है।

४. 'मरुतः' पदका पाठ 'पद नामों' में (निघंटु. ५।५) में किया है।

निघंटुकार 'मरुत्' के ये ही अर्थ देता है। निरुक्तकार श्री यास्काचार्य मरुत् के अर्थ निम्नलिखित प्रकार करते हैं-

अथातो मध्यमस्थाना देवगणाः। तेषां मरुतः प्रथमगामिनो भवन्ति। मरुतो मितराविणो वा मितरोचनो वा महद् द्रवन्तीति वा।

(निरु. ११।२।१)

'मध्यम स्थान में जो देवगण हैं, उन में मरुत् पहिले आते हैं। मरुत् का अर्थ (मित-राविण) मित-भाषी होता है, वे (मित-रोचनः) परिमित प्रकाश देते हैं, (महद्-द्रवन्ति) बडी गति से जाते हैं, अथवा बडे वेग से जलप्रवाह छोड देते हैं।'

ये इस के अर्थ निरुक्तकार के दिये है। पर इस निरुक्त के वाक्य का इस से भिन्न पदच्छेद करने से निम्नलिखित अर्थ होता है-

मरुतोऽमितराविणो वाऽमितरोचनो वा महद् रवन्तीति वा। (निरु० ११।२।१)

'मरुत् (अ-मित-राविण.) अपरिमित शब्द करनेवाले, (अ-मित-रोचनः) अपरिमित प्रकाश देनेवाले, (महत् रवन्ति) बडा शब्द करते हैं, वे मरुत् है।'

पाठक यहां ये दो प्रकार के निरुक्त के एक ही वचन के परस्परविरोधी अर्थ देखेंगे, तो आश्चर्य से चकित होंगे। पर ऐसे ही टीकाकार मानते आये हैं। इसलिये इस विषय

में हम कुछ नहीं कह सकते।

इसी तरह और भी ' मरुत् ' पद के अर्थ किये गये हैं और हो सकते है-

१ मरुत् (मा-रुद्) = न रोनेवाले, अर्थात् युद्ध में न रोते हुए अपना कर्तव्य करनेवाले।

२ मरुत् (मा-रुत्) = न बोलनेवाले, भकभक् न करनेवाले, बहुत न बोलनेवाले।

३ मरुत् (मर-उत्) = मरनेतक उठकर खडे हो कर युद्ध करनेवाले।

इस तरह विविध अर्थ मरुत् शब्द के किये जाते हैं। अब इस ' मरुत् ' के अर्थ ब्राह्मणग्रंथों में कैसे किये हैं, देखिये-

मरुतो रश्मयः। (तांड्य ब्रा० १४।१२।९)

ये ते मारुताः रश्मयस्ते। (श० ब्रा० ९।३।१।२५)

मरुतः . देवाः। (श० ब्रा० ५।१।४।९, अमरकोश १।१।५८)

गणशो हि मरुतः। (ताण्ड्य ब्रा० १९।१४।२)

मरुतो गणानां पतयः। (तै० ब्रा० ३।११।४।२)

सप्त हि मरुतो गणाः (श० ब्रा० ५।४।३।१७)

सप्त गणा वै मरुतः (तै० ब्रा० १।६।२।३;२।७।२।२)

सप्त सप्त हि मारुता गणाः। (वा० य० १७।८०-८५; ३९।७; श० ब्रा० ९।३।१।२५)

मारुत सप्तकपालः (पुरोडाशः)। (ताण्ड्य ब्रा० २१।१०।२३, श० ब्रा० २।५।१।१२; ५।३।१।६)

मरुतो ह वै देवविशोऽन्तरिक्षभाजना ईश्वराः। (कौ० ब्रा० ७।८)

विशो वै मरुतो देवविशः। (तां० ब्रा० २।५।१।१२)

मरुतो वै देवानां विशः। (ऐ० ब्रा० १।९; तां. ब्रा. ६।१०।१०; १८।१।१४)

अहुतादो वै देवानां मरुतो विट्। (श. ब्रा. ४।५।२।१६)

विट् वै मरुतः (तै. ब्रा. १।८।३।३; २।७।२।२)

विशो मरुत्ः। (श. ब्रा २।५।२।६, २७; ४।३।३।६; ३।९।१।१७)

मारुतो वैश्य। (तै. ब्रा. २।७।२।२)

कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः। (तै. ब्रा. २।४।८।७)

पशवो वै मरुतः। (ऐ. ब्रा. ३।१९)

अन्नं वै मरुत। (तै. १।७।३।५, १।७।५।२; १।७।७।३)

प्राणा वै मारुता। (श. ब्रा. ९।३।१७)

मारुता वै ग्रावाणा। (तां ब्रा. ९।९।१४)

मरुतो वै देवानामपराजितमायतनम्। (तै. ब्रा. १।४।६।२)

अप्सु वै मरुतः श्रिताः। गो. ब्रा. उ. १।२२, कौ. ब्रा. ५।४)

आपो वै मरुतः। (ऐ. ब्रा. ६।३०; कौ. ब्रा. १२।८)

मरुतो वै वर्षस्येशते। (श. ब्रा. ९।१।२।५)

इन्द्रस्य वै मरुतः। (कौ. ब्रा ५।४ ५)

मरुतो ह वै क्रीडिनो वृत्रं हनिष्यन्तमिन्द्रं आगतं तमभितः परिचिक्रीडुर्महयन्तः। (श. ब्रा. २।५।३।२०)

इन्द्रस्य वै मरुतः क्रीडिनः। (गो. ब्रा. उ. १।२३; कौ. ब्रा. ५।५)

" किरण मरुत् हैं, देव, समूह में रहनेवाले, सात मरुतों का एक गण है, मरुतों का पुरोडाश सात पात्रों में होता है, प्रजा ही मरुत् है, दैवी प्रजा मरुत् है, वैश्य मरुतों से उत्पन्न है, उत्तम दान देनेवाले किसान मरुत् हैं, अन्न ही मरुत् हैं, प्राण मरुत् हैं, पत्थर मरुत् हैं। देवों का पराजयरहित स्थान मरुत हैं। मरुत् जल के आश्रय से रहते हैं, जल ही मरुत् हैं। मरुत् वृष्टि के स्वामी हैं। मरुत् इन्द्र के (सैनिक) हैं। जब इन्द्र वृत्र का हनन करता था, तब मरुतों ने खेलते हुए उसका गौरव किया था। "

मरुतों के सम्बन्ध में ब्राह्मणग्रंथों के वचनों का यह तात्पर्य है। ये अर्थ पाठक मरुतों के सूक्तों में देख सकते हैं।

पाठकों की सुविधा के लिये यहां मरुतों के वर्णनों के मन्त्रोंमेंसे कुछ विशेष मंत्र उद्धृत करके रखते हैं, उन्हें पाठक देखें और मरुद्देवता के मंत्रों के विज्ञान को जानें-

मरुतों के शस्त्र।

(कण्वो घौरः। गायत्री।)

ये पृषतीभिः ऋष्टिभिः साकं वाशीभिः अञ्जिभिः।
अजायन्त स्वभानवः ॥ २ ॥
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्।
नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥ ३ ॥ (ऋ० १।३७)

" (ये) जो (पृषतीभिः) चित्रविचित्र (ऋष्टिभिः) भालों के साथ (वाशिभि अञ्जिभिः) शस्त्रों और भूषणों के साथ (स्वभानवः) अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होनेवाले मरुत् (अजायन्त) प्रकट हुए हैं। (एषां कशा) इनके चाबुक इनके (हस्तेषु वदान्) हाथों में आवाज करते हैं, (यत् इह एव शृण्वे) जो शब्द मैं यहीं सुनता हूं, (यामन् चित्रं नि ऋञ्जते) संग्राम में विचित्र रीतिसे यह चाबूक मरुतोंको शोभित करता है। "

इन मंत्रों में कहा है कि, मरुतों के पास भाले, कुल्हाड कुठार, आभूषण और चाबूक हैं। इनसे ये मरुत शोभावान् हुए हैं।

(सोभरिः काण्वः। प्रगाथः = ककुप् + सतोबृहती।)

समानमञ्ज्येषां विभ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु।
दविद्युतत्यृष्टयः ॥ ११ ॥
त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि
श्रियः ॥ १२ ॥ (ऋ० ८।२०)

" (एषां अञ्जि समानं) इन सबके आभूषण समान हैं। इनके (ऋष्टयः दविद्युतत्) भाले चमक रहे हैं, (बाहुषु अधि रुक्मासः विभ्राजन्ते) बाहुओं पर सोने के भूषण चमकते हैं। (ते) वे (उग्रासः) शूर वीर (उग्रबाहवः) बडे बाहुओंवाले (वृषणः) सुख की वर्षा करनेवाले, (तनूषु) अपने शरीर के विषय में (न किः येतिरे) कुछ भी यत्न नहीं करते। (वः रथेषु) आप के रथ पर (स्थिरा धन्वानि आयुधा) स्थिर धनुष्य और शस्त्र हैं तथा (अनीकेषु अधि श्रियः) सैन्य की धुरा में विजय निश्चित है। "

इन मंत्रों में मरुतों के शस्त्रों और आभूषणों का वर्णन देखनेयोग्य है। भाले, बाहुभूषण और कण्ठे तो हैं, पर इनके (रथेषु स्थिरा धन्वानि आयुधा) रथों में स्थिर धनुष्य और स्थिर आयुध हैं। यह वर्णन विशेष महत्व का है। स्थिर धनुष्य और चल धनुष्य ऐसे धनुष्यों के दो भेद हैं। चल धनुष्यों को ही धनुष्य कहते है, जो हाथों में लेकर इधर उधर वीर ले जा सकते हैं। प्राय धनुर्धारी वीर इसी धनुष्य का उपयोग करते हैं। इसको हम ' चल धनुष्य, ' ' धनुष्य ' अथवा ' छोटा धनुष्य ' कहेंगे।

पर इस मंत्र में मरुतों के रथों पर ' स्थिर धनुष्य ' रहते हैं, ऐसा कहा है। रथों पर ध्वजदण्ड खडा रहता है, उस दण्ड के साथ ये धनुष्य बांधे रहते है, ये हिलाये नहीं जाते, एक ही स्थान पर पक्के किये होते हैं। ये बडे प्रचण्ड धनुष्य होते हैं और इन पर से जो बाण फेंके जाते हैं, वे मामूली बाणों से दुगने तिगुने बडे भाले जैसे होते हैं। ये धनुष्य भी बहुत ही बडे होते हैं और इनकी रस्सी दोनों हाथों से खींची जाती है। इसलिये इनको रथ में ही सदा रहनेवाले ' स्थिर धनुष्य ' कहा है। मरुतों के रथों की यह विशेषता है। रथों में ' चल धनुष्य ' भी रहते हैं और स्थिर भी होते हैं। इसी तरह अन्यान्य आयुध भी रथ में स्थिर रहते हैं।

ये रथ चार घोडों से खींचे जानेवाले बडे मजबूत होते हैं। मरुतों के रथों को घोडे या हरिनियां जोती जाती थीं, ऐसा मंत्रों में लिखा है और ये घोडे या हरिनियां जिनके पीठपर श्वेत धब्बे होते हैं, ऐसी हैं, ऐसा वर्णन इन मन्त्रों में पाठक देख सकते हैं।

ये मरुत् (तनूषु न किः येतिरे) अपने शरीरों की बिलकुल पर्वा न करते हुए युद्ध करते हैं। यह वर्णन भी यहां इन मंत्रों में देखनेयोग्य है।

(श्यावाश्व आत्रेयः। पुर उष्णिक्।)

ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः।
स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥ ४ ॥
शर्धं शर्धं व एषां व्रातं व्रातं गणं गणं सुशस्तिभिः।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥ ११ ॥ (ऋ० ५।५३)

" हे मरुतो ! (ये स्वभानवः) जो आप के प्रकाश (अञ्जिषु) अलंकारों पर, (ये वाशीषु) जो हथियारों पर, (स्रक्षु) मालाओं पर, (रुक्मेषु) छाती के भूषणों

पर, (खादिषु) पांवों के भूषणों पर (रथेषु) रथों पर और (धन्वसु) धनुष्यों पर (श्राया) आश्रय पाये हैं।"

"हे मरुतो (वः शर्धं शर्धं) आप के बल, (एषां व्रातं व्रात) इनके समुदाय, (गणं गणं) और सब की (सुशस्तिभिः) प्रशंसा के साथ और (धीतिभिः) कर्मोंके साथ अनुसरण करते हैं।"

अर्थात् मरुतों के हाथों में शस्त्र है, गले में मालाएं हैं, कमर में हथियार, तलवार, जबिया आदि हैं, छाती पर आभूषण है, पावों और हाथों मे कटक आदि जेवर हैं, रथों में धनुष्य है। इन शस्त्रों और भूषणों से ये वीर युक्त हैं।

आगे के मंत्र में 'हम (अनुक्रामेम) आप का अनुसरण करते है,' ऐसा कहा है। मरुतोंके जो बलसे होनेवाले कर्म है, समूह से और संघ से होनेवाले कर्म है, उन सब का अनुसरण हम करते हैं, अर्थात् उनके समूहों के समान हम अपने संघ बनाते है, उनके गणों के समान हम अपने गण बनाते है, उनके पराक्रमों के समान हम पराक्रम करते है, उनकी बुद्धियों के समान हम अपनी बुद्धि के कर्म करते है। मरुतों जैसे हम पराक्रम करते हैं और वैसे हम स्वयं शूर वीर बनने का यत्न करते हैं।

मरुतों के संघों का यहां वर्णन है और आगे भी वर्णन बहुत ही है। मरुत देवता संघ से रहनेवाले है। ये सात के संघ है, देखिये—

o o o o o o o
o o o o o o o
o o o o o o o
o o o o o o o
o o o o o o o
o o o o o o o
o o o o o o o

यहाँ सात सैनिको की एक पंक्ति ऐसी सात पंक्तियां हैं। यहां ये ७×७=४९ मरुद्गण होते हैं। न्यूनसे न्यून सातोंकी एक पंक्ति है, ऐसी सात पंक्तियों का 'मारुत गण' अथवा 'मरुतों का संघ' होता है। इस तरह ४९ मरुतों का एक संघ, अथवा सेना का छोटे से छोटा विभाग होता है।

ऐसे ४९ विभागों की मरुतों की सेना को 'वाहिनी' कहते है। इस वाहिनी में ४९×४९=२४०१ मरुद्गण होंगे। इस तरह यह संख्या सातों के घात से, अथवा ४९ के घात से बढती है। छोटी से छोटी मरुद्वीरों की संख्या ७ होगी, उस से बढ कर ४९ होगी, उस के बाद २४०१ होगी और इस के आगे ७ अथवा ४९ के घात से जितनी सेना रखनी होगी, उतनी सेना हो सकती है। इस की कल्पना पाठक कर सकते हैं।

ये मरुत् पैदल (पदाती), रथी (रथमें बैठे), घुडसवार (अश्वी) और विमानों में चढ कर ऐसे विभिन्न पथकों में रहते हैं। पर किसी भी पथक में क्यों न हों, इनकी संख्या ७ और ४९ के प्रमाण से रहेगी। मरुतों की सेना का विचार करने के समय यह तत्व जानना आवश्यक है।

(नोधा गौतमः। जगती।)

युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव। दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्रच्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥ ३॥
चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे। अंसेष्वेषां नि मिमिक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः॥ ४॥
(ऋ. १।६४)

'(रुद्राः) शत्रु को रुलानेवाले मरुत् (युवानः) जवान (अजरा) वृद्धावस्था को न प्राप्त हुए, (अभोग्घनः) देवों को हविर्भाग न देनेवालों का वध करनेवाले, (अध्रिगाव) अप्रतिहत गतिवान् अर्थात् जिन की गति को कोई रोक नहीं सकता, ऐसे मरुत् (पर्वता इव ववक्षुः) पर्वतों के समान सुदृढ होकर इष्ट सुख उपासकों को देने की इच्छा करते हैं। ये (मज्मना) अपने सामर्थ्य से (विश्वा पार्थिवा भुवना) सब पार्थिव भुवनों और (दृळ्हा दिव्यानि) सुदृढ दिव्य भुवनों को भी (प्रच्यावयन्ति) हिला देते हैं। अर्थात् इनके विरोध में कोई टहर नहीं सकता।"

"ये मरुत् (चित्रैः अञ्जिभि) विचित्र भूषणों से (वपुषे व्यञ्जते) अपने शरीरों को भूषित करते हैं। (शुभे) शोभा के लिये (रुक्मान् वक्षःसु) सोने की मालाएं छाती पर (अधि येतिरे) धारण करते हैं। (एषां अंसेषु) इन के कंधों पर (ऋष्टयः निमिमिक्षुः) भाले चमक रहे

हैं। ये (नरः) नेता वीर मरुत् (स्वधया साकं) अपनी धारणशक्तिके साथ (दिवः जज्ञिरे) द्युलोकसे जन्मे हैं। ''

मरुतों की सेना में तरुण ही भरती होते हैं। बूढों (अजराः) का इन में स्थान नहीं है। सब (युवानः) जवान ही होते हैं। इनकी गतिको कोई रोक नहीं सकता। ये सैनिक जहां जाते हैं, वहां के प्रबल शत्रुओं को भी अपने स्थान से उखाड देते है। ये स्वय जहां रहते है, वहां पर्वतों के समान स्थिर रहते है।

इनके शरीरों पर सोने की मालाए रहती हैं, छाती पर विविध भूषण पहने होते हैं, बाहुओंपर सोनेके आभूषण रहते हैं, तीक्ष्ण भाले इन के हाथों में रहते है, अन्यान्य तलवार आदि तीक्ष्ण शस्त्र सदा इन के पास रहते हैं। ये दिव्य नेता लोग दिव्य और शुभ कार्य के लिये सदा तैयार रहते हैं, कभी पीछे नहीं हटते।

अपने शरीरों की पर्वाह न करते हुए ये लडते हैं और जो अपना अन्न यज्ञ में नहीं अर्पण करते, उन स्वार्थी लोगों को ये यथायोग दण्ड देते हैं। इसलिये इनसे सब डरते हैं और ये अपने यज्ञमार्ग में दत्तचित्त रहते हैं।

(गोतमो राहूगणः। प्रस्तारपंक्तिः।)

आ विद्युन्मद्भिर्मरुत स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टि-
मद्भिरश्वपर्णैः। आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न
पप्तता सुमायाः ॥ १ ॥ (ऋ० १।८८)

" हे (सु-मायाः) उत्तम कुशल कर्मों को करनेवालो मरुतो! (विद्युन्मद्भिः) बिजली से चलनेवाले, (स्वर्कैः) तेजस्वी (अश्व-पर्णैः) घोडों के समान पखवाले (ऋष्टि-मद्भिः) उत्तम शस्त्रों से युक्त (रथेभिः) रथों से (आ यात) आओ, (वयो न) पक्षियों के समान (पप्तत) उडते हुए आओ और साथ (वर्षिष्ठया इषा न) उत्तम अन्नों के साथ (आ) आओ। ''

यहां भी पक्षियों के समान आकाशमार्ग से उडते हुए मरुत् आते है और उन के विमानों में भरपूर अन्न, पर्याप्त शस्त्र होते हैं और गमन के लिये अश्व के समान पक्ष रहते हैं, ऐसा कहा है।

मरुतों के ये रथ निःसन्देह विमान ही है। क्योंकि ये (वयः न) पक्षियों के समान आकाश में उड कर आते है और (अश्व-पर्णैः) अश्वशक्तिवाले पंख इनको लगे होते है। (सुमायाः) उत्तम कारीगरी से ये बने है, तथा (विद्युन्मद्भिः) बिजली की शक्तिसे ये चलाये जाते हैं। पक्षी के समान आकाश में उडना, बिजली के साधन से गति मिलना, अश्वशक्ति से पक्षों का काम होना, आदि वर्णन इनका विमान होना ही निश्चित करता है।

मरुतों के ये विमान ही है। मरुतों की सेना के पास घोडे, रथ तथा विमान भी होते है, यह बात इस वर्णन से सिद्ध होती है। इन मरुतोंके विमानों में (ऋष्टिमद्भिः) पर्याप्त शस्त्र तथा पर्याप्त (इषा) अन्न होता है। ये वर्णन देखने से मरुतों के विमानों की कल्पना आ सकती है।

(श्यावाश्व आत्रेय। जगती।)

वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः
सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातर
स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥ २ ॥
ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि
सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम्।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो
विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥ ६ ॥
(ऋ० ५।५७)

" हे मरुतो! (वाशीमन्त) बरछियां धारण करनेवाले, (ऋष्टिमन्तः) भाले बर्तनेवाले, (सुधन्वानः) उत्तम धनुष्यों से युक्त, (निषगिणः) तर्कस धारण करनेवाले, (सुरथाः) उत्तम रथ जिनके पास है तथा (स्वश्वाः) उत्तम घोडोंवाले, (स्वायुधाः) उत्तम आयुधों का उपयोग करनेवाले (पृश्निमातरः) मातृभूमि के उपासक आप (मनीषिणः स्थः) बुद्धिमान् हैं। हे मरुतो! आप (शुभं याथन) सबके हित करनेवाले मार्गसे चलो। ''

" हे मरुतो! (व अंसयोः अधि) आप के कंधों पर (ऋष्टय.) भाले हैं, (व बाह्वो) आप के बाहुओं में (सहः ओजः बलं हितं) बल, ओज और सामर्थ्य रखा है, (शीर्षसु नृम्णा) सिरोंपर सुन्दर साफे हैं, (वः रथेषु आयुधा) आप के रथों पर आयुध है, (वः तनूषु) आप के शरीरों पर (विश्वा श्रीः) सब शोभा (अधि



वीर मरुत्।

पिपिशे) विराजमान हुई है।"

इन मंत्रों में मरुतों के शरीरों पर कैसे शस्त्र और कपडे रहते हैं, यह बताया है। बरछे, भाले, धनुष्य, बाण, तर्कस, तलवार आदि शस्त्र इनके पास हैं। सिर पर साफे अथवा मुकुट हैं। इनके रथ, घोडे आदि सब उत्तम हैं। शरीर सुडौल है। बाहुओं में प्रचण्ड बल है और ये (पृश्निमातरः) मातृभूमि की उपासना स्वकर्म से करते रहते हैं, मातृभूमि के लिये आत्मसमर्पण करते रहते है।

(वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। त्रिष्टुप्।)

अंसेष्वा मरुतः खादयो वो
वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना
अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः॥१३॥ (ऋ० ७।५६)

" हे (मरुतः) मरुतो ! आप के (अंसेषु) कंधों पर आभूषण हैं, (वक्षःसु रुक्मा) छाती पर मालाएं (उपशिश्रियाणाः) शोभती हैं, (वृष्टिभिः) वृष्टि के साथ चमकती (विद्युतः न) बिजली के समान (विरुचानाः) आप चमक रहे हैं, (आयुधैः) और हथियारों के साथ (स्वधां अनुयच्छमानाः) अन्न को अनुकूलता के साथ आप देते हैं।"

यहां भी मरुतों के हथियारों और भूषणों का वर्णन है।

(श्यावाश्व आत्रेयः। जगती।)

अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा
मरुतो रथे शुभः। अग्निभ्राजसो विद्युतो
गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ११
(ऋ० ५।५४)

" हे मरुतो ! (वः अंसेषु ऋष्टयः) आप के कंधों पर भाले है, (पत्सु खादयः) पावों में भूषण हैं, (वक्षःसु रुक्मा) छाती पर मालाएं है और (रथे शुभः) रथ में सब शुभ साधन हैं। (अग्निभ्राजसः) अग्नि के समान तेजस्वी (विद्युत गभस्त्यो) चमकदार और किरणों से युक्त हैं और आप के (शीर्षसु) सिर पर (हिरण्ययी वितता शिप्रा) सोने के फैले हुए साफे हैं।

यहां भी मरुतों के शस्त्रों और अलंकारों का वर्णन है। इस समय तक मरुतों के शस्त्रों, अलंकारों और वस्त्रों का वर्णन आया है, इससे विदित होता है कि-

सिर में—

(१) शीर्षस नृम्णा (ऋ. ५।५७।६); शिप्राः शीर्षन् हिरण्ययीः (ऋ ८।७।२५), हिरण्यशिप्राः (ऋ. २-३४-३),

सिर पर साफे या मुकुट धारण किये हैं। ये सोनेके हैं, अर्थात् साफे होंगे, तो कलाबतू के होंगे।

कंधों पर—

(२) अंसेषु ऋष्टयः (ऋ. १-६४-४; ५-५४-११); ऋष्टयो... अंसयोरधि (ऋ ५-५७-६); ऋष्टिमन्तः (ऋ. ५ ५७-२); अंसेषु खादयः (ऋ. ७-५६-१३)।

अंसेषु प्रपथेषु खादयः (१-१६६-९); **ऋष्टिविद्युतः** (ऋ. १-१६८-५; ५-५२-१३); **भ्राजद्-ऋष्टयः** (ऋ. १-८७-३).

मरुतों के कंधों पर भाले रहते हैं, इन कंधों पर बाहु-भूषण होते हैं। ये भूषण भी बडे चमकवाले होते हैं और भाले भी बडे तेजस्वी और चमकनेवाले होते है। ऋष्टि-शस्त्र भाले जैसा लंबा होता है, भाले के फाल विविध प्रकार के होते हैं। बडे तीक्ष्ण नोकवाले, अनेक मुख-वाले, कांटोंवाले तथा अन्यान्य छेदक नोकवाले होते है और इस कारण इनके नाम भी बहुत होते है। 'खादी' नामक एक आभूषण है, जो पावों में तथा बाहुओं में रखे जाते हैं।

हाथों में-

(३) **हस्तेषु कशा वदान्** (ऋ १।३७।३) हाथों में चाबूक जो आवाज करता है। चाबूक का आवाज झिटकने से होता है, यह पाठक जान सकते है।

छाती पर-

(४) **वक्षःसु रुक्माँ** (ऋ. १-६४-४; ७-५६-१३, ५-५४), **रुक्मासः अधि बाहुषु** (ऋ. ८-२०-११), **तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः** (ऋ. १ ८५-३)

छाती पर और बाहुओं पर तथा शरीरों पर रुक्म नामक सुवर्ण के भूषण धारण करते हैं। रुक्म मोहरों जैसे भूषण होते हैं, जिनकी माला बना कर कण्ठ में छाती पर रखते हैं और अन्यान्य अवयवों पर उस स्थान के योग्य अलंकार किया होता है।

इस तरह का वर्णन मंत्रों में देखनेयोग्य है।

बल से विजय।

(कण्वो घौरः । सतोबृहती।)

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे। युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥ (ऋ. १-३९)

" (वः आयुधा स्थिरा सन्तु) आप के शस्त्र सुदृढ हों, (पराणुदे) शत्रु को दूर भगाने के लिये और (प्रति-स्कभे) शत्रु का प्रतिकार करने के लिये आप के शस्त्र (वीळू) सामर्थ्यवान् अर्थात् शत्रु के शस्त्रों से अधिक प्रभावी हों। (युष्माकं तविषी) आप का बल (पनीयसी अस्तु) प्रशसनीय रहे, वैसा (मायिनः मर्त्यस्य मा) आप के कपटी शत्रु का बल न हो, अर्थात् शत्रु से आप का बल अधिक रहे।"

विजय तभी होगा, जब शत्रु से अपने साधन अधिक प्रभावी होंगे। अपने शस्त्रास्त्र शत्रु से प्रभाव में, परिणाम में, सख्या में, तथा अन्य सब प्रकारों से अधिक अच्छे रहेंगे, तभी विजय होगा, इसलिये विजय की इच्छा करनेवाले वीर अपना ऐसा उत्तम प्रबन्ध रखें।

जनता की सेवा।

(नोधा गौतमः । जगती।)

रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाऽहिमन्यवः। आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥ ९ ॥ (ऋ १।६४)

" हे (गणश्रियः) समुदाय की शोभा से युक्त मरुतो ! हे (नृ-षाचः शूराः) मानवोंकी सेवा करनेवाले शूर, (शवसा अ-हि-मन्यवः) बल के कारण प्रबल कोप से युक्त मरुतो ! (रोदसी) द्युलोक और पृथ्वी में (आवदत) अपनी घोषणा करो। हे मरुतो ! (वः रथेषु) आप के रथों में (वन्धुरेषु) बैठकों में (दर्शता अमतिः न) दर्शनीय रूप के समान अथवा (विद्युत् न) बिजली के समान (आ तस्थौ) आप का तेजस्वी रूप ठहरा है।"

अर्थात् आप जनता की सेवा करनेवाले स्वयंसेवक वीर जब रथों में बैठकर जाते हैं, उस समय बडी शोभा दीखती है।

साम्यवाद।

(श्यावाश्व आत्रेयः। जगती।)

अज्येष्ठास अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा विवावृधुः। सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥६॥ (ऋ. ५-५९)

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय। युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥ (ऋ० ५-६०)

" मरुतों में कोई श्रेष्ठ नहीं और कोई कनिष्ठ नहीं और कोई मध्यम भी नहीं। ये सब समान हैं। ये अपनी शक्ति से बढते हैं। ये (सुजातासः) कुलीन है और (पृश्निमातरः) भूमि को माता माननेवाले है। ये दिव्य नरवीर हैं।"

" ये अपने आप को (भ्रातर.) भाई कहते है और (सौभगाय स वावृधुः) सौभाग्य के लिये मिलकर यत्न करते है। इनकी माता (पृश्नि. सुदुघा) मातृभूमि इनके लिये उत्तम पोषण करनेवाली है।"

इन मंत्रों में मरुतों का साम्यवाद अच्छी तरह कहा है। ये अपने आपको भाई मानते है। यह भी साम्यवादियों के लिये योग्य ही है।

ये सैनिक हैं। सेना में कोई लडका नहीं भरती होता, कोई वृद्ध भी नही भरती होता। प्रायः सब तरुण ही भरती होते है। इसलिये न इन में कोई बडा है और न छोटा है, सब समान ही रहते है। ये सभी मातृभूमि के लिये प्राणों का अर्पण करनेवाले होनेके कारण सब समानतया सन्मान्य होते है।

इस समय तक के वर्णन से मरुत् ये सैनिक है, यह बात पाठकों के ध्यान में आ चुकी होगी। सैनिकों के पास शस्त्र होते है, उन के शरीर सुडौल होते हैं, सब प्राय. समान ऊचाई के होने के कारण समान होते है। सब के सिरों पर साफे, मुकुट या शिरस्त्राण समान होते हैं, सब का रहनासहना समान होता है। सब सैनिक उक्त कारण अपने आप को भाई कहते है। सब मातृभूमि के लिये प्राणों का अर्पण करते है, अपने शरीरों की पर्वाह न करते हुए, देश के लिये लडते है, सब ही शत्रु को रुलानेवाले होते है, सब सैनिक सांघिक जीवन में ही रहते है, संघ के विना ये कभी रहते नहीं, कतार में चलते है, सब के शस्त्र समान होते है। यह सब वर्णन सैनिकों का है और मरुतों का भी है। अतः पाठक मरुतों को सैनिक समझे और मंत्रों का आशय जान ले।

मरुतों की शोभा।

(गोतमो राहूगणः। जगती।)

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो
यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंसस.।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे
मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वय ॥ १ ॥
गोमातरो यच्छुभयन्ते अंजिभिः
तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मत।
बाधन्ते विश्वं अभिमातिनं अप
वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥ ३ ॥
वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः
प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा
वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ४ ॥
(ऋ० १.८५)

" (ये मरुतः) जो मरुत् (जनय. न) स्त्रियोंके समान (यामन्) बाहर जाने के समय (प्र शुभन्ते) विशेष अलंकार धारण करते है। ये मरुत् (रुद्रस्य सूनवः) रुद्र के अर्थात शत्रु को रुलानेवाले वीर के पुत्र (सु-दंससः) उत्तम कर्म करनेवाले और (सप्तयः) शीघ्रगामी हैं। मरुतों ने (रोदसी) द्युलोक और पृथ्वी को (वृधे) अपनी वृद्धि के लिये साधन (चक्रिरे) बनाया, ये (घृष्वयः) शत्रु का घर्षण करनेवाले (वीराः) वीर (विदथेषु) युद्धों में (मदन्ति) आनन्दित होते हैं।"

" (गो-मातर) गौको अथवा पृथ्वीको माता माननेवाले मरुत् (यत्) जब (अञ्जिभिः शुभयन्ते) अलंकारों से शोभित होते है, तब (तनूषु) वे अपने शरीरों पर (शुभ्राः विरुक्मत) तेजस्वी और चमकनेवाले शस्त्र (दधिरे) धारण करते हैं। वे (विश्वं अभिमातिनं) सब शत्रु को (अप बाधन्ते) पराभूत करते हैं, प्रतिबन्ध करते हैं। (एषां वर्त्मानि) इनके गमन के मार्ग पर (घृतं अनु रीयते) घी आदि भोग्य पदार्थ (अनुरीयते) अनुकूलता के साथ मिलते है।"

" (ये सुमखासः) जो उत्तम यज्ञ करनेवाले मरुत् (ऋष्टिभिः वि भ्राजन्ते) अपने भालों से शोभते है। जो (ओजसा) अपने बल के साथ (अच्युता) न हिलनेवालों को भी (प्रच्यावयन्ते चित्) निश्चयपूर्वक हिला देते हैं। हे मरुतो ! (यत्) जब आप अपने (रथेषु पृषतीः) रथों को विचित्र रंगोंवाली हरिणों या घोडियों

को जोतते हैं तब (वृष-व्रातासः) वीर्यवान् समूह करनेवाले आप (मनो-जुवः) मन जैसे वेगवान् होते हैं।"

इन मंत्रों में कहा है कि मरुत् वीर स्त्रियों के समान अलंकारोंसे सजते है, शत्रुका धर्षण करते हैं, युद्धों से आनंदित होते हैं, मातृभूमि को माता मानते हैं, भाले-बर्चियों को धारण करते हैं, सब शत्रुओं को स्थानभ्रष्ट करते हैं, समूहोंमें रहनेसे इनका बल बढा रहता है। शत्रु पर ये समूह से ही हमला करते हैं।

मरुत् वीर स्त्रियों के समान अपने आप को सजाते है। पाठक यहां सैनिकों की सजावट की ओर देखें। सैनिक अपनी वेषभूषा, शस्त्र, बूटसूट, साफे आदि सब जितना सुंदर रखा जा सकता है, उतना सुंदर, स्वच्छ और सुडौल रखते हैं। सैनिक जितने अच्छे सजते हैं और जितना सजावट का ख्याल करते हैं, उतना कोई और नहीं करता। इस सजावट में ही इनका प्रभाव रहता है। इसलिये यह सजावट बुरी नहीं है।

यहां के 'गो-मातरः, पृश्नि-मातरः' ये शब्द मातृभूमि और गौ को माता मानने का भाव बताते हैं। गोरक्षा करना इस तरह मरुतों का कर्तव्य दीखता है। गोरक्षण, मातृभूमिरक्षण, स्वभाषारक्षण आदि भाव 'गोमातरः' में स्पष्ट दीखते है।

(अगस्त्यो मैत्रावरुणः । जगती ।)

विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो
मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयो-
ऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥ ९ ॥
(ऋ १-१६६)

"हे मरुतो ! (वः रथेषु) आप के रथों में (विश्वानि भद्रा) सब कल्याणकारक पदार्थ रहते हैं। (मिथस्पृध्या इव) परस्पर स्पर्धा के (तविषाणि आहिता) सब शस्त्र रखे हैं। (अंसेषु) बाहुओं में तथा (वः प्रपथेषु) आप के पांवों में (खादयः) आभूषण रहते हैं और आप के चक्र का (अक्षः) अक्ष (चक्रा समया) चक्रों के समीप साथ साथ (वि वावृते) रहता है।"

मरुतों के रथों पर भरपूर अन्नादि पदार्थ और शस्त्र रहते हैं।

(गोतमो राहूगण । जगती ।)

शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः।
श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो
राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥ ८ ॥
(ऋ १।८५)

"(शूरा इव इत्) ये शूरों के समान (जग्मय युयुधयः न) शत्रु पर दौडनेवाले योद्धाओं के समान (श्रवस्यवः न) यश की इच्छा करनेवालों के समान (पृतनासु येतिरे) लडाइयों में युद्ध करते है। (मरुद्भ्यः) मरुतों से (विश्वा भुवनानि) सब भुवन (भयन्ते) डरते है। ये मरुत् (राजानः इव) राजाओं के समान (त्वेष-सदृश.) क्रोधित दीखनेवाले (नर) ये नेता है।"

युद्ध में मरुतों को आनन्द होता है। ये ऐसा पराक्रम करते हैं कि, जिससे सब विश्व इनसे डरता है। ऐसे पराक्रमी ये वीर हैं।

(अगस्त्यो मैत्रावरुण । जगती ।)

को वोऽन्तर्मरुतो ऋष्टिविद्युतो
रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया।
धन्वच्युत इषां न यामनि
पुरुप्रैषा अहन्यो नैतशः ॥ (ऋ. १-१६८।५)

"हे (ऋष्टिविद्युतः) विद्युत् का शस्त्र बर्तनेवाले मरुतो ! (व अन्तः कः) आप के अन्दर कौन (रेजति) प्रेरणा करता है ? अथवा (जिह्वया हन्वा इव) जिह्वा से हनु को प्रेरणा मिलती है, वैसी (त्मना) स्वय हि तुम प्रेरित होते हो ? अथवा तुम्हारे अन्दर रहकर कोई दूसरा तुम्हे प्रेरणा देता है ? (इषां यामनि) अन्नों की प्राप्ति के लिये (धन्वच्युतः न) अन्तरिक्ष से चूनेवाले उदक की जैसी इच्छा करते हैं अथवा (अ-हन्यः एतशः न) शिक्षित घोडे के समान (पुरु-प्रैषाः) बहुत दान देनेवाला याजक तुम्हें बुलाता है।"

(अगस्त्यो मैत्रावरुणः । गायत्री ।)

आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः
आरे अश्मा यमस्यथ ॥ (ऋ. १।१७२।२)

"हे (सुदानवः मरुतः) हे दानशील मरुतो ! (वः सा ऋञ्जती शरुः) आप का वह तेजस्वी भाला (आरे)

हम से दूर रहे, तथा (य अस्यथ) जिस को तुम फेंकते हो, वह (अश्मा) पत्थर भी हमसे (आरे) दूर रहे।"

अर्थात् तुम्हारा शस्त्र और तुम्हारा पत्थर शत्रु पर गिरे, हम उस से दूर रहें। यहां पत्थर भी एक मरुतों का शस्त्र कहा है। ये पत्थर हाथ से, पांव से और रस्सी से फेंके जाते है। हाथ से आगे, पांव से पीछे और 'क्षेपणी' नामक पत्थर फेंकनेवाली रस्सी से बडी दूरी पर फेंका जाता है। इस रस्सी को 'गोफन' (क्षेपणी) बोलते हैं, इस से आध सेर वजन का पत्थर सौ गज पर ऐसे वेगसे फेंका जाता है कि, जिससे शत्रुका हाथ भी टूट जाय।

प्रतिबंधरहित गति !

(श्यावाश्व आत्रेयः। जगती।)

न पर्वता न नद्यो वरन्त वो
यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत्।
उत द्यावापृथिवी याथना परि
शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥७॥ (ऋ. ५।५५)

"हे मरुतो ! (न पर्वता) न पर्वत और (न नद्यः) न नदियां (वः वरन्त) आप के मार्ग को प्रतिबन्ध कर सकते है, (यत्र आचिध्वं) जहां जाना चाहते हैं, (तत् गच्छथ इत् उ) वहां तुम पहुचते ही हो। तुम द्युलोक और पृथ्वी पर पहुंचते हो और (शुभं यातां) शुभ स्थान को पहुचनेवाले आप के रथ आगे बढते है।"

यहां लिखा है कि, नदी और पर्वत से मरुत् वीरों को किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं होता है। वे जहां जहां पहुंचना चाहते हैं, पहुचते ही हैं और वहां यश भी कमाते हैं।

बीच में पर्वत आ जाय, नदियाँ आ जायँ, बीच में जलाशय हों अथवा रेतीले मैदान हों, इन सब प्रतिबंधों को ये गिनते नहीं। इन के रथ ऐसे होते हैं कि, वे जहां चाहें वहां जाते और शत्रु को घेर लेते है।

जहां मरुत् जाना चाहते है, वहां वे पहुचते हैं और जिस शत्रु को पराजित करना चाहते हैं, उस को पराजित कर छोडते है।

इनकी गति को रोकनेवाला पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में कोई नहीं है। शत्रु पर विजय प्राप्त करना हो, तो ऐसा ही सामर्थ्य प्राप्त करना चाहिये। अपना हरएक शस्त्र शत्रुसे अधिक प्रभावी रहना चाहिये, हरएक रथ शत्रु से अधिक सामर्थ्यशाली रहना चाहिये और अपना हरएक वीर शत्रुसे शक्ति, बुद्धि और युक्ति में श्रेष्ठ रहना चाहिये। तब विजय मिलता है। यह बात मरुतोंके वर्णनमें पाठक देख सकते हैं।

(कण्वो घौर। सतोबृहती।)

असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः। ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ (ऋ. १-३९-१०)

"हे (सुदानव) उत्तम दान देनेवाले मरुतो ! (असामि ओजः बिभृथः) अतुल बल आप धारण करते है। हे (धूतय) शत्रुको कंपानेवाले मरुतो ! (असामि शवः) अतुल सामर्थ्य आप के पास है। (ऋषिद्विषे) ऋषियों का द्वेष करनेवाले (परिमन्यवे) कोपकारी शत्रु के वध के लिये (द्विष) विनाशक शस्त्र (इषुं न) बाण के समान (सृजत) छोड दो।

मरुतों का बल बहुत है, उस की तुलना किसी के साथ नहीं हो सकती। ज्ञानियों का द्वेष करनेवाले का नाश करने के लिये आप ऐसा शस्त्र छोडिए कि, जिस से उस शत्रु का पूर्ण नाश हो जावे।

धूम्रास्त्रप्रयोग।

(ब्रह्मा। त्रिष्टुप्।)

असौ या सेना मरुतः परेषां
अस्मानैत्योजसा स्पर्धमाना।
तां विध्यत तमसापव्रतेन
यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥८॥ (अथर्व० ३।२)

"हे मरुतो ! यह जो (परेषां) शत्रुओंकी सेना है, जो (अस्मान्) हम पर स्पर्धा करती हुई, (ओजसा एति) वेग से आ रही है, (तां) उस सेना को (अपव्रतेन तमसा) घबराहट करनेवाले तमसास्त्र से (विध्यत) वेध लो (यथा) जिस से इन में से कोई किसी को (न जानात्) न जान सके।"

यहां अंधेरा उत्पन्न करनेवाला धूवांरूप शस्त्र का वर्णन है। इस से एक दूसरे को जान नहीं सकता।

यहां 'अपव्रत तम' नामक अस्त्र का प्रयोग शत्रु की

सेना के ऊपर करने को कहा है। 'अपव्रत' का अर्थ यह है कि, जिस से कर्तव्य और अकर्तव्य का ज्ञान नहीं होता, शत्रुसैन्य घबरा जाता है और जो नहीं करना चाहिये वही करने लगता है। इस घबराहट के कारण शत्रु की सेना का निश्चय से पराभव होता है।

'तमस्' नामक अस्त्र अन्धेरा उत्पन्न करनेवाला है। यह धूवें जैसा ही होगा। आजकल इस को 'गैस' (Gas) कहते है। धूवे का पर्दा जैसा खडा करते है और उस की ओढ में रह कर शत्रु को सताते हैं।

'तमस्' और 'अपव्रत तमस्' ये दो विभिन्न अस्त्र होंगे। अधिक घबराहट करनेवाला तम ही अपव्रत कहलानेयोग्य हो सकता है। यह मरुतों का अस्त्र यहां कहा है। पूर्वोक्त अन्यान्य आयुधों के साथ पाठक इस का भी विचार करें।

(गृत्समद शौनकः। जगती।)

उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु
नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः
पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥३॥
इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिः
अध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन
मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥५॥
ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी
रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः।
निमेघमाना अत्येन पाजसा
सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥१३॥
(ऋ २-३४)

" हे (हिरण्यशिप्राः) सोने के मुकुट धारण करनेवाले (दविध्वतः) शत्रुको कंपानेवाले मरुतों ! (आजिषु) संग्रामों में (अत्यान् अश्वान्) चपल घोडों को (उक्षन्ते इव) जैसे स्नान कराते हैं, वैसे जो स्नान करते हैं और (नदस्य कर्णैः आशुभिः) हिनहिनानेवाले घोडों के कानों के समान चपल घोडोंके साथ (तुरयन्त) दौडते हैं, आप (समन्यवः) उत्साह वाले (पृषतीभिः) बिंदुवाली हरिणियों के साथ (पृक्षं याथ) हविष्यान्न के पास, यज्ञ के पास, जाओ। "

" हे (भ्राजद्-ऋष्टयः) चमकनेवाले भालों को धारण करनेवाले (समन्यवः) उत्साह से परिपूर्ण मरुतो ! (इन्धन्वभिः) प्रदीप्त, तेजस्वी (रप्शद्-ऊधभिः) भरपूर दुग्धाशयवाली (धेनुभिः) धेनुओं के साथ रहते हुए (अध्वस्मभिः पथिभिः) अविनाशी मार्गों से (हंसासः न) हंसों के समान (मधोः मदाय) मधुर सोमरसपान के आनन्द के लिये (स्वसराणि गन्तन) यज्ञस्थानों के पास जाओ। "

" (रुद्राः) शत्रुको रुलानेवाले मरुत् (ऋतस्य सदने) यज्ञ के मण्डप में (क्षोणीभिः अरुणेभिः न अञ्जिभिः) शब्द करनेवाले, चमकनेवाले अलंकारों के समान (वावृधुः) बढते हैं। (निमेघमानाः) मेघके समान (अत्येन पाजसा) गमनशील बल से युक्त (सुश्चन्द्रं वर्णं सुपेशसं) चमकनेवाला आनन्ददायक वर्ण (दधिरे) धारण करते हैं। "

विवरमार्ग।

(श्यावाश्व आत्रेयः। अनुष्टुप्। १७ पंक्तिः।)

आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥१०॥
य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥१३॥
सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो
अश्व्यं मृजे ॥ १७ ॥ (ऋ. ५।५२)

" (आपथयः) सीधे मार्गसे, (विपथयः) प्रतिकूल मार्ग से, (अन्तस्पथाः) अन्दर के गुप्त मार्ग के, विवर के मार्ग से, (अनुपथाः) साथवाले अनुकूल मार्ग से अर्थात् (एतेभिः नामभिः) इन सब प्रसिद्ध मार्गोंसे (विस्तारः) यज्ञों का विस्तार करते हुए (यज्ञं ओहते) यज्ञ के पास आते है। "

" जो (ऋष्वाः) दर्शनीय (ऋष्टिविद्युतः) शस्त्रों से विशेष प्रकाशित, (कवयः) ज्ञानी और (वेधसः) वेध करनेवाले (सन्ति) हैं, हे ऋषे ! (तं मारुतं गणं) उन मरुतों के गणों को (नमस्या गिरा) नमन करने की वाणी से (रमय) आनन्दित कर। "

*

" (ते शाकिनः सप्त सप्ताः) वे समर्थ सातसातों के संघ (एक एकां शता ददुः) एक एक सौ दान देते रहे। (यमुनायां अधिश्रुत) यमुना के तीर पर यह प्रसिद्ध है कि, (गव्यं राधः उदमृजे) गौओं का धन दान में दिया और (अश्व्यं राधः निमृजे) घोडोंका धन दानमें दिया। "

इस में चार मार्गों का वर्णन है। मरुत् चारों मार्गों से यज्ञ के प्रति आते हैं, इन मार्गों में अन्तस्पथ अर्थात् भूमि के अन्दर का विवरमार्ग भी है। ये मरुत् गौओं और घोडों का दान देते हैं, इत्यादि बातें इन मंत्रों मे मननीय है।

मरुतों का सामर्थ्य।

(श्यावाश्व आत्रेयः। जगती।)

विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो
वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः
स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥ ३ ॥

न स जीयते मरुतो न हन्यते
न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति।
नास्य राय उपदस्यन्ति नोतय
ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥ ७ ॥

नियुत्वतो ग्रामजितो यथा नरो-
ऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्
व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥ ८ ॥

(ऋ. ५-५४)

" ये (नरः मरुत) नेता मरुत् (विद्युन्महसः) बिजुली के समान महातेजस्वी, (अश्म-दिद्यवः) उल्का के समान प्रकाशमान, (वात-त्विषः) वायु के समान वेगवान्, (पर्वतच्युतः) पर्वतों को भी स्थान से भ्रष्ट करनेवाले, (अब्दया चित् मुहुः आ) पानी देने की अर्थात् वृष्टि की इच्छा वारवार करनेवाले, (ह्रादुनीवृतः) बिजुली को प्रेरित करनेवाले, (स्तनयद्-अमाः) गर्जना में भी जिन की शक्ति प्रकट होती है, ऐसे ये मरुत् (रभसा उत् ओजसः) वेग और सामर्थ्य से युक्त हैं। "

"हे मरुतो ! जिस (ऋषिं) ऋषिको (वा यं राजानं वा) अथवा जिस राजा को तुम (सुषूदिथ) प्रेरित करते हो, वह (न सः जीयते) पराजित नहीं होता, (न हन्यते) न मारा जाता, (न स्रेधति) न पीछे हटता है, (न व्यथते) पीडित नहीं होता और (न रिष्यति) नाश को प्राप्त नहीं होता। (अस्य रायः न उपदस्यन्ति) इसके धन क्षीण नहीं होते, (न ऊतय) न उसकी रक्षाएं कम होती हैं। "

" (यथा ग्रामजित नरः) जैसे नगर को जीतनेवाले नेतालोग गर्व से चलते हैं, वैसे (नियुत्वतः) घोडों पर सवार हुए ये मरुत् (अर्यमणः कबन्धिनः) सूर्य के समान तेजस्वी होकर जल देने लगते हैं। (इनासः) ये स्वामी (यत् अस्वरन्) जब शब्द करते हुए (उत्सं पिन्वन्ति) हौज को जल से भर देते हैं, तब (मध्वः अन्धसा) मधुर जल से (पृथिवीं व्युंदन्ति) पृथ्वी को भर देते हैं। "

मरुत् विजयी वीर हैं। सर्वत्र (क-बन्धिनः) ये पानी का प्रबन्ध सुरक्षित रखते हैं। (मध्वः अन्धसा) मधुर अन्न का प्रबन्ध भी सुरक्षित रखते हैं। अन्न और जल का प्रबन्ध सुरक्षित रखने के कारण इनका विजय होता है। सैनिकों का विजय पेट की पूर्ति से होता है। पाठक विजय का यह कारण अवश्य देखें और अपने सैनिकों के प्रबंध में ऐसी सुव्यवस्था रखें।

(कण्वो घौरः। बृहती।)

परा ह यत् स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु।
वि याथन वनिनः पृथिव्याः व्याशाः पर्वतानाम् ॥

(ऋ. १।३९)

" हे (नरः) शूर नेताओ ! (यत् स्थिरं परा हथ) जो स्थावर पदार्थ है, उसको तुम तोड देते हो, और (गुरु वर्तयथाः) जो बडा भारी पदार्थ हो, उसको तुम हिलाते हो, (पृथिव्याः वनिनः वि याथन) पृथ्वी पर के बडे वृक्षों को तुम उखाड देते हो और (पर्वतानां आशाः वि) पर्वतों को फाडते हो। "

शूर सैनिक स्थिर पदार्थों को अपने मार्ग से हटा देते हैं, बडे भारी पदार्थों को तोडकर चूर्ण करते हैं, वनों में बडे बडे वृक्षों को तोडकर वहां उत्तम मार्ग बनाते हैं और पर्वतों को भी फाडकर बीच में से मार्ग निकालते हैं। अर्थात् शूरों को किसी का प्रतिबंध नहीं होता। शूरों को सब मार्ग खुले रहते हैं।

(कण्वो घौरः । सतोबृहती ।)

नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः। युष्माकमस्तु तविषी तनायुजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥ ४ ॥ (ऋ. १।३९)

" हे (रिशादसः) शत्रु का नाश करनेवाले मरुतो! (अधि द्यवि) द्युलोक में (व शत्रुः न विविदे) आप के लिये कोई शत्रु नहीं है, (न भूम्यां) पृथ्वी पर भी आप के लिये कोई शत्रु नहीं है। हे (रुद्रासः) शत्रु को रुलानेवाले मरुतो! (युष्माकं युजा) आप की संघटना से (आधृषे) शत्रु पर आक्रमण करने के लिये (तना तविषी अस्तु) विस्तृत सामर्थ्य आपके पास हो।"

आप के सामने ठहरनेवाला कोई शत्रु नहीं है और आप का परस्पर आपस का संगठन ऐसा है कि, आप शत्रु पर हमला करते हैं और शत्रु को रुला देते हैं।

(पुनर्वत्सः काण्वः । गायत्री ।)

**वि वृत्रं पर्वशो ययुः वि पर्वताँ अराजिनः ।
चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥ २३ ॥
अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम् ।
अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥ २४ ॥
विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन् हिरण्ययीः ।
शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये ॥ २५ ॥
आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः ।
देवास उप गन्तन ॥ २६ ॥
सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः ।
स्तुषे हिरण्यवाशिभिः ॥ ३२ ॥ (ऋ. ८-७)**

"(अ-राजिनः) राजाको न माननेवाले, अराजक (वृष्णि पौंस्यं चक्राणा) बल के साथ पराक्रम करनेवाले मरुत् (वृत्रं पर्वशः वि ययुः) वृत्र को जोडजोड में काटते रहे॥ (युध्यतः त्रितस्य) युद्ध करनेवाले त्रितका (शुष्मं अनु आवन्) बल बढाया (उत क्रतुं) और कर्म की शक्ति भी बढायी और (वृत्रतूर्ये इंद्रं अनु) वृत्र के युद्ध में इन्द्र की रक्षा की॥ (अभिद्यवः विद्युत्-हस्ताः) तेजस्वी बिजली जैसा शस्त्र हाथ में लेकर खडे हुए मरुत् (हिरण्ययीः शिप्राः) सोनेके शिरस्त्राण (शीर्षन्) सिर पर धारण करते हैं, (शुभ्राः श्रिये व्यंजते) जो (शुभ्राः) शोभासे चमकते हैं। हे (देवासः) देव मरुतो! (नः मखस्य दावने) हमारे यज्ञ के प्रति तुम (हिरण्यपाणिभिः अश्वैः) सोने के आभूषणों से युक्त घोडों के साथ (उप आगन्तन) आओ। (वज्र हस्तैः) वज्र हाथ में धारण करनेवाले (हिरण्य-वाशिभिः) सोने की कुठार हाथ में लिये (मरुद्भिः) मरुतों के साथ अग्नि की भी (सहः) बल के लिये (कण्वासः) हे ज्ञानियो! (स्तुषे) प्रशंसा करो।"

इन मंत्रों में मरुतों के शस्त्र बिजुली जैसे चमकनेवाले, सोनेकी नकशी किये कुठार और भाले हैं। मरुतोंके सिर पर सोने के मुकुट हैं, श्वेत पोषाख किये है। और ये शक्ति के कामों के लिये प्रसिद्ध हैं, ऐसा वर्णन है।

सिर पर सोने के मुकुट, अथवा जरतारी के साफे हैं, सोने के भूषण हाथों में धारण किये हैं, सोने की नकशी के कुठार हाथों में धारण किये हैं। यह वर्णन मरुतों का है। इन्द्र के ये सैनिक हैं।

(सोभरिः काण्वः । सतो बृहती ।)

गोभिर्वाणो अज्यते सोभराणां रथे कोशे हिरण्यये। गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महांतो नः स्परसे नु ॥ (ऋ. ८-२०-८)

"(हिरण्यये रथे कोशे) सोनेके रथके बीचमें (सोभ-रीणां गीर्भिः) सोभरीयों की प्रशंसा के साथ (वाणः अज्यते) वाणनामक वाद्य बजने लगा। (गो-बन्धवः) गौओं के भाई (सुजातासः) उत्तम जन्मे हुए, उत्तम कुल में जन्म जिन का हुआ है। अतः (महान्त) बडे मरुत् (नः इषे भुजे) हमारे अन्न का भोग करने के लिये (स्परसे नु) शीघ्र आ जांय।"

यहां मरुतों को गौओं के भाई कहा है। गौओं के साथ इन का इतना सम्बन्ध है। इन की बहिनें गौवें हैं। ये मरुत् अपने रथ में वाण नामक वाद्य बजाते हैं। वाण वाद्य १०० तारों का है और छोटे ढोल जैसा चमडे का भी होता है।

औषधी ज्ञान।

(सोभरिः काण्वः । सतोबृहती ।)

विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत। क्षमा रपो मरुत् आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ (ऋ. ८।२०।२६)

" हे मरुतो! (विश्वं पश्यन्तः) सब कुछ जाननेवाले

आप (न तनूषु) हमारे शरीरों के पास (बिभृथः) औषध ले आओ और (तेन अधि वोचत) उस से हमें नीरोग होने का उपदेश करो। (नः आतुरस्य) हमारे में जो रोगी हो, उस के पाससे (रपः क्षमा) दोष दूर करो और (विन्हुत पुनः इष्कर्ता) टूटेफूटे या जखमी को फिर निर्दोष करो। "

मरुत् सैनिक है, पर वे औषधिविद्या को जानते है, जखमियों की सेवा करना उन को मालूम है, पहिले से नीरोग रहने के लिये जो सावधानी रखनी चाहिये, वह भी उन को मालूम है। सैनिकों को दवाइयों का थोडा ज्ञान चाहिये।

(गोतमो राहूगणः । जगती ।)

उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं
वय इव मरुतः केनचित् पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा
घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥२॥
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते
भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः
स्वयं महित्वं पनयंत धूतयः ॥३॥ (१८७)

" हे (मरुतः) मरुतो! (वय इव) पक्षियोंके समान (केन चित् पथा) जिस चाहे उस मार्ग से (उपह्वरेषु) आकाश में (यत्) जब (ययिं अचिध्वं) गमनमार्ग निश्चित करते हैं, तब (वः रथेषु) आप के रथों में (कोशा उप आ श्चोतन्ति) खजाने खुले होते है और आप (अर्चते) उपासक के लिये (मधुवर्ण घृत) शुद्ध घी (उक्षता) सींचते हैं। "

" (यत् ह) जब मरुत् (शुभे युञ्जते) शोभाके लिये रथ जोतते है, तब (एषां) इन के (अज्मेषु यामेषु) घुडदौड के गमनों से (भूमिः) भूमि (विथुरा इव) पति से वियुक्त स्त्री के समान (रेजते) कांपती रहती है। ये मरुत् (क्रीळयः) खेलो में प्रवीण (धुनयः) हिलानेवाले (भ्राजत्-ऋष्टय) चमकनेवाले भाले धारण करनेवाले (धूतय) चलानेवाले (स्वयं महित्व) अपना ही महत्त्व स्वयं (पनयन्त) व्यवहार से बताते है। "

इन मन्त्रों के वर्णन से स्पष्ट है कि, आकाश में जिस चाहे उस मार्ग से जानेवाले मरुतों के विमान पक्षियों जैसे भ्रमण करते है। तथा इन के वाहन जब भूमि पर से घूमने लगते हैं, तब भूमि कांपने लगती है। यह वर्णन बडी गाडियों का है और निःसंदेह विमानों का है, पक्षी जैसे जो आकाश में घूमते हैं। ये निःसंदेह विमान ही हैं।

वीरता और धन।

(गृत्समदः शौनकः । जगती ।)

तं व शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरा
उपब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा
अपत्य-साचं श्रुत्यं दिवे दिवे ॥ (ऋ २-३०-११)

" हे मरुतो! मैं (सुम्नयुः) सुख की इच्छा करनेवाला उपासक (तं वः मारुतं शर्धं) उस आप के मरुत्समूह-रूपी बल को तथा (दैव्यं जनं) दिव्य जनों को (नमसा गिरा) प्रणाम से और वाणी से (उप ब्रुवे) प्रशंसित करते है। हमें (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सर्ववीरं) सब वीरों से युक्त (अपत्यसाचं) संतानों से युक्त और (श्रुत्यं) यश से युक्त (रयिं) धन (नशामहै) प्राप्त हो। "

धन ऐसा चाहिये कि, जिस के साथ हमें वीरता, संतान और यश मिले। वीरता के विना धन मिलना असंभव है और सुरक्षित रखना भी असंभवही है।

मरुतों के विशेषणों का विचार।

अब मरुत्सूक्तों में जो विशेषण प्रयुक्त हुए हैं, उन का विचार करते हैं। यहां विचारार्थ थोडेसे ही विशेषण लिये हैं और इन के स्थान के निर्देश पाठक सूची में देख सकते हैं, इस लिये यहां दिये नहीं हैं—

भाई मरुत्।

ये मरुत् आपस में समान भाई हैं, न इन में (**अज्येष्ठासः**) कोई बडा है, न इनमें कोई (**अमध्यमासः**) मध्यम है और न इनमें कोई (**अकनिष्ठासः**) कनिष्ठ है, (**अचरमा**) नीच भी इन में कोई नहीं है, तथापि गुणों से ये (**ज्येष्ठासः**) श्रेष्ठ हैं, और (**वृद्धाः**) गुणों से ये बडे भी हैं। ये (**अन्-आनताः**) किसीके सामने नमते भी नहीं, उग्र वृत्ति से रहते हैं, ये (**सु-जातासः**) कुलीन हैं और ये सब मरुत् आपसमें (**भ्रातरः**) भाई भाई हैं। ये आपस में परस्पर भाई ही अपने आप को कहते हैं।

जनता के सेवक।

मरुत् (नृ-साचः) जनता की सेवा करनेवाले हैं, (नरः, वीराः) ये नेता हैं, वीर हैं, जनता की (त्रातारः) रक्षा करनेवाले हैं। ये (मानुषासः, विश्वकृष्टयः) मनुष्य हैं, सब मानव ही मरुत हैं। ये (अद्वेषः) किसी का द्वेष नहीं करते, (अमवन्तः) ये बलवान् होते हैं। ये (घोरवर्पसः) बडे शरीरवाले होते हैं और (पूत-दक्षसः) पवित्र कार्यों में अपने बल का अर्पण करनेवाले होते हैं।

ये (प्रक्रीडिनः) विशेष खेलनेवाले अथवा खेलों में प्रेम रखनेवाले हैं, (अदाभ्याः) ये कभी दबे नहीं जाते और (अधृष्टासः) कोई इनको डर भी नहीं बता सकता।

ये मरुत् (अच्युता ओजसा प्रच्यावयंतः) स्वयं अपने स्थान से भ्रष्ट नहीं होते, पर अपनी शक्ति से सब शत्रुओं को स्थानभ्रष्ट करते हैं।

गोसेवा करनेवाले।

मरुत् (गो-मातरः, पृश्निमातरः, पृश्नेः पुत्राः) गौ को माता माननेवाले, भूमि को माता माननेवाले, मातृभूमि की सेवा करनेवाले हैं, (गो-बंधवः) गौ के भाई जैसे ये बर्तते हैं।

घोडे पास रखते हैं।

मरुत् वीर (अश्वयुजः) घोडों को अपने रथों को जोतनेवाले होते हैं, तथा (स्वश्वाः) उत्तम घोडोंवाले, (अरुणाश्वाः रोहितः) लाल रंगोंवाले घोडों को पास रखनेवाले, (पृषतीः) धब्बोंवाले घोडोंसे युक्त, (आशवः) त्वरा से दौडनेवाले घोडों से युक्त, (सुयमाः) शिक्षित घोडोंवाले ऐसे मरुतों के घोडों का वर्णन हैं। इसलिये मरुतों को (अनर्वाणः) कहा है, यहां घोडों को अपने पास न रखनेवाले ऐसा अर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि पूर्वोक्त विशेषणों से यह अर्थ विरुद्ध है। इसलिये (अन् अर्वाणः) का अर्थ हीन भावों को अपने पास न रखनेवाले, झगडालु वृत्तियों से रहित आदि अर्थ इस शब्द का करना योग्य है।

मरुतों का रथ।

मरुतों का रथ (हिरण्यरथाः, हिरण्यया) सोने का है, रथ के पहिये भी (हिरण्यचक्राः) सोने के हैं। ये रथ बडे (सुरथाः) सुंदर हैं, (सुखाः) अन्दर बैठने से सुख होता है, (विद्युन्मन्तः) बिजली की युक्ति इनके रथों में है। (ऋष्टिमंतः) शस्त्र इनके रथों पर होते हैं। (अश्वपर्णाः) घोडे ही इनके रथों के पंख हैं, अर्थात् अश्वशक्ति से ही ये रथ दौडते हैं। इस तरह इन के रथों का वर्णन है।

शत्रुनाश।

मरुतों के पास तेजस्वी शस्त्रास्त्र भरपूर हैं, इन के वर्णन पूर्वस्थान में आ गये हैं। इन शस्त्रों से ये (रिशादसः) शत्रु का नाश करते हैं और जनता की रक्षा करते हैं।

मरुतों के विशेषणों का विचार करने से इस तरह ज्ञान होता है।

स्वरूप।

मरुतों का स्वरूप अध्यात्म में ' प्राण ' है, अधिदैवत में ' वायु ' है और अधिभूत अर्थात् मानवों में ' वीर ' है। अतः मरुतों के मंत्रों में ' प्राण, वीर, और वायु ' के वर्णन हम देखते हैं।

प्रचण्ड वायु, आंधी, बादल, मेघ, ओले, वृष्टि आदि का वर्णन मरुतों के सूक्तों में है, पर वह इस ढंग से है कि, जिससे वीरों का ही वह है, ऐसा प्रतीत होता है। अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत में मिलकर सामान्यतः मरुतों का वर्णन इन सूक्तों में है, इसी लिये ' प्राण, वीर और वायु ' का वर्णन इन सूक्तों में सूक्ष्म दृष्टि से प्रतीत होता है। पाठक इस तरह इन सूक्तों का विचार करें और वीरभाव का लाभ प्राप्त करें।

औंध, (जि. सातारा) २४।५।४२ } श्री० दा० सातवलेकर, अध्यक्ष-स्वाध्याय-मण्डल।



मरुद्देवता की विषयसूची।

मरुद्देवता-मन्त्रों की ऋषिसूची।

मरुतः।

मरुत्सहचारी देवगणः।

मरुद्देवता की सूचियाँ।



दैवत-संहिता ।

[ऋग्यजुःसामाथर्वणां संहितानां सर्वान् मन्त्रान् देवतानुसारेण संगृह्य निर्मिता ।]



४ मरुद्देवता ।

॥ १ ॥ (ऋ० १।६। ४,६,८,९,)

(१-४) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ४
देवयन्तो यथा मति- मच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ६
अनवद्यैरभिद्युभि- र्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ८
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ९ ४

॥ २ ॥ (ऋ० १।१५।२)

(५) मेधातिथिः काण्वः । गायत्री ।

मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः २ ५

॥ ३ ॥ (ऋ० १।३७।१-१५)

(६-४५) कण्वो घौरः । गायत्री ।

क्रीळं वः शर्धो मारुत- मनर्वाणं रथेशुभम् । कण्वा अभि प्र गायत १
ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः । अजायन्त स्वभानवः २
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद् वदान् । नि यामञ्चित्रमृञ्जते ३
प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ४
प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् । जम्भे रसस्य वावृधे ५ १०
को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः । यत् सीमन्तं न धूनुथ ६
नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे । जिहीत पर्वतो गिरिः ७
येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः । भिया यामेषु रेजते ८ १३

स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे । यत् सीमनु द्विता शवः ९
उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे १० १५
त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् । प्र च्यावयन्ति यामभिः ११
मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन । गिरीँरचुच्यवीतन १२
यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना । शृणोति कश्चिदेषाम् १३
प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः । तत्रो षु मादयाध्वै १४
अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम् । विश्वं चिदायुर्जीवसे १५ २०

॥ ४ ॥ (ऋ० १।३८।१-१५)

कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः । दधिध्वे वृक्तबर्हिषः १
क्व नूनं कद् वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः । क्व वो गावो न रण्यन्ति २
क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता । क्वो३ विश्वानि सौभगा ३
यद् यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन । स्तोता वो अमृतः स्यात् ४
मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः । पथा यमस्य गादुप ५ २५
मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत् । पदीष्ट तृष्णया सह ६
सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः । मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ७
वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति । यदेषां वृष्टिरसर्जि ८
दिवा चित् तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति ९
अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम् । अरेजन्त प्र मानुषाः १० ३०
मरुतो वीळुपाणिभि-श्चित्रा रोधस्वतीरनु । यातेमखिद्रयामभिः ११
स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् । सुसंस्कृता अभीशवः १२
अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् । अग्निं मित्रं न दर्शतम् १३
मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यम् १४
वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् । अस्मे वृद्धा असन्निह १५ ३५

॥ ५ ॥ (ऋ० १।३९।१-१०)

(प्रगाथः=(विषमा) बृहती, (समा) सतो बृहती)।

प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः १
स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः २ ३७

परा ह यत् स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ३
नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ४
प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ५ ४०
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रो–दबीभयन्त मानुषाः ६
आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरे–त्था कण्वाय बिभ्युषे ७
युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ८
असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभि–र्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ९
असाम्योजो बिभृथा सुदानवो ऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् १० ४५

॥ ६ ॥ (ऋ० ८।७।१-३६)
(४६-८१) पुनर्वत्सः काण्वः । गायत्री ।

प्र यद् वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत । वि पर्वतेषु राजथ १
यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् । नि पर्वता अहासत २
उदीरयन्त वायुभि–र्वाश्रासः पृश्निमातरः । धुक्षन्त पिप्युषीमिषम् ३
वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान् । यद् यामं यान्ति वायुभिः ४
नि यद् यामाय वो गिरि–र्नि सिन्धवो विधर्मणे । महे शुष्माय येमिरे ५ ५०
युष्माँ उ नक्तमूतये युष्मान् दिवा हवामहे । युष्मान् प्रयत्यध्वरे ६
उदु त्ये अरुणप्सव–श्चित्रा यामेभिरीरते । वाश्रा अधि ष्णुना दिवः ७
सृजन्ति रश्मिमोजसा पन्थां सूर्याय यातवे । ते भानुभिर्वि तस्थिरे ८
इमां मे मरुतो गिर–मिमं स्तोममृभुक्षणः । इमं मे वनता हवम् ९
त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु । उत्सं कवन्धमुद्रिणम् १० ५५
मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे । आ तू न उप गन्तन ११ ५६

यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे । उत प्रचेतसो मदे १२
आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम् । इयर्ता मरुतो दिवः १३
अधीव यद् गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम् । सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः १४
एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । अदाभ्यस्य मन्मभिः १५ ६०
ये द्रप्सा इव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः । उत्सं दुहन्तो अक्षितम् १६
उदु स्वानेभिरीरत उद् रथैरुदु वायुभिः । उत स्तोमैः पृश्निमातरः १७
येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम् । राये सु तस्य धीमहि १८
इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः । वर्धान् काण्वस्य मन्मभिः १९
क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तबर्हिषः । ब्रह्मा को वः सपर्यति २० ६५
नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः । शर्धाँ ऋतस्य जिन्वथ २१
समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् । सं वज्रं पर्वशो दधुः २२
वि वृत्रं पर्वशो ययु-र्वि पर्वताँ अराजिनः । चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् २३
अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम् । अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये २४
विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन् हिरण्ययीः । शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये २५ ७०
उशना यत् परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन । द्यौर्न चक्रदद् भिया २६
आ नो मखस्य दावने ऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः । देवास उप गन्तन २७
यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः । यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः २८
सुषोमे शर्यणाव-त्यार्जीके पस्त्यावति । ययुर्निचक्रया नरः २९
कदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम् । मार्डीकेभिर्नाधमानम् ३० ७५
कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन । को वः सखित्व ओहते ३१
सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः । स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ३२
ओ षु वृष्णः प्रयज्यू-ना नव्यसे सुविताय । ववृत्यां चित्रवाजान् ३३
गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः । पर्वताश्चिन्नि येमिरे ३४
आक्षणयावानो वह-न्त्यन्तरिक्षेण पततः । धातारः स्तुवते वयः ३५ ८०
अग्निर्हि जानि पूर्व्य-श्छन्दो न सूरो अर्चिषा । ते भानुभिर्वि तस्थिरे ३६ ८१

॥ ७ ॥ (ऋ० ८।२०।१-२६)

(८२-१०७) सोभरिः काण्वः । प्रगाथः=(विषमा ककुप्, समा सतोबृहती); १४ सतो विराट् ।

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः । स्थिरा चिन्नमयिष्णवः १ ८२

वीळुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण आ रुद्रासः सुदीतिभिः ।
इषा नो अद्या गता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयवः २
विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम् । विष्णोरेषस्य मीळ्हुषाम् ३
वि द्वीपानि पापतन् तिष्ठद् दुच्छुनो—भे युजन्त रोदसी ।
प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेजथ स्वभानवः ४ ८५
अच्युता चिद् वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः । भूमिर्यामेषु रेजते ५
अमाय वो मरुतो यातवे द्यौ—र्जिहीत उत्तरा बृहत् ।
यत्रा नरो देदिशते तनू—ष्वा त्वक्षांसि बाह्वोजसः ६
स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः । वहन्ते अह्रुतप्सवः ७
गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।
गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु ८
प्रति वो वृषदञ्जयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वम् । हव्या वृषप्रयाव्णे ९ ९०
वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना ।
आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो वीतये गत १०
समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु । दविद्युतत्यृष्टयः ११
त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे ।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वो ऽनीकेष्वधि श्रियः १२
येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद् भुजे । वयो न पित्र्यं सहः १३
तान् वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनाम् ।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम् १४ ९५
सुभगः स व ऊति—ष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु । यो वा नूनमुतासति १५
यस्य वा यूयं प्रति वाजिनो नर आ हव्या वीतये गथ
अभि ष द्युम्नैरुत वाजसातिभिः सुम्ना वो धूतयो नशत् १६
यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशन्त्यसुरस्य वेधसः । युवानस्तथेदसत् १७
ये चार्हन्ति मरुतः सुदानवः स्मन्मीळ्हुषश्चरन्ति ये ।
अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा युवान आ ववृध्वम् १८
यून ऊ षु नविष्ठया वृष्णः पावकाँ अभि सोभरे गिरा । गाय गा इव चर्कृषत् १९ १००
साहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु ।
वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा वन्दस्व मरुतो अह २० १०१

गावश्चिद् घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः । रिहते ककुभो मिथः २१
मर्तश्चिद् वो नृतवो रुक्मवक्षस उप भ्रातृत्वमायति ।
अधि नो गात मरुतः सदा हि व आपित्वमस्ति निध्रुवि २२
मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः । यूयं सखायः सप्तयः २३
याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविम् ।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः २४ १०५
यत् सिन्धौ यदसिक्न्यां यत् समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः । यत् पर्वतेषु भेषजम् २५
विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः २६ १०७

॥ ८ ॥ (ऋ० १।६४।१-१५)
(१०८-१२२) नोधा गौतमः । जगती, १५ त्रिष्टुप् ।

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः १
ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः २
युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद् विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ३ ११०
चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुरृष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ४
ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान् विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ५
पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिन— मुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ६
महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ७
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिरृष्टिभिः समित् सबाधः शवसाहिमन्यवः ८ ११५
रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ९ ११६

।श्ववेदसो रयिभिः समोकसः   संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
।स्तार इषुं दधिरे गभस्त्यो—रनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः १०
।रण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३ न पर्वतान् ।
खा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ११
।षुं पावकं वनिनं विचर्षणिं   रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
जस्तुरं तवसं मारुतं गण—मृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये १२
। नू स मर्तः शवसा जनाँ अति   तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभि—रापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति १३ १२०
।कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं   द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
।नस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं   तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः १४
। स्थिरं मरुतो वीरवन्त—मृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
।हस्रिणं शतिनं शूशुवांसं   प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १५ १२२

॥७॥ (ऋ० १।८५।१-१२)

(१२३-१३४) गोतमो राहूगणः । जगती, ५,१२ त्रिष्टुप् ।

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो   यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे   मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः १
त उक्षितासो महिमानमाशत   दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रिय—मधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः २
गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभि—स्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप   वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ३ १२५
वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः   प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा   वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ४
प्र यद् रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं   वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धारा—श्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ५
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो   रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं   मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ६
तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना   नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद् वृषणं मदच्युतं   वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ७ १२९

शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ८ १३०
त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ९
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद् बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे १०
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ११
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् १२

॥ १० ॥ (ऋ० १।८६।१-१०) गायत्री ।

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः १ १३५
यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् २
उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे ३
अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्च शस्यते ४
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित् सस्रुषीरिषः ५
पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ६ १४०
सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ७
शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ८
यूयं तत् सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ९
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् । ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि १०

॥ ११ ॥ (ऋ० १।८७।१-६) जगती ।

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः १ १४५
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित् पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते २
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ३ १४७

स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणोऽ या ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावानेद्योऽ स्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ४
पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशता दिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ५
श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ६ १५०

॥ १२ ॥ (ऋ० १।८८।१-६)
(त्रिष्टुप्, १,६ प्रस्तारपंक्तिः, ५ विराड्रूपा)।

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः १
तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान् पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम २
श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशी र्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजाता स्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ३
अहानि गृध्राः पर्या व आगु रिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कै रूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ४
एतत् त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।
पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान् विधावतो वराहून् ५ १५१
एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।
अस्तोभयद् वृथासा मनु स्वधां गभस्त्योः ६ १५६

॥ १३ ॥ (ऋ० १।१३९।८)
(१५७) परुच्छेपो दैवोदासिः । अत्यष्टिः ।

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषु रस्मत् पुरोत जारिषुः ।
यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ८ १५७

॥ १४ ॥ (ऋ० १।१६६।१-१५)
(१५८-१९७) अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन् मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन १ १५८

नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः ।

नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् २

यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।

उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ३ १६०

आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।

भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ४

यत् त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान् दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।

विश्वो वो अज्मन् भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ५

यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना ऽरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।

यत्रा वो दिद्युद् रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ६

प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसो ऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।

अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ७

शतभुजिभिस्तमभिहुतेरघात् पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।

जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात् तनयस्य पुष्टिषु ८ १६५

विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।

अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयो ऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ९

भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।

अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान् व्यनु श्रियो धिरे १०

महान्तो मह्ना विभ्वो विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।

मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ११

तद् वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।

इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् १२

तद् वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत ।

अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे १३ १७०

येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः ।

आ यत् ततनन् वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् १४

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् १५ १७१

॥ १५ ॥ (ऋ० १।१६७।२-११) त्रिष्टुभः (१० पुरस्ताज्ज्योतिः)।

आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः ।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद् धनयन्त पारे २
मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ३
परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ४ १७५
जोषद् यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथं गात् त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ५
आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद् वो मरुतो हविष्मान् गायद् गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ६
प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ७
पान्ति मित्रावरुणाववद्या-च्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ८
नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसो ऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ९ १८०
वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून् तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् १०
एष वः स्तोमो मरुत इयं गी-र्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ११

॥ १६ ॥ (ऋ०१।१६८।१-१०) जगती ८-१० त्रिष्टुप् ।

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणि-र्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्यो-र्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः १
वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः २
सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ३ १८५
अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययु-रमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवु-र्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ४ १८६

को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो३ नैतशः ५
क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ६
सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ७
प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ८ १९०
असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्व-मादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ९
एष वः स्तोमो मरुत इयं गी-र्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् १०

॥ १७ ॥ (ऋ० १।१७१।१-२) त्रिष्टुप् ।

प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभि-र्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् १
एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान् हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद् वृधासः २

॥ १८ ॥ (१।१७२।१-३) गायत्री ।

चित्रो वोऽस्तु याम-श्चित्र ऊती सुदानवः । मरुतो अहिभानवः १ १९५
आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः । आरे अश्मा यमस्यथ २
तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः । ऊर्ध्वान् नः कर्त जीवसे ३

॥ १९ ॥ (ऋ० २।३०।११)

(१९८-२१३) गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः) शौनकः । जगती ।

तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरो-प ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ११

॥ २० ॥ (ऋ० २।३४।१-१५) जगती, १५ त्रिष्टुप् ।

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत १ १९९

द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्य१भ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
रुद्रो यद् वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि २ २००
उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः ।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ३
पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ४
इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभि—रध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ५
आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ६
तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद् दिवेदिवे ।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ७ २०५
यद् युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसो ऽश्वान् रथेषु भग आ सुदानवः ।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ८
यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि त—मव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ९
चित्रं तद् वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद् वा निदे नवमानस्य रुद्रिया—स्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः १०
तान् वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
हिरण्यवर्णान् ककुहान् यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ११
ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा १२ २१०
ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् १३
ताँ इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।
त्रितो न यान् पञ्च होतॄनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे १४
यया रध्रं पारयथात्यंहो यया निदो मुञ्चथ वन्दितारम् ।
अर्वाची सा मरुतो या व ऊति—रो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु १५ २१३

॥ २१ ॥ (ऋ० ३।२६।४-६)
(२१४-२१६) गाथिनो विश्वामित्रः । जगती ।

प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे संमिश्लाः पृषतीरयुक्षत ।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ४
अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ।
ते स्वानिनो रुद्रियां वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ५ २१५
व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभि- रग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ६ २१६

॥ २२ ॥ (ऋ० ५।५२।१-१७)
(२१७-२१७) श्यावाश्व आत्रेयः । अनुष्टुप् . ६,१६,१७ पङ्क्तिः ।

प्र श्यावाश्व धृष्णुया ऽर्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः १
ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विन- स्त्मना पान्ति शश्वतः २
ते स्पन्द्रासो नोक्षणो ऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ३
मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ४ २२०
अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ५
आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ६
ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ७
शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ८
उत स्म ते परुष्ण्या- मूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथाना- मद्रिं भिन्दन्त्योजसा ९ २२५
आपथयो विपथयो ऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभि- र्यज्ञं विष्टार ओहते १० २२६

अधा नरो न्योहते ऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दृश्या ११
छन्दःस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन् दृशि त्विषे १२
य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा १३
अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत १४ २३०
नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभि-र्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः १५
प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः १६
सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुत-मुद् राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे १७

॥ २३ ॥ (ऋ० ५।५३।१-१६)

(१,५,१०-११,१५ककुप्, २ बृहती. ३ अनुष्टुप ,४ पुरउष्णिक, ६,७,९,१३,१४,१६ सतो बृहती· ८,१२ गायत्री)।

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद् युयुज्रे किलास्यः १
ऐतान् रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह २ २३५
ते म आहुर्य आययु-रुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान् पश्यन्निति ष्टुहि ३
ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
श्राया रथेषु धन्वसु ४
युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ५
आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ६ २३९

ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद् वर्तन्त एन्यः ७ २४०
आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।
माव स्थात परावतः ८
मा वो रसानितभा कुभा क्रुमु--र्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात् सरयुः पुरीषिण्य--स्मे इत् सुम्नमस्तु वः ९
तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः १०
शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ११
कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः ।
एना यामेन मरुतः १२ २४५
येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं वहध्वे अक्षितम् ।
अस्मभ्यं तद् धत्तन यद् व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् १३
अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभि--र्हित्वावद्यमरातीः ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह १४
सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते १५
स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन् गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः १६

॥ २४ ॥ (ऋ० ५।५४।१-१५) जगती, १४ त्रिष्टुप् ।

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत १ २५०
प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः २
विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ३
व्य१क्तून् रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्य१न्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ४ २५३

तद् वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषो ऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ५
अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषस— श्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ६ २५५
न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ७
नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरो ऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन् व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ८
प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ९
यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः ।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ १०
अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ११ २६०
तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत् पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत् स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः १२
युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः ।
न यो युच्छति तिष्यो३ यथा दिवो३ ऽस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् १३
यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् १४
तद् वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्व१र्ण ततनाम नॄँरभि ।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः १५

॥ २५ ॥ (ऋ० ५।५५।१-१०) जगती, १० त्रिष्टुप् ।

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद् वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत १ २६५
स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत २
साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः ।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ३ २६७

आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम् ।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ४
उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ५
यदश्वान् धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान् प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा इत् स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ६ २७०
न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ७
यत् पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ८
मृळत नो मरुतो मा वधिष्टना—ऽस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ९
यूयमस्मान् नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् १०

॥ २६ ॥ (ऋ० ५।५६।१-९) बृहती; ३, ७ सतो बृहती ।

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चित् रोचनादधि १ २७५
यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन् तान् वर्ध भीमसंदृशः २
मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ३
नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित् स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ४
उत तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ५
युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ६ २८०
उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणि—रिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत् प्र तं रथेषु चोदत ७ २८१

रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ८
तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ९

॥ २७ ॥ (ऋ० ५।५७।१-८) जगती, ७-८ त्रिष्टुप् ।

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत् प्रति हर्यते मति--स्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे १
वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् २ २९५
धूनुथ द्यां पर्वतान् दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ३
वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ४
पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानव--स्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ५
ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ६
गोमदश्वावद् रथवत् सुवीरं चन्द्रवद् राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ७ ३००
हये नरो मरुतो मृळता न--स्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ८

॥ २८ ॥ (ऋ० ५।५८।१-८) त्रिष्टुप् ।

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
य आश्वश्वा अमवद् वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः १
त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् २
आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ३
यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत् सदश्वो मरुतः सुवीरः ४ ३०५

अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ५
यत् प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वै र्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वना न्यवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ६
प्रथिष्ट यामन् पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान् ह्यश्वान् धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ७
हये नरो मरुतो मृळता न स्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ८

॥ २९ ॥ (ऋ० ५।५९।१-८) जगती, ८ त्रिष्टुप ।

प्र वः स्पळक्रन्त्सुवितायं दावने ऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।
उक्षन्ते अश्वान् तरुषन्त आ रजो ऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः १ ३००
अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती ।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभि रन्तर्महे विदथे येतिरे नरः २
गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।
अत्या इव सुभ्वश्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ३
को वो महान्ति महतामुदश्नवत् कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद् भरध्वे सुवितायं दावने ४
अश्वा इवेदरुषासः सबन्धवः शूरा इव प्रयुधः प्रोत युयुधुः ।
मर्या इव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ५
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदो ऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ६ ३०५
वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसा ऽन्तान् दिवो बृहतः सानुनस्परि ।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ७
मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ८

॥ ३० ॥ ऋ० ५।६१।१-४;११-१६) गायत्री, ३ निचृत्

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय । परमस्याः परावतः १
क्व वोऽश्वाः क्वाभीशवः कथं शेक कथा यय । पृष्ठे सदो नसोर्यमः २
जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः । पुत्रकृथे न जनयः ३ ३१०

परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः । अग्नितपो यथासथ १०
य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु । अत्र श्रवांसि दधिरे ११
येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा । दिवि रुक्म इवोपरि १२
युवा स मारुतो गण-स्त्वेषरथो अनेद्यः । शुभंयावाप्रतिष्कुतः १३
को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः । ऋतजाता अरेपसः १४ ३१५
यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया । श्रोतारो यामहूतिषु १५
ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः । आ यज्ञियासो ववृत्तन १६ ३१७

॥ ३१ ॥ (ऋ० ५।८७।१-९)

(३१८-३२६) एवयामरुदात्रेयः । अतिजगती ।

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे १
प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत् ।
क्रत्वा तद् वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषा-मधृष्टासो नाद्रयः २
प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत् ।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ३ ३२०
स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात् सदस एवयामरुत् ।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभि-र्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ४
स्वनो न वोऽमवान् रेजयद् वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ५
अपारो वो महिमा वृद्धशवस-स्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ६
ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ७
अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद् रथ्यो३ न दंसना ऽप द्वेषांसि सनुतः ८ ३२५
गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ९ ३२६

॥ ३२ ॥ (ऋ० ६।४८।११-१५,२०-२१)

(३२७-३३३) शंयुर्बार्हस्पत्य (तृणपाणि), [१३-१५ लिङ्गोक्ता वा]। ११ ककुप्, १२ सतो बृहती, १३ पुरउष्णिक्, १४ बृहती, १५ अतिजगती, २० बृहती, २१ महाबृहती यवमध्या।

आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः । सृजध्वमनपस्फुराम् ११
या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी १२
भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता । धेनुं च विश्वदोहस--मिषं च विश्वभोजसम् १३
तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे १४ ३३०
त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्व--ण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता ।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत् सुवेदा नो वसू करत् १५
वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वे--जानस्य प्रयज्यवः २०
सद्यश्चिद् यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः ।
त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः २१ ३३३

॥ ३३ ॥ (ऋ० ६।६६।१-११)

(३३४-३४४) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम् ।
मर्तेष्वन्यद् दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः १
ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् २ ३३५
रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै ।
विदे हि माता महो मही षा सेत् पृश्निः सुभ्वे३ गर्भमाधात् ३
न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१--न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः ।
निर्यद् दुह्रे शुचयोऽनु जोष--मनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ४
मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित् सुदानुरव यासदुग्रान् ५
त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचि--रामवत्सु तस्थौ न रोकः ६ ३३९

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्व--नश्वश्चिद् यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तू--र्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ७ ३४०
नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ८
प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ९
त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत् तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः ।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः १०
तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ११ ३४४

॥ ३४ ॥ (ऋ० ७।५६।१-२५)

(३४५-३९४) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप्, १-११ द्विपदा विराट् ।

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः १ ३४५
नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् २
अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन् ३
एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ४
सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात् सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ५
यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः ६ ३५०
उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्य--धा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ७
शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ८
सनेम्यस्मद् युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ्नः ९
प्रिया वो नाम हुवे तुराणा--मा यत् तृपन्मरुतो वावशानाः १०
स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ११ ३५५
शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आय--ञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः १२
अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः १३
प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् १४ ३५८

यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथे—त्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद् यमन्य आदभदरावा १५
अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः १६ ३६०
दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् १७
आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः १८
इमे तुरं मरुतो रामयन्ती—मे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति १९
इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद् यथा वसवो जुषन्त ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे २०
मा वो दात्रान्मरुतो निरराम मा पश्चाद् दध्म रथ्यो विभागे ।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये३ यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति २१ ३६५
सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियास—स्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः २२
भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्यु—क्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित् सनिता वाजमर्वा २३
अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता ।
अपो येन सुक्षितये तरेमा—ऽध स्वमोको अभि वः स्याम २४
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्नि—राप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २५

॥ ३५ ॥ (ऋ० ७।५७।१-७) त्रिष्टुप् ।

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः १ ३७०
निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हि—रा वीतये सदत पिप्रियाणाः २
नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ३ ३७२

ऋधक् सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद् व आगः पुरुषता कराम ।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ४
कृते चिदत्र मरुतो रणन्ताऽनवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ५
उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ६ ३७५
आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७

॥ ३६ ॥ (ऋ० ७।५८।१-६)

प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात् १
जनूश्चिद् वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन् भयते स्वर्दृक् २
बृहद् वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ३
युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद् वो अस्तु धूतयो देष्णम् ४ ३८०
ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।
यत् सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ५
प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६

॥ ३७ ॥ (७।५९।१-१२)
(प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ७-८ त्रिष्टुप्, ९-१२ गायत्री ।)

यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन् मरुतः शर्म यच्छत १
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति २
नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ३ ३८५

नहि वं ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः ।
अभि व आवर्त्त सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ४
ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये ।
इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मो ष्व१न्यत्र गन्तन ५
आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।
अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै ६
सस्वश्चिद्धि तन्व१ः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ७
यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायु स्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान् प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ८ ३९०
सान्तपना इदं हवि र्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ९
गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः १०
इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ११

॥ ३८ ॥ (ऋ० ७।१०४।१८) जगती ।

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वि१च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभि र्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे १८ ३९४

॥ ३९ ॥ (ऋ० ८।९४।१-१२)
(३९५-४०६) बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः । गायत्री ।

गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् १ ३९५
यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते । सूर्यामासा दृशे कम् २
तन् सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः । मरुतः सोमपीतये ३
अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ४
पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ५
उतो न्वस्य जोषमाँ इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ६ ४००
कदत्विषन्त सूरय स्तिर आप इव स्रिधः । अर्षन्ति पूतदक्षसः ७
कद्वो अद्य महानां देवानामवो वृणे । त्मना च दस्मवर्चसाम् ८
आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन् रोचना दिवः । मरुतः सोमपीतये ९
त्यान् नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये १०
त्यान् नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ११ ४०५
त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे । अस्य सोमस्य पीतये १२ ४०६

॥ ४० ॥ (ऋ० १०।७७।१-८)

(४०७-४१२) स्यूमरश्मिर्भार्गवः । त्रिष्टुप्, ५ जगती ।

अभ्रप्रुषो न वाचा प्रुषा वसु हविष्मन्तो न यज्ञा विजानुषः
सुमारुतं न ब्रह्माणमर्हसे गणमस्तोष्येषां न शोभसे १
श्रिये मर्यासो अञ्जीँरकृण्वत सुमारुतं न पूर्वीरति क्षपः ।
दिवस्पुत्रास एता न येतिर आदित्यासस्ते अक्रा न वावृधुः २
प्र ये दिवः पृथिव्या न बर्हणा त्मना रिरिच्रे अभ्रान्न सूर्यः ।
पाजस्वन्तो न वीराः पनस्यवो रिशादसो न मर्या अभिद्यवः ३
युष्माकं बुध्ने अपां न यामनि विथुर्यति न मही श्रथर्यति ।
विश्वप्सुर्यज्ञो अर्वागयं सु वः प्रयस्वन्तो न सत्राच आ गत ४ ४१०
यूयं धूर्षु प्रयुजो न रश्मिभि र्ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु ।
श्येनासो न स्वयशसो रिशादसः प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुषः ५
प्र यद् वहध्वे मरुतः पराकाद् यूयं महः संवरणस्य वस्वः ।
विदानासो वसवो राध्यस्या ऽऽराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोत ६
य उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत् ।
रेवत् स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ७
ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शंभविष्ठाः ।
ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः ८

॥ ४१ ॥ (ऋ० १०।७८।१-८) त्रिष्टुप्, २,५-७ जगती ।

विप्रासो न मन्मभिः स्वाध्यो देवाव्यो न यज्ञैः स्वप्नसः ।
राजानो न चित्राः सुसंदृशः क्षितीनां न मर्या अरेपसः १ ४१५
अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसो वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः ।
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते २
वातासो न ये धुनयो जिगत्नवो ऽग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः ।
वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितॄणां न शंसाः सुरातयः ३
रथानां न येऽराः सनाभयो जिगीवांसो न शूरा अभिद्यवः ।
वरेयवो न मर्या घृतप्रुषो ऽभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभः ४
अश्वासो न ये ज्येष्ठास आशवो दिधिषवो न रथ्यः सुदानवः ।
आपो न निम्नैरुदभिर्जिगत्नवो विश्वरूपा अङ्गिरसो न सामभिः ५ ४१९

ग्रावाणो न सूरयः सिन्धुमातर आदर्दिरासो अद्रयो न विश्वहा ।
शिशूला न क्रीळयः सुमातरो महाग्रामो न यामन्नुत त्विषा ६ ४२०
उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् ।
सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ७
सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्त्स्तोतॄन् मरुतो वावृधानाः ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ८ ४२१

॥ ४२ ॥ (य० ३।४४)

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः । करम्भेण सजोषसः ४४ ४२३

॥ ४३ ॥ (य० ७।३६)

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ।
उपयामगृहीतोऽसि मरुतां त्वौजसे ३६ ४२४

॥ ४४ ॥ (४२५-४२७) (य० १७।८४-८६)

ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु णः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन ।
मितासश्च सम्मितासो नो अद्य सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन् ८४ ४२५
स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च । क्रीडी च शाकी चोज्जेषी। ८५
इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् ।
एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ८६ ४२७

॥ ४५ ॥ (य० २५।२०)

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह २० ४२८

॥ ४६ ॥ (साम० ३५६) श्यावाश्व आत्रेयः । अनुष्टुप् ।

यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा । पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ५ ४२९

॥ ४७ ॥ (अथर्व० १।२६।३-४)

(४३०-४३३) ब्रह्मा । ३ गायत्री, ४ एकावसाना पादनिचृत् ।

यूयं नः प्रवतो नपान्मरुतः सूर्यत्वचसः । शर्म यच्छाथ सप्रथाः ३ ४३०
सुषूदत मृडत मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ४

॥ ४८ ॥ (अथर्व० ५।२६।५) द्विपदार्ची उष्णिक ।

छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुत्रं पिपृतेह युक्ताः ५ ४३१

॥ ४९ ॥ (अथर्व० १३।१।३) जगती ।

यूयमुग्रा मरुतः पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानव-स्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ३ ४३३

॥ ५० ॥ (अथर्व० ३।१।२)
(४३४-४३६) अथर्वा । विराड्गर्भा भुरिक् ।

यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वम् ।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान् २

॥ ५१ ॥ (अथर्व० ३।२।६) त्रिष्टुप् ।

असौ या सेना मरुतः परेषा-मस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना ।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ६ ४३५

॥ ५२ ॥ (अथर्व० ५।२४।६) चतुष्पदातिशक्वरी ।

मरुतः पर्वतानामधिपतयस्ते मावन्तु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां
प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ६ ४३६

॥ ५३ ॥ (अथर्व० ४।१३।४) (४३७-४३९) शंतातिः । अनुष्टुप् ।

त्रायन्तामिमं देवा-स्त्रायन्तां मरुतां गणाः । त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ४

॥ ५४ ॥ (अथर्व० ६।२२।२-३) २ चतुष्पदा भुरिग्जगती, ३ त्रिष्टुप् ।

पयस्वतीः कृणुथाप ओषधीः शिवा यदेजथा मरुतो रुक्मवक्षसः ।
ऊर्जं च तत्र सुमतिं च पिन्वत यत्रा नरो मरुतः सिञ्चथा मधु २
उदप्रुतो मरुतस्तां इयर्त वृष्टिर्या विश्वा निवतस्पृणाति ।
एजाति ग्लहा कन्येव तुन्नै-रुं तुन्दाना पत्येव जाया ३ ४३९

॥ ५५ ॥ (अथर्व० ४।२७।१-७) (४४०-४४६) १-७ मृगारः । त्रिष्टुप् ।

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाते अवन्तु ।
आशूनिव सुयमानह्व ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः १ ४४०
उत्समक्षितं व्यचन्ति ये सदा य आसिञ्चन्ति रसमोषधीषु ।
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातॄं-स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः २
पयो धेनूनां रसमोषधीनां जवमर्वतां कवयो य इन्वथ ।
शग्मा भवन्तु मरुतो नः स्योना-स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ३
अपः समुद्राद् दिवमुद्वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ४
ये कीलालेन तर्पयन्ति ये घृतेन ये वा वयो मेदसा संसृजन्ति ।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ५ ४४४

यदीदिदं मरुतो मारुतेन यदि देवा दैव्येनेदृगार ।
यूयमीशिध्वे वसवस्तस्य निष्कृते—स्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ६
तिग्ममनीकं विदितं सहस्व—न्मारुतं शर्धः पृतनासूग्रम ।
स्तौमि मरुतो नाथितो जोहवीमि ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ७ ४४६

॥ ५६ ॥ (अथर्व० ७।७७[८२] ।३)(४४७) अङ्गिराः । जगती ।

संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का उरुक्षयाः सगणा मानुषासः ।
ते अस्मत् पाशान् प्र मुञ्चन्त्वेनसः सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः ३ ४४७

मरुत्सहचारी देवगण ।

(१) मरुद्रुद्रविष्णवः ।

॥ ५७ ॥ (ऋ० ५।३।३) (४४८) वसुश्रुत आत्रेयः । त्रिष्टुप् ।

तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत् ते जनिम चारु चित्रम् ।
पदं यद् विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ३ ४४८

(२) मरुतोऽग्नामरुतौ वा ।

॥ ५८ ॥ (ऋ० ५।६०।१-८)

(४४९-४५६) श्यावाश्व आत्रेयः । त्रिष्टुप्, ७-८ जगती ।

ईळे अग्निं स्ववसं नमोभि—रिह प्रसत्तो वि चयत् कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् १
आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद् रेजते पर्वतश्चित् २ ४५०
पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित् सानु रेजत स्वने वः ।
यत् क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आप इव सध्र्यञ्चो धवध्वे ३
वरा इवेद् रैवतासो हिरण्यै—रभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ४
अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ५
यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद् वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्व१स्या—ऽग्ने वित्ताद्धविषो यद् यजाम ६
अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः ।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ७ ४५५

अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभि-र्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ८ ५५६

(३) सोमः मरुतः ।

॥ ५९ ॥ (अथर्व० १।२०।१) अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

अदारसृद् भवतु देव सोमा-ऽस्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः ।
मा नो विददभिभा मो अशस्ति-र्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या १ ४५७

(४) मरुत्पर्जन्यौ ।

॥ ६० ॥ (अथर्व० ४।१५।४) विराट्पुरस्ताद्बृहती ।

गणास्त्वोप गायन्तु मारुताः पर्जन्य घोषिणः पृथक् ।
सर्गा वर्षस्य वर्षतो वर्षन्तु पृथिवीमनु ४ ४५८

(५) मरुत आपः ।

॥ ६१ ॥ (४५९-४६४) (अथर्व ४।१५।५-१०)
(५ विराड् जगती, ७ अनुष्टुप्, ६, ८ त्रिष्टुप, ९ पथ्या पंक्तिः, १० भुरिक् ।)

उदीरयत मरुतः समुद्रत-स्त्वेषो अर्को नभ उत्पातयाथ ।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ५
अभि क्रन्द स्तनयार्दयोदधिं भूमिं पर्जन्य पयसा समङ्ग्धि ।
त्वया सृष्टं बहुलमैतु वर्ष-माशारैषी कृशगुरेत्वस्तम् ६ ४६०
सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनु ७
आशामाशां वि द्योततां वाता वान्तु दिशोदिशः ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः सं यन्तु पृथिवीमनु ८
आपो विद्युदभ्रं वर्षं सं वोऽवन्तु सुदानव उत्सा अजगरा उत ।
मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु ९
अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव ।
स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि १० ४६४

मरुद्देवता-पुनरुक्त-मन्त्रभागाः।

ऋग्वेदस्य प्रथमं मण्डलम्।

[४] १।६।९ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । मरुतः)
दिवो वा रोचनादधि ।
१।४९।१ (प्रस्कण्व. काण्वः । उषा)
दिवश्चिद् रोचनादधि ।
(२७५) ५।५६।१ (श्यावाश्व आत्रेय । मरुत.)
८।८।७ (सध्वसः काण्वः । अश्विनौ)
दिवश्चिद् रोचनादध्या ।
[५] १।१५।२ (मेधातिथि काण्व. । मरुत.)
यूयं हि ष्ठा सुदानवः ।
६।५१।१५ (ऋजिश्वा भारद्वाज । विश्वेदेवा.)
(५७) ८।७।१२ (पुनर्वत्सः काण्व. । मरुतः)
८।८३।९ (कुमारो काण्वः । विश्वे देवाः)
[९] १।३७।४ (कण्वो घौर । मरुतः)
प्र व .. ।
देवत्तं ब्रह्म गायत ।
(इन्द्र २०६) ८।३२।२७ (मेधातिथि काण्व । इन्द्र.)
प्र व . ।
देवत्तं ब्रह्म गायत ।
[६,१०] १।३७।१,५ **क्रीळं वः शर्धो(५ क्रीळं यच्छर्धो)मारुतम्**
[१३] १।३७।८ (कण्वो घौर । मरुत)
भिया **यामेषु रेजते ।**
(८६) ८।२०।५ (सोभरिः काण्वः । मरुत)
भूमिर्यामेषु रेजते ।
[१६] १।३७।११ (कण्वो घौर. । मरुतः)
प्र च्यावयन्ति यामभिः ।
(२७८) ५।५६।४ (श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः)
[१७] १।३७।१२ (कण्वो घौरः । मरुतः)
मरुतो यद्ध वो बलं ।
(५६) ८।७।११ (पुनर्वत्सः काण्व. । मरुत)
वो दिवः ।
[२१] १।३८।१ (कण्वो घौरः । मरुतः)
कद्ध नूनं कधप्रियः ।
(७६) ८।७।३१ (पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः)
[४०] १।३९।५ (कण्वो घौरः मरुतः)
प्र वेपयन्ति पर्वतान् ।

प्रो आरत **मरुतो** दुर्मदा इव **देवासः सर्वया विशा ।**
५।२६।९ (वसूयव आत्रेयाः । विश्वे देवाः)
एद **मरुतो ।**
देवासः सर्वया विशा ।
(४९) ८।७।४ (पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः)
वपन्ति **मरुतो** मिहं **प्र वेपयन्ति पर्वतान् ।**
[४१] १।३९।६ (कण्वो घौरः । मरुतः)
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं ।
(१२७) १।८५।५ (गोतमो राहूगण । मरुतः)
प्र यद् **रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं ।**
["] १।३९।६ (कण्वो घौरः । मरुत.)
उपो **रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।**
(७२) ८।७।२८ (पुनर्वत्स काण्वः । मरुतः)
यदेषां **पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः ।**
[४२] १।३९।७ रुद्रा **अवो वृणीमहे ।**
१।४२।५ (कण्वो घौरः । पूषा)
पूषन्नवो **वृणीमहे ।**
[१११] १।६४।४ (नोधा गौतमः । मरुत)
वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे **शुभे ।**
(२६०) ५।५४।११ (श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः)
वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे **शुभः ।**
[११३] १।६४।६ उत्सं **दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ।**
९।७२।६ (हरिमन्त आङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
अंशुं **दुहन्ति—।**
[११९] (नोधा गौतमः । मरुतः)
रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं **मारुतं ।**
(३४४) ६।६६।११ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । मरुतः)
तं वृधन्तं **मारुतं** भ्राजदृष्टिं **रुद्रस्य सूनुं हवसा** विवासे ।
[१२०] १।६४।१३ (नोधा गौतमः । मरुत)
नस्थौ व ऊती **मरुतो यमावत ।**
(१६५) १।१६६।८ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः)
पूर्भी रक्षता **मरुतो यमावत ।**

[१२०] १।६४।१३ (नोधा गौतमः। मरुत)
मरुतो . ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिः।
२।२६।३ (गृत्समदः शौनकः। ब्रह्मणस्पतिः)
स इजनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः।
(इन्द्रः १८०७) १०।१४७।४ (सुवेदा शैरीषि । इन्द्रः)
स इन् ।
मक्षू स वाज भरते धना नृभि.।
[१२४] १।८५।२ त उक्षितासो महिमानमाशत।
(इन्द्र ३२०३) ८।५९ (वाल० ११)।२
(सुपर्णः काण्व.। इन्द्रावरुणौ)
• इन्द्रावरुणा महिमानमाशत।
[१२७] १।८५।५ प्र यद् रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं।
(४१) १।३९।६ (कण्वो घौरः। मरुतः)
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं।
[१३०] १।८५।८ (गोतमो राहूगण.। मरुतः)
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो।
(१६१) १।१६६।४ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। मरुतः)
. . भुवनानि हर्म्या।
[१३१] १।८५।९ अहन् वृत्र निरपामौब्जदर्णवम्।
(इन्द्रः ८०९) १।५६।५ (सव्य आङ्गिरसः। इन्द्र)
[१३७] १।८६।३ स गन्ता गोमति व्रजे।
(इन्द्रः २२४४) ७।३२।१० गमत्स गोमति व्रजे।
(इन्द्रः १८२५) ८।४६।९ (वशोऽश्व्यः। इन्द्र)
(इन्द्रः ५०९) ८।५१ (वाल० ३)। ५ गमेम गोमति व्रजे
[१३८] १।८६।४ (गोतमो राहूगणः। मरुतः)
सुतः सोमो दिविष्टिषु।
उक्थं मदश्च शस्यते।
(इन्द्र ६३६) ८।७६।९ (कुरुसुतिः काण्व.। इन्द्र)
सुतं सोम दिविष्टिषु।
[इन्द्रः ३३१७] ४।४९।१ [वामदेवो गौतमः। इन्द्राबृहस्पती]
उक्थं मदश्च शस्यते।
[१३९] १।८६।५ [गोतमो राहूगणः। मरुत]
विश्वा यश्चर्षणीरभि।
[अग्निः ६९६] ४।७।४ [वामदेवो गोतम। अग्निः]
[अग्निः ९०३] ५।२३।१ [द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेय.। अग्नि.]
[१४८] १।८७।४ [गोतमो राहूगणः। मरुत]
असि सत्य ऋणयावानेद्यो।
२।२३।११ [गृत्समदः शौनक.। ब्रह्मणस्पतिः]
ऋणया ब्रह्मणस्पत।
[१९१] १।१६८।९ [अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। मरुत]
आदित् स्वधामिषिरा पर्यपश्यन्।
१०।१५७।५ [भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः। विश्वे देवा]
[१९२] १।१६८।१०= [इन्द्रः ३२६४] १।१६५।१५
=[१७२] १।१६६।१५= [१८२] १।१६७।११
[अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। मरुत्वानिन्द्रः]
एष व. स्तोमो०. ..कारोः।
एषा यासीष्ट० ..जीरदानुम्॥

ऋग्वेदस्य द्वितीयं मण्डलम्।

[१९८] २।३०।११ तं वः शर्धं मारुत।
(२४३) ५।५३।१० तं वः शर्धं रथाना।
[२०२] २।३४।४ (गृत्समद शौनक। मरुतः)
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस.।
(२१६) ३।२६।६ (गाथिनो विश्वामित्रः। मरुत.)

ऋग्वेदस्य तृतीयं मण्डलम्।

[२१६] ३।२६।६ = (२०२) २।३४।४

ऋग्वेदस्य पञ्चमं मण्डलम्।

[२३०] ५।५२।४ [श्यावाश्व आत्रेयः। मरुतः]
वो..... स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया।
[अग्निः१०६३] ६।१६।२२ [भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। अग्निः]
वः . . स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया।
[२४३] ५।५३।१० त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम्।
[२९२] ५।५८।१ तमु गणं ।
[२४९] ५।५३।१६ [श्यावाश्व आत्रेय। मरुत]
रणन् गावो न यवसे।

१०।२५।१ [विमद ऐन्द्र प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुकः। सोम]
रणन् गावो न यवसे विवक्षसे ।
[२६०] ५।५४।११ [श्यावाश्व आत्रेयः । मरुत]
विद्युतो गभस्त्यो **शिप्रा शीर्षसु** वितता **हिरण्ययीः** ।
[७०] ८।७।२५ [पुनर्वत्सः काण्वः । मरुत]
विद्युद्धस्ता ...शिप्रा शीर्षन् हिरण्ययीः ।
[२६५-७३] ५।५५।१-९ **शुभ यातामनु रथा अवृत्सत** ।
[२६७] ५।५५।३ विरोकिण **सूर्यस्येव रश्मयः** ।
(अग्निः १६५४) १०।९१।४ (अरुणो वैतहव्यः । अग्निः)
अरेपस **सूर्यस्येव रश्मयः** ।
[२७३] ५।५५।९ (श्यावाश्व आत्रेयः मरुत)
अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन ।
६।५१।५ (ऋजिश्वा भारद्वाज । विश्वे देवाः)
अस्मभ्य शर्म बहुल वि यन्त ।
(४२२) १०।७८।८ (स्यूमरश्मिर्भार्गव । मरुतः)
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात ।
[२७४] ५।५५।१०=४।५०।६ [वामदेवो गौतमः । बृहस्पति]
वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।
[२७५] ५।५६।१=१।४९।१ [प्रस्कण्व काण्व । उषा]
दिवश्चिद् रोचनादधि ।
[२७८] ५।५६।४=[१६] १।३७।११

प्र च्यावयन्ति यामभिः ।
[२८०] ५।५६।६ युङ्ग्ध्वं **ह्यरुषी रथे** ।
१।१४।१२ [मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवा]
युक्ष्वा **ह्यरुषी रथे** ।
["] ५।५६।६ [श्यावाश्व आत्रेयः । मरुत]
रथे ।
अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ।
१।१३४।३ [परुच्छेपो दैवोदासिः । वायु]
[२९०] ५।५७।७ [श्यावाश्व आत्रेय । मरुत]
भक्षीय वो ऽवसो दैव्यस्य ।
[इन्द्रः१५५३] ४।२१।१० [वामदेवो गौतम. । इन्द्रः]
भक्षीय ते **ऽवसो दैव्यस्य** ।
[२९१] ५।५७।८=[२९९] ५।५८।८[श्यावाश्व आत्रेय । मरुतः]
हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञा ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ।
[२९२] ५।५८।१=[२४३] ५।५३।१०
[३११] ५।८७।२ (एवयामरुदात्रेयः । मरुतः)
दाना मह्ना तदेषाम् ।
(९५) ८।२०।१४ (सोभरिः काण्वः । मरुत)
[३१२] ५।८७।५ (एवयामरुदात्रेय. । मरुतः)
स्वायुधास इष्मिणः ।
(३५५) ७।५६।११ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मरुत)
स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का ।

ऋग्वेदस्य षष्ठं मण्डलम् ।

[३३४] ६।६६।१ (बार्हस्पत्यो भरद्वाज. । मरुतः)
शुक्र दुदुहे पृश्निरूध ।
(अग्निः ६७५) ४।३।१० (वामदेवो गौतमः । अग्नि.)
[३४१] ६।६६।८ **नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति** ।
१।४०।८ (कण्वो घौर । ब्रह्मणस्पतिः)
नास्य वर्ता न तरुता महाधने ।
["] ६।६६।८ मरुतो यमवथ वाजसातौ ।

१०।३५।१४ (लुशो धानाकः । विश्वे देवाः)
य देवासोऽवथ **वाजसातौ** ।
१०।६३।१४ (गय प्लात । विश्वे देवा.)
["] ६।६६।८ **तोके वा गोषु तनये** यमप्सु ।
(इन्द्र १९४१) ६।२५।४ (भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
.... यदप्सु ।
[३४४] ६।६६।११=(११९) १।६४।१२

ऋग्वेदस्य सप्तमं मण्डलम् ।

[३५५] ७।५६।११-(३१२) ५।८७।५
[३६७] ७।५६।२३ **द्युत् मनिता वाजमर्वा** ।
(इन्द्रः २०१७) ६।३३।२ (शुनहोत्रो भारद्वाजः । इन्द्रः)
[३६९] ७।५६।२५=७।३४।२५ **यूय पात स्वस्तिभिः सदा नः** ।
["] ७।५६।२५ **आप ओषधीर्वनिनो** जुषन्त ।

१०।६६।९ (वसुकर्णो वासुक । विश्वे देवाः)
आप ओषधीर्वनिनानि याज्ञिया ।
७।३४।२५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः)
[३७३] ७।५७।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मरुतः)
यद्व आगः पुरुषता कराम ।
अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ।

१०।१५।६ (शङ्खो यामायनः । पितरः)
यद्ध.... ।
७।७०।५ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)
अस्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ।
[३७६] ७।५७।७ आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती ।
५।४३।१० (अत्रिर्भौमः । विश्वे देवा.)
विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती ।
[३७९] ७।५८।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मरुतः)
प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ।
(इन्द्रः ३१९४) ७।८४।३ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रावरुणौ)
. रेतम् ।
[३८०] ७।५८।६ आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत ।
(इन्द्रः २१११) ६।४७।१३ (गर्गो भारद्वाज । इन्द्र)
आराच्चिद् द्वेषः सनुत युयोतु ।
[३८४] ७।५९।१ युष्माक देवा अवसाहनि ।
१।११०।७ (कुत्स आंगिरसः । ऋभव)
["] ७।५९।१ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । मरुत)
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।
८।२७।१६ (मनुर्वैवस्वत । विश्वे देवाः)

ऋग्वेदस्याष्टमं मण्डलम् ।

[४६] ८।७।१ प्र यद् वस्त्रिष्टुभमिषं ।
(इन्द्रः २३०४) ८।६९।१ (प्रियमेध आंगिरस । इन्द्र)
प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिष ।
[४७] ८।७।२ यदङ्ग तविषीयवो ।
(इन्द्रः २६८) ८।६।२६ (वत्सः काण्वः । इन्द्रः)
यदङ्ग ताविषीयस ।
[४७,५९] ८।७।२,१४ यामं शुभ्रा अचिध्वम् ।
[४८] ८।७।३ (पुनर्वत्सः काण्व. । मरुतः)
धुक्षन्त पिप्युषीमिषम् ।
(इन्द्रः ३४५) ८।१३।२५ (नारदः काण्वः । इन्द्रः)
धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च न ।
(इन्द्रः५३७) ८।५४(वाल० ६)।७ (मातरिश्वा काण्वः । इन्द्रः)
धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ।
९।६१।१५ (अमहीयुराङ्गिरसः । पवमानः सोमः)
धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ।
[४९] ८।७।४ = (४०) १।३९।५
प्र वेपयन्ति पर्वतान् ।
[५३,८१] ८।७।८,३६ ते भानुभिर्वि तस्थिरे ।
[५५] ८।७।१० (पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः)
दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
(इन्द्र २३०९) ८।६९।६ (प्रियमेध आंगिरसः । इन्द्रः)
[५६] ८।७।११ = (१७) १।३७।१२
मरुतो यद्ध वो दिवः [बलं] ।
[५७] ८।७।१२ = (५) १।१५।२
यूयं हि ष्ठा सुदानवो [०व] ।
[५८] ८।७।१३ पुरुक्षु विश्वधायसम् ।
८।५।१५ (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)

[६०] ८।७।१५ (पुनर्वत्स. काण्व । मरुत)
एषां सुम्न भिक्षेत मर्त्यः ।
८।१८।१ (इरिम्बिठिः काण्वः । आदित्या.)
[६५] ८।७।२० (पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः)
ब्रह्मा को वः सपर्यति ।
(इन्द्र ५९५) ८।६४।७ प्रगाथ काण्वः । इन्द्र.)
ब्रह्मा कस्त सपर्यति ।
[६७] ८।७।२२ (पुनर्वत्स काण्वः । मरुत)
सम् स क्षोणी समु सूर्यम् । सम् ।
(इन्द्रः ५२४) ८।५२ (वाल० ४) ।१०
(आयुः काण्व. । इन्द्र.)
सम् . सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सम् सम् ।
[६८] ८।७।२३ = (इन्द्रः २५५) ८।६।१३
वि वृत्र पर्वशो ययु (रुजन) ।
[७०] ८।७।२५ = २६०) ५।५४।११
[७१] ८।७।२६ = (इन्द्रः १०१९) १।१३०।९
उशना यत् परावतः ।
[७३] ८।७।२८ = (४१) १।३९।६
[७६] ८।७।३१ = (२१) १।३८।१
[८०] ८।७।३५ (पुनर्वत्स काण्वः । मरुत)
वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः ।
१।२५।७ (शुनःशेप आजीगर्तिः । वरुण)
पदमन्तरिक्षेण पतताम् ।
[८६] ८।२०।५ = (१३) १।३७।८
भूमि (भिया) यामेषु रेजते ।

[८९] ८।२०।८ (सोभरिः काण्वः । मरुतः)
रथे कोशे हिरण्यये ।
८।२२।९ (सोभरिः काण्व । अश्विनौ)
रथे कोश हिरण्यये वृषण्वसू ।
[९५] ८।२०।१४ = (३१९) ५।८७।२
[१०७] ८।२०।२६ (सोभरिः काण्व. । मरुतः)
तेना नो अधि वोचत ।
८।६७।६ (मत्स्यः साम्मदः मान्यो मैत्रावरुणिः बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः । आदित्याः)
["] ८।२०।२६ दुष्कर्ता विहृतं पुन ।
(इन्द्रः ०,८) ८।१।१२ (मेधातिथि–मेध्यातिथी काण्वौ । इन्द्र)
[३९७]८।९४।३ तन् सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः।
६।४५।३३ (शंयुर्बार्हस्पत्यः । बृबुस्तक्षा)

["] ८।९४।३ मरुतः सोमपीतये ।
१।२३।१० (मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवा)
[३९८] ८।९४।४ आस्ति सोमो अयं सुतः ।
(इन्द्रः १७६६) ५।४०।२ वृषा सोमो अयं सुतः ।
[४०१] ८।९४।८ = १।३८।१०
[४०३] ८।९४।९= १।२३।१०(मेधातिथि काण्वः। विश्वे देवाः)
[४०४-६] ८।९४।१०-१२ अस्य सोमस्य पीतये ।
= १।२२।१ (मेधातिथि काण्वः । अश्विनौ)
(इन्द्र. ३२१३) १।२३।१ (मेधातिथिः काण्वः। इन्द्रवायू)
(इन्द्रः ३३२१)४।४९।५(वामदेवो गौतमः। इन्द्राबृहस्पती)
(इन्द्र ३०५५)६।५९।१०(बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्राग्नी)
(इन्द्रः ६३३) ८।७६।६ (कुरुसुति काण्वः । इन्द्रः)
५।७१।३ (बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ)

ऋग्वेदस्य दशमं मण्डलम् ।

[४१२] १०।७७।८ = (इन्द्रः २१११) ६।४७।१३
(गर्गो भारद्वाज । इन्द्रः)
[४१६] १०।७७।८ ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः ।
७।३९।४ (वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः)
[४२१] १०।७८।८ = (२७३) ५।५५।९



दैवत-संहितान्तर्गत

मरुद्देवता-मन्त्राणां उपमासूची।

अग्नय न इयानाः ६,६६,२; ३३५ मरुत. शोशुचन्।
अग्नयः न १,३४,१; १९९ शोशुवानाः।
” ” ५,८७,३; ३२० स्वविद्युत।
” ” ५,८७,६, ३२३ शुशुक्कास.।
अग्नि न १०,७८,२; ४१६ भाजमा रुक्मवक्षसः।
अग्नीनां न जिह्वा १०,७८,३; ४१७ विरोकिणः।
अग्नितपः यथा ५,६१,४, ३११ [तद्वत् प्रदीप्ता]।
अङ्गिरस न १०,७८,५, ४१९ सामभिः विश्वरूपाः।
अत्यम् न १,६४ ६; ११३ वाजिन मिहे वि नयन्ति।
अत्यासः न ७,५६,१६, ३६० स्वञ्चः।
अत्याः इव ५,५९ ३; ५०२ सुभ्वः चारव।
अत्यान् इव वाजिषु २.३४,३; २०१ अश्वान् उक्षन्ते।
अदितेः इव व्रतम् १,१६६,१२; १६९ दीर्घ दात्रम्।
अद्रयः न ५,८७,२ ३१९ अधृष्टास।
” ” आदर्दिरासः १०,७८ ६, ४२० विश्वहा।
अध्वरस्य इव ६,६६,१०. ३४३ मरुत दिद्युत्।
अन्तम् न १,३७,६ ११ सीम् धूनुथ।
अपः न १,६४,१; १०८ मनसा गिर समञ्जे।
आपः इव ८,९६,७, ४०१ सूरयः तिरः इषन्त।
” ” ५,६०,३; ४५१ सध्न्यञ्चः धवध्वे।
” ” न १०,७८,५; ४१९ निम्नैः उदभि जिगत्नवः।
अपां न उर्मयः १,१६८,२; १८४ सहस्त्रियास. मरुतः।
अपां न यामनि १०,७७,४; ४१० युष्माकं बुध्ने मही न।
अभ्रप्रुषः न १०,७७.१; ४०७ वाचा वसुप्रुषा।
अभ्रात् न सूर्यः १०,७७,३, ४०९ त्मना प्र रिरिच्रे।
आभियाः न २,३४,२, २०० वृष्टय वि द्युतयन्त।
अमतिः न १,६४,९, ११६ [तेजः] रथेषु आ तस्थौ।
अराः इव ५,५८,५; २९६ अचरमाः।
अराणां न चरमः ८,२०,१४, ९५ एषां दाना मह्ना।
अर्कम् न अभिस्वतारिः १०,७८,४; ४१८ सुष्टुभः।
अर्णः न ८,२०,१३; ९४ सप्रथ त्वेषम्।
” ” १,१६७.९, १८० मरुतः द्वेषः परि ष्टुः।
अर्यमणम् न ६,४८,१४; ३३० मन्द्रम्।
अर्यमणः न ५,५४,८ २५७ [दीप्ताः]।

अश्वा इव ५,५९,५, ३०४ [शीघ्रगन्तारः]।
अश्वास न १०,७८,५, ४१९ ज्येष्ठासः आशवः।
अश्वाः इव अध्वनः ५,५३,७, २४० क्षोदसा रजः प्र सस्रु।
अश्वाम् इव ऊधनि २,३४,६; २०४ धेनु पिप्यत।
असुर्यां इव १,१६८,७, १८९ रातिः जञ्जती।
अहा इव ५,५८,५; २९६ अचरमा।
आशून् इव अथ० ४,२७,१; ४४१ सुयमान् अह्व ऊतये।
इत्या न नभसः १,१६७,६; १७६ त्वेष प्रतीका विधतः।
इन्द्रम् न ६,४८,१४; ३३० सुक्रतुं मारुतं गणम्।
इन्द्रम् दैवी यथा वा०य० १७,८६; ४२७ यजमानं विशः।
इषुम् न १,३९,१०; ४५ द्विषं ऋषिद्विषे सृजत।
उपरा न १,१६७.३, १७४ ऋष्टिः।
उषा न रामीः अरुणैः २.३४,१२, २१० मदः ज्योतिषा।
उषसां न केतव १०,७८,७, ४२१ अध्वराश्रियः।
उस्राः इव केचित् १,८७,१; १४५ अञ्जिभिः व्यानज्रे।
ऋक्षः न ५,५६,३, २७७ अमः शिमीवान्।
ऋजिप्यासः न २,३४,४; २०३ वयुनेषु धूर्षद।
ऋष्टिषु प्रयतासु १,१६६,४; १६१ विश्वा हर्म्या भुवनानि
एतशः न अहन्यः १,१६८,५, १८७ पुरुप्रैषा [स्तोत्रे.]।
एताः न यामे ५,५४.५; २५४ योजनं दीर्घं ततान।
एधा इव १,१६६,१; १५८ तविषाणि कर्तना।
क्रिरणम् न ५.५९,३; ३०४ भूमिं रेजथ।
क्षितीनां न मर्याः १०,७८.१, ४१५ अरेपसः।
गर्भम् इव भर्ता ५,५८,७, २९८ स्वमित् शवः धुः।
गवां सर्गम् इव ५,५६,५, २७९ [मरुतां सर्गं] ह्वये।
गवाम् इव श्रृङ्गम् ५,५९,३; ३०२ उत्तमं श्रियसे [धारयथ]।
गावः न १०,३८,२, ९२ व क रण्यन्ति।
गावः न १,१६८,२; १८४ वन्ध्यास।
गावः न वन्ध्यास १,१६८.२, १८४ उक्षणः।
गावः न यवसे ५,५३.१६, २४०. [मरुतः] रणन्।
गावः न दुर्धुरः ५.५६,४; २७८ ओजसा वृथा रिणन्ति।
गाः इव चर्कृषत् ८,२०,१९; १०० वृष्ण गिरा अभि गाय।
गिरयः न १,६४,७; ११४ स्वतवस.।

गिरयः न ६,६६ ११; ३४४ अस्पृध्रन् ।
गौः इव दुध्रा भीमयु ५,५६,३; २७७ शिमीवान् अमः ।
ग्रामजितः नरः यथा ५,५४,८, २५७ मरुतः तथा ।
ग्रावाणः न सूरय १०,७८,६, ४२० सिन्धुमातरः ।
घृतम् न ८,७,१९, ६४ इष पिप्युषी ।
घृतवत् आसुवः विदथेषु १,६४,६; ११३ मरुतः पय ।
चक्षुः इव ५,५४,६; २५५ सुगं यन्तं अनु नेषथ ।
चर्म इव १,८५,५; १२७ धारा उदभि भूम व्युन्दन्ति ।
जज्झती इव ५,५२,६; २२२ मरुतः विद्युतः ।
जनयः न १,८५,१; १२३ मरुतः प्र शुम्भन्ते ।
जिगीवांसः शूराः १०,७८,४; ४१८ अभिद्यव ।
जुजुर्वान् इव विश्पतिः १,३७,८, १३ पृथिवी अज्मेषु ।
जुह्वः न अग्नेः ६,६६,१०; ३४३ मरुत त्विषीमन्तः ।
ज्योतिष्मन्तः न १०,७७,५; ४११ भामा युक्ताः ।
तायवः न ५,५२,१२, २२८ केचित् मरुत. ।
तिष्यः यथा ५,५४,१३; २६२ तथा यः [राः]न युच्छति ।
तृष्णजे न दिव उत्साः ५,५७,१, २८४ इयं अस्मत् मति. ।
त्यत् न १,८८,५, १५५ एतत् योजनं अचेति ।
दिधिषवः न १०,७८,५, ४१९ रथ्यः सुदानवः ।
दुर्मदाः इव १,३९,५; ४० मरुतः प्रो आरत ।
देवः न सूर्यः ६,४८,२१; ३३३ यस्य चर्कृतिः द्यां परि ।
देवाव्यः न यज्ञैः १०,७८,१; ४१५ मन्मभिः स्वाध्यः ।
द्यौः न ८,७,२६, ७१ (पृथिवी अपि) भिया चक्रदत् ।
द्यौः इव ५, ५७, ४, २८७ उरवः मरुत. ।
द्यावः इव ५,५३,५, २३८ वृष्टी यती ।
द्यावः न स्तृभिः चितयन्त; २,३४,२,२०० खादिनः मरुतः ।
द्रप्सा इव ८,७,१६; ६१ रोदसी वृष्टिभिः अनु धमन्ति ।
धन्वच्युतः न इषां यामनि १,१६८,५;१८७ [इषां यामनि] ।
धुनयः न ६,६६,१०; ३०३ वीरा. ।
धेनु न शिश्वे २,३४,८, २०६ जनाय महीं इषं च पिन्वते ।
धेनवः यथा ५,५३,७, २४० क्षोदसा रज प्र सस्नुः ।
नित्यं न सूनुम् १,१६६,२; १५९ मरुत. मधु बिभ्रतः ।
नरः न रण्वः सवने मदन्तः ७,५७,३, ३८९ विश्वं शर्धः ।
नरां न शंस २,३४,६, २०४ सवनानि आ गन्त न ।
नौः न पूर्णा ५,५९,२, ३०१ भियसा भूमिः एजते ।
पत्या इव जाया अथ०६,२२,३; ४३९ एजाति ग्लहा कन्येव
पथ्यः न १,६४,११; ११८ पर्वतान् उज्जिघ्नन्ते ।
परावतः न १०,७८,७; ४२१ योजनानि ममिरे ।
पर्जन्यः इव १,३८,१४; ३४ आस्ये श्लोकं ततन ।

पर्वताः इव १,६४,३; ११० दृढाङ्गा] मरुतः ।
पर्वतासः ज्येष्ठास ५,८७,९, ३२६ [अतिप्रवृद्धाः] ।
पाजस्वन्तः न वीराः १० ७७ ३; ४०९ पनस्यवः मरुतः ।
पितॄणां न शंसाः १०,७८ ३; ४१७ सुरातय ।
पिशाः इव १,६४,८; ११५ सुपिशः विश्ववेदसः ।
पुत्रं न हस्तयोः पिता १,३८ १, २१ अस्मान् कद्ध दधिध्वे ।
पुत्रकृथे न जनयः ५,६१,३; ३१० जघने चोदः सक्थानि ।
पुरा यथा १,३९,७, ४२ इत्था कण्वाय नूनं गन्त ।
पृणत. न दक्षिणा १ १६८,७; १८९ वः रातिः भद्रा ।
पृथिवी इव मीळ्हुष्मती ५,५६,३; २७७ मदन्ती अस्मत् ।
प्रज्ञातार न १०,७८,२; ४१६ ज्येष्ठाः सुनीतयः ।
प्रयस्वन्त न १०,७७,४, ४१० सम्राचः आगता ।
प्रयुज न धूर्षु १०,७७,५, ४११ परिप्रुषः स्थ ।
प्रवासः न प्रसितास १०,७७,५, ४११ परिप्रुषः ।

मतिम् यथा १,६.६,२ महाम् अच्छा अनूषत ।
मनुषः न योषा १,१६७,३; १७४ गुहा चरन्ती विद्युत् ।
मरुतः रुक्मैः यथा ७,५७ ३, ३७२ एतावत् अन्ये न ।
मरुद्भ्यः न १०,७७,७, ४१३ मानुष ददाशत् ।
मर्याः इव ५,५९,३, ३०२ श्रियसे चेतथ ।
मर्याः इव ५,५९,५, ३०४ सुवृधः ।
महा ग्रामः न यामन् १०,७८.६; ४२० मरुतः त्विषा ।
माता इव पुत्रम् अथ० ५,२६,५, ४३२ विप्रत इह युक्ताः ।
मित्रम् न ५,५२,१४, २३० मारुतं गणं दाना अच्छा ।
मित्राय वा सदम् । २,३४,४, २०२ पृक्षे विश्वा भुवना ।
मुनिः इव ७,५६,८, ३५२ धुनि ।
मुष्टिहा इव हव्यः ८ २०,२०, १०१ ये सहाः सन्ति ।
मृगः न यवसे १,३८,५; ३५ जरिता अजोष्य मा भूत् ।
मृगाः इव १,६४,७, ११४ हस्तिनः वना खादथ ।
मृगाः न २,३४,१; १९९ भीमाः ।

यक्षदृशः न मर्याः ६,६६,१६; ३६० मरुतः शुभयन्त ।
यमाः इव ५,५७,४, २८७ सुसदृशः ।
युधा इव १,१६६,१; १५८ तविषाणि कर्तन ।
युयुधयः न १,८५,८, १३० जग्मय. ।
रथैः इव ५,६०,१; ४४९ वाजयद्भिः प्र भरे ।
रथानां न अराः १०,७८,४; ४१८ सनाभयः ।
रथीयन्ती इव १,१६६,५; १६२ ओषधिः प्र जिहीते ।
रथ्य न ५,८७,८; ३२५ दंसना द्वेषांसि अप युयोतन ।
रम्भिणी इव १,१६८,३, १८५ अंसेषु [लक्ष्मीः] रारभे ।
राजान इव १,८५,८; १३० त्वेषसंदृशः ।

दैवत-संहितान्तर्गत

मरुद्देवता-मन्त्राणां सूची ।

*



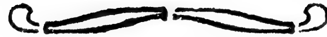
दैवत-संहितान्तर्गत-मरुद्देवतायाः

गुणबोधक-पदानां सूची।

['मरुतः' इति बहुत्वम्, 'मरुतां गणः' इति एकवचनम्। अतः गुणबोधकपदानि उभयवचनान्तानि संहितायां संदृश्यन्ते।]

मरुतां माता।

मरुतां रथः ।



मरुद्देवता-संहितान्तर्गत-निपातदेवतानां

सूची।

*

मरुद्देवता-संहितान्तर्गत

निपात-देवतानां वर्णानुक्रमसूची।

*

